HEAVEN AND HELL;

ALSO,

The Intermediate State,

OR WORLD OF SPIRITS;

A RELATION OF THINGS HEARD AND SEEN.

BY

EMANUEL SWEDENBORG.

H 50

BEING A TRANSLATION OF HIS WORK ENTITLED
"DE CŒLO et ejus Mirabilibus, et de INFERNO, ex Auditis et Visis.
Londini, 1758.

LONDON:
SWEDENBORG SOCIETY, 36 BLOOMSBURY STREET;
AND E. J. LAZARUS & CO., BENARES.
1894.

स्वर्ग और नरक

तथा

मध्यस्थ अवस्था अथवा आत्माओं का जगत।

सुनी और देखी हुई बातों का बयान

ईमेन्यूएल स्वीडन्बोर्ग ने

किया।

यह पुस्तक उस की "दे सीलो एत एजुस मिराबिलिबुस एत दे इन्फ़ेर्नो एक्स ओदितिस एत वीसिस, लोण्डिनि, १७५८,"
नामे पोथी का एक तर्जुमा है।

ब्रिटिश और विदेशी स्वीडन्बोर्ग सोसाइटी,
३६ ब्लूम्जबेरी स्ट्रीट, लण्डन।
तथा ई. जे. लेजरस एण्ड कम्पनी। बनारस

१८९४

एक मित्र की पत्री का उत्तर।

लेखक से।

मैं आप की मित्रता के कारण जो आपने अपनी पत्री में मुझपर प्रगट की है अत्यन्त आनन्दित हूं और उस के लिये मैं आप का धन्यवाद करता हूं परन्तु उस में जो स्तुति आप ने मेरी की है उस को मैं आप के उस प्रेम का सूचक ही मानता हूं जो आप उस सच्चाई की ओर रखते हैं जो मेरे लेखों में पाई जाती है और यों मैं उस को प्रभु हमारे मुक्तिदाता ही की ओर लगाता हूं जो सारी सच्चाई का सोता है क्योंकि वह आपही सच्चाई है (योहन अ॰ १४॰ पद ६)। आप की पत्री के अन्त भाग का मैं अधिक सोच विचार करता हूं जिस में आप यह लिखते हैं कि "आप के इङ्गलंड देश से चले जाने के अनन्तर कदाचित् आप के लेखों के विषय में कोई विवाद उठ खड़ा हो और ऐसे लोग जो सच्चाई के बैरी हैं आप की चाल पर धब्बा लगाने के अभिप्राय से नाना प्रकार की झूठी बातें और अपवाद उत्पन्न करें तो क्या अच्छा न होगा कि आप इन सब विरोधियों का मुंह बन्द करने के निमित्त अपने विषय में कोई संक्षेप वृत्तान्तपत्र अर्थात् अपनी पदवियों के विषय में जो आप को प्रधान पाठशालाओं में मिलीं और उन सब महत्त पदों के विषय में जिन पर आप नियुक्त रहे थे आप के कुल परिवार के विषय में, और उन सब प्रतिष्ठाओं के विषय में जिन की चर्चा मैं सुन चुका हूं कि आप को दी गई हैं और ऐसी ही सकल बातों के विषय में का कोई लेख जिन से आप की चाल चलन की रक्षा की जा सके मेरे हाथों में छोड़ते जांय। जिस से कोई निर्मूल पक्षपात मिटाया जाए क्योंकि जहां कहीं सच्चाई की पत और आदर पर कलंक लगाने का डर हो तहां हम को उचित है कि उस की रक्षा करने और सम्भालने में सब उचित प्रकारों को काम में लावें"। निदान इन वाक्यों पर बिचार करने के अनन्तर मैं ने उचित जाना कि अपनी जीवन की इन घटनाओं का संक्षिप्त वर्णन लिखकर आप के मित्रता से भरे हुये परामर्श को सफल करूं॥

मेरा जन्म हमारे प्रभु संवत १६८९* के जनवरी मास की २९वीं तिथि को स्टोकहोम नगर में हुआ। मेरे पिता का नाम जेस्पर स्वीडवर्ग था जो वेस्ट्रोगोथिया का बिशप और अपने समय का एक प्रसिद्ध जन था। वह सुसमाचार को फैलाने-

---

* यह ठहराया जा चुका है कि यहां १६८८ होना चाहिये।

ज्ञाती अंगली सभा का एक सभासद (मेम्बर) भी चुना गया था। ओर महाराज चार्ल्स १२वें से पेनसिल्वेनिया के ओर लंडन नगर के स्वीड गिर्जाओं का बिशप भी ठहराया गया था। संबत ईसवी १७१० में मेरी यात्राओं का प्रारम्भ हुआ मैं पहिले इंगलंड देश को गया ओर तब पीछे होलंड फ्रांस ओर जर्मनी देशों में यात्रा करता हुआ संबत ईसवी १७१४ में घर को लौट आया। संबत ईसवी १७१६ में ओर उस के अनन्तर भी मेरा सम्भाषण स्वीडन के महाराज चार्ल्स १२वें से बहुत अधिक रहा किया जो मुझपर बहुत प्रसन्नता रखता था ऐसा कि उसी बरस में उस ने मुझे मेटेलिक कालेज (धातु विषयक महान पाठशाला) का एस्सेसर (जांच करनेहारा) ठहराया जिस पद पर मैं संबत १७१६ से १७४७ लों नियुक्त रहा ओर जब मैं ने उस पद को छोड़ भी दिया तोभी उस का वेतन मुझ को मिलता रहा क्योंकि वह पद ओर उस का वेतन मुझे जीवन भर के लिये मिला था मैं ने जो उस काम को छोड़ दिया इस का कारण केवल यही था कि मैं अधिक ओकाश पाऊं जिस्तें मैं उस नये काम में अपने को लगा सकूं जिस के लिये प्रभु ने मुझे बुलाया। तब एक ओर भी बड़ा पद मुझे दिया जाने लगा जिस को मैं ने अग्राह्य किया यह सोचकर कि कहीं अहंकार मेरे मन में प्रवेश न कर लेवे। संबत ईसवी १७१९ में महारानी उलिका एलियोनोरा ने मेरी गिन्ती कुलीन ओर श्रेष्ठ जनों में करके मेरा नाम स्वीडनबर्ग रखा ओर उस समय से लेके मैं प्रदेशों की त्रिवार्षिक सभा में एक्वेस्टिरियन (घुड़सवार) प्रतिष्ठित जनों के संग चोकी पाता रहा। ओर न्योते के रूप से मैं स्टोकहोम की राजकीय प्रधान विद्यालय का फेल्लो हूं परन्तु मैं ने कभी ओर किसी विद्यासंबन्धी पाठशाला में भरती होने की चेष्टा न की क्योंकि मेरा संबन्ध तो स्वर्गदूतों की मण्डली से है जिस में स्वर्ग ओर आत्मासंबन्धी बातों ही पर विचार किया जाता है इस के विरुद्ध हमारी विद्यासंबन्धी सभाओं का विशेष ध्यान जगत ओर शरीरसंबन्धी बातों ही की ओर लगा रहता है। संबत ईसवी १७३४ में मैं ने लेप्सिक नगर में रेगनम् मिनराले नामक एक पुस्तक तीन जिल्दों में छपवाई। ओर संबत ईसवी १७३८ में मैं इटली को गया ओर वेनिस ओर रोम में एक बरस लों रहा।

अपने संबन्धियों के विषय में इतना ही कहा चहता हूं। मेरी चार बहिनें थीं इन में से एक ईरिक बेनुज़ेलियस को ब्याही गई जो कुछ दिनों के पीछे उप्सल का प्रधान बिशप की पदवी को प्राप्त हुआ। सो मैं उस स्थान के दो प्रधान बिशपों का संबन्धी हुआ जो एक दूसरे के पीछे हुये वे दोनों के दोनों बेनुज़ेलि-यस के नाम से प्रसिद्ध थे जो अगले बेनुज़ेलियस के छोटे भाई थे। मेरी दूसरी

बहिन लार्स बेनज़ेलस्टरना को ब्याही गई जो पीछे सूबे का अधिपति ठहराया गया। परन्तु ये दोनों मर गये तथापि दो बिशप जो मेरे सम्बन्धी हैं अबलों जीते हैं। उन में से एक जिस का नाम फिलेनियस् है ओसट्रोगोथिया का बिशप है जो इस समय स्टाकहोम में कलीसियासंबन्धी प्रबन्धकारक सभा का प्रधान है बिशप की सन्ती जो निर्बल है उस ने मेरी बहिन की बेटी से ब्याह किया। दूसरा जिस का नाम बेनज़ेल्सटिर्ना है और जो वेस्टर मननिया और डलेकरलिया का बिशप है मेरी दूसरी बहिन का बेटा है। मैं अपने और कुटुम्बियों की चर्चा नहीं करना चाहता हूं जो बड़े २ पदों पर नियुक्त हैं। मैं अपने देश के सब बिशपों से जो गिन्ती में दस हैं और देश के नियमों को ठहरानेहारी सभा के सोलह मेम्बरों से और शेष सब श्रेष्ठ जनों से निस्संकोच वार्तालाप करता हूं और उन की मित्रता में रहता हूं क्योंकि यह जानकर कि मैं स्वर्गदूतों की संगति में रहता हूं वे मुझे प्यार करते और मेरा आदर करते हैं। राजा और रानी दोनों और उन के तीनों राजकुमार भी अपनी कृपा मुझ पर रखते हैं और मुझे एक बेर राजा और रानी के संग उन की मंच पर भोजन करने का न्योता मिला (यह आदर केवल राज्य के महत्त जनों ही को दिया जाता है) और योंही उन के स्वामी राजकुमार के संग भी ऐसा औसर मिला। मेरे देश के सब लोग मेरा लौटना मना रहे हैं। सो जैसा आप समझते हैं और उस के निवारण करने में चिन्तायमान हैं मुझे अपने देश में सताये जाने का तनिक भी भय नहीं है और यदि ऐसी कोई बात किसी और स्थान में होवे तो इस से मुझे कुछ भी चिन्ता न होगी॥

ऊपर कही हुई बातों से लोग मेरे सांसारिक आदर और उत्कृष्टता के विषय जो समझें सो समझें परन्तु मैं तो उन्हें हलकी ही बात जानता हूं क्योंकि सब से बड़ी बात जो है सो यह है कि प्रभु ने आपही मुझे एक पवित्र सेविकाई देने को बुलाया है उस ने संवत ईसवी १७४३* में अपनी बड़ी दया के कारण अपने दास को दर्शन दिया और तब आत्माओं के लोक में पहुंचाकर आत्माओं और स्वर्गदूतों के संग बात चीत करने की शक्ति प्रदान की और वह शक्ति मुझे आज लों प्राप्त है। उसी समय से मैं ने नाना प्रकार के भेदों को और दर्शनों (परकाशना) को जो वा तो मुझ से देखे गये अथवा मुझपर प्रकाशित किये गये छपवाने और प्रसिद्ध करने लगा ये दर्शन स्वर्ग और नरक, मृत्यु के अनन्तर मनुष्य की दशा,

* उस के आत्मिकसंबन्धी रोज़नामचे के देखने से यह जान पड़ता है कि यह संख्या—वहां संवत ईसवी १७४५ चाहिये।

ईश्वर की सच्ची उपासना,—धर्म्मशास्त्र वचन के आत्मिक अर्थ, और और ऐसी बहुत बड़ी और आवश्यक बातों के विषय में थे जो मुक्ति और सत्य ज्ञान के लिये उपकारी हैं। मेरे मन में जो घर छोड़ने और देश देशान्तर घूमने का बिचार बार २ आया तो उस का केवल यही कारण था कि मैं औरों के लिये लाभदायक बनूं और जो भेद वा रहस्य मुझे सोंपे गये उन को औरों पर प्रगट करूं। रहा संसारिक धन यह तो मेरे पास यथेष्ट है और और अधिक धन की न तो मुझे खोज है और न ऐसा रखने की इच्छा है॥

आप की पत्री के द्वारा इन सब बातों के लिखने की आवश्यकता मुझे हुई जिस्से आप के परामर्श के अनुसार सकल निर्मूल पक्षपात का खण्डन किया जा सके आप का कुशल हो। और मैं क्या ही चाहता हूं कि आप इस लोक में और परलोक में सच्ची शांति और आनन्द के भागी होवें जो आप को अवश्य मिलेगा यदि आप हमारे प्रभु की ओर ताकते रहें और उस्से प्रार्थना करते जाएं॥

लंडन १७६६। इम्मानुयेल स्वीडनबर्ग।

समकालिक लोगों की उस के विषय साक्षियां ।

नव्वाब वोन हूप्किन* साहिब की साक्षी ।

मैं उस को इन बयालीस बरसों ही से जानता हूं और उस के संग बहुधा प्रतिदिन की संगति रखता था। मेरे ऐसा जन जो बहुत काल से इस संसार में जीता रहा और नानाप्रकार की कार्य्यसंबन्धी बातों में जीवन को बिताया मुझको अवश्य ऐसे अनेक औसर मिले होंगे जिन में मैं ने मनुष्यों की बुराई और भलाई दुर्बलता और सबलता को भली भांति जान लिया होगा सो इसी प्रकार से मैं भी कह सकता हूं कि मुझे स्मरण नहीं है कि मुझे कोई और जन कभी मिला जो स्वीडनबर्ग से अधिक एक समान रूप से धार्मिक जन हो, वह सदा संतुष्ट रहता था वह कभी किसी को दुःख न देता और न उस के स्वभाव में चिड़चिड़ाहत पाई गई यद्यपि जीवन भर उस का आत्मा बड़े २ बिचारों और युक्तियों में लगा रहता था। वह एक अच्छा फेलसूफ था और उस ने अपना जीवन उसी के समान बिताया; काम काज में वह बड़ा उद्योगी था और खर्च करने में न तो उड़ाऊ न तो कंजूस था। उस को एक अच्छी बुद्धि दी गई थी जिस से वह प्रत्येक विद्या को सुगमता सहित सीख सकता था और यही कारण था कि जो विद्याएं उस ने सीखीं उन सभों में वह अत्यन्त तेजमान हुआ। वह बिना संदेह मेरे देश का सब से बड़ा विद्वान हुआ है। उस के निर्णय सब प्रकार की दशा में अति गूढ़ थे उस ने भली भांति सब कुछ देखा और प्रत्येक विषय में उस ने अपनी मति उत्तम रूप से प्रगट की। १७६१ की मालगुजारी की महासभा में जो पत्र सब से गम्भीर और सुशोभित सो उस के लिखे हुए थे। एक समय मैं ने इस वृद्ध और आदर योग्य जन को सोच बिचार के लिखा कि मेरी समझ में यह अच्छा जान पड़ता है कि आप अपने सुन्दर लेखों में ऐसी बातों की चर्चा न किया करें जो उन आश्चर्य बातों के विषय में हैं जो आप ने मृत्यु के अनन्तर मनुष्य की दशाओं के विषय आत्माओं के लोक में देखी वा सुनी हैं जिन की निन्दा मूर्खों से की जाती है। परन्तु उस ने मुझे उत्तर देकर कहा कि यह बात मेरे अधिकार की नहीं है मेरे लिये जो अत्यन्त वृद्ध हूं अब आत्मिक बातों के संग ठट्ठा करने का समय नहीं है और मैं अपने अनन्त आनन्द का अभिलाषी होके आप के परामर्श की चिन्ता नहीं कर

---

* यह जन स्वीडन की देश प्रबन्धक सभा का एक मुख्य जन था और लेखक भी था जो बहुत काल लों सदर अदालत का प्रसिडेंट रहा। यह पद इङ्गलेंड के प्रधान मंत्री के पद के समान था। यह स्थल जनरल तक्सन की पत्री से स्वीडनबर्ग की मृत्यु के पीछे ही निकाल कर लिखा गया।

सकता हूं उस ने अपनी मुक्ति की दृढ़ आशा मुझे बता के कह दिया कि ये प्रकाश-मय बातें सत्य हैं और उन बातों के द्वारा उत्पन्न हुईं जो मैं ने देखीं और सुनीं वे मेरी मनकल्पित नहीं हैं ॥

पादरी आर्विद फ़िर्रेलियस* साहिब की साक्षी ।

प्रोफ़ेसर इम्मानुएल स्वीडनबर्ग संवत ईसवी १७७२ के मार्च महीने में इस जगत से प्रस्थान कर गया और लंडन के स्वीडिश गिरजे के नीचे ५ वीं एप्रैल को गाड़ा गया। परसाल के अन्त में उस की देह के एक अंग पर झोला पड़ा जिस से उस की बोली अस्पष्ट हो गई परन्तु यह उस समय अधिक होता था जब कष्टदायक ऋतु होता था। उस की इस अवस्था में मैं उस से कई बेर मिला और प्रतिबार मैं ने उस से पूछा कि क्या तुम समझते हो कि तुम अब शीघ्र मर जाओगे इस के उत्तर में उस ने कहा हां ॥

और इस कारण कि बहुत से लोग समझते थे कि अपने नये मत के फैलाने का उस का अभिप्राय केवल यह था कि वह बड़ा नाम प्राप्त करे अथवा लोगों में अधिक प्रसिद्ध हो जावे, सो मैं ने कहा कि यदि उस का ऐसा ही बिचार हुआ होता तो जगत के उपकार के निमित्त उस को उचित था कि इन बातों को नकारे क्योंकि अब वह जगत से और अधिक लाभ उठानेहारा न था बरन वह उसे शीघ्रही छोड़ देने पर था। मेरे इस अभिप्राय को पहिचान के और अपने बिछौने पर उठंग के और अपनी छाती पर अपना हाथ रख के कुछ उद्योग सहित बोला कि "जैसे कि तुम सचमुच मुझे अब अपनी आंखों से देखते हो वैसेही वे सब बातें सच्ची हैं जो मैं ने लिखीं हैं और यदि मुझे आज्ञा मिलती तो मैं और बहुत सी बातें कहता। सो जब तुम उस लोक में जाओगे तो स्वयम् इन सब बातों को देखोगे तब मुझ को और तुम को इन सब बातों के विषय वार्त्तालाप करने का अधिक औकाश मिलेगा" ॥

कदाचित् किसी २ ने प्रोफ़ेसर स्वीडनबर्ग को सनकी अथवा वहमी समझ लिया हो परन्तु वह सचमुच ऐसा न था बरन वह इस के अत्यन्त बिपरीत ही था। वह सभा में एक सीधा और प्रसन्न चित्त जन था और प्रत्येक विषय पर जो उस के साम्हने आता था सभा की योग्यता के अनुकूल वार्त्तालाप करता था,

---

* सूचना—यह जन कुछ बरसों लों लंडन नगर में रहा यह स्वीडनबर्ग का बहुत बड़ा आदर करता था यद्यपि वह उस का अनुयायी न था। यह बातें उस पत्र से ली गई हैं जो प्रोफ़ेसर ट्रेट्गार्ड को १७८० में लिखा गया ॥

वह अपनी मति को जबलों पूछा न जाता कभी प्रगट न करता था। परन्तु जब वह देखता कि कोई उस से अयोग्य प्रश्न करता है अथवा उस का उपहास किया चाहता है तो वह तुरन्त उस को ऐसा उत्तर देता कि पूछनेहारा चुप हो जाता था॥

जान कृश्च्यन् कूनो* साहिब की साक्षी।

उस से मेरी पहिली भेंट संवत ईस्वी १७६८ के नवम्बर मास की ४ तिथि को हुई। हमारा पहिला समागम आनन्ददायक और शांतिमय था जब मैं ने उस से उस के घर में आने की आज्ञा पाई तब मैं प्रति इतवार उस के घर जाने लगा मैं प्रातःकाल में गिरजा छूटने के अनन्तर प्रति इतवार उस से भेंट किया करता था। मेरा पहिला प्रश्न उस से यह था कि क्यों आप इस वृद्धावस्था में किसी सेवक को नहीं रख लेते हैं जो आप की सेवा टहल करे और यात्राओं में आप के संग रहे? उस ने उत्तर दिया कि मुझे किसी सेवक का प्रयोजन नहीं है जो मेरी सेवा करे क्योंकि मेरा स्वर्गीदूत सदा मेरे संग है और मुझ से बात चीत किया करता है। यदि किसी और जन ने ये बातें कहीं होतीं तो मुझे अवश्य हंसी आजाती परन्तु जब मैं ने इन बातों को इस आदर योग्य ८१ बरस के वृद्ध जन से सुना तो मेरे मन में हंसने का विचार तक भी न आया, वह अत्यन्त निष्कपट देख पड़ता था और जब वह अपनी मुस्कुराहट भरी आंखों से मेरी ओर ताकता था (और वह सदा मेरी ओर ऐसाही ताकता था) तब मानो सच्चाई उन के द्वारा आपही भाषण करती थी। मैं ने बारहा यह देखा कि जब ठट्ठा करनेहारे यह सोचकर कि इस वृद्ध जन को ठट्ठों में उड़ावें जथा के जथा होकर उस के घर पर आतें तो वे अपने ठट्ठों और ठाने हुये तानों को बिल्कुल भूलकर उन महान आश्चर्य्य युक्त बातों को जो आत्माओं के लोक के विषय में थीं और जिन को वह बिना कुछ छिपाये पूर्ण निश्चय के संग बालक सरीखे निष्कपट मन से बोलता था तो वे अत्यन्त शांत होकर और बड़े उद्योग से सुनते थे। ऐसा जान पड़ता था कि उस की आंखों में ऐसी अद्भुत शक्ति थी कि उस के पड़ते ही लोग चुप चाप हो जाते थे॥

मैं उस बिदाई को जो उस ने मेरे घर में मुझ से ली अपने जीवन भर कभी न भूलूंगा। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि यह सच्चा आदरयोग्य वृद्ध जन अपने उस

---

* यह जन अम्स्टरडेम नगर में एक महाजन और खजानची था वह स्वीडनबर्ग के कुछ २ सिद्धान्तों को मानता था परन्तु किसी प्रकार से उस का अनुयायी न था। ये बातें कूनो साहिब के जीवन चरित्र से ली गई हैं जिस की हस्त लिखित पुस्तक ब्रसल्स के सरकारी पुस्तकालय में धरी हुई है॥

अन्तिम् समय में अधिक सुवक्ता था। उस समय उस ने मुझे और ही बातें कहीं जो आगे कभी न कहीं थीं। उस ने मुझे यह आदेश दिया कि भले कर्म्मों को करते जाओ और ईश्वर को अपना ईश्वर करके मान लो। यदि ईश्वर की इच्छा होवे तो मैं तुम से एक और बेर एमस्टरडेम में भेंट करूंगा क्योंकि मैं तुम को प्यार करता हूं। तब मैं ने उस को उत्तर दिया कि "हे मेरे अत्यन्त आदरनीय स्वीडनबर्ग यह तो कदाचित् इस संसार में न होगा क्योंकि मैं अपने तईं दीर्घजीवी होनेहारा नहीं जानता हूं" तब उस ने कहा "यह बात तुम नहीं जान सकते हो क्योंकि हमें जब लों ईश्वर की इच्छा होती है तब तक इस संसार में बबस रहना ही पड़ता है। यदि कोई जन ईश्वर से मिला हुआ है तो वह इस जीवन में भी उस अनन्त आनन्द का स्वाद लेता है और जिस किसी ने इस को प्राप्त किया है वह इस थोड़े से दिन की जीवन के लिये चिन्तायमान नहीं रहता। निश्चय कर जानो कि यदि मैं आज इस बात को जानता कि कल प्रभु मुझे अपने पास बुलावेगा तो मैं आज ही गान कराता यह जानके कि मैं एक और दिन इस संसार में विशेष रूप से आनन्द कर लेऊं"। यदि तुम को उस प्रसन्नभाव के जानने की अभिलाषा हो जो उस वार्त्तालाप से मेरे मन में उपजा तो चाहिये कि तुम इस वृद्ध जन को वेही बातें अपने इस मानो दूसरे लड़कपन में कहते हुये सुन सकते। इस बेर वह अपने नेत्रों द्वारा ऐसा निर्दोष और आनन्दित देख पड़ा जैसा वह आगे कभी देख न पड़ा था। मैं ने उस से कुछ नहीं पूछा बरन आश्चर्य्य से गूंगे के समान रह गया उस ने तब मेरी मंच पर एक बैबल रखी हुई देखी और जब मैं इस प्रकार अपने बिचारों में डूबा हुआ था तो उस ने पुस्तक ली और १ योहन अ॰ ५॰ पद २०, २१ को निकाला। उस ने मुझ से कहा कि "इन शब्दों को पढ़ो" और तब पुस्तक बन्द कर दी और जब चला गया तब मैं ने उस के बताये हुये स्थल को पढ़ा जहां यह लिखा था "परन्तु हम जानते हैं कि ईश्वर का पुत्र आया है और हमें बुद्धि दी है जिस से हम उस को पहिचानें जो सच है और हम उस में जो सच है हां बरन उस के पुत्र येशू खीष्ट में भी हैं। यही सच्चा ईश्वर और अनन्त जीवन है हे बालको तुम अपने को मूर्त्तियों से बचाये रखो। आमीन" ॥

सूचीपत्र ।

स्वर्ग ।

आत्मिक जगत के बारे में और मनुष्य की मरने के पीछे की अवस्था के बारे में ।

नरक के बारे में

उपोद्घात।

एक मित्र के चिट्ठी के जवाब देने में यह चिट्ठी ग्रन्थकर्ता ने लिखी।

जो मित्रता आप ने अपनी चिट्ठी में मेरे वास्ते प्रगट की है उस के लिये मुझ को आनन्द हुआ और मैं उस मित्रता के हेतु से आप का धन्यवाद देता हूं। परंतु जिस प्रशंसा के विषय आप ने मेरी स्तुति करने में लिखी है उस को मैं केवल इस कारण मात्र स्वीकार करता हूं कि वह प्रशंसा एक चिह्न है कि आप उन सच्च बातों को जो मेरी किताबों में हैं प्रेम करते हैं और इस लिये मैं उस प्रशंसा को हमारे मुक्तिदाता प्रभु से संबन्ध करता हूं जिस की ओर से हर भांति की सचाई चलती है क्योंकि वह सचाई आप है। (यूहन्ना पर्व १४ वचन ६)। आप की चिट्ठी का अन्तभाग वही भाग है जिस पर मेरा मन विशेष करके लगा रहा है और जिस में आप ने यह बात लिखी है कि "इस वास्ते कि इंग्लेण्ड से आप के जाने के पीछे कदाचित आप की पुस्तकों के बारे में कुछ वादानुवाद हो सके और इस कारण किसी को उन पुस्तकों का ग्रन्थकर्त्ता झूठी बातों और अपवादों से (जैसा कि वे लोग जो सचाई के मित्र नहीं हैं ग्रन्थकर्त्ता के गौरव के विरुद्ध झूठ मूठ बांधते हैं) बचाना पड़े तो इस प्रकार का अपवाद झूठा ठहराने के लिये कदाचित इस उपाय से कुछ काम निकले कि आप अपने जीवनचरित्र का एक छोटा सा बयान लिखकर मेरे पास छोड़ दें जैसा कि उन डीग्रीओं के विषय जो आप को यूनीवर्सिटी में मिली थीं और उस अधिकार या आस्वाद जहां तक आप चढ़ा था उस का बयान आप के कुटुम्ब और बन्धुजन का बखान और उस प्रधानता और उत्कृष्टपद जो किसी मनुष्य के निवेदन के अनुसार आप को मिला था उस का वर्णन और अन्य अन्य बातों का बखान जो अगर कोई आदमी आप की चाल चलन पर कुछ दोष लगावे तो आप के चरित्र को निष्कलङ्क ठहरावेगा ताकि कोई अनुचित अविचारमति रोकी जावे या दूर की जावे। क्योंकि जहां सचाई की उत्कृष्टता और लाभ कहने में आता है तहां हम को चाहिये कि सचाई की रक्षा और सहारा करने में हर प्रकार के न्यायी उपाय काम में लावें"। मैं ऊपर लिखित वचन का विचार करके आप के दयालु उपदेश को अङ्गीकार करने की ओर झुकाया गया और अब मैं अपने जीवनचरित्र की नीचे लिखित बातों को संक्षेप में समझाता हूं।

मैं ने मिती २९ जनवरी को हमारे प्रभु के संवत के १६८९वें बरस में[1] स्तुकहोल्म नगर में जन्म लिया। मेरे पिता का नाम जेस्पेर स्वेदबुर्ग था और वह

[1] निश्चित हुआ कि यह बरस १६८८ होना चाहिये।

वेस्त्रोगोथिया का बिशोप अर्थात धर्माध्यक्ष था और वह एक कीर्तिमान मनुष्य भी था। वह इञ्जील प्रचारिणी अंग्रेजी सभा का एक सभासद बाढ़ा गया और बारहवें राजा चारल्स ने उस को उन स्वीडिश गिर्जाघरों का अध्यक्ष नियुक्त किया जो पेन्सिल्वेनिया और लण्डन में स्थापित हुए थे। सन १७१० में मैं यात्रा करने लगा। पहिले पहिल मैं इंग्लेण्ड को गया और पीछे मैं हालण्ड और फ्रान्स और जर्मनी को जाकर सन १७१४ में अपने घर को फिर आया। सन १७१६ में और इस बरस के पीछे मैं ने बारहवें राजा चारल्स स्वीडन देश के राजा से बहुधा बात चीत की और उस राजा ने कृपा करके मुझ पर बहुत अनुग्रह किया। और उसी बरस में उस ने मुझ को धातुसंबन्धी कालेज में एसेसर अर्थात अंक्रवैये के पद तक बढ़ाया और मैं उस दिन से लेकर सन १७४७ तक उसी नौकरी में रहा। इस पिछले बरस में मैंने नौकरी को छोड़ा परंतु तो भी मैं उस नौकरी का महीना वयस भर लिया करता था। उस नौकरी को छोड़ने का केवल यह कारण था कि मुझ को अधिक अवकाश हो ता कि मैं उस नये काम में जिस के करने के लिये प्रभु ने मुझे बुलाया था अपना मन लगाऊं। तब मेरे साम्हने नौकरी का कुछ अधिक उच्चपद का निवेदन किया गया परंतु इस कारण कि कहीं उस नौकरी से मेरे मन में गर्व न हो मैं ने उस के ग्रहण करने को अस्वीकार किया। सन १७१९ में रानी उलरीका एलेओनोरा ने मुझे स्वीडन्बोर्ग के नाम कर महाकुलीनता के पद तक बढ़ाया और उस समय से लेकर मैं प्रदेशों की त्रैवार्षिक सभाओं में अश्वीय पद के कुलीनजनों के साथ बैठता हूं। न्योता करके मैं स्तुक्होल्म की विद्यासंबन्धी राजकीय सभा का एक सभासद हूं परंतु मैं ने अन्य किसी साहित्यसंबन्धी सभा में प्रवेश करने की चेष्टा कभी नहीं की। क्योंकि मैं दूतसंबन्धी सभा का एक सभासद हूं जिस सभा में केवल स्वर्गसंबन्धी और आत्मासंबन्धी बातें ही बात चीत करने और सन्तोष भोगने के प्रसङ्ग हैं। इस के विपरीत हमारी साहित्यसंबन्धी सभाओं में हमारा ध्यान जगत और बदन के विषयों पर संपूर्ण रूप से लगा रहा है। सन १७३४ में मैं ने लैप्सिक नगर में रेग्नम मिनेराले नामक पुस्तक को प्रकाश किया। इस पुस्तक का डील डौल फ़ोलिओ था और उस की तीन जिल्दें बनी थीं। सन १७३८ में मैं इटाली देश को गया और मैं वेनीस नगर और रोम नगर में एक बरस भर रहा।

कुटुम्ब लोगों के विषय मेरे तीन बहिन थीं। इन में से एक बहिन एरिक बेन्सीलियस से जो व्याहने के पीछे उप्साला नगर का आर्चबिशोप अर्थात धर्म का प्रधानाध्यक्ष हुआ विवाहित हुई। इस तौर पर मैं उस प्रदेश के दो आर्चबिशोपों से जो क्रम करके एक दूसरे के पीछे आर्चबिशोप थे संबद्ध हुआ। दोनों बेन्सीलियस नामक थे और वे गतकाल के आर्चबिशोप के छोटे भाई थे। मेरी दूसरी बहिन लार्स बेन्सेलस्तियेर्ना से विवाहित हुई और वह महाशय एक प्रदेशी राज्याधिकारी में नियुक्त हुआ। परंतु दोनों मर गये तो भी दो बिशोप लोग जो मेरे बन्धुजन हैं अभी तक जीते हैं। इन में से एक का नाम फ़िलेनियस ओस्त्रो-

गोथिया का बिशोप है और यह पादरी स्टुकहोल्म के डाइयट अर्थात राज्यसभा में धर्मोपदेशविषयक जनसमूह का अधिपति है। वह आर्चबिशोप के स्थान में कार्यनिर्वाह करता है क्योंकि आर्चबिशोप निर्बल हो गया है। उस ने मेरी बहिन की एक बेटी से ब्याह किया। दूसरा पादरी जिस का नाम बेन्सेलस्तियेनो वेस्त-मेनिया और डालेकार्लिया का बिशोप है मेरी दूसरी बहिन का बेटा है। मेरे कुटुम्ब के अन्य लोगों के जो उत्कृष्ट पद में अधिकार करते हैं बखानने की आव-श्यकता नहीं है। मैं अपने देश के सब बिशोप के साथ (जिन की संख्या दस है) और सोलहों सेनेटार्स अर्थात मन्त्रीसभासद लोगों से भी और शेष कुलीनजनों के साथ मन खोलकर बात चीत करता हूं और उन से मित्र बनकर संसर्ग करता हूं। ये लोग मुझ से प्रेम रखते हैं और मेरा संमान करते हैं क्योंकि वे यह जानते हैं कि मैं दूतगण के साथ संसर्ग करता हूं। राजा और रानी आप और अपने तीन राजकुमार मुझ को सब प्रकार की अनुकूलता करते हैं और एक बेर मैं राजा और रानी के साथ उन्हीं के मेज़ पर भी भोजन खाने को बुलाया गया और यह अनुग्रह केवल राज्य के सब से उत्कृष्ट जनों को मात्र दिखलाया जाता है। उस समय के पीछे मैं ने पितृक्रमायात राजकुमारों के साथ भी भोजन किया। मालूम होता है कि आप के मन में यह ध्यान है कि जब मैं अपने देश को फिर जाऊं तब मेरे देश के निवासी मुझ को कुछ दुख देंगे और आप कृपा करके मुझे उस दुख से बचाना चाहते हैं। परंतु मैं दुख के कुछ भी भय से यहां तक दूर होता हूं कि मेरे देश में सब लोग मेरा दर्शण पाना चाहते हैं। तथा अगर और कहीं मुझ को दुख पड़े तो मैं उस दुख की कुछ भी चिन्ता न करूं।

पूर्वोक्त बातों में जितना जगतसंबन्धी संमान और लाभ दिखाई पड़े सो मैं तुच्छ बात मानता हूं। क्योंकि (और यह उन बातों से अत्यन्त उत्तम है) मैं प्रभु से (जिन्हों ने अत्यन्त दयालुता के साथ सन १७४३[१] में अपने नौकर को दर्शण दिया और उसी समय मेरी आंखें खोलकर आत्मासंबन्धी जगत को दिखलाया और मुझ को आत्मागण और दूतगण से बात चीत करने की शक्ति दी जो शक्ति इसी दिन तक मुझ में रहती है) एक पवित्र काम करने को बुलाया गया। उस समय से लेकर मैं कई एक आर्कोना अर्थात रहस्य (जो कि या तो मैं ने देखे थे या मेरे आगे प्रकाशित हुए थे जैसा कि स्वर्ग और नरक के विषय में मृत्यु के पीछे मनुष्य की अवस्था के बारे में परमेश्वर की यथायोग्य सेवा के विषय में धर्मपुस्तक के आत्मसंबन्धी अर्थ के बारे में और बहुत सी अन्य अन्य बड़ी भारी बातों के विषय में जो कि मुक्ति और यथार्थ ज्ञान की ओर पहुंचाती हैं) छपवाकर प्रकाश करने लगा। और मेरे घर को बारम्बार छोड़ छोड़कर परदेशों को जाने का मुझ को केवल यह अभिप्राय था कि मैं उपयोगी होऊं और जो रहस्य मेरे अधिकार में दिये

---

१ स्वीडन्बोर्ग के स्पिरिट्यूएल डाइरी नामक पुस्तक के एक वचन से मालूम हुआ कि यह पिछला अंक भूल चूक होगा। वास्तव में सन १७४५ वें बरस इस बात की ठीक मिती है।

गये थे सो मैं ग्रीरों को दूं । इस जगत की सम्पत्ति के विषय में मेरे बहुत धन है ग्रीर मैं इस से ग्रधिक ग्रीर कुछ धन न तो ढूंढ़ता हूं न चाहता हूं ।

ग्राप की चिट्ठी ने मुझ से इन बातों को खींचा हैं इस वास्ते कि (जैसा कि ग्राप ने कहा था) कोई ग्रनुचित ग्रविचारमति दूर की जावे । नमस्कार । तन मन से मैं यह चाहता हूं कि ग्राप का कल्याण इस जगत में भी हो ग्रीर परलोक में भी हो । ग्रीर मेरे मन में कुछ भी शङ्का नहीं है कि ग्रगर ग्राप प्रभु की ग्रोर देखकर प्रार्थना करें तो ग्राप मुक्ति पावेंगे ।

एमान० स्वीडन्बोर्ग ।

लण्डन १७६९ ।

कोई समानकालवर्तियों का मत ।

कौएट वोन हुप्केन[३] ।

मैं न केवल उस को बयालीस बरस तक जानता था बल्कि कुछ बरस हुए मैं दिन पर दिन उस से संसर्ग करता था । हर एक मनुष्य को जो मेरे तौर पर इस जगत में और इस जगत के एक उत्कृष्ट उच्चपद में बरसों तक जीता रहा है बहुधा अन्य मनुष्यों के गुण अवगुण निर्बुद्धित्व और विवेकता के जानने के बहुत से अवकाश पड़ेंगे । और इस का यह फल है कि मैं किसी मनुष्य की सुधि नहीं कर सकता हूं जिस का सद्गुण स्वीडन्बोर्ग के सद्गुण से उत्तम था । वह सदैव प्रसन्न था और यद्यपि जीते जी उस का आत्मा अत्युत्कृष्ट ध्यानों और सोच विचारों में लगा रहा था तो भी वह कभी न तो चिड़चिड़ा था न कर्कशशील । वह यथार्थ तत्त्वज्ञानी था और तत्त्वज्ञ की चाल पर चलता था । वह परिश्रम करके काम करता रहता था और कृपनता के विना वारा करके खाया करता था । उस की बहुत ही बुद्धिशक्ति थी और वह हर एक विद्या के अभ्यास करने के योग्य था । इस लिये जिस किसी विद्या का अभ्यास वह करता था उस में वह संपूर्ण रूप से प्रवीण हो गया । वह सुनिश्चित रूप से मेरे देश का सब से ज्ञानी मनुष्य था । प्रत्येक घटना पड़ने पर उस की विवेकता सदैव विशिष्ट थी । वह खुली आंखों से सब वस्तुओं को देखता था और हर एक प्रसङ्ग के बारे में अपना मत भले तौर पर प्रकाश करता था । सन १७६१ के डाइयट (अर्थात राज्यसभा) के राजकरादिसंबन्धी लेखों में से उस के लेख उत्तम से उत्तम थे । ... ... एक बेर मैं ने गम्भीरता के साथ इस माननीय मनुष्य के आगे यह निवेदन किया कि "महाशय मेरा यह मत है कि यदि आप अपने श्रेष्ठ लेखों के साथ बहुत से स्मरणयोग्य कथन (अर्थात मनुष्य की मृत्यु के पीछे की अवस्थाओं के विषय में आत्मासंबन्धी जगत में की देखी और सुनी बातें जिन का अज्ञानी लोग ठट्ठा मारके उपहास करते हैं) न मिलावें तो भला होगा" । परंतु उस ने मुझे यह उत्तर दिया कि "मित्र वह मुझ पर अवलम्बित नहीं है । मैं बहुत बुड्ढा हूं इस लिये मैं धर्मसंबन्धी बातों से क्रीड़ा नहीं कर सकता । और मैं अपने अनन्तकालिक आनन्द पर यहां तक आसक्त हूं कि मूर्खता की बातों के अधीन हो नहीं सकता" । तब उस ने अपनी मुक्ति की सौंह खाके दृढ़ता से कहा कि "कल्पनाशक्ति ने मुझ में एक भी प्रकाशितवाक्य पैदा नहीं किया । वे वाक्य सब के सब सच ही सच हैं और उस से निकाले गये हैं जो मैं ने देखा और सुना था" ।

---

३ यह मनुष्य स्वीडन्बोर्ग का एक प्रसिद्ध राज्यनीतिज्ञ और ग्रन्थकर्ता था जो कि कई बरस तक कोर्ट आफ़ चान्सरी का अध्यक्ष था और यह उच्चपद इंग्लेण्ड देश के प्राइम मीनिस्टर के तुल्य है। ऊपर लिखित वचन एक चिट्ठी से जो स्वीडन्बोर्ग के मरने के पीछे कुछ थोड़े काल के पीछे लिखकर जेनरल टक्सटेन के पास भेजी गई थी निकाला गया है।

रेवरेण्ड आर्विड फेरेलियस[४]।

सन १७७२ में प्रोफेसर इमेन्यूएल स्वीडन्बोर्ग मर गया और मिती ५ ऐप्रिल को लण्डन नगर के स्वीडिश गिर्जाघर के समाधि में उस की मिट्टी ठिकाने लगी। उस बरस के अन्त को उस पर अर्धांग रोग लगा जिस कारण उस की वाणी विशेष करके गरमी के मौसिम में कुछ कुछ गड़बड़ हो गई। मैं कई एक बेर उस से भेंट किया करता था और प्रत्येक बेर मैं ने उस से यह प्रश्न पूछा कि क्या आप को इस समय मरने का कुछ बोध है कि नहीं। उस ने जवाब दिया कि हां।

यह सुनते ही मैं ने कहा कि "महाशय बहुत से लोग यह ध्यान करते हैं कि आप का अकेला अभिप्राय इन नये धर्मसंबन्धी सिद्धान्तों के प्रचार करने में अपने आप को प्रसिद्ध करना था (क्योंकि सच मुच आप ने इस अभिप्राय की समाप्ति पूरा की है) अगर आप का यह अभिप्राय था तो चाहिये कि आप अब जगत के हानिपूरण करने के लिये अपने पूर्वोक्तवाक्यों को या तो अस्वीकार करें या कुछ कुछ रूपान्तर करें। विशेष करके इस कारण से कि आप इस जगत को छोड़ने ही को हैं। इस लिये उन वाक्यों से आप को कुछ भी अधिक लाभ न हो सकेगा"। इस पर उस ने बिछौने पर से कुछ कुछ उठकर हाथ छाती पर रखके उत्सुकता से कहा कि "जो कुछ मैं ने लिखा है सो ऐसी सच बातें हैं जैसा कि यह सच है कि आप अब मुझ को अपनी आंखों के साम्हने देखते हैं। और अगर आज्ञा होता तो मैं अधिकतर बातें कह सका होता। जब आप स्वर्ग में प्रवेश करें तब हम तुम बहुत सी बातों के बारे में बात चीत करेंगे"।

सम्भव है कि कोई लोगों को यह बोध हो सके कि प्रोफेसर स्वीडन्बोर्ग एक अव्यवस्थित और तरंगी मनुष्य था। परंतु उस का शील वैसे मनुष्य के शील के विपरीत ही विपरीत था। वह सब लोगों के साथ अनुकूल और मनभावना था और वह हर एक प्रसङ्ग के वादानुवाद करने में भी अपने साथियों के बोधों के अनुकूल था। और बिना पूछे उस ने किसी प्रसङ्ग के विषय अपना मत कभी न सुनाया। परंतु यदि उस ने यह देख लिया कि "यह मनुष्य अबंबन्धी प्रश्न पूछता या मुझ पर ठट्ठा मारता है" तो झट पट उस ने पूछनेवाले को ऐसा उत्तर दिया कि उस मनुष्य को बिना कुछ संवाद पाए चुपचाप रहना पड़ा।

४ फेरेलियस स्वीडन देश का एक पादरी था जो कई एक बरसों तक लण्डन नगर में रहता था। वह स्वीडन्बोर्ग का बड़ा संमान करता था परंतु प्रथ उस का एक पंथी न था। ऊपर लिखित वचन एक चिट्ठी से निकाला हुआ है जो सन १७८० में प्रोफेसर ट्रेटगेर्ड को भेजी गई।

जान क्रिष्टियन कूनो[5]।

मिती ४ नवम्बर को सन १७६८ में मैं ने पहिले बेर उस से भेंट की। हमारा पहिला समागम मनभावना और समप्रकृति था। उस ने अपने घर को मुझे आने का न्योता दिया और मैं दूसरे इतवार को वहां गया। और उसी दिन के पीछे मैं प्रायः प्रत्येक इतवार को गिर्जाघर में प्रभातीय प्रार्थना करने के पीछे मैं वहां आया जाया करता था। मेरे प्रश्नों में से यह पहिला प्रश्न था कि "क्या आप के पास कोई नौकर उपस्थित रहने के लिये और यात्रा करने में आप के संग हो लेने के लिये रहता है कि नहीं"। उस ने जवाब दिया कि "किसी नौकर की उपस्थित रहने के लिये आवश्यकता नहीं है क्योंकि मेरा स्वर्गीय दूत सदैव मेरे पास रहता है और मुझ से बात चीत और संसर्ग नित्य करता रहता है"। यदि अन्य मनुष्य ऐसी बातें कहता तो मैं हंसता परंतु जब यह इकासी बरस का माननीय मनुष्य ने यह बात कह सुनाया तब मेरे मन में हंसने का कुछ भी बोध न था। क्योंकि वह संपूर्ण रूप से निर्दोषी देख पड़ा। और जब उस ने अपनी हंसती हुई नीली आंखों से मुझ पर दृष्टि दी (और वह सर्वदा मुझ से बात चीत करने के समय इसी तौर पर देख रहा था) तब मालूम हुआ कि सचाई उन आंखों में से होकर आप बोल रही थी। बहुधा मैं अचम्भा करके देखता था कि क्योंकर उन बड़ी संगतियों में जिन में मैं ने उस को प्रवेश किया उपहासक लोग जो उस बुड्ढे महाशय पर ठट्ठा मारने के लिये वहां आए थे अपनी सारी हंसी और पूर्वनीर्णीत उपहास भूला करते थे और क्योंकर वे टकटकी लगाकर उन आश्चर्ययुक्त बातों को सुना करते थे जिन को वह सरलभाव बालक के समान मायाहीनता से और निश्शङ्क से आत्मासंबन्धी जगत के बारे में सुनाया करता था। प्रायः यह मालूम हुआ कि मानों उस की आंखों का हर किसी को चुप करने का सामर्थ्य था।

जब तलक मैं जीता रहूंगा तब तलक मैं अपने घर में उस का विदा होना कभी न भूलूंगा। मुझे मालूम हुआ कि मानों यह माननीय बुड्ढा मनुष्य उस समय अधिकतर वाक्पटु था और अन्य तौर पर मुझ से बोला जिस तौर की अपेक्षा वह पहिले बोला था। उस ने मुझे भलाई की चाल पर चलने का और प्रभु को परमेश्वर को मानकर स्वीकार करने का उपदेश किया। उसने कहा कि "यदि परमेश्वर चाहे तो मैं एक बेर एम्स्तेर्डाम में फिर आकर आप से भेंट करूंगा। क्योंकि मैं आप से प्रेम रखता हूं"। मैं उस की बात में पड़कर बोला कि "हाय माननीय स्वीडन्बोर्ग साहेब असम्भव है कि वह भेंट इस जगत में कभी होगी क्योंकि मेरा यह मत है कि मैं

---

[5] कूनो साहेब एम्स्तेर्डाम नगर का एक निवासी था। उस ने स्वीडन्बोर्ग के कई एक सिद्धान्तों का स्वीकार किया तौ भी वह किसी तौर पर स्वीडन्बोर्ग का पंथी न था। ऊपर लिखित वचन कूनो साहेब के जीवनचरित्र से निकाला हुआ है जिस का हस्तलेख ब्रसेल्स नगर के राज्य-पुस्तकालय में पड़ा रहता है।

चिरकाल तक जीता न रहूंगा"। वह कहने लगा कि "आप वह बात नहीं जान सकते। जिस काल तक ईश्वरीय पूर्वदृष्टि और ज्ञान जगत में हमारा रहना चाहे उस काल तक हम को रहना पड़ेगा। यदि कोई मनुष्य प्रभु से संयुक्त हो तो वह इस जगत में भी अनन्तकालिक जीवन का कुछ पूर्वस्वाद भोगता है और यदि वह इस को भुगतावे तो वह इस अचिरस्थायी जीवन की चिन्ता नहीं करता। मेरी बात सच मानो कि यदि मैं यह जानूं कि कल प्रभु अपने पास मुझ को बुलावेगा तो मैं आज बजवैयों को बुला लूं ता कि मैं जगत में एक बेर यथार्थ में फिर आनन्दी होऊं"। इस वास्ते कि आप पर वह प्रभाव लगे जो उस समय मुझ पर लगा चाहिये कि आप उस बुड्ढे मनुष्य को उस के दूसरे बालकपने में यही बात करता हुआ सुनें। उस समय भी वह अपनी आंखों से ऐसा निर्दोषी और ऐसा आनन्दी दिखाई दिया जैसा कि मैं ने पहिले उस को कभी नहीं देखा था। मैं उस की बात में नहीं पड़ा और मैं ऐसी अवस्था में था कि मानों मैं आश्चर्य के कारण गूंगा हो गया। उस समय उस ने देखा कि मेरे पास मेज़ पर धर्मपुस्तक पड़ी रही है। और जब मैं साम्हने की ओर चुपचाप देख रहा था और वह मेरे मन की अवस्था स्पष्ट रूप से देख सकता था तब वह उस पुस्तक को लेकर इस वचन पर खोलकर (१ यूहन्ना पर्व ५ वचन २०·२१) कहा कि "इन बातों को पढ़ो"। यह कहकर उस ने पुस्तक को बन्द किया। उस के जाते ही मैं ने उस वचन को पढ़ा जिस को उसने जताया था। वह यही वचन था कि "परंतु हम यह जानते हैं कि परमेश्वर का बेटा आया। और हमें यह समझ दी कि उस को जो सचाई है जानें। और हम उस में जो सचाई है रहते हैं अर्थात यिशू खिष्ट में जो उस का बेटा है। यह यथार्थ परमेश्वर और अनन्तकालिक जीवन भी है। हे छोटे बच्चो तुम बुतों से अपने आप को बचाये रखो। आमेन"।

स्वर्ग और नरक के बयान में।

१। प्रभु जब अपने चेलों से कल्पान्त की (जो कलीसिया का अन्तकाल[1] है) समझौती कर चुका तो पीछे अपने उन भावीकथनों के जो उस ने प्रेम और श्रद्धा[2] के बारे में किये थे यों बोला कि "उन दिनों के दुख के पीछे तुरंत सूर्य अंधेरा हो जावेगा और चान्द अपनी चान्दनी नहीं देगा और तारागण आकाश से गिरेंगे और स्वर्गों के प्रभाव हिल जावेंगे। और तब मनुष्य के पुत्र का लक्षण आकाश में प्रगट होगा और उस काल जगत के सारे घराने छाती पीटेंगे और प्रभाव से और बड़े तेज से आकाश के बादलों पर आते हुए मनुष्य के पुत्र को देखेंगे। और वह अपने दूतों को तुरही की बड़ी धुनि से भेजेगा और वे उस के चाहे हुओं को चौवाई से खगोल के इस सिरे से उस सिरे तक एकट्ठे करेंगे"। (मत्ती पर्व २४ वचन २९ · ३० · ३१)। वे लोग जो शब्दों ही के तात्पर्य को छोड़कर और कुछ ध्यान नहीं करते यह समझते हैं कि प्रलयकाल का यह सब माजरा ऊपर लिखित बयान के अनुसार ठीकों ठीक आ जावेगा। इस लिये वे लोग अनुमान करते हैं कि न केवल सूर्य और चान्द अन्धकारमय हो जावेंगे और तारागण खगोल से गिर पड़ेंगे और प्रभु के आगमन का लक्षण आकाश में प्रगट होगा कि वे उसे बादलों में देखेंगे और उस के साथ दूतगण तुरही हाथ में लिये खड़े उपस्थित होंगे परंतु (धर्मपुस्तक के अन्य भावीकथनों के अनुसार) वे यह भी समझते हैं कि सारा जगत नष्ट होकर बिलाय जावेगा और उस के पीछे नया खगोल और नई पृथिवी उत्पन्न होगी। अब तो कलीसिया में से अधिक लोगों का यह मत है। परंतु जिन लोगों का यह मत है वे लोग उन रहस्यों को नहीं जानते जो परमेश्वर की धर्मपुस्तक की प्रत्येक बात में गुप्त रहते हैं। क्योंकि उस पुस्तक की प्रत्येक बात में न कि केवल बाहरी तात्पर्य (जो कि साक्षात जगत की वस्तुओं से संबन्ध रखता है) पाया जाता है बरन भीतरी तात्पर्य भी (जो कि स्वर्गीय और आत्मीय वस्तुओं से संबन्ध रखता है) पाया जाता है। यह विशेषभाव केवल संयुक्त हुए वाक्यों ही का नहीं है

आर्काना सोलेस्टिया नामक पोथी से।

१ कल्पान्त अर्थात कलीसिया का अन्तकाल। न० ४५३५ · १०४२२।

२ प्रभु के भावीकथन इन सब बातों के बारे के (अर्थात कल्पान्त और प्रभु का आगमन और कलीसिया का क्रमानुसारी विनाश और प्रलयकाल) मत्ती के २४ और २५ पर्वों में हैं। वे भावीकथन उन मज़मूनों में बयान किये गये हैं जो सृष्टि नामक पोथी के कई एक पर्वों के पूर्व हैं जैसा कि २६ और ४० पर्वों के पूर्व। देखिये न० ३३५३ से ३३५५ तक · ३४८६ से ३४८९ तक · ३६५० से ३६५५ तक · ३७५१ से ३७५७ तक · ३८९७ से ३९०१ तक · ४०५६ से ४०६० तक · ४२२९ से ४२३१ तक · ४३३२ से ४३३५ तक · ४४२२ से ४४२४ तक · ४६३५ से ४६३८ तक · ४६६१ से ४६६४ तक · ४८०७ से ४८१० तक · ४९५४ से ४९५९ तक · ५०६३ से ५०७१ तक।

बरन प्रत्येक शब्द[3] का भी है। क्योंकि धर्मपुस्तक यथार्थिक प्रतिरूपों[4] मात्र के उपाय से रची थी इस कारण कि उस के प्रत्येक वाक्य में भीतरी तात्पर्य हो। उस तात्पर्य का विशेष वर्णन आर्कोना सीलेस्टिया नामक पोथी में स्पष्ट रूप से किया गया है जिस का संक्षेप बयान ऐपोकलिप्स नामक पोथी में (जहां उज्ज्वल घोड़े का बखान है) किया गया है। प्रभु की ऊपर लिखित बातें उसी रीति पर समझना चाहिये। सूर्य कि जो अन्धकारमय होगा उस का तात्पर्य प्रेमरूपी प्रभु है[5]। चान्द से तात्पर्य श्रद्धारूपी प्रभु[6] है। तारों से तात्पर्य या तो भलाई और सचाई का या प्रेम और श्रद्धा का ज्ञान[7] समझना चाहिये। मनुष्य के पुत्र का लक्षण आकाश में प्रगट होना इस वाक्य का तात्पर्य ईश्वरीय सचाई का प्रगट होना है। जगत के रोनेवाले घरानों से तात्पर्य सचाई और भलाई की या श्रद्धा और प्रेम की समष्टि[8] है। प्रभु का आकाश के बादलों में प्रभाव और तेज के साथ आना इस वाक्य का तात्पर्य प्रभु की ईश्वरीय बात में लीन हो रहना और इस से उस का प्रकाश होना[9] है। बादलों से धर्मपुस्तक की बातों का बाहरी तात्पर्य[10]। तेज से उस का भीतरी तात्पर्य[11]। और दूतों से तुरही बजाते हुए इस का तात्पर्य स्वर्ग की प्रकाशित बातें हैं जिन से ईश्वरीय सचाई निकलती है[12]। इस से यह स्पष्ट है कि प्रभु की उन बातों का यह तात्पर्य है कि कलीसिया के अन्तकाल में जब कुछ प्रेम न होगा और इस से कुछ श्रद्धा भी न बाक़ी रहेगी तब प्रभु अपनी ईश्वरीय बात के भीतरी अर्थ खोलकर स्वर्ग के रहस्यों को प्रकाश करेगा। जो जो रहस्य कि इन पृष्ठों में प्रकाशित हुए हैं वे स्वर्ग और

---

३ धर्मपुस्तक के प्रत्येक शब्द में भीतरी या आत्मिक तात्पर्य है। न० ११४३ · १९८४ · २१३५ · २३३३ · २३९५ · २४९५ · ४४४२ · ९०४८ · ९०६३ · ९०८६ ।

४ धर्मपुस्तक यथार्थिक प्रतिरूपों मात्र के उपाय से रची है इसी लिये जो जो बातें कि उस में लिखित हैं सो आत्मिक तात्पर्य रखती हैं। न० १४०४ · १४०८ · १४०९ · १५४० · १६१९ · १६५९ · १७०९ · १७८३ · २९०० · ९०८६ ।

५ धर्मपुस्तक में सूर्य से तात्पर्य प्रेमरूपी प्रभु है इस से प्रभु पर प्रेम करना। न० १५२९ · १८३७ · २४४१ · २४९४ · ४०६० · ४६९६ · (४९९६) · ७०८३ · १०८०९ ।

६ धर्मपुस्तक में चान्द से तात्पर्य श्रद्धारूपी प्रभु है इस से प्रभु पर श्रद्धा लाना। न० १५२९ · १५३० · २४९५ · ४०६० · ४६९६ · ७०८३ ।

७ धर्मपुस्तक में तारों से तात्पर्य भलाई और सचाई का ज्ञान है। न० २४९५ · २८४९ · ४६९७।

८ घरानों से तात्पर्य सचाइयों और भलाइयों की समष्टि है इस से श्रद्धा और प्रेम की सारी वस्तुएं। न० ३८५८ · ३९२६ · ४०६० · ६३३५ ।

९ प्रभु के आगमन से तात्पर्य प्रभु का ईश्वरीय बात में रहना है और उस का प्रगट होना। न० ३९०० · ४०६० ।

१० धर्मपुस्तक में बादलों से तात्पर्य अक्षरों में की बात या अक्षरों ही का अर्थ है। न० ४०६० · ४३९१ · ५९२२ · ६३४३ · ६७५२ · ८१०६ · ८७८१ · ९४३० · १०५५१ · १०५७४ ।

११ धर्मपुस्तक में तेज से तात्पर्य ईश्वरीय सचाई है जैसा कि स्वर्ग में और जैसा कि बात के भीतरी अर्थ से पाई जाती है। न० ४८०९ · (५२९२) · ५९२२ · ८२६७ · ८४२७ · ९४२९ · १०५७४ ।

१२ तुरही से तात्पर्य स्वर्ग में की ईश्वरीय सचाई है और जो स्वर्ग में से प्रकाशित है। न० ८८१५ · ८८२३ · ८९१५। ढोल से भी यही तात्पर्य है। न० ६९७१ · ९९२६ ।

नरक के विषय हैं तथा उस जीवन के विषय हैं जो मरने के पीछे होगा। कलीसिया के लोग आज कल स्वर्ग और नरक का या मरने के पीछे जो जीवन होगा उस का बहुत थोड़ा ज्ञान सीखते हैं यद्यपि धर्मपुस्तक में इन सब बातों का पूरा बयान स्पष्ट रूप से किया गया है। तिस पर भी बहुतेरे लोग जो कलीसिया की मण्डली में भी पैदा होते हैं वे इन बातों को अङ्गीकार नहीं करते और मन में कहते हैं कि कौन पुरुष वहां से लौट आया है जो ऐसा बयान करता है। ऐसे नकारनेवाले तत्त्व को दूर करने के लिये (जो कि प्रपञ्चासक्त ज्ञानियों के मध्य फैला हुआ है कि ऐसा न हो कि वह उन सीधे सच्चे लोगों के दिलों को और उन की श्रद्धा को बिगाड़े) मुझे यह शक्ति दी गई थी कि मैं तेरह बरसों तक दूतों के साथ मित्र बनके उन से बात करता रहा (जैसा कि मनुष्य एक दूसरे से आपस में किया करते हैं) और उन वस्तुओं पर जो स्वर्ग और नरक में हैं दृष्टि करता रहा इस प्रयोजन से कि मैं उन का परीक्षावलम्बित बयान कर सकूं इस आशा पर कि उस बयान से अज्ञान का ज्ञान हो और अप्रतीति निकाल दी जावे। ऐसा बिचवाईरहित प्रकाशन अब किया जाता है क्योंकि प्रभु के आगमन का जो तात्पर्य है सो यह है।

प्रभु स्वर्ग का परमेश्वर है।

२। पहिले पहिल यह जानना चाहिये कि स्वर्ग का परमेश्वर कौन है क्योंकि इसी पर अन्य बातें सब की सब अवलम्बित हैं। सर्वव्यापी स्वर्ग में प्रभु को छोड़कर और दूसरा परमेश्वर नहीं माना गया। वहां तो यों कहाते हैं (और ऐसा ही हम को प्रभु ने आप शिक्षा दी है) कि "मैं और पिता एक हैं तथा मुझ में पिता हैं और मैं पिता में भी हूं तथा जो कोई मुझे देखता है वह पिता को देखता है तथा जो जो पुण्य है वह मुझ से चलता है"। (यूहन्ना पर्व १०· वचन ३०· ३८। प० १४· व० १०· ११। प० १६· व० १३· १४· १५) मैं ने बार बार दूतों से इस बारे में बात चीत की है और उन्हों ने सदा मुझ से यह कहा कि स्वर्ग में दूतगण ईश्वरीय त्रिमूर्त्ति का प्रभेद नहीं कर सकते क्योंकि वे जानते और मालूम करते हैं कि ईश्वरत्व एक ही है और वही प्रभु में एक है। और वे यह भी कहते हैं कि वे लोग जो कलीसिया के मेम्बर हैं और जिन के मन में त्रिमूर्त्ति की कल्पना जमी हुई है जब जगत से गमन करते हैं तो स्वर्ग में उन को जगह नहीं मिलती क्योंकि उन का मन आगा पीछा करके कभी एक मूर्त्ति की ओर और कभी दूसरी मूर्त्ति की ओर फिरा करता है। वहां पर यह उचित नहीं समझा जाता कि तीन का ध्यान करे और उन को एक कहे[१३]। क्योंकि स्वर्ग में हर

---

१३ परलोक में कई एक ईसाइयों की अवस्था जांची गई कि क्या प्रभु की सेवा के विषय उन का क्या मत है तो मालूम हुआ कि उन को प्रभु की त्रिमूर्त्ति का मत था। न० २३२९· ५२५६· १००३६· १००३८· १०८२१। ईश्वरतीय त्रिमूर्त्ति जो प्रभु में रहती है स्वर्ग में मानी हुई है। न० १४· १५· १७२९· २००५· ५२५६· ९३०३।

कोई अपने ध्यान के अनुसार बोलता है। वहां पर जो बोलचाल होती है सो ध्यानरूपी बोली (अर्थात ध्यानवाक) है इस से वे जो ईश्वर का त्रिमूर्त्ति का प्रभेद करके हर एक मूर्त्ति की जुदी जुदी मनोकल्पना करते हैं और प्रभु के एकत्व पर अपने मन नहीं लगाते वे इस जगत को छोड़कर स्वर्ग में जगह नहीं पा सकते। क्योंकि स्वर्ग में सभों का ध्यान सर्वव्यापी है। इस लिये जो व्यक्ति त्रिमूर्त्ति की कल्पना बांधकर एक को अङ्गीकार करता है वह शीघ्र ज्ञात हो जावेगा और निकाला जावेगा। परंतु मन में रखना चाहिये कि जिन लोगों ने भलाई से सचाई नहीं अलग की या प्रेम से श्रद्धा नहीं बिलगाई उन को परलोक में शिक्षा दी जावेगी और प्रभु के विषय में जो स्वर्गीय बोध है वह उन को स्पष्ट होगा अर्थात यह कि प्रभु सारे सृष्टिचक्र का ईश्वर है। परंतु वे लोग इन के साथ नहीं गिने जाते जो जीव से श्रद्धा अलग करके सच्ची श्रद्धा की विधियों पर नहीं चलते।

३। जो लोग कि कलीसिया के मेम्बर हैं और प्रभु के नकारनेवाले होकर केवल पिता ही को अङ्गीकार करते हैं और उसी मत में स्थिर हैं वे स्वर्ग से बाहर रहते हैं। और जब कि स्वर्ग से (जहां केवल प्रभु मात्र की पूजा की जाती है) उन को कुछ भी अन्तःप्रवाह नहीं पहुंचता इस लिये वे क्रम क्रम से किसी बात के विषय सत्यविचार करने की योग्यता से विहीन होते जाते हैं। अन्त में या तो वे गूंगे हो जाते हैं या बिलल्लेपन से बकने लगते हैं। और इधर उधर फिरा करते हैं और अपने बदन के अंगों को इस तोर पर लटकाकर चलते हैं कि मानो उन के जोड़ों में कुछ भी बल नहीं है। वे लोग जो प्रभु के ईश्वरत्व के नकारने-वाले हैं और सोसिनियन्वालों की भांति केवल उस के मनुष्यत्व को मानते हैं तो भी स्वर्ग से बाहर रहते हैं। वे तो थोड़ी दूर दाहिने हाथ की ओर चलकर एक ऐसे अथाह गड़हे में पड़ जाते हैं कि संपूर्ण रूप से उन लोगों से अलग हो जाते हैं जो खीष्टियन मण्डली से संबन्ध रखते हैं। परंतु वे लोग जो अदृश्य ईश्वरत्व को मानते हैं (कि वह ही ब्रह्माण्ड का जिलानेवाला तत्त्व है और वह ही सृष्टिचक्र का कारण है) परंतु प्रभु पर विश्वास नहीं रखते तो वे परीक्षा के बस होकर यह जान लेते हैं कि वे यथार्थ किसी ईश्वर में श्रद्धा नहीं लाते। क्योंकि अदृश्य ईश्वरत्व प्रकृति के सदृश है जो श्रद्धा और प्रेम का विषय नहीं है क्योंकि वह ध्यानगोचर नहीं है[१४]। ये लोग उन लोगों के साथी हैं जो प्रधानासक्त अर्थात नास्तिक कहाते हैं। जो लोग कलीसिया की मण्डली में जन्म नहीं लेते उन की और ही अवस्था है। वे जेण्टाइल कहाते हैं और उन के विषय में कुछ और बयान आगे किया जावेगा।

४। स्वर्ग का तिहाई भाग बच्चों से भरा है। बच्चों के मन और श्रद्धा में यह सिद्धान्त स्थापित होता है कि प्रभु हमारा पिता है और वह सब का परमेश्वर

---

१४ वह ईश्वरत्व जो ध्यानगोचर नहीं है श्रद्धागोचर नहीं हो सकता। म० ४७३३ · ५११० · (५६३३) · ६६८२ · ६६६६ · ७००४ · ७२११ · (६२६७) · ६३५६ · ६६७२ · १००६७।

भी है और इस कारण वह स्वर्ग और पृथिवी का ईश्वर है। बालबच्चे स्वर्ग में पालन पोषण पाते हैं और ज्ञान के द्वारा व्युत्पन्न हो जाते हैं यहां तक कि वे बुद्धि और ज्ञान के विषय में स्वर्गीय दूतों के बराबर हो जाते हैं जैसा कि आगे दिखाई पड़ेगा।

५। कलीसिया के मेम्बरों में इस बात के विषय कुछ भी संशय नहीं हो सकता कि प्रभु स्वर्ग का ईश्वर है क्योंकि उस ने आप यह शिक्षा दी है कि "सब वस्तुएं जो पिता के हैं सो मेरे हैं"। (मत्ती प० ११· व० २७ यूहन्ना प० १६· व० १५। प० १७· व० २)। तथा "स्वर्ग और पृथिवी पर उस का सारा अधिकार है"। (मत्ती प० २८· व० १८)। स्वर्ग और पृथिवी की बात वह इस लिये लाया क्योंकि जो स्वर्ग पर प्रभुत्व करता है वह पृथिवी पर भी प्रभुत्व करता है। क्योंकि एक दूसरे पर परस्पर अवलम्बित है[१५]। स्वर्ग और पृथिवी पर प्रभुत्व करना इस वाक्य का यह तात्पर्य है कि वह सब भलाई जो प्रेम से निकलती है और वह सारी सचाई जो श्रद्धा से उपजती है (इस से सब बुद्धि और ज्ञान और इन के द्वारा परमसुख अर्थात अनन्त जीवन) उस सब का देनेवाला प्रभु ही है। प्रभु ने हम को यह शिक्षा भी दी है कि "जो बेटे पर श्रद्धा लाता है उस का जीवन अनन्त है और जो बेटे पर प्रतीति नहीं करता वह जीवन नहीं देखेगा"। (यूहन्ना प० ३· व० ३६) तथा "पुनरुत्थान और प्राण मैं ही हूं जो मुझ पर श्रद्धा लावे यद्यपि वह मर गया हो तो भी जीयेगा और जो कोई जीता है और मुझ पर प्रतीति करता है वह कभी न मरेगा"। (यूहन्ना प० ११· व० २५· २६) फिर "पथ और सचाई और प्राण मैं हूं"। (यूहन्ना प० १४· व० ६)।

६। कोई कोई आत्माओं ने इस जगत में पिता पर श्रद्धा लाने का अभिमान किया था परंतु प्रभु का मनुष्य होना छोड़कर उन को प्रभु का और कुछ बोध न था। इस लिये उन्हों ने इस बात पर प्रतीति न की कि वह स्वर्ग का ईश्वर है। इस कारण वे इधर उधर भटकने पाए इस लिये कि वे जहां चाहें वहां जाकर पूछ लें कि प्रभु के स्वर्ग को छोड़कर कोई दूसरा स्वर्ग भी है या नहीं। उन्हों ने कई दिन तक ढूंढ़ा पर दूसरे स्वर्ग का कोई पता न पाया। ये उस भांति के लोग हैं कि जिन की समझ में स्वर्ग का परमसुख केवल तेजस और प्रभुता है। क्योंकि जो चाव उन की थी उस को वे भोग न कर सकें तिस पर किसी ने उन से कहा कि स्वर्ग में ऐसी ऐसी बातें नहीं हैं तो वे इस बात पर क्रोध करके विमत होकर एक ऐसे स्वर्ग के अभिलाषी थे जहां वे औरों पर प्रभुत्व कर सकें और ऊंचे पद की कीर्त्ति जैसा कि इस जगत में पावें वहां भी पा सकें।

---

१५ सर्वव्यापी स्वर्ग प्रभु के हैं। न० २७५१· ७०८६। और सारे स्वर्ग और पृथिवी पर वह प्रभुत्व करता है। न० १६०७· १००८६· १०८२७। जब कि प्रभु स्वर्ग पर प्रभुत्व करता है वह उन वस्तुओं पर भी जो उस के अधीन हैं प्रभुत्व करता है। इस से वह जगत की सारी वस्तुओं पर प्रभुत्व करता है। न० २०२६· २०२७· ४५२३· ४५२४। नरकों को दूर करना प्रभु ही के अधीन है और पापों से बचा रखना और धर्म के पथ में चलाना और इस से मुक्ति देनी। न० १००१६।

स्वर्ग प्रभु के ईश्वरत्व का ही है।

७। दूतों का समूह स्वर्ग कहलाता है क्योंकि वे आप स्वर्ग ही हैं तो भी स्वर्ग वह ईश्वरत्व है जो प्रभु से निकलकर दूतों के बीच बहता है और वे उस अन्तःप्रवाह को अङ्गीकार कर लेते हैं जिस से सामान्य स्वर्ग और विशेषवान स्वर्ग दोनों पैदा होते हैं। प्रभु से जो ईश्वरत्व निकलता है सो प्रेम की भलाई है और श्रद्धा की सचाई भी है। इस लिये जहां तक कि वे भलाई और सचाई प्रभु से ग्रहण करते हैं वहां तक वे दूत हो जाते हैं और यथापरिमाण वे आप स्वर्ग बन जाते हैं।

८। स्वर्गों में हर कोई व्यक्ति यह जानता है कि कोई आप से आप न तो भलाई करता है न भलाई किया चाहता है। हर कोई उस बात पर प्रतीति करता है और उस को देखता भी है। इस पर भी यह ज्ञात है कि कोई आप से आप न तो सचाई पर कुछ प्रतीति करता है न सचाई का ध्यान भी करता है बरन सब कुछ ईश्वरत्व से निकलता है अतएव प्रभु से। हर कोई यह भी जानता है कि जितनी भलाई और सचाई आप से उपज आती है उतनी ही यथार्थ में भलाई और सचाई नहीं हैं क्योंकि उन में ईश्वरत्व से कुछ भी प्राणशक्ति नहीं है। भीतरी स्वर्ग में दूतगण वह अन्तःप्रवाह स्पष्ट रूप से देखते हैं। और वे यह भी जानते हैं कि जितने वे उस अन्तःप्रवाह को ग्रहण करते हैं उतने तक वे स्वर्ग में प्रवेश करते रहते हैं क्योंकि वे प्रेम और श्रद्धा में तथा बुद्धि और विज्ञता की ज्युति में उतनी दूरी तक प्रविष्ट होते हैं अर्थात स्वर्गीय आनन्द में प्रविष्ट होते हैं। जब कि ये सब गुण प्रभु के ईश्वरत्व के द्वारा होते हैं और वे दूतों को भी स्वर्ग में मिले हैं तो स्पष्ट होता है कि प्रभु का ईश्वरत्व स्वर्ग का कारण है। और न कि दूतगण अपने किसी विशेष लक्षण से स्वर्ग के कारक ठहर सकते हैं[१६]। इस कारण धर्मपुस्तक में स्वर्ग तो प्रभु का निवास और प्रभु का सिंहासन कहाता है और उस के रहनेवालों के बारे में यह कहा जाता है कि वे प्रभु में लीन हैं[१७]। परंतु ईश्वरत्व क्योंकर प्रभु से निकलकर स्वर्ग को संपन्न करता है उस का बयान हम आगे करेंगे।

---

१६ दूतगण इन बातों को अङ्गीकार करते हैं कि सारी भलाई प्रभु की ओर से है और हमारी अपने आप से कुछ नहीं तथा प्रभु जिस में अपने आप का है हमारे साथ उस में सदैव रहता है और न हमारी स्वाभाविक प्रकृति के किसी गुण में। न० ९३३८·१०१२५·१०१५१·१०१५७। इस लिये धर्मपुस्तक में दूत की बात का तात्पर्य कुछ प्रभु का है। न० १९२५·२८२१·३०३९·४०८५·८१९२·१०५२८। और इस कारण वे देवता भी कहाते हैं क्योंकि वे प्रभु से ईश्वरत्व ग्रहण करते हैं। न० ४२९५·४४०२·७२६८·७८७३·८३०१·८१९२। सारी भलाई जो सच मुच भलाई है और सारी सचाई जो सचाई है और इस कारण सारी शान्ति और प्रेम और अनुग्रह और श्रद्धा सब के सब प्रभु की ओर से हैं। न० १६१४·२०१६·२७५१·२८८२·२८८३·२८९१·२८९२·२९०४। तथा सारी विज्ञता और बुद्धि उसी की ओर से भी है। न० १०९·११२·१२१·१२४।

१७ वे जो स्वर्ग में हैं प्रभु में लीन हैं। न० ३६३७·३६३८।

९। दूतगण अपनी विज्ञता के बल इस से आगे बढ़कर यों कहते हैं कि न केवल सारी भलाई और सचाई प्रभु की ओर से है परंतु जीवन की समष्टि भी उसी की ओर से है। और वे इस बात का यह प्रमाण देते हैं कि कोई वस्तु आप से आप पैदा नहीं हो सकती बरन उस की उत्पादक कोई अन्य वस्तु है जो उस से पहिले वर्त्तमान थी। इस लिये सब वस्तुएं एक प्रथम के द्वारा होती हैं जिस को दूतगण सभों के जीव की सत्ता बोलते हैं। सब वस्तुएं इसी तौर पर बनी रहती हैं क्योंकि बना रहना और सदा होना एकसां है। और वह जो बिचवाइयों के द्वारा उस प्रथम से संबन्ध सदा नहीं रखता झट विनाश को प्राप्त होता है और संपूर्ण रूप से छितरकर अभाव को प्राप्त हो जाता है। वे यह भी कहते हैं कि जीवन की सोत केवल एक ही है और मनुष्य का जीवन एक प्रवाह है जो झट पट बन्द हो जावेगा यदि उस को उस सोत से सदा अधिक जीव न मिले। और वे कहते हैं कि प्रभु से (अर्थात जीव की अकेली सोत से) ईश्वरीय भलाई और ईश्वरीय सचाई को छोड़कर और कुछ नहीं निकलता। और जितना कि लोग उन गुणों को ग्रहण करते हैं उतना ही उन पर उन गुणों का प्रभाव होता है। अतएव स्वर्ग उन में है जो उन गुणों को श्रद्धा और सचाई के साथ ग्रहण करते हैं। परंतु वे जो उन गुणों को नकारते हैं (अर्थात ईश्वरीय भलाई और ईश्वरीय सचाई दबाते हैं) उन का नरक बनता है क्योंकि वे भलाई की बुराई करते हैं और सत्य का झूठ बनाते हैं इस लिये जीव की मृत्यु हुई। जीव की समष्टि प्रभु की ओर से है। इस बात का प्रमाण दूतगण इस विचार से करते हैं कि जगत की सब वस्तुएं भलाई और सचाई से संबन्ध रखती हैं अतएव मनुष्य की इच्छा का जीव (अर्थात उस के प्रेम का जीव) भलाई से संबन्ध रखता है। और मनुष्य की बुद्धि का जीव (अर्थात उस की श्रद्धा का जीव) सचाई से संबन्ध रखता है। और जब कि सारी भलाई और सचाई स्वर्ग में से उतरती है तो निश्चय करके जीव की समष्टि भी स्वर्ग से उतरती है। इस कारण कि दूतगण इस पर प्रतीति करते हैं इस से जो जो भलाई वे करते हैं उस का धन्यवाद अपने ऊपर लेने से नाहीं करते हैं बरन जब कोई उन को किसी भलाई का कारण कहता है तब वे क्रोध करके दूर जाते हैं। वे इस पर अचम्भा करते हैं कि क्योंकर लोग अपने आप को ज्ञानी समझते हैं और आप अपनी ओर से भला करते हैं। जो भलाई कि कोई अपने निमित्त करता है सो भलाई नहीं कहलाता क्योंकि उस में स्वार्थ का दोष रहता है। पर भलाई करना भलाई होने ही के अर्थ दूतों की समझ में ईश्वरत्व की भलाई है। और वे कहते हैं कि इस भलाई का स्वर्ग है क्योंकि यह भलाई प्रभु ही है तो सही[१८]।

१०। वे आत्मा जो जगत में रहते हुए इस बात पर प्रतीति रखते हैं कि जो भलाई हम करते हैं और जो सचाई कि हम मानते हैं सब की सब हम ही

---

१८ जो भलाई प्रभु की ओर से है उस में प्रभु आप रहता है परंतु जो भलाई किसी विशेषत्व अर्थात स्वाभाविक प्रकृति की ओर से है उस में प्रभु नहीं है। न० १८०२ · ३९५१ · ८४८० ।

से प्रगट होती है और हमारी प्रकृति से संबन्ध रखती हैं वे आत्मा स्वर्ग में नहीं प्रवेश करते। (और इसी प्रतीति पर वे सब चलते हैं जो अपने भले कामों को गुणवान मानते हैं और अपने आप को साधुत्व के कारक ठहराते हैं)। दूतगण ऐसे आत्माओं को मूर्ख और चोर जानकर उन से अलग रहते हैं। मूर्ख क्योंकि वे आत्मा ईश्वरत्व को छोड़कर सदैव अपने आप को देखते हैं और चोर क्योंकि वे प्रभु की शक्ति को चुराके अपनी कर लेते हैं। इस लिये ऐसे आत्मा स्वर्गीय श्रद्धा से विरुद्ध हैं क्योंकि वह श्रद्धा यह है कि प्रभु का ईश्वरत्व जो दूतगण पाते हैं सो वह आप ही स्वर्ग है।

११। वे जो स्वर्ग और कलीसिया में हैं प्रभु में रहते हैं और प्रभु उन में रहता है। क्योंकि प्रभु आप यह कहता है कि "मुझ में स्थायी रहो और मैं तुम में। जिस तरह कि डाली आप से फल नहीं ला सकती मगर जब कि वह अंगूर के वृक्ष में लगी हो इसी तरह तुम भी नहीं मगर जब कि मुझ में स्थायी हो। अंगूर का वृक्ष मैं हूं तुम डालियां हो। वह जो मुझ में लगा स्थायी रहता है और मैं उस में वही बहुत फल लाता है। क्योंकि मुझ से रहित तुम कुछ नहीं कर सकते"। (यूहन्ना पर्व १५ वचन ४ · ५)।

१२। पस इस से स्पष्ट है कि प्रभु अपने में स्वर्ग के दूतों के संग रहता है इस लिये प्रभु स्वर्ग की समष्टि है। क्योंकि वह भलाई जो प्रभु की ओर से निकलती है प्रभु आप दूतगणसहित है। किस वास्ते कि जो कुछ प्रभु की ओर से है सो प्रभु आप है। इसी कारण प्रभु की भलाई दूतों के लिये स्वर्ग है न कि स्वर्ग दूतों के किसी विशेष गुण से विद्यमान होता है।

प्रभु का ईश्वरत्व स्वर्ग में प्रभु से प्रेम रखना है और पड़ोसियों पर अनुग्रह करना।

१३। प्रभु से जो ईश्वरत्व बहता है सो ईश्वरीय सचाई कहलाता है। इस का हेतु हम आगे बयान करेंगे। यह ईश्वरीय सचाई प्रभु की ओर से उस के ईश्वरीय प्रेम के द्वारा स्वर्ग के भीतर बहती है। क्योंकि ईश्वरीय प्रेम और ईश्वरीय सचाई जो उस सचाई से निकलते हैं एक एक करके सूर्य की आग के और सूर्य की ज्योति के सदृश हैं अर्थात प्रेम तो सूर्य की आग के तुल्य है और सचाई सूर्य की ज्योति के सदृश है। आग तो प्रतिरूपता से प्रेम भी दिखाती है और ज्योति वह सचाई दिखाती है जो प्रेम से निकलती है[१९]। इसी हेतु जो ईश्वरीय

---

१९ धर्मपुस्तक में आग का तात्पर्य या तो स्वर्गीय प्रेम है या नरकीय प्रेम। न० ९३४ · ४९०६ · ५२१५। ईश्वरसंबन्धी और स्वर्गीय आग का तात्पर्य ईश्वरीय प्रेम है और उस प्रेम की प्रत्येक इच्छा। न० ९३४ · ६३१४ · ६८३२। ज्योति का तात्पर्य वह सचाई है जो प्रेम की भलाई से निकलती है क्योंकि स्वर्ग में ज्योति ईश्वरीय सचाई है। न० (३३९५) · ३४८५ · ३६३६ · ३६४३ · ३९९३ · ४३०२ · ४४१३ · ४४१५ · ९५४८ · ९६८४।

सचाई प्रभु के ईश्वरीय प्रेम की ओर से निकलती है यथार्थ में ईश्वरीय भलाई ईश्वरीय सचाई से संयुक्त है। और इस कारण कि वह इस तौर पर संयुक्त है इसी हेतु वह स्वर्ग की सब वस्तुओं को जिलाती है जैसा कि सूर्य की गरमी ज्योति से संयुक्त होकर वसन्त और गरमी के मौसिम में पृथिवी की सब वस्तुओं को फलवान कर देती है। जब गरमी ज्योति से संयुक्त नहीं है और उस कारण ज्योति ठंठी है तो ऐसा नहीं होता। क्योंकि उस काल सब वस्तुएं ठिठरी और निर्जीव रहती हैं। वह ईश्वरीय भलाई जो गरमी से उपमा दी जाती है प्रेम की भलाई दूतगण के साथ है। और दूतगण ईश्वरीय सचाई की ओर से जो ज्योति से उपमा दी जाती है उस प्रेम की भलाई को ग्रहण करते हैं।

१४। वह ईश्वरत्व जो स्वर्ग में है बरन आप स्वर्ग का कारक है प्रेम ही है क्योंकि प्रेम आत्मीय संयोग है। प्रेम तो प्रभु और दूतगण का और दूतगण का आपस में संयोग करता है। और प्रेम के द्वारा उन का आपस में का संयोग प्रभु की समझ में उन सब का एक ही कर देता है। तिस पर प्रेम तो जीव का मूल ही मूल है इस लिये जीव प्रेम से बहकर निकलता है चाहे मनुष्यों में चाहे दूतों में। यदि कोई सोच विचारकर ध्यान करे तो उस को यह मालूम हो जावेगा कि प्रेम मनुष्य के जीव के प्रधान तत्त्व की जड़ है। क्योंकि प्रेम के होने से मनुष्य गरमी मालूम करता है और प्रेम के न होने से वह ठंठक पाता है और प्रेम के अभाव में मनुष्य मर जाता है[२०]। यह बात भी मन में रखने के योग्य है कि प्रत्येक मनुष्य के जीव का स्वभाव उस के प्रेम के स्वभावानुसार है।

१५। स्वर्ग में प्रेम दो भिन्न भिन्न प्रकार का है एक तो प्रेम प्रभु के साथ दूसरा प्रेम पड़ोसियों के साथ। प्रभु की ओर का प्रेम सब से भीतरी स्वर्ग में अर्थात तीसरे स्वर्ग में व्यापता है। और पड़ोसी की ओर का प्रेम मझले स्वर्ग में अर्थात दूसरे स्वर्ग में व्यापता है। परंतु दोनों प्रेम प्रभु की ओर से आ निकलते हैं और स्वर्ग दोनों का बना है। इन दो प्रेम की भिन्नता और इन की संयुक्ति की विधि दोनों स्वर्ग में ऐसी रीति से दिखाई देती हैं जैसा कि स्वच्छ ज्योति में। परंतु जगत में ऐसा जैसा कि अन्धकार में। स्वर्ग में प्रभु से प्रेम करना यह नहीं कि उस को रूपवान जानके प्रेम करना बरन उस भलाई को प्रेम करना जो प्रभु की ओर से है यह प्रेम का तात्पर्य है। और भलाई को प्यार करना यह है कि हृदय की अभिलाष से और प्रेम ही के निमित्त भले कामों का करना। इसी तौर पड़ोसी के प्यार करने से यह तात्पर्य नहीं है कि उस के शरीर का प्यार करना और उस के पास बैठना। परंतु वह उस सचाई का प्यार करना है जो धर्मपुस्तक की ओर से है। और सचाई से प्रेम करने का तात्पर्य यह है कि सचाई की अत्यभिलाषा करके सचाई का काम करना। इस से यह स्पष्ट होता है कि

---

२० प्रेम जीव की आग है और जीव आप यथार्थ में प्रेम से निकलता है। न० ४९०६ · ५०७१ · ६०३२ · ६३१४।

भलाई और सचाई के सदृश ये दो प्रेम भी भिन्न भिन्न हैं और ये भलाई के समान सचाई से संयोग रखते हैं[२१]। परंतु ये बातें उन लोगों की समझ में आनी कठिन हैं जिन्हें प्रेम और भलाई के स्वभाव का ज्ञान नहीं है और जो उचित रीति से पड़ोसी की बात नहीं समझते[२२]।

१६। मैं ने कभी कभी दूतों से इस बारे में बात चीत की। और वे अचम्भित होकर कहने लगे कि क्या कलीसिया के मेम्बर इस बात को नहीं जानते कि प्रभु से और पड़ोसी से प्रेम करना ऐसा है जैसा कि भलाई और सचाई से प्रेम करना है और उन गुणों का प्रेम हृदय से करना। जब कि वे यह जानते होंगे कि प्रत्येक मनुष्य किसी से अपने प्रेम का प्रकाश अपनी अभिलाषा से करता है और जिस पर आसक्त हो अपनी इच्छा के अनुसार काम करता है क्योंकि इस तौर पर प्रेम का प्रतिफल और परस्पर संयोग्य हो सकते हैं। किसी को प्यार करना पर उस की रुचि के अनुसार न चलना परस्पर संयोग पैदा नहीं करता बरन यथार्थ में प्यार करना नहीं कहलाता। कलीसिया के मेम्बर इस बात भी को जानें कि जो भलाई कि प्रभु की ओर से है मानों उस की प्रतिमूर्त्ति है क्योंकि वह उस में विद्यमान है और वे मेम्बर प्रभु की भी प्रतिमूर्त्ति हैं और उस से संयुक्त हैं जो अभिलाषा से और चाल चलन से भलाई और सचाई को अपनाते हैं। इच्छा करने का तात्पर्य किसी कार्य के करने की इच्छा करना है और प्रभु अपनी धर्मपुस्तक में वही शिक्षा बताता है जैसा कि "जिस के पास मेरी आज्ञाएं हैं और जो उन पर चलता है वह मुझ से प्रेम करता है और मैं उस को प्यार करूंगा और उस को अपने तईं प्रगट करूंगा"। (यूहन्ना पर्व १४ वचन २१)। फिर "यदि तुम मेरी आज्ञाओं पर काम करो तो तुम मेरे प्रेम में स्थायी रहोगे"। (यूहन्ना पर्व १५ वचन १०)।

१७। सारी स्वर्गीय परीक्षा से प्रमाणित होता है कि प्रभु का ईश्वरत्व जो दूतों पर असर करता है और स्वर्ग को पैदा करता है प्रेम आप है। क्योंकि वहां सब के सब प्रेम और अनुग्रह के रूप हैं। उन की सुन्दरता अकथनीय है और उन के चिहरों से और बोलचाल से और व्यवहारों की सूक्ष्म ही सूक्ष्म बात से प्रेम चमक-कर किरण देता है[२३]। क्योंकि प्रत्येक दूत से और प्रत्येक आत्मा से जीवनशक्ति

---

२१ प्रभु से और पड़ोसी से प्रेम करना प्रभु की आज्ञानुसार जीना है। न० १०१४३ • १०१५३ • १०३१० • १०५७८ • १०६४८।

२२ पड़ोसी से प्रेम करने का यह तात्पर्य नहीं है कि उस के शरीर का प्यार करना होवे बरन उस वस्तु का प्यार करना जो उस पड़ोसी से संबन्ध रखता है और जिस का वह है अर्थात सचाई और भलाई। न० ५०२८ • १०३३६। वे जो शरीर का प्यार करते हैं पर जिस का पड़ोसी है अर्थात पड़ोसी संबन्धी वस्तु का प्यार नहीं करते वे बुराई और भलाई से एकसां प्रेम करते हैं। न० ३८२०। सचाई की इच्छा करना और सचाइयों ही के निमित्त सचाई के पथ में चलना अनुग्रह करने के लक्षण हैं। न० ३८७६ • ३८७७। पड़ोसी पर अनुग्रह करना यह है कि प्रत्येक काम में और प्रत्येक व्यवहार में उस के साथ कृपा करके चाल चलना और न्याय की दृष्टि रखना और धर्माचार को काम में लाना। न० ८१२० • ८१२१ • ८१२२।

२३ दूतगण प्रेम और अनुग्रह के रूप हैं। न० ३८०४ • ४७३५ • ४७६७ • ४६८५ • ५१६६ • ५५३० • ६८७६ • १०१७७।

के आत्मीय मण्डल उत्पन्न होते हैं जो उन के चारों ओर घेरते हैं और जिन से इन के प्रेमों का गुण कभी कभी बहुत दूर तक जान पड़ता है। ये मण्डल प्रेम की फुरती से बहकर उत्पन्न होते हैं इस से मन के ध्यान से उपज आते हैं या यों कहो कि प्रेम की जीवनशक्ति से निकलते हैं और इस से प्रत्येक व्यक्ति की श्रद्धा से। जो मण्डल दूतगण की ओर से प्रकाशित होते हैं इतने प्रेम से पूरित हैं कि उन का प्रभाव प्रत्येक आसपासवाली व्यक्ति के वास्तविक जीव पर होता है। मैं ने आप कभी कभी उन मण्डलों को मालूम किया और मुझ पर भी उन का प्रभाव बहुत हुआ[२४]। प्रेम वही तत्त्व है कि जिस से दूतगण अपनी जीवनशक्ति को पाते हैं। यह स्पष्ट है क्योंकि स्वर्गलोक में प्रत्येक व्यक्ति अपने प्रेम के अनुसार इधर उधर फिरता है। जो व्यक्तिएं कि प्रभु पर और अपने पड़ोसी पर अपना प्रेम लगाती हैं वे प्रभु की ओर सदैव मुंह फेरते हैं परंतु वे जो अपने आप को प्यार करती हैं शरीर की प्रत्येक गति में प्रभु की ओर सदैव पीठ करती हैं। क्योंकि स्वर्गलोक में जगहें और दिशाएं निवासियों के अन्तर्भाग की अवस्था के अनुसार जान पड़ती हैं। वे एक ही ठौर पर नहीं रहतीं जैसा कि पृथिवी में रहती हैं परंतु निवासियों के मुंह की टकटका के अनुसार उन की दिशा ठहराई जाती है। तिस पर भी यह ध्यान न करना चाहिये कि दूतगण आप प्रभु की ओर अपने तईं फिराते हैं क्योंकि प्रभु आप अपनी ओर उन को फिराता है जो उस की बात के अनुसार मन से चलते हैं[२५]। परंतु हम इस प्रसङ्ग का अधिक बयान उस समय करेंगे जब हम स्वर्गलोक का दिशाओं का वर्णन करेंगे।

• १८। स्वर्ग में प्रभु का ईश्वरत्व प्रेम है क्योंकि प्रेम स्वर्ग की सब वस्तुओं का पात्र है। वे ये ई हैं शान्ति बुद्धि ज्ञान और आनन्द। क्योंकि प्रेम उन सब वस्तुओं को ग्रहण करता है चाहे कितनी ही सूक्ष्म क्यों न हों जो उस से योग्यता रखती हैं। वह उन को चाहता है उन को ढूंढ़ता है और उन को शीघ्र चूस लेता है। क्योंकि वह सदैव अपनी अधिकता और संपूर्णता की इच्छा करता है[२६]। मनुष्य वह बात संपूर्ण रूप से जानता है क्योंकि मनुष्य का प्रेम मानों मनुष्य के स्मरण से उन सब वस्तुओं को जो प्रेम से योग्यता रखती हैं जांचता है और अपनी ओर खींचता है और वह उन वस्तुओं को एकट्ठा करके अपने में और अपने तले यथा-क्रम ठीक करता है। अपने में इस लिये कि वे प्रेम की वस्तुएं कहलावें और अपने

---

२४ आत्मीय मंडल जो कि जीवनशक्ति का मण्डल है प्रत्येक मनुष्य और आत्मा और दूत में बहकर फैल जाता है और हर एक को घेर लेता है। न० ४४६४ • ५१७९ • ७४५४ • ८६३०। यह मण्डल प्रेम की फुरती से बहता है इस निमित्त मन के ध्यान से। न० २४८९ • ४४६४ • ६२०६।

२५ आत्मा और दूतगण अपने अपने प्रेमों की ओर सदैव मुंह फेरते हैं और वे जो स्वर्ग में हैं सदैव प्रभु की ओर मुंह फेरते हैं। न० १०१३० • १०१८९ • १०४२० • १०७०२। स्वर्गलोक में मुंह की टकटकी के अनुसार दिशाएं होती हैं और उस के द्वारा ठहराई जाती हैं परंतु पृथिवी में वह और ही है। न० १०१३० • १०१८९ • १०४२० • १०७०२।

२६ प्रेम में असंख्य वस्तुएं समाती हैं क्योंकि प्रेम उन सब वस्तुओं को जो उस से योग्यता रखती हैं ग्रहण कर लेता है। न० २५०० • २५७२ • ३०७८ • ३१८९ • ६३२३ • ७४९० • ७७५०।

तले इस कारण कि वे प्रेम के अधीन हों। परंतु और सब वस्तुएं जो प्रेम से योग्यता नहीं रखतीं वह उन को ग्रहण नहीं करता बरन उन का विनाश कर डालता है। प्रत्येक मानसिक शक्ति जो उन सचाइयों को ग्रहण करती है जिन से योग्यता है और जिन से संयोग का इच्छा है प्रेम में गुप्त रहती है। वह बात उन के द्वारा स्पष्ट होता है जो स्वर्गबासी हो जाते हैं। क्योंकि यद्यपि इस जगत में वे लोग भोले से हुए हों तो भी स्वर्ग में दूतगण के साथ रहकर वे दूतविषयक ज्ञान पाते हैं और उन को स्वर्गीय आनन्द मिलता है। क्योंकि उन्हों ने भलाई और सचाई को भलाई और सचाई ही के निमित्त प्यार किया था और उन गुणों को अपने जीवन में जगह दी थी। इस कारण वे स्वर्ग के और स्वर्ग के अकथनीय आनन्द के पानेवाले हो गये। परंतु वे लोग जो अपने आप को और जगत को प्यार करते हैं स्वर्गीय वस्तुओं को पा नहीं सकते क्योंकि वे उन गुणों से घिण करते हैं उन को अस्वीकार करते हैं और उन के पहिले ही अन्तःप्रवाह के लगने पर उन से भागते हैं और उन नरक के रहनेवालों से मिलाप रखते हैं जिन का प्रेम उन लोगों के प्रेम के समान है। कोई कोई आत्मा जो इस बारे में संशय करनेवाले थे कि स्वर्गीय प्रेम में वह शक्ति गुप्त रहती है और जो सत्य के अभिलाषी थे वे स्वर्गीय प्रेम में प्रवेश करने पाए (उन के रोकनेवाले तत्त्व कुछ काल तक अलग किये गये थे) और वे कुछ दूर तक आगे बढ़ाए गये थे वहां तक कि जहां दूतसंबन्धी स्वर्ग है। उन्हों ने मुझ से यह कहा कि वहां से कुछ दूरी पर अधिक भीतरी आनन्द दिखाई दिया कि जिस का बयान अकथनीय है। तब तो उन्हों ने हाय हाय पुकारकर यह कहा कि हाय हम अपनी पहिली अवस्था को फिर प्राप्त करेंगे। अन्य आत्मा भी स्वर्ग में उठाए गये और ज्यों ज्यों वे अधिक भीतर या उच्चपद तक बढ़ते जाते थे त्यों त्यों अधिक बुद्धि और ज्ञान उन के होते जाते थे यहां तक कि वे कई एक बातें समझाने लग गये जो पहिले उन की समझ से बाहर थीं। इस कारण स्पष्ट है कि वह प्रेम जो प्रभु की ओर से है स्वर्ग का और स्वर्ग में की सब वस्तुओं का पात्र है।

१९। प्रभु से और पड़ोसी से प्रेम करने में सारी ईश्वरीय सचाइयें समाती हैं जो कि प्रभु की निज बातों से उन दो प्रकार के प्रेमों के बारे में स्पष्ट है अर्थात "प्रभु को जो तेरा ईश्वर है अपने सारे दिल और अपनी सारी जान और अपनी सारी समझ से प्यार कर। पहिली और बड़ी आज्ञा यही है। और दूसरी उस के समान है कि तू अपने पड़ोसी को ऐसा प्यार कर जैसा आप को। इन्हीं दो आज्ञाओं पर सारा धर्म और सब भावबोक्ताओं की बातें अवलम्बित हैं"। (मत्ती पर्व २२ वचन ३७ से ४० तक)। धर्म और भावीवक्ताओं की बातें सारा ईश्वरीय वचन है और इस लिये सारी ईश्वरीय सचाई है।

स्वर्ग में दो राजों की भिन्नता है।

२०। स्वर्ग में असंख्य भांति भांति के प्रभेद हैं। कोई सभा और कोई दूत

एक दूसरे से ठीक ठीक सदृशता नहीं रखता[२७]। परंतु स्वर्ग की समष्टि का (साधारणत्व और विशेषता और परिच्छेद के अनुसार) तीन प्रकार का प्रभेद है। साधारणत्व के अनुसार स्वर्ग के दो राज हैं विशेषता के अनुसार उस के तीन भांति के स्वर्ग हैं परिच्छेद के अनुसार उस के असंख्य सभाएं हैं। हम क्रम करके हर एक का भिन्न भिन्न बयान करेंगे।

साधारण भागों का नाम इस वास्ते राज रखा कि स्वर्ग परमेश्वर का राज कहलाता है।

२१। कोई कोई दूत अपने अपने भीतरी पथ से प्रभु का ईश्वरत्व अधिक पाते हैं और कोई कोई न्यून। वे जो भीतरी पथ से अधिक ग्रहण करते हैं स्वर्गीय दूतगण कहलाते हैं और वे जो भीतरी पथ से न्यून ग्रहण करते हैं आत्मीय दूतगण कहाते हैं। इस कारण स्वर्ग के दो राज हैं एक तो स्वर्गीय राज है दूसरा आत्मीय राज[२८]।

२२। वे दूतगण कि जिन का स्वर्गीय राज बना है प्रभु का ईश्वरत्व अपने भीतरी पथ से अधिक पाते हैं। इस कारण वे भीतरवाले और उत्तमतर दूत कहलाते हैं। इस निमित्त वे स्वर्ग कि जिन में वे रहते हैं भीतरवाले और उत्तमतर स्वर्ग कहलाते हैं[२९]। वे उत्तमतर और अधरतर इस वास्ते कहाते हैं कि भीतरी और बाहिरी वस्तुएं भी इसी तौर से कहलाती हैं[३०]।

२३। वह प्रेम कि जिस में वे रहते हैं जिन का स्वर्गीय राज बना है स्वर्गीय प्रेम कहलाता है। और वह प्रेम कि जिस में वे रहते हैं जिन का आत्मीय राज बना है वह आत्मीय प्रेम कहलाता है। स्वर्गीय प्रेम का तात्पर्य प्रभु से प्रेम करना है और आत्मीय प्रेम का तात्पर्य पड़ोसी पर अनुग्रह करना है। सारी भलाई प्रेम की ओर से है क्योंकि वह विषय कि जिस से कोई व्यक्ति प्रेम करता है वह उस व्यक्ति की समझ में भलाई है। इस लिये एक राज की भलाई स्वर्गीय भलाई

---

२७ भिन्नता असंख्य है और एक वस्तु किसी दूसरी वस्तु से पूरा सदृश नहीं है। न० ७२३६ • ९००२। स्वर्गों में असंख्य प्रभेद हैं। न० ६८४ • ६९० • ३७४४ • ५५९८ • ७२३६। और वे प्रभेद भलाई के प्रभेद हैं। न० ३७४४ • ४००५ • ७२३६ • ७८३३ • ७८३६ • ९००२। इस लिये स्वर्ग में की सब सभाएं और प्रत्येक सभा में का प्रत्येक दूत ये सब के सब एक दूसरे से भिन्न भिन्न हैं। न० ६९० • ३२४१ • ३५१९ • ३८०४ • ३९८६ • ४०६७ • ४१४९ • ४२६३ • ७२३६ • ७८३३ • ७८३६। परंतु तिस पर भी प्रभु के प्रेम के द्वारा सब के सब एक ही गिने जाते हैं। न० ४५७ • ३९८६।

२८ सर्वव्यापी स्वर्ग के दो राज हैं एक तो स्वर्गीय राज दूसरा आत्मीय राज। न० ३८८७ • ४१३८। स्वर्गीय राज के दूतगण प्रभु का ईश्वरत्व अपने अभिलाषी इन्द्रिय से ग्रहण करते हैं इस लिये वे आत्मीय दूतगण की परीक्षा अपने भीतरी पथ से अधिक पाते हैं क्योंकि आत्मीय दूतगण उस ईश्वरत्व को अपनी बुद्धि ही के द्वारा स्वीकार करते हैं। न० ५११३ • ६३६७ • ८५२१ • ९९३६ • ९९९५ • २०१२८।

२९ वे स्वर्ग जिन का स्वर्गीय राज बना है उत्तमतर कहलाते हैं और वे जिन का आत्मीय राज है अधरतर कहाते हैं। न० १००६८।

३० भीतरवाली वस्तुएं उत्तमतर कहलाती हैं और उत्तम वस्तुएं भीतर की हैं। न० २१४८ • ३०८४ • ४५९९ • ५१४६ • ८३२५।

कहलाती है और दूसरे राज की आत्मीय भलाई। इस से स्पष्ट है कि इन दो राज का प्रभेद है जैसा कि प्रभु से प्रेम रखने की भलाई का और पड़ोसी पर अनुग्रह करने की भलाई का प्रभेद है[३१]। और जब कि प्रेम की भलाई भीतरी भलाई है और प्रभु का प्रेम भीतरी प्रेम है इस वास्ते स्वर्गीय दूतगण भीतरवाले दूतगण हैं और वे उत्तमतर कहलाते हैं।

२४। स्वर्गीय राज तो प्रभु का पुरोहितसंबन्धी राज भी कहाता है और धर्मपुस्तक में वह उस का वास कहलाता है। और आत्मीय राज तो प्रभु का राजकीय राज कहाता है और धर्मपुस्तक में वह उस का सिंहासन कहलाता है। जगत में प्रभु ईश्वरीय-स्वर्गत्व के कारण यीशू कहलाता है और ईश्वरीय-आत्मत्व के कारण खीष्ट कहलाता है।

२५। प्रभु के स्वर्गीय राज में जो दूतगण रहते हैं विज्ञता और प्रताप में उन दूतों से बहुत बढ़कर हैं जो प्रभु के आत्मीय राज में रहते हैं क्योंकि वे प्रभु के ईश्वरत्व को अपने भीतरी पथ से अधिक पाते हैं इस कारण कि वे उस से प्रेम करते हैं और इस हेतु से वे उस के पास पास और अधिक समीप लगे रहते हैं[३२]। वह गुण स्वर्गीय दूतों का है क्योंकि वे ईश्वरीय सचाई को बिचवाई के विना अपने जीव में ग्रहण करते हैं। न कि पूर्वसुध में और ध्यान में आत्मीय दूतों के तौर पर। इस लिये वे उन सचाइयों को अपने हृदय पर लिख छोड़ते हैं और उन को समझते हैं और उन को अपने आप में देखते हैं पर वे उन के बारे में कभी भी नहीं विवाद करते कि क्या ये सचाइयें हैं या नहीं[३३]। वे उन लोगों के सदृश हैं जिन का बयान यर्मीयाह की पोथी में है कि "मैं अपने धर्म को उन के भीतर रखूंगा और उन के हृदय पर उस को लिखूंगा। वे फिर अपने अपने पड़ोसी और अपने अपने भाई को यह कहकर न सिखावेंगे कि प्रभु को पहचानो क्योंकि छोटे से बड़े तक वे सब मुझे जानेंगे"। (पर्व ३१ वचन ३३ · ३४)। और ईसायाह की पोथी में वे "यीहोवाह के सिखाए हुए" कहलाते हैं। (पर्व ५१ वचन १३)। वे जिन्हों ने यीहोवाह से शिक्षा पाई है वे वेई भी हैं जो प्रभु से शिक्षा पाते हैं। वही शिक्षा प्रभु आप देता है यूहन्ना की पोथी में पर्व ६ वचन ४५ · ४६ देखो।

२६। हम ऊपर कह चुके हैं कि स्वर्गीय दूतगण बाक़ी सब से बढ़कर अधिक विज्ञता और प्रताप रखते हैं क्योंकि वे अपने जीव में ईश्वरीय सचाई को बिच-

---

३१ स्वर्गीय राज की भलाई प्रभु से प्रेम रखने की भलाई है और आत्मीय राज की भलाई पड़ोसी पर अनुग्रह करने की भलाई है। न० ३६६१ · ६४३५ · ६४६८ · ६६८० · ६६८३ · ६७८०।

३२ स्वर्गीय दूतगण आत्मीय दूतगण की अपेक्षा कहीं बढ़कर ज्ञानी हैं। न० २७१८ · ६६६५। स्वर्गीय दूतगण की और आत्मीय दूतगण की क्या भिन्नता है। न० २०८८ · २६६६ · २७०८ · २७१५ · ३२३५ · ३२४० · ४७८८ · ७०६८ · ८५२१ · ६२७७ · १०२६५।

३३ स्वर्गीय दूतगण श्रद्धा की सचाइयों के बारे में विवाद नहीं करते क्योंकि वे उन को अपने आप में देख सकते हैं परंतु आत्मीय दूतगण उन के बारे में विवाद करते हैं कि क्या यह यों है या नहीं। न० २०२ · ३३७ · ५९७ · ६०७ · ७८४ · ११२१ · १३४८ · (१३९८) · १९१९ · ३२४६ · ४४४८ · ७६८० · ७८७७ · ८७८० · ९२७७ · १०७८६।

बाई के विना ग्रहण करते हैं। इस के बदले कि उन को याददाश्ती में रख छोड़ें और पीछे से सोच विचार करें कि क्या वे वस्तुत सचाइयें हैं या नहीं। वे उन सचाइयों को सुनते ही उन की इच्छा करके कार्य करते हैं। जिन दूतगण का वैसा स्वभाव होता है वे प्रभु की ओर से अन्तःप्रवाह के द्वारा झट पट जानते हैं कि जो बात कि उन्हों ने सुनी वह सचाई है कि नहीं? क्योंकि प्रभु आप क्षणमात्र मनुष्य के मन के भीतर बिचवाई के विना बहकर प्रवेश करता है परंतु वह मनुष्य के ध्यान के भीतर बिचवाई के द्वारा प्रवेश करता है। या यों कहो कि प्रभु भलाई के भीतर बिचवाई के विना बहकर प्रवेश करता है और सचाई के भीतर बिचवाई के द्वारा भलाई के पथ से प्रवेश करता है[३४]। क्योंकि भलाई वह है जो संकल्पशक्ति में होकर काम में आती है और सचाई वह है जो स्मरण में होकर ध्यान में आती है। सच तो है कि त्यों ही सारी सचाई की भलाई हो जाती है और प्रेम में स्थायी रहती है ज्यों ही वह संकल्पशक्ति में प्रवेश करती है। परंतु जब तलक सचाई स्मरण में होकर ध्यान में आया करती है उस की भलाई नहीं हो जाती न तो वह जीती है और न मनुष्य के योग्य है। क्योंकि मनुष्य तो पहिले पहल संकल्पशक्ति के कारण मनुष्य होता है और फिर बुद्धि के कारण। न कि बुद्धि के कारण संकल्पशक्ति के विना[३५]।

२७। जब कि स्वर्गीय राज के दूतगण की और आत्मीय राज के दूतगण की इतनी भिन्नता होती है तो उस कारण सब दूतगण न तो एक जगह में रहते हैं न आपस में मेल मिलाप करते हैं। परंतु उन में अन्योन्य संसर्ग बीचवाली दूतसंबन्धी सभाओं के द्वारा (जो स्वर्गीय-आत्मीय सभाएं कहलाती हैं) होता चला जाता है और उन सभाओं के द्वारा स्वर्गीय राज आत्मीय राज के भीतर बहकर प्रवेश

---

३४ प्रभु का अन्तःप्रवाह भलाई में प्रवेश करता है और भलाई के पथ से सचाई में। न कि सचाई के पथ से भलाई में प्रवेश करता है। इस तौर वह इच्छा करने में प्रवेश करता है और इच्छा करने के पथ से समझ में। न कि समझ के पथ से इच्छा में। न० ५४८२ • ५६४९ • ६०२७ • ८६८५ • ८७०१ • १०१५३।

३५ मनुष्य का मन उस के जीव का सारांश है और वह प्रेम की भलाई का पात्र है। और बुद्धि उस जीव की सत्ता है जो मन से होती है और वह श्रद्धा की सचाई और भलाई का पात्र है। न० ३६१९ • ५००२ • ९२८२। इस लिये मन का जीव मनुष्य का प्रधान जीव है और बुद्धि का जीव उस से निकलता है। न० ५८५ • ५९० • ३६१९ • ७३४२ • ८८८५ • ९२८२ • १००७६ • १०१०९ • १०११०। वे वस्तुएं जो मन आप ग्रहण करता है जीव के तत्त्व हो जाती हैं और वे मनुष्य से ग्रहण की जाती हैं। न० ३१६१ • ९३८६ • ९३९३। क्योंकि मनुष्य अपने मन के द्वारा मनुष्य होता है पीछे अपनी बुद्धि के द्वारा। न० ८९११ • ९०६९ • ९०७१ • १००७६ • १०१०९ • १०११०। जिस मनुष्य का मन भला और बुद्धि अच्छी है वह हर किसी से प्यार किया जाता है और माना जाता है और जिस मनुष्य की बुद्धि अच्छी है परंतु अच्छी बुद्धि के अनुसार भला काम नहीं करता वह हर किसी से हंकाया जाता है और तुच्छ माना जाता है। न० (८९११) • (१००७६)। प्रत्येक मनुष्य मरने के पीछे अपनी संकल्पशक्ति की और मन की बुद्धि दोनों के अनुसार आगे बढ़ता चला जाता है परंतु वे बुद्धि की इन्द्रियें जो उसी समय मन की इन्द्रियें नहीं हैं लोप होती हैं क्योंकि वे मनुष्य के भीतर नहीं हैं। न० ९०६९ • ९०७१ • ९२८२ • ९३८६ • १०१५३।

करता है[२९]। इस कारण यद्यपि स्वर्ग के दो राज हैं तो भी वे एक ही हैं क्योंकि प्रभु संसर्ग और संयोग के निमित्त बीचवाले दूतगण सदैव प्रस्तुत करता है।

२८। जब कि दोनों राज के दूतगण का बयान इस पोथी में पृथक पृथक स्थान में संपूर्ण रूप से किया जाता है तो यहां उन का अधिक बयान आवश्यकता का काम नहीं है।

तीन स्वर्ग के बयान में।

२९। तीन स्वर्ग हैं जो एक दूसरे से संपूर्ण रूप से पृथक पृथक हैं। वे क्रम करके भीतरी या तीसरा स्वर्ग मझला या दूसरा स्वर्ग अन्तिम या पहिला स्वर्ग कहलाते हैं। वे क्रमानुसारी हैं और उन का अन्योन्य संबन्ध है जैसा कि मनुष्य के शरीर में उत्तम भाग सिर कहलाता है मझला भाग बदन कहाता है और अन्तिम भाग पांव कहाता है। और समान घर के है जिस में तीन कोठरियां हैं ऊपरली और मझली और निचली कोठरी। वह ईश्वरत्व जो प्रभु की ओर से निकलकर उतरता है इसी तौर की परिपाटी रखता है। इस लिये परिपाटी के बल स्वर्ग तिगुना अथवा तीन प्रकार का है।

३०। मनुष्य के वे भीतरी भाग जो बुद्धिसंबन्धी मन के और स्वभाविक मन के हैं इसी परिपाटी को भी रखते हैं अर्थात उन के पास भीतरी भाग और मझला भाग और अन्तिम भाग सब तीनों हैं। क्योंकि मनुष्य की सृष्टि के समय ईश्वरीय परिपाटी की सब वस्तुएं मनुष्य के भीतर मिलाई गई थीं। इस कारण वह ईश्वरीय परिपाटी के रूप पर रचा गया था और इस से वह नंहे नंहे स्वर्ग के समान हो गया[३०]। इस हेतु मनुष्य अपने भीतरी भागों के विषय स्वर्ग के साथ संबन्ध रखता है और वह मरने के पीछे स्वर्गदूत हो जाता है और जैसा उस ने जगत में प्रभु से ईश्वरीय भलाई और सचाई पाई उसी के अनुसार वह उन दूतों के साथ रहता है जो भीतरी या मझले या अन्तिम स्वर्ग में हैं।

---

२९ दोनों राज के बीच दूतसंबन्धी सभाओं के द्वारा (जो स्वर्गीय आत्मीय सभाएं कहलाती हैं) संसर्ग और संयोग हैं। न० ४०४७ · ६४३५ · ८७८७ · ८८०२। स्वर्गीय राज से आत्मीय राज के भीतर प्रभु के अन्तःप्रवाह के विषय में। न० ३९६९ · ६३६६।

३० ईश्वरीय परिपाटी की सब वस्तुएं मनुष्य में मिलाई गई थीं और मनुष्य सृष्टि से लेकर स्वरूप में ईश्वरीय परिपाटी हुआ। न० ४२१९ · ४२२२ · ४२२३ · ४५२३ · ४५२४ · ५११४ · (५३६८) · ६०१३ · ६०५७ · ६६०५ · ६६२६ · ९७०६ · १०१५६ · १०४७२। मनुष्य का भीतरी भाग स्वर्ग के रूप पर रचा गया था और उस का बाहरी भाग जगत के रूप पर बना है इस लिये प्राचीन लोग उस को सूक्ष्मजगत बोलते थे। न० ४५२३ · ५३६८ · ६०१३ · ६०५७ · ९२७९ · ९७०६ · १०१५६ · १०४७२। इस कारण मनुष्य सृष्टि से लेकर अपने भीतरी भाग के विषय उस स्वर्ग का सब से छोटा रूप है जो स्वर्ग के सब से बड़े रूप के सदृश रचा है। और उसी अवस्था में भी वह मनुष्य है जो पुनर्वार रचा गया है अर्थात जो प्रभु की आज्ञा से द्विज किया गया। न० ९११ · १९०० · १९२८ · ३६२४ से ३६३१ तक · ३६३४ · ३८८४ · ४०४१ · ४२७९ · ४५२३ · ४५२४ · ४६२५ · ६०१३ · ६०५७ · ९२७९ · ९६३२।

३१। जो ईश्वरत्व कि प्रभु से बहकर तीसरे (अर्थात भीतरी) स्वर्ग में प्रवेश करता है वह स्वर्गीय कहलाता है इस से जो दूतगण वहां रहते हैं वे स्वर्गीय दूतगण कहलाते हैं। जो ईश्वरत्व कि प्रभु से बहकर दूसरे (अर्थात मझले) स्वर्ग में प्रवेश करता है वह आत्मीय कहलाता है इस से जो दूतगण वहां रहते हैं वे आत्मीय दूतगण कहलाते हैं। और जो ईश्वरत्व कि प्रभु से बहकर अन्तिम (अर्थात पहिले) स्वर्ग में प्रवेश करता है वह स्वाभाविक कहलाता है। परंतु जब कि उस स्वर्ग की स्वाभाविक अवस्था जगत की स्वाभाविक अवस्था के समान नहीं है (क्योंकि उस में आत्मत्व और स्वर्गत्व दोनों हैं) इस कारण वह स्वर्ग आत्मीय और स्वर्गीय-स्वाभाविक कहलाता है और वे दूतगण जो वहां रहते हैं आत्मीय और स्वर्गीय-स्वाभाविक दूतगण कहलाते हैं[३८]। वे जो दूसरे या मझले स्वर्ग से अर्थात आत्मीय स्वर्ग से अन्तःप्रवाह पाते हैं आत्मीय-स्वाभाविक कहलाते हैं। और वे जो तीसरे या भीतरी स्वर्ग से अर्थात स्वर्गीय स्वर्ग से अन्तःप्रवाह पाते हैं स्वर्गीय-स्वाभाविक कहलाते हैं। आत्मीय-स्वाभाविक दूतगण और स्वर्गीय-स्वाभाविक दूतगण में बहुत ही अन्तर है पर तो भी उन का एक ही स्वर्ग बनता है क्योंकि वे एक ही अवस्था में हैं।

३२। प्रत्येक स्वर्ग में एक भीतर का और एक बाहर का भाग है। वे जो भीतरी भाग में हैं भीतरी दूतगण कहलाते हैं। और वे जो बाहरी भाग में रहते हैं बाहरी दूतगण कहलाते हैं। स्वर्गों में अर्थात प्रत्येक स्वर्ग में जो कुछ बाहरी या भीतरी है वह मनुष्य के विषय में स्वेच्छा और स्वेच्छा की बोधशक्ति है। जो भीतरी है सो स्वेच्छा के अनुकूल है और जो बाहरी है सो बोधशक्ति के अनुकूल है। जो कुछ संकल्पशक्ति से संबन्ध रखता है उस के साथ बुद्धि है क्योंकि उन गुणों में से एक दूसरे के विना रह नहीं सकता। संकल्पशक्ति तो आग की नाईं है और बुद्धि उस ज्योति की नाईं है जो उस से प्रकाशित होती है।

३३। यह बात विशेष करके मन में रखने के उचित है कि दूतगण के भीतरी भाग उस स्वर्ग को चुन लेते हैं जहां कि वे दूतगण आप रहते हैं। क्योंकि जितना कि उन के भीतरी भाग प्रभु के प्रभाव को पैठने देते हैं उतना ही वह स्वर्ग भीतरी है जहां कि वे रहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति (क्या दूत क्या आत्मा क्या मनुष्य) के भीतरी भागों की तीन अवस्था हैं। जिन के लिये तीसरी अवस्था खुली है वे सब से भीतर स्वर्ग में रहते हैं। जिन के वास्ते दूसरी अवस्था खुली है वे मझले स्वर्ग में हैं। और जिन के लिये केवल पहिली अवस्था खुली है वे सब से नीचे स्वर्ग में

---

३८ तीन स्वर्ग हैं भीतरी स्वर्ग और मझला स्वर्ग और अन्तिम स्वर्ग अर्थात क्रम करके तीसरा और दूसरा और पहिला स्वर्ग। न० ६८४ · ६५६४ · १०२७०। और प्रत्येक स्वर्ग की क्रम करके भलाइयों की तीन अवस्था भी हैं। न० ४६३८ · ४६३९ · ६६६२ · १०००५ · १००१७। भीतरी अर्थात तीसरे स्वर्ग की भलाई स्वर्गीय भलाई कहाती है और मझले अर्थात दूसरे स्वर्ग की भलाई आत्मीय भलाई कहलाती है और अन्तिम अर्थात पहिले स्वर्ग की भलाई आत्मीय-स्वाभाविक भलाई कहलाती है। न० ४२७९ · ४२८६ · ४६३८ · ४६३९ · ६६६२ · १०००५ · १००१७ · १००३८।

रहते हैं। ईश्वरीय भलाई और ईश्वरीय सचाई के ग्रहण करने के द्वारा भीतरी भाग खोले जाते हैं। वे जिन पर ईश्वरीय सचाइयों के द्वारा असर हुआ है और उन सचाइयों को जीव (अर्थात संकल्प) में झट पट पैठने देते हैं और पीछे से उन पर चलते हैं वे सब से भीतर (अर्थात तीसरे) स्वर्ग में रहते हैं। और वे उसी स्वर्ग में रहते हैं अनुसार उस भलाई के ग्रहण करने के जो वे सचाई पर प्रेम लगाने से अङ्गीकार करते हैं। परंतु वे जो ईश्वरीय सचाइयों को संकल्प में झट पट नहीं पैठने देते पर उन को स्मरणशक्ति के द्वारा ग्रहण करते हैं और स्मरण से बढ़कर उन को बुद्धि में लाते हैं और बुद्धि से उकसाया जाकर इच्छा करके कार्य करते हैं वे मझले अर्थात दूसरे स्वर्ग में रहते हैं। वे जो नीतिविद्या की विधियों के अनुसार जीते हैं और ईश्वर का सामर्थ मानते परंतु विद्या के उपार्जन करने से कुछ विशेष संबन्ध नहीं रखते वे सब से नीचे अर्थात पहिले स्वर्ग में रहते हैं[३९]। इस से स्पष्ट है कि भीतरी भागों की अवस्थाओं से स्वर्ग का होना है और स्वर्ग हमारे भीतर है और हम से बाहर नहीं है। जैसा कि प्रभु शिक्षा देता है और कहता है कि "प्रभु का राज दिखावट से नहीं आता और कोई न कहेंगे कि देखो यहां है या देखो वहां है क्योंकि देखो प्रभु का राज तुम्हारे भीतर है"। (लूका पर्व १७ वचन २०・२१)।

३४। सारी प्रवीणता भीतर की ओर बढ़ती जाती है और बाहर की ओर घटती जाती है। क्योंकि भीतरी वस्तुएं प्रभु के अधिक पास हैं और आप ही अधिक शुद्ध हैं। परंतु बाहरी वस्तुएं प्रभु से अधिक दूर हैं और आप अधिक अशुद्ध हैं[४०]। दूतविषयक व्युत्पन्नता में बुद्धि ज्ञान प्रेम इत्यादि भलाइयें हैं इस लिये उस में सुख भी है। परंतु उन भलाइयों के विना सुख नहीं है। क्योंकि विना उन के सुख बाहरी है भीतरी नहीं। जब कि सब से भीतर स्वर्ग के दूतगण के भीतरी भाग तीसरी अवस्थ में खुले हैं तो उन की व्युत्पन्नता मझले स्वर्ग के दूतगण की व्युत्पन्नता से कहीं बढ़कर है जिन के भीतरी भाग केवल दूसरी अवस्था में खुले हैं। और इसी तौर मझले स्वर्ग के दूतगण की व्युत्पन्नता सब से नीचे स्वर्ग के दूतगण की व्युत्पन्नता से बड़ी है।

३५। इस भिन्नता के कारण एक स्वर्ग का दूत किसी दूसरे स्वर्ग के दूतों के बीच प्रवेश नहीं कर सकता अर्थात न तो कोई किसी निचले स्वर्ग से चढ़ सकता

---

३९ मनुष्य के जीव की उतनी अवस्थाएं हैं जितनी कि स्वर्ग हैं। और वे अवस्थाएं मनुष्य के जीवन के अनुसार उस के मरने के पीछे खुल जाती हैं। न० ३७४७・९५९४। क्योंकि स्वर्ग मनुष्य में है। न० ३८८४। इस कारण जो कोई जीते जी अपने में स्वर्ग ग्रहण करता है वह मरने के पीछे स्वर्ग को जाता है। न० १०७१७।

४० भीतरी वस्तुएं अधिक शुद्ध हैं क्योंकि वे प्रभु के अधिक पास हैं। न० ३४०५・५१४६・५१४७। इस वास्ते कि भीतर में हज़ारों ऐसी वस्तुएं हैं जो मिलके बाहर में एक ही वस्तु के सदृश दिखाई देती हैं। न० ५७०७। और ज्यों ज्यों मनुष्य बाहरी वस्तुओं से भीतरी वस्तुओं की ओर उत्कृष्ट होता जाता है त्यों त्यों वह ज्योति में आता जाता है और इसी रीति बुद्धि में प्रवेश करता है। और यह उत्कृष्ट होना ऐसा है कि जैसा कोई धुन्धलाई से चलकर स्वच्छ वायु में आवे। न० ४५९८・६१८३・६३१३।

है न किसी ऊपरले स्वर्ग से उतर सकता है। क्योंकि जो कोई किसी निचले स्वर्ग से ऊपर को चढ़ता है वह बड़ा उद्वेग उठाता है। वह उन को जो वहां रहते हैं देख नहीं सकता तो उन से बात चात करने का क्या ज़िकर है। और वह जो किसी ऊपरले स्वर्ग से नीचे को उतरता है ज्ञानहीन होकर बोलने में लड़बड़ाकर बड़ी घबराहट में पड़ता है। सब से निचले स्वर्ग के कोई कोई दूतगण जिन को अभी इस बात के बारे में शिक्षा नहीं दी गई कि स्वर्ग का होना दूतगण के भीतरी भागों का है यह घमण्ड करते थे कि यदि हम उपरले दूतगण के स्वर्ग पर चढ़ें तो हम अधिक स्वर्गीय सुख का भोग करेंगे। इस लिये उन को उपरले स्वर्ग पर चढ़ने की आज्ञा मिली। परंतु जब वे वहां पर पहुंचे तब यद्यपि उन्हों ने इधर उधर सावधानी से ढूंढ़ा तो भी उन को वहां कोई देख न पड़ा। पर वहां दूतगण का बड़ा समूह साम्हने था। क्योंकि परदेशियों के भीतरी भाग इतने खुले नहीं थे जितने कि उन दूतों के भीतरी भाग खुले थे जो वहां के निवासी थे। इसी वास्ते उन को देखने में भी कुछ नहीं आता था। थोड़े दिन के पीछे उन को इतना मन का दुख हुआ कि जिस के हेतु वे इस बात में सन्देह करता था कि क्या हम जीते हैं या नहीं। इस से वे उस स्वर्ग में शीघ्र लौट आए जहां से वे निकले थे। और उन को इस बात पर सुख हुआ कि हम अपने साथियों से फिर आ मिले हैं। और उन्हों ने यह प्रतिज्ञा की कि हम कभी उन उपरले विषयों पर जो हमारे मन के उचित नहीं हैं अपने हृदय न लगावेंगे। मैं ने भी दूतगण को उपरले स्वर्ग से नीचे उतरते हुए देखा और इस कारण उन का ज्ञान जाता रहा यहां तक कि वे अपने स्वर्ग के गुण को पहचान न सके। परंतु यदि प्रभु आप से आप किसी दूत को निचले स्वर्ग से उठाकर उपरले स्वर्ग तक चढ़ावे जैसा कि बहुधा हुआ करता है इस वास्ते कि वह दूत प्रभु का तेज देख सके तो वह और ही बात है। क्योंकि उस समय वे पहिले ही से प्रस्तुत होकर मध्यगामी दूतगण से घेर रहे थे जिन दूतों के द्वारा सदा परस्पर संसर्ग होता जाता था। इस से स्पष्ट है कि तीनों स्वर्ग एक दूसरे से संपूर्ण रूप से अलग अलग हैं।

३६। वे जो एक ही स्वर्ग में रहते हैं हर एक से जो वहां है संसर्ग करने के योग्य हैं। और उस संसर्ग से उन को उतना ही सुख होता है जितना कि उन पर उन की भलाई का आकर्षण लग जाता है। पर इस का अधिक बयान आगे किया जावेगा।

३७। यद्यपि स्वर्ग एक दूसरे से इतने अलग अलग हैं कि एक स्वर्ग के दूतगण दूसरे स्वर्ग के दूतगण से एकट्ठे होके संसर्ग नहीं कर सकते तो भी प्रभु बिचवाईरहित और बिचवाईसहित अन्तःप्रवाह के द्वारा उन सभों को मिलाता है। बिचवाईरहित अन्तःप्रवाह प्रभु ही की ओर से बहकर सब स्वर्गों में व्यापता है और बिचवाईसहित अन्तःप्रवाह एक स्वर्ग से दूसरे स्वर्ग में बहता जाता

है[४१]। और इसी तौर पर प्रभु अपना यह अभिप्राय पूरा करता है कि तीनों स्वर्ग एक ही हो जावें। इस वास्ते कि सब वस्तुओं का पहिले से पिछले तक परस्पर संबन्ध होवे और कोई वस्तु विना संबन्ध के न रहे क्योंकि जो कोई बिचवाइयों के द्वारा प्रथम से संबन्ध नहीं रखता वह किसी तौर पर नहीं बना रह सकता परंतु वह छितरकर अभाव को प्राप्त होता है[४२]।

३८। वे जो ईश्वरीय परिपाटी के गुण से अवस्थाओं के विषय अनभिज्ञ हैं समझ नहीं सकते कि क्योंकर स्वर्ग अलग अलग हैं और वे नहीं जान सकते कि भीतरी मनुष्य और बाहरी मनुष्य से क्या तात्पर्य है। सर्वसाधारण लोगों को भीतरी और बाहरी वस्तुओं का या उपरली और निचली वस्तुओं का इस ध्यान को छोड़कर कोई अन्य ध्यान नहीं है कि वे वस्तुएं क्रम करके लगातार चली आती हैं। अर्थात वे किसी पवित्र सी वस्तु से लेकर किसी अपवित्र सी वस्तु तक पैवस्तगी के सटाव के द्वारा जा लगती हैं। परंतु भीतरी और बाहरी वस्तुएं एक दूसरी से लगी नहीं रहती बरन वे न्यारी न्यारी हैं। अवस्थाएं दो प्रकार की हैं एक तो संबध्यमान है दूसरा असंबध्यमान। संबध्यमान अवस्थाएं उन अवस्थाओं के सदृश हैं जो ज्योति से पैदा होती हैं जब कि वह ज्योति प्रकाशमान होकर घट घटकर अन्त को अन्धकार में लोप होती हैं। या यों कहो कि ज्योति में की वस्तुओं से फिरकर छांह में की वस्तुओं पर देखने में दृष्टि के घटाव की जो अवस्थाएं हैं उन के सदृश वे संबध्यमान अवस्थाएं हैं। या यों कहो कि वायु (तले से ऊपरी भाग तक) की निर्मलता की जो अवस्थाएं हैं उन के सदृश वे संबध्यमान अवस्थाएं हैं। ये अवस्थाएं दूरी के सहाय ठहराई जाती हैं परंतु असंबध्यमान अवस्थाएं अर्थात न्यारी अवस्थाएं एक दूसरी से भिन्न होती है जैसा कि पूर्व और पश्चात या कारण और कर्मफल या उत्पादक और उत्पत्ति। कोई मनुष्य जो सावधान के साथ सोच विचार करता है यह बात मालूम करेगा कि सब रची हुई वस्तुओं में और उन के प्रत्येक भाग में उत्पादन और संस्थापन की ऐसी अवस्थाएं होती हैं कि एक से दूसरी व्युत्पन्न होती है और उस से तीसरी व्युत्पन्न होती है इत्यादि इत्यादि। वे जो उन अवस्थाओं को मालूम नहीं कर सकते न तो वे सर्वथा स्वर्ग के प्रभेदों को समझ सकते

---

४१ अन्तःप्रवाह प्रभु ही की ओर से बिचवाईरहित बहता है और एक स्वर्ग से दूसरे स्वर्ग में बिचवाईसहित भी बहता है। और प्रभु का अन्तःप्रवाह मनुष्य के भीतरी भागों के अन्दर इसी तौर पर होता है। न० ६०६३ • ६३०७ • ६४७२ • ६६८२ • ६६८३। प्रभु की ओर से बिचवाईरहित ईश्वरीय अन्तःप्रवाह के बारे में। न० ६०५८ • ६४७४ से ६४७८ तक • ८७१७ • ८७२८। उस बिचवाईसहित अन्तःप्रवाह के बारे में जो आत्मीय लोक से प्राकृतिक लोक में बहता है। न० ६६८२ • ६६८५ • ६६६६।

४२ सब वस्तुएं अन्य ऐसी वस्तुओं से पैदा होती हैं जो उन से पहिले वर्तमान थीं। अतएव वे किसी प्रथम से उत्पन्न हुई हैं। और इसी तौर पर वे अभी बनी रहती हैं। क्योंकि बना रहना और सदा होना एकसां है। इस लिये कोई वस्तु विना संबन्धता के नहीं रहती। न० ३६२६ से ३६२८ तक • ३६४८ • ४५२३ • ४५२४ • ६०४० • ६०५६।

हैं और न वे मनुष्य के भीतरी और बाहरी तत्त्व के प्रभेदों को विशेषित कर सकते हैं और न वे आत्मीय लोक और प्राकृतिक लोक की भिन्नता समझ सकते हैं और न वे मनुष्य के अन्तरात्मा और शरीर के लक्षणों को जान सकते हैं और इसी लिये न वे जान सकते हैं कि प्रतिरूप और प्रतिमा क्या वस्तुएं हैं और कहां से ये आई हैं और न वे यह जान सकते हैं कि अन्तःप्रवाह का क्या गुण है। विषयी मनुष्य इन भेदों को कुछ भी नहीं समझते क्योंकि उन की समझ में सारी बढ़ती और सारी घटती लगातार होती है यहां तक कि वे न्यारी वस्तुओं को भी लगातार सी श्रेणी समझते हैं। इस कारण वे अन्तरात्मिक वस्तुओं के विषय इस बात को छोड़कर कुछ और बोध नहीं कर सकते कि ये निरी भौतिक वस्तुएं हैं। इस सबब से भी वे लोग बाहर रहते हैं बरन बुद्धि ही से दूर होते हैं[४३]।

३९। अन्त को मैं तीनों स्वर्गों के दूतगण के विषय एक ऐसे रहस्य का बयान करने पाया जो पहिले कभी किसी मनुष्य के मन में न आया था क्योंकि इस समय तक किसी ने इन अवस्थाओं के गुण को नहीं जाना। प्रत्येक दूत और प्रत्येक मनुष्य के भीतर एक भीतरी या परम अवस्था (अर्थात कोई न कोई भीतरी और परम वस्तु) रहती है जिस में प्रभु का ईश्वरत्व पहिले ही या समीपरूप से बहता और जहां से वह सब वस्तुओं को परिपाटी की अवस्थाओं के अनुसार यथा क्रम रखता है। यह भीतरी और परम [अवस्था] प्रभु का दूतगण और मनुष्यों में जाने का द्वार है और उन में उस का विशेष वास है। इस भीतरी और परम [अवस्था] के द्वारा मनुष्य अपने मनुष्यत्व को पाता है और इस से मनुष्य और पशु की भिन्नता है क्योंकि पशुओं की वैसी अवस्था नहीं है। इस कारण मनुष्य अपने बुद्धिमान और प्राकृतिक मन के विषय प्रभु से प्रभु की ओर उठाया जाने के योग्य है इस वास्ते कि वह प्रभु पर श्रद्धा करे और उस से प्रेम करे और उस को देख ले। और वह उस अवस्था के द्वारा बुद्धि और ज्ञान पाकर चैतन्य से बोलता है। इसी कारण वह सदैव जीता रहता है। परंतु वे परिपाटी और विधि जो इस भीतरी [अवस्था] में प्रभु ने प्रस्तुत की हैं वे दूतगण की समझ में प्रत्यक्ष नहीं बहती हैं क्योंकि वे दूत के ध्यान से बाहर हैं और दूत के ज्ञान से कहीं बढ़ जाती हैं।

४०। जो बातें हम ऊपर लिख चुके हैं वे तीनों स्वर्गों से संबन्ध रखती हैं परंतु नीचे लिखी हुई बातों में हम प्रत्येक स्वर्ग का जुदा जुदा बयान करेंगे।

---

४३ भीतरी और बाहरी वस्तुएं श्रेणी बनकर लगातार नहीं चली आती बरन अवस्थाओं के अनुसार पृथक पृथक रहती हैं और प्रत्येक अवस्था का पृथक अन्त भी है। न० ३६९१ · ५१४५ · ५११४ · ८६०३ · १००९९। क्योंकि एक वस्तु से दूसरी वस्तु का होना है और जो जो वस्तुएं इस तौर पर बनती हैं वे सब घटाव के कारण बराबर पवित्र या अपवित्र नहीं होती जाती। न० ६३२६। ६४६५। वे जो भीतरी और बाहरी वस्तुओं का प्रभेद वैसी अवस्थाओं के अनुसार मालूम नहीं कर सकते भीतरी और बाहरी मनुष्य को भी समझ नहीं सकते और न भीतरी और बाहरी स्वर्गों को जान सकते हैं। न० ५१४६ · ६४६५ · १००९९ · १०१८१।

स्वर्गों में असंख्य सभाएं हैं।

४१। प्रत्येक स्वर्ग के दूतगण एक ही जगह पर मिलकर नहीं रहते परंतु वे कई एक सभारूपी समूह बनकर अलग अलग होते हैं और वे समूह उन दूतों के प्रेम और श्रद्धा की भलाई के परिमाण के अनुसार बड़े हैं या छोटे। वे जो भलाई की अनन्यरूप अवस्था में सहभागी हैं एक सभा में एकट्ठे रहते हैं। स्वर्गों में भलाई असंख्य भांति भांति की है और प्रत्येक दूत का गुण उस की भलाई के अनुसार ठहराया जाता है[४४]।

४२। स्वर्ग में की दूतविषयक सभाएं भी अपनी भलाइयों की साधारण और विशेष भिन्नता के अनुसार एक दूसरे से दूर हैं। क्योंकि आत्मीय लोक में केवल भीतरी भागों की भिन्नता के द्वारा दूरी का बोध होता है। इसी निमित्त स्वर्गों में प्रेम की भिन्न भिन्न अवस्थाओं के द्वारा दूरी का बोध है। वे दूतगण जिन के स्वभाव की बहुत भिन्नता है अलग अलग रहते हैं। वे जिन के स्वभाव की कम भिन्नता है निकटस्थ रहते हैं क्योंकि उन की सादृश्यता उन को एकट्ठे कर डालती है[४५]।

४३। एक सभा के सब दूत भी उसी विधि के अनुसार न्यारे हुए हैं। वे जो अधिक पवित्र हैं अर्थात भलाई में अधिक बढ़े हुए हैं और इस लिये प्रेम और ज्ञान और बुद्धि में उत्कृष्ट हुए हैं वे मझले स्वर्ग में रहते हैं। जो जो कम उत्कृष्ट हुए हैं वे इधर उधर रहते हैं और इतनी दूरी पर हैं जितना उन की उत्कृष्टता घटती जाती है। यह परिपाटी उस ज्योति के सदृश है जो अपने केन्द्र से लेकर परिधि पर्यन्त घटती जाती है। वे दूतगण जो मध्य में रहते हैं सब से बड़ी ज्योति में हैं और वे जो परिधि की ओर वास करते हैं क्रम क्रम से कम ज्योति में हैं।

४४। दूतगण जो अनन्यरूप भलाई में हैं वे ऐसे हैं कि मानों आप से आप संसर्ग करते हैं। क्योंकि वे अपने जैसों से (जैसा कि अपने घरानों से) एक दूसरे को अपना समझते हैं। परंतु दूसरों के साथ वे परदेशी बनकर बेगानों के समान बरताव करते हैं। जब वे अपने जैसों के साथ रहते हैं तब वे स्वतन्त्र होकर अपने जीव का संपूर्ण सुख भोगते हैं।

---

४४ भिन्नता असंख्येयगुणी है और कोई वस्तु कभी किसी अन्य वस्तु के सदृश नहीं है। न० ७२३६ · ९००२। इस कारण स्वर्गों में असंख्येय भिन्नता पाई जाती है। न० ६८४ · ६९० · ३७४४ · ५५९८ · ७२३६। और ये भिन्नताएं भलाई की भिन्नताएं हैं। न० ३६४४ · ४००५ · ७२३६ · ७८३३ · ७८३६ · ९००२। कि उन भलाईयों के बाहुल्य के द्वारा होते हैं जिस से हर एक व्यक्ति को भलाई मिलती है। न० ३४७० · ३८०४ · ४१४९ · ६६१७ · ७२३६। इस से स्वर्गों में की सब सभाएं और हर एक सभा का प्रत्येक दूत एक दूसरे से भिन्न भिन्न हैं। न० ६९० · ३२४१ · ३५१९ · ३८०४ · ३९८६ · ४०६७ · ४१४९ · ४२३६ · ७८३३ · ७८३६। तो भी वे सब प्रभु के प्रेम से मिलकर मिले झुले रहते हैं। न० ४५७ · ३९८६।

४५ स्वर्ग की हर एक सभा का (दूतों के जीव की अवस्थाओं की भिन्नता के अनुसार) पृथक पृथक स्थान है। इसी निमित्त प्रेम और श्रद्धा की भिन्नता के अनुसार सभाओं के पृथक पृथक स्थान हैं। न० १२७४ · ३६३८ · ३६३९। दूरी स्थान मकान आकाश और काल के विषय परलोक में या आत्मीय लोक में अद्भुत वस्तुओं के बारे में। न० १२७३ से १२७७ तक।

४५। इस से स्पष्ट है कि सारे स्वर्ग भलाई के द्वारा एक दूसरे से संसृष्ट होते हैं और वे अपने गुणों के अनुसार विशेषित हैं। तौ भी वह प्रभु जो सारी भलाई का मूल है उन दूतगण के संसर्गों को उसी तौर पर प्रस्तुत करता है न कि दूतगण आप से आप मिलकर संसर्ग करते हैं। जितने वे भलाई की ओर माइल हैं उतने ही प्रभु उन को पथ दिखाता है उन को मिलाता है उन को प्रस्तुत करता है और उन को स्वतन्त्रता में स्थापित करता है। और इसी तौर वह उन सब को उन के निज प्रेम श्रद्धा बुद्धि और ज्ञान के जीव में पालन करता है इस से वह उन को सुख में सम्भालता है[४६]।

४६। वे सब जो अनन्यरूप भलाई में हैं आपस में एक दूसरे को पहचानते हैं जैसा कि जगत में मनुष्य अपने कुटुम्ब और भाईबन्धुओं और मित्रों को जानता है यद्यपि उन्हों ने उन को पहिले कभी न देखा भी हो। क्योंकि परलोक में आत्मीय बन्धुता (अर्थात प्रेम और श्रद्धा की बन्धुता) को छोड़कर कुछ कुटुम्बित्व और बान्धवत्व और मित्रता नहीं है[४७]। जब कि मैं शरीर से निकलकर दूतगण के संग अन्तरात्मरूपी मूर्त्ति में खड़ा हुआ तो मैं यह सारा वृत्तान्त कभी कभी देखने पाया। और तब मुझ को उन में से कई एक ऐसे मालूम होते थे कि मानों मैं उन को बचपन से जानता हूं। परंतु उन में से कई एक थे जिन को मैं नहीं जानता था। वे जो मुझ को बचपन से ज्ञात मालूम होते थे ऐसी अवस्था में थे कि मेरी और उन की अवस्था एक ही थी। परंतु वे जो मुझे अज्ञात थे असदृश अवस्था में थे।

४७। उन दूतगण में जो एक ही सभा में मिलकर रहते हैं प्रायः चिहरों की सादृश्यता दिखाई देती है परंतु वे एक एक करके भिन्न भिन्न हैं। एक साधारण सादृश्यता का स्वभाव जो व्यक्ति व्यक्ति करके अलग अलग हो सके कुछ मालूम करने के वास्ते जगत के दृष्टान्तों से पाया जा सकता है। सब लोग भली भांति जानते हैं कि मनुष्यों की प्रत्येक जाति में साधारण सादृश्यता चिहरों और आंखों की है कि जिस से एक जाति दूसरी जाति से (विशेष करके एक कुटुम्ब दूसरे कुटुम्ब से) विशेषित होती है। परंतु स्वर्गों में यह विशेषलक्षण अधिक स्पष्टता से दिखाई देता है क्योंकि वहां पर भीतरी प्रेम चिहरे से होकर चमकता है इस वास्ते कि स्वर्ग में चिहरा उन प्रेमों का बाहरी रूप है। स्वर्ग में कोई चिहरा नहीं हो

---

४६ सारी स्वतन्त्रता प्रेम और अनुराग से है क्योंकि जो कुछ कि किसी मनुष्य को प्यारा है सो वह स्वाधीनता से प्यार करता है। न० २८७०·३१५८·८९८७·८९९०·९५८५·९५९१। और जब कि स्वतन्त्रता प्रेम से पैदा होती है तो वह हर एक का जीव है और जीव का आनन्द भी है। न० २८७३। क्योंकि स्वतन्त्रता से निकलनेवाली वस्तु को छोड़कर मनुष्य का और कुछ जन्मप्राप्त नहीं कहलाता है। न० २८८०। स्वतन्त्रता वास्तव में प्रभु से आगे चलाया जाना है क्योंकि वह भलाई और सचाई के प्रेम से चलाया जाना है। न० ८९२·९०५·२८७२·२८८६·२८९०·२८९१·२८९२·९५८६ से ९५९१ तक।

४७ स्वर्ग में उपस्थिति और बान्धवत्व और संबन्धत्व और यों कहो सगोत्रता सब के सब भलाई की ओर से हैं। और भलाई की सम्मति या विमति के अनुसार उत्पन्न होते हैं। न० ६८५·९१७·१३९४·२७३९·३६१२·३८१५·४१२१।

सकता जो प्रेमों के सदृश नहीं है। मुझे यह भी प्रगट किया गया था कि क्योंकर साधारण सादृश्यता एक सभा की जुदी जुदी व्यक्तियों में भिन्नरूप की जाती है। वहां पर मुझे एक ऐसा चिहरा देख पड़ा जो दूत का सा चिहरा था और जो भलाई और सचाई के बहुत से प्रेमों के अनुसार बदला करता था जैसा कि वे गुण एक सभा में थे। और उस चिहरे के विकार बहुत काल तक होते रहते थे। और मैं ने मालूम किया कि वह चिहरा एक साधारण तल या पृष्ठ के समान बना रहा और बाक़ी सब चिहरे उसी तल से औत्सर्गिक और प्रसारणिक हुए थे। उस चिहरे के द्वारा मुझ को सारी सभा के प्रेम भी दिखाए गये थे जिन के अनुसार उस सभा के सब चिहरे भिन्न भिन्न दिखाई देते थे। जैसा कि अभी कहा गया है कि दूतगण के चिहरे उन के भीतरी भागों के रूप हैं और इस कारण उन की उन इच्छाओं के रूप हैं जो प्रेम और श्रद्धा से उत्पन्न हैं।

४८। इस लिये जो दूत कि ज्ञान में श्रेष्ठ है वह औरों के गुण को झट पट चिहरे से जान लेता है। क्योंकि स्वर्ग में कोई दूत बनावटी चिहरा बनाकर अपने भीतरी भागों को छिपा नहीं सकता। और कपट और दम्भ करके झूठ बोलना और धोखा देना उन को संपूर्ण रूप से असम्भव है। कभी कभी ऐसा होता है कि दम्भ लोग किसी सभा में छल करके भीतर जाते हैं। वे अपने भीतरी भागों को गुप्त रखते हैं और अपने बाहरी भाग ऐसे बनाते हैं कि वे ऊपर से देखने में भलाई के उस रूप में हैं जिस में उसी सभा के दूतगण भी हैं। और इस करके वे ज्योति के दूतगण के भेष में घूमते फिरते हैं। परंतु वे इस अवस्था में देर तक नहीं रह सकते इस वास्ते कि उन के मन में तीव्र पीड़ा होने लगती है और उन को बड़ा दुख मिलता है उन का चिहरा काला हो जाता है और वे अधमरे से हो जाते हैं। क्योंकि वहां का भीतरी बहनेवाला जीव उन के जीव से विरुद्ध है। इस लिये वे अपने आप को आप झट पट नरक में गिरा देते हैं जहां उन सरीखे और लोग भी पड़े रहते हैं। और उन के हृदय में फिर वहां से ऊपर चढ़ने की इच्छा भी नहीं रहती। ये उस मनुष्य के समान हैं जो विना व्याह के कपड़े पहिने पाहुनों में होकर बाहरी अन्धेरे में फेंका गया था। (मत्ती पर्व २२ वचन ११ इत्यादि)।

४९। स्वर्ग में की सब सभाएं आपस में परस्पर संसर्ग करती रहती हैं यद्यपि प्रत्यक्ष में संसर्ग नहीं करती क्योंकि उन में से बहुत थोड़े दूत अपनी सभा से निकलकर दूसरी सभा में जाते हैं। उन को अपनी सभा से बाहर चलना ऐसा है जैसा कि कोई अपने आपे से चला जावें या अपने जीवन को छोड़कर दूसरे जीवन को बाछ लेवें जो उन को मनोरञ्जक न था। तो भी सब सभाएं आपस में परस्पर संसर्ग करती रहती हैं उसी मण्डल के बढ़ जाने के द्वारा जो हर एक के जीवन से उत्पन्न है। जीव का मण्डल प्रेमों का वही मण्डल है जो प्रेम और श्रद्धा की सहायता से होता है। यह मण्डल आसपासवाली सभाओं में आप से आप दूर तक फैल जाता है। जितना उस के प्रेम अधिक भीतरी और श्रेष्ठ होते हैं उतना ही

वह मण्डल बढ़ता जाता है[४८]। इस निमित्त इस फैलाव के अनुसार दूतगण बुद्धि-मान और ज्ञानी होते जाते हैं। वे जो भीतरी स्वर्ग में हैं और उस स्वर्ग के मध्य ही में रहते हैं अपने मण्डल को सर्वव्यापी स्वर्ग के प्रत्येक भाग में फैलाते हैं इस से सारा स्वर्ग का संसर्ग प्रत्येक से होता है और प्रत्येक का संसर्ग सभों से होता है[४९]। परंतु इस फैलाव का बयान हम संपूर्ण रूप से उस समय करेंगे जब हम उस स्वर्गीय रूप की सूचना करेंगे जिस के अनुसार सारी दूतविषयक सभाएं प्रस्तुत की गई हैं और जहां हम दूतगण के ज्ञान और बुद्धि का बयान भी करेंगे। क्योंकि प्रेम और ध्यान का फैलाव उसी रूप के अनुसार होता चला जाता है।

५० । हम ऊपर कह चुके हैं कि स्वर्ग में बड़ी बड़ी और छोटी छोटी सभाएं दोनों हैं। उन बड़ी सभाओं में कोटि कोटि दूतगण हैं छोटी सभाओं में हज़ारों दूतगण हैं और सब से छोटी सभाओं में सैकड़ों दूतगण हैं। कई एक दूत ऐसे भी हैं जो अलग अलग रहते हैं मानों घर घर में कुटुम्ब कुटुम्ब रहते हैं। परंतु यद्यपि वे तितर बितर होकर इधर उधर रहते हैं तो भी उन का वैसा ही बन्दोबस्त है जैसा कि उन दूतों का है जो सभाओं में रहते हैं अर्थात जो अधिक ज्ञानी हैं वे मध्य में रहते हैं और जो कुछ कुछ अज्ञानी हों वे सीमाओं के पास रहते हैं। ये दूतगण विशेष करके ईश्वरीय दृष्टिगोचर और अनुशासन में रहते हैं और वे सब से अच्छे दूत हैं।

हर एक सभा स्वर्ग का छोटा सा रूप है और हर एक दूत स्वर्ग का सूक्ष्म ही सूक्ष्म रूप है।

५१ । हर एक सभा स्वर्ग का छोटा सा रूप है और हर एक दूत स्वर्ग का सूक्ष्म ही सूक्ष्म रूप है क्योंकि प्रेम और श्रद्धा की भलाई के द्वारा स्वर्ग का होना है। और वह भलाई स्वर्ग की हर एक सभा में है और हर एक सभा के प्रत्येक दूत में। यह तो कुछ बात नहीं कि यह भलाई सर्वत्र भिन्न भिन्न है क्योंकि वह सदा स्वर्ग की तो भलाई है और उस की भिन्नता का केवल यह फल है कि वे नाना प्रकार अपने अपने गुण के अनुसार स्वर्ग के गुण में कुछ विकार किया करते हैं। इस कारण जब कोई व्यक्ति स्वर्ग की किसी सभा तक पहुंचाई जाती है तब लोग यह कहते हैं कि वह स्वर्ग को गई है। और लोग यह भी कहते हैं कि स्वर्ग

---

४८ आत्मविषयक मण्डल जो जीव का मण्डल है हर एक मनुष्य और आत्मा और दूत की ओर से बाहर को बहकर आता है और उन को घेर लेता है। न० ४४६४ • ५१७९ • ७४५४ • ८६३० । यह उन के प्रेम और ध्यान के जीव से बह निकलता है। न० २४८९ • ४४६४ • ६२०६। और ये मण्डल भलाई के गुण और परिमाण के अनुसार दूतविषयक सभाओं में अपने आप दूर तक फैल जाते हैं। न० ६६०३ • ८०६३ • ८७९४ • ८७९७।

४९ स्वर्गों में भलाइयों का लेना देना हुआ करता है क्योंकि स्वर्गीय प्रेम अपने सारे गुण को अन्य को दे देता है। न० ५४९ • ५५० • १३९० • १३९१ • १३९२ • १०१३० • १०७२३।

के निवासी स्वर्ग के अन्दर हैं और प्रत्येक निवासी अपने अपने स्वर्ग के अन्दर रहता है। यह वृत्तान्त उन सभों को मालूम है जो परलोक में रहते हैं। और इस से वे जो स्वर्ग से बाहर हैं या स्वर्ग के नीचे हैं और दूर से दूतविषयक सभाओं पर दृष्टि करते हैं वे कहते हैं कि देखो स्वर्ग यहां है या देखो स्वर्ग वहां है। यह सब माजरा किसी राजसभा के उन बड़े बड़े लाट साहेब आफ़िसर लोग और नौकरों से मिलाया जावे जो यद्यपि वे अलग अलग अपनी अपनी कोठरियों में रहते हैं तो भी वे सब एक ही राजगृह में होकर अपने अपने कामों में राजा की सेवा करने को उपस्थित होते हैं। यह प्रभु की इन बातों का दृष्टान्त है कि "मेरे पिता के घर में बहुत मकान हैं"। (यूहन्ना पर्व १४ वचन २)। और वह "स्वर्ग के निवास" और "स्वर्गों के स्वर्ग" की बातों का विवरण करता है जो भावी-वक्ताओं की पोथी में हैं।

५२। हर एक सभा स्वर्ग का छोटा सा रूप है क्योंकि हर एक सभा का रूप सर्वव्यापी स्वर्ग के रूप के समान है। क्योंकि सारे स्वर्ग में जितनी व्यक्तियें औरों से निपुण हैं उतनी ही मध्य में रहती हैं और उन के आस पास सीमाओं पर्यन्त क्रम करके वे वास करती हैं जो उन गुणनिधानों से कम निपुण होती हैं। जैसा कि पूर्व बाब में नम्बर ४३ पर देखा गया था। प्रभु स्वर्ग के सब निवासियों का भी पथ दिखलाता है कि मानों वे एक ही दूत हैं। और इसी तौर पर प्रत्येक सभा की व्यक्तियें मिलकरके चलती हैं और इस से कभी कभी मालूम होता है कि सारी दूतविषयक सभा एक ही दूत है जिस को मैं ने आप प्रभु की आज्ञा से देखा। जब प्रभु आप दूतगण के मध्य में दर्शन देता है तो उस समय वह समूह से घेरा हुआ दिखाई नहीं देता परंतु दूतविषयक रूप में वह एक ही सा देख पड़ता है और इसी वास्ते प्रभु धर्मपुस्तक में दूत कहलाता है और सारी सभा भी दूत कहलाती है। क्योंकि मिकाईल जिबराईल राफ़ाईल इत्यादि केवल दूतविषयक सभाएं हैं जिन को गुणों के अनुसार उन भिन्न भिन्न नामों से बोलते हैं[५०]।

५३। यथा सारी सभा स्वर्ग का छोटा सा रूप है तथा प्रत्येक दूत स्वर्ग का सूक्ष्म ही सूक्ष्म रूप है। क्योंकि स्वर्ग दूत से बाहर नहीं है बरन उस के अन्दर है इस वास्ते कि उस के भीतरी भाग (अर्थात उस का मन) स्वर्ग के रूप पर प्रस्तुत हैं इस लिये वे स्वर्ग की सब वस्तुओं को जो दूत से बाहर हैं ग्रहण करने के योग्य हैं। दूत अनुसार उस भलाई के जो उस में प्रभु की ओर से है उन वस्तुओं को ग्रहण करता है इस लिये प्रत्येक दूत स्वर्ग कहलाता है।

---

५० धर्मपुस्तक में प्रभु को दूत करके बोला जाता है। न० ६२८०·६८३१·८१९२·६३०३। किसी सारी दूतविषयक सभा को भी दूत करके बोलते हैं। और मिकाईल और राफ़ाईल को उन के कार्यों के निमित्त दूतविषयक सभाएं करके कहते हैं। न० ८१९२। स्वर्ग की सभागण और दूतगण का कोई नाम नहीं रखा पर उन की अपनी अपनी भलाई के गुण के कारण और उस गुण के विषय किसी ध्यान के कारण वे विशेषित किये जाते हैं। न० १७०५·१७५४।

५४। सर्वथा यह नहीं कहा जा सकता कि स्वर्ग किसी के बाहर या किसी के आस पास है परंतु वह किसी के भीतर है। क्योंकि हर एक दूत अपने भीतरी स्वर्ग के अनुसार अपने आसपासवाले स्वर्ग को ग्रहण करता है। और इस से स्पष्ट है कि वे लोग कैसे धोखे में हैं जो इस बात पर विश्वास करते हैं कि विना भीतरी जीव के गुण पर कुछ ध्यान किये स्वर्ग को जाना दूतगण के पद तक पहुंचना है। इस से उन के निकट किसी को विना किसी होड़ के दया ही से स्वर्ग मिल जावे[५१]। परंतु यह सच है कि अगर स्वर्ग हम में नहीं है तो स्वर्ग की कुछ आसपासवाली वस्तु हम में बहकर नहीं ग्रहण की जा सके। बहुत से आत्माओं का और ही ध्यान है और उन में से कोई कोई स्वर्ग तक उठाए गये। परंतु उन का भीतरी जीव दूतगण के जीव से विरुद्ध होकर वे बुद्धि के अंधे हो गये और अन्त में मूढ़ होके अहंकार के कारण उन को बहुत पीड़ा उठानी पड़ी यहां तक कि वे पागलों की नाईं चाल चलते थे। संक्षेप में सच तो है कि वे जो जगत में बुरे काम करने के पीछे स्वर्ग को प्राप्त करते हैं वहां पर लकलकाके ऐंठ जाते हैं जैसा कि मछलियें पानी से निकाले जाने पर ऐंठती हैं या जीवजन्तु एद्दर पम्प (अर्थात वायु निकालनेवाले यन्त्र) के शून्य में वायु के निकाले जाने के पीछे लकलकाके ऐंठते हैं। इस लिये स्पष्ट है कि स्वर्ग हम से बाहर नहीं है बरन हमारे भीतर है[५२]।

५५। जब कि सब लोग उस स्वर्ग के अनुसार जो उन के भीतर है अपने आसपासवाले स्वर्ग को ग्रहण करते हैं तो उसी तौर पर वे प्रभु को भी ग्रहण करते हैं क्योंकि स्वर्ग प्रभु के ईश्वरत्व का बना हुआ है। और इस कारण जब प्रभु किसी सभा में अपने आप प्रकाश करता है तब वह उस सभा की भलाई के गुण के अनुसार देख पड़ता है। और इस से भिन्न भिन्न सभाओं में वह भिन्न भिन्न रूपों से दिखाई देता है। परंतु यह भिन्नता प्रभु में नहीं है पर उन्ही में है जो अपनी निज भलाई की ओर से (और इस लिये इस भलाई के अनुसार) प्रभु को देखते हैं। प्रभु के दर्शन के प्रभाव भी दूतगण पर उन के प्रेम के अनुसार होता है। क्योंकि वे जो भीतरी पथ से प्रभु से अधिक प्रेम करते हैं उन के भीतर अधिक प्रभाव लगता है। और वे जो प्रभु से कम प्रेम करते हैं उन पर कम प्रभाव लगता है। परंतु पापी लोग स्वर्ग से बाहर होकर प्रभु के दर्शन से पीड़ित होते हैं। जब प्रभु किसी सभा में दिखाई देता है तब दूत के रूप से देख पड़ता है। परंतु उस ईश्वरत्व के द्वारा जो उस में से होकर प्रकाशित होता है वह अन्य दूतों से विशेषित होता है।

---

५१ स्वर्ग तो विना होड़ किये दया ही से किसी को नहीं मिलता। परंतु किसी को स्वर्ग मिलता है उस जीवाचरण के अनुसार और उस जीव की समष्टि के अनुसार जिस से मनुष्य स्वर्ग के प्रभु की ओर पहुंचाया जाता है। यह जीव दया से मिलता है और यह दया का तात्पर्य है। न० ५०५७ · १०६५६। यदि स्वर्ग दया ही से दिया जावे तो सबों को दिया जावे। न० २४०१। किसी किसी बुरे आत्माओं के बारे में जो स्वर्ग में से गिरा दिये गये क्योंकि उन का यह घमण्ड था कि सब को दया ही से स्वर्ग दिया जाता है। न० ४२२६।

५२ स्वर्ग मनुष्य में है। न० ३८८४।

५६। जहां कहीं प्रभु स्वीकार किया जाता है और उस पर श्रद्धा लाया है और उस से प्रेम किया जाता है वहीं हीं स्वर्ग है। और पूजा करने में वह भिन्नता जो भिन्न भिन्न सभाओं की भिन्न भिन्न भलाइयों से उत्पन्न होती है अपकारक नहीं है बरन उपकारक है। क्योंकि स्वर्ग की उत्तमता उस भिन्नता पर अवलम्बित है। जिस रीति से स्वर्ग की उत्तमता भिन्नता का अवलम्बन करती है उस रीति का पूरा बयान करने में यदि हम विद्वानों के कई शब्द काम में न लावें तो बड़ा कष्ट पड़ेगा। परंतु उन शब्दों की सहायता से हम बयान कर सकेंगे कि क्योंकर भिन्न भिन्न भागों के मेल मिलाप होने से एक निर्दोषी एकाई उत्पन्न हुई। हर एक एकाई भिन्न भिन्न भागों की है क्योंकि जो वस्तु भिन्न भिन्न भागों की नहीं है वह कोई वस्तु भी नहीं है इस वास्ते कि उस का कुछ रूप नहीं है और इस से कोई गुण भी नहीं है। परंतु जब कोई एकाई भिन्न भिन्न भागों की है और एक ऐसा निर्दोषी रूप धारण करती है कि जिस में हर एक भाग बाक़ी सब भागों के साथ मिला झुला संयुक्त होता है तब तो वह उत्तम ही उत्तम है। सच तो यह है कि स्वर्ग एक ऐसी एकाई है जिस के भिन्न भिन्न भाग सब से अच्छे रूप पर प्रस्तुत हुए। क्योंकि स्वर्गीय रूप अन्य सब रूपों से उत्तम है। सब उत्तमता नानाविध पदार्थों के आपस में हेल मेल रहने से उत्पन्न होती हैं और इस बात का यह प्रमाण है कि सारी सुन्दरता और सुख और आनन्द इन्द्रियों और मन पर असर करते हैं। क्योंकि उन विषयों का होना और बहना बहुत से अनुरूप और अविरुद्ध भागों के आपस में के हेल में और सादृश्यता ही से उत्पन्न होता है चाहे वे भाग सहगामी हों चाहे आनुक्रमिक हों। न कि उन विषयों का होना एक ही वस्तु से उत्पन्न होता है। इस से यह कहावत प्रसिद्ध है कि भिन्नता हर एक को मनोरञ्जक है। और यह मालूम है कि भिन्नता की सुन्दरता अपने निज गुण पर अवलम्बित है। इन बातों को मन में जगह देने से मालूम हो सकता है कि क्योंकर स्वर्ग में भी उत्तमता भिन्नता से उत्पन्न होती है। क्योंकि जगत का विषयग्राम ऐसे दर्पण के समान है जो आत्मीय लोक की वस्तुओं को फेर देता है[५३]।

५७। जो कुछ कि स्वर्ग के बारे में हम कह चुके हैं सो कलीसिया के बारे में भी कहा जा सकता है क्योंकि कलीसिया प्रभु का पृथिवी पर का स्वर्ग है। कलीसिया में भी (स्वर्ग के समान) बहुत सी सभाएं हैं तो भी हर एक सभा कलीसिया कहलाती है। और यथार्थ में वह एक कलीसिया है जहां तक कि उस में प्रेम और श्रद्धा की भलाई प्रधान है। और इसी बारे में भी प्रभु भिन्नता से एकाई पैदा करता है और बहुतेरी कलीसियाओं को एक ही कर डालता है[५४]।

---

५३ हर एक एकाई अपने भिन्न भिन्न भागों के आपस में के हेल मेल होने से उत्पन्न होती है। नहीं तो उस में कोई गुण न होगा। न० ४५७। और इस से स्वर्ग एक एकाई है। न० ४५७। क्योंकि स्वर्ग में सब कुछ एक ही अन्त से (अर्थात प्रभु से) संबन्ध रखता है। न० ६८२८।

५४ यदि भलाई (और न कि सचाई बिना भलाई के) कलीसिया का लक्षण और आवश्यकता होवे तो कलीसिया एक ही हो। न० १२८५ · १३१६ · २९८२ · ३२६७ · ३४४५ · ३४५१ · ३४५२। क्योंकि भलाई के द्वारा सब कलीसियाएं प्रभु के निकट एक ही कलीसिया हैं। न० ७३९६ · ९२७६।

और जो कुछ कि सब कलीसियाओं के विषय में कहा जा सके सो कलीसिया के हर एक मेम्बर के बारे में एक एक करके कहा जा सकता है। क्योंकि कलीसिया मनुष्य के अन्दर है न कि उस के बाहर। और प्रत्येक मनुष्य जिस में प्रेम और श्रद्धा की भलाई के द्वारा प्रभु रहता है वह कलीसिया कहलाता है[५५]। फिर जो कुछ कि उस दूत के विषय जिस में स्वर्ग है कहा गया है सो उस मनुष्य के विषय कहा जा सकता है जिस में कलीसिया रहती है। क्योंकि वह कलीसिया का सूक्ष्म रूप है जैसा कि दूत स्वर्ग का सूक्ष्म रूप है। निश्चय से यह कहा जा सकता है कि दूत के सदृश वह मनुष्य जिस में कलीसिया है आप स्वर्ग है। क्योंकि मनुष्य इस वास्ते पैदा किया गया था कि वह स्वर्ग को जाकर दूत बन जावे। और इस लिये वह मनुष्य जो प्रभु से भलाई ग्रहण करता है मानुष-दूत कहलाता है[५६]। इस स्थान पर यह सूचित करने के उचित है कि मनुष्य और दूतगण की किस किस बात में समता है और किस में मनुष्य दूतगण से उत्तम है। समता इस बात में है कि मनुष्य के भीतरी भाग दूतगण के भीतरी भागों के सदृश बने हैं और जितना मनुष्य प्रेम और श्रद्धा की भलाई में रहता है उतना ही वह स्वर्ग का एक रूप बन जाता है। परंतु मनुष्य का यह एक विशेषगुण है कि उस के बाहरी भाग जगत के रूप पर बने हैं और जितना वह भलाई की ओर झुकता है उतना ही वह जगत जो उस में है उस स्वर्ग के अधीन होता जाता है जो उस के अन्दर भी है और जो उस स्वर्ग की नौकरी भी करता रहता है[५७]। और ऐसी दशा में प्रभु मनुष्य के प्रत्येक भाग में हो रहता है जैसा कि वह अपने निज स्वर्ग में रहता है। क्योंकि प्रभु अपनी निज परिपाटी में सर्वत्र रहता है इस कारण कि ईश्वर आप विधान (अर्थात परिपाटी) ही है[५८]।

---

५५ कलीसिया मनुष्य के अन्दर है और न कि वह उस से बाहर है। और सारी कलीसिया ऐसे मनुष्यों की बनी है कि जिन के अन्दर कलीसिया आप है। न० ३८८४।

५६ वह मनुष्य जो एक कलीसिया है स्वर्ग के उस सूक्ष्म रूप में है जो स्वर्ग के सब से बड़े रूप के सदृश है। क्योंकि मनुष्य के भीतरी भाग (जो मन से संबन्ध रखते हैं) स्वर्ग के रूप पर प्रस्तुत किये गये हैं और इस कारण स्वर्ग की सब वस्तुओं के ग्रहण करने के योग्य हैं। न० ६११ · १९०० · १९२८ · ३६२४ से ३६३१ तक · ३६३४ · ३८८४ · ४०४१ · ४२७९ · ४५२३ · ४५२४ · ४६२५ · ६०१३ · ६०५७ · ९२७९ · ९६३२।

५७ मनुष्य के दो भाग हैं एक तो भीतरी है दूसरा बाहरी। और उस का भीतरी भाग सृष्टि से लेकर स्वर्ग के रूप पर बना रहता है। और उस का बाहरी भाग जगत के रूप पर बना रहता है। और इस लिये प्राचीन लोग मनुष्य को सूक्ष्मजगत बोलते हैं। न० ४५२३ · ४५२४ · ५३६८ · ६०१३ · ६०५७ · ९२७९ · ९७०६ · १०१५६ · १०४७२। इस निमित्त मनुष्य इस रीति से पैदा किया गया कि वह जगत कि जो उस में है स्वर्ग की सेवा करे। और वह सचमुच भले मनुष्यों में स्वर्ग की सेवा करता है। पर बुरे मनुष्यों में वह अवस्था उलटाई गई है अर्थात स्वर्ग जगत की सेवा करता है। न० ९२८३ · ९२७८।

५८ प्रभु तो विधान ही है क्योंकि उस ईश्वरीय भलाई और सचाई से जो प्रभु से प्रचलित है विधान उत्पन्न होता है। न० १७२८ · १९१९ · (२२०१) · २२५८ · (५११०) · ५७०३ · ८९८८ · १०३३० · १०६१९। क्योंकि ईश्वरीय सचाइयें विधान की विधियें हैं। न० २२४७ · ७९९५। जहां तक कि मनुष्य विधान के अनुसार चाल चलता है (अर्थात जहां तक वह उस भलाई में रहता है जो ईश्वरीय सचाइयों के अनुरूप है) वहां तक तो मनुष्य कहलाता है। और उस में कलीसिया और स्वर्ग वास करते हैं। न० ४८३९ · ६६०५ · (८०६७)।

५८। अन्त में हम को यह कहना है कि जिस मनुष्य में स्वर्ग है न केवल उस के उत्तमतम या सामान्य तत्त्वों में स्वर्ग है बरन स्वर्ग उस के छोटे से छोटे या विशेष तत्त्वों में भी रहता है। और मनुष्य में की छोटी सी छोटी वस्तुएं बड़ी सी बड़ी वस्तुओं की प्रतिमाएं हैं। वह बात इस विधि से है कि हर कोई अपने को प्यार करता है और उस के प्रधान प्रेम के गुण के समान है। क्योंकि प्रधान प्रेम छोटे से छोटे कणिकों के भीतर बहकर जाता है और उन को यथाक्रम रखता है और सर्वत्र अपना ही रूप धारण करता है[५९]। स्वर्ग में प्रभु से प्रेम रखना प्रधान प्रेम है क्योंकि वहां पर प्रभु सब बातों से बढ़कर प्यारा है और वह सब में सब कुछ है। प्रभु सब दूतगण में और प्रत्येक दूत में विराजमान होता है और उन को यथाक्रम रखता है और उन्हें अपने निज रूप को धारण करवाता है। और इसी रीति से वह यह ठहरवाता है कि जहां प्रभु है वहां स्वर्ग है। इस से कोई दूत स्वर्ग का सब से छोटा रूप है और स्वर्गीय सभा स्वर्ग का कुछ बड़ा सा रूप है और सब सभाएं मिलकर सर्वव्यापी स्वर्ग हैं। स्वर्ग तो प्रभु के ईश्वरत्व का है और जो कुछ वहां है सो उस ईश्वरत्व का भी है। इस बात का प्रमाण न० ७ से १२ तक देखा जा सकता है।

सर्वव्यापी स्वर्ग का यदि संचित रूप से विचार किया जावे तो वह एक मनुष्य के सदृश मालूम देगा।

५९। यह बात कि स्वर्ग अपने संचित रूप में एक मनुष्य के सदृश है एक रहस्य है जो अभी जगत में नहीं जाना गया परंतु स्वर्ग में वह संपूर्ण रूप से ज्ञात है। और उस बात का जानना और उसी की विशेषरूपी और सूक्ष्म ही सूक्ष्म बातों का जानना दूतगण के निकट उन की बुद्धि के सोच विचार करने के लिये सब से उत्तम प्रसङ्ग है। क्योंकि इस ज्ञान पर बहुत सी बातें अवलम्बित हैं जो अन्यथा उन की समझ में स्पष्ट रूप से नहीं आ सकेंगी। जब कि दूतगण जानते हैं कि स्वर्ग और स्वर्गीय सभाएं एक मनुष्य के सदृश हैं तो वे स्वर्ग को प्रधान पुरुष और देवकीय पुरुष[६०] कहते हैं। वे स्वर्ग को देवकीय इस वास्ते पुकारते हैं क्योंकि प्रभु के देवत्व का स्वर्ग बना है। देखो न० ७ से १२ तक।

६०। वे जिन को आत्मीय और स्वर्गीय बातों का ठीक ठीक बोध नहीं है उन को यह मालूम नहीं हो सकता कि मानुषक रूप उन आत्मीय और स्वर्गीय

---

५९ वह प्रेम जो प्रधान है सभों के जीव की सब वस्तुओं में और प्रत्येक वस्तु में रहता है और इस लिये वह सभों के ध्यान और मन की सब बातों में और प्रत्येक बात में बसता है। न० ६१५९ · ७६४८ · ८०६७ · ८८५८। क्योंकि मनुष्य अपने जीव के प्रधान तत्त्व के अनुरूप चलता है। न० (९१८) · १०४० · १५६८ · १५७१ · ३५७० · ६५७१ · ६९३४ · ६९३८ · ८८५४ · ८८५६ · ८८५७ · १००७६ · १०१०९ · १०११० · १०२८४। जब प्रेम और श्रद्धा प्रधान हैं तब वे मनुष्य के जीव की सूक्ष्म ही सूक्ष्म बातों में रहते हैं यद्यपि वे मनुष्य को मालूम नहीं देते हैं। न० ८८५४ · ८८६४ · ८८६५।

६० स्वर्ग की समष्टि मनुष्य के रूप पर दिखाई देती है इस लिये स्वर्ग आप प्रधान पुरुष कहलाता है। न० २९९६ · २९९८ · ३६२४ से ३६४९ तक · ३७४१ से ३७४५ तक · ४६२५।

बातों की परिपाटी और संयोग का चिह्न और उदाहरण है। क्योंकि वे इस बात की कल्पना करते हैं कि भौमिक और भौतिक वस्तुएं कि जिन की मनुष्य की उत्समावधि बनी है आप मनुष्य हैं और उन के विना मनुष्य मनुष्य नहीं है। इस के बदले मनुष्य इन वस्तुओं के हेतु मनुष्य नहीं कहा जा सकता पर इस वास्ते कि वह सचाई समझ सकता है और भलाई की इच्छा कर सकता है। क्योंकि ये आत्मीय और स्वर्गीय बातें वे ई हैं जिन का मनुष्य बना है। तिस पर भी यह प्रायः मालूम है कि समझ और मन का गुण किसी मनुष्य का गुण है। और यह भी जाना जाता है कि मनुष्य का भौतिक शरीर इस वास्ते बनाया गया था कि वह समझ और मन की सेवा करे और उन के अनुरूप प्रकृति के अन्तिम मण्डल में काम करे। इस कारण शरीर की आप से कुछ फुरती नहीं है परंतु वह निश्चय करके समझ और मन की आज्ञानुसार काम करता है। इस लिये जो कुछ कि मनुष्य के ध्यान में आता है सो वह अपने मन और जीभ से बोल उठता है और जो उस के मन में आता है सो वह शरीर से और शरीर के अंगों से प्रगट करता है। और इस से समझ और मन किसी क्रिया का कारक है न कि शरीर आप से आप काम करता है। इस से स्पष्ट है कि मनुष्य की बोधशक्ति और स्वेच्छा वे गुण हैं कि जिस से वह एक मनुष्य हो जाता है और वे गुण मनुष्य के रूप में हैं। क्योंकि वे गुण शरीर की सूक्ष्म ही सूक्ष्म वस्तुओं पर असर करते हैं जैसा कि कोई भीतरी गुण किसी बाहरी वस्तु पर असर करता है। और इस कारण उन गुणों के द्वारा मनुष्य को भीतरी और आत्मीय मनुष्य बोलते हैं। और स्वर्ग उसी भांति का मनुष्य है उस के सब से बड़ा और सब से संपन्न रूप में।

६१। वैसा ही है कि दूतगण मनुष्य के विषय ध्यान करते हैं इस लिये जिन कामों में मनुष्य अपने शरीर को लाता है उन पर दूतगण कभी कुछ ध्यान नहीं देते। परंतु उस संकल्प पर जिस करके शरीर कार्य करता है ध्यान करते हैं। क्योंकि वे उस संकल्प ही को मनुष्य जानते हैं और ज्ञानशक्ति को भी जहां तक वह संकल्प के अनुकूल काम करती है[६१]।

६२। दूतगण स्वर्ग की समष्टि मनुष्य के रूप पर नहीं देख सकते क्योंकि उन में से एक दूत की दृष्टि सर्वव्यापी स्वर्ग पर सब मिलकर कभी नहीं पड़ती। परंतु वे कभी कभी कुछ दूरस्थ सभाओं को जिन में हज़ारों दूतगण एकाई बनकर रहते हैं वैसे रूप पर देखते हैं। और एक सभा से (जैसा कि एक भाग से) वे सब सभाओं के विषय (अर्थात सारे स्वर्ग के विषय) अनुमान करते हैं। क्योंकि सब से संपन्न रूप में जैसे भाग हैं वैसा ही साकल्य है और जैसा साकल्य है वैसे

---

६१ मनुष्य का मन उस के जीव की सत्ता है और बुद्धि उस जीव का प्रकाशन है जो मन से निकलता है। न० ३६१९ • ५००२ • ६२८२। क्योंकि मन का जीव मनुष्य का श्रेष्ठ जीव है और उस से बुद्धि का जीव निकलता है। न० ५८५ • ५९० • ३६१९ • ७३४२ • ८८८५ • ९२८२ • १००७६ • १०१०९ • १०११०। मनुष्य अपने संकल्प के द्वारा मनुष्य होता है पीछे उस की बुद्धि के द्वारा। न० ८९११ • ९०६९ • ९०७१ • १००७६ • १०१०९ • १०११०।

ही भाग हैं। और उन की केवल यह भिन्नता है कि वे परिमाण में भिन्न भिन्न हैं[६२]। इस से दूतगण कहते हैं कि प्रभु के निकट सर्वव्यापी स्वर्ग ऐसा है जैसा कि दूतगण के निकट एक ही सभा देख पड़ती है। क्योंकि परमेश्वर सब कुछ उस के सब से भीतरी और सब से उत्तम अवस्था से देखता है।

६३। इस तौर पर स्वर्ग की परिपाटी है और प्रभु उस का अनुशासन करता है जैसा कि एक ही मनुष्य का अनुशासन किया जावे इस से एक ही अधिकारी के तौर पर। क्योंकि यह बात भली भांति मालूम है कि यद्यपि मनुष्य में असंख्य भांति भांति के पदार्थ (उस के सारे शरीर में और उस के शरीर के हर एक भाग में) पाए जाते हैं अर्थात सारे शरीर में अंग और इन्द्रिय और हृदय गुर्दे अन्तरियां इत्यादि हैं और शरीर के भागों में पट्ठे और नाड़ियां और रक्तशिराएं हैं और इसी रीति अंगो में अंग हैं और भागों में भाग तौ भी जब मनुष्य कुछ काम करता है तब वह एक एकाई बनकर काम करता है। ऐसी ही स्वर्ग की अवस्था है जो प्रभु के अधिकार और अनुशासन के बस में है।

६४। मनुष्य के अन्दर इतनी भिन्न भिन्न वस्तुएं मिलकर काम करती हैं क्योंकि उस में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो सारे शरीर के हित में उपकारक नहीं है और कुछ उपयोगी काम नहीं करती। साकल्य अपने भागों की सहाय करता है और वे भाग अपने साकल्य की सहाय करते हैं। क्योंकि साकल्य भागों का बना है और भाग सब मिलकर साकल्य बनाते हैं। इस कारण एक दूसरे के लिये उपकारक पदार्थों को प्रस्तुत करते हैं एक दूसरे से संबन्ध रखते हैं और एक दूसरे से ऐसे तौर पर संयुक्त हैं कि सब के सब (चाहे एकट्ठे हों चाहे अलग अलग हों) साकल्य से और साकल्य की भलाई से संबन्ध रखते हैं। इस लिये वे एकार्यचित्त होकर काम करते हैं। स्वर्ग में इसी तौर पर परस्पर संसर्ग हैं क्योंकि वहां भी सब के सब अपने अपने प्रयोजनों के अनुसार संयुक्त होते हैं। इस कारण वे जो सभा के हित में उपकारण नहीं हैं असदृश वस्तुएं होकर स्वर्ग में से गिराए जाते हैं। किसी उपकारक काम करने से यह अभिप्राय है कि सामान्य हित के निमित्त औरों की भलाई की इच्छा करना हो। और उपकारक काम के न करने से यह अभिप्राय है कि औरों की भलाई की इच्छा करना न सामान्य हित के लिये परंतु केवल अपने आप के लिये काम करना हो। वे जो ऐसा काम करते हैं अपने तई सब से बढ़कर प्यार करते हैं परंतु वे जो औरों की भलाई करने में सामान्य हित की इच्छा करते हैं प्रभु को सब से बढ़कर प्यार करते हैं। इस से जो स्वर्ग पर हैं एकार्यचित्त होकर काम करते हैं और उन का एक होना उन्हीं की ओर से नहीं होता परंतु प्रभु की ओर से होता है। क्योंकि वे उस ही को हर एक वस्तु का

---

६२ किसी प्रकार के नमक का रूप इस बात का दृष्टान्त है। क्योंकि यह भली भांति मालूम है कि किसी नमक के छोटे से छोटे कणिके का रूप उस नमक के संपूर्ण परिमाण के रूप के सदृश है चाहे वह तिकोनिया हो चाहे वह चट्कोण हो चाहे वह बेलन सरीखा या किसी और रूप का हो।

अकेला मूल जानकर उस के राज को एक ऐसा जनसमूह ठहराते हैं जिस का हित आकांक्षणीय है। यह प्रभु के इस वचन का तात्पर्य है कि "तुम पहिले प्रभु का राज और उस के धर्माचार को ढूंढ़ो तो ये सब वस्तुएं भी तुम्हें मिलेंगी"। (मत्ती पर्व ६ वचन ३३)। धर्माचार के ढूंढ़ने से तात्पर्य उस की भलाई है[६३]। इस जगत में जो अपने देश की भलाई को अपनी निज भलाई की अपेक्षा अधिक चाहते और प्यार करते हैं और अपने पड़ोसी की भलाई अपनी निज भलाई जानते हैं वे परलोक में प्रभु के राज को प्यार करते हैं और ढूंढ़ते हैं। क्योंकि वहां उन को उन के देश के स्थान प्रभु का राज मिलेगा। और वे जो औरों की भलाई की उन्नति होना चाहते हैं न कि स्वार्थ के निमित्त परंतु भलाई ही के निमित्त वे अपने पड़ोसी को प्यार करते हैं क्योंकि परलोक में भलाई आप पड़ोसी है[६४]। ये सब उस प्रधान पुरुष में समाते हैं अर्थात स्वर्ग में हैं।

६५। जब कि सर्वव्यापी स्वर्ग एक मनुष्य के सदृश है और एक देवकीय-आत्मीय मनुष्य उस के सब से बड़े रूप में बरन उस के आकार भी के विषय में है इस कारण मनुष्य की नाईं स्वर्ग को अंग और भाग का प्रभेद है। और उन विभागों के मनुष्य के अंगों और भागों के नाम भी हैं। दूतगण जानते हैं कि किस किस अंग में अमुक सभा समाती है और कहते हैं कि कोई सभा सिर में है या सिर के किसी भाग में। कोई सभा छाती में है या छाती के किसी भाग में। कोई सभा कटी में है या कटी के किसी भाग में इत्यादि इत्यादि। प्रायः उत्तमतर अर्थात तीसरा स्वर्ग सिर से लेकर गरदन तक होता है। मझला अर्थात दूसरा स्वर्ग छाती से लेकर कटि और घुटनों तक होता है। और अधरतर अर्थात पहिला स्वर्ग टांग से लेकर पांव की तली तक होता है। और बांह भी होते हैं कांधे से लेकर उंगलियों तक। क्योंकि बांह और हाथ यद्यपि पहलू पर हैं तो भी वे मनुष्य के अन्तिम भाग हैं। इस वृत्तान्त से यह स्पष्ट जान पड़ता है कि क्यों तीन स्वर्ग होते हैं।

६६। जो आत्मा किसी स्वर्ग के तले रहते हैं तब वे सुनते हैं और देखते हैं कि उन के ऊपर और नीचे भी अन्य स्वर्ग हैं तो वे बहुत अचम्भा करते हैं। क्योंकि वे इस जगत के लोगों की नाईं इस बात पर प्रतीति करते हैं कि स्वर्ग केवल उन के ऊपर है। और उन को इस बात का बोध नहीं है कि स्वर्गों की अवस्था मनुष्य के अंग और इन्द्रिय और अन्तरियों की नाईं है कोई कोई ऊपर

---

६३ धर्मपुस्तक में न्याय भलाई से संबन्ध रखता है और दण्ड सचाई से। इस से न्याय करने और दण्ड देने का तात्पर्य भला और सच्चा काम करना है। न० २२३५ • ९८५७।

६४ उत्तमतम तात्पर्य में प्रभु आप पड़ोसी है। इस लिये प्रभु को प्यार करने से उस को प्यार करना जो प्रभु की ओर से है तात्पर्य है। क्योंकि उन सब में जो उस की ओर से निकलते हैं वह आप रहता है। इस लिये जो भला और सच्चा है उसी को प्यार करना चाहिये। न० २४२५ • ३४१९ • ६७०६ • ६७११ • ८८१९ • ८८२३ • ८१२३। इस कारण प्रभु की ओर से जो भलाई है सो पड़ोसी है। और उस भलाई की इच्छा करना और उस को काम में लाना ऐसा है कि मानों पड़ोसी को प्यार करना। न० ५०२८ • १०३३६।

और कोई कोई नीचे हैं। और प्रत्येक अंग और इन्द्रिय और अन्तरी के भागों की नाई उन के अलग अलग स्थान भी हैं जिन में से कई एक भीतर हैं और कई एक बाहर। इस कारण उन को स्वर्ग के विषय केवल मिश्रित बोध है।

६७। ये सब बातें स्वर्ग के विषय उस के प्रधान पुरुष के रू के बारे में किसी को जानना अवश्य है इस हेतु कि वह पीछे आनेवाली बातों ेर भली भांति समझ सके। क्योंकि उन को छोड़कर स्वर्ग के रूप का कुछ स्पष्ठ बोध नहीं हो सकता। और न प्रभु का स्वर्ग से संयोग रखना समझा जा सकता है। और न स्वर्ग का मनुष्य से संयोग रखना ध्यान में आ सकता है। और न आत्मीय जगत के अन्तःप्रवाह का बहना प्राकृतिक जगत में मालूम हो सकता है। और प्रतिरूपता के विषय कुछ भी बोध नहीं हो सकता। ये सब बातें क्रम करके पीछे आनेवाली पृष्ठों के प्रसङ्ग होंगी। यहां उन का कुछ थोड़ा सा बयान हुआ इस कारण कि पीछे उन का समझना सहज हो जावे।

स्वर्गों में हर एक सभा एक मनुष्य के सदृश है।

६८। कभी कभी मुझे यह सामर्थ्य मिलता था कि मैं प्रत्येक स्वर्ग की सभा को जो एक मनुष्य के सदृश है बल्कि उस के रूप पर है अपनी आंखों से देखूं। बहुत से आत्मा जो ज्योति के दूतों का रूप धारण कर सकते थे एक बार स्वर्ग की सभाओं में से एक सभा में आन घुसे। क्योंकि वे कपटी थे। जब वे दूतों से अलग किया जाते थे तब मैं ने देखा कि सभा की सभा अस्पष्ट समूह का रूप बनकर देख पड़ने लगी। पीछे क्रम क्रम से वह मनुष्य का रूप पकड़ गई। पहिले तो अस्पष्ट रूप दिखाई देता था अन्त में स्पष्ट स्पष्ट देखने में आया। वे जो उस मानुषक रूप में थे और जिन का वह रूप बना हुआ था उसी सभा की भलाई में थे। बाक़ी सब जो उस मानुषक रूप में न समाते थे और जिन का वह न बना हुआ था वे कपटी थे और निकाल दिये गये थे। परंतु वे दूसरे अटके रखे गये और इस तौर वे अलग अलग किये गये थे। कपटी लोग अच्छी रीति से बोलते हैं और भली भांति काम करते हैं परंतु सब बातों में अपनपा देख काम करते हैं। वे प्रभु के और स्वर्ग के और प्रेम के और स्वर्गीय जीव के विषय में दूतगण की नाईं बोलते हैं और वे खुला खुली अच्छे काम भी करते हैं इस वास्ते कि उन के कार्यों और वचनों में सदृशता मालूम हो। परंतु उन का ध्यान और ही है क्योंकि वे किसी बात को सच नहीं जानते और अपने को छोड़कर और किसी की भलाई की इच्छा नहीं करते। इस कारण जो भलाई कि वे करते हैं केवल उन्हीं के हित के निमित्त की जाती है। और यदि दूसरों के वास्ते भलाई करते भी हों तौ भी उन का यह अभिप्राय है कि अन्य लोगों की दृष्टि उन के भले कामों पर पड़े इस कारण वह भी स्वार्थ के निमित्त है।

६९। मुझे इस बात का भी सामर्थ्य मिला कि मैं सारी दूतविषयक सभा को जो एक मनुष्यरूपा एकाई की नाईं देख पड़ती है और जिस में प्रभु प्रत्यक्ष

विराजमान है अपनी आंखों से देखूं। पूर्व की ओर ऊंचाई पर एक लाल सा सुफ़ेद बादल जो छोटे छोटे तारों से घेरा हुआ था दिखाई दिया। वह नीचे को उतरने लगा और ज्यों ज्यों वह उतरता आता था त्यों त्यों क्रम क्रम से वह अधिक स्पष्ट होता जाता था यहां तक कि होते होते उस ने मनुष्य का संपूर्ण रूप धारण किया। वे छोटे छोटे तारे जो बादल के चारों ओर थे दूतगण थे कि उस ज्योति के द्वारा जो प्रभु की ओर से प्रकाशमती होती है तारों की नाईं दिखाई देते थे।

७०। यह कहना चाहिये कि यद्यपि वे जो एक स्वर्गीय सभा में हैं सब मिलकर एक ही मनुष्यरूपी एकाई की नाईं देख पड़े तौ भी हर एक सभा का भिन्न भिन्न रूप है। और एक सभा का रूप दूसरी सभा के रूप से अलग है जैसा कि एक कुटुम्ब के हर एक व्यक्ति का चिहरा अलग अलग है जिस का हेतु न० ४७ में सूचित किया गया था। उन की भिन्नता उस भलाई के अनुसार होती है जिस में वे रहते हैं क्योंकि भलाई रूप को ठहराती है। जो सभाएं कि सब से भीतरी अर्थात सब से ऊंचे स्वर्ग में हैं सब से संपन्न और सुन्दर मनुष्यरूपी आकार पर दिखाई देती हैं।

७१। यह बात बयान करने के उचित है कि स्वर्ग की किसी सभा के रहनेवालों की संख्या के अनुसार और उन के एकाग्रचित्त होकर काम करने की अपेक्षा उस सभा का आकार अधिक मनुष्यरूपी होता जाता है। क्योंकि भिन्नता स्वर्गीय रूप पर प्रस्तुत होकर संपन्नता होती है जैसा कि न० ५६ में सूचित हो चुका। और संख्या से भिन्नता उपज आती है। स्वर्ग की हर एक सभा की संख्या प्रति दिन बढ़ती जाती है। और ज्यों ज्यों वह बढ़ती जाती है त्यों त्यों वह अधिक संपन्नता प्राप्त होती है। और इस संपन्नता से सर्वव्यापी स्वर्ग अधिक संपन्नता प्राप्त होता है। क्योंकि स्वर्ग सभाओं का बना है। जब कि संख्या के बढ़ जाने से स्वर्ग अधिक संपन्नता प्राप्त होता है तो इस से स्पष्ट है कि जो लोग इस पर प्रत्यय करते हैं कि जब आत्माओं से स्वर्ग भरपूर हो जावेगा तब स्वर्ग का द्वार बन्द हो जावेगा बड़ी भूल चूक में पड़े हुए हैं। इस के विपरीत स्वर्ग कभी नहीं बन्द होगा क्योंकि जितना भरपूर होता जावेगा उतना ही उस की संपन्नता बढ़ती जावेगी। और इस लिये दूतगण इस से बढ़कर किसी बात की इच्छा नहीं करते कि नए नए आत्मा आनकर स्वर्ग में प्रवेश करें।

७२। सब मिलकर हर एक सभा मनुष्य के रूप पर देख पड़ती है। इस वास्ते कि सर्वव्यापी स्वर्ग उसी रूप पर है जैसा कि पिछले बाब में सूचित हुआ। और इस वास्ते से भी कि सब से संपूर्ण रूप में (जो स्वर्ग का रूप है) उस के सब भाग उस की समष्टि की प्रतिमाएं हैं और उन में से सब से छोटे भाग बड़े से बड़े भागों के प्रतिरूप हैं। स्वर्ग की छोटी सी वस्तुएं और भाग वे सभाएं हैं कि जिन का स्वर्ग बना है। और वे स्वर्गों के छोटे से रूप हैं। जैसा कि ऊपर

न० ५१ से ५८ तक सूचित हो चुका है। यह सदृशता बराबर होती चली आती है क्योंकि स्वर्गों में सभों की भलाई एक ही प्रेम की ओर से निकलती है इस लिये सब का एक ही मूल है। वह एक प्रेम कि जिस से सब स्वर्गवासियों की भलाई निकलती है प्रभु से प्रेम करना है और वह प्रेम प्रभु की ओर से है। और इस कारण सर्वव्यापी स्वर्ग प्रायः उस की प्रतिमा है। और इस से उतरकर क्रम करके हर एक सभा और हर एक दूत भी उस की प्रतिमा है। इस प्रसङ्ग के बारे में जो कुछ हम न० ५८ में कह चुके हैं उस को देखिये।

हर एक दूत मनुष्य के संपूर्ण रूप पर है।

७३। पिछले दो बाब में बयान किया गया है कि स्वर्ग की समष्टि एक मनुष्य के सदृश है और इसी तौर पर स्वर्ग की हर एक सभा भी मनुष्य के सदृश है। और कारणों की श्रेणी जो वहां दी गई उस से यह सिद्धान्त भी निकलता है कि प्रत्येक दूत भी मनुष्य के रूप पर है। जब कि स्वर्ग मनुष्य का सब से बड़ा रूप है और स्वर्ग की सभा मनुष्य का कुछ न्यून रूप है तो एक दूत उस का न्यून से न्यून रूप है। क्योंकि सब से संपन्न रूप में (जो स्वर्ग का रूप है) हर एक भाग में समष्टि का प्रतिरूप है और समष्टि में हर एक भाग का प्रतिरूप है। यह प्रतिरूप इस वास्ते होता है कि स्वर्ग एक संगति है। क्योंकि सारा स्वर्ग अपनी निज वस्तुएं हर एक दूत को दे देता है और प्रत्येक दूत अपनी निज वस्तुओं को उसी संगति से पाता है। इस लिये एक दूत स्वर्ग का सब से छोटा रूप है क्योंकि इस गाढ़े संसर्ग होने के द्वारा वह सब स्वर्गीय वस्तुओं का पानेवाला है। इस की भी सूचना उचित स्थान पर ऊपर हो चकी थी। जितना मनुष्य स्वर्ग को ग्रहण करता है उतना ही वह एक पात्र भी है और स्वर्ग भी है और दूत भी है। जैसा कि ऊपर न० ५७ में सूचित हुआ। इस का बयान ऐपोकलिप्स की पोथी में यों लिखा गया है कि "उस ने पवित्र यिरूसलिम की भीतों को नापा तो उस मनुष्य के हाथ से जो दूत था एक सौ चौआलीस हाथ पाया"। (पर्व २१ वचन १७)। इस वचन में यिरूसलिम की बात का तात्पर्य प्रभु की कलीसिया है और इस से उत्तमतर उस का तात्पर्य स्वर्ग है[६५]। और उस की भीत सचाई है जो झूठ और बुराई की चोटों से बचाती है[६६]। एक सौ चौआलीस से तात्पर्य सब सचाई और भलाई की समष्टि है[६७]। नापने से उस का गुण मालूम होता

---

६५ यिरूसलिम कलीसिया है। न० ४०२ · ३६५४ · ६१६६।

६६ भीत से तात्पर्य झूठ और बुराई के हमला से सचाई की रक्षा करना है। न० ६४१६।

६७ बारह से तात्पर्य सब सचाइयों और भलाइयों की समष्टि है। न० ५७७ · २०८९ · २१२६ · २१३० · ३२७२ · ३८५८ · ३६१३। और इसी रीति से बहत्तर और एक सौ चौआलीस से भी वही तात्पर्य है जो बारह से क्योंकि एक सौ चौआलीस वह गुणनफल है जो बारह को बारह से गुणन करने से है। न० ७९७३। धर्मपुस्तक में सब संख्याओं से तात्पर्य वस्तुएं है। न० ४८२ · ४८७ · ६४७ · ६४८ · ७५५ · ८१३ · १९६३ · १९८८ · २०७५ · २२५२ · ३२५२ · ४२६४ · ४४९५ ·

है[९८]। मनुष्य सामान्य और विशेष तौर पर इन सब आत्मीय अवस्थाओं के अधीन है इस लिये स्वर्ग उस में है। और जब कि कोई दूत उन्हीं अवस्थाओं के द्वारा मनुष्य भी होता है तो यों कहा गया कि "मनुष्य के हाथ से जो दूत था"। यह तो इन बातों का आत्मीय तात्पर्य है और इस तात्पर्य के बिना कौन जान सकता है कि पवित्र यिरूसलिम की भीत से तात्पर्य "मनुष्य के हाथ से जो दूत था" होगा[९९]।

७४। अब मैं इस बात की परीक्षा करने का बयान करता हूं। मैं ने हज़ारों बेर आप देखा कि दूतगण मनुष्य के रूप पर है अर्थात वे आप मनुष्य हैं। क्योंकि मैं ने उन से बात चीत की जैसा कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से बोलता है। कभी मैं एक ही से बात करता था कभी बहुतों से परंतु मैं ने उन के रूपों में कुछ नहीं देखा जो मनुष्य के रूप से भिन्न था। कभी कभी मुझे उस बात पर बड़ा अचरज हुआ। पर कहीं कोई यह न कहे कि यह सब माजरा झूठ है या स्वप्न की लहर है ऐसे मत के निवारने के लिये मुझे यह सामर्थ्य मिला था कि मैं जब पूरा जागता था और मेरे शरीर के सब इन्द्रिय फुर्तीले थे और मैं संपूर्ण रूप से विवेकी था तब मैं ने उन सब बातों को देखा। मैं ने दूतों से बार बार यह कहा कि ईसाई मण्डली में लोग दूतगण और आत्माओं के विषय इतनी बड़ी अज्ञानता में पड़े हुए हैं कि वे यह बात निश्चय करते हैं कि दूतगण और आत्मा केवल रूपरहित मन मात्र थे अर्थात वे केवल समझनेवाले तत्त्व थे और उन लोगों को उन तत्त्वों के बारे में इस से और कोई बोध नहीं है कि वे जीनेवाली आकाशीय वस्तुएं हैं। और जब कि वे लोग किसी समझनेवाले तत्त्व को छोड़कर उन को मनुष्य का कोई अन्य तत्त्व नहीं देते तो वे इस बात पर विश्वास करते हैं कि दूतगण आंख के न होने से देख नहीं सकते कान के न होने से सुन नहीं सकते और मुंह और जीभ के न होने से बोल नहीं सकते। दूतगण ने यह जवाब दिया कि हम जानते हैं कि जगत में बहुत से लोग वैसे मत का अवलम्बन करते हैं और ज्ञानी लोगों में भी वह मत प्रबल है परंतु हम अचम्भा करते हैं कि पाद्री लोगों में भी वह मत प्रचलित है। दूतगण के निकट इस का यह हेतु है कि वे ज्ञानी लोग जो विद्या के द्वारा प्रसिद्ध थे और जिन्हों ने पहिले पहिल दूतगण और आत्माओं के विषय में वैसे बोध प्रकाश किये थे उन्हों ने बाहरी मनुष्य के विषयक तत्त्वों पर ध्यान दौड़ाए। वे जो इस रीति से उन तत्त्वों पर ध्यान दौड़ावेंगे और भीतरी ज्योति और वह सर्वसाधारण बोध जो हर एक के मन में है काम में न लावेंगे वे

५२६५। और गुणनफल का वही तात्पर्य है जो गुणय का और गुणक का होता है। न० ५२६१ · ५३३५ · ५७०८ · ७६७३।

९८ धर्मपुस्तक में नापने से तात्पर्य किसी वस्तु का गुण सचाई और भलाई के विषय में है। न० ३१०४ · ९६०३।

९९ धर्मपुस्तक के आत्मीय और भीतरी तात्पर्य के विषय उस मज़मून को देखो जो ऐपोकालिप्स पोथी में के सुफ़ेद घोड़े के बारे में है। और नया यिरूसलिम और उस का स्वर्गीय सिद्धान्त नामक पोथी में के उस बाब के अन्तभाग को देखो जो "बात" के बारे में है।

अवश्य करके उस भांति की लहरों की कल्पना करेंगे। क्योंकि प्राकृतिक वस्तुओं को छोड़कर बाहरी मनुष्य के विषयक तत्त्व कुछ भी नहीं समझ सकते। जो कुछ प्रकृति से ऊंचा है उस को वे समझ नहीं सकते। इस से आत्मीय लोक के विषय उन को कुछ भी ज्ञान नहीं हो सकता[७०]। ऐसे ऐसे पण्डित लोगों ने पथदर्शक होकर दूतगण के बारे सर्वसाधारण लोगों में जो पण्डितगण की बातों पर अवलम्बन करके आप से आप विचार नहीं करते सोच विचार करने की एक मिथ्या रीति प्रचलित की। और वे जो औरों की बात पर अवलम्बन करके उन बातों पर श्रद्धा लाते हैं पीछे अपने मन में सोच सोचकर उन बातों के छोड़ने में कष्ट उठाते हैं और इस वास्ते बहुधा वे उन के प्रमाण के स्थापन करने पर संतोष करते हैं। दूतगण ने यह भी कहा कि वे जो श्रद्धा और संकल्प में पवित्र हैं ऐसे ऐसे ध्यान दूतगण के विषय में नहीं रखते बल्कि दूतों को स्वर्गीय मनुष्य बोला करते हैं। क्योंकि उन्हों ने जो कुछ कि स्वर्ग के द्वारा उन के अन्दर स्थापित हुआ विद्या और पाण्डित्य से नहीं मिटाया और न वे किसी रूपरहित वस्तु का ध्यान कर सकते हैं। इस से कलीसियाओं में दूतगण सदैव मनुष्य के रूप पर दिखलाए गये हैं चाहे चित्रकारी में चाहे प्रतिमा बनाने में। जो स्वर्ग के द्वारा स्थापित हुआ उस के विषय में उन्हों ने यों कहा कि यह वह ईश्वरत्व है जो अन्तःप्रवाह के द्वारा उन्हीं को दिया गया है जो श्रद्धा और जीवन की भलाई में है।

७५। मैं परीक्षा लेने से कि जो बहुत बरसों से चला आता है आप दृढ़-रूप से कह सकता हूं कि दूत का रूप सर्वथा मानुषक रूप सरीखा है। दूतगण के मुंह आंख कान छाती बांह हाथ और पांव हैं। वे देखते हैं सुनते हैं और आपस में एक दूसरे से बात चीत करते हैं। और संक्षेप में बाहरी लक्षणों के विषय उन में भौतिक शरीर को छोड़कर कोई ऐसी घटती नहीं पाई जाती जो मनुष्यों में हो और उन दूतों में न हो। मैं ने उन की ज्योति के द्वारा उन को देखा और वह ज्योति जगत की दो पहर की ज्योति से कई अंश बढ़कर है। मैं ने उस ज्योति के द्वारा उन के चिहरों के सब भाग मनोयोग से देखा भाला। और इस जगत में मैं ने इतनी मनोयोगता से मनुष्य के चिहरों को कभी न देखा था। मुझ को यह विशेषाधिकार भी मिला कि मैं सब से भीतरी स्वर्ग का एक दूत देखूं। उस का चिहरा अधरतर स्वर्गों के दूत के चिहरों से अधिक चमकीला और प्रकाशमान था। मैं ने चित्त लगाकर उस का अवलोकन किया और मुझे मालूम हुआ कि उस का भी रूप ठीक ठीक मनुष्य का सा था।

---

७० जब तक मनुष्य बाहरी मनुष्य के विषयक तत्त्वों से आगे नहीं बढ़ता तब तक वह ज्ञान के पथ में बहुत थोड़ी दूर तक जाता है। न० ५०८९। पर ज्ञानी मनुष्य उन विषयक तत्त्वों के उत्तम ध्यान करता है। न० ५०८९ • ५०९४। जब कोई मनुष्य विषयक तत्त्वों से ऊपर चढ़ता है तब अधिक स्वच्छ ज्योति में चला जाता है और अन्त को स्वर्गीय ज्योति में बढ़ जाता है। न० ६१८३ • ६३१३ • ६३१५ • ९४०७ • ९७३० • ९९२२। प्राचीन लोग विषयक तत्त्वों से इस उन्नति और समाधि को जानते थे। न० ६३१३।

७६। तथापि कहना चाहिये कि कोई मनुष्य अपनी शरीरी आंखों से दूतगण को देख नहीं सकता परंतु वह केवल उस आत्मा की आंखों से जो उस के अन्दर है उन को देख सकता है[७१]। क्योंकि शरीर के सब इन्द्रिय प्राकृतिक जगत में है परंतु आत्मा आत्मीय जगत में। और जो जैसा होता है वह वैसे ही को देखता है क्योंकि उन की दृष्टि एक ही जड़ से है। सब लोग जानते हैं कि शरीर की दृष्टि का इन्द्रिय अर्थात आंख इतनी असंपूर्ण है कि वह विना सूक्ष्मदर्शकयन्त्र के किसी छोटी सी भूगोल की वस्तु को देख नहीं सकता। तो यह क्योंकर सम्भव हो कि उन वस्तुओं को जो प्रकृति से उत्तम है देख सकता है। क्योंकि वे सब आत्मीय जगत में हैं। तो भी जब मनुष्य शरीरी आंख को छोड़कर आत्मीय आंखें काम में लावे तब वह उन वस्तुओं को देख सकेगा। उस समय यह क्षण भर में होता है जब प्रभु की संमति हो कि मनुष्य आत्मीय वस्तुओं को देखें। और उस अवस्था में उस को ऐसी दृष्टि आती है जैसा कि शरीरी आंखों से दृष्टि आया करती है। इसी तौर पर हज़रत इब्राहीम और लाट और मनोआ और भावीवक्ताओं ने दूतगण को देखा। तथा इसी तौर पर प्रभु के चेलों ने प्रभु को उस के पुनरुत्थान होने के पीछे देखा। और इसी तौर पर मैं ने भी दूतगण को देखा। भावीवक्ताओं को इस लिये देखनेवाले भी और खुली हुई आंख सहित मनुष्य भी बोलते हैं (जैसा कि सामुएल की पहिली पोथी में पर्व ९ वचन ९ और गिनती की पोथी में पर्व २३ वचन ३ में है) क्योंकि उन्हों ने अपनी आत्मीय आंखों के द्वारा देखा। और इस आत्मीय दृष्टि खोलनी का नाम ही आंख का खोलना है। यही अवस्था इलेसा भावीवक्ता के नौकर की हुई जिस का बयान हम यों पढ़ते हैं कि "इलेसा ने प्रार्थना की और कहा हे प्रभु उस की आंखें खोल दीजिये कि यह देखे। तब प्रभु ने उस जवान की आंखें खोलीं और उस ने जो दृष्टि की तो देखा कि इलेसा के चारों ओर का पहाड़ अग्निमय घोड़ों और गाड़ियों से भरा हुआ है। (राजावली की दूसरी पोथी के पर्व ६ के वचन १७ को देखो)।

७७। वे अच्छे आत्मा जिन के साथ मैं ने इस प्रसङ्ग पर बात चीत की यह बात सुनकर निपट खेद होके कहने लगा कि क्या कलीसिया में स्वर्ग और आत्मा और दूतगण के बारे में इतनी अज्ञानता फैल गई है। और उन्हों ने क्रोध करके मुझे कह दिया कि जाकर कहो कि हम न तो रूपरहित मन हैं न आकाशीय भूत प्रेत हैं। हम मनुष्य सरीखे हैं और ठीक ठीक जगत के मनुष्यों के समान हम देख सकते हैं सुन सकते हैं और छू सकते हैं[७२]।

---

७१ मनुष्य अपने भीतरी भागों के विषय में एक आत्मा है। न० १५९४। और वह आत्मा आप ही आप मनुष्य है। क्योंकि शरीर आत्मा के सहाय जीता है। न० ४४७ · ४६२२ · ६०५४।

७२ हर एक दूत मनुष्य के रूप पर है इस वास्ते कि वह प्रभु की ओर से ईश्वरीय परिपाटी का ग्रहण करनेवाला है। और वह अपनी ग्रहणशक्ति के परिमाण के अनुसार संपन्न और सुन्दर है। न० ३२२ · १८८० · १८८१ · ३६३३ · ३८०४ · ४६२२ · ४७३५ · ४७९४ · ४७९७ · ४९८५ ·

सर्वव्यापी स्वर्ग और उस का प्रत्येक भाग मनुष्य के सदृश है क्योंकि उस का होना प्रभु के ईश्वरीय मनुष्यत्व से है।

७८। सर्वव्यापी स्वर्ग और उस का प्रत्येक भाग मनुष्य के सदृश है क्योंकि प्रभु के ईश्वरीय मनुष्यत्व से पैदा हुआ है यह एक सिद्धान्त है जो पहिली सब बातों के प्रसङ्ग से निकलता है। क्योंकि हम वहां दिखला चुके हैं कि (१) प्रभु स्वर्ग का परमेश्वर है। (२) स्वर्ग प्रभु के ईश्वरत्व ही का है। (३) स्वर्ग असंख्य सभाओं का बना है और प्रत्येक सभा स्वर्ग का एक छोटा सा रूप है और प्रत्येक दूत स्वर्ग का सब से छोटा रूप है। (४) सर्वव्यापी स्वर्ग सब मिलके एक मनुष्य के सदृश है। (५) स्वर्ग में हर एक सभा एक मनुष्य के सदृश है। (६) हर एक दूत मनुष्य के संपूर्ण रूप पर है। इन प्रमाणों से यह सिद्धान्त निकलता है कि ईश्वरत्व मनुष्य के रूप पर है क्योंकि स्वर्ग ईश्वरत्व का बना है। और यह ईश्वरत्व वही है जो प्रभु का ईश्वरीय मनुष्यत्व है। यह बात उन पीछे आनेवाले वाक्यों से जो आर्काना सीलेस्टिया नामक पोथी से चुन लेकर दृष्टान्तों के तौर पर इस बाब के अन्त में लिखे गये हैं अधिक स्पष्टता से और अधिक संक्षेप से जान पड़ेंगी। प्रभु की मनुष्यता केवल मानुषक मात्र नहीं बरन ईश्वरीय है जैसा कि कलीसिया के मेम्बर इन दिनों में मानते हैं। ऊपर कहे हुए वाक्य इस बात के प्रमाण हैं और अधिक प्रमाण ये वाक्य हैं जो नया यिरूसलिम और उस के स्वर्गीय सिद्धान्त नामक पोथी में के उस खण्ड में है जो प्रभु के विषय में है। न० २९८¹।

७९। बार बार परीक्षा करने से मुझे उस बात का प्रमाण स्पष्ट हुआ और उस का कुछ थोड़ा सा बयान मैं अब करता हूं। सारे स्वर्गों में कोई दूत ईश्वरत्व को मनुष्य के रूप के सिवाए और किसी रूप पर कभी नहीं देखता। और अचरज की बात यह है कि वे दूत जो उत्तमतर स्वर्गों में हैं ईश्वरत्व का और कुछ बोध नहीं कर सकते। उन के बोध की यह आवश्यकता ईश्वरत्व ही से बहती है। और स्वर्ग के रूप भी से होती है जिस के अनुसार उन का ध्यान फैल जाता है। क्योंकि दूतगण का प्रत्येक ध्यान उन के चारों ओर स्वर्ग में फैला हुआ होता है। और उन की बुद्धि और ज्ञान उस फैलाव के अनुसार होता रहता है। इसी वास्ते स्वर्ग में सब लोग प्रभु को मानते हैं क्योंकि केवल उस ही में ईश्वरीय मनुष्यत्व पाया जाता है। ये बातें न केवल दूतगण ही ने मुझ को बतलाईं बल्कि उन के मालूम करने का सामर्थ्य मुझ को तब मिला जब कि मैं स्वर्ग के भीतरी मण्डल में चढ़ गया। इस से स्पष्ट है कि जितने कि दूतगण ज्ञानी होते जाते हैं

५१९९ • ५५३० • ६०५४ • ९८७९ • १०१७७ • १०५९४। और ईश्वरीय सचाई वही तत्त्व है कि जिस के द्वारा परिपाटी उत्पन्न होती है परंतु ईश्वरीय सचाई परिपाटी का प्रधान तत्त्व है। न० २४५१ • ३१६६ • ४३९० • ४४०९ • ५२३२ • ७२५६ • १०१२२ • १०५५५।

उतने ही वे स्पष्ट रूप से मालूम करते हैं कि ईश्वर मनुष्य के रूप पर है और इसी वास्ते वे प्रभु का दर्शन पाते हैं। क्योंकि प्रभु ईश्वरीय दूतविषयक रूप पर (जो मनुष्य का रूप है) उन को दिखाई देता है जो दृश्य ईश्वरत्व पर विश्वास करते हैं। परंतु उन को नहीं जो अदृश्य ईश्वरत्व की पूजा करते हैं क्योंकि ये अपने ईश्वर को देख नहीं सकते पर वे अपने ईश्वर को देख सकते हैं।

८०। जब कि दूतगण अदृश्य ईश्वर का कुछ बोध नहीं कर सकते क्योंकि उन के निकट वैसा ईश्वर किसी रूपरहित ईश्वरत्व के समान है और उन को केवल मनुष्यरूपी दृश्य ईश्वरत्व मात्र का बोध है इस वास्ते प्रायः वे यह कहते हैं कि प्रभु आप ही मनुष्य है और हम भी उस की आज्ञा से मनुष्य हैं और प्रत्येक व्यक्ति भी जहां तक वह प्रभु को ग्रहण करता है वहां तक मनुष्य होता है। प्रभु को ग्रहण करने से तात्पर्य वे यह बयान करते हैं कि वह जो भलाई और सचाई प्रभु की ओर से है उस को ग्रहण करना है क्योंकि प्रभु अपनी निज भलाई और सचाई में रहता है। यह वही है जो वे बुद्धि और ज्ञान बोलते हैं और कहते हैं कि हर एक जानता है कि मनुष्य बुद्धि और ज्ञान के द्वारा मनुष्य होता है न कि उन गुणों के विना केवल चिहरे ही के द्वारा। इस बात की सचाई भीतरी स्वर्गों के दूतगण से प्रत्यक्ष होती है। वे प्रभु की भलाई और सचाई में हैं और इस कारण ज्ञान और बुद्धि में इसी हेतु वे सब से सुन्दर और उत्तम मनुष्यरूप को धारण करते हैं। इस के बदले निचले स्वर्गों के दूतगण कुछ कम सुन्दर और कुछ कम संपन्न रूप को धारण करते हैं। इस के स्थान नरक में सब कुछ और ही है क्योंकि जब स्वर्ग की ज्योति के सहाय नरक देखा जाता है तब वहां के निवासी मनुष्य सरीखे नहीं दृष्टि आते। वे राक्षसरूप धारण करते हैं। क्योंकि वे भलाई और सचाई में नहीं हैं पर बुराई और झूठ में इस कारण बुद्धि और ज्ञान के व्यत्यासों में। इस वास्ते उन का जीव जीवन नहीं कहाता पर आत्मीय मरण।

८१। जब कि सर्वव्यापी स्वर्ग और उस का प्रत्येक भाग मनुष्य के सदृश है क्योंकि उन का होना प्रभु के ईश्वरीय मनुष्यत्व से है इस लिये दूतगण कहते हैं कि हम प्रभु में हैं। और कोई कोई कहते हैं कि हम उस के शरीर में हैं। उन वाक्यों से यह तात्पर्य है कि वे प्रभु के प्रेम की भलाई में हैं जैसा कि प्रभु आप शिक्षा देता है और कहता है कि "मुझ में स्थायी रहो और मैं तुम में। जिस रीति से डाली आप से फल नहीं ला सकता मगर जब कि वह अंगूर के वृक्ष में लगी हो उसी रीति से तुम भी नहीं मगर जब कि मुझ में स्थायी हो। क्योंकि मुझ से अलग तुम कुछ नहीं कर सकते। तुम मेरे प्रेम में स्थायी रहो। जो तुम मेरी आज्ञाओं पर काम करो तो तुम मेरे प्रेम में स्थायी होगे। (देखो यूहन्ना की इञ्जील पर्व १५ वचन ४ से १० तक)।

८२। स्वर्ग में ईश्वरत्व के विषय में ऐसा बोध होकर हर एक मनुष्य के मन में जो स्वर्ग से कुछ अन्तःप्रवाह पाता है यह ध्यान गड़ गया है कि ईश्वर

मनुष्य का रूप धारण करता है। यही ध्यान प्राचीन लोगों को था और यही ध्यान आज कल के लोगों को भी है क्या कलीसिया में और क्या कलीसिया के बाहर। भोले लोग ईश्वर को अपने मन में यों देखते हैं कि मानों वह एक उज्ज्वलता से घेरा हुआ बुड्ढा मनुष्य है। परंतु यह अन्तर्जात बोध उन लोगों से बुझाया जाता है जो अपनी निज बुद्धि से या बुरा करने से स्वर्गीय अन्तःप्रवाह को दूर करते हैं। वे जो अपनी निज बुद्धि से उस बोध को बुझाते हैं अदृश्य ईश्वर को छोड़कर किसी अन्य ईश्वर के मानने की इच्छा नहीं करते। और वे जो बुरा करने से उस को बुझाते हैं कोई ईश्वर क्यों न हो कहीं उस के मानने की इच्छा नहीं करते। और न उन को मालूम है कि कोई ऐसा अन्तर्जात बोध किसी लोग के मन में है क्योंकि वह उन्हीं के मन में नहीं रहता। तो भी यह वही ईश्वरीय स्वर्गत्व है जो पहिले स्वर्ग से मनुष्य के अन्दर बहता है। क्योंकि मनुष्य स्वर्ग में जाने के लिये पैदा हुआ है परंतु कोई ईश्वरत्व के किसी बोध के विना स्वर्ग में नहीं जाता।

८३। इस कारण वे लोग जिन को स्वर्ग का (अर्थात उस ईश्वरत्व का जिस से स्वर्ग पैदा हुआ है) कुछ ठीक बोध नहीं है स्वर्ग के सब से नीचे द्वार ही तक उठाए नहीं जा सकते। क्योंकि वहां पहुंचते ही उन पर निवारणशक्ति और बलवान हटाव लगता है। इस वास्ते कि उन के भीतरी भाग (कि जिन को स्वर्ग ग्रहण करने के उचित होना चाहिये) स्वर्ग के रूप पर नहीं है और इस से बन्द होते हैं। और ज्यों ज्यों वे लोग स्वर्ग के निकट आते जाते हैं त्यों त्यों उन के भीतरी भाग ठोस कर बन्द होते जाते हैं। ये भाग्य उन लोगों के हैं जो कलीसिया के मेम्बर हैं पर प्रभु के नकारनेवाले हैं और उन लोगों के भी हैं जो (सोसिनियन लोग के सदृश) प्रभु के ईश्वरत्व को नकारते हैं। परंतु उन लोगों के विषय जो कलीसिया के बाहर जन्म लेते हैं और जो प्रभु को नहीं जानते क्योंकि उन के पास धर्मपुस्तक नहीं है पाछे कुछ थोड़ा सा बयान किया जावेगा।

८४। यह स्पष्ट है कि प्राचीन लोग ईश्वरत्व के मनुष्यत्व का कुछ बोध इस हेतु रखते थे कि ईश्वरीय रूप हज़रत इब्राहीम लाट योशुआ गिडेआन मनोआह और उस की स्त्री इत्यादि इत्यादि को आप दिखाई दिया। यद्यपि उन लोगों ने मनुष्यरूपी ईश्वर को देखा था तो भी वे उस को सर्वजगत का ईश्वर करके पूजा करते थे और उसे स्वर्ग और पृथिवी का ईश्वर और यिहोवाह करके पुकारते थे। इस से अतिरिक्त हज़रत इब्राहीम ने प्रभु को देखा और वह शिक्षा प्रभु (देखो यूहन्ना की पोथी में पर्व ८ वचन ५६) आप बखान कर देता है। और बाक़ी उन सब को प्रभु दृष्टि आया जैसा कि प्रभु के अपने वचन से स्पष्ट है जब कि उस ने अपने पिता की सूचना यों की और कहा कि "तुम ने कभी उस की वाणी नहीं सुनी और न उस का रूप देखा"। (देखो यूहन्ना पर्व १ वचन १८ · पर्व ५ वचन ३७)।

८५। वे लोग जो बाहरी मनुष्य के इन्द्रियों के द्वारा सब बातों का निर्णय करते हैं कठिनता से समझ सकते हैं कि प्रभु एक मनुष्य है। क्योंकि विषयी

मनुष्य जगत से और जगत के पदार्थों से अतिरिक्त ईश्वरत्व का और कुछ बोध नहीं कर सकता। इस लिये वह ईश्वरीय और आत्मीय मनुष्य का इस से और कुछ बोध नहीं कर सकता कि वह एक शरीरी और प्राकृतिक मनुष्य है। इस से वह मनुष्य इस बात का निश्चय करता है कि यदि ईश्वर एक मनुष्य है तो अवश्य है कि उस का परिमाण सर्वजगत के बराबर होता है। और यदि वह स्वर्ग और जगत का राज करता है तो बहुतेरे आफ़िसर लोग के द्वारा जगत के राजाओं के तौर पर राज करेगा। यदि ऐसे मनुष्य को यह कहा जावे कि स्वर्ग में इस तौर फैलाव नहीं है जैसा कि इस जगत पर है तो वह इस बात को कुछ नहीं समझेगा। क्योंकि जो कोई प्रकृति की और प्राकृतिक गति के द्वारा सोच करे उस को फैलाव का केवल ऐसा बोध है जैसा कि वह इस जगत में देखा करता है। परंतु स्वर्ग के विषय में इस तौर पर ध्यान करना बड़ी भारी भूल चूक है। स्वर्ग में ऐसा फैलाव नहीं है जैसा कि जगत पर है। क्योंकि जगत में फैलाव के सिवाने हैं और इसी वास्ते उस की नाप की जा सकती है। परंतु स्वर्ग में फैलाव बेसिवाने है इस लिये वह नापा नहीं जा सकता। हम स्वर्ग में के फैलाव के बारे में कुछ विशेष बयान करेंगे जब हम आत्मीय जगत के स्थान और काल की सूचना करेंगे। परंतु यह तो सब लोग जानते हैं कि आंख की दृष्टि कहां तक पहुंचती है सूर्य और तारों तक भी जो अत्यन्त दूरी पर हैं। और वे जो गम्भीरता से विचार करते हैं भली भांति जानते हैं कि भीतरी आंख अर्थात मन की आंख बाहरी आंख से बढ़कर अधिक दूर तक पहुंचती है। इस लिये अवश्य है कि अधिक भीतरी दृष्टि अधिक गहरी दूरी तक भी पहुंचती है। तो बतलाओ कि ईश्वरत्व की दृष्टि जो सब से भीतर और सब से तीक्ष्ण है कहां तक पहुंचती होगी। जब कि ध्यान इतने फैलाव के योग्य है तो (जैसा कि हम ऊपर बयान कर चुके हैं) स्वर्ग की सब वस्तुएं हर एक निवासी तक पहुंचती हैं और इसी हेतु ईश्वरत्व की सब वस्तुएं भी जिन का स्वर्ग बना है और जिन से वह मालामाल है उन को भी अवश्य पहुंचती होंगी।

८६। स्वर्ग के निवासी इस बात पर अचम्भा करते हैं कि वे मनुष्य अपने आप को ज्ञानी समझें जो ईश्वर को अदृश्य अर्थात किसी रूप पर अबोधनीय जानें और उन लोगों को बुद्धिरहित और भोले ठहरावें जिन को और ही बोध है किंतु वे सचाई के पथ पर चलते हैं। दूतगण कहते हैं कि यदि वे लोग जो अपने आप को ज्ञानी समझें क्योंकि वे यह ध्यान करते हैं कि ईश्वर का कोई रूप नहीं है परीक्षा करें तो उन को यह मालूम होगा कि वे ईश्वर के स्थान प्रकृति को देखते हैं। कोई कोई उस प्रकृति को जो प्रत्यक्ष दिखाई देती है मानते हैं कोई कोई उस को जो अदृश्य गहराइयों में रहती है मानते हैं। और वे इतने अंधे हुए हैं कि वे नहीं जानते कि ईश्वर क्या व्यक्ति है और दूत क्या वस्तु है और आत्मा क्या पदार्थ है और उन का अपना आत्मा जो मरने के पीछे जीता है क्या वस्तु

है और मनुष्य के अन्दर स्वर्ग का कौन सा जीव रहता है और बुद्धि के अन्य अन्य प्रसङ्गों को भी वे नहीं जानते। तो भी ये सब बातें उन लोगों को जिन को वे भोले बोलते हैं कुछ कुछ मालूम हो जाती हैं। क्योंकि इन का यह बोध है कि ईश्वर मनुष्यरूपी ईश्वरत्व है और दूत एक स्वर्गीय मनुष्य है और उन का अपना आत्मा जो मरने के पीछे जीता है दूतसरीखा है और मनुष्य के अन्दर स्वर्ग के जीव से तात्पर्य ईश्वर की आज्ञाओं के सदा अधीन रहना है। इस लिये दूतगण इन को ज्ञानी बोलते हैं और वे स्वर्ग के योग्य हैं। परंतु उस से विपरीत औरों को ज्ञानी नहीं कहते हैं[७३]।

---

७३ कुछ संग्रहीत वचन आर्काना सीलेस्टिया नामक पोथी से प्रभु के और उस के ईश्वरीय मनुष्यत्व के बारे में।

प्रभु में ईश्वरत्व उस के गर्भाधान होने ही से है। न० ४६४१ · ४९६३ · ५०४१ · ५१५७ · ६७१६ · १०१२५। और ईश्वरीय शुक्र उस ही में था। न० १४३८। क्योंकि उस का आत्मा यिहोवाह था। न० १९९९ · २००४ · २००५ · २०१८ · २०२५। इस लिये प्रभु का सब से भीतरी तत्त्व वही ईश्वरत्व आप था जिस ने माता से चोला पहिना। न० ५०४१। वह ईश्वरत्व आप प्रभु के जीव की सत्ता था जिस से पीछे मनुष्यत्व प्रचलित हुआ और उस सत्ता से जीव का प्रकाशन हो गया। न० ३१९४ · ३२१० · १०३७० · १०३७२।

किसी को कलीसिया के अन्दर जहां कि धर्मपुस्तक है कि जिस से प्रभु मालूम हो जाता है प्रभु के ईश्वरत्व का नकार नहीं करना चाहिये तथा वह पवित्र [आत्मा] जो उस से निकलता है उस का नकारना न चाहिये। न० २३५९। क्योंकि वे जो कलीसिया के अन्दर हैं और प्रभु को नहीं मानते ईश्वरत्व से कुछ संयोग नहीं रखते तो भी जो कलीसिया के बाहर हैं उन की और ही अवस्था है। न० १०२०५। क्योंकि कलीसिया की एक आवश्यकता की बात है कि उस के मेम्बर प्रभु के ईश्वरत्व को मानें और उस के अपने पिता से संयोग रखने को भी स्वीकार करें। न० १००८३ · १०११२ · १०३७० · १०७३० · १०७३८ · १०८१६ · १०८१७ · १०८१८ · १०८२०।

धर्मपुस्तक के बहुत से वचनों में प्रभु की स्तुति है। न० १०८२८। और वह बिना शङ्का हर एक मकान पर प्रत्येक प्रसंग का भीतरी तात्पर्य है। न० २२४९ · २५२३ · ३२४५। प्रभु ने अपने मनुष्यत्व की स्तुति की पर अपने ईश्वरत्व की स्तुति नहीं की क्योंकि ईश्वरत्व तो अपने आप में स्तुत किया गया था। न० १००५७। और वह इस हेतु जगत में आया कि अपने मनुष्यत्व की स्तुति करे। न० ३६३७ · ४१८० · ९३१५। क्योंकि मनुष्यत्व उस ईश्वरीय प्रेम के द्वारा जो उस में गर्भाधान होने से है स्तुत किया गया था। न० ४७२७। प्रभु का प्रेम सब मनुष्यजाति की ओर उस का जीव ही जगत में था। न० २२५३। और वह प्रेम मनुष्य की सारी बुद्धि से बढ़कर श्रेष्ठ है। न० २०७७। प्रभु ने अपने मनुष्यत्व की कीर्ति करने से मनुष्यजाति को मुक्ति दी। न० ४१८० · १००१९ · १०१५२ · १०६५५ · १०६५९ · १०८२८। क्योंकि यदि उस ने अपने मानुषक स्वभाव की कीर्ति न की होती तो सारी मनुष्यजाति का अनन्त काल तक विनाश किया गया होता। न० १६७६। प्रभु की महिमा और दीनता की अवस्थाओं के बारे में। न० १७८५ · १९९९ · २१५९ · ६८६६। जब प्रभु के विषय महिमा की बात काम में आती है तो उस से तात्पर्य प्रभु के मनुष्यत्व का उस के ईश्वरत्व से मिलना है। क्योंकि महिमा की स्तुति करना और ईश्वर करके मानना ये दोनों आपस में एक ही हैं। न० १६०३ · १००५३ · १०८२८। जब प्रभु ने अपने मनुष्यत्व की स्तुति की तब उस ने उस मनुष्यत्व को जो अपनी माता से पाया था दूर किया यहां तक कि अन्त में वह उस का पुत्र ही न रहा। न० २१५९ · २५७४ · २६४९ · ३०३६ · १०८३०।

ईश्वर का पुत्र अनन्त काल से स्वर्ग में की ईश्वरीय सचाई है। न० (२६२८) · (२७९८) · २८०३ · ३१९५ · ३७०४। प्रभु ने अपनी मानुषक ईश्वरीय सचाई को उस ईश्वरीय भलाई से बनाया जो उस में थी जब वह जगत में था। न० २८०३ · ३१९४ · ३१९५ · ३२१० · ६७१६ · ६८६४ ·

स्वर्ग में जो जो वस्तुएं हैं सब की सब मनुष्य की सब वस्तुओं से प्रतिरूपता रखती हैं।

८७। आज कल कोई नहीं जानता कि प्रतिरूपता कौन सी वस्तु है। और यह अज्ञानता कई एक कारण से उत्पन्न होती है। परंतु इस का मुख्य कारण यह है कि मनुष्य ने आत्मप्रेम और जगतप्रेम के द्वारा अपने को स्वर्ग से दूर किया। क्योंकि वह जो सब वस्तुओं से बढ़कर अपने को और जगत को प्यार करता है

७०१४ • ७४६६ • ८१२७ • ८७२४ • ३१६५ • ३२१० • ६७१६ • ६८६४ • ७०१४ • ७४६६ • ८१२७ • ८७२४ • ६१६६। और उस ने अपनी सब वस्तुओं को एक स्वर्गीय रूप पर जो ईश्वरीय सचाई के अनुसार है उसी समय प्रस्तुत किया। न० १६२८ • ३६३३। इसी हेतु प्रभु वाक् कहलाता है जो कि ईश्वरीय सचाई है। न० २५३३ • २८१३ • २८५६ • २८६४ • ३३६३ • ३७१२। केवल प्रभु ही से उस के अपने चैतन्य और ध्यान थे और वे गुण सब दूतविषयक चैतन्य और ध्यान से कहीं बढ़कर थे। न० १६०४ • १६१४ • १६१६।

प्रभु ने ईश्वरीय सचाई जो प्रभु आप है उस ईश्वरीय भलाई से जो अपने अन्दर है मिलाई। न० १००४७ • १००५२ • १००७६। और वह संयोग अन्योन्य था। न० २००४ • १००६७। जब प्रभु इस जगत से चला गया तब उस ने अपनी मानुषक ईश्वरीय भलाई बनाई। न० ३१६४ • ३२१० • ६८६४ • ७४६६ • ८७२४ • ६१६६ • १००७६। पिता की ओर से उस का आना और पिता की ओर को फिर जाना इन दो वाक्य से वही तात्पर्य है। न० ३२१० • ३७३६। और इसी तौर पर वह पिता के साथ एक ही हो गया। न० २७५१ • ३७०४ • ४७६६। उस समय से लेकर ईश्वरीय सचाई प्रभु की ओर से चलती है। न० ३७०४ • ३७१२ • ३६६६ • ४५७७ • ५७०४ • ७४६६ • ८१२७ • ८२४१ • ६१६६ • ६३६८। वह रीति कि जिस से ईश्वरीय सचाई प्रभु से चलती है प्रकाशित है। न० ७२७० • ६४०७। प्रभु ने अपनी निज शक्ति के द्वारा अपना मनुष्यत्व अपने ईश्वरत्व से मिलाया। न० १६१६ • १७४६ • १७५२ • १८१३ • १६२१ • २०२५ • २०२६ • २५२३ • ३१४१ . ५००५ • ५०४५ • ६७१६। इस से प्रत्यक्ष है कि प्रभु का मनुष्यत्व अन्य मनुष्य के मनुष्यत्व के सदृश न था क्योंकि ईश्वरत्व हो ने उस को गर्भ में जना। न० १०१२५ • १०८२६। उस का संयोग पिता से जिस करके उस ने अपने आत्मा को पाया दो व्यक्ति के संयुक्त होने के सदृश न था परंतु आत्मा और शरीर के संयुक्त होने के सदृश था। न० ३७३७ • १०८२४।

सब से प्राचीन लोग ईश्वरीय सत्ता की पूजा नहीं कर सके परंतु ईश्वरीय प्रकाशन की (जो ईश्वरीय मनुष्यत्व है) पूजा करते थे। और इस कारण प्रभु जगज में आया कि वह ईश्वरीय सत्ता से ईश्वरीय प्रकाशन बन जावे। न० ४६८७ • ५३२१। प्राचीन लोग इस कारण ईश्वरत्व को मानते थे कि वह उन को मनुष्य के रूप पर (जो ईश्वरीय मनुष्यत्व था) दिखाई दिया। न० ५११० • ५६६३ • ६८४६ • १०७३७। ईश्वरीय मनुष्यत्व में से होकर पार जाने को छोड़ असीमक सत्ता न तो दूतगण में स्वर्ग के भीतर बह सकती है न मनुष्यों में। न०। न० (१६४६) • १६६० • २०१६ • २०३४। स्वर्ग में ईश्वरीय मनुष्यत्व को छोड़ और कोई ईश्वरत्व मालूम नहीं है। न० ६४७५ • ६३०३ • (६३८७) • १००६७। अनन्त काल से लेकर ईश्वरीय मनुष्यत्व स्वर्ग में की ईश्वरीय सचाई और स्वर्ग से गजरनेवाला ईश्वरत्व होता चला आया है। अतएव ईश्वरीय प्रकाशन मालूम हुआ जो पीछे प्रभु में आप से आप ईश्वरीय सत्ता हो गया और इस से स्वर्ग में ईश्वरीय प्रकाशन होता है। न० ३०६१ • ६२८० • ६८८० • १०५७६। स्वर्ग की अवस्था का गुण प्रभु के आने से पहिले प्रकाशित किया गया। न० ६३७१ • ६३७२ • ६३७३। उस समय ईश्वरत्व दृश्य न था इस समय को छोड़ कि जब स्वर्ग से होकर पार हुआ। न० ६६८२ • ६६६६ • ७००४।

सब लोकों के निवासी मनुष्यरूपी ईश्वरत्व की पूजा करते हैं अतएव प्रभु की। न० ६७००• ८५४१ से ८५४७ तक • १०७३६ • १०७३७ • १०७३८। और जब वे सुनते हैं कि ईश्वर सच मुच मनुष्य था तब वे हर्ष करते हैं। न० ६३६१। प्रभु उन सब को ग्रहण करता है जो भलाई में रहते

लौकिक वस्तुओं ही को देखता है। क्योंकि वे वस्तुएं बाहरी इन्द्रियों को प्रसन्न करती हैं और स्वाभाविक शील को संतुष्ट करती हैं। और वे उन आत्मीय वस्तुओं की कुछ भी अभिलाषा नहीं करते जो भीतरी इन्द्रियों को प्रसन्न करती हैं और बुद्धिमान मन को संतुष्ट करती हैं। और इस कारण ऐसे मनुष्य आत्मीय वस्तुओं को

हैं और जो मनुष्यरूपी ईश्वरत्व की पूजा करते हैं। न० ६३५६। मनुष्यरूपी ईश्वर को छोड़कर ईश्वर का कुछ बोध नहीं हो सकता परंतु जो कुछ अबोधनीय है सो किसी बोध में नहीं पड़ता इस निमित्त श्रद्धा की कोई वस्तु नहीं हो सकती। न० ६३५६ · ६६७२। क्योंकि मनुष्य उस वस्तु की पूजा करने के योग्य है जिस का उस को कुछ बोध होता है न कि जिस का उस को कुछ बोध नहीं। न० ४७३३ · ५११० · ५६३३ · ७२११ · ६३५६ · १००६७। इस कारण जगत में प्रायः सब लोग स्वर्ग से अन्तःप्रवाह के हेतु ईश्वरत्व की पूजा मनुष्य के रूप पर करते हैं। न० १०१५६। सब लोग जो जीवन के विषय भलाई में हैं जब वे प्रभु का ध्यान करते हैं तब वे ईश्वरीय मनुष्यत्व का ध्यान करते हैं न कि मनुष्यत्व का ईश्वरत्व से अलग ध्यान। परंतु उन लोगों की (जो जीवन के विषय भलाई में नहीं है) और ही अवस्था है। न० २३२६ · ४७२४ · ४७३१ · ४७६६ · ८८७८ · ६१६३ · ६१६८। आज कल कलीसिया में जो लोग जीवन के विषय बुराई में हैं और वे भी जो अनुग्रहरहित श्रद्धा में हैं प्रभु के ईश्वरत्वरहित मनुष्यत्व का ध्यान करते हैं और इस कारण समझ नहीं सकते कि ईश्वरत्व क्या वस्तु है। इस के कई एक हेतु हैं देखो न० ३२१२ · ३२४१ · ४६८६ · ४६६२ · ४७२४ · ४७३१ · ५३२१ · (६३७२) · ८८७८ · ६१६३ · ६१६८। प्रभु का मनुष्यत्व ईश्वरीय है क्योंकि वह पिता की सत्ता की ओर से (जो उस का आत्मा है) उत्पन्न हुआ। और किसी पिता की उस के लड़केवाले की समरूपता उस का एक दृष्टान्त है। न० १०२६६ · (१०३७२) · १०८२३। और क्योंकि वह ईश्वरीय प्रेम से हुआ जो गर्भाधान होने से लेकर उस के जीव की सत्ता ही है। न० ६८७२। हर एक मनुष्य अपने प्रेम के सदृश है इस लिये वह अपने निज प्रेम को है। न० ६८७२ · १०१७७ · १०२८४। प्रभु ने सब मनुष्यत्व (क्या भीतरी क्या बाहरी) ईश्वरीय किया। न० १६०३ · १८१५ · १६०२ · १६२६ · २०८३ · २०६३। और इस कारण वह सारे शरीर के विषय अन्य मनुष्यों से विपरीत जीते फिर उठा। न० १७२६ · २०८३ · ५०७८ · १०८२५।

प्रभु का मनुष्यत्व ईश्वरीय है इस को उस की पवित्र बियारी खाने के समय उस की विद्यमानता स्वीकार करती है। न० २३४३ · (२३५६)। और उस का रूपान्तरग्रहण उस के तीन चेलों के साम्हने अधिक प्रमाण है। न० ३२१२। और पुरातननियम के वचनों में इस का प्रमाण है जहां वह ईश्वर कहाता है। न० १०२५४। और वह यिहोवाह कहलाता है। न० (१६०३) · १७३६ · १८१५ · १६०२ · २६२१ · ३०३५ · ५११० · ६२८१ · ६३०३ · ८८६४ · ६१६४ · ६३१५। पिता और पुत्र का तथा यिहोवाह और प्रभु का कुछ प्रभेद है शब्दों ही के तात्पर्य के अनुसार। परंतु भीतरी तात्पर्य के अनुसार (जिस में दूतगण रहते हैं) कुछ प्रभेद नहीं है। न० ३०३५। ईसाई मण्डली में कहा गया था कि प्रभु का मनुष्यत्व ईश्वरीय नहीं है और यह मत एक कौन्सिल अर्थात सभा ने पोप पादरी के हेतु प्रचलित किया इस आशा पर कि उस के द्वारा पोप पादरी प्रभु का क़ाइम-मकान हो जावे। न० ४७३८।

परलोक में एक ही ईश्वर के विषय में कई एक ईसाई लोगों के बोध की परीक्षा की गई तब तो मालूम हुआ कि उन को तीन ईश्वर का बोध था। न० २३२६ · ५२५६ · १०७३६ · १०७३७ · १०७३८ · १०८२१। एक ही व्यक्ति के विषय त्रिमूर्त्ति का अर्थात ईश्वरीय त्रय का कुछ बोध हो सके इस से एक ईश्वर का भी वैसा बोध हो सके न कि तीन व्यक्ति का। न० १०७३८ · १०८२१ · १०८२४। और प्रभु में वैसे ईश्वरीय त्रय का होना स्वर्ग में मानते हैं। न० १४ · १५ · १७२६ · २००५ · ५२५६ · ६३०३। प्रभु में का त्रय यह तीनों है अर्थात ईश्वरत्व आप जो पिता कहलाता है ईश्वरीय मनुष्यत्व जो पुत्र कहाता है और ईश्वरीय प्रचलन जो पवित्र आत्मा बोलते हैं और यह त्रय एक ही है। न० २१४६ · २१५६ · २२८८ · २३२१ · २३२६ · २४४७ · ३७०४ · ६६६३ · ७१८२ · १०७३८ · १०८२२ · १०८२३। प्रभु आप यह शिक्षा देता है कि मैं और मेरा पिता एक ही हैं। न० १७२६ · २००४ · २००५ · २०१८ · २०२५ · २७५१ · ३७०४ · ३७३६ · ४७६६। और वह

दूर करते हैं और कहते हैं कि वैसी वस्तुएं इतनी उत्कृष्ट हैं कि वे हमारी समझ से बाहर हैं। प्राचीन लोगों की और ही अवस्था थी क्योंकि उन के निकट प्रतिरूपता की विद्या सब विद्याओं से उत्तम थी। वे उस विद्या से बुद्धि और ज्ञान को निकालते थे। और जो कलीसिया में थे उन का उस के द्वारा स्वर्ग से कुछ संसर्ग हुआ। क्योंकि प्रतिरूपता की विद्या दूतविषयक विद्या है। सब से प्राचीन लोग जो स्वर्गीय मनुष्य थे दूतगण के सदृश प्रतिरूपों के द्वारा सच मुच ध्यान करते थे और उन के सहाय दूतगण के साथ बात चीत भी करते थे। और बार बार प्रभु की प्रत्यक्ष विद्यमानता से शिक्षा पाते थे। परंतु इन दिनों में वह विद्या इतने संपूर्ण रूप से खो गई है कि लोग नहीं जानते कि प्रतिरूपता की विद्या कौन सी वस्तु है[७४]।

यह भी कहता है कि पवित्र आत्मा उस की ओर से प्रचलित होता है और उस ही का है। न० ३९६९ · ४६७३ · ६७८८ · ६९९३ · ७४९९ · ८१२७ · ८३०२ · ९१९९ · (९२२८) · ९२२९ · ९२७० · ९४०७ · ९८१८ · ९८२० · १०३३०।

ईश्वरीय मनुष्यत्व स्वर्ग के अन्दर बहता है और स्वर्ग उस से बना है। न० ३०३८। क्योंकि प्रभु स्वर्ग की समष्टि है और स्वर्ग का जीव है। न० ७२११ · (९१२८)। प्रभु दूतगण के भीतर अपने निज तत्त्वों में वास करता है। न० ९३३८ · १०१२५ · १०१५१ · १०१५७। इस से वे जो स्वर्ग में हैं प्रभु में हैं। न० ३६३७ · ३६३८। उस की ओर से प्रेम और अनुग्रह इन दोनों की भलाई के ग्रहण करने के अनुसार दूतगण के साथ प्रभु का संयोग करना होता है। न० ९०४ · ४१९८ · ४२०५ · ४२११ · ४२२० · (६२८०) · ६८३२ · ७०४२ · ८८१९ · ९६८० · ९६८२ · ९६८३ · (१०१०६) · (१०८११)। सर्वव्यापी स्वर्ग प्रभु से संबन्ध रखता है। न० ५५१ · ५५२। और वह स्वर्ग का सामान्य केन्द्र है। न० ३६३३। वे जो स्वर्ग में हैं प्रभु की ओर मुंह फिराते हैं और वह स्वर्ग के ऊपर है। न० ९८२८ · १०१३० · १०१८९। तिस पर भी दूतगण अपने आप को प्रभु की ओर मुंह नहीं फिराते परंतु प्रभु आप उन को अपनी ओर फिराता है। न० १०१८९। दूतगण की विद्यमानता प्रभु के साथ नहीं है परंतु प्रभु की विद्यमानता दूतगण के साथ रहती है। न० ९४१५। स्वर्ग में ईश्वरत्व अपने साथ कुछ संयोग नहीं रखता बरन ईश्वरीय मनुष्यत्व के साथ। न० ४२११ · ४७२४ · (५६३३)।

स्वर्ग तो प्रभु के ईश्वरीय मनुष्यत्व का प्रतिरूप है और इस से सर्वव्यापी स्वर्ग एक मनुष्य के सदृश है और इस कारण स्वर्ग प्रधान पुरुष कहलाता है। न० २९९६ · २९९८ · ३६२४ से ३६४९ तक · ३७४१ से ३७४५ तक। ४६२५। प्रभु अकेला पुरुष है और वे ही मनुष्य हैं जो उस की ओर से ईश्वरत्व पाते हैं। न० १८९४। जितना वे उस को ग्रहण करते हैं उतना ही वे मनुष्य होते हैं और उस की प्रतिमाएं हो जाते हैं। न० ८५४७। दूतगण इस कारण प्रेम और अनुग्रह के मानुषक रूप हैं और वह अवस्था प्रभु की ओर से है। न० ३८०४ · ४७३५ · ४७९७ · ४९८५ · ५१९९ · ५५३० · ९८७९ · १०१७७।

सर्वव्यापी स्वर्ग प्रभु का है। न० २७५१ · ७०८६। और स्वर्ग में और पृथिवी में सब कुछ उस के बस में है। न० १६०७ · १००८९ · १०८२७। प्रभु सर्वव्यापी स्वर्ग का और सब वस्तुएं जो उस पर अवलम्बित हैं उन पर राज करता है और इस कारण वह जगत की सब वस्तुओं पर राज करता है। न० २०२६ · २०२७ · ४५२३ · ४५२४। नरकों को दूर करना प्रभु ही के अधीन है और पापों से बचा रखना और धर्म के पथ में चलाना और इस से मुक्ति देना भी। न० १००१९।

७४ प्रतिरूपता की विद्या और सब विद्याओं से कहां तक उत्तमतर है। न० ४२८०। प्राचीन लोगों के निकट वह सब से उत्तम विद्या थी पर अब वह मिटाई गई है। न० ३०२४ · ३४१९ · ४२८० · ४७४९ · ४८४४ · ४९६४ · ४९६६ · ६००४ · ७७२९ · १०२५२। वह पूर्वदेशवालों में प्रसिद्ध हुई और मिसर में। न० ५७०२ · ६६९२ · ७०९७ · ७७७९ · ९३९१ · १०४०७।

८८। प्रतिरूपता की विद्या के विना सम्भव नहीं है कि आत्मीय जगत और प्राकृतिक जगत के अन्दर उस के अन्तःप्रवाह का जाना तथा आत्मत्व का प्रकृति से मिलाना तथा मनुष्य का आत्मा जो जीव कहलाता है तथा आत्मा का शरीर पर असर करना तथा मरने के पीछे मनुष्य की अवस्था उन सब बातों के विषय में स्पष्ट रूप से कुछ मालूम होवे। इस कारण अवश्य है कि प्रतिरूपता के स्वभाव का बयान किया जावे और इस रीति से आनेवाले प्रसङ्गों का पथ प्रस्तुत किया जावे।

८९। पहिले तो यह बयान किया जाता है कि प्रतिरूपता कौन सी वस्तु है। सारा प्राकृतिक जगत आत्मीय जगत से न कि केवल उस की समष्टि के विषय में बल्कि उस के प्रत्येक भाग के विषय में भी प्रतिरूपता रखता है। और इस लिये जो कुछ कि आत्मीय जगत की ओर से प्राकृतिक जगत में विद्यमान है उस का कोई प्रतिरूप है कि जिस से उस का होना है। क्योंकि प्राकृतिक जगत आत्मीय जगत के द्वारा होता है और बना रहता है। जैसा कि कोई कार्य उस के कारक के द्वारा होता है। जो कुछ सूर्य के नीचे है और उस की गरमी और ज्योति पाता है प्राकृतिक जगत बोलते हैं। और प्राकृतिक जगत की वस्तुएं वे वस्तुएं हैं जो उस गति में रहती हैं। पर आत्मीय जगत स्वर्ग है और स्वर्ग की सब वस्तुएं उस जगत की वस्तुएं हैं।

९०। जब कि मनुष्य एक स्वर्ग है और वह एक ऐसा जगत भी है जो सब से बड़े आकार के अनुरूप सूक्ष्म ही सूक्ष्म रूप पर है (देखो न० ५४) इस कारण उस में एक आत्मीय जगत भी है और एक प्राकृतिक जगत भी है। भीतरी भाग जो उस के मन के हैं और जो बुद्धि और संकल्प से संबन्ध रखते हैं उस का आत्मीय जगत है। परंतु बाहरी भाग जो उस के शरीर के हैं और जो उस के इन्द्रियों और कार्यों से संबन्ध रखते हैं उस का प्राकृतिक जगत है। इसी हेतु उस के प्राकृतिक जगत में अर्थात उस के शरीर में और शरीर के इन्द्रियों और कार्यों में जो कुछ उस के आत्मीय जगत की ओर से अर्थात उस के मन से और मन की बुद्धि और इच्छा से होता है सो प्रतिरूपक कहलाता है।

९१। प्रतिरूपता का स्वभाव मानुषक चिहरे में देखा जाता है। क्योंकि उस चिहरे में जो कपट करने के अधीन न हो मन के सब प्रेम स्वाभाविक रीति पर प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं जैसा कि उन प्रेमों की प्रतिमूर्ति में। और इस कारण चिहरा मन का दर्शक कहाता है। इस लिये मनुष्य का आत्मीय जगत उस के प्राकृतिक जगत में दृश्य है और इसा तौर पर उस की बुद्धि के बोध उस की बोलचाल में दृश्य हैं और उस के मन के सिद्धान्त उस के शरीर की गतियों में इन्द्रियगोचर हो जाते हैं। सब बातें जो शरीर में होती जाती हैं चाहे चिहरे में चाहे बोलचाल में चाहे गतियों में प्रतिरूप कहलाती हैं।

९२। भीतरी और बाहरी मनुष्य की भिन्नता प्रतिरूपों की इसी विधि से स्पष्ट रूप से जान पड़ेगी। क्योंकि भीतरी मनुष्य आत्मीय मनुष्य कहलाता है और

बाहरी मनुष्य प्राकृतिक मनुष्य कहाता है। और एक दूसरे से इतना भिन्न है जितना स्वर्ग जगत से भिन्न है। जो जो क्रियाएं बाहरी अर्थात प्राकृतिक मनुष्य में की जाती और होती हैं सब की सब भीतरी अर्थात आत्मीय मनुष्य की ओर से की जाती और होती हैं।

९३। यहां तक तो बाहरी अर्थात प्राकृतिक मनुष्य से भीतरी अर्थात आत्मीय मनुष्य के प्रतिरूपों का बयान हो चुका है। अब हम मनुष्य के पृथक पृथक भाग से सारे स्वर्ग के प्रतिरूप का बयान करेंगे।

९४। इस बात का बयान हो चुका है कि सर्वव्यापी स्वर्ग एक मनुष्य के सदृश है और वह मनुष्य के रूप पर है और इसी हेतु प्रधान पुरुष कहाता है। इस बात का बयान भी हो चुका है कि दूतविषयक सभाएं जिन का स्वर्ग बना है मनुष्य के अंग और इन्द्रिय और अन्तरियों के सदृश क्रम करके प्रस्तुत की गईं जिस कारण उन में से कोई सिर में हैं कोई छाती में कोई बांह में और कोई इन अंगों के प्रत्येक भाग में हैं (देखो न० ५९ से ७२ तक)। इस कारण स्वर्ग में जो जो सभाएं जिस जिस अंग में होती हैं वे मनुष्य के उसी अंग से प्रतिरूपता रखती हैं। जैसा कि जो सभाएं सिर में हैं वे मनुष्य के सिर से प्रतिरूपता रखती है जो छाती में हैं वे मनुष्य की छाती से प्रतिरूपता रखती हैं जो बांह में हैं मनुष्य के बांह से प्रतिरूपता रखती हैं इत्यादि इत्यादि। इसी प्रतिरूपता रखने से मनुष्य बना रहता है क्योंकि वह स्वर्ग ही के द्वारा बना रहता है।

९५। इस बात का बयान पृथक बाब में हो चुका है कि स्वर्ग का दो राज का प्रभेद है एक तो स्वर्गीय राज कहाता है और दूसरा आत्मीय राज। स्वर्गीय राज प्रायः हृदय से और शरीर में की सब वस्तुएं जो हृदय से संबन्ध रखती हैं उन से प्रतिरूपता रखता है। और आत्मीय राज फेफड़े से और शरीर में की सब वस्तुएं जो फेफड़े से संबन्ध रखती हैं उन से प्रतिरूपता रखता है। हृदय और फेफड़ा मनुष्य में दो राज हैं क्योंकि हृदय शिरे और नाड़ी के द्वारा और फेफड़ा मज्जातन्तुसंबन्धी और गतिकारक सूत के द्वारा दोनों उस में राज करते हैं और वे प्रत्येक प्रयत्न में और प्रत्येक क्रिया में एक दूसरे से मिलते हैं। प्रत्येक मनुष्य के आत्मीय जगत में भी जो उस के आत्मीय मनुष्य को बोलते हैं दो राज हैं अर्थात मन का राज और बुद्धि का राज। मन भलाई के प्रेमों के द्वारा राज करता है और बुद्धि सचाई के प्रेमों के द्वारा। और ये दो राज शरीर के हृदय और फेफड़े के राजों से प्रतिरूपता रखते हैं। स्वर्ग में भी ऐसा ही अवस्था है। स्वर्गीय राज स्वर्ग का संकल्पतत्त्व है और इस राज में प्रेम की भलाई राज करती है। और आत्मीय राज स्वर्ग का बुद्धितत्त्व है और यहां सचाई राज करती है। ये राज मनुष्य के हृदय और फेफड़े के कामों के प्रतिरूप हैं। और इस प्रतिरूपता से धर्मपुस्तक में हृदय से तात्पर्य संकल्प अर्थात इच्छा है तथा प्रेम की भलाई भी। और फेफड़े की सांस से तात्पर्य बुद्धि तथा श्रद्धा की सचाई है। इस से भी लोग

प्रेमों को हृदय से संयुक्त करते हैं यद्यपि प्रेम न तो हृदय में हैं न उस से निकलते हैं[७५]।

९६। हृदय और फेफड़े से स्वर्ग के दो राजों की प्रतिरूपता रखनी मनुष्य से स्वर्ग की सब से साधारण प्रतिरूपता है परंतु प्रत्येक अंग और इन्द्रिय और आन्त्र से कुछ कम साधारण प्रतिरूपता है जिस का बयान हम अब करते हैं। प्रधान पुरुष में अर्थात स्वर्ग में वे जो सिर में हैं प्रत्येक भलाई में बाक़ी सब से श्रेष्ठ हैं क्योंकि वे प्रेम शान्ति भोलेपन ज्ञान बुद्धि सब में रहते हैं इस से वे आनन्द और सुख में रहते हैं। ये मनुष्य के सिर में बहते हैं और वहां से उस के औत्सर्गिकों में और उन से प्रतिरूपता रखते हैं। प्रधान पुरुष में अर्थात स्वर्ग में वे जो छाती में हैं अनुग्रह और श्रद्धा की भलाई में हैं और मनुष्य की छाती में बहते हैं जिस से वे प्रतिरूपता रखते हैं। प्रधान पुरुष में अर्थात स्वर्ग में वे जो कटी के अन्दर और लिङ्गायत के अन्दर रहते हैं विवाहविषयक प्रेम में हैं। वे जो पांओं में हैं स्वर्ग के अन्तिम भलाई में हैं जो आत्मीय-स्वाभाविक भलाई कहाता है। वे जो बांहों और हाथों में हैं सचाई के उस बल में हैं जो भलाई से निकलता है। वे जो आंखों में हैं ज्ञानशक्ति में श्रेष्ठ हैं। वे जो कानों में हैं चौकसी और वशता में उत्तम हैं। वे जो नथनों में हैं चैतन्य में अच्छे हैं। वे जो मुख और जीभ में हैं ज्ञानशक्ति और चैतन्य की बात चीत करने में श्रेष्ठ हैं। वे जो मूत्रपिण्ड में हैं उस सचाई में श्रेष्ठ हैं जो जांचती है और विवेचना करती है और शुद्ध करती है। और वे जो कलेजे और लबलबे और पिलई में रहते हैं भलाई और सचाई की भिन्न भिन्न शुद्धताओं में श्रेष्ठ हैं। प्रधान पुरुष के अन्य अन्य भागों की अन्य अन्य प्रतिरूपताएं हैं और सब की सब मनुष्य के अनुरूपक भागों के अन्दर बहती हैं और उन से प्रतिरूपता रखती हैं। परंतु स्वर्ग का अन्तःप्रवाह अंगों के कामों के अन्दर बहता है। और अंग के काम जो आत्मीय जगत से निकलते हैं अपने को प्राकृतिक वस्तु के रूपों से संवारते हैं और कार्यों में शारीरिक होते हैं। यह प्रतिरूपता की उत्पत्ति है।

९७। जब धर्मपुस्तक में अंग इन्द्रिय और अन्तरियों इत्यादि की सूचना है तो उन के तात्पर्य ऊपर लिखित बयान के अनुकूल हैं। क्योंकि धर्मपुस्तक में हर

---

७५ प्रधान पुरुष से अर्थात स्वर्ग से हृदय और फेफड़े की प्रतिरूपता के विषय में परीक्षा करने का बयान। न० ३८८३ से ३८९६ तक। हृदय उन से प्रतिरूपता रखता है जो स्वर्गीय राज में रहते हैं और फेफड़ा उन से प्रतिरूपता रखता है जो आत्मीय राज में रहते हैं। न० ३८८५ • ३८८६ • ३८८७। क्योंकि स्वर्ग में हृदय का सा नाड़ी का टपकना है और फेफड़े का सा सांस लेना परंतु वह उस से अधिक भीतरी है। न० ३८८४ • ३८८५ • ३८८७। स्वर्ग में हृदय का टपकना प्रेम की अवस्थाओं के अनुसार भिन्न भिन्न है और सांस लेना अनुग्रह और श्रद्धा की अवस्थाओं के अनुसार भिन्न भिन्न है। न० ३८८६ • ३८८७ • ३८८९। धर्मपुस्तक में हृदय से तात्पर्य संकल्पशक्ति है और इस लिये जो हृदय से निकलता है सो संकल्पशक्ति से निकलता है। न० २९३० • ७५४२ • ८९१० • ९११३ • १००३६। धर्मपुस्तक में हृदय से तात्पर्य प्रेम भी है और इस लिये जो हृदय से किया जाता है सो प्रेम से किया जाता है। न० ७५४२ • ९०५० • १०३३६।

तक वचन से तात्पर्य प्रतिरूपता के अनुसार होता है। इस लिये सिर से तात्पर्य बुद्धि और ज्ञान। छाती से तात्पर्य अनुग्रह। कटी से तात्पर्य विवाहविषयक प्रेम। बांहों और हाथों से तात्पर्य सचाई का बल। पांओं से तात्पर्य स्वाभाविक तत्त्व। आखों से तात्पर्य ज्ञानशक्ति। नयनों से तात्पर्य चैतन्य। कानों से तात्पर्य वशता। मूत्रपिण्डों से तात्पर्य सचाई का शोधन है इत्यादि[७६]। इस से साधारण बात चीत करने में बुद्धिमान और ज्ञानी मनुष्य के विषय में इस बात का कहना व्यवहारिक है कि उस का सिर है। जो अनुग्राहक हो वह छाती से लगा मित्र है। जो चैतन्य में श्रेष्ठ हो वह शीघ्र सूंघता है। जो बुद्धि से विशेषित हो उस की तीक्ष्ण आंखें हैं। जो बलवान हो उस के लम्बे हाथ हैं। जिस का प्रेमी शील हो वह कोमलहृदय है। ये बातें और बहुत सी अन्य अन्य बातें जो सर्वसाधारण लोग काम में लाते हैं प्रतिरूपता की ओर से निकलती हैं। क्योंकि वैसी बातें आत्मीय जगत से आती हैं तो भी मनुष्य उस को नहीं जानता।

९८। स्वर्ग की सब वस्तुओं की प्रतिरूपता मनुष्य की सब वस्तुओं से मेरे साम्हने बहुत परीक्षा करने के द्वारा निश्चित की गई। यहां तक कि मैं उस पर इतना विश्वास करता हूं जितना कोई किसी प्रत्यक्ष और अखण्डनीय सिद्धान्त पर विश्वास करता है। यहां उस परीक्षा करने का बयान करना अवश्य नहीं है और उस के बाहुल्य के कारण वैसा बयान करना अयोग्य होवे परंतु आर्कानासीलेस्टिया नामक पोथी में इन बातों का (अर्थात प्रतिरूपता के विषय प्रतिमाओं के विषय आत्मीय जगत का अन्तःप्रवाह प्राकृतिक जगत के अन्दर उस के विषय आत्मा और शरीर के बीच जो परस्पर संसर्ग है उस के विषय) पूरा बयान देखा जावे[७७]।

---

७६ धर्मपुस्तक में छाती से तात्पर्य अनुग्रह है। न० ३९३४ · १००८१ · १००८७। कटी और लिङ्गायत से तात्पर्य विवाहविषयक प्रेम है। न० ३०२१ · ४२८० · ४४६२ · ५०५० · ५०५१ · ५०५२ · बांहों और हाथों से तात्पर्य सचाई का बल है। न० ८७८ · ३०९१ · ४९३३ से ४९३७ तक · ६९४७ · ७२०५ · १००१९। पाओं से तात्पर्य स्वाभाविक तत्त्व है। न० २१६२ · ३१४७ · ३७६१ · ३९८६ · ४२८० · ४९३८ से ४९५२ तक। आंख से तात्पर्य ज्ञानशक्ति है। न० २७०१ · ४४०३ से ४४२१ तक। ४५२३ से ४५३४ तक · ६९२३ · ९०५१ · १०५६९। नयनों से तात्पर्य चैतन्य है। न० ३५७७ · ४६२४ · ४६२५ · ४७४८ · ५६२१ · ८२८६ · १००५४ · १०२९२। कानों से तात्पर्य वशता है। न० २५४२ · ३८६९ · ४५२३ · ४६५३ · ५०१७ · ७२१६ · ८३६१ · ८९९० · ९३११ · ९३९७ · १००६१। कटी से तात्पर्य सचाई का जांचना और शोधना। न० ५३८० से ५३८६ तक · १००३२।

७७ शरीर के सब अंगों की जो प्रतिरूपता (चाहे सब मिलकर चाहे विशेष करके) प्रधान पुरुष से अर्थात स्वर्ग से है परीक्षा करने के पीछे उस के बयान के बारे में। न० ३०२१ · ३६२४ से ३६४९ तक · ३७४१ से ३७५० तक · ३८८३ से ३८९६ तक · ४०३९ से ४०५५ तक · ४२१८ से ४२२८ तक · ४३१८ से ४३३१ तक · ४४०३ से ४४२१ तक · ४५२३ से ४५३४ तक · ४६२२ से ४६३३ तक · ४६५२ से ४६६० तक · ४७९१ से ४८०५ तक · ४९३१ से ४९५३ तक · ५०५० से ५०६१ तक · ५१७१ से ५१८९ तक · ५३७७ से ५३९६ तक · ५५५२ से ५५७३ तक · ५७११ से ५७२७ तक · १००३०। आत्मीय जगत का अन्तःप्रवाह प्राकृतिक जगत के अन्दर अर्थात स्वर्ग का अन्तःप्रवाह जगत के अन्दर इस बयान के विषय और आत्मा का अन्तःप्रवाह शरीर की सब वस्तुओं के अन्दर इस के बयान में। न० ६०५३ से ६०५८ तक · ६१८९ से ६२१५ तक · ६३०७ से ६३२७ तक · ६४६६ से ६४९५ तक · ६५९८ से ६६२६ तक। आत्मा और शरीर के परस्पर संसर्ग के बारे में। ६०५३ से ६०५८ तक · १९८६ से ६२१५ तक · ६३०७ से ६३२७ तक · ६४६६ से ६४९५ तक · ६५९८ से ६६२६ तक।

९९। परंतु यद्यपि मानुषक शरीर की सब वस्तुएं स्वर्ग की सब वस्तुओं से प्रतिरूपता रखती हैं तो भी मनुष्य अपने बाहरी रूप के विषय स्वर्ग की प्रतिमा नहीं है। क्योंकि मनुष्य के भीतरी भाग स्वर्ग को ग्रहण करते हैं और उस के बाहरी भाग जगत को। इसी हेतु जितना उस के भीतरी भाग स्वर्ग को ग्रहण करते हैं उतना ही मनुष्य उन के विषय स्वर्ग के उस रूप पर है जो सर्वव्यापी स्वर्ग की प्रतिमा पर है। परंतु जितना उस के भीतरी भाग स्वर्ग को ग्रहण नहीं करते उतना ही वह मनुष्य न तो स्वर्ग है न स्वर्ग की प्रतिमा। तिस पर भी उस के बाहरी भाग जो जगत को ग्रहण करते हैं ऐसे रूप पर हो सकें जैसा जगत की परिपाटी के अनुसार है और इस लिये वह मनुष्य भिन्न भिन्न सुन्दरता में हो। क्योंकि जो बाहरी सुन्दरता शरीर की है वह मा बाप से और गर्भ में बनाने से है और पीछे जगत की ओर से अन्तःप्रवाह के द्वारा बना रहता है। इस कारण प्राकृतिक मनुष्य का रूप आत्मीय मनुष्य के रूप से अत्यन्त विपरीत हो सके। कभी कभी मैं ने किसी विशेष व्यक्तियों के आत्माओं को देखा। और किसी किसी का आत्मा जिस का चिहरा रूपवान और सुन्दर था इतना कुरूप काला और राक्षससरीखा हुआ कि वह नरक की प्रतिमा को बोला जाता न कि स्वर्ग की प्रतिमा। परंतु किसी किसी का आत्मा जो बाहर से सुन्दर न था सुन्दर सुरूप और दूतसरीखा हुआ। मनुष्य का आत्मा मृत्यु के पीछे ऐसा जान पड़ता है जैसा कि वह दिखाई देता था जब जगत में जीते जी शारीरिक कोष में था।

१००। प्रतिरूपता केवल मनुष्य मात्र तक नहीं पहुंचती पर उस से बढ़ जाती है क्योंकि स्वर्ग आपस में एक दूसरे से प्रतिरूपता रखते हैं। दूसरा अर्थात मझला स्वर्ग तीसरे अर्थात भीतरी स्वर्ग से प्रतिरूपता रखता है। और पहिला अर्थात निचला स्वर्ग दूसरे अर्थात मझले स्वर्ग से। पहिला अर्थात निचला स्वर्ग मनुष्य के शारीरिक रूपों से भी जो मनुष्य के अंग इन्द्रिय और अन्तरिये इत्यादि बोलते हैं प्रतिरूपता रखता है। और इस से मनुष्य का शारीरिक भाग वही है कि जिस में स्वर्ग अन्त को प्राप्त होता है और जिस पर वह खड़ा है कि मानों वह अपनी नेव पर खड़ा हो। परंतु इस रहस्य का अधिक बयान आगे किया जावेगा।

१०१। तिस पर भी इस बात का ध्यान सावधान करके किया चाहिये कि जो जो प्रतिरूपता स्वर्ग के साथ होती है सब की सब प्रभु के ईश्वरीय मनुष्यत्व से है क्योंकि स्वर्ग उस से है और वह आप स्वर्ग है जैसा कि अगले बाबों में बयान हो चुका है। क्योंकि यदि ईश्वरीय मनुष्यत्व स्वर्ग की सब वस्तुओं के अन्दर न बहे और प्रतिरूपों के अनुसार जगत की सब वस्तुओं के अन्दर भी न बहे तब न तो दूत जी सके और न मनुष्य। फिर इस से यह मालूम होगा कि प्रभु क्यों मनुष्य हो गया और उस ने क्यों अपने ईश्वरत्व को प्रथम से अन्त तक मनुष्यत्व से पहिनाया। क्योंकि ईश्वरीय मनुष्यत्व जिस करके प्रभु के आने से पहिले स्वर्ग

बना रहता था सब वस्तुओं को अधिक समय तक नहीं बना रख सका। किस वास्ते कि मनुष्य जो स्वर्ग की नेव है गिर पड़ा था और इस से परिपाटी की जड़ का विनाश किया। [परंतु प्रभु ने मनुष्य होकर अपने निज शरीर में उस को फिर बनाया।] वुह ईश्वरीय मनुष्यत्व जो प्रभु के आने के पहिले वर्त्तमान था उस के स्वभाव और गुण का बयान और स्वर्ग की अवस्था जो उस समय थी उस का बयान पिछले बाब के अन्त में आर्काना सीलेस्टिया नामक पोथी से संग्रह करके लिखा गया।

१०२। दूतगण इस बात को सुनकर अचम्भा करते हैं कि कई एक लोग प्रकृति ही मानते हैं और ईश्वरत्व कुछ भी नहीं मानते। वे लोग इस बात पर विश्वास करते हैं कि उन के शरीर कि जिन में स्वर्ग की इतनी अद्भुत वस्तुएं हैं प्रकृति से बनाए गये थे और मनुष्य की ज्ञानशक्ति भी उसी जड़ से उपज आई। पर यदि वे अपने मन को थोड़ा सा भी उठावें तो वे देख सकेंगे कि वैसी वस्तुएं केवल ईश्वरत्व से ही निकलती हैं न कि प्रकृति से। और यह भी देख सकेंगे कि प्रकृति केवल इस हेतु से रची गई थी कि वह सब कुछ जो आत्मिक है पहिनावे और परिपाटी के अन्तिम में उस को प्रतिरूपक मूर्त्ति पर दिखलावे। दूतगण ऐसे मनुष्यों को उल्लूओं से जो अन्धकार में देख सकते हैं पर ज्योति में अंधे हो जाते हैं उपमा देते हैं।

स्वर्ग पृथिवी की सब वस्तुओं से प्रतिरूपता रखता है।

१०३। हम ने पिछले बाब में यह बतलाया है कि प्रतिरूपता कौन सी वस्तु है और प्राकृतिक शरीर के सब भाग चाहे सब मिलके चाहे पृथक पृथक होके प्रतिरूप होते हैं। अब हम को यह बतलाना है कि पृथिवी की सब वस्तुएं और प्रायः जगत की सब वस्तुएं प्रतिरूप हैं।

१०४। पृथिवी की सब वस्तुएं तीन साधारण प्रकार की हैं जिन को राज कहते हैं अर्थात जन्तुविषयक राज शाकविषयक राज और धातुविषयक राज। जन्तुविषयक राज के उद्देश्य पहिले पद के प्रतिरूप हैं क्योंकि वे जीते हैं। शाकविषयक राज के उद्देश्य दूसरे पद के प्रतिरूप हैं क्योंकि वे केवल उगते हैं। धातुविषयक राज के उद्देश्य तीसरे पद के प्रतिरूप हैं क्योंकि वे न तो जीते हैं न उगते हैं। जन्तुविषयक राज में के प्रतिरूप भिन्न भिन्न प्रकार के जीवजन्तु हैं जो पृथिवी पर चलते हैं और रेंगते हैं और वायु पर उड़ते हैं। यहां उन का विशेष बयान नहीं किया जाता है क्योंकि हर कोई उन को जानता है। शाकविषयक राज में के प्रतिरूप वे सब वस्तुएं हैं जो फुलवाड़ी बन खेत और मैदानों में उगकर लहलहाते हैं। उन की नामावलि नहीं दी जाती है क्योंकि हर कोई उन को भी जानता है। धातुविषयक राज के प्रतिरूप धातु हैं चाहे वे उत्तम हों चाहे अधम हों अर्थात मणि पत्थर भांति भांति की माटी और पानी भी और इन से

अतिरिक्त जो कुछ कि मनुष्य परिश्रम करके अपने काम के लिये उन वस्तुओं से बनाता है सब के सब प्रतिरूप हैं जैसा कि सब प्रकार का अन्न कपड़ा घर मन्दिर इत्यादि ।

१०५ । जो वस्तुएं कि पृथिवी के ऊपर हैं जैसा कि सूर्य चान्द तारे और जो वस्तुएं कि आकाश में हैं जैसा कि बादल कूहा मेंह बिजली गरज सब के सब प्रतिरूप हैं। और वे वस्तुएं जो सूर्य के विद्यमान होने पर या अविद्यमान होने पर अवलम्बित हैं जैसा कि ज्योति और छांह तथा गरमी और ठंढाई। और वे वस्तुएं जो इन के पश्चात क्रम क्रम से पीछे हैं जैसा कि वर्ष के मौसिम जो वसन्त गरमी शरत्काल जाड़काल कहाते हैं और दिन के पहर जैसा कि तड़का दोपहर सांझ और रात ।

१०६ । संक्षेप में जो वस्तुएं प्रकृति में विद्यमान हैं अधम से उत्तम तक सब के सब प्रतिरूप हैं[७८]। क्योंकि प्राकृतिक जगत और जो कुछ उस में है आत्मीय जगत से होता है और बना रहता है और दोनों जगत ईश्वरत्व के द्वारा बने रहते हैं। हम होने की बात से अतिरिक्त बने रहने की बात काम में लाते हैं क्योंकि सब कुछ उस वस्तु के द्वारा बना रहता है कि जिस से वह पैदा हुआ। बना रहना सदा होना है। और असम्भव है कि कोई वस्तु आप से आप बनी रहे। हर एक वस्तु किसी कारण से बनी रहती है जो उस वस्तु से पहिले वर्त्तमान था इस लिये अन्त में प्रथम ही से होती है। और इस हेतु जो कुछ प्रथम से अलग हो जाता है सो विनाश पाता है ।

१०७ । हर कोई वस्तु एक ऐसा प्रतिरूप है कि जो प्रकृति में ईश्वरीय परिपाटी से होती है और बनी रहती है। और ईश्वरीय परिपाटी उस ईश्वरीय भलाई से बहती है जो प्रभु की ओर से चलती है। क्योंकि वह उसी से पैदा होती है और उसी से लेकर स्वर्गों में होकर क्रम करके जगत के अन्दर चलती है और वहां अन्तिमों में समाप्ति पाती है। और इस कारण जगत में की वे सब वस्तुएं जो परिपाटी के अनुसार हैं प्रतिरूप हैं। और वे सब वस्तुएं परिपाटी के अनुसार हैं जो भली हैं और काम के योग्य हैं। क्योंकि हर एक भलाई उपयोगी भलाई है। परंतु रूप सचाई से संबन्ध रखता है क्योंकि सचाई भलाई का रूप है। और इसी हेतु सर्वव्यापी जगत में की सब वस्तुएं जो जगत के स्वभाव में साझी हों और जो ईश्वरीय परिपाटी में हों सब की सब भलाई और सचाई से संबन्ध रखती हैं[७९]।

---

७८ जो वस्तुएं कि जगत में और उस के तीन राज्यों में हैं स्वर्ग में की स्वर्गीय वस्तुओं से प्रतिरूपता रखती हैं अर्थात जो वस्तुएं कि प्राकृतिक जगत में हैं आत्मीय जगत में की वस्तुओं से प्रतिरूपता रखती हैं। न० १६६२ · १८८१ · २७५८ · २७६० से २७६३ तक · २९८७ से ३००३ तक · ३२१३ से ३२२७ तक · ३४८३ · ३६२४ से ३६३९ तक · ४०४४ · ४०५३ · ४११५ · ४३६६ · ४९३९ · ५११६ · ५३७७ · ५४२८ · ५४७७ · ९२८० । प्राकृतिक जगत आत्मीय जगत से प्रतिरूपों के द्वारा संयुक्त होता है। न० ८६१५। और इस से सर्वव्यापी प्रकृति प्रभु के राज का एक प्रतिरूपक नाटकशाला है। न० २७५८ · २९९९ · ३००० · ३४८३ · ३५१८ · ४९३९ · (८८४८) · ९२८०।

७९ सर्वजगत में की सब वस्तुएं (चाहे स्वर्ग में चाहे पृथिवी में) जो परिपाटी के अनुसार हों भलाई और सचाई से संबन्ध रखती हैं। न० २४५२ · ३१६६ · ४३९० · ४४०९ · ५२३२ · ७२५६ ·

१०८। जन्तुविषयक और शाकविषयक राजों की निर्मिति से स्पष्ट है कि ईश्वरत्व की ओर से जगत की सब वस्तुएं होती हैं और वे योग्यतापूर्वक कपड़ेसरीखी प्रकृति पहिनती हैं इस वास्ते कि वे काम करें और प्रतिरूपता रखें। क्योंकि प्रत्येक राज में ऐसी वस्तुएं हैं जिन से हर कोई जो किसी भीतरी तत्त्व के सहाय ध्यान करता है यह देख सकता है कि वे स्वर्ग से हैं। हम दृष्टान्त करके असंख्य उदाहरणों में से कुछ थोड़े से उदाहरण देते हैं। पहिले पहिल जन्तुविषयक राज से।

वह अद्भुत ज्ञान जो प्रत्येक जन्तु में है सब लोग जानते हैं। मधुमाखियां फूलों से मधु चूसने की विद्या जानती हैं। वे मोम के घरों को बना सकती हैं जिन में मधु रखकर वे और उन के साझी जाड़े के मौसिम में अन्न भोगती हैं। भौंरी अण्डे देती है और बाक़ी सब उस के पास उपस्थित होके अण्डों को ढांपती हैं किस वास्ते कि उन से नई पीढ़ी पैदा हो। वे किसी प्रकार के राज के अधीन हैं और हर कोई प्रत्येक घर में उस राज की विधियों से स्वाभाविक ज्ञान से वाकिफ़ हैं। और वे उपकारक मधुमाखियों का पालन करती हैं और जिन को वे निकम्मा समझें उन के डैने छीन लेके निकाल देती हैं। उन की उन अन्य अद्भुत बातों की सूचना अवश्य नहीं है जो वे किसी काम के लिये स्वर्ग से पाती हैं। उन का मोम जगत के सब देशों में मोमबत्ती के बनाने के काम में आता है और उन का मधु मनुष्य के आहार को मीठा करता है। झांझों की ओर देखो कि वे कैसे अद्भुत जन्तु हैं यद्यपि जन्तुविषयक राज की वे सब से नीच वस्तुओं में हैं। उन की अद्भुत विद्या है कि जिस से वे पत्तों से उस जूस को चूसते हैं जो उन के देहस्वभाव के योग्य है। और कुछ दिन पीछे वे अपने तईं किसी वस्त्र में ओढ़ाकर वहां रहते हैं कि मानों वे गर्भ में हैं और इस तौर पर सन्तान जनते हैं। कोई कोई पहिले गुटिका या कोशाकार होकर अपने चारों ओर सूत की गोली बुनते हैं। जब वे उस काम को कर चुके हैं तब वे अन्य शरीर बनकर अपने को डैनों से संवारकर खुले वायु में (मानों उन के स्वर्ग में) उड़ते हैं। उन विशेष दृष्टान्तों से अतिरिक्त वायु के सब परन्द अपने अपने अन्न को जो उन के योग्य है जानते हैं और न केवल यह कि क्या कौन कौन सा अन्न हमारे पालन करने के योग्य है पर यह भी जानते हैं कि वह वहां से हम को मिलाया जावे। वे अपने अपने घोंसले बना जानते हैं हर एक जाति अपने अपने जुदे जुदे तौर का बनाते हैं। उन में अण्डे देते हैं उन पर बैठते हैं और अपने बच्चों को सेवते हैं और उन का पालन करते हैं और जब वे बच्चे अपनी रक्षा कर सकते हैं तब उन को बाहर निकाल देते हैं इस वास्ते कि वे अपना पालन आप करें। वे अपने शत्रुओं को जिन से बचना चाहिये और अपने मित्रों को जिन के साथ मेल करना चाहिये भली भांति जानते हैं और बचपन ही से चौकसा करते हैं। अब इस बात का बयान क्योंकर करें कि क्या

१०१२२। और दोनों के संयोग से संबन्ध रखती हैं इस वास्ते कि उन का सच्चा अस्तित्व हो। ज० १०५५५।

क्या अचरज की बातें अण्डों में हैं कि जिन में गुप्त बच्चे के बनाने और पालन करने के लिये सब वस्तुएं सब से अच्छी रीति पर प्रस्तुत हैं। और इन से अतिरिक्त बहुतेरी अन्य अद्भुत वस्तुएं हैं। जो कोई बुद्धि को काम में लाकर कुछ सोच विचार करेगा उस को मालूम होगा और वह सदा यह कहेगा कि यह सब स्वाभाविक ज्ञान आत्मीय जगत से है किसी अन्य मूल से नहीं हैं। क्योंकि प्राकृतिक जगत आत्मीय जगत के अधीन है किस वास्ते कि वह उस वस्तु को शारीरिक कोष देवे जो आत्मीय जगत से निकलती है या जिस का कारक आत्मिक है उस को कार्य के रूप पर दिखलावे। पृथिवी के पशुओं और वायु के परन्दों को जन्म से लेकर वही ज्ञान है पर मनुष्य को वह ज्ञान नहीं है यद्यपि वह उन से उत्तम है। क्योंकि पशु अपने जीव की परिपाटी पर चलते हैं और आत्मीय जगत का जो कुछ उन में है तिस का विनाश वे नहीं कर सकते इस वास्ते कि उन को बुद्धि नहीं है। परंतु मनुष्य की अवस्था और ही है क्योंकि वह आत्मीय जगत की ओर से ध्यान करता है। और उस में उस जगत से जो कुछ है उस के बिगाड़ने के कारण (अर्थात बुद्धि पर अवलम्बन करके परिपाटी के विरुद्ध चाल चलने के कारण) अवश्य है कि मनुष्य संपूर्ण रूप से अज्ञानी पैदा होवे और पीछे ईश्वरीय उपाय के द्वारा स्वर्ग की परिपाटी में फेर लाया जावे।

१०९। शाकविषयक राज की वस्तुएं क्योंकर अपने कामों के द्वारा ईश्वरत्व से प्रतिरूपता रखती हैं यह बात कई उदाहरणों से मालूम होगी जैसा कि छोटे बीजों से बड़े वृक्ष उगते हैं जिन से पत्ते निकलते हैं फूल फूलते हैं और फल फलते हैं फिर फलों में बीज पैदा होते हैं। और ये सब कार्य क्रम क्रम से होते हैं और अन्त में इतनी अद्भुत परिपाटी से आपस में लगे रहते हैं कि उन का शीघ्र बयान करना असम्भव है। सच तो है कि यदि उन के बारे में कई पोथियां लिखी जावें तो भी उन वस्तुओं के गुप्त कामों के विषय कई एक भीतरी रहस्य बाक़ी रहेंगे जिन का बयान मनुष्य की विद्या नहीं कर सकेगी। और जब कि ये भी आत्मीय जगत से अर्थात स्वर्ग से जो मनुष्य का एक रूप है (जैसा कि हम पृथक बाब में लिख चुके हैं) उत्पन्न होते हैं इस कारण शाकविषयक राज में सब कुछ मनुष्य में की किसी वस्तु से कुछ संबन्ध रखता है जैसा कि कई विद्वानों को भी मालूम है। शाकविषयक राज में की सब वस्तुएं प्रतिरूप हैं यह बात परीक्षा करने से मुझे स्पष्ट हो गई। क्योंकि बारंबार जब मैं ने फुलवाड़ियों में होकर वृक्ष फल फूल और ओषधी देखा तब मैं ने उन के प्रतिरूपों को स्वर्ग में भी देखा। और उन व्यक्तियों से जिन के पास वे प्रतिरूप थे बात चीत की और उन की उत्पत्ति और गुणों के विषय में मैं ने विज्ञापन पाया।

११०। इन दिनों में असम्भव है कि आकाश वाणी पुकारने को छोड़कर कोई लोग उन आत्मीय वस्तुओं को जानें कि जिन से जगत की प्राकृतिक वस्तुएं प्रतिरूपता रखती हैं। क्योंकि प्रतिरूपों की विद्या संपूर्ण रूप से खो गई है। और

इस कारण हम कुछ दृष्टान्तों के द्वारा आत्मीय वस्तुओं की प्राकृतिक वस्तुओं से प्रतिरूपता रखने का स्वभाव स्पष्ट करेंगे।

पृथिवी के पशु प्रायः अनुरागों से प्रतिरूपता रखते हैं। हिले और उपकारक पशु भले अनुरागों से जंगली और निकम्मे पशु बुरे अनुरागों से। बधिये और बैल विशेष करके प्राकृतिक मन के अनुरागों से प्रतिरूपता रखते हैं। भेड़ और लेले आत्मीय मन के अनुरागों से। परंतु पंछी और डैनेवाले जीवजन्तु जाति जाति के अनुसार दोनों मनों की बुद्धिविषयक वस्तुओं से प्रतिरूपता रखते हैं[८०]। इस से बधिया बैल मेंढ़ा भेड़ बकरी बकरा लेला लेली कबूतर कपोतिका इत्यादि भांति भांति के पशु यहूदी कलीसिया के पुण्य आचरणों में आते थे। वह कलीसिया प्रदर्शक कलीसिया थी और वे पशु बलिदान और होम बनकर काम में आते थे क्योंकि इस रीति पर वे उन आत्मीय वस्तुओं से प्रतिरूपता रखते थे जो स्वर्ग में उस प्रतिरूपता के अनुकूल मालूम की गई थीं। जीवजन्तु अपने अपने वर्ग और जाति के अनुसार अनुराग हैं इस लिये कि वे जीते हैं। क्योंकि अनुराग को छोड़कर हर किसी के जाव का और कोई उत्पत्तिस्थान नहीं है और अनुराग ही के अनुसार जीव की उत्पत्ति होती है। इस लिये हर एक जीवजन्तु को उस के जीव के अनुराग के अनुसार अन्तर्जात ज्ञान है। मनुष्य अपने प्राकृतिक मनुष्यत्व के विषय पशुओं के समान है और इस हेतु वह उन के साथ सर्वसाधारण लोगों की बोलचाल में मिलाया जाता है। जो वह दयाशील हो तो वह भेड़ या लेला कहाता है। जो वह उग्रशील हो तो वह रीछ या भेड़िया कहलाता है। जो वह कपटी हो तो उस को लोमड़ी या सांप बोलते हैं इत्यादि।

१११। शाकविषयक राज की वैसी ही प्रतिरूपता होती है। इस से एक फुलवाड़ी बुद्धि और ज्ञान के विषय स्वर्ग से प्रतिरूपता रखती है और इस लिये धर्मपुस्तक में स्वर्ग ईश्वर की फुलवाड़ी और सुखलोक[८१] कहाता है और मनुष्य

---

८० प्रतिरूपता के होने से पशुओं से तात्पर्य अनुराग हैं। हिले हुए और उपकारक पशुओं से तात्पर्य भले अनुराग हैं और जंगली और निकम्मे पशुओं से तात्पर्य बुरे अनुराग हैं। न० ४५ • ४६ • १४२ • १४३ • २४६ • ७१४ • ७१५ • ७१६ • २१७६ • २१८० • ३५१६ • ६२८०। आत्मीय जगत में परीक्षा करने से जो दृष्टान्त हैं उन का बयान। न० ३२१८ • ५१९८ • ९०९०। आत्मीय जगत का जो अन्तःप्रवाह पशुओं के जीव के अन्दर है उस के बारे में। न० १६३३ • ३६४६। प्रतिरूपता के होने से बधियों और बैलों से तात्पर्य प्राकृतिक मन के अनुराग हैं। न० २१८० • २५६६ • ९३९१ • १०१३२ • १०४०७। भेड़ों से क्या तात्पर्य है। न० ४१६९ • ४८०९। लेलों से क्या तात्पर्य है। न० ३९९४ • १०१३२। डैनेवाले जीवजन्तुओं से तात्पर्य बुद्धिविषयक वस्तुएं हैं। न० ४० • ७४५ • ७७६ • ७७८ • ८६६ • ९८८ • (९९३) • ५१४९ • ७४४१। उन के वर्गों और जातियों के अनुसार आपस में प्रभेद है। न० ३२१९।

८१ प्रतिरूपता के होने से फुलवाड़ी और सुखलोक से तात्पर्य बुद्धि और ज्ञान है। न० १०० • १०८। परीक्षा करने से भी उन का वही तात्पर्य है। न० ३२२०। सर्वजगत में जो जो प्रतिरूप हैं धर्मपुस्तक में उन का वही तात्पर्य है। न० २८६६ • २९८७ • २९८९ • २९९० • २९९१ • ३००२ • ३२२५।

उस को स्वर्गीय सुखलोक बोलते हैं। वृक्ष अपनी अपनी जाति के अनुसार भलाई और सचाई के बोध और प्रज्ञा से (जिस से बुद्धि और ज्ञान निकलते हैं) प्रतिरूपता रखते हैं। और इस कारण प्राचीन लोग (जो प्रतिरूपता की विद्या से निपुण थे) देवविषयक पूजा उपवनों में करते थे[८२]। इस से धर्मपुस्तक में वृक्षों का चर्चा बार बार होता है और स्वर्ग और कलीसिया और मनुष्य क्रम करके अंगूर का पेड़ जलपाई देवदारु इत्यादि वृक्षों से उपमा दिये जाते थे और भले कार्य फलों से उपमा दिये जाते थे। वह आहार भी जिस को तर्कारियां उपजाती हैं (विशेष करके अनाज के दाना) भलाई और सचाई के अनुरागों से प्रतिरूपता रखता है। क्योंकि वे अनुराग आत्मीय जीव का ऐसा पालन करते हैं जैसा जगत का आहार प्राकृतिक जीव का पालन करता है[८३]। और इस से रोटी प्राय: सब भलाई के अनुराग से प्रतिरूपता रखती है क्योंकि वह अन्य सब आहारों से बढ़कर जीव का पालन करती है उस से अतिरिक्त रोटी में सब भांति के आहार समाते हैं। इस प्रतिरूप के हेतु प्रभु अपने आप को जीव की रोटी कहता है और इसी कारण रोटी यहूदी कलीसिया के पुण्य आचरणों में आई क्योंकि वह पवित्र डेरे में के एक मेज़ पर रखी गई और उस का नाम चिहरों की रोटी अर्थात दिखाव की रोटी रखा। सब देवविषयक पूजा भी जो बलिदान और होम के द्वारा की जाती थी रोटी कहलाती थी। और इस प्रतिरूप के हेतु ईसाई कलीसिया में सब से पवित्र पूजा करने की क्रिया एक पवित्र बियारी है कि जिस में लोग शराब और रोटी खाते हैं[८४]। इन थोड़े उदाहरणों से प्रतिरूपता का स्वभाव मालूम होवे।

११२। अब हम संक्षेप में बयान करेंगे कि स्वर्ग का जगत से प्रतिरूपों के द्वारा संयोग क्योंकर होता है।

प्रभु का राज अभिप्रायों का अर्थात प्रयोजनों का एक राज है। या यों कहो कि वह प्रयोजनों का अर्थात अभिप्रायों का एक राज है। इसी हेतु ईश्वरत्व ने सर्वजगत को इसी तौर पर रचा है और बनाया है कि सब कहीं सारे प्रयोजन उचित वेठन पहिनें और कार्यों में अर्थात फलों में प्रगट होवें। पहिले यह अवस्था

---

८२ वृक्षों से तात्पर्य बोध और प्रज्ञा है। न० १०३ · २१६३ · २६८२ · २७२२ · २९७२ · ७६९२। और इस कारण प्राचीन लोग वृक्षों के नीचे उन के प्रतिरूपों के अनुसार देवविषयक पूजा करते थे। न० २७२२ · ४५५२।. स्वर्ग का शाकविषयक राज के वस्तुओं में (जैसा कि वृक्ष और ओषधि) जो अन्तःप्रवाह है उस के बारे में। न० ३६४८।

८३ प्रतिरूपता के होने के कारण आहार से तात्पर्य आत्मीय जीव की पालन करनेवाली वस्तुएं हैं। न० ३११४ · ४४५९ · ४७९२ · ४९७६ · ५१४७ · ५२९३ · ५३४० · ५३४२ · ५४१० · ५४२६ · ५५७६ · ५५८२ · ५५८८ · ५६५५ · ५९१५ · ६२७७ · ८५६२ · ९००३।

८४ रोटी से तात्पर्य वह सारी भलाई है जो मनुष्य के आत्मीय जीव का पालन करती है। न० २१६५ · २१७७ · ३४७८ · ३७३५ · ३८१३ · ४२११ · ४२१७ · ४७३५ · ४९७६ · ९३२३ · ९५४५ · १०६८६। जो रोटी पवित्र डेरे के मेज़ पर थी उस से भी वही तात्पर्य था। न० ३४७८ · ९५४५। बलिदान प्राय: रोटी कहलाते थे। न० २१६५। रोटी में सब भांति के आहार समाते हैं। न० २१६५। इस से उस का तात्पर्य सारा आहार है के स्वर्गीय के आत्मीय। न० २७६ · ६८० २१७७ · ३४७८ · ६११८ · ८४१०।

स्वर्ग में होनी चाहिये फिर जगत में और पीछे क्रम करके प्रकृति के अन्तिमों में भी। इस से स्पष्ट है कि प्राकृतिक वस्तुओं की आत्मीय वस्तुओं से (अर्थात जगत की स्वर्ग से) प्रतिरूपता प्रयोजनों के द्वारा होती है और ये प्रयोजन उन को आपस में संयुक्त करते हैं। और वे रूप कि जिन से प्रयोजन पहिने गये हैं उतना ही प्रतिरूप और संयोग के बिचवाई हैं जितना वे प्रयोजनों के रूप धारण करते हैं। प्राकृतिक जगत में और उस के तीनों राजों में सब वस्तुएं जो परिपाटी के अनुसार होती हैं प्रयोजनों के रूप हैं अर्थात वे ऐसे फल हैं जो प्रयोजन से प्रयोजन के लिये बने हैं इस से वे प्रतिरूप हैं। मनुष्य के कार्य रूपधारी प्रयोजन हैं और वे ऐसे प्रतिरूप हैं कि जिन करके मनुष्य का स्वर्ग से संयोग है यहां तक कि वह ईश्वरीय परिपाटी के अनुसार चलता है या यहां तक कि वह प्रभु से प्रेम रखता है और पड़ोसी से अनुग्रह। परंतु प्रभु से और पड़ोसी से प्रेम रखना प्रायः प्रयोजनों का काम करना है[८५]। इस से अतिरिक्त यह बात कहनी चाहिये कि प्राकृतिक जगत का आत्मीय जगत से मनुष्य के द्वारा संयोग होता है। क्योंकि वह उन के संयोग का बिचवाई है और दोनों जगत उसी में हैं जैसा कि न० ५७ में सूचित हो चुका है। इस लिये जितना मनुष्य आत्मिक है उतना ही वह संयोग का एक बिचवाई है परंतु जितना वह केवल प्राकृतिक है और आत्मिक नहीं उतना ही वह संयोग का बिचवाई नहीं है। तिस पर भी ईश्वरीय अन्तःप्रवाह स्वतन्त्रवत मनुष्य के बिचवाईपन के विना जगत के भीतर बहता रहता है और वह उन जगतसंबन्धी वस्तुओं में भी बहता है जो मनुष्य में हैं। परंतु वह मनुष्य के बुद्धिविषयक तत्त्व में नहीं बहता है।

११३। जब कि सब वस्तुएं जो ईश्वरीय परिपाटी के अनुकूल होती हैं स्वर्ग से प्रतिरूपता रखती हैं तो सब वस्तुएं जो ईश्वरीय परिपाटी के प्रतिकूल होती हैं नरक से प्रतिरूपता रखती हैं। क्योंकि जितनी वस्तुएं स्वर्ग से प्रतिरूपता रखती हैं

---

८५ सब प्रकार की भलाई अपना गुण और आनन्द प्रयोजनों से निकालती है और उन प्रयोजनों के स्वभाव के अनुसार गुण और आनन्द निकलते हैं इस वास्ते जैसा प्रयोजन है वैसी ही भलाई है। न० ३०४९ • ४९८४ • ७०३८। दूतविषयक जीव प्रेम और अनुग्रह की भलाइयों का बना है और इस से प्रयोजनों के काम करने का है। न० ४५४। प्रभु और उस से दूतगण फलों (अर्थात मनुष्यसंबन्धी प्रयोजनों) को छोड़ और किसी अभिप्रायों पर कुछ ध्यान नहीं करते। न० १३१७ • १६४५ • ५८४९। क्योंकि प्रभु का राज प्रयोजनों का एक राज है और इस से फलों का एक राज। न० ४५४ • ६९६ • ११०३ • ३६४५ • ४०५४ • ७०३८। प्रभु की सेवा करना प्रयोजनों का काम करना है। न० ७०३८। मनुष्य में की सब वस्तुएं साधारण करके और विशेष करके प्रयोजनों के लिये बनी हैं। न० (३५६५) • ४१०४ • ५१८९ • ९२९७। और वे प्रयोजन से बनी हैं और इस से प्रयोजन मनुष्य में के प्रयोजनसंबन्धी इन्द्रियों से पहिले था क्योंकि प्रयोजन प्रभु के अन्तःप्रवाह से स्वर्ग में से पार होकर उपजता है। न० ४२२३ • ४९२६। मनुष्य के मनसंबन्धी भीतरी भाग भी दिन दिन प्रयोजन से और प्रयोजन के लिये बढ़ते जाते हैं। न० १९६४ • ६८१५ • ९२९७। और इस से किसी मनुष्य के प्रयोजनों का गुण उसी मनुष्य का गुण है। न० १५६८ • ३५७० • ४०५४ • ६५७१ • ६९३५ • ६९३८ • १०२८४। प्रयोजन वे अभिप्राय हैं कि जिन के लिये कोई मनुष्य काम करता है। न० ३५६५ • ४०५४ • ४१०४ • ६८१५। क्योंकि प्रयोजन ही मनुष्य का प्रथम और अन्त है इस से प्रयोजन ही उस की समष्टि है। न० १९६४।

उतनी ही भलाई और सचाई से संबन्ध रखती हैं और जितनी वस्तुएं नरक से प्रतिरूपता रखती हैं उतनी ही बुराई और झुठाई से संबन्ध रखती हैं।

११४। अब हम प्रतिरूपता की विद्या के विषय में और उस के काम लाने के विषय में कुछ बातें कहेंगे।

पहिले बयान हो चुका है कि आत्मीय जगत जो स्वर्ग है प्राकृतिक जगत से प्रतिरूपों के द्वारा संयुक्त है और इस लिये मनुष्य प्रतिरूपों के द्वारा स्वर्ग से मेल मिलाप रखता है। क्योंकि स्वर्ग के दूतगण (मनुष्य के सदृश) प्राकृतिक वस्तुओं के सहाय ध्यान नहीं दौड़ाते। इस कारण जब मनुष्य प्रतिरूपता की विद्या में है तब वह अपने मन के ध्यानों के विषय में दूतगण के साथ संसर्ग रख सके और अपने आत्मीय अर्थात भीतरी मनुष्य के विषय में दूतगण से संयुक्त हो सके। धर्मपुस्तक यथार्थिक प्रतिरूपों के अनुकूल लिखी गई इस वास्ते कि मनुष्य स्वर्ग के साथ संयुक्त होवे और इस कारण धर्मपुस्तक की सब से सूक्ष्म बात कुछ आत्मीय वस्तु से प्रतिरूपता रखती है[८६]। और यदि मनुष्य प्रतिरूपता की विद्या से निपुण होवे तो वह उस के आत्मीय तात्पर्य को समझे और उन रहस्यों को जाने जिन का तात्पर्य वह केवल शब्दों मात्र के तात्पर्य में कुछ मालूम नहीं करता। क्योंकि धर्मपुस्तक में शब्दों का तात्पर्य भी है और आत्मीय तात्पर्य भी है। शब्दों मात्र का तात्पर्य जगत की वस्तुओं से संबन्ध रखता है परंतु आत्मीय तात्पर्य स्वर्ग की वस्तुओं से संबन्ध रखता है। और जब कि स्वर्ग का जगत से संयोग होना प्रतिरूपों के द्वारा होता है तो ऐसी धर्मपुस्तक मनुष्यों को दी गई थी कि जिस के पत्येक शब्द का कोई आत्मीय प्रतिरूप होवेगा[८७]।

११५। मुझ को आकाश वाणी के द्वारा बतलाया गया कि पृथिवी में के सब से प्राचीन लोग जो स्वर्गीय मनुष्य थे प्रतिरूपों के सहाय आप ध्यान किया करते थे और इस जगत की प्राकृतिक वस्तुएं जो उन की आंखों के आगे थीं उन के ध्यान करने में बिचवाइनी सरीखी थीं। और इस अद्भुत स्वभाव के कारण वे लोग दूतगण के साथ संसर्ग किया करते थे और उन से बात चीत करते थे और इस से स्वर्ग उन के द्वारा जगत से संयुक्त था। इस कारण उस युग को सुनहरी युग बोला करते थे जिस के विषय में प्राचीन ग्रन्थकारों ने यह लिखा है कि स्वर्ग के निवासी आकर मनुष्यों के साथ रहते थे और उन के साथ मित्र बनकर बात चीत किया करते थे। परंतु उस युग के पीछे अन्य मनुष्य आए जो प्रतिरूपों के सहाय आप ध्यान नहीं करते थे पर वे प्रतिरूपता की विद्या के सहाय ध्यान करते थे तो भी उस समय स्वर्ग का मनुष्य से संयोग था परंतु वह संयोग इतना निकट न था

---

८६ धर्मपुस्तक यथार्थिक प्रतिरूपों के अनुकूल लिखी गई। न० ८६१५। और मनुष्य का स्वर्ग से संयोग होना धर्मपुस्तक के द्वारा होता है। न० २८९९ · ६९४३ · ९३९६ · ९४०० · ९४०१ · १०३७५ · १०४५२।

८७ धर्मपुस्तक की आत्मीय तात्पर्य के विषय में उस छोटी सी पुस्तक को देखो जो ऐपोकलिप्स में के सफ़ेद घोड़े के बारे में है।

जितना पहिले युग में था। वह युग रूपहरी युग कहलाता था। उस युग के पाछे ऐसे लोग पैदा हुए जिन को प्रतिरूपों की अवस्था तो मालूम थी परंतु वे उस की विद्या के सहाय ध्यान नहीं किया करते थे क्योंकि वे प्राकृतिक भलाई में थे और न कि उन के अग्रगों के समान आत्मीय भलाई में। वह युग ताम्बे का युग कहाता था। उन युगों के पीछे मनुष्य क्रम करके बाहरी होता जाता था और अन्त में शारीरिक हो गया। तब तो प्रतिरूपों की विद्या संपूर्ण रूप से खो गई और उस के साथ स्वर्ग की और प्रायः सब स्वर्गीय वस्तुओं की अवस्था का ज्ञान भी खो गया था। ये तीनों युग सुनहरी रूपहरी और ताम्बा[८८] इस कारण कहलाते थे कि सोने से तात्पर्य प्रतिरूपता के अनुकूल स्वर्गीय भलाई है जिस पर सब से प्राचीन लोग आसक्त थे। रूप से तात्पर्य आत्मीय भलाई है जिस को उन पाचीन लोगों का जो पहिले लोगों के पीछे आते थे लक्षण था। और ताम्बे से तात्पर्य प्राकृतिक भलाई है जिस पर पिछले लोग आसक्त थे। परंतु लोहे का युग जो अन्तिम युग का नाम है उस से तात्पर्य कड़ी सचाई विना भलाई के है।

स्वर्ग में के सूर्य के बारे में।

११६। स्वर्ग में इस जगत का सूर्य दृष्टि नहीं आता और न कोई वस्तु जो उस सूर्य से पैदा होती है वहां दिखाई देती है किस वास्ते कि वह सूर्य प्राकृतिक है। उस स्वर्ग से प्रकृति का आरम्भ है और जो कुछ कि उस से पैदा होता है प्राकृतिक कहलाता है। परंतु वह आत्मीय अवस्था कि जिस में स्वर्ग रहता है प्रकृति के ऊपर है और वह उन सब वस्तुओं से संपूर्ण रूप से भिन्न है जो प्राकृतिक हैं। प्रतिरूपों के द्वारा संबन्ध होने को छोड़कर प्राकृतिक वस्तुओं का आत्मीय वस्तुओं से कुछ संबन्ध नहीं है। उन की भिन्नता का कुछ बोध उस बयान से अवस्थाओं के बारे में पाया जा सके जो न० ३८ में सूचित हो चुका है। और उन के संसर्ग करने का गुण पिछले दो बाबों से प्रतिरूपों के विषय में मालूम हो सकता है।

११७। यद्यपि इस जगत का सूर्य स्वर्ग में दृष्टि नहीं आता और न कोई वस्तु है जो उस सूर्य से पैदा होती है तो भी वहां एक सूर्य है और ज्योति और गरमी भी है। और अन्य सब वस्तुएं भी जो जगत में पाई जाती हैं वहां हैं। उन से अतिरिक्त अन्य अन्य असंख्य वस्तुएं हैं परंतु उन का कोई दूसरा मूल है। क्योंकि जो कुछ स्वर्ग में है आत्मीय है पर जो कुछ जगत में है प्राकृतिक है। स्वर्ग का सूर्य प्रभु है और स्वर्ग की ज्योति ईश्वरीय सचाई है। उस की गरमी ईश्वरीय भलाई है और ये दोनों प्रभु से निकलते हैं कि मानों एक सूर्य से निकलें। उस

---

८८ प्रतिरूपता के अनुकूल सोने से तात्पर्य स्वर्गीय भलाई है। न० ११३ · १५५१ · १५५२ · ५६५८ · ६९१४ · ६९१७ · ९५१० · ९८७४ · ९८८१। रूपे से तात्पर्य आत्मीय भलाई है अर्थात वह सचाई जो स्वर्गीय मूल से उत्पन्न होती है। न० १५५१ · १५५२ · २९५४ · ५६५८। परंतु ताम्बे से तात्पर्य प्राकृतिक भलाई है। न० ४२५ · १५५४। और लोहे से तात्पर्य परिपाटी के अन्तिम में की सचाई है। न० ४२५ · ४२६।

आदि से सब कुछ जो स्वर्ग में है पैदा होता है और दृष्टि आता है। परंतु ज्योति और गरमी के विषय में और जो वस्तुएं कि उन से पैदा होती हैं उन के विषय में कुछ अधिक बयान आगामी बाबों में होगा। यहां पर हम केवल स्वर्गीय सूर्य के विषय कुछ बयान करेंगे। प्रभु स्वर्ग में सूर्य के समान दिखाई देता है क्योंकि सब आत्मीय वस्तुएं ईश्वरीय प्रेम से पैदा होती हैं। और इस जगत का सूर्य बिच-वैया बनकर सब प्राकृतिक वस्तुएं भी ईश्वरीय प्रेम से पैदा होती हैं। क्योंकि स्वर्ग में ईश्वरीय प्रेम सूर्य के समान चमकता है।

११८। प्रभु स्वर्ग में सच मुच सूर्य के समान दिखाई देता है यह बात न केवल मुझ को दूतों से बतलाई गई पर बार बार मैं ने उस को आप अपनी आंखों से देखा। और जो मैं ने आंखों से देखा और कानों से सुना उस का मैं संक्षेप में बयान करता हूं।

प्रभु स्वर्ग के भीतर सूर्य के समान दिखाई नहीं देता परंतु उंचाई पर स्वर्गों के ऊपर। और न वह ठीक सिर के ऊपर दृष्टि आता है (अर्थात शिरोबिन्दु पर) परंतु दूतगण के मुखों के आगे मध्यम उंचाई पर दृष्टि आता है। वह बहुत दूरी पर दिखाई देता है और दो स्थान पर दीखता है एक तो दहिनी आंख के साम्हने दूसरा बाईं आंख के साम्हने। दहिनी आंख के आगे वह ठीक ठीक सूर्य के समान दिखाई देता है कि मानों सूर्य की सी आग का है और ऐसा बड़ा दृष्टि आता है जैसा इस जगत का सूर्य देखने में आता है। परंतु बाईं आंख के साम्हने वह सूर्य के समान दिखाई नहीं देता पर चान्द के सदृश। ऐसा ही सफ़ेद रंग का है जैसा कि हमारी पृथिवी का चान्द हुआ करता है और उसी बढ़ाई का दृष्टि आता है परंतु अधिक तेजमान है। और उस के चारों ओर कई एक छोटे से चान्द घेरे रहते हैं जो कि हर एक उन में से ऐसा ही सफ़ेद और चमकीला है जैसा कि चान्द आप है। प्रभु हर दो स्थान पर ऐसे असमान रूप में दृष्टि आता है क्योंकि वह हर एक को उस गुण के अनुसार कि जिस से कोई प्रभु को ग्रहण करता है दिखाई देता है। और इस कारण वे जो उस को प्रेम की भलाई से ग्रहण करते हैं उन को एक तौर पर दीखता है और वे जो श्रद्धा की भलाई से उस को ग्रहण करते हैं उन को वह दूसरे तौर पर दृष्टि आता है। वे जो उस को प्रेम की भलाई से ग्रहण करते हैं उन को प्रभु सूर्य के सदृश दिखाई देता है और उन के ग्रहण करने के गुण के अनुसार वह आग सा और प्रचण्ड है। वे उस के स्वर्गीय राज में हैं। परंतु उन को जो उस को श्रद्धा की भलाई से ग्रहण करते हैं वह चान्द के समान दृष्टि आता है और उन के ग्रहण करने के अनुसार वह सफ़ेद और चमकीला दिखाई देता है। वे उस के आत्मीय राज में हैं[८९]। यह असमानता प्रभु के

---

८९ प्रभु स्वर्ग में सूर्य के सदृश दिखाई देता है और वह स्वर्ग का सूर्य है। न० १०५३· ३६३६·३६४३·४०६०। प्रभु उन को जो स्वर्गीय राज में हैं जहां प्रधान प्रेम उस से प्रेम रखना है सूर्य के समान दृष्टि आता है और उन को जो आत्मीय राज में हैं जहां पड़ोसी पर अनुग्रह करना और श्रद्धा प्रधान हैं वह चान्द के समान दीखता है। न० १५२१·१५२९·१५३०·१५३१·१८३७·

रूप की प्रतिरूपता से पैदा होती है क्योंकि प्रेम की भलाई आग से प्रतिरूपता रखती है इस लिये आग आत्मीय तात्पर्य में प्रेम है। और श्रद्धा की भलाई ज्योति से प्रतिरूपता रखती है इस लिये ज्योति आत्मीय तात्पर्य में श्रद्धा है[९०]।

प्रभु आंखों के साम्हने दिखाई देता है क्योंकि भीतरी भाग जो मनसंबन्धी हैं आंखों से देखते हैं। वे प्रेम की भलाई के द्वारा दहिनी आंख से देखते हैं और श्रद्धा की भलाई के द्वारा बाईं आंख से[९१]। क्योंकि सब वस्तुएं जो दहिने हाथ पर (क्या मनुष्यों के क्या दूतगण के) हैं उस भलाई से प्रतिरूपता रखती हैं जिस से सचाई पैदा होती है। और वे जो बायें हाथ पर हैं उस सचाई से प्रतिरूपता रखती हैं जिस से भलाई पैदा होती है[९२]। श्रद्धा की भलाई अपने सारांश से लेकर वह सचाई है जो भलाई से निकलती है।

११९। इस से धर्मपुस्तक में प्रभु प्रेम के विषय में सूर्य से उपमा दिया गया है और श्रद्धा के विषय में चान्द से। और वह प्रेम जो प्रभु से आकर प्रभु की ओर झुका हुआ है उस का तात्पर्य सूर्य है और वह श्रद्धा जो प्रभु से आकर प्रभु में जाती है उस का तात्पर्य चान्द है। जैसा कि इन वचनों में लिखा गया है कि "चान्द की चान्दनी ऐसी होगी जैसी सूर्य की ज्योति। और सूर्य की ज्योति सात गुणी बल्कि सात दिन की ज्योति के बराबर होगी"। (ईसाइयाह पर्व ३० वचन २३) "जब मैं तुझे बुझाऊंगा तो आसमान को ढांपूंगा और उस के सितारों को अन्धेरा करूंगा। सूर्य को बादल तले छिपाऊंगा और चान्द अपनी ज्योति नहीं देगा। और मैं आसमान के सारे चमकीले तारागण तुझ पर अन्धेरा करूंगा और मेरी ओर से तेरी भूमि पर अन्धेर छा जावेगा"। (हज़िकीएल पर्व ३२ वचन ७·८) "सूर्य अरुणोदय होते होते अन्धेरा हो जावेगा और चान्द अपनी ज्योति न देगा"। (ईसाइयाह पर्व १३ वचन १०) "सूर्य और चान्द अन्धेरा हो जाते सारे सितारे

४०६०। प्रभु मध्यम उंचाई पर दहिनी आंख के आगे सूर्य के सदृश दिखाई देता है और बाईं आंख के साम्हने चान्द के सदृश। न० १०५३·१५२१·१५२९·१५३०·१५३१·३६३६·३६४३·४३२१·५०६७·७०७८·७०८३·७१७३·७२७०·८८१२·१०८०६। मैं ने प्रभु को सूर्य और चान्द के सदृश देखा। न० १५३१·७१७३। स्वर्ग में प्रभु का देवकीय सारभूत उस के देवत्व से कहीं बढ़कर ऊंचा है। न० ७२७०·८७६०।

९० धर्मपुस्तक में आग से (क्या स्वर्गीय क्या नरकीय आग) तात्पर्य प्रेम है। न० ९३४·४९०६·५२१५। पुण्य आग से अर्थात स्वर्गीय आग से तात्पर्य देवकीय प्रेम है। न० ९३४·६३१४·६८३२। और नरकीय आग से तात्पर्य स्वेच्छा और जगत को प्यार करना है और इन अनुराग के हर एक भांति का स्वार्थित्व। न० १८६१·५०७१·६३१४·६८३२·७३७५·१०७४७। प्रेम जीवन की आग है और वास्तव में जीवन आग से आप उत्पन्न होता है। न० ४९०६·५०७१·६०३२·६३१४। ज्योति से तात्पर्य श्रद्धा की सचाई है। न० (३३९५)·३४८५·३६३६·३६४३·३९९३·४३०२·४४५३·४४१५·९५४८·९६८४।

९१ बाईं आंख की दृष्टि श्रद्धा की सचाइयों से प्रतिरूपता रखती है और दहिनी आंख की दृष्टि श्रद्धा की भलाइयों से। न० ४४१०·६९२३।

९२ जो वस्तुएं कि मनुष्य की दहिनी ओर हैं उस भलाई से संबन्ध रखती हैं जिस से सचाई निकलती है। और वे जो बाईं ओर हैं उस सचाई से संबन्ध रखती हैं जो भलाई से निकलती है। न० ९४९५·९६०४।

अपनी ज्योति देने से बाज़ आते। सूर्य अन्धेरा और चान्द लहू हो जावेगा"। (योएल पर्व २ वचन १० · ३१ · पर्व ३ वचन १५) "सूर्य बालों के कमल सरीखा काला और चान्द लहू सा हो गया और आसमान के सितारे पृथिवी पर गिर पड़े"। (एपोक़लिप्स पर्व ६ वचन १२) "उन दिनों के उत्पात के पीछे तुर्त सूर्य अन्धेरा हो जावेगा और चान्द अपनी ज्योति न देगा और सितारे आसमान से गिर जावेंगे"। (मत्ती पर्व २४ वचन २९) इत्यादि इत्यादि। इन वचनों में सूर्य से तात्पर्य प्रेम है चान्द से तात्पर्य श्रद्धा है और सितारों से तात्पर्य भलाई और सचाई का ज्ञान है[६३]। जब ये यह अर्थात गुण [कलीसिया में] नहीं रहते तब यह बात कही जाती है कि वे अन्धेरे हो जाते हैं या अपनी ज्योति को खो देते हैं या आसमान से गिर जाते हैं। प्रभु के रूपान्तरग्रहण करने से पतरस और याकूब और यूहन्ना नामक चेलों के साम्हने यह बात प्रगट हुई कि प्रभु स्वर्ग में सूर्य के समान दिखाई देता है। उस समय "उस का चिहरा सूर्य सा चमका"। (मत्ती पर्व १७ वचन २) प्रभु को चेलों ने उस तौर देखा था क्योंकि वे शरीर से अलग होकर स्वर्ग की ज्योति में थे। और इस से प्राचीन लोग जिन में कलीसिया सच्चे ज्ञान का प्रतिरूपक थी देवत्व की पूजा करने में अपने मुंह पूर्व में के सूर्य की ओर फेरते थे। और गिर्जा घरों की पूर्व दिशा की ओर बनाने की रीति उन लोगों से चली आती है।

१२०। ईश्वरीय प्रेम के स्वभाव और तीक्ष्णता का जगत के सूर्य से उस के मिलाने के द्वारा कुछ बोध हो सके। क्योंकि (यद्यपि यह बात अविश्वास्य मालूम हो) ईश्वरीय प्रेम सूर्य के तेज से कहीं बढ़कर प्रचण्ड है और इस कारण प्रभु सूर्य बनकर स्वर्गों के भीतर बिचवाईरहित नहीं बहता परंतु वह उस के प्रेम का तेज क्रम क्रम से मध्यम करता है ऐसे बिचवाइयों के द्वारा जो सूर्य के चारों ओर चमकीले कमरबन्द के समान दृष्टि आते हैं। दूतगण भी एक उचित-रूप के पतले बादल में छिपे बैठे हैं इस वास्ते कि उन को ईश्वरीय अन्तःप्रवाह से कुछ हानि न हो[६४]। और उसी हेतु से प्रभु के प्रेम के ग्रहण करने के अनुसार सारे स्वर्ग प्रभु से कुछ दूरी पर हैं। उत्तमतर स्वर्ग प्रभु के पास पास हैं क्योंकि वे प्रेम की भलाई में हैं। अधमतर स्वर्ग कुछ दूरी पर हैं क्योंकि वे श्रद्धा की भलाई में हैं। और वे जो नरकों के सदृश किसी भलाई में नहीं हैं और भी अधिक दूरी

---

६३ धर्मपुस्तक में तारासमूह और तारागण से तात्पर्य भलाई और सचाई का ज्ञान है। न० २४९५ · २८४९ · ४६९७।

६४ प्रभु के ईश्वरीय प्रेम का स्वभाव और तीक्ष्णता जगत के सूर्य की आग से उपमा दी जाने का बयान उदाहरणों के द्वारा। न० ६८३४ · (६८४४) · ६८४९। प्रभु का ईश्वरीय प्रेम सारी मनुष्यजाति की ओर ऐसा प्रेम रखना है जो मनुष्य के बचाने की इच्छा करने से उत्पन्न है। न० १८२० · १८६५ · २२५३ · ६८७२। वह प्रेम जो प्रभु के प्रेम की आग से सीधा चलता है स्वर्ग के भीतर नहीं प्रवेश करता पर सूर्य के चारों ओर कमरबन्दों का सा दिखाई देता है। न० ७२७०। दूतगण भी उचित रूप के पतले बादल से छिपे बैठे हैं इस वास्ते कि उन को तेजमान प्रेम के अन्तःप्रवाह से हानि न हो। न० ६८४९।

पर हैं। और जितना वे भलाई के विरुद्ध हैं उतना ही वे अधिक दूरी पर होते जाते हैं[९५]।

१२१। जब प्रभु स्वर्ग ही में दिखाई देता है जैसा कि वह बार बार दृष्टि आता है तब वह सूर्य से घेरा हुआ नहीं दीखता परंतु एक ऐसे दूतसंबन्धी रूप पर दिखाई देता है जो प्रभु के चिहरे के चमकीले ईश्वरत्व के द्वारा दूतगण के रूप से विशेषित है। तो भी वह स्वर्ग में आप नहीं है (क्योंकि वह आप सूर्य से सदैव घेरा हुआ है) परंतु वह वहां पर चितवन करके उपस्थित होता है। किस वास्ते कि स्वर्ग के निवासी भी बहुधा वहां पर आप उपस्थित होकर देखने में आते हैं जहां उन का दृष्टिगोचर समाप्ति को प्राप्त होता है यद्यपि वह जगह बहुत दूर हो उस जगह से जहां वे सच मुच रहते हैं। इस भांति का वर्त्तमान होना भीतरी दृष्टि का वर्त्तमान होना कहलाता है और उस के बयान में हम आगे कुछ कहेंगे। मैं ने प्रभु को सूर्य से बाहर और उस से कुछ नीचे दूतविषयक रूप पर भी बड़ी ऊंचाई पर देखा। और मैं ने उस को वैसे रूप पर चमकीले चिहरे के साथ पास ही पास देखा। और एक बेर मैं ने उस को दूतगण के मध्य में चटकीले किरण के सदृश देखा।

१२२। प्राकृतिक जगत का सूर्य दूतगण को घना अन्धेरा सा स्वर्ग के सूर्य के संमुख दिखाई देता है। और चान्द उस से कुछ न्यून धुन्धला स्वर्ग के चान्द के संमुख दृष्टि आता है। और यह रूप सदैव बराबर बना रहता है। क्योंकि कोई जगतसंबन्धी अग्निमय वस्तु आप आत्मप्रेम से प्रतिरूपता रखती है और उस की ज्योति स्वार्थ के झूठ से प्रतिरूपता रखती है। आत्मप्रेम ईश्वरीय प्रेम के व्यासक्रम से विपरीत है। और जो ईश्वरीय प्रेम और ईश्वरीय सचाई से विपरीत है वह दूतगण को घना अन्धेरा दिखाई देता है। इस लिये प्राकृतिक जगत के सूर्य और चान्द की पूजा करना और उन के आगे दण्डवत करना धर्मपुस्तक में आत्मप्रेम और उस झूठ को बतलाते हैं जो स्वार्थ से पैदा होता है। और इस कारण ऐसे मूर्त्तिपूजनहारों को मार डालना चाहिये। देखो वर्जनपोथी पर्व ४ वचन १९ • पर्व १७ वचन ३ • ४ • ५। यरिमियाह पर्व ८ वचन १ • २। हज़िकीएल पर्व ८ वचन १५ • १६ • १८। एपोकलिप्स पर्व १६ वचन ८। मत्ती पर्व १३ वचन ६[९६]।

---

९५ दूतगण के साथ प्रभु का वर्त्तमान होना प्रभु की ओर से प्रेम और श्रद्धा की भलाई के ग्रहण करने के अनुसार होता है। न० ९०४ • ४१९८ • ४३२० • ६२८० • ६८३२ • ७०४२ • ८८१९ • ९६८० • ९६८२ • ९६८३ • १०१०६ • १०८११। प्रभु हर किसी को उस ही के गुण के अनुसार दृष्टि आता है। न० १८६१ • ३२३५ • ४१९८ • ४२०६। नरक स्वर्गों से दूरी पर है क्योंकि बुरे आत्मागण प्रभु के ईश्वरीय प्रेम का विद्यमान होना सह नहीं सकते। न० ४२९९ • ७५१९ • ७७३८ • ७९८९ • (८१५७) • ८३०६ • ९३२७। और इस से नरक स्वर्गों से बहुत ही दूरी पर है और वह दूरता एक बड़ी अगाधदरी है। न० ९३४६ • १०१८७।

९६ जगत का सूर्य दूतगण को देखने में नहीं आता परंतु उस के स्थान में उन को स्वर्ग के सूर्य के (अर्थात प्रभु के) संमुख कुछ धुन्धला सा दृष्टि आता है। न० ७०७८ • ९७५५। विपरीत तौर पर सूर्य से तात्पर्य आत्मप्रेम है। न० २४४१। इस अर्थ के अनुसार सूर्य की पूजा करने से तात्पर्य उन वस्तुओं की पूजा करना है जो स्वर्गीय प्रेम के (अर्थात प्रभु के) विरुद्ध हैं।

१२३। जब कि प्रभु स्वर्ग में उस ईश्वरीय प्रेम के कारण जो उस में है और उस से है सूर्य के सदृश दिखाई देता है इस लिये वे जो स्वर्ग में रहते हैं सदैव उस की ओर अपना मुंह फिराते हैं। वे जो स्वर्गीय राज में रहते हैं उस को सूर्य करके संमुख करते हैं और वे जो आत्मीय राज में हैं उस को चान्द करके संमुख करते हैं। परंतु वे जो नरक में हैं घने अन्धेरे की ओर मुंह फेरते हैं और वह अन्धेरा जो विपरीत है और इस लिये प्रभु के पीछे है उस अन्धेरे की ओर मुंह फेरते हैं। क्योंकि वे सब के सब अपने और जगत के प्रेम में हैं और इस से प्रभु के विरुद्ध हैं। वे जो उस घने अन्धेरे की ओर जो जगत के सूर्य के स्थान पर है मुंह फेरते हैं पीछे के नरकों में हैं। और वे राक्षस कहलाते हैं। और वे जो उस अन्धेरे की ओर जो चान्द की जगह में है मुंह फेरते हैं आगे के नरकों में हैं। और वे भूत प्रेत कहलाते हैं। इस लिये यह कहा जाता है कि वे जो नरकों में हैं घने अन्धेरे में पड़े हैं और वे जो स्वर्गों में हैं ज्योति में हैं। अन्धेरे से तात्पर्य वह झुठाई है जो बुराई से पैदा होती है और ज्योति से तात्पर्य वह सचाई है जो भलाई से उत्पन्न होती है। वे व्यक्तियां उस तौर पर मुंह फेरती हैं क्योंकि परलोक में सब व्यक्तियां उन वस्तुओं की ओर देखती हैं जो उन के भीतरी भागों में प्रधान हैं अर्थात वे अपने इच्छाओं की ओर देखती हैं। और भीतरी भाग ही दूत या आत्मा के चिहरे को रचते हैं। आत्मीय जगत में कोई नियत दिशाएं भी नहीं हैं जैसा कि प्राकृतिक जगत में हैं परंतु दिशाएं चिहरे के फिरने पर अवलम्बित हैं। मनुष्य भी अपने आत्मा के विषय अपने आप को इसी तौर पर फेरता है। यदि वह आत्म-प्रेम में या जगतप्रेम में हो तो प्रभु से पीछे की ओर फिरता है और यदि वह प्रभु के या अपने पड़ोसी के प्रेम में हो तो वह प्रभु की ओर फिरता है। परंतु मनुष्य अपनी इस अवस्था को नहीं जानता क्योंकि वह प्राकृतिक जगत में रहता है जहां कि दिशाएं सूर्योदय और सूर्यास्त के द्वारा ठहराई जाती हैं। परंतु यह बात समझने में कठिन है इस वास्ते जब हम स्वर्ग की दिशा और फैलाव और काल के बारे में लिखेंगे तब हम उस का अधिक बयान करेंगे।

१२४। प्रभु स्वर्ग का सूर्य है और सब वस्तुएं जो उस से पैदा हुई हैं उस की ओर देखती हैं इस कारण वह सब वस्तुओं का सामान्य केन्द्र है जिस पर सारी दिशाएं और स्थापन करना अवलम्बित हैं[९७]। और इस से सब वस्तुएं जो नीचे हैं चाहे स्वर्ग में चाहे जगत में उस के साम्हने और उस के अधीन हैं।

१२५। पढ़वैये को अब अग्रगामी बाबों का प्रसङ्ग प्रभु के विषय स्पष्ट रूप से मालूम हो जाता है। अर्थात प्रभु स्वर्ग का परमेश्वर है। न० २ से ६ तक। स्वर्ग उस के ईश्वरत्व का बना है। न० ७ से १२ तक। प्रभु का ईश्वरत्व स्वर्ग में उस

न० २४४१ · १०५८४। जो नरकों में हैं उन को स्वर्ग का सूर्य घना अन्धेरा सा दृष्टि आता है। न० २४४१।

९७ प्रभु सब का सामान्य केन्द्र है जिस की ओर स्वर्ग की सारी वस्तुएं अपने आप को फेरती हैं। न० ३६३३।

से प्रेम करना है और पड़ोसी पर अनुग्रह। न० १३ से १९ तक। जगत की सब वस्तुएं स्वर्ग से प्रतिरूपता रखती हैं और स्वर्ग के द्वारा प्रभु से। न० ८७ से ११५ तक। और प्राकृतिक जगत का सूर्य और चान्द वैसी प्रतिरूपता स्वर्ग से रखते हैं। न० १०५।

स्वर्ग में की ज्योति और गरमी के बारे में।

१२६। वे जो केवल प्रकृति के द्वारा ध्यान करते हैं यह बात समझ नहीं सकते कि स्वर्ग में ज्योति है तो भी वह ज्योति इस जगत के दोपहर दिन की ज्योति से कहीं बढ़कर चमकीली है। मैं ने उस को बार बार सांझ के समय और रात के समय भी देखा। और पहिले मुझ को दूतगण से यह बात सुनकर अचरज हुआ कि स्वर्ग की ज्योति की अपेक्षा जगत की ज्योति छांह ही से कुछ कुछ बेहतर है। परंतु जब से कि मैं ने उस को आप देखा है तब से मैं इस बात की गवाही देता हूं कि यह बात ठीक है। स्वर्ग की ज्योति की सफ़ेदी और चमक कहने से बाहर है और जो कुछ सामान स्वर्ग में है उस ज्योति में मुझ को अधिक स्वच्छता से (और इस से अधिक स्पष्टता से) दृष्टि आया इस जगत में की प्राकृतिक वस्तुओं से।

१२७। स्वर्ग की ज्योति प्राकृतिक नहीं है जैसा कि इस जगत की ज्योति है पर वह आत्मिक है। क्योंकि वह प्रभु की ओर से (मानों सूर्य से) निकलती है। और वह सूर्य ईश्वरीय प्रेम है जैसा कि पिछले बाब में सूचित हुआ। जो कुछ कि स्वर्ग में प्रभु से (मानों सूर्य से) प्रचलित होता है ईश्वरीय सचाई कहलाता है। यद्यपि वह अपने सारांश से लेकर ईश्वरीय भलाई ईश्वरीय सचाई से संयुक्त है। इस से दूतगण के पास ज्योति और गरमी होती हैं। ज्योति ईश्वरीय सचाई से निकलती हैं और गरमी ईश्वरीय भलाई से। और इस से स्पष्ट है कि स्वर्ग की ज्योति और गरमी उन की जड़ से प्राकृतिक नहीं हैं पर आत्मिक हैं[९८]।

१२८। ईश्वरीय सचाई दूतों के निकट ज्योति है इस लिये कि वे आत्मिक हैं। वे प्राकृतिक नहीं हैं। क्योंकि आत्मिक लोग अपने ही सूर्य के सहाय देखते हैं और प्राकृतिक लोग भी अपने सूर्य से। ईश्वरीय सचाई वह मूल है कि जिस से दूतगण अपनी बुद्धि को पाते हैं। और बुद्धिशक्ति उन की भीतरी दृष्टि है जो उन की बाहरी दृष्टि में बहकर उन की दृष्टिशक्ति पैदा करती है। और इस से सब वस्तुएं जो स्वर्ग में प्रभु से आकर सूर्य के समान दिखाई देती है ज्योति में देख पड़ती हैं[९९]। स्वर्ग में ज्योति की ऐसी उत्पत्ति होकर प्रभु से ईश्वरीय सचाई

---

९८ स्वर्ग में सारी ज्योति प्रभु की ओर से मानों सूर्य से निकलती है। न० १०५३ · १५२१ · ३१९५ · ३३४१ · ३६३६ · ३६४३ · ४४१५ · ९५४८ · ९६८४ · १०८०९। जो ईश्वरीय सचाई प्रभु से प्रचलित होती है वह स्वर्ग में ज्योति के समान दिखाई देती है और वह स्वर्ग की सारी ज्योति है। न० ३१९५ · ३२२३ · ५४०० · ८६४४ · ९३९९ · ९५४८ · ९६८४।

९९ स्वर्ग की ज्योति दूतों और आत्माओं की दृष्टि और बुद्धि प्रकाशमान करती है। न० २७७६ · ३१३८।

के ग्रहण करने के अनुसार उस को घटती बढ़ती हुआ करती है। या यों कहो दूतगण की बुद्धि और ज्ञान के अनुसार उन की घटती बढ़ती हुआ करती है। इस लिये स्वर्गीय राज की ज्योति आत्मीय राज की ज्योति से भिन्न है और प्रत्येक सभा में भी भिन्न भिन्न ज्योति है। स्वर्गीय राज की ज्योति तेजोमय दिखाई देती है क्योंकि उस राज के दूत सूर्यरूपी प्रभु से ज्योति ग्रहण करते हैं। परंतु आत्मीय राज की ज्योति सफ़ेद है क्योंकि उस राज के दूत चान्दरूपी प्रभु से ज्योति ग्रहण करते हैं। (देखो न० ११८)। एक सभा की ज्योति दूसरी सभा की ज्योति के समान नहीं है। और न एक ही सभा में ज्योति बराबर एक सी है। क्योंकि वे जो मध्य में रहते हैं अधिक ज्योति में हैं और वे जो परिधि पर रहते हैं कम ज्योति पाते हैं। (देखो न० ४३)। संक्षेप में जितना दूतगण ईश्वरीय सचाई ग्रहण करते हैं (अर्थात प्रभु से बुद्धि और ज्ञान पाते हैं) उतना ही उन को ज्योति है[1]। और इस कारण वे ज्योति के दूतगण कहलाते हैं।

१२९। जब कि प्रभु स्वर्ग में ईश्वरीय सचाई है और ईश्वरीय सचाई स्वर्ग की ज्योति है तो धर्मपुस्तक में प्रभु ज्योति कहलाता है और हर एक सचाई भी जो उस से पैदा होती है ज्योति कहाती है। जैसा कि इन वचनों में मालूम किया जाता है कि "यिसू ने कहा जगत की ज्योति मैं हूं। जो मेरे पीछे चलता है अन्धेरे में न चलेगा। बल्कि जीवन की ज्योति पावेगा"। (यूहन्ना की इञ्जील पर्व ८ वचन १२)। "जब तक मैं जगत में हूं जगत की ज्योति हूं"। (यूहन्ना की इञ्जील पर्व ९ वचन ५) "यिसू ने कहा कि ज्योति थोड़ी और देर तक तुम्हारे बीच है। जब तक कि ज्योति तुम्हारे पास है चलो। न हो कि अन्धेरा तुम्हें आ पकड़े। जब तक ज्योति तुम्हारे पास है ज्योति पर श्रद्धा लाओ इस लिये कि तुम ज्योति की सन्तान हो। मैं जगत में ज्योति होकर आया हूं इस लिये कि जो कोई मुझ पर श्रद्धा लावे अन्धेरे में न रहे"। (यूहन्ना की इञ्जील पर्व १२ वचन ३५ · ३६ · ४६)। "ज्योति जगत में आई और मनुष्यों ने अन्धेरे को ज्योति से अधिक प्यार किया"। (यूहन्ना की इञ्जील पर्व ३ वचन १९)। यूहन्ना ने प्रभु के विषय में यह बात कही कि "वास्तविक ज्योति वह थी जो जगत में आकर हर एक मनुष्य को उजला करती है"। (यूहन्ना की इञ्जील पर्व १ वचन ४ · ९)। "उन लोगों ने जो अन्धेरे में बैठे थे बड़ी ज्योति देखी और उन पर जो मृत्यु के देश और छांह में बैठे थे ज्योति चमकी"। (मत्ती पर्व ४ वचन १६)। "लोगों के बचा और जेण्टाइल अर्थात परलोगों की ज्योति के लिये मैं तुझे दूंगा"। (ईसाइयाह पर्व ४२ वचन ६)। "मैं तुझ को परलोगों के लिये ज्योति दूंगा कि तुझ से मेरी

---

[1] स्वर्ग में ज्योति दूतगण की बुद्धि और ज्ञान के अनुसार होती है। न० १५२४ · १५२९ · १५३० · ३३३९। और जितनी दूतविषयक सभाएं स्वर्ग में हैं उतनी ही ज्योति की भिन्नताएं हैं क्योंकि स्वर्ग में असंख्य भिन्नताएं भलाई और सचाई के विषय में (अर्थात ज्ञान और बुद्धि के विषय में) विद्यमान होती हैं। न० ६८४ · ६९० · ३२४१ · ३७४४ · ३७४५ · ४४१४ · ५५९८ · ७२३६ · ७८३३ · ७८३६।

मुक्ति पृथिवी की सीमाओं तक भी पहुंचे"। (ईसाइयाह पर्व ४९ वचन ६)। "वे जातियें जिन्हों ने मुक्ति पाई उस की ज्योति में फिरेंगी"। (एपोकलिप्स पर्व २१ वचन २४)। "हां अपनी ज्योति और अपनी सचाई प्रकाश कर। वे ही मेरा पथ-दर्शन करें"। (ज़बूर पर्व ४३ वचन ३)। इन वचनों से और कई अन्य वचनों से प्रभु अपनी ईश्वरीय सचाई के विषय ज्योति कहलाता है। और सचाई भी आप ज्योति कहाती है। जब कि स्वर्ग की ज्योति प्रभु से सूर्य की ज्योति के समान निकलती है इस लिये जब वह पतरस और याकूब और यूहन्ना के संमुख रूपान्तर-ग्रहण करता था तो उस समय "उस का चिहरा सूर्य सा चमका और उस की पोशाक ज्योति के सदृश सफ़ेद हो गई" और बर्फ़ से भी अधिक सफ़ेद थी पृथिवी का कोई धोबी ऐसी सफ़ेदी नहीं ला सकता था। (मरकस पर्व ९ वचन ३। मत्ती पर्व १७ वचन २)। प्रभु की पोशाक ऐसी दृष्टि आती थी क्योंकि वह उस ईश्वरीय सचाई की प्रकाशक थी जो प्रभु से स्वर्गों में निकलती है। और इस कारण धर्मपुस्तक में पोशाक से तात्पर्य सचाई है[2]। सो हज़रत दाऊद ने यों कहा कि "हे प्रभु तू ज्योति को पोशाक के सदृश पहिनता है"। (ज़बूर पर्व १०४ वचन २)।

१३०। स्वर्ग की ज्योति आत्मिक है और आत्मीय ज्योति ईश्वरीय सचाई है। ये दो बातें स्पष्ट हैं क्योंकि मनुष्य इतना कुछ ईश्वरीय सचाई में आनन्द करता है और उस से प्रकाश पाता है जितना वह ईश्वरीय सचाई की बुद्धि और ज्ञान के पथ में चलता है। किस वास्ते कि मनुष्य की आत्मीय ज्योति उस की ज्ञानशक्ति की ज्योति है और ज्ञानशक्ति के विषय में वे सचाइयें हैं जिन को वह ज्योति पृथक पृथक करके जाति और गण प्रस्तुत करती है तथा हेतु और अभिप्राय निर्णय करती है जिस से सिद्धान्त क्रम करके (आत्मीय ज्योति के अनुसार) चलते हैं[3]। प्राकृतिक मनुष्य नहीं मालूम करता कि वह सच्ची ज्योति है कि जिस से ज्ञानशक्ति ऐसी वस्तुओं को देखती है। क्योंकि वह अपनी आंखों से वह ज्योति नहीं देखता और न ध्यान में उस को मालूम करता है। तो भी बहुतेरे लोग उस को जानते हैं और उस को उस प्राकृतिक ज्योति से भी अलग करते हैं

---

२ धर्मपुस्तक में पोशाक से सचाइयें तात्पर्य है क्योंकि वे भलाई को पहिनाती हैं। न० १०७३ • २५७६ • ५२४८ • ५३१९ • ५९५४ • ६२१६ • ९९५२ • १०५३६। और जब प्रभु ने रूपान्तरग्रहण किया था तब उस की पोशाक से तात्पर्य ईश्वरीय प्रेम से ईश्वरीय सचाई के निकलने का था। न० ९२१२ • ९२१६।

३ स्वर्ग की ज्योति मनुष्य की ज्ञानशक्ति को प्रकाशमान करती है और इसी हेतु मनुष्य बुद्धिमान है। न० १५२४ • ३१३८ • ३१६७ • ४४०८ • ६६०८ • ८७०७ • ९१२८ • ९३९९ • १०५६९। ज्ञानशक्ति प्रकाशमान होती है क्योंकि वह सचाई की ग्रहणकरनेवाली है। न० ६२२२ • ६६०८ • १०६५९। ज्ञानशक्ति इतनी ही प्रकाशमान होती है जितना मनुष्य प्रभु से भलाई में की सचाई को पाता है। न० ३६१९। ज्ञानशक्ति उसी गुण की है जिस की वे सचाइयें हैं जो भलाई से निकलती हैं और जिस की ज्ञानशक्ति आप बनी है। न० १००६४। ज्ञानशक्ति स्वर्ग से ज्योति पाती है जैसा कि दृष्टि जगत से ज्योति पाती है। न० १५२४ • ५११४ • ६६०८ • ९१२८। स्वर्ग की ज्योति प्रभु की ओर से मनुष्य के साथ सदैव विद्यमान है। परंतु वह केवल इतनी दूर अन्दर बहती है जितनी दूर मनुष्य उस सचाई में है जो भलाई से निकलती है। न० ४०६० • ४२१४।

जिस में वे रहते हैं जो प्रकृति से और न कि आत्मीयभाव से ध्यान करते हैं। वे लोग प्रकृति से ध्यान करते हैं जो जगत ही को देखते हैं और सब वस्तुओं का प्रकृति से संबन्ध करते हैं। परंतु वे लोग आत्मीयभाव से ध्यान करते हैं जो स्वर्ग की ओर देखते हैं और सब वस्तुओं का ईश्वरत्व से संबन्ध करते हैं। बार-म्बार मैं ने ऐसी शक्ति पाई कि जिस करके मैं ने मालूम किया और देखा भी कि जो ज्योति मन को प्रकाशमान करती है सो यथार्थ ज्योति है और उस ज्योति से कि जो प्राकृतिक ज्योति कहलाती है संपूर्ण रूप से भिन्न है। मैं उस ज्योति में क्रम करके अधिक भीतरी तौर पर उठाया गया और ज्यों ज्यों मैं ऊंचा होता जाता था त्यों त्यों मेरी ज्ञानशक्ति प्रकाशमान होती जाती थी यहां तक कि मैं ने ऐसी वस्तुओं को देखा जो पहिले मैं ने कभी नहीं देखी थीं। और अन्त को मैं ने ऐसी वस्तुओं को देखा जो केवल प्राकृतिक ज्योति ही के सहाय ध्यान से पकड़ी नहीं जातीं। कभी कभी मैं प्राकृतिक मन की उन बातों के बारे जो स्वर्गीय ज्योति में स्पष्ट रूप से और प्रत्यक्ष मालूम हैं इस अतीत्यता के विषय में व्याकुल हुआ[४]। जब कि ज्ञानशक्ति की एक यथायोग्य ज्योति है तो हम ज्ञानशक्ति के बारे में ऐसी बातों को काम में लाते हैं जैसी आंख के बारे में। अर्थात हम कहते हैं कि वह देख भाल सकती है और जब वह किसी वस्तु को मालूम करती है तब हम कहते हैं कि वह ज्योति में है और जब वह किसी वस्तु को नहीं देखती तब हम कहते हैं कि वह तेजोहीन और अन्धेरा है इत्यादि इत्यादि।

१३१। जब कि स्वर्ग की ज्योति ईश्वरीय सचाई है तो वह ईश्वरीय ज्ञान और बुद्धि भी है और इसी हेतु स्वर्ग की ज्योति में चढ़ना बुद्धि और ज्ञान में चढ़ना है अर्थात बुद्धिमान होना है। इस से यह सिद्धान्त निकलता है कि दूत-गण अपनी बुद्धि और ज्ञान के अनुसार ज्योति में बराबर होते रहते हैं। फिर क्योंकि स्वर्ग की ज्योति ईश्वरीय ज्ञान है तो सब व्यक्तियों का सच्चा स्वभाव उस ज्योति में प्रत्यक्ष होता है। इस लिये कि हर एक के भीतरी भाग वहां चिहरे में प्रत्यक्ष से प्रकाशित हैं और उन का गुण ठीकों ठीक प्रगट होता है। तनक सा बात भी छिपी नहीं होती। भीतरी दूतगण अपनी अन्दरूनी बातों के प्रत्यक्ष होने में आनन्द भोगते हैं क्योंकि वे भलाई को छोड़कर और कुछ नहीं चाहते। इस से विपरीत वे जो स्वर्ग के नीचे हैं और भलाई करना नहीं चाहते निपट डरते हैं कि कहीं ऐसा न हो कि कोई हम को स्वर्ग की ज्योति में देख पावे। नरकनिवासी आपस में एक दूसरे को मनुष्य के सदृश दिखाई देता है। परंतु अच-रज की बात है कि स्वर्ग की ज्योति में वे भूत प्रेत के समान दिखाई देते हैं।

---

४ जब मनुष्य विषयक [मन] से उठाया जाता है तब शान्तिमय ज्योति में आता है और अन्त को स्वर्गीय ज्योति तक पहुंचता है। न० ६३१३ · ६३१५ · ६४०७। क्योंकि स्वर्ग की ज्योति में तब यथार्थ ऊंचा करना है जब मनुष्य बुद्धि में उठाया जाता है। न० ३१९०। जब कभी मैं जगत के बोधों से अलग हुआ तो मैं ने बड़ी ही बड़ी ज्योति मालूम की। न० १५२६ · ६६०८।

भयानक चिहरों और भयानक शरीरों के साथ अपनी निज बुराइयों के सदृश ठीक ठीक दृष्टि आते हैं[५]। यही अवस्था आत्मा के विषय में मनुष्य की है जब कि दूतगण उस पर दृष्टि डालते हैं। अर्थात यदि वह भला हो तो दूतगण को वह अपनी भलाई के अनुसार सुन्दर दीखता है। यदि वह बुरा हो तो अपनी बुराई के अनुसार कुरूपी भूत के समान दृष्टि आता है। इस से स्पष्ट है कि स्वर्ग की ज्योति से कोई वस्तु छिपी नहीं रहती और सारी वस्तुएं प्रत्यक्ष हैं क्योंकि स्वर्ग की ज्योति ईश्वरीय सचाई है।

१३२। जब कि ईश्वरीय सचाई स्वर्गों में ज्योति है तो सब सचाइयें जहां कहीं वे पाई जाती हैं (चाहे दूत में हों चाहे उस से बाहर हों चाहे स्वर्गों में हों चाहे उन से बाहर हों) स्वच्छ और उज्ज्वल हैं। परंतु सचाइयें स्वर्गों से बाहर ऐसी चमकीली नहीं हैं जैसा कि वे स्वर्गों के अन्दर चमकीली हैं। सचाइयें स्वर्गों से बाहर ठंढाई से चमकती हैं जैसा कि बर्फ़ गरमी के विना चमकती है। क्योंकि वे अपने सारांश को उस तौर पर भलाई से नहीं निकालती जिस तौर स्वर्गों में सचाइयें अपने सारांश को निकालती हैं। और इस कारण जब स्वर्ग की ज्योति उस ठंढी ज्योति पर पड़ती है तब वह अदृश्य हो जाती है। और यदि उस के नीचे बुराई हो तो वह अन्धेरा हो जाती है। यह मैं ने कभी कभी अपनी आंखों से देखा और मैं ने बहुत सी अन्य बातें सचाइयों की उज्ज्वलता के विषय में देखीं जो मैं यहां अलग छोड़ देता हूं।

१३३। अब स्वर्ग की गरमी के विषय में कुछ बयान किया जावेगा।

स्वर्ग की गरमी अपने सारांश से लेकर प्रेम ही है और वह प्रभु से (मानों सूर्य से) निकलती है। हम पहिले कह चुके हैं कि स्वर्ग का सूर्य प्रभु में का ईश्वरीय प्रेम है जो प्रभु की ओर से फैल जाता है। और इस से स्पष्ट है कि स्वर्ग की गरमी आत्मिक है और उस की ज्योति भी आत्मिक है। क्योंकि वे दोनों एक ही मूल से उपजती हैं[६]। दो वस्तुएं प्रभु की ओर से (मानों सूर्य से) निकलती हैं एक तो ईश्वरीय सचाई है दूसरी ईश्वरीय भलाई। स्वर्गों में ईश्वरीय सचाई ज्योति है और ईश्वरीय भलाई गरमी है। परंतु ईश्वरीय सचाई और ईश्वरीय भलाई आपस में ऐसी संयुक्त हैं कि वे दो वस्तुएं नहीं हैं पर एक ही वस्तु है। तो भी दूतगण के निकट वे अलग अलग हैं क्योंकि कोई दूत ईश्वरीय सचाई से अधिक ईश्वरीय भलाई ग्रहण करते हैं और कोई ईश्वरीय भलाई से अधिक ईश्वरीय सचाई पाते हैं। वे जो अधिक ईश्वरीय भलाई को ग्रहण करते हैं प्रभु के

---

५ वे जो नरकों में हैं उन की अपनी ज्योति में (जो जलते हुए कोएले की ज्योति के समान है) आपस में एक दूसरे को मनुष्य के सदृश दिखाई देते हैं परंतु स्वर्ग की ज्योति में वे भूत प्रेत के सदृश दृष्टि आते हैं। न० ४५३१ · ४५३३ · ४६७४ · ५०५७ · ५०५८ · ६६०५ · ६६२६।

६ गरमी के दो प्रकार के मूल हैं और ज्योति के भी दो प्रकार के मूल हैं अर्थात जगत का सूर्य और स्वर्ग का सूर्य। न० ३३३८ · ५२१५ · ७३२४। जो गरमी प्रभु से (मानों सूर्य से) फैल जाती है वह वही अनुराग है जो प्रेम से निकलता है। न० ३६३६ · ३६४३। और इस से आत्मीय गरमी अपने मूल से लेकर प्रेम है। न० २१४६ · ३३३८ · ३३३६ · ६३१४

स्वर्गीय राज में रहते हैं। और वे जो अधिक ईश्वरीय सचाई को ग्रहण करते हैं प्रभु के आत्मीय राज में रहते हैं। परंतु सब से निपुण दूत वे हैं जो दोनों गुणों को एक ही अंश तक ग्रहण करते हैं।

१३४। स्वर्ग की गरमी स्वर्ग की ज्योति के समान सब कहीं भिन्न भिन्न हैं। क्योंकि स्वर्गीय राज की गरमी आत्मीय राज की गरमी से भिन्न है और किसी दो सभाओं की गरमी एक सी नहीं है। परंतु यह भिन्नता केवल गरमी की तीक्ष्णता के अनुसार नहीं है पर जाति के अनुसार भी हुआ करती है। प्रभु के स्वर्गीय राज में गरमी अधिक तेजोमय और स्वच्छ होती है क्योंकि वहां दूतगण ईश्वरीय भलाई को अधिक ग्रहण करते हैं। प्रभु के आत्मीय राज में वह कम तेजोमय और कम स्वच्छ होती है क्योंकि वहां दूतगण ईश्वरीय सचाई को अधिक पाते हैं। और हर एक सभा में ग्रहणशक्ति के अनुसार गरमी की घटती बढ़ती होती है। नरकों में भी गरमी है परंतु वह वहां मलीन है[७]। स्वर्ग की गरमी से तात्पर्य पवित्र और स्वर्गीय आग है और नरक की गरमी से तात्पर्य अपवित्र और नरकीय आग है। दोनों का तात्पर्य प्रेम है। स्वर्गीय आग से तात्पर्य प्रेम प्रभु की ओर और प्रेम पड़ोसी की ओर है और वह उन सारे चाहों की प्रतिरूपक है जो इन प्रेमों से निकलते हैं। और नरकीय आग से तात्पर्य आत्मप्रेम और जगतप्रेम है और वह उन सब अनुरागों अर्थात चाहों की प्रतिरूपक है जो इन प्रेमों से निकलते हैं। प्रेम वह गरमी है जो किसी आत्मीय मूल से उत्पन्न होती है। यह बात स्पष्ट है इस हेतु से कि मनुष्य अपने प्रेम के तेज के अनुसार गरम होता है। क्योंकि प्रेम के परिमाण और गुण के अनुसार मनुष्य गरम हो जाता है और तमतमाता है। और जब उस का प्रेम रोका जावे तब वह गरमी दृष्टि में आती है। इस से यह भी व्यवहारित है कि मनुष्य के विषय में यह साधारण रूप से कहा जाता है कि वह मनुष्य आग भभूका हो गया या गरम मिज़ाज हो गया लहू का जलता है या लहू का जोश मारता है उन प्रेमों के अनुसार जो भलाई के प्रेम से संबन्ध रखते हैं और उन अनुरागों के अनुसार भी जो बुराई के प्रेम से संबन्ध रखते हैं।

१३५। जो प्रेम कि प्रभु से (मानों सूर्य से) निकलता है स्वर्ग में निवासियों पर गरमी बनकर लगता है। क्योंकि दूतगण के भीतरी भाग ईश्वरीय भलाई से अर्थात प्रभु से प्रेम को ग्रहण करते हैं। और उन के बाहरी भाग अन्तर्भाग से गरमी पाते हैं। इस से स्वर्ग में गरमी और प्रेम आपस में एक दूसरे से प्रतिरूपता रखते हैं। और वहां पर हर किसी की ऐसे प्रकार की और इतने अंश की गरमी है जैसी और जितनी वह उस के प्रेम के गुण से प्रतिरूपता रखती है जैसा कि अभी बयान हो चुका है। जगत की गरमी स्वर्ग में नहीं प्रवेश करती क्योंकि वह

---

७ नरकों में गरमी है पर मलीन। न० १७७३ • २७५७ • ३३४०। और उस की कुबास जगत में के लीद और गूह की दुर्गन्ध के समान है और बुरे से बुरे नरकों में उस की ऐसी दुर्गन्ध है मानो सड़ी लाश की कुबास है। न० ८१४ • ८१९ • ८२० • ९४३ • ९५४ • ५३९४।

बहुत स्थूल है और आत्मिक नहीं है पर प्राकृतिक है। मनुष्यों के विषय और ही अवस्था है क्योंकि वे आत्मीय जगत में भी है और प्राकृतिक जगत में भी है। इस वास्ते वे अपने आत्मा के विषय संपूर्ण रूप से अपने प्रेमों के अनुसार गरम हो जाते हैं। परंतु वे अपने शरीर के विषय आत्मा की गरमी और जगत की गरमी दोनों के द्वारा गरम हो जाते हैं। और उन गरमियों में से एक दूसरे के अन्दर बहती है क्योंकि एक दूसरे से प्रतिरूपता रखती है। इन दो प्रकार की गरमी की प्रतिरूपता का स्वभाव और गुण पशुओं के द्वारा प्रगट होता है। क्योंकि उन के अनुराग (जिन में से सन्तान जन्माना प्रधान अनुराग है) जगत के सूर्य की गरमी (जो केवल वसन्त और ग्रीष्मकाल में प्रबल है) उस के विद्यमान होने और परिमाण के अनुसार फूट निकलकर प्रभाव उत्पन्न करते हैं। परंतु वे बड़ा धोका खाते हैं जो यह ध्यान करते हैं कि जगत की अन्तःप्रवाही गरमी अनुरागों को मचाती है। क्योंकि कोई प्राकृतिक वस्तु किसी आत्मिक वस्तु में बहकर नहीं जाती परंतु जो आत्मिक है वह प्राकृतिक पदार्थों में बहता है। आत्मत्व का अन्तःप्रवाह प्रकृति के भीतर जाना ईश्वरीय परिपाटी के अनुकूल होता है। परंतु प्रकृति का अन्तःप्रवाह आत्मत्व के भीतर जाना ईश्वरीय परिपाटी के विरुद्ध होता है[८]।

१३६। दूतगण को मनुष्य की रीति पर ज्ञानशक्ति और इच्छा है। स्वर्ग की ज्योति उन की ज्ञानशक्ति का जीवन है क्योंकि स्वर्ग की ज्योति ईश्वरीय सचाई है और इस से ईश्वरीय ज्ञान। और स्वर्ग की गरमी उन की इच्छा का जीवन है क्योंकि स्वर्ग की गरमा ईश्वरीय भलाई है और इस से ईश्वरीय प्रेम। दूतगण का अत्यावश्यक जीवन गरमी से उत्पन्न है पर न ज्योति से परंतु तो भी वह यहां तक ज्योति से उत्पन्न है जहां तक उस में गरमी है। जीवन प्रायः गरमी से उत्पन्न होता है। यह बात स्पष्ट है क्योंकि गरमी के दूर करने पर जीवन का विनाश है। प्रेमरहित श्रद्धा के विषय या भलाईरहित सचाई के विषय भी वही अवस्था है। क्योंकि वह सचाई जो श्रद्धा की सचाई कहलाती है ज्योति है और वह भलाई जो प्रेम से उत्पन्न है गरमी है[९]। ये सचाइयें अधिक स्पष्टता से

---

८ आत्मिक अन्तःप्रवाह तो है पर प्रकृतिसंबन्धी अन्तःप्रवाह नहीं है और इस लिये आत्मिक जगत से प्राकृतिक जगत में अन्तःप्रवाह करना है परंतु न कि प्राकृतिक जगत से आत्मिक जगत में। न० ३२१९ • ५११९ • ५२५९ • ५४२७ • ५४२८ • ५४७७ • ६३२२ • ९११० • ९१११।

९ भलाईरहित सचाइयें आप से सचाइयें नहीं हैं क्योंकि उन के जीव नहीं है इस वास्ते कि सचाइयें अपने सारे जीव को भलाई से ले लेती है। न० ९६०३। सच तो है कि वे आत्मारहित शरीर के समान हैं। न० ३१८० • ९१५४। और प्रभु उन को ग्रहण नहीं करता। न० ४३६८। भलाईरहित सचाई के गुण का (अर्थात प्रेमरहित श्रद्धा का) बयान तथा जो सचाई कि भलाई से उत्पन्न है उस के गुण का (अर्थात प्रेम से निकलनेवाली श्रद्धा के गुण का) बयान। न० १९४९ • १९५० • १९५१ • १९६४ • ५८३० • ५९५१। यह सब एक ही बात है चाहे हम सचाई का बयान करें या श्रद्धा का चाहे भलाई का या प्रेम का। क्योंकि सचाई श्रद्धा की है और भलाई प्रेम की। न० (२८३९) • (४३५३) • ४९९७ • ७१०८ • ७६२३ • ७६२४ • १०३६७।

मालूम होती हैं जब वे जगत की गरमी और ज्योति से (जिस से स्वर्ग की गरमी और ज्योति प्रतिरूपता रखतीं हैं) संबन्ध की जाती हैं। इस वास्ते कि ज्योति से संयुक्त होकर जगत की गरमी से पृथिवी की सब वस्तुएं ठाढ़स बांधके लहलहाती हैं। यह संयुक्त होना वसन्त और ग्रीष्मकाल में होता है। परंतु गरमी से अलग होकर ज्योति से कोई वस्तु ठाढ़स न बांधके लहलहाती नहीं और सारी वस्तुएं जड़त्व पाके मर जाती हैं। यह अलग होना जाड़े के मौसिम में होता है जब कि गरमी नहीं होती पर ज्योति होती है। इस प्रतिरूपता होने से स्वर्ग सुखलोक कहलाता है। क्योंकि वहां सचाई भलाई से संयुक्त है अर्थात श्रद्धा प्रेम से जैसा कि ज्योति वसन्त के मौसिम पृथिवी में गरमी से संयुक्त है। ये बातें इस सिद्धान्त का अधिक प्रमाण हैं कि प्रभु का ईश्वरत्व स्वर्ग में प्रभु से प्रेम रखना है और पड़ोसी पर अनुग्रह। (देखो न० १३ से १९ तक)।

१३७। यह यूहन्ना की इञ्जील में लिखा है कि "आदि में वचन था और वचन परमेश्वर के साथ था और वचन परमेश्वर था। सब वस्तुएं उस से पैदा हुईं और कोई वस्तु पैदा न थी जो विना उस के हुई। जीवन उस में था और वह जीवन मनुष्य की ज्योति था। वह जगत में था और जगत उस से पैदा हुआ। और वचन तन को प्राप्त हुआ और हमारे के बीच में रहा और हम ने उस का तेज देखा"। (पर्व १ वचन १· ३· ४· १०· १४)। यहां वचन से तात्पर्य प्रभु है। यह स्पष्ट है क्योंकि यह लिखा है कि "वचन तन को प्राप्त हुआ"। परंतु अब तक वचन की बात का विशेष तात्पर्य किसी को मालूम न हुआ इस लिये अब हम उस का बयान करते हैं। इस वचन में वचन की बात का तात्पर्य वह ईश्वरीय सचाई है जो प्रभु में और प्रभु से है[10]। और इस से वह भी ज्योति कहलाती है। और वह ज्योति ईश्वरीय सचाई है और हम ने इस बाब के पहिले भाग में उस का बयान किया है। अब इस बात का बखान किया जावेगा कि क्योंकर ईश्वरीय सचाई ने सब वस्तुओं को रचकर पैदा किया।

स्वर्ग में ईश्वरीय सचाई सर्वशक्तिमान् है और ईश्वरीय सचाई के विना सुनिश्चय रूप से कुछ भी शक्ति नहीं है[11]। सब दूतगण ईश्वरीय सचाई से विभूतियें कहलाते है। और वे सच मुच इतनी ही विभूतियें हैं जितना कि वे ईश्व-

---

१० धर्मपुस्तक में वचन की बात के कई एक तात्पर्य हैं जैसा कि बोलचाल और मन का ध्यान और जो कुछ पैदा हुआ है और भी कुछ वस्तु और उस का उत्तमतम तात्पर्य ईश्वरीय सचाई और प्रभु भी है। न० ९९८७। उस से तात्पर्य ईश्वरीय सचाई है। इस के बारे में न० २८०३· २८९४· ४६९२· ५०७५. ५२७२· (७८३०)· ९९८७ देखो। उस से तात्पर्य प्रभु है। न० २५३३· २८५९।

११ प्रभु से निकलनेवाली ईश्वरीय सचाई सर्वशक्तिमान है। न० ६९४८· ८२००। और स्वर्ग में की सारी शक्ति उस सचाई से है जो भलाई से निकलती है। न० ३०९१· ३५६३· ६३४४· ६४२३· ८३०४· ९६४३· १००१९· १०१८२। दूतगण विभूतियें कहलाते हैं और वे प्रभु की ईश्वरीय सचाई के ग्रहण करने से विभूतियें हो जाते हैं। न० ९६३९। इस निमित्त धर्मपुस्तक में वे बार बार देवता भी कहाते हैं। न० ४२९५· ४४०२· ८३०१· ८१९२· ९१६०।

रीय सचाई को ग्रहण करते हैं या यों कहो कि वे उस शक्ति के पात्र हो जाते हैं। और इस लिये नरक उन के बस हैं और उन के अधीन वे सब व्यक्तियें हैं जो उन के विरुद्ध हैं। क्योंकि हज़ार शत्रु नरकों में स्वर्ग की ज्योति की एक किरण (जो ईश्वरीय सचाई है) सह नहीं सकते। इस लिये जब कि दूतगण केवल ईश्वरीय सचाई के ग्रहण करने ही के कारण दूत हो जाते हैं तो इस से यह बात निकली कि सारा स्वर्ग उसी मूल से है क्योंकि स्वर्ग दूतों का बना है।

वे जो ध्यान और बोलचाल को छोड़कर सचाई का और कुछ बोध नहीं रखते इस बात पर विश्वास नहीं करते कि ईश्वरीय सचाई में इतनी कुछ शक्ति रहती है। क्योंकि जिन ध्यानों और बोलचालों पर वे भरोसा रखे बैठे हैं उन में कुछ स्वाभाविक शक्ति नहीं है इस को छोड़कर कि लोग उन के अनुकूल काम करते हैं। परंतु ईश्वरीय सचाई को स्वाभाविक शक्ति है और वह ऐसी शक्ति रखती है कि उस से स्वर्ग और जगत दोनों पैदा हुए और सब वस्तुएं जो उन में पाई जाती हैं उस की शक्ति से पैदा हुईं। मनुष्य की सचाई और भलाई की शक्ति ईश्वरीय सचाई की स्वाभाविक शक्ति का एक प्रमाण है और दूसरा प्रमाण यह है कि जगत में सूर्य को ज्योति और गरमी की शक्ति होती है।

"मनुष्य में की सचाई और भलाई की शक्ति के द्वारा"।—हर एक काम जो मनुष्य करता है वह ज्ञानशक्ति और संकल्पशक्ति से करता है। वह भलाई के द्वारा अपनी संकल्पशक्ति से काम करता है और सचाई के द्वारा ज्ञानशक्ति से। क्योंकि संकल्पशक्ति की सब वस्तुएं भलाई से संबन्ध रखती हैं और ज्ञानशक्ति की सब वस्तुएं सचाई से संबन्ध रखती हैं[१२]। इस कारण सारा शरीर संकल्पशक्ति और ज्ञानशक्ति से चलाया जाता है और ठीक उन के एक सैन पर हज़ार वस्तुएं आप से आप दौड़कर इकट्ठी हो जाती हैं। और इस से स्पष्ट है कि सारा शरीर भलाई और सचाई के अधीन होने के वास्ते बनाया गया है। इस से वह भलाई और सचाई का बना है।

"जगत में सूर्य की गरमी और ज्योति की शक्ति के द्वारा"।—सब वस्तुएं जो पृथिवी पर उगती हैं जैसा कि वृक्ष अनाज फूल घास फल और बीज सूर्य की गरमी और ज्योति को छोड़कर किसी और कारण से पैदा नहीं होतीं। इस से मालूम होता है कि इन विषयों में कैसी रचने की शक्ति रहती है। तो ईश्वरीय ज्योति की (अर्थात ईश्वरीय सचाई की) कैसी शक्ति है और ईश्वरीय गरमी की (अर्थात ईश्वरीय भलाई की) कैसी शक्ति है। उन से स्वर्ग का होना है और इस लिये जगत का होना भी है। क्योंकि जगत स्वर्ग के द्वारा होता है जैसा कि

---

१२ ज्ञानशक्ति सचाई का पात्र है और संकल्पशक्ति भलाई का। म० ३६२३ • ६१२५ • ७५०३ • ६३०० • (६६३०)। और इस कारण ज्ञानशक्ति की सब वस्तुएं सचाइयों से संबन्ध रखती हैं चाहे वे सब शुद्ध सचाइयें हों चाहे वे केवल मनुष्य के निकट ऐसी ध्यान की गई हों। और इसी तौर पर संकल्पशक्ति की सब वस्तुएं भलाइयों से संबन्ध रखती हैं। म० ८०३ • १०१२२।

ऊपर बयान हो चुका है। और यह इस बात का विवरण होगा कि किस तौर पर किसी को यह मालूम किया चाहिये कि सब वस्तुएं वचन से पैदा हुईं। और "कोई वस्तु पैदा न थी जो विना उस के हुई" और यह भी "जगत उस से पैदा हुआ" अर्थात प्रभु की ईश्वरीय सचाई से[१३]। इस निमित्त सृष्टि की पोथी में पहिले पहिल ज्योति का वर्णन है उस के पीछे और वस्तुओं का बखान आता है जो ज्योति पर अवलम्बित हैं। (सृष्टि पर्व १ वचन ३·४)। और इस से सर्व-जगत की सब वस्तुएं (क्या स्वर्ग में क्या जगत में) भलाई और सचाई से संबन्ध रखती हैं और उन के संयोग से भी संबन्ध रखती हैं। इस अभिप्राय से कि वे सच्ची सत्ताएं हों।

१३९। यह कहना चाहिये कि ईश्वरीय भलाई और ईश्वरीय सचाई जो स्वर्गों में प्रभु से (मानों सूर्य से) होती है प्रभु के अन्दर नहीं है पर प्रभु की ओर से। प्रभु के अन्दर केवल ईश्वरीय प्रेम रहता है। और यह वही सत्ता है कि जिस से ईश्वरीय भलाई और ईश्वरीय सचाई का होना स्वर्गों में है। और इस का भी प्राकृतिक जगत के सूर्य से संबन्ध करने से एक दृष्टान्त हो सके। क्योंकि जगत की गरमी और ज्योति सूर्य के अन्दर नहीं है पर सूर्य की ओर से। सूर्य के अन्दर आग ही है कि जिस से गरमी और ज्योति निकलती है। निकलने से तात्पर्य एक सत्ता से पैदा होना है।

१४०। जब कि प्रभु एक सूर्य के सदृश ईश्वरीय प्रेम है और ईश्वरीय प्रेम ईश्वरीय भलाई आप है तो वह ईश्वरत्व जो उस से निकलता है और जो स्वर्ग में उस का ईश्वरत्व है विशेषता के निमित्त ईश्वरीय सचाई कहलाता है यद्यपि वह ईश्वरीय भलाई है ईश्वरीय सचाई से संयुक्त। यह ईश्वरीय सचाई वही है जो "उस से निकलनेवावा पवित्र [आत्मा]" कहाता है।

स्वर्ग में की चारों दिशाओं के बखान में।

१४१। स्वर्ग में जगत के सदृश चार दिशाएं हैं अर्थात उत्तर दक्षिण पूर्व और पच्छिम। और वे दोनों जगत में सूर्य के स्थान पर अवलम्बित हैं स्वर्ग में स्वर्ग के सूर्य पर (अर्थात प्रभु पर) और जगत में जगत के सूर्य पर। तो भी इन की अवस्थाओं में बहुत ही भिन्नता है।

पहिले तो उन में यह भिन्नता है कि जगत में वह दिशा दक्षिण कहाती है जिस में सूर्य पृथिवी के ऊपर अपनी सब से बड़ी ऊंचाई पर है। वह दिशा उत्तर बोलते हैं जहां सूर्य पृथिवी के नीचे दक्षिण के आमने सामने है। पूर्व दिशा वही है जहां सूर्य विषुव के ऋतु पर चढ़ता है। और पच्छिम वह दिशा है जहां

---

१३ ईश्वरीय सचाई जो प्रभु से निकलती है सो ई सच्ची सत्ता है। न० ६८८० · ७००४ · ८२००। क्योंकि उस से सब वस्तुएं पैदा हुई और बनाई गई हैं। न० २८०३ · २८८४ · ५२७२ · ७६७८।

सूर्य उतरता है। इस से जगत में चारों दिशाएं दक्षिण पर अवलम्बित हैं परंतु स्वर्ग में वही दिशा पूर्व कहलाती है जहां प्रभु सूर्य के सदृश दिखाई देता है। उस के आमने सामने पच्छिम है दहिने हाथ पर दक्षिण है और बायें हाथ पर उत्तर। और यह ऐसा है कि जिस जिस दिशा की ओर निवासी फिरते हैं। इस से स्वर्ग में सब दिशाएं पूर्व पर अवलम्बित हैं। और वही दिशा जहां प्रभु सूर्य के सदृश दिखाई देता है इस वास्ते पूर्व कहाती है कि उस से (मानों सूर्य से) सब प्रकार के जीव का उदय होता है। और इसी हेतु से भी कि जितना दूतगण उस की ओर से गरमी और ज्योति (अर्थात प्रेम और बुद्धि) ग्रहण करते हैं उतना ही यों कहो उन में प्रभु का उदय होता जाता है। इस से भी धर्मपुस्तक में प्रभु आप पूर्व कहलाता है[१४]।

१४२। दूसरी भिन्नता यह है कि पूर्व सदैव दूतगण के संमुख रहता है और पच्छिम उन के पीछे है और उन के दहिने हाथ दक्षिण है और उत्तर बायें हाथ पर। परंतु जब कि यह बात जगत में सहज नहीं समझी जाती क्योंकि मनुष्य अपना मुंह चारों ओर फेरता है इस लिये उस का बयान किया जावेगा।

सारा स्वर्ग प्रभु की ओर (मानों अपने सामान्य केन्द्र की ओर) आप से आप फिरता है और इस कारण सब दूतगण उस की ओर आप से फिरते हैं। पृथिवी पर सब वस्तुएं किसी सामान्य केन्द्र की ओर झुकती हैं यह बात प्रसिद्ध है। परंतु स्वर्ग की झुकावट जगत की झुकावट से भिन्न है। क्योंकि स्वर्ग में मुंह या अग्रभाग उस सामान्य केन्द्र की ओर झुकते हैं परंतु जगत में निचले भाग झुकते हैं। और यह झुकावट जगत में केन्द्रकांक्षी बल या गुरुत्व कहलाती है। दूतगण के भीतरी भाग सच मुच सामने की ओर फिरे रहते हैं। और इस लिये कि भीतरी भाग मुंह पर विद्यमान होते हैं तो मुंह ही स्वर्ग में की दिशाओं को ठहराता है[१५]।

१४३। दूतगण जिधर को वे फिरते हैं तिधर उन के सामने पूर्व होता है। यह बात जगत में सहज से नहीं समझी जावेगी क्योंकि मनुष्य के सामने सब दिशाएं होती हैं उस दिशा के अनुसार कि जिस की ओर वह अपना मुंह फेरता है। इस लिये हम इस का भी बयान करेंगे।

दूतगण भी मनुष्य के सदृश अपने चिहरे और शरीर हर एक दिशा की ओर फेरते हैं और झुकाते हैं तिस पर भी उन की आंखों के साम्हने पूर्व सदा

---

१४ प्रभु उत्तमतम तात्पर्यों में पूर्व बोला जाता है क्योंकि वह स्वर्ग का सूर्य है जो सदैव उदय होता है और कभी अस्त नहीं होता। न० १०१ · ५०९७ · ९६६८।

१५ स्वर्ग में की सब व्यक्तियें प्रभु की ओर आप से आप फिरती हैं। न० ९८२८ · १०१३० · १०१८९ · १०४२०। तो भी दूतगण आप से आप प्रभु की ओर नहीं फिरते पर प्रभु उन को आप अपनी ओर फिराता है। न० १०१८९। क्योंकि दूतगण का विद्यमानत्व प्रभु के साथ नहीं है पर प्रभु का विद्यमानत्व दूतगण के साथ है। न० ९४१५।

रहता है। इस वास्ते कि दूतगण के निकट स्थिति की बदलियां मनुष्य की सी नहीं हैं और वे दूसरे कारण से होती हैं। वे तो उन के समान दिखाई देती हैं परंतु यथार्थ में उन की सी नहीं हैं क्योंकि दूतगण और आत्मागण दोनों के निकट स्थिति के सब ठहराव प्रधान प्रेम से उत्पन्न होते हैं। हम अभी कह चुके हैं कि दूतगण के भीतरी भाग सच मुच अपने सामान्य केन्द्र की ओर (अर्थात प्रभु की ओर) स्वर्ग में के एक सूर्य के सदृश फिरे हुए रहते हैं। और जब कि प्रेम इस तार पर उन के भीतरी भागों के सामने सदैव रहता है और जब कि चिहरा भीतरी भागों से होता है और उन का बाहरी रूप है तो प्रधान प्रेम उन के मुंह के आगे सदैव रहता है। क्योंकि वह वही आदि है कि जिस से दूतगण अपने प्रेम को पाते हैं[१६]। और जब कि प्रभु अपने निज प्रेम में दूतगण के साथ है तो वह वही है जो जिस जिस दिशा की ओर दूतगण फिरते हैं उन की दृष्टि अपनी ओर फिराता है। अब इन बातों का अधिक बयान नहीं हो सकता परंतु पीछे आनेवाले बाबों में (विशेष करके उन बाबों में जो स्वर्ग में की प्रतिमा और मूर्त्ति और काल और फैलाव के बारे में हैं) वे अधिक स्पष्टता से बोधनीय होवेंगी।

मुझे यह सामर्थ्य मिली कि मैं ने जाना और बहुतेरी परीक्षा करने से मालूम किया कि दूतगण के सामने प्रभु सदा रहता है। क्योंकि जब कभी मैं दूतगण के साथ रहा तभी प्रभु मेरे मुंह के आगे प्रत्यक्ष रहा। और यद्यपि वह देखा तो नहीं गया तो भी वह ज्योति में मालूम किया गया। दूतगण ने भी बार बार यह गवाही दी कि यह ऐसा ही है।

इस हेतु से कि प्रभु दूतगण के मुख के साम्हने सदैव रहता है तो जगत में भी उन लोगों के बारे में जो परमेश्वर पर श्रद्धा लाते हैं और उस को प्यार करते हैं इस बात का कहना व्यवहारिक है कि "वे उस को अपनी आंखों के साम्हने रखते हैं" या "अपने मुखों के आगे धरते हैं" या यह बात कही जाती है कि "वे उस की ओर देखते हैं" या "उस पर दृष्टि करते हैं"। इस प्रकार का बोलना आत्मीय जगत से होता है क्योंकि मानुषक बोली में बहुत से वाक्य आत्मीय जगत से निकलते हैं परंतु मनुष्य उन का उत्पत्तिस्थान नहीं जानता।

१४४। स्वर्ग की अद्भुत वस्तुओं में प्रभु की ओर इस भांति का फिरना एक है। क्योंकि वहां सम्भव है कि कई एक व्यक्तियें एक जगह होकर उन में से एक अपना मुंह और शरीर किसी ओर फेरे दूसरी दूसरी ओर तो भी सब को सब

---

१६ आत्मीय जगत में सब व्यक्तियें सदैव अपने आप को अपने ही अनुरागों की ओर फेरती हैं और उस जगत में दिशाओं का आरम्भ होना और उन का ठहराना चिहरे से होता जाता है। न० १०१३०·१०१८९·१०४२०·१०७०२। क्योंकि चिहरा इस रीति पर बना है कि वह भीतरी भागों से प्रतिरूपता रखता है। न० ४७९१ से ४८०५ तक·५६९५। और इस से भीतरी भाग चिहरे के पथ से चमकता है। न० ३५२७·४०६६·४७९६। जो दूतगण में भीतरी भागों के साथ एक ही बन जाता है। न० ४७९६·४७९७·४७९९·५६९५·८२४९। चिहरे में और उस के पट्ठों में भीतरी भागों के अन्तःप्रवाह होने के बारे में। न० ३६३१·४८००।

अपने सामने प्रभु को देखें और हर एक के दहिने हाथ पर दक्षिण हो और बाएं हाथ पर उत्तर और पीछे पच्छिम हो। स्वर्ग की दूसरी अद्भुत वस्तु यह है कि यद्यपि दूतगण की दृष्टि सदैव पूर्व की ओर पड़ती है तो भी उन की दृष्टि अन्य सब तीनों दिशाओं की ओर भी उसी समय पड़ती है। परंतु इन तीनों दिशाओं की ओर उन की दृष्टि भीतरी आंख से (अर्थात मन की आंख से) है। स्वर्ग की यह तीसरी अद्भुत वस्तु है कि वहां नियम के विरुद्ध है कि कोई किसी के पीछे खड़ा होकर उस के सिर के पिछले भाग को देखे। क्योंकि वैसी अवस्था में भलाई और सचाई का अन्तःप्रवाह जो प्रभु की ओर से है रुक जावे।

१४५। जिस तौर पर प्रभु दूतगण को देखता है उसी तौर पर दूतगण प्रभु को नहीं देखते। क्योंकि वे अपनी आंखों के पथ से प्रभु को देखते हैं परंतु प्रभु उन को माथे में देखता है। इस वास्ते कि माथा प्रेम से प्रतिरूपता रखता है। और प्रभु प्रेम के सहाय उन के संकल्प में बहता है और उन की समझ में (जिस से आंखें प्रतिरूपता रखती हैं) अपने आप को प्रत्यक्ष कर डालता है[१७]।

१४६। स्वर्ग में की दिशाएं जिन से प्रभु का स्वर्गीय राज बना है उन से भिन्न हैं जिन से कि उस का आत्मीय राज बना है। क्योंकि प्रभु उन दूतगण को जो उस के स्वर्गीय राज में हैं सूर्य के सदृश दिखाई देता है परंतु उन दूतगण को जो उन के आत्मीय राज में हैं वह चान्द के सदृश दृष्टि आता है। जहां प्रभु दीखता है वहां पूर्व है परंतु स्वर्ग में सूर्य और चान्द के बीच तीस अंश का अन्तर है। इसी हेतु स्वर्गीय राज और आत्मीय राज की दिशाओं के बीच वही अन्तर है। हम न० २० से २८ तक के पच्छेदों में लिख चुके हैं कि स्वर्ग का दो राज का प्रभेद है जिन में से एक तो स्वर्गीय राज कहलाता है दूसरा आत्मीय राज। और न० ११८ वें में यह बयान हो चुका है कि स्वर्गीय राज में प्रभु सूर्य के सदृश दिखाई देता है और आत्मीय राज में चान्द के सदृश। तिस पर भी इसी हेतु से स्वर्ग में की दिशाएं अस्पष्ट नहीं दीखतीं। क्योंकि आत्मीय दूतगण स्वर्गीय दूतगण तक नहीं चढ़ सकते और स्वर्गीय दूतगण आत्मीय दूतगण को नहीं उतर सकते। (देखो न० ३५)।

१४७। अब प्रभु के स्वर्ग में के विद्यमानत्व का स्वभाव और गुण समझ में आना सम्भव है क्योंकि उस भलाई और सचाई में जो उस से निकलती है वह सब कहीं और सब किसी के साथ रहता है। और इस कारण वह दूतगण के साथ उस में रहता है जो अपने आप का है। जैसा कि हम न० १२ वें में लिख चुके हैं। दूतगण के भीतरी भागों में (जिन के पथ से आंखें देखती हैं) प्रभु के

---

१७ माथा स्वर्गीय प्रेम से प्रतिरूपता रखता है और इस कारण धर्मपुस्तक में माथे से तात्पर्य प्रेम है। न० ९९३६। आंख समझ से प्रतिरूपता रखती है क्योंकि समझ भीतरी दृष्टि है। न० २७०१ · ४४१० · ४५२६ · ९०५१ · १०५६९। इस लिये आंख उठाना और देखना इन बातों के तात्पर्य समझना या मालूम करना या देखना भालना है। न० २७८९ · २८२९ · ३१९८ · ३२०२ · ४०८३ · ४०८६ · ४३३९ · ५६८४।

विद्यमानत्व का कुछ बोध है और इस वास्ते वे उस को अपने से बाहर देखते हैं क्योंकि [आंखों की दृष्टि और उन भीतरी भागों के बीच जो दृष्टि के हेतु हैं] अभेदता होती है। और इस से स्पष्ट है कि किस रीति प्रभु उन में है और वे प्रभु में उस की इन बातों के अनुसार कि "मुझ में स्थायी रहो और मैं तुम में"। (यूहन्ना की इञ्जील पर्व १५ वचन ४)। "वह जो मेरा मांस खाता और मेरा लहू पीता है मुझ में रहता है और मैं उस में"। (यूहन्ना की इञ्जील पर्व ६ वचन ५६)। प्रभु के मांस से तात्पर्य ईश्वरीय भलाई है और उस के लहू से तात्पर्य ईश्वरीय सचाई है[१८]।

१४८। स्वर्ग के सब निवासी दिशाओं के अनुसार अलग अलग रहते हैं। वे जो प्रेम की भलाई में हैं पूर्व और पच्छिम पर वास करते हैं। पूर्व पर वे बसते हैं जिन को उस का स्पष्ट बोध है और पच्छिम पर वे बसते हैं जिन को उस का अस्पष्ट बोध है। वे जो उस ज्ञान में हैं जो प्रेम की भलाई से निकलता है दक्षिण और उत्तर पर वास करते हैं। वे जो ज्ञान की स्पष्ट ज्योति में हैं दक्षिण में बसते हैं और वे जो ज्ञान की अस्पष्ट ज्योति में हैं उत्तर में। प्रभु के आत्मीय राज में दूतगण के घर उसी रीति पर प्रस्तुत होते हैं जिस पर स्वर्गीय राज के दूतगण के घर प्रस्तुत हैं। परंतु उन में प्रेम की भलाई के अनुसार और भलाई से निकलनेवाली सचाई की ज्योति के अनुसार कुछ भिन्नता है। स्वर्गीय राज में प्रेम का तात्पर्य प्रभु से प्रेम रखना है और सचाई की ज्योति जो उस से निकलती है। परंतु आत्मीय राज में वह पड़ोसी से प्रेम रखना है और वह अनुग्रह कहलाता है। और सचाई की ज्योति जो उस से निकलती है बुद्धि है। और वह श्रद्धा भी कहलाती है। (देखो न० २३)। दोनों राज में दिशाओं का प्रभेद भी है क्योंकि दोनों राज की दिशाओं के बीच तीस अंश का अन्तर है जैसा कि हम अभी लिख चुके हैं। (देखो न० १४६)।

१४९। स्वर्ग की हर एक सभा में वैसी अवस्था है। वे जो सब से तीक्ष्ण प्रेम और अनुग्रह में हैं पूर्व में रहते हैं और पच्छिम में वे रहते हैं जो कुछ कम प्रेम और अनुग्रह में हैं। दूतगण इस तौर पर अलग अलग रहते हैं क्योंकि हर एक सभा सारे स्वर्ग की एक प्रतिमा है और स्वर्ग का सूक्ष्म रूप भी है। (देखो न० ५१ से ५८ तक)। और उन की संगतों में वैसी ही परिपाटी होती है। वे स्वर्ग के रूप के हेतु उस परिपाटी में होते हैं जिस करके सब कोई अपनी अपनी जगह जानता है। प्रभु इस रीति पर ठहराता है कि हर एक सभा में प्रत्येक जाति की कई एक व्यक्तियें हों इस वास्ते कि स्वर्ग का रूप प्रत्येक भाग में एक सा हो। तिस पर भी सर्वव्यापी स्वर्ग की परिपाटी प्रत्येक सभा की परिपाटी से ऐसी भिन्न है

---

१८ प्रभु के मांस से तात्पर्य उस का ईश्वरीय मनुष्यत्व है और उस के प्रेम की ईश्वरीय भलाई। न० ३८१३ · ७८५० · ९१२७ · १०२८३। और प्रभु के लहू से तात्पर्य ईश्वरीय सचाई है और श्रद्धा का पवित्र तत्त्व। न० ४७३५ · ६९७८ · ७३१७ · ७३२६ · ७८४६ · ७८५० · ७८७७ · ९१२७ · ९३९३ · १००२३ · १००३३ · १०१५२ · १०२०४।

जैसी कोई समष्टि अपने भागों से भिन्न है क्योंकि जितनी सभाएं पूर्व में हैं उतनी पच्छिमवाली सभाओं से उत्तम हैं और वे जो दक्षिण में हैं उत्तरवालों से उत्तम हैं।

१५० । इस लिये स्वर्गों में दिशाओं से तात्पर्य वे गुण हैं जो निवासी दूतगण के विशेष लक्षण हैं। इस लिये पूर्व से तात्पर्य प्रेम और प्रेम की स्पष्टरूपी भलाई है। पच्छिम से वही तात्पर्य है पर अस्पष्ट रूप में। दक्षिण से तात्पर्य ज्ञान और बुद्धि स्वच्छ ज्योति में है और उत्तर से वही तात्पर्य है अस्वच्छ ज्योति में। स्वर्ग में की दिशाओं के इस तात्पर्य से उन को बातों के भीतरी या आत्मीय तात्पर्य के अनुसार वैसा ही तात्पर्य है[१९]। क्योंकि बात का भीतरी या आत्मीय तात्पर्य उन वस्तुओं से ठीक ठीक मिलता है जो स्वर्ग में विद्यमान हैं।

१५१ । नरक की परिपाटी स्वर्ग की परिपाटी से विपरीत है क्योंकि नरकनिवासी प्रभु की ओर न तो सूर्य न चान्द मानकर देखते हैं परंतु प्रभु से पीछे की ओर उस गाढ़े अन्धेरे को देखते हैं जो जगत के सूर्य के स्थान में है और उस अन्धेरे को जो पृथिवी के चान्द के स्थान में है। वे जो राक्षस कहाते हैं उस गाढ़े अन्धेरे की ओर देखते हैं जो जगत के सूर्य के स्थान में है। और वे जो भूत प्रेत कहलाते हैं उस अन्धेरे की ओर देखते हैं जो पृथिवी के चान्द के स्थान में है[२०]। प्राकृतिक जगत का सूर्य और चान्द आत्मिक जगत में नहीं दिखाई देते हैं परंतु सूर्य के बदले गाढ़ा अन्धेरा स्वर्ग के सूर्य के सामने है और चान्द के बदले अन्धेरा स्वर्ग के चान्द के सामने। जैसा कि ऊपर न० १२२वें परिच्छेद में देखा जा सकता है। नरक में की दिशाएं तो स्वर्ग में की दिशाओं के आमने सामने हैं। पूर्व में गाढ़ा अन्धेरा और हलका अन्धेरा है। पच्छिम वहां है जहां स्वर्ग का सूर्य है। दक्षिण दहिने हाथ पर है। और उत्तर बाएं हाथ पर। और जिस जिस दिशा की ओर शरीर फिरता है वही सापेक्षता बनी रहती है। और अन्य कोई अवस्था असम्भव है क्योंकि नरकनिवासियों के विषय उन के भीतरी भागों के हर एक अभिप्राय (और इस से हर एक निर्धारण) उस अवस्था को मानता है और उस की रक्षा करने में प्रयत्न करता है। वह दिशा कि जिस की ओर भीतरी भाग फिरते हैं (और इस से परलोक में के सभों के यथार्थ निर्धारण के फिरने की दिशा) भीतरी भागों के अनुराग के अनुसार होती है। जैसा कि ऊपर बयान हो चुका है न० १४३ में। परंतु नरकनिवासियों के निकट प्रेम आत्मप्रेम और जगतप्रेम है और प्राकृतिक जगत का सूर्य और चान्द उन प्रेमों के चिन्ह हैं। (देखो न० १२२)। वे तो प्रभु की ओर के प्रेम के और पड़ोसी पर अनुग्रह करने के

---

१९ धर्मपुस्तक में पूर्व से तात्पर्य स्पष्ट रूप का प्रेम है। न० १२५० · ३७०८। पच्छिम से तात्पर्य अस्पष्ट रूप का प्रेम है। न० ३७०८ · ९६५३। दक्षिण से तात्पर्य ज्योति की अवस्था या ज्ञानी और बुद्धिमान अवस्था है। न० १४५८ · ३७०८ · ५६७२। और उत्तर से भी वही तात्पर्य है अस्पष्ट रूप में। न० ३७०८।

२० राक्षस और भूत प्रेत कौन से आत्मा हैं और उन के कैसे गुण हैं देखो न० ९४७ · ५०३५ · ५९७७ · ८५९३ · ८६२२ · ८६२५।

विरुद्ध हैं[२१]। इस से बुरे आत्मा उन अन्धेरी वस्तुओं की ओर अपने आप को फेरते हैं और वे प्रभु की ओर से पीछे फिर जाते हैं। वे जो नरकों में बसते हैं अपनी दिशाओं के अनुसार रहते हैं। वे जो उन बुराइयों में रहते हैं जो स्वार्थ से उत्पन्न होती हैं पूर्व से लेकर पच्छिम तक बसते हैं। और वे जो बुराइयों के झूठों में हैं दच्छिण से लेकर उत्तर तक बसते हैं। परंतु इस प्रसङ्ग का तब अधिक बयान होगा जब हम नरकों के बारे में लिखेंगे।

१५२। कभी कभी बुरे आत्मा स्वर्ग की दिशाओं की ओर फिरे हुए दिखाई देते हैं। ऐसी अवस्था में उन को बुद्धि और सचाई का ज्ञान है पर उन को भलाई का प्रेम नहीं है। और इस कारण उन की निज दिशाओं की ओर फिरते ही उन से बुद्धि और सचाई का ज्ञान जाता रहता है। और वे कहते हैं कि जो सचाइयें कि हम ने पहिले सुनी थीं और मालूम की थीं सच्ची न थीं पर वे झूठी थीं। और उन की यह चाह है कि झूठों की सचाइयें हो जावें। इस फिरने के विषय मुझ से यह बात कही गई कि बुरे आत्माओं की ज्ञानशक्ति इसी तौर पर फिर सकती है पर उन का संकल्प फिर नहीं सकता। और वही अवस्था प्रभु की पैदा की हुई है इस वास्ते कि हर कोई सचाइयों को देख सके और अङ्गीकार कर सके तो भी अच्छे आत्माओं को छोड़ कोई आत्मा सचाई को ग्रहण नहीं कर सकता। क्योंकि भलाई सचाई को ग्रहण करती है न बुराई। मनुष्य के विषय ऐसी ही अवस्था है इस निमित्त कि वह सचाइयों के द्वारा भला बने तो भी जितना वह भलाई में है उतना ही वह भला बनता है इस से बढ़कर वह भला नहीं बन सकता। इस कारण कोई मनुष्य प्रभु की ओर इसी तौर पर फिर सके परंतु यदि वह चाल चलन के विषय बुराई में हो तो वह शीघ्र ही फिर अपने को फेरता है। और उन सचाइयों के विरुद्ध कि जो उस ने जानी और देखी थीं वह अपने आप में अपनी बुराई की झूठों को स्थिर करता है। यह तब ऐसा ही है जब वह अपने भीतरी भागों के पथ से मन में ध्यान करता है।

स्वर्ग में दूतगण की अवस्था के विकारों के बखान में।

१५४। दूतगण की अवस्था के विकारों से यह तात्पर्य है कि प्रेम और श्रद्धा के विषय उन के विकार और इस से ज्ञान और बुद्धि के विकार और इसी तौर चाल चलन की अवस्थाओं के विकार। अवस्थाएं चाल चलन के विषय बोली जाती हैं और उन वस्तुओं के विषय जो चाल चलन से संबन्ध रखती है। और जब कि दूतविषयक जीवन प्रेम और श्रद्धा का जीवन है और इस से ज्ञान और

---

२१ वे जो स्वार्थ के प्रेम में हैं और जगत के प्रेम में प्रभु की ओर से पीछे फिरते हैं। न० १०१३० • १०१८९ • १०४२० • १०७०२। प्रभु से प्रेम रखना और पड़ोसी पर अनुग्रह करना स्वर्ग है परंतु स्वार्थ से और जगत से प्रेम रखना नरक है क्योंकि वे आपस में विरुद्ध हैं। न० २०४१ • ३६१० • ४२२५ • ४७७६ • ६२१० • ७३६६ • ७३६९ • ७४९० • ८२३२ • ८६७८ • १०४५५ • १०७४१ से १०७४५ तक।

बुद्धि का जीवन तो उन गुणों के विषय भी अवस्थाएं बोली जाती हैं और वे प्रेम और श्रद्धा की अवस्थाएं कहलाते हैं तथा ज्ञान और बुद्धि की अवस्थाएं। अब हम दूतगण की उन अवस्थाओं के विकारों का बयान करते हैं।

१५५। दूतगण प्रेम के विषय सदैव एक ही अवस्था में नहीं रहते। और न इस लिये ज्ञान के विषय। क्योंकि उन का सारा ज्ञान प्रेम से और प्रेम के अनुसार पैदा होता है। कभी कभी वे प्रेम की तीक्ष्ण अवस्था में हैं कभी कभी वे प्रेम की एक ऐसी अवस्था में हैं जो उस से कम तीक्ष्ण है और जो अपनी सब से तीक्ष्ण अवस्था से ले क्रम क्रम से उतरकर थोड़ी सी थोड़ी अवस्था तक पहुंचती है। जब वे प्रेम की सब से तीक्ष्ण अवस्था में हैं तब वे अपने जीवन की ज्योति और गरमी में हैं अर्थात अपनी चमक और आनन्द में हैं। परंतु जब वे प्रेम की थोड़ी सी थोड़ी तीक्ष्णता में हैं तब वे छांह और ठंढाई में हैं अर्थात अन्धकार और अनानन्द की उस अवस्था में हैं कि जिस से वे पहिली अवस्था तक फिर पहुंचते हैं इत्यादि इत्यादि। ये अवस्थाएं एक दूसरे के पीछे यथानुक्रम नहीं बदलती परंतु विकार से बदलती हैं ज्योति और छांह तथा गरमी और ठंढाई की अवस्था के विकारों के समान। और वे प्रातकाल दोपहर सांझ और रात के समान हैं जो हर प्राकृतिक दिन में नित्य विकार से बरस भर में बदलते रहते हैं। ये स्वाभाविक समताएं प्रतिरूप भी हैं क्योंकि प्रातकाल प्रेम की अवस्था से चमक में प्रतिरूपता रखता है। दोपहर ज्ञान की अवस्था से चमक में। सांझ ज्ञान की अवस्था से अस्पष्टता में। और रात प्रेम और ज्ञान के अभाव होने की अवस्था से प्रतिरूपता रखती है। परंतु रात उन के जीवन की अवस्थाओं से जो स्वर्ग में हैं प्रतिरूपता नहीं रखती। वहां उस गोधूली से जो भोर के पहिले है प्रतिरूपता है। परंतु रात की प्रतिरूपता उन से है जो नरक में हैं[२२]। इस प्रतिरूपता होने से धर्मपुस्तक में दिन और बरस से तात्पर्य जीवन की साधारण रूप से अवस्थाएं है। गरमी और ज्योति से तात्पर्य प्रेम और ज्ञान है। प्रातकाल से तात्पर्य प्रेम की पहिली और सब से उत्तम अवस्था है। दोपहर से तात्पर्य ज्ञान उस का ज्योति में है। सांझ से तात्पर्य ज्ञान उस की छांह में है। भोर से तात्पर्य वह अस्पष्टता है जो प्रातकाल के पहिले है। और रात से तात्पर्य प्रेम और ज्ञान का अभाव है[२३]।

---

२२ स्वर्ग में कोई अवस्था नहीं है जो रात से प्रतिरूपता रखती है परंतु एक अवस्था है जो भोर की गोधूली से प्रतिरूपता रखती है। न० ६११०। और उस से तात्पर्य वह मझली अवस्था है जो पहिली और अन्तिम के बीच है। न० १०१३४।

२३ अवस्थाओं के अनुक्रम स्व` में प्रदर्शन होने के और मालूम करने के विषय जगत में के दिनों के पहर और घड़ियों के समान हैं। न० ५६७२ • ५९६२ • (६३१०) • ८४२६ • ९२१३ • १०६०५। धर्मपुस्तक में दिन और बरस से तात्पर्य साधारण रूप से सब वस्तुएं है। न० २३ • ४८७ • ४८८ • ४९३ • ८९३ • २७८८ • ३४६२ • ४८५० • १०६५६। प्रातकाल से तात्पर्य किसी नई अवस्था की आदि है और प्रेम की एक अवस्था। न० ७२१८ • ८४२६ • ८४२७ • १०११४ • १०१३४। सांझ से तात्पर्य ज्योति और प्रेम की एक निवृत्त होती हुई अवस्था है। न० १०१३४ • १०१३५। और रात से तात्पर्य प्रेम और श्रद्धा के अभाव होने की अवस्था है। न० २२१ • ७०९ • २३५३ • ६००० • ६११० • ७८७० • ७९४७।

१५६। अवस्थाएं सब वस्तुओं की जो दूतगण के चारों ओर और उन की आंखों के साम्हने हैं उन के भीतरी भागों की उन अवस्थाओं के साथ भी जो उन् के प्रेम और ज्ञान से उत्पन्न होती हैं बदलती हैं। क्योंकि वे वस्तुएं जो दूतगण से बाहर हैं उन वस्तुओं के अनुसार जो उन के भीतर हैं यथायोग रूप धारण करती हैं। परंतु वे वस्तुएं कौन सी हैं और उन के कैसे गुण हैं इन बातों का तब बयान होगा जब हम स्वर्ग में की प्रतिमाओं और रूपों का बयान करेंगे।

१५७। हर एक दूत ऐसी ऐसी अवस्था के विकारों को भुगतकर पार निकल जाता है और प्रत्येक सभा भी संचित होकर ऐसे ऐसे विकारों को भुगतती है। परंतु इन विकारों की भिन्नता है क्योंकि हर कोई प्रेम और ज्ञान के विषय अलग अलग होता है। इस हेतु से कि वे जो केन्द्र पर हैं उन से जो आस पास रहते हैं अधिक सिद्ध अवस्था में हैं। और हर एक सभा में केन्द्र से लेकर परिधि पर्यन्त सिद्धता क्रम क्रम से न्यून होती जाती है। (देखो न० २२ और १२८)। दूतगण में और दूतविषयक सभाओं में अवस्थाओं के सब विकारों का बयान करना अति-विस्तीर्ण बात होगी। क्योंकि हर कोई अपने प्रेम और श्रद्धा के गुण के अनुसार विकारों को भुगतता है। इस लिये जब एक अपनी चमक और आनन्द में है तब दूसरा अपनी अस्पष्टता और अनानन्द में है। और ये अवस्थाएं एक ही समय और एक ही सभा में हो सकती हैं। एक सभा के विकार दूसरी सभा के विकारों से भिन्न भिन्न हैं। और वे विकार जो स्वर्गीय राज की सभाओं में हैं उन से भिन्न हैं जो आत्मीय राज की सभाओं में हैं। अवस्था के इन विकारों की भिन्नताएं प्रायः पृथिवी के देश देश में दिन की अवस्था के विकारों के समान हैं। जहां कि जब कई एक देश में भोर हो तब कई एक में सांझ। और जब कई एक पर गरमी लगती है तब कई एक पर ठंढक इत्यादि।

१५८। दूतगण कहते हैं कि स्वर्ग में अवस्थाओं के ऐसे ऐसे विकार कई एक कारणों से होते हैं। पहिले तो यह है कि अगर दूतगण सदैव एक ही अवस्था में रहते थे तो स्वर्ग और जीवन का वह आनन्द जो प्रभु के प्रेम और ज्ञान की ओर से है अपने गुण को क्रम क्रम से खो देगा जैसा कि उन लोगों की अवस्था है जो आनन्द और सुख को विना रूपान्तर किये भोगते हैं। दूसरा कारण यह है कि दूतगण का मनुष्य के सदृश आत्मत्व है और उस गुण का लक्षण अपने को प्यार करना है। और दूतगण यों कहते हैं कि जो जो स्वर्ग में हैं वे अपने आत्मत्व से रोके गये हैं और उन में प्रेम और ज्ञान इतना ही पाया जाता है जितना कि वे प्रभु की कृपा से आत्मत्व से अलग रहते हैं। और जितना कि वे उस से रोके नहीं जाते उतना ही वे स्वार्थ में डूब जाते हैं। और जब कि हर कोई आत्मत्व को प्यार करता है और उस पर आसक्त है[२४] तो सबों के अवस्थाओं के विकार

---

२४ मनुष्य का आत्मत्व अपने को प्यार करता है। न० ६६४ · ७३१ · ४३१७ · ५६६०। और अवश्य है कि वह अलग हो जावे ता कि प्रभु विद्यमान होवे। न० १०२३ · १०४४। वह

अर्थात आनुक्रमिक परिवर्त्तन होते हैं। तीसरा कारण यह है कि उन विकारों के द्वारा वे सिद्धता को पाते हैं क्योंकि उन के सहाय वे प्रभु से नित्य प्रेम करते हैं और स्वार्थ से अलग रहते हैं और इन आनन्द अनानन्द के अदल बदल होने से उन के चैतन्यत्व और बोध अधिक तीक्ष्ण हो जाते हैं[२५]। दूतगण यह भी कहते हैं कि प्रभु इन अवस्थाओं के विकारों को नहीं करता (क्योंकि प्रभु सूर्य के सदृश गरमी और ज्योति के साथ अर्थात प्रेम और ज्ञान के साथ नित्य नित्य भीतर बहता आता है) परंतु हम में आप विकारों का कारण है इस वास्ते कि हम आत्मत्व को प्यार करते हैं और वही प्यार हम को नित्य प्रभु की ओर से दूर करता है। और दूतगण इस बात पर जगत का सूर्य एक दृष्टान्त मानकर स्पष्ट करते हैं। क्योंकि बरस बरस दिन दिन गरमी और ठंढाई के ज्योति और छांह के जितने अदल बदल होते जाते हैं सब के सब सूर्य की ओर से नहीं होते इस वास्ते कि सूर्य नित्य एक ही अवस्था में रहता है पर वे विकार पृथिवी की गति पर अवलम्बित हैं।

१५९। मुझे यह दिखलाया गया कि क्योंकर प्रभु सूर्य के सदृश दूतगण के आगे उन की पहिली अवस्था में और उन की दूसरी अवस्था में और उन की तीसरी अवस्था में स्वर्गीय राज के मध्य दिखाई देता है। प्रभु सूर्य की भांति पहिले पहिल इतने तेज से जलता था और चमकता था कि उस का बखान किसी से नहीं किया जाता। और मुझ से यह कहा गया कि वह दूतगण को उन की पहिली अवस्था में इसी रीति पर दृष्टि आता है। पीछे सूर्य के आस पास एक बड़ा सा धुन्धला कमरबन्द देखने में आता था जिस से सूर्य की प्रभा और चमक क्रम करके घटती जाती थी। और मुझे से यह कहा गया कि सूर्य दूतगण को उन की दूसरी अवस्था में इसी रीति पर दिखाई देता है। फिर मालूम हुआ कि वही कमरबन्द क्रम क्रम से अधिक धुन्धला होता जाता था और सूर्य की प्रभा बराबर घटती जाती थी यहां तक कि अन्त को वह संपूर्ण रूप से सफेद रंग हो गई। और मुझ से कहा गया कि वह दूतगण को उन की तीसरी अवस्था में इसी रीति पर दृष्टि आता है। तब तो वह सफेद गोल बाईं ओर स्वर्ग के चान्द के पास बढ़ता जाता था और अपनी ज्योति को उस की ज्योति से मिलाता जाता था इस कारण चान्द अपनी साधारण रूप की चमक से अधिक चमक देता था। और मुझ से यह बात कही गई कि स्वर्गीय राज के दूतगण के विषय यह उन की चौथी अवस्था है परंतु आत्मीय राज के दूतगण के विषय यह पहिली अवस्था है। और यह भी कहा गया कि प्रत्येक राज के अवस्थाओं के विकार उसी तौर पर ओसरे ओसरी होते जाते हैं तौ भी वे सारे राज में एक साथ नहीं होते

सच मुच अलग है जब कोई प्रभु के द्वारा भलाई में स्थायी रहता है। न० ६३३४ · ६३३५ · ६३३६ · ६४४७ · ६४५२ · ६४५३ · ६४५४ · ६९३८।

२५ दूतगण अनन्तकाल में सिद्धता को प्राप्त होते हैं। न० ४८०३ · ६६४८। स्वर्ग में एक अवस्था दूसरी अवस्था से कभी संपूर्ण रूप से एक सी नहीं है और इस से नित्य सिद्धता होती है। न० १०२००।

परंतु सभा सभा में एक एक करके होते जाते हैं। और ये परिवर्त्तन किसी नियुत समयों पर नहीं होते परंतु दूतगण पर विना पूर्व ज्ञान किये कभी जलदी कभी देर के पीछे लगा करते हैं। दूतगण कहते हैं कि सूर्य में उसी तौर पर आप से कुछ विकार नहीं प्राप्त होता न कि वह सच मुच [चान्द की ओर] बढ़ता जाता है। परंतु दूतगण की अवस्थाओं की आनुक्रमिक गतियों के अनुसार वैसे विकार मालूम होते हैं। क्योंकि प्रभु हर किसी को उस की अवस्था के गुण के अनुसार दिखाई देता है। इस से जब वे तीक्ष्ण प्रेम की अवस्था में हैं तब प्रभु उन को सूर्य के सदृश जलता हुआ दृष्टि आता है और वह उन के प्रेम के घटाव के अनुसार क्रम करके थोड़े से तेज से चमकता है और अन्त को सफेद हो जाता है। और उन की अवस्था के गुण का प्रतिरूप वही धुन्धला कमरबन्द था कि जिस से सूर्य में की ज्योति और गरमी के वैसे विकार होते जाते थे।

१६० । जब कि दूतगण अपनी अन्तिम अवस्था में हैं अर्थात जब वे अपने आत्मत्व ही में हैं तब वे बड़े दुखी होने लगते हैं। जब वे वैसी अवस्था में थे तब मैं उन से बात चीत किया करता था और उन की उदासी देखा करता था। परंतु वे यह कहते थे कि हम को यह आशा है कि कुछ काल बीते हम फिर जैसे के तैसे हो जावेंगे और इस से हम फिर मानों स्वर्ग में प्रवेश करेंगे। क्योंकि उन के निकट उन के आत्मत्व से रोका जाना स्वर्ग तो है सही।

१६१ । नरकों की अवस्था के भी विकार होते हैं पर उन का बयान तब होगा जब हम नरकों के बारे में कुछ लिखेंगे ।

स्वर्ग में के काल के बारे में ।

१६२ । यद्यपि स्वर्ग में जगत के सदृश सब वस्तुओं को अनुगमन और अयगमन की अवस्थाएं होती हैं तो भी दूतगण को काल और फैलाव का कुछ बोध नहीं है। सच तो है कि वे यह नहीं जानते कि काल और फैलाव कैसी वस्तुएं हैं। इस से हम अब स्वर्ग में के काल के विषय कुछ बयान करते हैं। पीछे एक पृथक बाब में हम फैलाव का बयान करेंगे ।

१६३ । दूतगण यह नहीं जानते कि काल कैसी वस्तु है (तो भी उन के निकट जगत के तौर पर सब वस्तुओं का आनुक्रमिक परिवर्त्तन है और इस के विषय स्वर्ग और जगत की इतनी समता है कि उन से कुछ भी भिन्नता नहीं है) क्योंकि स्वर्ग में न तो बरस हैं न दिन हैं केवल अवस्थाओं के विकार हैं। जहां बरस और दिन होते हैं तहां काल हैं परंतु जहां अवस्थाओं के विकार हैं तहां केवल अवस्थाएं हैं ।

१६४ । जगत में काल है क्योंकि जगत का सूर्य आकाश के एक अंश से दूसरे अंश तक क्रम क्रम से चलता हुआ मालूम हुआ करता है। इस से काल पैदा होते हैं जो बरस के ऋतु करके बोलते हैं। इस के सिवाए सूर्य पृथिवी के चारों ओर घूमता हुआ मालूम होता है और इस से वे काल पैदा होते हैं जो

दिन कहलाते हैं। वे दो विकार समयक प्रकार से होते हैं परंतु स्वर्ग के सूर्य की ओर ही अवस्था है। क्योंकि वह सूर्य आनुक्रमिक परिवर्त्तन और घूमघूमेलों के द्वारा बरस और दिन नहीं पैदा करता परंतु प्रत्यक्ष से अवस्थाओं के विकार पैदा करता है। और ये विकार समयक प्रकार से नहीं होते जैसा कि हम पहिले बाब में कह चुके हैं। और इस से दूतगण को काल का कुछ बोध नहीं है परंतु इस के स्थान उन को अवस्था का बोध है। और अवस्था जो है सो न० १५४ वें परिच्छेद में देखी जा सकती है।

१६५। जब कि दूतगण को काल का कुछ ऐसा बोध नहीं है जैसा कि जगत के मनुष्यों को है इस से उन को काल ही का भी कुछ भी बोध नहीं है और न उन को किसी वस्तु का भी कुछ बोध है जो काल से संबन्ध रखती है। वे यहां तक भी नहीं जानते कि बरस महीना सप्ताह दिन घड़ी आज कल गत-दिवस किस को कहते हैं। और जब वे उन के नामों को मनुष्य से सुनते हैं (क्योंकि प्रभु दूतों को सदैव मनुष्यों के साथ मिलाता है) उन को केवल अव-स्थाओं का बोध है और ऐसी वस्तुओं का बोध जो अवस्थाओं से संबन्ध रखती हैं। इस से दूतगण मनुष्यों के प्राकृतिक बोधों का आत्मिक बोध कर डालते हैं। इस कारण धर्मपुस्तक में कालों से तात्पर्य अवस्थाएं है। और काल के विभागों से (जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं) तात्पर्य वे वस्तुएं है जिन से वे प्रतिरूपता रखते हैं[२६]।

१६६। उन सब वस्तुओं का जो काल से पैदा होती हैं वही हाल है जैसा कि बरस के चार ऋतु (जो वसन्त ग्रीष्म शरद और हिम कहलाते हैं) दिन के चार काल (जो भोर दोपहर सांझ और रात कहाते हैं) मनुष्य के चार आश्रम (जो बालकपन यौवन मनुष्यत्व और बुड्ढापन बोला करते हैं) और अन्य अन्य ऋतु जो काल से पैदा होते हैं या काल के द्वारा आनुक्रमिक हैं। उन का ध्यान मनुष्य काल के सहाय करता है परंतु दूतगण अवस्था के सहाय उन का ध्यान करते हैं। इस लिये मनुष्य के ध्यान के अनुकूल जो कुछ काल से पैदा होता है वह दूतगण के निकट अवस्था का एक बोध बन जाता है जैसा कि वसन्त और भोर के ऋतु का प्रेम और ज्ञान की उस अवस्था का बोध हो जाता है जो दूत-गण की पहिली अवस्था के समान है। ग्रीष्म और दोपहर का प्रेम और ज्ञान की

---

२६ धर्मपुस्तक में कालों से अवस्थाएं तात्पर्य है। न० २७८८ • २८३८ • ३२५४ • ३३५६ • ४८१४ • ४६०१ • ४६१६ • ७२१८ • ८०७० • १०१३३ • १०६०५। दूतगण काल और फैलाव के कुछ बोध के विना ध्यान करते हैं। न० ३४०४। वे ऐसे तौर पर क्यों ध्यान करते हैं। न० १२७४ • १३८२ • ३३५६ • ४८८२ • ४६०१ • ६११० • ७२१८ • ७३८१। धर्मपुस्तक में बरस से कौन सा तात्पर्य है। न० ४८७ • ४८८ • ४६३ • ८६३ • २६०६ • ७८२८ • १२०६। महीने से कौन सा तात्पर्य है। न० ३८१४। सप्ताह से कौन सा तात्पर्य है। न० २०४४ • ३८४५। दिन से कौन सा तात्पर्य है। न० २३ • ४८७ • ४८८ • ६११० • ७६८० • ८४२६ • ६२१३ • १०१३२ • १०६०५। आज से कौन सा तात्पर्य है। न० २८३८ • ३६६८ • ४३०४ • ६१६५ • ६६८४ • ६६३६। कल से कौन सा तात्पर्य है। न० ३६६८ • १०४६७। गतदिवस से कौन सा तात्पर्य है। न० ६६८३ • ७११४ • ७१४०।

उस अवस्था का बोध हो जाता है जो उन की दूसरी अवस्था में प्रचलित है। शरद और सांझ का बोध उन की तीसरी अवस्था के अनुकूल है। तथा रात और हिम का एक ऐसी अवस्था का बोध हो जाता है जैसा कि नरक में प्रबल है। और इस से धर्मपुस्तक में उन कालों के ऐसे ऐसे बोध देख पड़ते हैं (देखो न० १५५)। अब यह बात समझ में आ सकती है कि किस तौर पर मनुष्य के मन के प्राकृतिक बोधों के उन दूतों के (जो मनुष्य के पास हैं) आत्मिक बोध किये जाते हैं।

१६७। जब कि दूतगण को काल का कुछ बोध नहीं है तो उन का बोध अनन्तकाल के विषय मनुष्य के बोध से भिन्न है। क्योंकि उन के निकट अनन्तकाल असीमक अवस्था है न कि असीमक काल[२७]। एक बार मैं अनन्तकाल का ध्यान करता था और काल के बोध के सहाय में "अनन्तकाल तक" के वाक्य का तात्पर्य मालूम करता था अर्थात अनन्त्य होना परंतु मुझ को "अनन्तकाल से" के वाक्य का कुछ भी बोध न हुआ और इस से अनन्तकाल से लेकर सृष्टि तक जो कार्य ईश्वर किया करता था उस का भी मुझे कुछ बोध न हुआ। जब इस के विषय मेरे मन में कुछ चिन्ता उपजी तब मैं स्वर्ग के मण्डल में उठाया गया और इस से मैं अनन्तकाल के विषय इस इन्द्रियज्ञान में था जिस में दूतगण रहते हैं। तब तो मुझे यह ज्ञान हुआ कि काल के सहाय अनन्तकाल का ध्यान करना न चाहिये पर अवस्था के सहाय। और ऐसे हाल में जो वस्तु कि अनन्तकाल से लेकर होती है उस का भी कुछ बोध हो सके। और मुझे यह बोध भी दिया गया।

१६८। दूतगण जो मनुष्यों से बोलते हैं मनुष्यों के प्राकृतिक बोध के अनुकूल (जो काल फैलाव और भौतिकत्व से और उन विषयों से जो इन से संबन्ध रखते हैं पैदा होते हैं) कभी नहीं बोलते। परंतु दूतगण उन आत्मीय बोधों के अनुकूल बोलते हैं जो अवस्थाओं से पैदा होते हैं और अवस्थाओं के वे विकार जो दूतगण के भीतर या दूतगण के बाहर होते जाते हैं उन से पैदा होते हैं। तो भी जब दूतगण के आत्मीय बोध मनुष्यों के अन्दर बहते हैं उसी क्षण वे आप से आप ऐसे प्राकृतिक बोध बन जाते हैं जो मनुष्यों के निज बोध हैं और जिन से वे ठीक ठीक प्रतिरूपता रखते हैं। दूतगण को इस विकार का कुछ ज्ञान नहीं है और मनुष्यों को भी इस का कुछ ज्ञान नहीं है तो भी स्वर्ग का अन्तःप्रवाह मनुष्य के भीतर उसी तौर पर बहता जाता है। कई एक दूत मेरे ध्यान में साधारण रीति से अधिक भीतर पैठने पाए बरन वे मेरे प्राकृतिक ध्यानों में भी जिन में काल और फैलाव के बहुतेरे बोध थे पैठने पाए। परंतु वे उन के विषय कुछ भी नहीं समझ सके और अचानचक हट गये। पीछे मैं ने उन की आपस में

---

२७ मनुष्यों का बोध अनन्तकाल के विषय कालसहित है परंतु दूतगण के निकट वह बोध कालरहित है। न० १३८२ · ३४०४ · ८३२५।

की बातें सुनों और वे यह कहते थे कि उसी समय हम अन्धेरे में थे। मुझे परीक्षा करने से यह ज्ञान दिया गया कि दूतगण को काल के विषय में कुछ भी ज्ञान नहीं है। स्वर्ग में के एक दूत का ऐसा गुण था कि वह उन प्राकृतिक बोधों को समझ सका जो मनुष्यों को हैं। इस से मैं ने उस दूत से उस तौर बात चीत की जिस तौर एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से बात चीत करता है। पहिले पहिल उस ने यह न समझा कि मैं कौन सी वस्तु को काल करके बोलता था। इस लिये चाहिये था कि मैं सूर्य का पृथिवी के चारों ओर दिखाऊ रीति से घूमना और बरस दिन आदि का होना उस से बतलाऊं। और मैं ने बरस के चार ऋतु महीने दिन घड़ी का प्रभेद और उन का समयक परिवर्त्तन और काल के बोध की उत्पत्ति बतलाना था। यह बात सुनते ही उस ने चकित होकर कहा कि मुझे उन वस्तुओं का कुछ ज्ञान नहीं है परंतु मुझे अवस्थाओं का ज्ञान है। इस बात चीत करने के द्वारा मैं ने यह भी मालूम किया कि जगत में लोग यह जानते हैं कि स्वर्ग में काल का बोध नहीं है या कम से कम मनुष्य ऐसे बोलते हैं कि मानों वे वह बात मालूम करते हैं। क्योंकि जब वे किसी मुए हुए का सूचन करते हैं तब वे कहते हैं कि वह काल की वस्तुओं को छोड़ता है या काल से बाहर निकलता है अर्थात वह जगत से बाहर जाता है। मैं ने यह भी मालूम किया कि कई एक लोग जानते हैं कि काल मूल से लेकर अवस्था है और इस दशा से कि काल का बोध उन अवस्थाओं पर कि जिस में मनुष्य होते हैं संपूर्ण रूप से अवलम्बित है। उन मनुष्यों को जो सुख और आनन्द की अवस्था में हैं काल छोटा मालूम होता है और उन को जो दुखी और उदासी हैं काल दीर्घ मालूम होता है और उन को जो आशा और प्रतीक्षा की अवस्था में हैं काल नानाविध मालूम होता है। और इसी हेतु ज्ञानी लोग काल और फैलाव के विषय वादानुवाद करते हैं और उन में से कई एक जानते हैं कि काल प्राकृतिक मनुष्य ही से संबन्ध रखता है।

१६९। कदाचित प्राकृतिक मनुष्य यह समझ सके कि अगर काल फैलाव और भौतिक वस्तुओं का बोध हर लिया जावे तो वह ध्यानहीन हो जावे। क्योंकि ऐसे बोधों पर मनुष्य का सारा निज ध्यान अवलम्बित है[८८]। परंतु वह यह निश्चय करे कि जितना ध्यान काल फैलाव और भौतिक वस्तुओं से संबन्ध रखता है उतना ही वह परिमित और निबद्ध है। और जितना ध्यान उन विषयों से संबन्ध नहीं रखता उतना ही वह परिमित नहीं है बरन बढ़ा हुआ है। क्योंकि मन जगत और शरीर की वस्तुओं के ऊपर उसी परिमाण तक उठाया जाता है। इस से दूतगण को ज्ञान है और उन का ज्ञान अशोधनीय कहलाता है क्योंकि वह उन बोधों पर अवलम्बित नहीं है जो प्राकृतिक वस्तुओं से पैदा होते हैं।

---

८८ मनुष्य दूतों के ध्यान करने की रीति से विपरीत विना काल के बोध के ध्यान नहीं करता। म० ३४०४।

स्वर्ग में की प्रतिमा और रूप के बखान में।

१३०। जो मनुष्य कि केवल प्राकृतिक ज्योति के सहाय ध्यान करता है वह इस बात को समझ नहीं सकता कि क्योंकर स्वर्ग में ऐसी वस्तुएं हो सकें जो जगत की वस्तुओं के समान हों। क्योंकि उस ज्योति के द्वारा उस को यह बोध है (और उस ने इस बोध का निश्चय किया) कि दूतगण केवल मन ही मन हैं और वे एक प्रकार के आकाशीय सांस के झोके हैं जिन को न तो मनुष्य की सी बुद्धि है न आंखें हैं और इस करके न आंखों का कोई विषय भी है। परंतु दूतगण के मनुष्यों के से सब इन्द्रिय हैं और वे अधिक तीक्ष्ण भी हैं। और वह ज्योति कि जिस के सहाय वे देखते हैं उस ज्योति से अधिक चमकीली है कि जिस से मनुष्य देखता है। दूतगण मनुष्य हैं मनुष्य के सब से व्युत्पन्न रूप पर। और वे मनुष्य के सारे इन्द्रियों को काम में लाते हैं जैसा कि न० ७३ वें से ७७ वें तक के परिच्छेदों में देखा जा सकता है। और स्वर्ग की ज्योति जगत की ज्योति से अधिक चमकीली है। देखो न० १२६ से १३२ तक।

१३१। स्वर्ग में जो वस्तुएं दूतगण को दिखाई देती हैं उन के स्वभाव और गुण का बखान संक्षेप से नहीं हो सकता। प्रायः वे पृथिवी पर की वस्तुओं के समान हैं। परंतु उन के रूप अधिक व्युत्पन्न हैं और परिमाण में पृथिवी की वस्तुओं से बढ़कर होते हैं। स्वर्ग में ऐसी वस्तुओं का होना उन वस्तुओं से जो भावीवक्ताओं ने देखा स्पष्ट होता है। जैसा कि एज़कीएल की पोथी में है जहां एक नये मन्दिर और एक नई पृथिवी का बयान किया गया है जो पर्व ४० से पर्व ४८ तक सूचित है। और डानियेल ने भी ७ वें से १२ वें तक के पर्वों में ऐसा ही बयान किया है। और यूहन्ना ने भी एपोकलिप्स के पहिले पर्व से अन्तिम पर्व तक वही बयान किया है। और अन्य अन्य ने धर्मपुस्तक के ऐतिहासिक और भावीदर्शक खण्डों में वैसे वैसे बयान किये हैं। जब स्वर्ग उन के आगे खुला हुआ था तब उन्हों ने उन वस्तुओं को देखा। और स्वर्ग तब खुला हुआ बोला जाता है जब भीतरी आंख (अर्थात मनुष्य के आत्मा की आंख) खुली हुई है। क्योंकि जो वस्तुएं स्वर्ग में हैं वे शारीरिक आंखों से देखी नहीं जाती। परंतु वे आत्मिक आंखों से देखी जाती हैं। और वे आत्मिक आंखें तब खुली हुई हैं जब प्रभु उस खुलने पर सम्मत हो। तब तो मनुष्य शारीरिक इन्द्रियों की प्राकृतिक ज्योति से हर लिया हुआ है और आत्मिक ज्योति में उठाया हुआ है जिस में वह अपने आत्मा के विषय चलता है। उसी ज्योति में मैं ने उन वस्तुओं को देखा जो स्वर्ग में हैं।

१३२। यद्यपि जो जो वस्तुएं स्वर्ग में विद्यमान हैं प्रायः उन वस्तुओं के समान हैं जो पृथिवी पर हैं तो भी वे अपने सारांश के विषय इन से असमान हैं। क्योंकि स्वर्ग में जो कुछ वर्त्तमान है स्वर्ग के सूर्य से होता है और जो कुछ पृथिवी पर है जगत के सूर्य से होता है। और वे वस्तुएं जो स्वर्ग के सूर्य से वर्त्तमान हैं आत्मीय कहलाती हैं और वे जो जगत के सूर्य से वर्त्तमान हैं प्राकृतिक कहलाती हैं।

१७३। जो जो दृश्यविषय स्वर्ग में विद्यमान हैं सो पृथिवी पर के दृश्यविषयों के तौर पर नहीं होते। क्योंकि स्वर्ग में सब वस्तुएं प्रभु की ओर से विद्यमान हैं उस प्रतिरूपता के अनुसार जिस को वे दूतगण के भीतरी भागों से रखती हैं। दूतगण की भीतरी वस्तुएं हैं और बाहरी वस्तुएं। भीतरी वस्तुएं प्रेम और श्रद्धा से संबन्ध रखती हैं और इस से संकल्पशक्ति और बुद्धि से संबन्ध रखती हैं क्योंकि संकल्पशक्ति और बुद्धि इन के पात्र हैं। और बाहरी वस्तुएं जो उन के आस पास हैं उन के भीतरी भागों से प्रतिरूपता रखती हैं। जो न० ८७ से ११५ तक देखा जा सकता है। स्वर्ग में गरमी और ज्योति के विषय जो नियम है वह इस बात का दृष्टान्त है क्योंकि दूतगण अपने प्रेम के गुण के अनुसार गरमी पाते हैं और अपने ज्ञान के गुण के अनुसार ज्योति पाते हैं (देखो न० १२८ से १३४ तक)। और अन्य सब वस्तुओं की जो दूतगण के इन्द्रियों को दिखाई देती हैं वही अवस्था है।

१७४। जब जब मैं दूतगण के साथ रहने पाया तब मुझे स्वर्ग में की वस्तुएं पृथिवी की वस्तुओं के समान ठीक ठीक दृष्टि आईं यहां तक कि मैं अपने को जगत में रहता हुआ ध्यान करता था और किसी राजा के राजगृह में भीतर होता हुआ समझता था। मैं ने दूतगण से भी ऐसी बात चीत की जैसा कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से बात करता है।

१७५। जब कि वस्तुएं जो भीतरी भागों से प्रतिरूपता रखती हैं उन भीतरी भागों के प्रतिनिधि भी हैं तो वे प्रतिमा कहलाती हैं। और जब कि वे दूतगण के भीतरी भाग की अवस्थाओं के अनुसार भिन्न भिन्न हैं तो वे रूप कहाती हैं। यद्यपि जो जो वस्तुएं स्वर्ग में दूतगण की आंखों के आगे दिखाई देती हैं और जो कि उन के इन्द्रियों के द्वारा मालूम की जाती हैं ऐसे स्पष्ट रूप से दृष्टि आती हैं और ऐसी प्रत्यक्ष रीति पर मालूम की जाती हैं जैसा कि वे वस्तुएं जो पृथिवी पर हैं मनुष्यों को देखने में आती हैं वरन इन से अधिक स्पष्टता और व्यक्तता और प्रत्यक्षता के साथ दिखाई देती हैं। जो जो रूप स्वर्ग में इस कारण से विद्यमान होते हैं सच्चे रूप कहलाते हैं क्योंकि वे सच मुच वर्त्तमान होते हैं। परंतु वहां असत्य रूप भी हैं क्योंकि यद्यपि वे दिखाई तो देते हैं तो भी वे भीतरी भागों से प्रतिरूपता नहीं रखते[२९]। उन के विषय हम आगे कुछ कहेंगे।

---

२९ जो जो वस्तुएं दूतगण के मध्य में दृष्टि आती हैं प्रतिरूपक हैं। न० १९७१ • ३२१३ से ३२२७ तक ३३४२ • ३४७५ • ३४८५ • ९४८१ • ९५४३ • ९५७६ • ९५७७। इस से स्वर्ग प्रतिनिधियों से भरपूर है। न० १५२१ • १५३२ • १६१९। जो जितने अधिक भीतरी हैं उतने ही सुन्दर हैं। न० ३४७५। स्वर्ग में प्रतिनिधि सच्चे रूप हैं क्योंकि वे स्वर्ग की ज्योति की ओर से होते हैं। न० ३४८५। उत्तमतर स्वर्गों में ईश्वरीय अन्तःप्रवाह के प्रतिनिधि हो जाते हैं और इस से अधमतर स्वर्गों में भी। न० २१७९ • ३२१३ • ९४५७ • ९४८१ • ९५७६ • ९५७७। जो वस्तुएं कि दूतगण की आंखों के आगे ऐसे रूपों पर दिखाई देती हैं जैसे प्रकृति में अर्थात जगत में हैं वे प्रतिमाएं कहलाती हैं। न० ९५७७। और इसी रीति से भीतरी भागों के बाहरी भाग हो जाते हैं। न०

१७६। जो जो वस्तुएं कि दूतगण को प्रतिरूपता के अनुसार दिखाई देती हैं उन के स्वभाव और गुण के प्रकाशित करने के लिये मैं एक उदाहरण देता हूं। जिन जिन व्यक्तियों को कि जो बुद्धि में हैं ऐसे फुलवाड़ी और सुखलोक दिखाई देते हैं जो हर प्रकार के वृक्ष और फूलों से भरपूर हैं। ये सुन्दरता से यथाक्रम रखे गये हैं और उन की डालियां ऐसी गुथवीं हैं कि उन से मण्डुवे बन जाते हैं। उन के हरियाले चित्रविचित्र दरवाज़े हैं जिन के चारों ओर मन बहलाने के लिये सकरी गलियां बन गई हैं। सब की सब इतनी सुन्दरता से प्रस्तुत हैं कि उस की शोभा किसी से कही नहीं जाती। वे जो बुद्धि के द्वारा विशेषित हैं इन सुखलोकों में सैर करते हैं और फूल तोड़ते हैं और बनमाला बनाते हैं जिन करके वे छोकड़े छोकड़ी के गलों को संवारते हैं। इन सुखलोकों में ऐसे ऐसे वृक्ष और फूल उगते हैं जो जगत में कभी नहीं देखे जाते और नहीं उग सकते। और इन वृक्षों पर ऐसे फल लगते हैं जो उस प्रेम की भलाई के अनुसार हैं जिस से बुद्धिमान आत्मा प्रवीण हैं। ऐसी ऐसी वस्तुएं उन को इस वास्ते दृष्टि आती हैं कि फुलवाड़ी और सुखलोक और फलदायक वृक्ष और फूल बुद्धि और ज्ञान से प्रतिरूपता रखते हैं [३०]। पृथिवी पर लोग जानते हैं कि स्वर्ग में ऐसी वस्तुएं हैं। परंतु यह केवल उन को मालूम हुआ जो भलाई में हैं और जिन्हों ने अपने आप में निरी प्राकृतिक ज्योति से और उस के झूठों से स्वर्ग की ज्योति बुझा नहीं दी है। क्योंकि जब वे स्वर्ग के बारे में बोलते हैं तब वे यह बात ध्यान करते और कहते हैं कि वह ऐसी वस्तुएं हैं जो न आंखों ने देखीं और न कानों ने सुनी हैं।

उन पोशाकों के बयान में जो दूतगण पहिनते हैं।

१७७। जब कि दूतगण मनुष्य हैं और पृथिवी पर के मनुष्यों के सदृश संगत होकर रहते हैं तो उन की भी पोशाक और घर और अन्य अन्य वस्तुएं इसी तौर पर होती हैं जैसा कि मनुष्यों की हैं। परंतु केवल यह भिन्नता है कि वे वस्तुएं अधिक व्युत्पन्नता रखती हैं इस वास्ते कि दूतगण [मनुष्य की अपेक्षा] अधिक

१६३२ • २९८७ से ३००२ तक। स्वर्ग में की प्रतिमाओं का स्वभाव कई एक दृष्टान्तों से प्रकाशित है। न० १५२१ • १५३२ • १६१९ से १६२८ तक • १८०७ • १९७३ • १९७४ • १९७७ • १९८० • १९८१ • २२९९ • २६०१ • २७६१ • २७६२ • ३२१७ • ३२१९ • ३२२० • ३३४८ • ३३५० • ५१९८ • ९०९० • १०२७८। जो जो वस्तुएं स्वर्ग में विद्यमान हैं प्रतिरूपता के अनुसार होती हैं और वे प्रतिमाएं कहलाती हैं। देखो न० ३२१३ से ३२१६ तक • ३३४२ • ३४७५ ३४८५ • ९४८१ • ९५७४ • ९५७६ • ९५७७। सब प्रतिरूप प्रतिमाएं हैं और वे अर्थबोधक भी हैं। देखो न० २८९६ • २९८७ से २०९९ तक • ३००२ • ३२२५।

३० फुलवाड़ी और सुखलोक से तात्पर्य बुद्धि और ज्ञान है। न० १०० • १०८ • ३२२० • ईडन नामक फुलवाड़ी से और यिहोवाह की फुलवाड़ी से कौन सा तात्पर्य है। न० ९९ • १०० • १५८८। सुखलोक की भूमि के बारे में और उस की स्वर्ग में की शोभा। न० ११२२ • १६२२ • २२९६ • ४५२८ • ४५२९। वृक्ष से तात्पर्य वह चैतन्य और ज्ञानशक्ति है जिस से ज्ञान और बुद्धि निकलती है। न० १०३ • २१६३ • २६८२ • २७२२ • २९७२ • ७६९२। और फल से तात्पर्य प्रेम और अनुग्रह की भलाई है। न० ३१४६ • ३६९० • ९३३७।

उत्पन्न होते हैं। क्योंकि ज्यों दूतविषयक ज्ञान मानुषक ज्ञान से बढ़कर होता है यहां तक कि वह अकथनीय है त्यों सब वस्तुएं जो दूतगण मालूम करते हैं और उन को दृष्टि आती हैं पार्थिव वस्तुओं से उत्तमतर हैं। क्योंकि वे ज्ञान से प्रति-रूपता रखती हैं। (देखो न० १७३)।

१७८। वे पोशाक जो दूतगण पहिनते हैं अन्य सब स्वर्गीय वस्तुओं के तौर पर प्रतिरूपक हैं। और इस लिये कि वे प्रतिरूपक हैं तो वे सच मुच वर्त्त-मान हैं। (देखो न० १७५)। और जब कि दूतगण की पोशाकें उन की बुद्धि से प्रतिरूपता रखती हैं तो स्वर्ग में सब दूत उन की बुद्धि के अनुकूल पोशाक पहिने दिखाई देते हैं। और क्योंकि उन में से कई एक दूसरों से अधिक बुद्धिमान हैं (देखो न० ४३ · १२८) इस लिये वे अधिक सुन्दर पोशाक पहिने हुए हैं। सब से बुद्धिमान दूतगण चमकीली आग सी पोशाक पहिनते हैं और कई एक ऐसे भड़-कीले हैं जैसे ज्योति से घेरे हुए हैं। जो दूत इन से कम बुद्धिमान हैं उन की पोशाकें बिना चमक के शुद्ध और अपारदर्शक सफेद रंग की हैं। और जो दूत इन से बहुत कम बुद्धिमान हैं उन की पोशाकें चित्रविचित्र रंग की हैं। परंतु सब से भीतरी स्वर्ग के दूतगण नंगे हैं।

१७९। जब कि दूतगण की पोशाकें उन की बुद्धि से प्रतिरूपता रखती हैं तो वे सचाई से भी प्रतिरूपता रखती हैं। क्योंकि सारी बुद्धि ईश्वरीय सचाई की ओर से होती है। इस लिये चाहे हम यह कहें कि दूतगण अपनी बुद्धि के अनु-सार पोशाकें पहिने हुए हैं चाहे यह कि ईश्वरीय सचाई के अनुकूल पोशाकें पहिने हुए हैं ये दोनों बातें एक सी हैं। कई दूतों की पोशाक आग के सदृश चमकीली है और दूसरों की ज्योति के सदृश भड़कीली। क्योंकि आग भलाई से प्रतिरूपता रखती है और ज्योति उस सचाई से जो भलाई से निकलती है[३१]। फिर कई दूतों की पोशाक बिना चमक के शुद्ध और अपारदर्शक सफेद रंग की है और दूसरों की चित्रविचित्र रंग की। क्योंकि ईश्वरीय भलाई और सचाई थोड़ी चमकीली है और भांति भांति के तौर पर ग्रहण की जाती है उन व्यक्तियों से जिन की थोड़ी बुद्धि है[३२]। सफेद रंग चाहे शुद्ध हो चाहे अपारदर्शक हो सचाई से प्रतिरूपता रखता है[३३]।

---

३१ धर्मपुस्तक में प्रतिरूपता होने से पोशाक से तात्पर्य सचाई है। न० १०७३ · २५७६ · ५३१९ · ५५५४ · ९२१२ · ९२१६ · ९९५२ · १०५३६। क्योंकि सचाई भलाई को ओढ़ाती है। न० ५२४८। घूंघट से या ओढ़नी से तात्पर्य बुद्धिशक्ति है क्योंकि बुद्धि सचाई का पात्र है। न० ६३७८। कतान की चमकीली पोशाक से तात्पर्य वह सचाई है जो ईश्वरीय से निकलती है। न० ५३१९ · ९४६९। आग से तात्पर्य आत्मीय भलाई है और आग की ज्योति से तात्पर्य उसी भलाई की सचाई है। न० ३२२२ · ६८३२।

३२ दूतगण और आत्मागण अपनी सचाई के अनुसार (और इस से अपनी बुद्धि के अनुसार) पोशाकें पहिनते हैं। न० १६५ · ५२४८ · ५९५४ · ९२१२ · ९२१६ · ९८१४ · ९९५२ · १०५३६। कभी दूतगण की पोशाक भड़कीली है और कभी नहीं। न० ५२४८।

३३ धर्मपुस्तक में चमक और सफेदी से तात्पर्य सचाई है क्योंकि वे स्वर्ग की ज्योति से निकलती हैं। न० ३३०१ · ३९९३ · ४००७।

और रंग सचाई के नानावर्णों से प्रतिरूपता रखते हैं[३४]। सब से भीतरी स्वर्ग में दूतगण नंगे हैं क्योंकि वे निर्दोषत्व में रहते हैं और निर्दोषत्व नंगाई से प्रतिरूपता रखता है[३५]।

१८०। जब कि स्वर्ग में दूतगण पोशाक पहिनते हैं तो जब वे जगत में दिखाई देते थे तब कपड़े पहिने हुए दृष्टि आते थे। जैसा कि जब वे भावीवक्ताओं को दिखाई दिये और प्रभु के समाधि पर तब "उन का चिहरा बिजली का सा था" और "उन की पोशाक चमकीली और सफेद थी"। (मत्ती पर्व २८ वचन ३। मरकस पर्व १६ वचन ५। लूका पर्व २४ वचन ४। यूहन्ना पर्व २० वचन १२ · १३)। और वे जो स्वर्ग में यूहन्ना को दिखाई दिये उन की "पोशाक कतान की और सफेद थी"। (एपोकलिप्स पर्व ४ वचन ४। पर्व १९ वचन १४)। क्योंकि बुद्धि ईश्वरीय सचाई से निकलती है इस वास्ते प्रभु की पोशाक उस के रूपान्तरग्रहण करने के समय "चमकीली और ज्योति सी सफेद थी"। (मत्ती पर्व १७ वचन २। मरकस पर्व ९ वचन ३। लूका पर्व ९ वचन २९)। ज्योति प्रभु की ओर से निकलनेवाली ईश्वरीय सचाई है यह बात न० १२९ वें परिच्छेद में देखी जा सकती है। इस से धर्मपुस्तक में पोशाकों से तात्पर्य सचाइयें है और सचाई से निकलनेवाली बुद्धि। जैसा कि "जिन्हों ने अपनी पोशाक मैली नहीं की वे सफेद पोशाक पहिनके मेरे साथ सैर करेंगे कि वे इस योग्य हैं। जो विजयमान होता है उसे सफेद पोशाक पहिनाई जावेगी"। (एपोकलिप्स पर्व ३ वचन ४ · ५)। "धन्य है वह जो जागता और अपनी पोशाक की सावधानी करता है"। (एपोकलिप्स पर्व १६ वचन १५)। और यिरूसलिम के विषय अर्थात उस कलीसिया के विषय कि जो सचाई में है[३६] ईसाइयाह में यों लिखा है कि "जाग हे सेहून अपना बल पहिन ले। हे यिरूसलिम अपनी सुन्दर पोशाक ओढ़ ले। (पर्व ५२ वचन १)। और एज़कीएल में यों लिखा है कि "मैं ने तुझे कतान उढ़ाई और तुझे रेशमी ओढ़नी पहिनाई। तेरी पोशाक कतानी और रेशमी थी"। (पर्व १६ वचन १० · १३)। इस के विषय और बहुत से वचन हैं जिन के यहां बयान करने की आवश्यकता नहीं है। वे जो सचाई में नहीं हैं विवाहकपड़ेविहीन कहाते हैं। जैसा कि मत्ती में लिखा है कि

---

३४ रंग स्वर्ग में ज्योति के नानावर्ण हैं। न० १०४२ · १०४३ · १०५३ · १६२४ · ३९९३ · ४५३० · ४७४२ · ४९२२। और उन के तात्पर्य वे वस्तुएं हैं जो बुद्धि और ज्ञान से संबन्ध रखती हैं। न० ४५३० · ४९२२ · ९४६६। उन के रंगों के अनुसार ऊरिम और थुम्मिम नामक मणियों से तात्पर्य सचाई की वे वस्तुएं हैं जो स्वर्ग में की भलाई से निकलती हैं। न० ९८६५ · ९८६८ · ९९०५। जहां तक कि उन में रक्तत्व विद्यमान है वहां तक रंगों से तात्पर्य भलाई है और जहां तक कि उन में सफेदी विद्यमान है वहां तक उन से तात्पर्य सचाई है। न० ९४७६।

३५ सब से भीतरी स्वर्ग में सब व्यक्तियें निर्दोषी हैं इस लिये वे नंगे दिखाई देती हैं। न० १५४ · १६५ · २९७ · २७३६ · ३८८७ · ८३७५ · ९९६०। स्वर्ग में निर्दोषत्व का प्रतिनिधि नंगाई आप है। न० १६५ · ८३७५ · ९९६०। निर्दोषी और यतेन्द्रिय व्यक्तियें नंगाई से नहीं लजाते क्योंकि उस में कुछ भी दोष नहीं है। न० १६५ · २१३ · ८३७५।

३६ यिरूसलिम से तात्पर्य वह कलीसिया है कि जिस में शुद्ध तत्त्व हैं। न० ४०२ · ३६५४ · ९१६६।

"जब राजा भीतर आया तब उस ने वहां एक मनुष्य देखा जो ब्याह की पोशाक पहिने न था और उस से कहा हे मित्र तू विना ब्याह के कपड़े पहिने यहां क्यों आया"। इस से वह "बाहर अन्धेरे में" डाल दिया गया। (पर्व २२ वचन १२·१३)। अब वह मकान जहां कि ब्याह हुआ इस से तात्पर्य स्वर्ग और कलीसिया है इस वास्ते कि प्रभु अपनी ईश्वरीय सचाई के द्वारा उन से संयुक्त है और इस कारण धर्मपुस्तक में प्रभु दल्हा और पति कहाता है तथा स्वर्ग और कलीसिया दल्हन और पत्नी कहलाती हैं।

१८१। दूतगण की पोशाकें न केवल देखने में पोशाकें हैं परंतु वे सच मुच की पोशाकें हैं क्योंकि दूतगण न केवल उसे देखा ही करते हैं परंतु उसे छुआ भी करते हैं। और पोशाक में बहुत सा अदल बदल भी किया करते हैं अर्थात एक को उतारते और दूसरी को पहिन लेते हैं। और जिन के पहिने का प्रयोजन नहीं होता उन्हें उतारकर अलग रख छोड़ते हैं और जब काम की होती हैं उन को फिर पहिन लेते हैं। मैं ने आप हज़ारों बार देखा कि वे भांति भांति की चित्रविचित्र पोशाकें पहिने हुए हैं। और जब मैं ने उन से पूछा कि आप ने ये किस से ली हैं तब वे बोले कि हम ने ये प्रभु से पाईं और हम को ये दान के तौर पर मिलीं। और कभी कभी जो हम पोशाक पहिने हुए होते हैं तो नहीं जानते कि वह किस से आई और क्योंकर आई है। उन्हों ने मुझ को यह भी बतलाया कि वे अपनी अवस्था के अनुकूल पोशाक को बदलते रहते हैं अर्थात उन की पहिली और दूसरी अवस्था में उन की पोशाक चमकीली सफेद रंग की होती है। और उन की तीसरी और चौथी अवस्था में उन की पोशाक कुछ धुन्धली सी होती है। और यह माजरा प्रतिरूपता होने से हुआ करता है। क्योंकि उन की अवस्थाओं के विकार बुद्धि और ज्ञान के विकार हैं। इस के बारे में न० १५४ से १६१ तक देखो।

१८२। जब कि आत्मीय जगत में हर कोई अपनी बुद्धि के अनुसार (और इस से उन सचाइयों के अनुसार कि जिस से किसी की बुद्धि पैदा होती है) पोशाक पहिनता है तो यह सिद्धान्त निकलता है कि वे जो नरक में रहते हैं विना सचाई के होकर केवल ऐसी पोशाक में दृष्टि आते हैं जो उन के पागलपन के अनुसार चीथड़े हुई हुई मैली कुचैली और घृणोत्पादक होती है। सिवाए इस के वे और कोई पोशाक नहीं पहिन सकते। प्रभु केवल उन को यह पोशाक इस वास्ते पहिनने देता है कि वे नंगे दृष्टि न आवें।

स्वर्ग में दूतगण के घरों और मकानों के बखान में।

१८३। जब कि स्वर्ग में सभाएं हैं और दूतगण मनुष्यों की रीति पर काल बिताते हैं तो यह बात निकलती है कि वे घर भी रखते हैं और उन के घर उन की अवस्था के अनुसार भांति भांति के होते हैं। अर्थात जो ऊंचे पद तक पहुंचे

हैं उन के मकान सुन्दर और शोभायमान होते हैं और जो कम दरजा रखते हैं उन के मकान कम सुन्दर दिखाई देते हैं। कभी कभी मैं ने स्वर्ग के घरों के विषय में दूतगण के साथ बात चीत की और उन को बतलाया कि आज कल कोई मनुष्य इस बात पर कष्ट से विश्वास करता है कि दूतगण घरों और मकानों में रहते हैं। इस वास्ते कि कई मनुष्य उन घरों को नहीं देखते हैं और कई लोग यह नहीं जानते कि दूतगण मनुष्य भी हैं और कई मनुष्य यह समझते हैं कि दूतविषयक स्वर्ग वही स्वर्ग है जिस को वे अपनी आंखों से अपने ऊपर देखते हैं। और इस वास्ते कि स्वर्ग देखने में सूना मालूम होता है और उन की समझ में दूतगण आकाशीय रूप ही हैं इस से वे यह अनुमान करते हैं कि दूतगण आकाश में रहते हैं। इस के सिवाए वे यह समझ नहीं सकते कि आत्मीय जगत में ऐसी ऐसी वस्तुएं जो प्राकृतिक जगत में विद्यमान हैं क्योंकर हो सकती हैं। क्योंकि वे आत्मीय वस्तुओं के विषय कुछ भी नहीं जानते। दूतगण ने मुझ को उत्तर दिया कि हां हम जानते हैं कि आज कल जगत में वैसी अज्ञानता प्रबल है और हम अचरज करते हैं कि वह अज्ञानता प्रायः कलीसिया में भी फैली हुई है और बुद्धिमानों में अधिकतर पाई जाती है उन लोगों की अपेक्षा जिन को वे मनुष्य भोले भाले लोग मानते हैं। उन्हों ने यह भी कहा कि वे जो ऐसे अज्ञान हैं धर्मपुस्तक ही से यह सीख सकें कि दूतगण भी मनुष्य हैं क्योंकि वे जो दृष्टि आए थे मनुष्य के रूप पर दिखाई दिये। और इस वास्ते कि प्रभु भी जिस ने अपने सब मनुष्यत्व को अपने साथ लिया मनुष्य के रूप पर दिखाई दिया। और इस से यह सिद्धान्त निकलता है कि जब कि वे मनुष्य हैं तो वे घर और मकान भी रखते हैं। और यद्यपि वे आत्मा कहलाते हैं तो भी वे निरे आकाशीय रूप नहीं हैं जो वायु में इधर उधर उड़ते फिरते हैं जैसा कि कई लोग अज्ञानता के कारण ध्यान करते हैं। ऐसी अज्ञानता का नाम उन्हों ने पागलपन रखा। उन्हों ने यह भी बतलाया कि अगर मनुष्य अपने पूर्वबोध को अलग करके दूतगण और आत्मागण के विषय में ध्यान करें तो उन को इस का सब माजरा ठीक मालूम हो जावेगा। और यह भी उस समय हो सकता है जब तक वे इस बात के विषय में विशेष विवाद न करें कि क्या यह ऐसा ही है। क्योंकि हर किसी को यह साधारण बोध है कि दूतगण मनुष्य के रूप पर हैं और उन के घर भी हैं जिन को स्वर्गी मकान बोलते हैं और ये मकान पृथिवी के मकानों से अधिक शोभायमान हैं। परंतु यह साधारण बोध जो स्वर्ग से बहता है क्षण भर में विनाश प्राप्त होता है जब इस प्रश्न पर विशेष ध्यान लगता है कि क्या यह ऐसा है। प्रायः यह अवस्था उन विद्वानों का है जिन्हों ने स्वकीय बुद्धि के द्वारा स्वर्ग के फाटक को अपने पर बन्द किया और स्वर्ग की ज्योति को अपने पास आने न दिया। मनुष्य के मृत्यु के पीछे फिर जीने पर विश्वास करने के विषय वैसी ही अवस्था है। वे जो उस के बारे में बात चीत करते हैं और उसी समय उन की आत्मासंबन्धी प्राप्त हुई विद्या के सहाय नहीं ध्यान करते या उस तत्त्व के सहाय कि जिस से आत्मा शरीर से फिर संयुक्त

होता है नहीं ध्यान करते इस बात पर विश्वास करते हैं कि हम मृत्यु के पीछे मनुष्य के सदृश फिर जीवेंगे। और इस पर भी विश्वास करते हैं कि अगर हम धार्मिक लोग हैं तो भविष्यत में हम दूतगण के साथ रहेंगे और शोभायमान वस्तुओं को देखेंगे और सुख आनन्द भोगेंगे। परंतु ज्यों ही वे आत्मा और शरीर के फिर संयुक्त होने के तत्त्व पर मन लगाते या आत्मा के विषय में साधारण तत्त्व का ध्यान करते हैं त्यों ही यह ध्यान उन के मन में उपज आता है कि क्या आत्मा का ऐसा स्वभाव है अर्थात क्या यह ऐसा है तो क्षण भर में उन का पहिला बोध विनाश प्राप्त होता है।

१८४। परंतु यह भला है कि मैं उन सिद्धान्तों को बतलाऊं जो परीक्षा करने से निकले। जब जब मैं ने दूतगण से संमुख होकर बात की तब मैं उन के साथ उन के मकानों में रहता था। और वे मकान ठीक ठीक ऐसे ही हैं जैसे पृथिवी पर के मकान जो घर कहलाते हैं परंतु वे इन से अधिक सुन्दर थे। उन में बहुत सी कोठरियां भीतरी कमरे और ख्वाबगाहें हैं उन के आंगन भी हैं और उन के आस पास फुलवाड़ियां झाड़बारियां और खेत हैं। जहां दूतगण संगति में बसते हैं तहां घर एक दूसरे से लगे हुए या पास पास हैं और गली कूचे और चौकों से नगर की डौल पर ठीक ठीक पृथिवी पर के नगरों के समान बने हुए हैं। और मैं इन के बीच सैर करने और इधर उधर चारों ओर देखने और कभी कभी घरों में भी पैठने पाया। यह माजरा उस समय मैं ने देखा जब कि मैं संपूर्ण रूप से जागता था और उसी समय मेरी भीतरी आंखें खुली हुई थीं[३७]।

१८५। मैं ने स्वर्ग में ऐसे शोभायमान राजगृह देखे जिन का बयान नहीं हो सकता। उन के ऊपरी भाग इतने प्रकाशमान थे कि मानों वे शुद्ध सोने के बने हुए थे। और उन के निचले भाग ऐसे थे कि मानों वे मणि रत्न के थे। उन में से कोई कोई दूसरों से चमकीले थे। और भीतरी चमक बाहरी शोभा के समान थी। उन की कोठरियां ऐसी शोभायमान और ऐसे रत्नजटित थीं कि जिन का बयान न तो शब्द पूरा कर सकते हैं न विद्या। दक्षिण की ओर सुखलोक थे जिन में सब वस्तुएं वैसी वैसी चमकीली थीं। क्योंकि कहीं कहीं वृक्षों के पत्ते चान्दी के से थे और उन के फल सोने सरीखे थे और रंग फूलों के जो फुलवाड़ी के तौर पर लगाए हुए थे रामधनुष के सदृश दिखाई दिये। और इन सुखलोकों की फुलवाड़ियां अन्य राजगृहों की फुलवाड़ियों के पास पास एक दूसरे से लगकर दृष्टिगोचर तक चारों ओर फैली हुई थीं। स्वर्ग का गृहनिर्माणशिल्प ऐसा है कि मानों वह वही विद्या आप है। और यह कुछ अचरज की बात नहीं है क्योंकि वह विद्या आप स्वर्ग से है। दूतगण ने कहा कि वैसी वस्तुएं और अन्य असंख्य अधिक व्युत्पन्न वस्तुएं प्रभु के द्वारा उन की आंखों के आगे धर दी जाती हैं। तो भी वे वस्तुएं उन की आंखों की अपेक्षा उन के मनों को आनन्द देती हैं क्योंकि

३७ दूतगण के नगर मन्दिर और घर हैं। न० ६४० · ६४१ · ६४२ · १११६ · १६२६ · १६२७ · १६२८ · १६३० · १६३१ · ४६२२।

सब वस्तुओं में वे प्रतिरूपों को और प्रतिरूपों के सहाय ईश्वरी वस्तुओं को देखते हैं।

१८६। प्रतिरूपों के विषय में मुझे यह भी बतलाया गया कि न केवल राजगृह और घर उन भीतरी वस्तुओं से जो प्रभु की ओर से दूतगण में हैं प्रतिरूपता रखते हैं परंतु उन मकानों की भीतरी और बाहरी सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तुएं भी वैसी प्रतिरूपता रखती हैं। अर्थात कोई पक्का घर उन की भलाई से प्रतिरूपता रखता है और उस में की भांति भांति की वस्तुएं उन भांति भांति के तत्वों से जिन से उन की भलाई बनी हुई है प्रतिरूपता रखती हैं[३८]। जो जो वस्तुएं घर के बाहर हैं वे उन की उन सचाइयों से जो भलाई से होती हैं और उन के चैतन्य और ज्ञान से प्रतिरूपता रखती हैं। और जब कि सकल समष्टि उन भलाइयों और सचाइयों से जो प्रभु की ओर से आकर दूतगण के पास हैं प्रतिरूपता रखती है तो वे वस्तुएं उन के प्रेम से और इस से उन के ज्ञान और बुद्धि से प्रतिरूपता रखती हैं। क्योंकि प्रेम भलाई से पैदा होता है और ज्ञान भी भलाई और सचाई दोनों से होता है और बुद्धि उस सचाई से है जो भलाई से पैदा होती है। वे भीतरी वस्तुएं दूतगण से तब मालूम की जाती हैं जब वे उन पदार्थों को देखते हैं। और इसी हेतु वे वस्तुएं उन की आंखों की अपेक्षा उन के मनों को अधिक आनन्द देती हैं और उन पर असर करती हैं।

१८७। इस से स्पष्ट है कि प्रभु अपने तई क्योंकर यिरूसलिम में का मन्दिर बोला। (यूहन्ना की अञ्जील पर्व २ बचन १९।२१)[३९]। और क्योंकर नया यिरूसलिम शुद्ध सोने का दृष्टि आया और उस के फाटक मोतियों के और उस की नेव बहुमूल्य रत्नों की दिखाई दी। (एपोकलिप्स पर्व २१)। अर्थात क्योंकि मन्दिर प्रभु के ईश्वरीय मनुष्यत्व की प्रतिमा है और नया यिरूसलिम से तात्पर्य वह कलीसिया है जो भविष्यत काल में स्थापित होनेवाला है। उस के बारह फाटक उन सचाइयों को प्रकाशित करते हैं जो भलाई की ओर ले चलती हैं। और उस की नेव से तात्पर्य वे सचाइयें हैं जिन पर वह स्थापित है[४०]।

---

३८ घर और उन में जो कुछ है उन से यह तात्पर्य है कि वे वस्तुएं जो मनुष्य के मन में अर्थात उस के भीतरी भागों में हैं। न० ७१० • २२३३ • २३३१ • २५५६ • ३१२८ • ३५३८ • ४९७३ • ५०२३ • ६१०६ • ६६९० ७३५३ • ७८४८ • ७९१० • ७९२९ • ९१५०। इस कारण उन से उन वस्तुओं का तात्पर्य भी है जो भलाई और सचाई से संबन्ध रखती हैं। न० २२३३ • २३३१ • २५५६ • ४९८२ • ७८४८ • ७९२९। भीतरी कमरों और ख्वाबगाहों से तात्पर्य वे वस्तुएं हैं जो भीतरी हैं। न० ३९०० • ५६९४ • ७३५३। घर की छत से तात्पर्य वह वस्तु है जो सब से भीतरी है। न० ३६५२ • १०१८४। लकड़ी के घर से तात्पर्य वह वस्तु है जो अच्छी है और पत्थर के घर या पक्के घर से तात्पर्य वह वस्तु है जो सच्ची है। न० ३७२०।

३९ ईश्वर का घर उस के उत्तमतम अभिप्राय के अनुसार प्रभु के ईश्वरीय मनुष्यत्व को ईश्वरीय भलाई के विषय प्रकाशित करता है परंतु मन्दिर उसी तात्पर्य को ईश्वरीय सचाई के विषय प्रकाशित करता है। और उस के सापेक्ष अभिप्राय के अनुसार मन्दिर की बात स्वर्ग और कलीसिया की सचाई और भलाई के विषय प्रकाशित करती है। न० ३७२०।

४० यिरूसलिम से तात्पर्य वह कलीसिया है कि जिस में शुद्ध तत्त्व सिखलाया जाता है।

१८८। वे दूतगण जिन का प्रभु का स्वर्गीय राज बना है प्रायः ऐसे ऊंचे स्थानों पर रहते हैं जो भूमि पर के ऊंचे पर्वत के समान दिखाई देते हैं। वे दूतगण जिन का प्रभु का आत्मीय राज बना है कुछ कम ऊंचे स्थानों पर जो छोटी पहाड़ियों के समान दृष्टि आते हैं रहते हैं। परंतु वे दूतगण जो स्वर्ग के सब से नीचे भागों में रहते हैं ऐसे ऐसे स्थानों पर बसते हैं जो पत्थर की चट्टान के समान दिखाई देते हैं। यह भी प्रतिरूपता होने से होता है। क्योंकि भीतरी वस्तुएं उत्तमतर वस्तुओं से प्रतिरूपता रखती हैं। और बाहरी वस्तुएं अधमतर वस्तुओं से[४१]। और इस से धर्मपुस्तक में पर्वत से तात्पर्य स्वर्गीय प्रेम है छोटी पहाड़ी से तात्पर्य आत्मीय प्रेम है और चट्टान से तात्पर्य श्रद्धा है[४२]।

१८९। कोई दूतगण भी हैं जो संगत करके नहीं रहते परंतु घर घर में अलग अलग रहते हैं। ये तो स्वर्ग के मध्य ही में रहते हैं और वे सब से भले दूतगण हैं।

१९०। वे घर कि जिन में दूतगण रहते हैं [हाथों के द्वारा] ऐसे तौर पर नहीं बनाए गये जैसे जगत में के घर बनाए जाते हैं परंतु वे उन को उन के भलाई और सचाई के ग्रहण करने के अनुसार प्रभु से सेंत दे दिये जाते हैं और घर दूतगण की अवस्थाओं के उन विकारों के अनुकूल (जो हम ऊपर न० १५४ से १६० तक के परिच्छेदों में लिख चुके हैं) कुछ भिन्न भिन्न हैं। सब वस्तुएं जो दूतगण के पास हैं सब की सब उन को प्रभु से दान में मिली थीं और जो वस्तु उन के लिये अवश्य है उन को दी जाती है।

स्वर्ग में के फैलाव के बयान में।

१९१। यद्यपि स्वर्ग में सब वस्तुएं स्थान और फैलाव उसी तौर पर रखती

न० ४०२ · ३६५४ · ६१६६। और फाटकों से यह तात्पर्य है कि कलीसिया के तत्त्वों को सीखना और तत्त्वों के द्वारा कलीसिया में आना। न० २९४३ · ४४७७। और नेव से तात्पर्य वह सचाई है कि जिस पर स्वर्ग कलीसिया और तत्त्व सब तीनों स्थापित हैं। न० ९६४३।

४१ धर्मपुस्तक में भीतरी वस्तुएं उत्तमतर वस्तुओं से प्रकाशित होती हैं और उत्तमतर वस्तुओं से तात्पर्य भीतरी वस्तुएं है। न० २१४८ · ३०८४ · ४५९९ · ५१४६ · ८३२५। ऊंचे की बात से तात्पर्य भीतरवाली वस्तु है और स्वर्ग भी। न० १७३५ · २१४८ · ४२१० · ४५९९ · ८१५३।

४२ स्वर्ग में ठीक ठीक जगत के सदृश पर्वत पहाड़ी चट्टान खड्ड और मैदान देखने में आते हैं। न० १०६०८। दूतगण जो प्रेम की भलाई में हैं पर्वतों पर रहते हैं वे जो अनुग्रह की भलाई में हैं छोटी पहाड़ियों पर रहते हैं और वे जो श्रद्धा की भलाई में हैं चट्टानों पर रहते हैं। न० १०४३८। और इस से धर्मपुस्तक में पर्वतों से तात्पर्य प्रेम की भलाई है। न० ७९५ · ४२१० · ६४३५ · ८३२७ · ८७५८ · १०४३८ · १०६०८। पहाड़ियों से तात्पर्य अनुग्रह की भलाई है। न० ६४३५ · १०४३८। और चट्टानों से तात्पर्य श्रद्धा की भलाई और सचाई है। न० ८५८१ · १०५८०। पत्थर से भी जिस की चट्टान बनी है तात्पर्य श्रद्धा की सचाई है। न० ११४ · ६४३ · १२९८ · ३७२० · ६४२६ · ८६०९ · १०३७६। और इसी हेतु से पर्वतों से तात्पर्य स्वर्ग है। न० ८३२७ · ८८०५ · ९४२०। और पर्वत की शिखा से तात्पर्य स्वर्ग का परमोत्तम है। न० ९४२२ · ९४३४ · १०६०८। इस कारण प्राचीन लोग पर्वतों पर पूजा किया करते थे। न० ७९६ · २७२२।

हैं ठीक ठीक जिस तौर पर कि पृथिवी पर होता है तौ भी दूतगण को स्थान और फैलाव का कुछ भी बोध नहीं है। निश्चय करके यह बात बुद्धि से बाहर मालूम होती है और जब कि यह बड़ा भारी प्रसङ्ग है इस वास्ते मैं इस का ब्योरे के साथ बयान करने में प्रयत्न करूंगा।

१९२। आत्मीय जगत में स्थानों के विकार भीतरी भागों की अवस्था के विकारों के द्वारा होते जाते हैं इस लिये अवस्था के विकारों को छोड़ वे और कुछ नहीं हैं[४३]। ऐसे विकारों के द्वारा मैं प्रभु के सहाय स्वर्गों में और सर्वजगत के कई एक भूमि में ले जाया गया। परंतु मैं केवल आत्मा के विषय वहां पर विद्यमान था और मेरा शरीर जहां का तहां [पृथिवी पर] बना रहता था[४४]। सब दूतगण इसी रीति पर चले जाते हैं और इस से उन को दूरी या फैलाव का बोध नहीं है। परंतु इन के स्थान उन की अवस्थाएं और अवस्थाओं के विकार हैं।

१९३। स्थान का बदल और अवस्था का विकार एक सा होने से स्पष्ट है कि निकटागमन भीतरी भागों की अवस्था की सदृशताओं के समान होते हैं और हटाव असदृशताओं के समान होते हैं। और इस से वे जो एक ही अवस्था में हैं एक दूसरे के पास रहते हैं और वे जो असदृश अवस्थाओं में हैं एक दूसरे से दूर रहते हैं। और स्वर्ग में फैलाव केवल वे बाहरी अवस्थाएं हैं जो भीतरी अवस्थाओं से प्रतिरूपता रखतो हैं। केवल इसी हेतु से सारे स्वर्ग एक दूसरे से अलग अलग हैं और स्वर्ग स्वर्ग की सभा सभा और सभा सभा की व्यक्ति व्यक्ति एक दूसरी से अलग अलग रहती हैं। और इसी हेतु से सारे नरक भी स्वर्गों से संपूर्ण रूप से अलग अलग रहते हैं।

१९४। इसी कारण से यदि आत्मीय जगत में कोई किसी से भेट करना अत्यन्त लालसा से चाहे तो उस को वह व्यक्ति विद्यमान होना मालूम होता है। क्योंकि उसी लालसा से वह उस को ध्यान में देखता है और वह अपने तईं उस व्यक्ति की अवस्था में डाल देता है। इस से विपरीत जितना कोई व्यक्ति दूसरी व्यक्ति से घिण करता है उतना ही वह उस से दूर होता है। क्योंकि सारी घृणा

---

४३ धर्मपुस्तक में स्थान और फैलाव से तात्पर्य जीव की अवस्थाएं है। न० २६२५ • २८३७ • ३३५६ • ३३८७ • ७३८१ • १०५८०। इस के बारे में सिद्धान्तों के लिये परीक्षा करने से देखो न० १२७४ • १२७७ • १३७६ से १३८१ तक • ४३२१ • ४८८२ • १०१४६ • १०५८०। और दूरी से तात्पर्य अवस्था की भिन्नता है। न० ९१०४ • ९९६७। गति और स्थान के बदल आत्मीय जगत में जीवन की अवस्था के बदल हैं क्योंकि वे उन में पैदा होते हैं। न० १२७३ • १२७४ • १२७५ • १३७७ • ३३५६ • ९४४०। और भूमियात्रा करने से भी वही तात्पर्य है। न० ९४४० • १०७३४। वह बात परीक्षा करने से प्रकाशित हुई। न० १२७३ से १२७७ तक • ५६०५। इस से धर्मपुस्तक में भूमियात्रा करने से तात्पर्य जीना है और जीव के रस्ते पर चले जाना भी है। बसने से भी ऐसा ही तात्पर्य है। न० ३३३५ • ४५५४ • ४५८५ • ४८८२ • ५४९३ • ५६०५ • ५९९६ • ८३४५ • ८३९७ • ८४१७ • ८५२० • ८५५७। प्रभु के साथ साथ चलने से तात्पर्य उस के साथ साथ रहना है। न० १०५६७।

४४ मनुष्य अपने आत्मा के विषय अवस्था के विकारों के द्वारा बहुत दूरी तक पहुंचाया जा सकता है और उसी समय उस का शरीर एक ही ठौर पर बना रहे। न० ९४४० • ९९६७ • १०७३४। आत्मा के द्वारा किसी ठौर तक ले चलने से क्या तात्पर्य है। न० १८८४।

प्रेमों की विपरीतता से और ध्यानों की असम्मति से होती है। इस से बहुत सी व्यक्तिएं जो आत्मीय जगत में हैं जब तक कि वे मिली झुली रहती हैं तब तक एक ठौर एकट्ठी हुई मालूम होती हैं परंतु मतभेद होते ही वे एक दूसरे से लोप होती हैं।

१९५। फिर जब कोई एक ठौर से दूसरे ठौर पर जाता है चाहे वह अपने नगर में हो चाहे अंगनों में हो चाहे फुलावड़ियों में हो चाहे अन्य ऐसे ठौरों में हो जो उस के नगर से बाहर हों तो जब वह जलदी करता है तब वह इस अवस्था में अधिक शीघ्र जाता है उस अवस्था की अपेक्षा कि जिस में वह जाने पर आसक्त न हो। उस ठौर की सड़क यद्यपि वह एक ही दूरी की है तो भी उस के जाने की लालसा के अनुकूल आप से आप छोटी या दीर्घ मालूम होती है। मैं ने बार बार आप यह माजरा देखा और उस पर बहुत अचरज करता था। फिर तो स्पष्ट है कि दूतगण के निकट दूरी और इस से फैलाव संपूर्ण रूप से उन के भीतरी भागों की अवस्था के अनुसार होता है। और इस कारण उन के ध्यान में फैलाव का कुछ भी बोध नहीं आ सकता यद्यपि उन के निकट फैलाव ऐसे सच्चे तौर पर होता है जिस तौर पर वह पृथिवी पर होता है[४५]।

१९६। यह माजरा मनुष्य के उन ध्यानों के सहाय जो फैलाव से कुछ संबन्ध नहीं रखते प्रकाशित हो सकता है। क्योंकि जिस पर कोई मनुष्य बड़ी लालसा से ध्यान धरता है वह उस के पास मानों विद्यमान हो जाता है। हर कोई जो इस बात पर सोच विचार करता है भली भांति जानता है कि उस के दृष्टिगोचर में कुछ फैलाव नहीं होता इस लियें उस को उस का कुछ बोध नहीं है इस को छोड़ कि पृथिवी पर किसी ऐसी बीचवाली वस्तु के सहाय कुछ बोध हो जिस को वह उसी समय देखता है या जिस की दूरी पहिले उस को निज बुद्धि ने ठहराई थी। क्योंकि फैलाव संबध्यमान है और संबद्धता दूरी को छिपाती है इस को छोड़ कि वह किसी असंबध्यमान वस्तु के सहाय नापी जाती है। दूतगण के निकट किसी विशेष तौर पर वही हाल है क्योंकि उन की दृष्टि उन के ध्यान के साथ मेल करके मालूम करती है और उन के ध्यान उन के प्रेमों के साथ काम करता है। और इस कारण से भी कि सब कुछ उस के भीतरी भागों की अवस्था के अनुसार समीप या दूरी पर मालूम होता है जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं।

१९७। इस से धर्मपुस्तक में स्थान और फैलाव से और सब वस्तुएं जो फैलाव सें संबन्ध रखती हैं उन से तात्पर्य वे वस्तुएं हैं जो अवस्था से संबन्ध रखती हैं। अर्थात दूरी निकटता दूरता रस्ते भूमियात्रा वास करना मील कोस मैदान खेत फुलवाड़ी नगर गली गति भांति भांति की माप नाप लम्बाई चौड़ाई उंचाई

---

४५ स्थान और फैलाव दूतगण और आत्मागण के भीतरी भागों की अवस्था के अनुसार मालूम होते हैं। न० ५६०४ · ६४४० · १०१४६।

गहराई और अन्य अन्य असंख्य वस्तुएं। क्योंकि बहुत सी वस्तुएं जो जगत से आकर मनुष्यों के ध्यान में होती हैं फैलाव और काल से कुछ कुछ ले लेती हैं। अब मैं केवल यह बयान करता हूं कि लम्बाई चौड़ाई और उंचाई क्या क्या वस्तुएं हैं। जगत में लम्बाई और चौड़ाई की बातें उन वस्तुओं के विषय बोली जाती हैं जो फैलाव के विषय लम्बी और चौड़ी हैं। और उंचाई की वैसी ही अवस्था है। परंतु स्वर्ग में जहां फैलाव का कुछ बोध नहीं है लम्बाई से तात्पर्य भलाई की एक अवस्था है चौड़ाई से तात्पर्य सचाई की एक अवस्था है और उंचाई से तात्पर्य इन दोनों की अंशों के अनुसार विवेचना है। अंशों के बारे में देखो न० ३८। ऐसी अवस्थाएं इन तीनों विस्तार के द्वारा बतलाई जाती हैं क्योंकि स्वर्ग में लम्बाई पूर्व से पच्छिम तक पसर जाती है और वहां वे रहते हैं जो प्रेम की भलाई में हैं। और चौड़ाई उत्तर से दच्छिण तक पसर जाती है और वहां वे रहते हैं जो उस सचाई में हैं जो भलाई से निकलती है। (देखो न० १४८)। और स्वर्ग में उंचाई अंशों के अनुसार भलाई और सचाई दोनों को बतलाती है। इस से धर्मपुस्तक में लम्बाई चौड़ाई और उंचाई ऐसी ऐसी वस्तुओं को बतलाती हैं जैसी कि हज़की-एल की पोथी के ४० वें पर्व से ४८ वें पर्व तक हैं जहां कि नया मन्दिर और नई पृथिवी उन के आंगन कोठरी द्वार फाटक खिड़की और नगर के बाहरी भागों के साथ सब का बयान लम्बाई चौड़ाई और उंचाई की नापों के सहाय किया जाता है। ये सब वस्तुएं एक नई कलीसिया को और वे भलाइयें और सचाइयें जो उस में प्रबल हैं बतलाती हैं नहीं तो ये सब नापें किस काम आवें। एपोकलिप्स की पोथी में नये यिरूसलिम का बयान उसी तौर पर किया जाता है जैसा कि "उस नगर का आकार चौकोण है और उस का लम्बान इतना है जितना उस की चौड़ान और उस ने उस नगर को उस जरीब से नापकर बारह हज़ार सतादीवस अर्थात साढ़े सात सौ कोस पाया और उस का लम्बान और चौड़ान और ऊंचान एक सां हैं"। (पर्व २१ वचन १६)। नये यिरूसलिम से तात्पर्य नई कलीसिया है और इस से उस की लम्बाई चौड़ाई गहिराई से तात्पर्य कलीसिया के सारभूत है। लम्बाई से तात्पर्य कलीसिया के प्रेम की भलाई है। चौड़ाई से तात्पर्य उस की सचाई है जो उस भलाई से निकलती है। उंचाई से तात्पर्य सचाई और भलाई उस के अंशों के विषय है। बारह हज़ार सतादीवस से तात्पर्य समुदाय में सब भलाई और सचाई है। इस से नगर के बारह हज़ार सतादीवस (अर्थात साढ़े सात सौ कोस) उंचाई होने से और क्या तात्पर्य हो सकता है। और लम्बाई और चौड़ाई उंचाई के बराबर होने से और क्या तात्पर्य होगा। धर्मपुस्तक में चौड़ाई से तात्पर्य सचाई है। हज़-रत दाऊद की इस बात से यह स्पष्ट है कि "तू ने मुझ को मेरे शत्रु के हाथ में हवाले न कर दिया। तू ने विस्तीर्ण जगह में मेरा पांव खड़ा किया"। (ज़बूर पर्व ३१ वचन ८)। फिर "मैं ने तंगी में प्रभु को पुकारा। प्रभु ने मेरी सुनके विस्तार किया"। (ज़बूर पर्व ११८ वचन ५)। और वचनों का लिखना आवश्यकता का काम नहीं है जैसा कि ईसाइयाह पर्व ८ वचन ८। हबक्कूक पर्व १ वचन ६ इत्यादि।

१९८। इस से यह देखा जा सकता है कि यद्यपि स्वर्ग में ऐसा फैलाव है जैसा कि जगत में है तो भी वहां कोई वस्तु फैलाव के सहाय नहीं नापी जाती परंतु अवस्थाओं के सहाय। और इस से वहां फैलाव आप उस तौर पर नापा नहीं जाता जिस तौर पर जगत में नापा जाता है। वह केवल दूतगण के भीतरी भागों की अवस्था और इस अवस्था के अनुसार मालूम किया जाता है[४६]।

१९९। इस का पहिला और सब से आवश्यक कारण यह है कि प्रभु हर किसी के साथ उस के प्रेम और श्रद्धा के अनुकूल विद्यमान होता है[४७]। और सब वस्तुएं उस के विद्यमान होने के अनुसार निकट या दूर मालूम होती हैं। क्योंकि इसी से स्वर्ग में सब वस्तुएं ठहराई जाती हैं। उस के विद्यमान होने से भी दूतगण को ज्ञान होता है। क्योंकि उस से उन को ध्यानों का फैलाव है। और इस के द्वारा स्वर्ग में की सब वस्तुएं आपस में एक दूसरे से संसर्ग होना है। संक्षेप में प्रभु के विद्यमान होने से उन को ध्यान करने की शक्ति आत्मिक तौर पर है और न मनुष्यों के समान प्राकृतिक तौर पर।

स्वर्ग के उस रूप के बारे में जो स्वर्ग में का सारा संयोग और संसर्ग करता है।

२००। स्वर्ग के रूप का हाल उन बातों से जो गुज़रे बाबों में लिखी गई हैं कुछ कुछ मालूम होगा जैसा कि स्वर्ग अपने सब से बड़े रूप में और अपने सब से छोटे रूप में अपने आप के समान है। (न० ७२)। और कि हर एक सभा स्वर्ग का छोटा सा रूप है और प्रत्येक दूत स्वर्ग का सब से छोटा रूप है। (न० ५१ से ५८ तक) और कि जैसा सारा स्वर्ग एक मनुष्य के समान है तैसा ही स्वर्ग का हर एक सभा मनुष्य के छोटे से रूप के समान है और प्रत्येक दूत मनुष्य का सब से छोटा रूप है। (न० ५९ से ७७ तक)। और कि मध्य में सब से ज्ञानी व्यक्तियें रहती हैं और उन के चारों ओर परिधि पर्यन्त वे रहती हैं जिन्हें थोड़ा सा ज्ञान है और प्रत्येक सभा में वही हाल है। (न० ४३)। और कि वे जो प्रेम की भलाई में हैं स्वर्ग में पूर्व से पच्छिम तक बसते हैं और वे जो उन सचाइयों में हैं जो भलाई से निकलती हैं दक्षिण से उत्तर तक बसते हैं और प्रत्येक सभा में वही हाल है। (न० १४८ • १४९)। ये सब बातें स्वर्ग के रूप के अनुसार होती हैं और इन से प्रायः उस रूप के हाल का अनुमान किया जा सकता है[४८]।

---

४६ धर्मपुस्तक में लम्बाई से तात्पर्य भलाई है। न० १६१३ • ९४८७। चौड़ाई से तात्पर्य सचाई है। न० १६१३ • ३४३३ • ३४३४ • ४४८२ • ९४८७ • १०१७९। और उंचाई से तात्पर्य अंशों के विषय भलाई और सचाई है। न० ९४८९ • ९७७३ • १०१८१।

४७ प्रभु का दूतगण से संयुक्त होना और उस का उन के साथ विद्यमान होना दोनों उन की उस की ओर से प्रेम और अनुग्रह ग्रहण करने के अनुसार होते हैं। न० २९० • ६८१ • १९५४ • २६५८ • २८८६ • २८८८ • २८८९ • ३००१ • ३७४१ • ३७४२ • ३७४३ • ४३१८ • ४३१९ • ४५२४ • ७२११ • ९१२८।

४८ सर्वव्यापी स्वर्ग सब दूतविषयक सभाओं के विषय प्रभु से उस के ईश्वरीय परिपाटी

२०१। स्वर्ग के रूप का समझना अवश्य है क्योंकि सब कोई न केवल उस के अनुकूल संयोगित होते हैं परंतु उस के रूप के अनुकूल सारा संसर्ग भी होता है। और इस से ध्यानों और प्रेमों का सब प्रकार का फैलाव भी होता है और इस कारण दूतगण की सारी बुद्धि और ज्ञान पैदा होता है। इस से जितना कि कोई स्वर्ग के रूप पर है अर्थात जितना वह स्वर्ग के रूप से सदृशता रखता है उतना ही वह ज्ञानी है। चाहे हम स्वर्ग के रूप पर होने के विषय कहें चाहे हम स्वर्ग के परिपाटी में होने के विषय कहें ये दोनों एकसां हैं क्योंकि सब वस्तुओं के रूप उन से पैदा होते हैं और उन के अनुकूल बने रहते हैं[४९]।

२०२। उचित है कि यहां हम स्वर्ग के रूप पर होने के बयान में कुछ कहें। मनुष्य स्वर्ग और जगत की प्रतिमाओं के अनुकूल पैदा हुआ। उस के भीतरी भाग स्वर्ग की प्रतिमा के अनुकूल पैदा हुए और उस के बाहरी भाग जगत की प्रतिमा के अनुकूल। (देखो नं० ५७)। चाहे हम प्रतिमा के अनुकूल की बात काम में लावें चाहे हम रूप के अनुसार की बात लावें ये दोनों एक सी हैं परंतु जब कि मनुष्य ने अपने मन की बुराइयों से और उन झूठ तत्त्वों से जो बुराइयों से निकलते हैं अपने में स्वर्ग की प्रतिमा को और इस करके स्वर्ग के रूप को विनाश कर डाला है और उस के स्थान में नरक का प्रतिमा और रूप को बिठा लिया है तो मनुष्य के भीतरी भाग जन्म से लेकर बन्द रहते हैं। और यह वही कारण है कि जिस से मनुष्य निरी अज्ञानता ही में जन्म लेता है। परंतु जानवरों का ऐसा हाल नहीं है। पस इस निमित्त कि स्वर्ग की प्रतिमा या रूप मनुष्य में फिर होवे अवश्य है कि वह परिपाटीविषयक वस्तुओं के बारे में कुछ शिक्षा पावें। क्योंकि (जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं) रूप परिपाटी के अनुकूल है। धर्मपुस्तक में ईश्वरीय परिपाटी के सारे नियम समाते हैं। क्योंकि ईश्वरीय परिपाटी के नियम धर्मपुस्तक के वचन हैं। इस लिये जितना मनुष्य उन नियमों को मालूम करता है और उन के अनुसार काम करता है उतना ही उस के भीतरी भाग खुल जाते हैं और स्वर्ग की प्रतिमा या रूप उन में फिर रचा जाता है। इस से स्पष्ट है कि स्वर्ग के रूप पर होने की बात का तात्पर्य धर्मपुस्तक की सचाइयों के अनुसार जीना है[५०]।

के अनुसार प्रस्तुत किया गया है क्योंकि दूतगण के निकट स्वर्ग प्रभु के ईश्वरत्व का बना हुआ है। नं० ३०३८ · ७२११ · ९१२८ · ९३३८ · १०१२५ · १०१५१ · १०१५७। स्वर्गीय रूप के बारे में। नं० ४०४० · ४०४१ · ४०४२ · ४०४३ · ६६०७ · ९८७७।

४९ स्वर्ग का रूप ईश्वरीय परिपाटी के अनुकूल होता है। नं० ४०४० से ४०४३ तक · ६६०७ · ९८७७।

५० ईश्वरीय सचाइयें परिपाटी के नियम हैं। नं० २४४७ · ७९९५। और मनुष्य जहां तक वह परिपाटी के अनुसार जीता है अर्थात जहां तक वह ईश्वरीय सचाई के अधीन भलाई पर चलता है वहां तक वह एक मनुष्य हो जाता है। नं० ४८३९ · ६६०५ · ६६२६। मनुष्य वह जीवजन्तु है कि जिस में ईश्वरीय परिपाटी की सब वस्तुएं बटोरी हुई हैं क्योंकि वह सृष्टि से लेकर ईश्वरीय परिपाटी का रूप होता रहता है। नं० ४२१९ · ४२२० · ४२२३ · ४५२३ · ४५२४ · ५११४ ·

२०३। जितना कि कोई स्वर्ग के रूप पर है उतना ही वह स्वर्ग में है और वह स्वर्ग का सब से छोटा रूप आप हो जाता है। (न० ५७)। और इस कारण वह उसी दरजा तक बुद्धि और ज्ञान में है। क्योंकि (जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं) उस की बुद्धि के सब ध्यान और उस के मन के सब प्रेम स्वर्ग में उस के रूप के अनुसार चारों ओर फैल जाते हैं और अद्भुत रीति से वहां की सब सभाओं के साथ संसर्ग करते हैं और वे सभाएं उस के साथ परस्पर संयोग करती हैं[५१]। कोई कोई जानते हैं कि उन के ध्यान और प्रेम उन के चारों ओर सच मुच बढ़ नहीं जाते परंतु उन ही में समाते हैं क्योंकि वे उन वस्तुओं को जिन के विषय वे ध्यान करते हैं भीतर से मानों अपने आप में देखते हैं और न बाहर से। परंतु यह एक माया है। क्योंकि ज्यों आंख की दृष्टि दूरस्थ वस्तुओं तक पहुंचती है और उन वस्तुओं की परिपाटी के अनुसार जो उस फैलाव में होती हैं दृष्टि पर कुछ असर लगता है त्यों भीतरी आंख की दृष्टि भी जो बुद्धि की दृष्टि है आत्मीय जगत में बढ़ जाती है यद्यपि मनुष्य (उस हेतु से जो न० १९६ वें परिच्छेद में लिखा है) उस को नहीं जानता। उन बातों में केवल यह भिन्नता है कि आंख की दृष्टि में प्राकृतिक रीति से असर होता है क्योंकि वह असर प्राकृतिक वस्तुओं से होता है और बुद्धि की दृष्टि में आत्मिक रीति से असर लगता है क्योंकि वह असर आत्मिक वस्तुओं से होता है जो सब की सब भलाई और सचाई से संबन्ध रखती हैं। मनुष्य यह सब माजरा नहीं जानता क्योंकि वह यह नहीं जानता कि एक ऐसी ज्योति विद्यमान होती है जो बुद्धि को प्रकाशित करती है परंतु उस ज्योति के विना वह कुछ भी ध्यान नहीं कर सकता। उस ज्योति के विषय में न० १२६ से १३२ तक देखो। कोई आत्मा था जो यह गुमान करता था कि वह अपनी ओर से और अपने बाहर की ओर कुछ भी फैलाव के विना और कोई बाहरी सभाओं से भी संसर्ग करने के विना ध्यान करता था। इस अभिप्राय से कि उस की भूल चूक दूर जावे सब प्रकार का संसर्ग उन सभाओं से जो उस के पास पास थीं ले लिया गया। इस से न केवल उस से सारा ध्यान

५३६८ • ६०१३ • ६०५७ • ६६०५ • ६६२६ • ९७०६ • १०१५६ • १०४७२। मनुष्य भलाई और सचाई में नहीं जन्म लेता है परंतु बुराई और झूठ में और इस से वह उस में जन्म लेता है कि जो ईश्वरीय परिपाटी के विरुद्ध है। इस कारण वह अन्धेरी अज्ञानता में जन्म लेता है और इस से अवश्य है कि वह फिर जन्म लेवे या द्विज हो जावे और द्विज होना इस कारण प्रभु की ओर की ईश्वरीय सचाइयों के द्वारा है कि उस करके मनुष्य परिपाटी में रखा जावे। न० १०४७ • २३०७ • २३०८ • ३५१८ • ३८१२ • ८४८० • ८५५० • १०२८३ • १०२८४ • १०२८६ • १०७३१। जब प्रभु मनुष्य को फिर रचता है अर्थात उस को द्विजपद पर बैठालता है तब वह उस मनुष्य में परिपाटी के अनुकूल अर्थात स्वर्ग के रूप पर सब वस्तुओं को प्रस्तुत करता है। न० ५७०० • ६६९० • ९९३१ • १०३०३।

[५१] स्वर्ग में हर कोई जीव से संयुक्त है और वह संयोग उसी के चारों ओर दूतविषयक सभाओं में भलाई के परिमाण और स्वभाव के अनुसार बढ़ जाना कहला सकता है। न० ८७९४ • ८७९७। क्योंकि ध्यानों और प्रेमों का भी वैसा ही बढ़ जाना होता है। न० २४७५ • ६५९८ से ६६१३ तक। और प्रधान प्रेमों के अनुसार संयुक्त और वियुक्त होते हैं। न० ४१११।

जाता रहा पर वह मुए हुए के सदृश गिर पड़ा पर केवल उस में इतनी शक्ति थी कि वह अपने बांहों को शिशुबालक के तौर पर इधर उधर हिलाता था। कुछ काल बीतने पर उस को संसर्ग फिर दिया गया और जितना संसर्ग उस को फिर दिया जाता था उतना ही वह अपने ध्यान की सामान्य अवस्था में फिर आता जाता था। उस के देखते ही अन्य आत्मा अङ्गीकार करके कहते थे कि सब ध्यान और प्रेम संसर्ग होने के द्वारा भीतर बहता है। और जब कि ध्यान और प्रेम इस रीति से बहते हैं तो जीवन की समष्टि भी इसी तौर पर बहती है। क्योंकि मनुष्य के जीवन की समष्टि यही है कि वह ध्यान कर सके और उस पर असर लगे अथवा कि वह समझ सके और इच्छा करे और ये दोनों एकसां हैं[५२]।

२०४। यह बात कहने के योग है कि हर किसी की बुद्धि और ज्ञान उस के संसर्ग के गुण के अनुसार भिन्न भिन्न होते हैं। वे जिन की बुद्धि और ज्ञान वास्तविक सचाइयों और भलाइयों के बने हैं वे उन सभाओं के साथ संसर्ग रखते हैं जो स्वर्ग के रूप पर हैं। परंतु वे जिन की बुद्धि और ज्ञान यद्यपि वास्तविक सचाइयों और भलाइयों के न बने हैं तो भी ऐसी वस्तुओं के बने हैं जो सचाइयों और भलाइयों के साथ मेल रखते हैं उन का संसर्ग टूटा हुआ और क्रमविरुद्ध होता है। क्योंकि वह संसर्ग सभाओं की ऐसी श्रेणी से नहीं होता जो स्वर्ग के रूप के अनुकूल है। परंतु वे जो बुद्धिमान और ज्ञानी नहीं हैं इस वास्ते कि उन झूठों में हैं जो बुराई से पैदा होते हैं नरक की सभाओं के साथ संसर्ग रखते हैं। संसर्ग का परिमाण निश्चय ज्ञान के परिमाण के अनुसार होता है। यह भी याद में रखना चाहिये कि यह सभाओं के साथ का संसर्ग एक ऐसा संसर्ग नहीं है जो उन को प्रत्यक्ष से मालूम होता है जो उन सभाओं में रहते हैं। परंतु यह संसर्ग उस गुण के साथ है कि जिस के अनुसार वे [भलाई या बुराई के विषय] चलते हैं और जो उन के अन्दर बहता है[५३]।

---

५२ केवल एक ही जीव है जिस करके स्वर्ग और जगत के सब जीवजन्तु जीते हैं। न० १६५४ • २०२१ • २५३६ • २६५८ • २८८६ से २८८९ तक • ३००१ • ३४८४ • ३७४२ • ५८४७ • ६४६७। और यह जीव प्रभु ही से है। न० २८८६ से २८८९ तक • ३३४४ • ३४८४ • ४३१९ • ४३२० • ४५२४ • ४८८२ • ५९८६ • ६३२५ • ६४६८ • ६४६९ • ६४७० • ९२७६ • १०१९६। और वह अद्भुत रीति से दूतगण और आत्माओं और मनुष्यों में बहता है। न० २८८६ से २८८९ तक • ३३३७ • ३३३८ • ३४८४ • ३७४२। प्रभु अपने ईश्वरीय प्रेम से भीतर बहता है और इस का ऐसा स्वभाव है कि उस की यह अभिलाषा है कि जो मेरा है सो किसी दूसरे का होगा। न० ३७४२ • ४३२०। इस कारण जीव ऐसा मालूम होता है कि जैसा वह मनुष्य के अन्दर है और न कि बाहर से अन्दर को बहता है। न० ३७४२ • ४३२०। दूतगण के उस आनन्द के बारे में जिस को मैं ने मालूम किया और जिस ने उन की यह बात दृढ़ किया कि वे अपनी ओर से नहीं जीते हैं पर प्रभु की ओर से। न० ६४६९। बुरे लोग इस बात के ग्रहण करने को स्वीकार नहीं करते कि जीव भीतर बहता है। न० ३७४३। परंतु जीव प्रभु से उन में भी बहता है। न० २७०६ • ३७४३ • ४४१७ • १०१९६। और वे भलाई की बुराई कर डालते हैं और सचाई का झूठ। क्योंकि मनुष्य की ग्रहण करने की शक्ति उस के गुण के अनुसार है। न० ४३१९ • ४३२० • ४४१७।

५३ ध्यान आत्मागण और दूतगण के चारों ओर की सभाओं में अपने को फैलाता है।

२०५। स्वर्ग में सब व्यक्तियें उन आत्मीय सादृश्यों के अनुसार जो भलाई और सचाई से होते हैं और उन सादृश्यों की परिपाटी के अनुसार भी आपस में संयोग करती हैं। वह संयोग सर्वव्यापी स्वर्ग में प्रत्येक सभा और प्रत्येक घर में से पार होकर व्यापता है। और इस से वे दूतगण जो समभलाई और समसचाई में रहते हैं आपस में एक दूसरे को जानते हैं जैसा कि पृथिवी पर समजातीय और समसदृश लोग एक दूसरे को जानते हैं। और यह पहचान ऐसी ही है कि जैसा वे लड़कपन से एक दूसरे को जानते हैं। वे भलाइयें और सचाइयें जिन का ज्ञान और बुद्धि बनी हैं प्रत्येक दूत में उसी तौर पर संयोगित हैं। उसी रीति पर भी वे आपस में एक दूसरे को पहचानते हैं और पहचाने के कारण वे आपस में संयोग करते हैं[५४]। इस कारण वे जिन के साथ भलाई और सचाई स्वर्ग के रूप के अनुसार संयुक्त हुई है उन फलों को देखते हैं जो उन गुणों से श्रेणी बनकर निकलते हैं और वे अपने चारों ओर के संयोग होने की रीति को विस्तीर्ण रूप से देखते हैं। परंतु उन की जो भलाइयों और सचाइयों से स्वर्ग के रूप के अनुसार संयुक्त नहीं हैं और ही अवस्था है।

२०६। ऐसा ही स्वर्ग का रूप है और उस के अनुसार दूतगण के ध्यानों और प्रेमों के संसर्ग और फैलाव प्रचलित होते हैं और इस से उस के अनुसार उन की बुद्धि और ज्ञान है। परंतु एक स्वर्ग का दूसरे स्वर्ग से संसर्ग रखना अर्थात तीसरे या सब से भीतरी स्वर्ग का दूसरे या मझले स्वर्ग से संसर्ग होना और इन दोनों का पहिले या अन्तिम स्वर्ग से संसर्ग होना इन सब संसर्गों का स्वभाव और ही है और वास्तव में उन को संसर्ग कहना न चाहिये क्योंकि वे अन्तःप्रवाह हैं। और अब इस का कुछ बयान होगा। गुज़रे बाब में (देखो न० २९ से ४० तक) यह बयान किया गया कि तीन स्वर्ग हैं और वे एक दूसरे से अलग अलग हैं।

२०७। एक स्वर्ग का दूसरे स्वर्ग से संसर्ग होना नहीं है परंतु अन्तःप्रवाह है यह तो स्वर्गों की परस्पर सापेक्ष दिशाओं से प्रत्यक्ष होता है। क्योंकि तीसरा अर्थात सब से भीतरी स्वर्ग ऊपर है दूसरा अर्थात मझला स्वर्ग नीचे है और पहिला अर्थात अन्तिम स्वर्ग इस से अधिक नीचे है। और प्रत्येक स्वर्ग की सारी सभाएं इसी तौर पर प्रस्तुत की गई हैं। कोई ऐसे ऊंचे स्थानों पर है जो पर्वत के सदृश मालूम होते हैं (न० १८८)। और सब से भीतरी स्वर्ग के दूतगण उन की शिखाओं पर रहते हैं। उन के नीचे दूसरे स्वर्ग की सभाएं होती हैं और इस से अधिक नीचे अन्तिम स्वर्ग की सभाएं पाई जाती हैं इत्यादि इत्यादि चाहे वे ऊंचे स्थानों

न० ६६०० से ६६०५ तक। तौ भी वह उन सभाओं के ध्यानों को हिलाकर उन्हें नहीं अशान्त करता है। न० ६६०१ · ६६०३।

५४ भलाई अपनी सचाई को स्वीकार करती है और सचाई अपनी भलाई को। न० २४२६ · ३१०१ · ३१०२ · ३१६१ · ३१७६ · ३१८० · ४३५८ · ५४०७ · ५८३५ ६६३७। और इस से भलाई और सचाई का संयोग पैदा होता है। न० ३८३४ · ४०९६ · ४०९७ · ४३०१ · ४३४५ · ४३५३ · ४३६४ · ४३६८ · ५३६५ · ७६२३ से ७६२७ तक · ७७५२ से ७७६२ तक · ८५३० · ९२५८ · १०५५५। क्योंकि यह स्वर्ग के अन्तःप्रवाह से होता है। न० ९०७९।

पर हों चाहे न हों। किसी उत्तमतर स्वर्ग की कोई सभा प्रतिरूपता होने के सिवाय किसी निचले स्वर्ग की किसी सभा से संसर्ग नहीं रखती (ऊपर को देखो न० १००) और वह संसर्ग जो प्रतिरूपता के द्वारा होता है सो अन्तःप्रवाह कहलाता है।

२०८। एक स्वर्ग दूसरे स्वर्ग से या एक स्वर्ग की कोई सभा दूसरे स्वर्ग की किसी सभा से प्रभु ही के द्वारा संयुक्त होती है। और यह संयोग बिचवाईसहित और बिचवाईरहित अन्तःप्रवाह से होता है। जो प्रभु से सीधे निकलता है वह बिचवाईरहित है और जो प्रभु से होकर क्रम करके उत्तमतर स्वर्गों से अधमतर स्वर्गों में जाता है वह बिचवाईसहित है[५५]। और जब कि स्वर्गों का संयोग अन्तः-प्रवाह के द्वारा प्रभु ही से होता है तो यह नियम सावधान करके स्थापित हुआ कि उत्तमतर स्वर्ग का कोई दूत किसी अधमतर स्वर्ग की किसी सभा में देख नहीं सकता और न वहांवालों में से किसी से बात चीत कर सकता है। क्योंकि यदि कोई दूत ऐसा काम करे तो वह बुद्धिहीन और ज्ञानहीन हो जावेगा। इस के कारण का बयान अब किया जाता है। हर एक दूत को जीव के तीन अंश होते हैं जो स्वर्ग के तीन अंशों से प्रतिरूपता रखते हैं। उन का जो सब से भीतरी स्वर्ग में रहते हैं तीसरा अर्थात सब से भीतरी अंश खुला हुआ है और उन का दूसरा और तीसरा अंश बन्द हुआ है। उन का जो मझले स्वर्ग में हैं दूसरा अंश खुला हुआ है और पहिला और तीसरा अंश बन्द है। इस से ज्यों ही तीसरे स्वर्ग का कोई दूत दूसरे स्वर्ग के किसी सभा में देखकर किसी वहां के निवासी से बात चीत करता है त्यों ही उस के तीसरा अंश बन्द होकर वह ज्ञानहीन हो जाता है। क्योंकि उस का ज्ञान तीसरे अंश में है और वह दूसरे और पहिले अंश में कुछ ज्ञान नहीं रखता। यह वही तात्पर्य है जो प्रभु के इन वचनों से निकलता है कि "जो कोठे पर हो न उतरे कि अपने घर से कुछ निकाले। और जो खेत में हो पीछे न फिरे कि अपने कपड़े ले"। (मत्ती पर्व २४ वचन १७·१८)। और लूका की अञ्जील में भी जैसा कि "उस दिन वह जो कोठे पर हो और उस का सामान घर में उस के लेने के वास्ते नीचे न आवे। और जो खेत में हो वैसा ही पीछे न फिरे। लूट की जोरू याद करो"। (लूका पर्व १७ वचन ३१·३२)।

२०९। अधमतर स्वर्गों से उत्तमतर स्वर्गों में कुछ भी अन्तःप्रवाह नहीं होता क्योंकि यह परिपाटी के विरुद्ध होवे। परंतु केवल उत्तमतर स्वर्गों से अधमतर स्वर्गों में। क्योंकि जितना दस लाख (१०,००,०००) एकाई से बड़ा है उतना ही उत्तमतर स्वर्गों के दूतगण का ज्ञान अधमतर स्वर्गों के दूतगण के ज्ञान से बड़ा है। और यह वही कारण है कि जिस से अधमतर स्वर्ग के दूतगण किसी उत्तमतर स्वर्ग के

---

५५ अन्तःप्रवाह प्रभु से बिचवाईरहित है और स्वर्ग से होकर बिचवाईसहित है। न० ६०६३ · ६३०७ · ६४७२ · ९६८२ · ९६८३। प्रभु का अन्तःप्रवाह बिचवाईरहित है सब वस्तुओं के सूक्ष्म से सूक्ष्म भागों में। न० ६०५८ · ६४७४ से ६४७८ तक · ८७१७ · ८७२८। स्वर्गों से होकर प्रभु के बिचवाईरहित अन्तःप्रवाह के बारे में। न० ४०६७ · ६९८२ · ६९८५ · ६९९६।

दूतगण से बात चीत नहीं कर सकते। वास्तव में जब वे उस ओर देखते भालते हैं तब वे दूतगण को नहीं देखते और उन का स्वर्ग केवल किसी धुन्धली सी वस्तु के समान दिखाई देता है। तिस पर भी उत्तमतर दूतगण अधमतर स्वर्ग के रहने वालों को देख सकते हैं परंतु वे उन के साथ बात चीत करने नहीं पाते अगर करें तो साथ ही इस के अपना ज्ञान खो बैठते हैं जैसा कि ऊपर कहा गया है।

२१०। भीतरी स्वर्ग के दूतगण के न तो ध्यान और प्रेम को न बात चीत को मझले स्वर्ग में किसी को मालूम करना सम्भव है क्योंकि वे उस स्वर्ग के दूतगण की ज्ञानशक्ति से बहुत ही बढ़कर हैं। परंतु जब प्रभु उस को स्वीकार करता है तब उन दूतगण की ओर से जो अधमतर स्वर्गों में हैं कुछ आग सी वस्तु दिखाई देती है। और अन्तिम स्वर्ग में मझले दूतगण के ध्यान प्रेम और बात चीत कुछ स्वच्छ रूप से दृष्टि आती है। और कभी कभी वह सफेद और चित्रविचित्र बादल के सदृश दीखता है जिस के चढ़ाव और उतार और रूप से उन की बात चीत का प्रसङ्ग कुछ कुछ मालूम होता है।

२११। इन बातों से यह मालूम हो सकता है कि स्वर्ग का रूप ऐसा है कि भीतरी स्वर्ग सब से व्युत्पन्न है मझला स्वर्ग भी व्युत्पन्न है पर कम दरजे पर और अन्तिम स्वर्ग का दरजा और भी नीचे है। और एक स्वर्ग का रूप दूसरे स्वर्ग से प्रभु के अन्तःप्रवाह के द्वारा बना रहता है। परंतु अन्तःप्रवाह के संसर्ग का स्वभाव विना उंचाई के अंशों के स्वभाव के कुछ ज्ञान के तथा विना इन अंशों की तथा देशान्तर और अक्षांश के अंशों की भिन्नता जानने के समझ में नहीं आ सकता। इन दो प्रकार के अंशों के स्वभाव का बयान न० ३८ वें परिच्छेद में हो चुका है।

२१२। स्वर्ग का रूप और उस के हिलने और बहने की रीति दूतगण की भी समझ में नियत रूप से नहीं आ सकती। परंतु मानुषक शरीर की सब वस्तुओं के रूप से उस का तब कुछ बोध हो सकता है जब कोई स्याना और ज्ञानी लोग उन वस्तुओं को विचारकर परीक्षा करें। क्योंकि न० ५९ वें से ७२ वें तक के परिच्छेदों में हम लिख चुके हैं कि सर्वव्यापी स्वर्ग एक मनुष्य के समान है और ८७ वें से १०२ तक कि मनुष्य में की सब वस्तुएं स्वर्गों से प्रतिरूपता रखती हैं। मस्तिष्कतन्तुओं की परीक्षा करने से जो अपनी संहतियों के द्वारा शरीर के सब भागों को बनाते हैं प्रायः किसी को मालूम होगा कि स्वर्ग का रूप कैसा अबोधनीय और अनिरीक्षणीय है। क्योंकि उन तन्तुओं का स्वभाव और मस्तिष्क में उन के हिलने की और बहने की रीति आंख की दृष्टि में नहीं आ सकती। इस वास्ते कि वहां असंख्य तन्तु आपस में एक दूसरे पर ऐसे तौर से लिपटे हुए हैं कि वे समादय में एक पिच्चपिच्चे समानजातीय पदार्थ के समान दिखाई देते हैं तो भी मन और बुद्धि के सारे बोध इन असंख्य उलझे हुए तन्तुओं से होकर प्रत्यक्ष से काम काज में बहते हैं। फिर वह रीति कि जिस से वे तन्तु शरीर में बोड़ियाए हुए हैं समझ में आ सकती है उन भिन्न भिन्न समूहों के द्वारा जो प्लेक्सस

अर्थात पिण्ड कहाते हैं जैसा कि कार्डियक प्लेक्सस अर्थात हृदय का पिण्ड और मिसेण्टरिक प्लेक्सस अर्थात अन्तरियों का पिण्ड इत्यादि और उन तन्तु के गाण्ठों के द्वारा कि जिस में बहुत से तन्तु शरीर के हर भाग से निकल कर अन्दर को जाते हैं और वहां आपस में बोंड़ियाके नई संहतियें बनकर अपने काम काज करने के लिये फिर आगे को पसर जाते हैं। यह सब माजरा फिर फिर होता जाता है और ऐसे ऐसे माजरों के बारे में जो प्रत्येक अन्तरी अंग इन्द्रिय और पट्ठे में होते हैं यहां कुछ लिखना आवश्यकता का काम नहीं है। जो कोई इन वस्तुओं की ओर इन में की सब बातों की परीक्षा ज्ञान की आंख से करे तो वह अवश्य करके अचरज से भर पूर हो जावेगा। तिस पर भी आंख इन की थोड़ी सी बातों को देखती है और ये उन वस्तुओं से कम अचरज के स्वभाव की भी हैं जो देखने में नहीं आतीं क्योंकि वे प्रकृति के भीतरी भागों में हैं। यह रूप स्वर्ग के रूप से प्रतिरूपता रखता है। यह बात स्पष्ट रूप से मालूम होती है क्योंकि ज्ञानशक्ति और मन की सब वस्तुओं के बोध उस रूप में हैं और उस के अनुसार काम काज करते हैं। इस वास्ते कि जो कुछ कोई मनुष्य चाहता है वह आप से आप उसी रूप पर काम काज में उतरता है और जो कुछ कोई मनुष्य ध्यान करता है उन तन्तुओं में आदि से लेकर पर्यन्त तक व्यापता है। इस से इन्द्रियज्ञान उपजता है और जब कि यह रूप ध्यान और मन का रूप है तो इस लिये वह बुद्धि और ज्ञान का रूप है और स्वर्ग के रूप से प्रतिरूपता रखता है। कदाचित इस से यह मालूम हो कि दूतगण का हर एक प्रेम और हर एक ध्यान अपने को उस रूप के अनुसार पसारता है और यह भी मालूम हो कि जितना वे उस में हैं उतना ही वे बुद्धिमान और ज्ञानी हैं। न० ७८वें से ८६वें तक के परिच्छेदों में यह मालूम होता है कि स्वर्ग का रूप प्रभु के ईश्वरीय मनुष्यत्व से होता है। हम ये बातें इस कारण से लिखते हैं कि हर कोई यह मालूम करे कि स्वर्ग का रूप उस के साधारण तत्त्वों के विषय भी संपूर्ण रूप से समझ में कभी नहीं आ सकता। और इस से दूतगण को भी वह अबोधनीय है जैसा कि ऊपर बयान हो चुका है।

स्वर्ग में के राज्यों के बखान में।

२१३। जब कि स्वर्ग में भिन्न भिन्न सभाएं हैं और बड़ी सभाओं में लाखों दूत रहते हैं (न० ५०) और जब कि हर एक सभा के मेम्बर एक ही भलाई में हैं परंतु एक ही ज्ञान में नहीं हैं (न० ४७) तो अवश्य है कि स्वर्ग में राज्य भी हैं। क्योंकि चाहिये कि परिपाटी हो और परिपाटी के सब नियम अभंग रखना अवश्य है। स्वर्ग में के राज्य भिन्न भिन्न हैं। एक प्रकार का राज्य वे सभाएं हैं जिन का प्रभु का ईश्वरीय राज बना है और दूसरा प्रकार का राज्य वे सभाएं हैं जिन का प्रभु का आत्मीय राज बना है। और उन राज्यों में मन्त्री समाज का प्रभेद

भी है। परंतु स्वर्ग में केवल एक ही राज्य है जो परस्पर प्रेम का राज्य कहलाता है। और परस्पर प्रेम का राज्य स्वर्गीय राज्य है।

२१४। प्रभु के स्वर्गीय राज का राज्य धर्म कहलाता है क्योंकि उस राज के सब निवासी उस प्रेम की भलाई में हैं जो प्रभु से आकर प्रभु ही की ओर फिर जाती है। और जो कुछ प्रेम की भलाई से किया जाता है सो धार्मिक कहाता है। स्वर्गीय राज में राज्य प्रभु ही से चलता है क्योंकि प्रभु वहांवालों को ले चलता है और उन को जीवन के बारे में शिक्षा देता है। और वे सचाइयें जो अनुशासन की सचाइयें कहलाती हैं उन के हृदयों में लिखी हुई हैं। हर कोई उन को जानता और मालूम करता है और उन को देखता भी है[५६]। और इस लिये अनुशासन की बातों पर कोई वादानुवाद कभी नहीं करता। परंतु धर्म की बातों में जीवन के विषय विवाद करना हो सकता है। इन के बारे में वे जिन को थोड़ी बुद्धि है बुद्धिमानों से उपदेश मांगते हैं और वे प्रभु से भी सुवाल पूछते हैं और जवाब पाते हैं। क्योंकि उन का स्वर्ग अर्थात भीतरी आनन्द यह है कि वे प्रभु के धर्म पर चलें।

२१५। प्रभु के आत्मीय राज का राज्य न्याय कहाता है क्योंकि उस राज के निवासी आत्मीय भलाई में हैं अर्थात पड़ोसी से अनुग्रह करने की भलाई में हैं। और वह भलाई सारांश से लेकर सचाई है[५७]। क्योंकि सचाई न्याय से निकलती है और भलाई धर्म से[५८]। आत्मीय दूतगण को भी प्रभु ले चलता है परंतु बिचवाइयों के द्वारा (न० २०८)। इस से उन के लिये राज्याधिकारी नियुक्त किये जाते हैं। और ये राज्याधिकारी उस सभा के प्रयोजन के अनुसार जिस में वे रहते हैं थोड़े या बहुत हैं। उन के लिये नियम भी प्रचलित हैं जिन के अनुकूल वे आपस में हिले मिले रहते हैं। और उन के राज्याधिकारी नियमों के अनुसार सब बातों का शासन करते हैं। और ये नियमों को समझते हैं क्योंकि वे ज्ञानी हैं। जब उन को कुछ शङ्का हो तब वे प्रभु से प्रकाश पाते हैं।

---

५६ स्वर्गीय दूतगण सचाइयों से उस तौर पर ध्यान नहीं करते और नहीं बोलते जिस तौर आत्मीय दूतगण ध्यान करते हैं और बोलते हैं। क्योंकि वे उन वस्तुओं के विलोकन में हैं जो प्रभु की सचाइयों से संबन्ध रखती हैं। न० २०२ · ५९७ · ६०७ · ७८४ · ११२१ · १३८७ · १३९८ · १४४२ · १९१९ · ७६८० · ७८७७ · ८७८० · ९२७७ · १०३३६। और इस लिये वे सचाइयों के विषय केवल हां कि हां या नहीं कि नहीं बोलते हैं। परंतु आत्मीय दूतगण उन पर विवाद करते हैं कि क्या यह ऐसा ही है कि नहीं। न० २७१५ · ३२४६ · ४४४८ · ९१६६ · १०७८६। इन परिच्छेदों में प्रभु के इस वचन का बयान है कि "तुम्हारी बात चीत में हां कि हां और नहीं कि नहीं हो क्योंकि जो इस से अधिक है सो बुराई से होता है"। (मत्ती पर्व ५ वचन ३७)।

५७ वे जो प्रभु के आत्मीय राज में रहते हैं सचाइयों में हैं और वे जो स्वर्गीय राज में हैं भलाई में हैं। न० ८६३ · ८७५ · ९२७ · १०२३ · १०४३ · १०४४ · १५५५ · २७५६ · ४३२८ · ४४९३ · ५११३ · ९५९६। आत्मीय राज की भलाई पड़ोसी की ओर अनुग्रह करने की भलाई है और वही भलाई तो अपने सारांश से लेकर सचाई है। न० ८०४२ · १०२९६।

५८ धर्मपुस्तक में भलाई के विषय धर्म की बात काम में आती है और सचाई के विषय न्याय की बात। इस से धर्म और न्याय करने से तात्पर्य भलाई और सचाई है। न० २२३५ · ९८५७। बड़े न्यायों से तात्पर्य ईश्वरीय परिपाटी के नियम हैं अर्थात ईश्वरीय सचाइयें हैं। न० ७२०६।

२१६। जब कि भलाई का राज्य जो उस राज्य के सदृश है जो प्रभु के स्वर्गीय राज में प्रबल है धर्म कहलाता है और सचाई का राज्य जो उस राज्य के समान है जो प्रभु के आत्मीय राज में प्रधान है न्याय कहलाता है तो इस लिये धर्मपुस्तक में जब स्वर्ग और कलीसिया के विषय कुछ सूचन होता है तब धर्म और न्याय की बातें काम में आती हैं। धर्म से तात्पर्य स्वर्गीय भलाई है और न्याय से तात्पर्य आत्मीय भलाई है जो अपने सारांश से लेकर सचाई ही सचाई है जैसा कि ऊपर बयान हो चुका है। और जैसा कि इन वचनों में भी देखा जा सकता है कि "उस के राज और संधि की उन्नति का कुछ अन्त न होगा वह दाऊद की गद्दी पर और उस के राज पर आज से लेकर अनन्तकाल तक बन्दोबस्त करेगा और न्याय और धर्म से उस का स्थापन करेगा"। (ईसाइयाह पर्व ९ वचन ७)। यहां दाऊद से तात्पर्य प्रभु है[५९] और उस से राज से तात्पर्य स्वर्ग है। जैसा कि इस वचन से स्पष्ट मालूम होता है कि "मैं दाऊद के लिये धर्म की एक डाली निकालूंगा और एक राजा राज करेगा और वह श्रीमान होगा और न्याय और धर्म पृथिवी पर करेगा"। (यर्मीयाह पर्व २३ वचन ५)। "प्रभु ऊंचा है क्योंकि वह उंचाई पर रहता है वह न्याय और धर्म से सैहून को भरपूर कर देता है"। (ईसाइयाह पर्व ३३ वचन ५)। सैहून से भी तात्पर्य स्वर्ग और कलीसिया है[६०]। "मैं प्रभु हूं जो पृथिवी में प्रेम और न्याय और धर्म से राज करता हूं कि मेरा आनन्द इन्हीं वस्तुओं में है"। (यर्मीयाह पर्व ९ वचन २४)। "मैं तुझे अनन्त मंगेतर करूंगा हां तुझे धर्म और न्याय से अपनी मंगेतर करूंगा"। (होसीआ पर्व २ वचन १९)। "हे प्रभु स्वर्गों में तेरा धर्म बड़े पहाड़ों के सदृश है तेरे न्याय भी एक बड़ा गहिराऊ हैं"। (ज़बूर पर्व ३६ वचन ५·६)। "वे मुझ से धर्म के न्याय की प्रार्थना करते हैं वे प्रभु की निकटता चाहते हैं"। (ईसाइयाह पर्व ५८ वचन २)।

२१७। प्रभु के आत्मीय राज में भिन्न भिन्न प्रकार के राज्य हैं जो भिन्न भिन्न सभाओं में भिन्न भिन्न प्रकार के हैं। और उन की भिन्नता उन मन्त्रीसमाजों के अनुसार है कि जिन के कामों में वे सभाएं प्रवृत्त होती हैं। और उन के मन्त्रीसमाज मनुष्य के उन वस्तुओं के काम काज के अनुसार हैं कि जिन से वे प्रतिरूपता रखते हैं। बहुत लोग भली भांति जानते हैं कि वे काम भिन्न भिन्न हैं क्योंकि हृदय का एक प्रकार का काम है फेफड़े का दूसरे प्रकार का काम कलेजे का और प्रकार का काम लबलबे और पिलई का और प्रकार का काम और प्रत्येक इन्द्रिय का अन्य अन्य प्रकार का काम है। और जैसा कि शरीर के इन अंगों का काम काज भिन्न भिन्न है वैसा ही प्रधान पुरुष की (अर्थात स्वर्ग की) सभाओं का काम भी भिन्न भिन्न है। क्योंकि वहां सभाएं होती हैं जो उन इन्द्रियों से प्रति-

५९ धर्मपुस्तक के भावीदर्शक भागों में दाऊद से तात्पर्य प्रभु है। न० १८८८·९६५४।

६० धर्मपुस्तक में सैहून से तात्पर्य कलीसिया है और विशेष करके स्वर्गीय कलीसिया है। न० २३६२·९०५५।

रूपता रखती हैं। और जैसा कि हम न० ८७ वें से १०१ तक के परिच्छेदों में बयान कर चुके हैं स्वर्ग की सब वस्तुएं मनुष्य की सब वस्तुओं से प्रतिरूपता रखती है। सब प्रकार के स्वर्गीय राज्य इस बात में मिलते हैं कि वे सर्वसाधारण लोग की भलाई को अपना परमार्थ मानते हैं और यह भी मानते हैं कि उस भलाई में हर एक व्यक्ति की भलाई है[६१]। और यह हाल इस वास्ते है कि सर्वव्यापी स्वर्ग में प्रभु सभों का पथदर्शक है। वह सब को प्यार करता है और ईश्वरीय प्रेम से यह ठहराता है कि सर्वसाधारण लोगों की भलाई हर एक व्यक्ति की भलाई का मूल भी होवे और हर कोई उतनी ही भलाई को ग्रहण करे जितना वह सर्वसाधारण लोगों की भलाई को प्यार करता है। क्योंकि जहां तक कोई प्रजा को प्यार करता है वहां तक वह प्रजा के पृथक पृथक मनुष्य को भी प्यार करता है। और जब कि वह प्रेम प्रभु की ओर से है तो वह मनुष्य प्रभु से उस अंश तक प्यार किया जाता है। और वह भलाई का एक पात्र भी हो जाता है।

२१८। इन बातों से यह मालूम हुआ है कि स्वर्ग में राज्याधिकारी लोग प्रेम और ज्ञान के कारण औरों से अधिक श्रीमान हैं और वे प्रेम के हेतु हर एक के हितैषी हैं और ज्ञान से जान लेते हैं कि क्योंकर सभों की भलाई करनी चाहिये। वे जो ऐसे स्वभाव के हैं अत्याचार से और अहङ्कार से शासन नहीं करते बरन वे सभों का उपचार और सेवा करते हैं। क्योंकि भलाई के प्रेम के हेतु औरों की भलाई करनी तो सेवा करनी है। और ऐसा बन्दोबस्त करना कि जिस से वही भलाई हो सके वह उपचार करना है। ऐसे लोग अपने आप को दूसरों से बड़ा नहीं जानते पर छोटा जानते हैं। क्योंकि वे सभा की भलाई और पड़ोसी की भलाई पहिले स्थान तक बढ़ाते हैं और अपनी भलाई को अन्तिम स्थान पर रख छोड़ते हैं। और जो पहिले स्थान पर है वह बड़ा होता है और जो अन्तिम स्थान पर है वह छोटा होता है। तिस पर भी वे कीर्त्ति और यश प्राप्त करते हैं क्योंकि वे औरों की अपेक्षा सभा में ऊंचे स्थान पर बैठते हैं और उज्ज्वल राजगृह में रहते हैं। परंतु वे यश और कीर्त्ति को न अपने लिये अङ्गीकार करते हैं पर वशता के लिये। क्योंकि स्वर्ग में सब कोई जानते हैं कि वे प्रभु से कीर्त्ति और यश पाते हैं और इस वास्ते उन की आज्ञा माननी चाहिये। यही तात्पर्य इन वचनों का है

---

६१ हर एक मनुष्य और हर एक सभा तथा किसी मनुष्य का देश और धर्मपंथी तथा सर्वसंबन्धी तात्पर्य के अनुकूल प्रभु का राज भी सब के सब हमारे पड़ोसी हैं। और भलाई के प्रेम के लिये उन की भलाई करनी उन की अवस्था के गुण के अनुसार पड़ोसी से प्रेम रखना है। इस लिये उन की भलाई (जो सर्वसाधारण लोग की भलाई भी है और जिस का अभ्यास करना चाहिये) सचमुच पड़ोसी है। न० ६८१८ से ६८२४ तक · ८१२३। नीतिसंबन्धी भलाई भी (जो धर्म के पथ पर चलना है) हमारा पड़ोसी है। न० २६१५ · ४७३० · ८१२० · ८१२३। और इस से पड़ोसी पर अनुग्रह करना मनुष्य के जीवन की सब बातों तक पहुंचता है। और भलाई से प्रेम रखना तथा भलाई और सचाई के प्रेम के निमित्त भलाई करना तथा प्रत्येक स्थान में और प्रत्येक काम में न्याय करने के प्रेम ही के हेतु न्याय करना यह भी पड़ोसी पर अनुग्रह करना है। न० २४१७ · ८१२१ · ८१२४।

जो प्रभु ने अपने चेलों से कहा कि "जो तुम में सर्दार बना चाहे वह तुम्हारा नौकर हो। जैसा कि मनुष्य का पुत्र भी इस लिये नहीं आया कि सेवा ले पर सेवा करे"। (मत्ती पर्व २० वचन २७·२८)। "जो तुम में बड़ा है छोटे के और स्वामी नौकरीकरनेवाले के समान हो"। (लूका पर्व २२ वचन २६)।

२१९। वैसा ही बन्दोबस्त घर घर में है क्योंकि हर एक घर में स्वामी भी है और नौकर भी हैं। स्वामी नौकरों को प्यार करते हैं और नौकर स्वामी को। इस लिये कि एक दूसरे की सेवा प्रेम से करता है। जब नौकर आज्ञाधीन होकर स्वामी की सेवा पूरा करते हैं तब स्वामी नौकरों को यह सिखलाता है कि किस रीति की चाल पर चलना चाहिये। और क्या क्या काम करना चाहिये सो भी वह उन को बतलाता है। उपयोगी काम करना हर किसी के जीवन का आनन्द है। और इस से स्पष्ट है कि प्रभु का राज प्रयोजनों का राज है।

२२०। नरक में भी राज्य हैं क्योंकि राज्य के विना नरकनिवासियों पर किसी का बस नहीं चल सकता। परंतु नरक के राज्य स्वर्ग के राज्यों से विपरीत हैं। नरक का राज्य आत्मप्रेम से पैदा होता है क्योंकि नरक में हर एक व्यक्ति दूसरों पर राज करना चाहता है और अपने आप को उत्तमतम कहलाना चाहता है। जो उन के हितैषी नहीं हों उन से वे घिण करते हैं और हिंसाशीलता से और क्रूरता से उन का पीछा करते हैं। और यह सब माजरा आत्मप्रेम के स्वभाव ही से निकलता है। इस लिये जो सब से दुष्ट हों वे राज्याधिकारी बनकर नियुक्त होते हैं। और भय ही से उन की आज्ञा मानी जाती है[६२]। जब हम नरक के विषय में लिखेंगे तब हम इस बात का अधिक बयान करेंगे।

स्वर्ग में की ईश्वरीय पूजा के बयान में।

२२१। स्वर्गों में ईश्वरीय पूजा बाहर से पृथिवी पर की पूजा के समान है परंतु भीतर से वह भिन्न है। स्वर्गों में पृथिवी के सदृश धर्मसंबन्धी मत और पन्द सुनाना और मन्दिर हैं। सारे मत अपने सारांशों के विषय एक सां हैं। परंतु अधमतर स्वर्गों की अपेक्षा उत्तमतर स्वर्गों के मतों में अधिक भीतरी ज्ञान है। पन्द सुनाना मतों के अनुकूल है। और जब कि दूतों के पास घर और राजगृह हैं (न० १८३ से १९० तक देखो) तो उन के पास मन्दिर भी हैं जिन में

---

६२ दो प्रकार के राज्य हैं एक तो पड़ोसी को प्यार करने से है दूसरा अपने आप को प्यार करने से। न १०८१४। सब अच्छी आनन्दमय वस्तुएं पड़ोसीसंबन्धी राज्य के प्रेम से निकलती हैं। न० १०१६० · १०६१४। और इस से स्वर्ग में कोई अपने को प्यार करने से राज नहीं कर सकता परंतु सब के सब उपचार करना चाहते हैं। क्योंकि उपचार करना और पड़ोसीसंबन्धी प्रेम से राज करना एकसां हैं और इस कारण दूतगण को महाशक्ति है। न० ५८३२। सब बुराई उस राज्य से पैदा होती है जो स्वार्थ पर स्थापित है। न० १००३८। जब आत्मप्रेम और जगतप्रेम प्रबल होने लगा तब मनुष्यों को अपनी रक्षा करने के लिये चाहिये था कि भिन्न भिन्न राज्यों के अधीन रहें। न० ७३६४ · १०१६० · १०८१४।

धर्मसंबन्धी पन्द सुनाए जाते हैं। पस स्वर्ग में ऐसी ऐसी ही वस्तुएं हैं क्योंकि दूतगण ज्ञान और प्रेम के विषय नित्य प्रवीण होते जाते हैं। इस वास्ते कि उन को मनुष्य के सदृश ज्ञानशक्ति है तो वे प्रवीणता की ओर नित्य बढ़ने के योग्य हैं। ज्ञानशक्ति उन सचाइयों के सहाय व्युत्पन्न होती जाती है जो बुद्धि से निकलती हैं। और संकल्पशक्ति उन भलाइयों के सहाय जो प्रेम से पैदा होती हैं प्रवीण हो जाती है[६३]।

२२२। परंतु स्वर्गों में सच्ची ईश्वरीय पूजा गिर्जा घरों में जाने और पन्दों को सुनने पर अवलम्बित नहीं है। परंतु वह प्रेम अनुग्रह और श्रद्धा से विधिपूर्वक चलने पर अवलम्बित है। और गिर्जा घर में पन्द सुनना केवल अच्छी चाल पर चलने के बारे में शिक्षा पाने का एक उपाय है। मैं ने इस बात के विषय दूतगण के साथ बात चीत की और उन से यह कहा कि "जगत में यह मत प्रचलित है कि गिर्जा घर को जाना और पन्द सुनना और बरस भर में तीन चार बार पवित्र बियारी खाना और कलीसिया की अन्य अन्य विधियों का आचरण करना (और इन आचरणों के साथ यह भी संयुक्त होना चाहिये कि नियुक्त समय पर जपना और मन लगाके ईश्वरप्रार्थना करना) केवल यह सब ईश्वर की पूजा करना है"। दूतगण ने यह उत्तर दिया कि "ये सब बाहरी आचरण हैं जिन का व्यवहार करना चाहिये परंतु यदि उन का मूल कोई भीतरी तत्त्व न हो तो उन से कुछ भी काम नहीं निकलेगा। और यह भीतरी तत्त्व धर्मनिष्ठ के अनुसार चाल चलना है"।

२२३। कभी कभी मैं दूतगण के मन्दिरों में जाने और वहां पन्द सुनने पाया इस वास्ते कि मैं उन संगतों की रीति को समझूं। पूर्व की ओर धर्मोपदेशक एक पुरोहितासन पर खड़ा होता है और उस के संमुख वे बैठते हैं जो औरों से ज्ञान की अधिक ज्योति में हैं। दाहिने और बायें हाथ पर वे बैठते हैं जो कम ज्योति में हैं। वे चक्र बनकर बैठते हैं इसी हेतु कि धर्मोपदेशक उन सभों को देख सके और कोई दूत भी उस की इस ओर उस ओर ऐसी जगह पर नहीं बैठता जहां वह धर्मोपदेशक की दृष्टि से बाहर हो। नये चेले मन्दिर की पूर्व ओर पुरोहितासन के बायें हाथ पर दरवाज़े के निकट खड़े होते हैं। परंतु कोई दूत पुरोहितासन के पीछे खड़े होने नहीं पाता किस कारण कि यदि वह वहां खड़ा हो तो अवश्य करके धर्मोपदेशक घबराने लगे। और यदि संगत में कोई दूत उस की बात पर असम्मति करे तो तब भी वह घबरा जाता है इस लिये अवश्य है कि असम्मत दूत उस की ओर से अपना मुंह फिरावे। पन्दों में इतना ज्ञान है कि इस जगत में उन

---

६३ ज्ञानशक्ति सचाई का और भलाई के संकल्प का पात्र है। न० ३६२३ · ६१२५ · ७५०३ · ९३०० · ९९३०। और जब कि सब वस्तुएं सचाई और भलाई से संबन्ध रखतीं हैं तो मनुष्य के जीवन की समष्टि ज्ञान और संकल्प से संबन्ध रखती है। न० ८०३ · १०१२२। दूतगण अनन्तकाल पर्यन्त व्युत्पन्नता की ओर नित्य बढ़ते जाते हैं। न० ४८०३ · ६६४८।

के समान कोई पन्द नहीं हो सकता क्योंकि स्वर्ग में धर्मोपदेशक भीतरी ज्योति में हैं। गिर्जा घर आत्मीय राज में पत्थर के से दिखाई देते हैं और स्वर्गीय राज में लकड़ी के से। क्योंकि पत्थर सचाई से प्रतिरूपता रखता है और वे जो आत्मीय राज में हैं सचाई के तत्त्वों पर चलते हैं। परंतु लकड़ी भलाई से प्रतिरूपता रखती है और वे जो स्वर्गीय राज में हैं भलाई के तत्त्वों पर चलते हैं[६४]। स्वर्गीय राज में पूजा के धाम मन्दिर नहीं कहलाते पर ईश्वर के घर। और वे शोभायमान नहीं हैं। परंतु आत्मीय राज में वे थोड़े बहुत शोभायमान हैं।

२२४। मैं ने उन धर्मोपदेशकों में से किसी से इस बारे में पूछा कि उन के गिर्जा घरों में वे दूत जो उन पन्दों को सुनते हैं कौन सी पवित्र अवस्था में हैं। उस ने जवाब दिया कि "हर कोई अपने भीतरी भागों के अनुसार जो प्रेम और श्रद्धा के हैं धर्मशील और भक्तिमान और पवित्र अवस्था में हैं। क्योंकि प्रेम और श्रद्धा उस पवित्रता के सारांश हैं जो प्रभु की ओर से दूतगण के भीतर हैं"। और उस ने यह भी कहा कि "किसी बाहरी पवित्रता का विना प्रेम और श्रद्धा के मुझ को कुछ बोध नहीं है"। फिर उस ने यह कहा कि "जब मैं प्रेम और श्रद्धा को अलग करके बाहरी पवित्रता पर ध्यान करता हूं तब मेरे मन में यह बात आती है कि कदाचित वह कोई वस्तु हो जो या तो चतुराई से या कपट से पवित्रता के बाहरी रूप को धारण करता है। और कदाचित कोई कृत्रिम आग जिस को आत्मप्रेम या जगतप्रेम आप फूंक जलाता है वैही पवित्रता को पैदा करके रूप देवे"।

२२५। सब धर्मोपदेशक प्रभु के आत्मीय राज के हैं। उन में से कोई भी स्वर्गीय राज का नहीं है। क्योंकि आत्मीय राज के निवासी भलाई से निकलने-वाली सचाइयों में हैं और सब धर्मोपदेश सचाइयों की ओर से है। धर्मोपदेशकों में से कोई भी स्वर्गीय राज का नहीं है क्योंकि उस राज के निवासी प्रेम की भलाई में हैं और उस भलाई से वे सचाइयों को देखते हैं और मालूम करते हैं परंतु उन के विषय में वे कुछ नहीं बोलते। यद्यपि दूतगण जो स्वर्गीय राज में हैं सचाइयों को मालूम कर लेते हैं और देखते हैं तो भी उन में पन्द सुनाना होता है। इस कारण कि वे उस के द्वारा उन सचाइयों के विषय में जो वे पहिले से जानते थे प्रकाश पाते हैं और बहुतेरी सचाइयों से जो पहिले वे नहीं जानते थे अधिक व्युत्पन्नता उपार्जन करते हैं। ज्यों ही वे उन को सुनते हैं त्यों ही वे उन को स्वीकार करते हैं और उन के गुण को मालूम करते हैं। परंतु जिन सचाइयों को कि वे मालूम करते हैं वे प्यार भी करते हैं और उन के अनुसार चलने से वे

---

६४ पत्थर से तात्पर्य सचाई है। न० ११४ · ६४३ · १२९८ · ३७२० · ६४२६ · ८६०९ · १०३७६। और लकड़ी से तात्पर्य भलाई। न० ६४३ · ३७२० · ८३५४। और इस कारण सब से प्राचीन लोग जो स्वर्गीय भलाई में थे उन के पूजनीय मन्दिरों को लकड़ी के बनाते थे। न० ३७२०।

उन सचाइयों को अपने जीव से मिलाते हैं। क्योंकि वे कहते हैं कि "सचाइयों के अनुसार चलना प्रभु से प्रेम रखना है"[६५]।

२२६। सब धर्मोपदेशक प्रभु से नियुक्त किये जाते हैं और वे अपनी ईश्वरीय नियुक्ति से पन्द सुनाने की शक्ति पाते हैं। परंतु स्वर्ग के मन्दिरों में उन के सिवाए और कोई व्यक्ति शिक्षा देने नहीं पाता। वे धर्मोपदेशक कहलाते हैं न कि पुरोहित। क्योंकि स्वर्गीय राज आप स्वर्ग का पुरोहितवर्ग है। क्योंकि पुरोहितवर्ग से तात्पर्य प्रभु की ओर प्रेम की भलाई है। और उस राज में सब के सब उस तत्त्व पर चलते हैं। स्वर्ग का राजत्व आत्मीय राज है क्योंकि राजत्व से तात्पर्य भलाई से निकलनेवाली सचाई है। और उस राज में सब के सब उस तत्त्व पर चलते हैं। (न० २४ देखो)[६६]।

२२७। सारे सिद्धान्त जो दूतविषयक उपदेश में एकट्ठे होते हैं जीव को अपना परमार्थ मानते हैं और उन में से कोई भी श्रद्धा को विना जीव के परमार्थ नहीं मानते। सब से भीतरी स्वर्ग का तत्त्व मझले स्वर्ग के तत्त्व से अधिक ज्ञानमय है। और मझले स्वर्ग का तत्त्व अन्तिम स्वर्ग के तत्त्व से अधिक बुद्धिमय है। क्योंकि तत्त्व हर एक स्वर्ग के अपने अपने दूतों की ज्ञानशक्ति के अनुसार उपयुक्त किये हुए हैं। सब ईश्वरीय तत्त्वों का सारांश यह है कि सब कोई प्रभु के ईश्वरीय मनुष्यत्व को स्वीकार करें।

स्वर्ग के दूत की शक्ति के बारे में।

२२८। वे जो आत्मीय जगत के और प्राकृतिक जगत में उस के अन्तःप्रवाह होने के विषय कुछ नहीं जानते यह बोध नहीं कर सकते कि दूतगण शक्ति रखते हैं। क्योंकि वे यह ध्यान करते हैं कि दूतगण शक्ति नहीं रख सकते इस वास्ते कि दूतगण आत्मीय भूत हैं जो ऐसे शुद्ध और सूक्ष्म हैं कि वे आंखों से देखे भी नहीं जा सकते। परंतु वे जो भीतरी तौर पर वस्तुओं के हेतु को देखते हैं अन्य प्रकार से ध्यान करते हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि मनुष्य की सारी शक्ति उस की ज्ञानशक्ति से और संकल्पशक्ति से निकलती है इस कारण उन गुणों के विना वह अपने शरीर के एक अंग को भी नहीं हिला सकता। मनुष्य की ज्ञानशक्ति और संकल्पशक्ति उस का आत्मीय पुरुष है। और यह आत्मीय पुरुष उस

---

६५ प्रभु से और पड़ोसी से प्रेम रखना प्रभु की आज्ञा के अनुसार चलना है। न० १०१४३ · १०१५३ · १०३१० · १०५७८ · १० :४५ · १०६४८।

६६ पुरोहितगण प्रभु के ईश्वरीय भलाई के विषय प्रतिरूप हैं और राजागण ईश्वरीय सचाई के विषय। न० २०१५ · ६१४८। और इस से धर्मपुस्तक में पुरोहित से तात्पर्य वे हैं जो प्रेम की भलाई में प्रभु की ओर हैं और पुरोहितवर्ग से तात्पर्य वही भलाई है। न० ६८०६ · ६८०६। परंतु धर्मपुस्तक में राजा से तात्पर्य वे हैं जो ईश्वरीय सचाई में हैं और राजत्व से तात्पर्य भलाई से निकलनेवाली सचाई। न० १६७२ · २०१५ · २०६९ · ४५७५ · ४५८१ · ४९६६ · ५०४४।

के शरीर पर और उस के अंगों पर आप से आप मनमाने प्रकार से प्रभाव करता है। क्योंकि जो कुछ कोई मनुष्य ध्यान करता है और जिस की इच्छा उस में होती है जितना वह दृढ़मति हो उतनी ही शक्ति से उस का मुंह और जीभ बोलती है और शरीर उसे पूरा करता है। मनुष्य की संकल्पशक्ति और ज्ञानशक्ति प्रभु से दूतगण और आत्मागण के द्वारा अनुशासन की जाती है और इस कारण प्रभु शरीर की सब वस्तुओं का अनुशासन करता है क्योंकि वे संकल्पशक्ति और ज्ञानशक्ति से उत्पन्न होते हैं। इस लिये यद्यपि यह अविश्वास्य मालूम हो तो भी मनुष्य स्वर्ग के अन्तःप्रवाह के विना एक फलास तक भी आगे नहीं चल सकता। और बहुत परीक्षा करने के पीछे मुझे मालूम हुआ कि यह हाल ऐसा ही है। क्योंकि दूतगण अन्तःप्रवाह के द्वारा मेरे मन और ध्यान में होकर मेरे पांव गति जीभ और बोल चाल को मनमाने प्रकार से हिलाने पाए और इस से मुझ को इस बात का निश्चय हुआ कि मैं आप से आप कुछ नहीं कर सकता। इस के पीछे उन्हों ने यह कहा कि "हर एक मनुष्य इस रीति में शासन किया जाता है और वह यह जान सकता है कि कलीसिया के तत्त्वों और धर्मपुस्तक से भी इस बात का प्रमाण है। क्योंकि वह परमेश्वर से यह प्रार्थना करता है कि तू अपने दूतगण को भेज इस लिये कि वे मेरा पथदर्शन करें और मेरा अनुशासन करें और मुझ को शिक्षा दें और जो ध्यान और बात मुझ को करना चाहिये सो बतलावें इत्यादि इत्यादि। जब मनुष्य तत्त्व से अलग होकर ध्यान करता है तो वह अन्य तौर पर बोलता और विश्वास करता है। इन बातों का यहां पर इस वास्ते बयान किया गया है कि वह शक्ति कि जिस से दूतगण मनुष्यों पर असर करते हैं उस का स्वभाव बड़ी स्पष्टता से मालूम हो जावे।

२२९। आत्मीय जगत में दूतगण की इतनी शक्ति है कि यदि मैं उन सब दृष्टान्तों और उदाहरणों का जो मैं ने देखा है बयान करूं तो वे विश्वास से बाहर होंगे। यदि वहां कोई वस्तु विरोध करे और दूर की जानी चाहिये क्योंकि वह ईश्वरीय परिपाटी के प्रतिकूल है तो वे केवल अपने मन के प्रताप से और एक ही झलकी से उस को गिराकर उलटा देते हैं। मैं ने पहाड़ों को जहां दुष्ट लोग बसते थे इसी तौर पर गिराए हुए और कभी कभी एक सिरे से दूसरे सिरे तक ऐसे कांपते हुए देखा है कि मानों भूडोल की झोक उन पर लगी हो। मैं ने बड़ी बड़ी चट्टानों को शिख से नेव तक तोड़े हुए और उन दुष्ट लोगों को जो उन पर बसते थे निगले हुए देखा है। मैं ने लाखों बुरे आत्माओं को जो तितर बितर होकर नरक में डाले गये देखा है। क्योंकि दूतगण के आगे परिमाण और बहुतायत दोनों कुछ बात नहीं है और न कोई छल और न कोई कपट और न कोई कटक चल सकता है। उन सभों को देखते ही वे क्षण भर में उन को तितर बितर कर देते हैं। परंतु इस बारे में कुछ और बयान उस पोथी में पढ़ा जा सकता है जिस का यह नाम है कि "प्रलयकाल का विचार और बाबिलोन का विनाश"।

ऐसी ही शक्ति दूतगण आत्मीय जगत में काम में लाते हैं और स्वर्गीय जगत में उन की तब ऐसी ही शक्ति है जब उन को काम में लाने की आज्ञा मिलती है। यह बात धर्मपुस्तक के उन वचनों से स्पष्ट है जहां हम पढ़ते हैं कि उन्हों ने सारी सेनाओं का सर्वनाश किया और ऐसी महामारी डाली कि सत्तर हज़ार मनुष्य मर गये। उन दूतों के विषय कि जिन्हों ने मारी डाली थी यों लिखा हुआ है कि "जब दूत ने अपना हाथ बढ़ाया कि यिरूसलिम को नाश करे तो प्रभु बुराई करने से पछताया और उस दूत को जो लोगों को मारता था कहा यह बस है अब अपना हाथ खींच। और दाऊद ने उस दूत को जो लोगों को मारता था देखा"। (समुएल की दूसरी पोथी में पर्व २४ वचन १५ · १६ · १७)। और वचनों की भी सूचना हो सकता है। जब कि दूतगण ऐसी शक्ति रखते हैं तो वे विभूतियें कहलाते हैं और हज़रत दाऊद ने यह कहा कि "प्रभु की कीर्त्ति गाओ हे उस के दूतो तुम जो बल में उत्कृष्टता रखते हो"। (ज़बूर पर्व १०३ वचन २०)।

२३०। यह संपूर्ण रूप से जानना चाहिये कि दूतगण आप से कुछ शक्ति नहीं रखते पर जो कुछ शक्ति कि वे रखते हैं सब की सब प्रभु की ओर से होती है। और वे केवल यहां तक विभूतियें हैं जहां तक कि वे प्रभु पर अपने अवलम्बन करने को स्वीकार करते हैं। यदि कोई दूत यह गुमान करे कि वह आप से शक्ति रखता है तो वह क्षण मात्र में ऐसा निर्बल हो जाता है कि वह एक भी बुरे आत्मा का विरोध नहीं कर सकता। इस वास्ते दूतगण अपना यश नहीं गाते और वे अपने किये के यश और कीर्त्ति पर घिण करके प्रभु ही की प्रशंसा करते हैं।

२३१। ईश्वरीय सचाई जो प्रभु की ओर से निकलती है स्वर्गों में संपूर्ण शक्ति रखती है। क्योंकि प्रभु स्वर्ग में वह ईश्वरीय सचाई है जो ईश्वरीय भलाई से संयुक्त रहती है। (न० १२६ से १४० तक देखो)। और दूतगण यहां तक विभूतियें हैं जहां तक वे उस ईश्वरीय सचाई को ग्रहण करते हैं[६७]। हर कोई अपनी निज सचाई और अपनी निज भलाई भी है। क्योंकि ज्ञानशक्ति और संकल्पशक्ति का गुण मनुष्य का गुण है। और ज्ञानशक्ति सचाई की है क्योंकि उस की समष्टि सचाइयों से होती है। और संकल्पशक्ति भलाई की है क्योंकि उस की समष्टि भलाइयों से होती है। जो कुछ कोई मनुष्य समझता है उस को वह सचाई कहता है और जो कुछ वह चाहता है उस को वह भलाई कहता है। और इस लिये हर कोई अपनी निज सचाई और अपनी निज भलाई है[६८]। पस इस लिये जहां

---

६७ दूतगण विभूतियें कहलाते हैं और वे प्रभु से ईश्वरीय सचाई को ग्रहण करने के द्वारा विभूतियें होते हैं। न० ६३४६। और इस कारण धर्मपुस्तक में वे देवता भी कहाते हैं। न० ४२६५ · ४४०२ · ८३०१ · ६१६०।

६८ मनुष्य और दूत अपनी अपनी निज भलाई और सचाई होता है और इस कारण अपने अपने निज प्रेम और श्रद्धा। न० १०२६८ · १०३६७। क्योंकि वह अपनी ज्ञानशक्ति और संकल्पशक्ति आप है इस वास्ते कि जीवन की समष्टि उन गुणों से निकलती है। भलाई का जीवन संकल्पशक्ति से होता है और सचाई का जीवन ज्ञानशक्ति से। न० १००७६ · १०१७७ · १०२६४ · १०२८४।

तक कि कोई दूत ईश्वरत्व की सचाई और ईश्वरत्व की भलाई है वहां तक वह एक विभूति है क्योंकि वहां तक प्रभु भी उस का साथी है। और जब कि एक की भलाई और सचाई और दूसरे की भलाई और सचाई ठीक एक सी नहीं होती—क्योंकि स्वर्ग में पृथिवी के सदृश असंख्य भिन्नताएं होती हैं (न० २० देखो)—इस लिये एक दूत की शक्ति दूसरे दूत की शक्ति के बराबर नहीं हो सकती। वे दूत सब से बड़ी शक्ति रखते हैं जो प्रधान पुरुष के बांह में अर्थात स्वर्ग में रहते हैं। क्योंकि वे जो शरीर के उस भाग में रहते हैं औरों की अपेक्षा अधिक सचाई में हैं और सर्वव्यापी स्वर्ग की ओर से उन की सचाइयों में भलाई का अन्तःप्रवाह बहता है। पूरे मनुष्य की शक्ति अपने तईं बांहों में सरकाती है और बांहों के द्वारा सारा शरीर अपना बल करता है। और इस से धर्मपुस्तक में बांह और हाथ से तात्पर्य शक्ति है[६९]। कभी कभी स्वर्ग में ऐसा अति शक्तिमान नंगा बांह पसरे हुए दिखाई देता है कि वह जिस किसी वस्तु पर लगता है उस को तोड़कर टुकड़े टुकड़े कर डाल सकता है बरन यदि वह वस्तु पृथिवी पर की चट्टान भी हो। एक बार वह बांह मेरी ओर चलाया गया। उसी समय मुझे यह बोध था कि वह मेरी हड्डियों को पीसकर धूल कर डाल सकता है।

२३२। न० १३७ वें परिच्छेद में यह देखा जा सकता है कि ईश्वरीय सचाई जो प्रभु की ओर से है संपूर्ण शक्ति रखती है और जितना दूतगण प्रभु की ओर से ईश्वरीय सचाई ग्रहण करते हैं उतना ही उन को शक्ति भी है। परंतु दूतगण केवल वहां तक ईश्वरीय सचाई ग्रहण करते हैं जहां तक कि वे ईश्वरीय भलाई ग्रहण करते हैं। क्योंकि सचाइयें अपनी सारी शक्ति भलाई से पाती हैं और भलाई के विना कुछ नहीं पातीं। इस के विपरीत भलाई अपनी सारी शक्ति सचाइयों के द्वारा पाती है और सचाई के विना कुछ नहीं पाती। क्योंकि शक्ति उन दोनों के संयोग का फल है। श्रद्धा और प्रेम के बारे में ऐसी ही अवस्था है। क्योंकि चाहे हम सचाई के विषय में बोलें चाहे श्रद्धा के विषय में दोनों एक सी हैं क्योंकि श्रद्धा की समष्टि सचाई है। और चाहे हम सचाई के विषय में बोलें चाहे प्रेम के विषय में ये एक ही बात हैं क्योंकि प्रेम की समष्टि भलाई है[७०]। वह निरवधी शक्ति जो

---

६९ हाथों बांहों और खांधों की प्रधान पुरुष से अर्थात स्वर्ग से प्रतिरूपता रखने के बारे में। न० ४९३१ से ४९३७ तक। धर्मपुस्तक में बांहों और हाथों से तात्पर्य शक्ति है। न० ८७८· ३०९१·४९३२·४९३४·६९४७·१००१९।

७० स्वर्ग में सारी शक्ति उस सचाई से होती है जो भलाई से निकलती है और इस लिये उस श्रद्धा से जो प्रेम पर स्थायी हो आती है। न० ३०९१·३५६३·६४२३· ८३०४·९६४३· १००१९·१०१८२। सारी शक्ति प्रभु की ओर से है क्योंकि उस से वह सब सचाई निकलती है जो श्रद्धा से है और वह सब भलाई जो प्रेम से है। न० ९३२७·९४१०। और जो कुंजियें पतरस चेले को दी गई थीं उन से तात्पर्य यही शक्ति है। न० ६३४४। प्रभु की ओर से निकलनेवाली ईश्वरीय सचाई संपूर्ण शक्ति रखती है। न० ६९४८·८२००। और प्रभु की यह शक्ति वही है जो यिहोवाह के दाहिने हाथ पर बैठने के वाक्य से समझी जाती है। न० ३३८७·४५९२· ४९३३·७५१८·७६७३·८२८१·९१३३। क्योंकि दाहिने हाथ से तात्पर्य शक्ति है। न० १००१९।

दूतगण उन सचाइयों से पाते हैं जो भलाई से होती हैं इस हाल से भी स्पष्ट है कि जब जिस बुरे आत्मा पर दूतगण की दृष्टि पड़े वह उसी क्षण मूर्च्छा खाके मनुष्य के रूप को खो देता है और इसी हाल में रहता है उस समय तक कि दूतगण अपनी दृष्टि उस आत्मा से फेर न लेवे। यह नतीजा दूतगण की दृष्टि करने का होता है क्योंकि उन की दृष्टि स्वर्ग की ज्योति से है और स्वर्ग की ज्योति ईश्वरीय सचाई है। (न० १२६ से १३२ तक देखो)। आंखें भी उन सचाइयों से प्रतिरूपता रखती हैं जो भलाई से पैदा हुई हैं[७१]।

२३३। जब कि वे सचाइयें जो भलाई से निकलती हैं संपूर्ण शक्ति रखती हैं तो वे झूठ जो बुराई से निकलते हैं कुछ भी शक्ति नहीं रखते[७२]। परंतु नरक में सब के सब उन झूठों में रहते हैं जो बुराई से पैदा होते हैं इस लिये सचाई और भलाई के विरुद्ध उन से कुछ शक्ति नहीं चल सकती। स्वभाव उस शक्ति का जो वे आपस में काम में लाते हैं और उस शक्ति का जो बुरे आत्मा नरक में गिर पड़ने से पहिले रखते थे उस का बयान आगे किया जावेगा।

दूतगण की बोल चाल के बारे में।

२३४। दूतगण आपस में जगत के मनुष्यों के समान बात चीत करते हैं और मनुष्य के सदृश नाना प्रकार के प्रसङ्गों के बारे में भी चर्चा करते हैं जैसा कि घराने के बेओहारों पर और उन की सभा के काम काज पर और धार्मिक और आत्मिक जीवन के विषय में बात चीत किया करते हैं। उन की बोल चाल में और कोई भिन्नता नहीं केवल यह कि वे मनुष्यों की अपेक्षा अधिक बुद्धि के साथ बात चीत करते हैं क्योंकि वे अधिक भीतरी ध्यान से बोलते हैं। बार बार मैं ने उन के साथ रहने और मित्र बनकर और कभी कभी परदेशी भी बनकर उन से बात चीत करने की आज्ञा पाई। और जब कि उस समय मेरी अवस्था उन की अवस्था के समान थी तो उस समय मुझ को यह मालूम होता था कि मैं पृथिवी पर मनुष्यों के साथ बात चीत कर रहा हूं।

२३५। मानुषक बोल चाल के सदृश दूतविषयक बोल चाल के अलग अलग शब्द हैं और उसी रीति से सुनाई भी देती है। क्योंकि मनुष्यों के सदृश दूतगण के मुंह जीभ और कान भी होते हैं। उन के आस पास वायुमण्डल भी है कि जिस के सहाय वे अपनी बोल चाल के शब्दों को सुन लेते हैं। परंतु वह वायुमण्डल आत्मीय वायुमण्डल है और दूतगण के जो आत्मीय भूत आप हैं योग्य

---

७१ आंखें उन सचाइयों से प्रतिरूपता रखती हैं जो भलाई से निकलती हैं। न० ४४०३ से ४४२१ तक • ४५२३ से ४५३४ तक • ६९२३।

७२ बुराई से निकलनेवाले झूठ कुछ भी शक्ति नहीं रखते क्योंकि वह सचाई जो भलाई से निकलती है सारी शक्ति रखती है। न० ६७८४ • १०४८१।

है। दूतगण अपने वायुमण्डल में सांस भी लेते हैं और मनुष्यों के तौर पर अपनी सांस के सहाय शब्दों को मुंह से निकालते हैं[७३]।

२३६। सर्वव्यापी स्वर्ग में एक ही भाषा बोली जाती है और हर एक दूसरों की बोल चाल समझता है चाहे वे किसी निकटस्थ सभा के हों चाहे किसी दूरस्थ सभा के। यह भाषा वहां सिखलाई नहीं जाती वरन हर एक के अन्दर जाकर बैठाली जाती है क्योंकि वह भाषा केवल प्रेम और ध्यान से बहती है। उन की बोली का शब्द उन के प्रेम से प्रतिरूपता रखता है और शब्दों के उच्चारण जो बातें हैं उन के ध्यान के उन बोधों से प्रतिरूपता रखते हैं जो प्रेम से निकलते हैं। और जब कि दूतगण की भाषा उन के ध्यान और प्रेम से प्रतिरूपता रखती है तो वह आत्मिक भी है क्योंकि वह श्रोतव्य प्रेम और उच्चारणीय ध्यान है। हर एक बुद्धिमान मनुष्य को यह मालूम होगा कि ध्यान की समष्टि उस अनुराग से निकलती है जो प्रेम का है और ध्यान के बोध नाना रूप हैं कि जिन में वह साधारण अनुराग बंटा हुआ है। क्योंकि कोई ध्यान या बोध अनुराग के विना पैदा नहीं हो सकता। वह उन का आत्मा और जीव है। इस से दूतगण किसी का स्वभाव केवल उन की बोल चाल मात्र से जानते हैं। क्योंकि बोल चाल की ध्वनि ही से वे बोलनेवाले के अनुराग के स्वभाव को मालूम करते हैं और ध्वनि के उच्चारणों से अर्थात बोलनेवाले के शब्दों से वे उस के मन के स्वभाव को मालूम करते हैं। जो अधिक ज्ञानी दूतगण हैं वे थोड़े वाक्यों की श्रेणी से प्रधान अनुराग के स्वभाव को जानते हैं। क्योंकि वे मुख्य करके उस अनुराग पर अपना मन लगाते हैं। सब कहीं हर कोई यह जानता है कि हर एक के अनुराग नाना प्रकार के हैं। क्योंकि हर्ष की अवस्था में एक अनुराग प्रबल है और शोक की अवस्था में दूसरा अनुराग प्रबल है और एक दयालु अरु कृपालु अवस्था में और एक खराई अरु सचाई की अवस्था में और एक प्रेम अरु अनुग्रह की अवस्था में और एक व्यग्र अरु कोपमय अवस्था में और एक छिपाव अरु कपट की अवस्था में और एक कीर्त्ति अरु यश की खोज में इत्यादि इत्यादि। परंतु प्रधान अनुराग अर्थात प्रेम इन सभों में है और इस लिये अधिक ज्ञानी दूतगण जो उस अनुराग पर अपना मन मुख्य करके लगाते हैं बोलनेवाले के सारे स्वभाव को बोल चाल से ढूंढ़ निकालते हैं। इस बात का प्रमाण मुझे बहुत परीक्षा के पीछे मालूम हुआ। मैं ने सुना कि दूतगण केवल बोल चाल मात्र से और दूतों के सारे जीवन चरित्र को मालूम कर लेते हैं। और उन्हों ने मुझ से यह कहा कि वे किसी दूसरे दूत के ध्यान के थोड़े थोड़े बोधों से उस का सारा जीवन चरित्र जानते हैं। क्योंकि इन बोधों से वे उस

---

७३ स्वर्ग में सांस लेना है परंतु वह भीतरी प्रकार का है। न० ३८८४ · ३८८५। परीक्षा से। न० ३८८४ · ३८८५ · ३८९१ · ३८९३। और वहां सांस भिन्न भिन्न और नाना प्रकार के हैं दूतगण की अवस्थाओं के अनुसार। १११९ · ३८८६ · ३८८७ · ३८८९ · ३८९२ · ३८९३। परंतु बुरे लोग स्वर्ग में नहीं सांस ले सकते और यदि वे वहां में घुस भी जावें तो उन का सांस रुका जाता है। न० ३८९४।

दूत के प्रधान अनुराग को निकालते हैं और उस अनुराग में उस के जीवन चरित्र की पृथक पृथक बात यथाक्रम लिखी हुई है। और मनुष्य के जीवन की पोथी इसी हाल के सिवाए और कोई वस्तु नहीं है।

२३७। दूतविषयक भाषा मानुषक भाषाओं के समान नहीं है। परंतु वह उन शब्दों से कुछ कुछ संबन्ध रखती है जो अपनी ध्वनि को किसी विशेष अनुराग से निकालते हैं। तो भी यह संबन्ध शब्दों ही से नहीं होता पर उन की ध्वनि से। और इस बारे में और बयान आगे किया जावेगा। स्पष्ट है कि दूतविषयक भाषा मानुषक भाषाओं से संबन्ध नहीं रखती क्योंकि दूतगण मानुषक भाषा की एक ही बात बोल नहीं सकते। वे बोलने का प्रयत्न कर चुके पर बोल न सके क्योंकि वे कोई ऐसी बात नहीं बोल सकते जो संपूर्ण रूप से उन के अनुराग के अनुकूल नहीं है। और जो कुछ उन के अनुराग के अनुकूल नहीं है सो उन के जीवन ही के विरुद्ध होता है इस वास्ते कि जीव अनुराग का है और इस से दूतविषयक भाषा निकलती है। मैं ने सुना है कि पृथिवी पर मनुष्यजाति की प्राचीन भाषा दूतविषयक भाषा के समान थी क्योंकि वह उन को स्वर्ग से मिली थी। और इब्रानी भाषा उस प्राचीन भाषा से कुछ कुछ सम्मति रखती है।

२३८। जब कि दूतगण की बोली उन के उस अनुराग से जो प्रेम से निकलता है प्रतिरूपता रखती है और जब कि स्वर्ग से प्रेम रखना प्रभु से और पड़ोसी से प्रेम रखना होता है (न० १३ से १९ तक देखो) तो स्पष्ट है कि उन की बोल चाल कैसी मनोहर और रमणीय होती होगी। क्योंकि वह न केवल कान पर असर करती है बरन मन के भीतरी भागों पर भी असर किया करती है। एक बेर कोई दूत किसी कठिनहृदय आत्मा से बोला और अन्त में उस पर उस संभाषन करने से इतना असर हुआ कि वह यह कहे फूट फूट कर रोया कि "मैं इस रोने को रोक नहीं सकता क्योंकि यह बात प्रेम की बोली है। मैं पहिले कभी नहीं रोया था"।

२३९। दूतगण की बोली ज्ञान से भरपूर है इस वास्ते कि वह उन के भीतरी ध्यान से निकलती है और उन की भीतरी ध्यान ज्ञान है जैसा कि उन का भीतरी अनुराग प्रेम है। पस उन की बोल चाल में प्रेम और ज्ञान मिले हुए रहते हैं और इस लिये उस में इतना ज्ञान है कि जो मनुष्य हज़ारों शब्दों के सहाय नहीं कह सकता वे एक ही बात के सहाय स्पष्ट कर सकते हैं। उन के ध्यान के बोधों में ऐसी कल्पनाएं भी समाती हैं जो मनुष्य की समझ में आ नहीं सकती उन के उच्चकरने की तो क्या चर्चा होगी। और इस लिये बातें जो स्वर्ग में सुनी और देखी गई थीं अकथनीय कहाती हैं और वे ऐसी ही होती हैं कि न तो कान को सुनाई दीं न आंख की दृष्टि में आईं। मुझे परीक्षा करने से बतलाया गया कि वे ऐसी ही हैं क्योंकि कभी कभी मैं आप उस अवस्था में होने पाया कि जिस में दूतगण रहते हैं और मैं ने उन से बात चीत की। और ऐसे समय और

ऐसी अवस्था में मैं उन की सब बातों को समझता था। परंतु जब मैं अपनी पहिली अवस्था में और इस से उन प्राकृतिक ध्यानों में जो मनुष्य के योग्य हैं लाया गया और मैं ने यह चाहा कि "जो मैं ने सुना है उस को स्मरण करूं" तो मुझ को उस की सुध न आई। क्योंकि हज़ारों ऐसी बातें थीं जो प्राकृतिक ध्यान के बोधों में नहीं आ सकतीं और इस लिये उन का उच्चारण मानुषक शब्दों के द्वारा संपूर्ण रूप से असम्भाव्य था केवल स्वर्ग की ज्योति की चित्रविचित्रताओं की सहायता से। दूतगण के ध्यान के बोध जिन से कि उन के शब्द निकलते हैं स्वर्ग की ज्योति की चित्रविचित्रताएं भी हैं। और उन के अनुराग कि जिन से शब्दों का गुण निकलता है स्वर्ग की गरमी के रूपान्तरकरण होते हैं। क्योंकि स्वर्ग की ज्योति ईश्वरीय सचाई अर्थात ज्ञान है और स्वर्ग की गर्मी ईश्वरीय भलाई अर्थात प्रेम है। (न० १२६ से १४० तक देखो)। और दूतगण अपने अनुराग को ईश्वरीय प्रेम से पाते हैं और अपने ध्यान को ईश्वरीय ज्ञान से[७४]।

२४०। ध्यान के बोध ऐसे नाना प्रकार के रूप हैं कि जिन में साधारण अनुराग बंटा हुआ है जैसा कि हम न० २३६ वें परिच्छेद में कह चुके हैं। और जब कि दूतगण की बोली उन के अनुराग से सीधी चलती है तो वे क्षण भर में इतना कुछ कह सकते हैं जितना कि मनुष्य अधघण्टे भर तक भी कह नहीं सकता। और वे बहुत थोड़ी बातों से इतना कुछ बोल सकते हैं जिस के लिखने में कई एक पृष्ठ लगते हैं। इस बात का प्रमाण मुझे परीक्षा करने से मालूम हुआ[७५]। इस लिये दूतविषयक ध्यान के बोध और दूतविषयक बोली के शब्द एक ही हैं जैसा कि कारण और कार्य। क्योंकि ध्यान के बोधों में जो कुछ कारण के रूप पर है उस को शब्द कार्य के रूप पर दिखलाते हैं। और इस से हर एक शब्द में बहुत सी बातें समाती हैं। ध्यान की हर एक बात और इस कारण दूतगण की बोली की हर एक बात जब वह साक्षात देखने में आवे तब वह एक ऐसी पतली तरंग सी अथवा घेराव में बहता हुआ वायुमण्डल सी दिखाई देती है कि जिस में असंख्य बातें जो दूतविषयक ज्ञान से निकलती हैं और जो यथाक्रम सजी हुई हैं औरों के ध्यान में पैठकर उन के अनुरागों को उकसाती हैं। जब प्रभु आप चाहे तब क्या दूत क्या मनुष्य उन में से हर एक के ध्यान के बोध स्वर्ग की ज्योति में स्पष्ट रूप से देख पड़ते हैं[७६]।

---

७४ वे बोध कि जिन के अनुसार दूतगण बोलते हैं स्वर्ग की ज्योति की अद्भुत चित्रविचित्रता से बन जाते हैं। न० १६४६ • ३३४३ • ३९९३।

७५ दूतगण अपनी बोली से क्षण भर में इतना कुछ कह सकते हैं जिस के कहने के लिये मनुष्यों को आधघण्टा लग जाता है और वे ऐसी ऐसी बातों को कह सकते हैं जो मानुषक बोली से कही नहीं जा सकती। न० १६४१ • १६४२ • १६४३ • १६४५ • ४६०९ • ७०८९।

७६ ध्यान के एक ही बोध में असंख्य बातें समाती हैं। न० १००८ • १८६९ • ४९४६ • ६६१३ • ६६१४ • ६६१५ • ६६१७ • ६६१८। मनुष्य के ध्यान के बोध परलोक में खोले जाते हैं और उन का गुण एक दृश्य जीते हुए रूप पर दिखलाया जाता है। न० १८६९ • ३३१० • ५५१०। उन

२४१। प्रभु के स्वर्गीय राज के दूतगण उस के आत्मीय राज के दूतगण के तार पर बात चीत करते हैं। परंतु वे आत्मीय दूतगण की अपेक्षा अधिक भीतरी ध्यान से बोलते हैं। क्योंकि स्वर्गीय दूतगण प्रभु के प्रेम की भलाई में रहते हैं और इस लिये वे ज्ञान से बोलते हैं। परंतु आत्मीय दूतगण पड़ोसी की ओर के अनुग्रह की भलाई में रहते हैं और यकी हाल सारांश से ले सचाई है (न० २१५)। और इस लिये वे बुद्धि से बोलते हैं। क्योंकि ज्ञान भलाई से है और बुद्धि सचाई से। इस कारण स्वर्गीय दूतगण की बोली मृदु धीरी नदी के समान है और वह इसी तार पर बराबर चली जाती है कि मानों वह संबध्यमान हो। परंतु आत्मीय दूतगण की बोली कुछ कुछ थरथराती हुई और पृथक पृथक होती है। स्वर्गीय दूतगण की बोली में उकार और ओकार बहुधा काम में आता है परंतु आत्मीय दूतगण की बोली में एकार और इकार सुनाई देता है क्योंकि स्वर शब्दों के चिह्न होते हैं और ध्वनि में अनुराग रहता है। न० २३६ वें परिच्छेद में यह लिखा गया है कि दूतविषयक बोली की ध्वनि अनुराग से प्रतिरूपता रखती है और ध्वनि के उच्चारण अर्थात शब्द ध्यान के उन बोधों से प्रतिरूपता रखते हैं जो अनुराग से निकलते हैं। और जब कि स्वर किसी भाषा के नहीं हैं पर वे किसी भाषा के शब्दों के ऐसे उत्थापन हैं जो ध्वनि के द्वारा हर किसी की अवस्था के अनुसार नाना प्रकार के अनुराग प्रकाशित करते हैं तो स्वर इब्रानी भाषा में लिखे नहीं जाते और नाना प्रकार के तार पर उन का उच्चारण बोला जाता है। पस इस करके दूतगण किसी मनुष्य के गुण को उस के अनुराग और प्रेम के विषय जानते हैं। स्वर्गीय दूतगण की बोली में कोई तीक्ष्ण व्यञ्जन (अर्थात खरप्रत्याहार) नहीं आता और बहुत थोड़ी बातें हैं कि जिन में विना कोई स्वर बीच में होने के एक व्यञ्जन दूसरे व्यञ्जन के पीछे पीछे लगा चला आता है। इस वास्ते धर्मपुस्तक में "और" की बात बार बार काम में आती है। और यह उन को स्पष्ट रूप से मालूम होता है जो इब्रानी भाषा में धर्मपुस्तक को पढ़ते हैं। उस भाषा में "और" की बात मृदु है और सदैव उस के आगे भी स्वर है और उस के पीछे भी। इब्रानी धर्मपुस्तक में सारे वाक्य यह बात आप कुछ कुछ दिखलाते हैं कि क्या ये स्वर्गीय वाक्य हैं या आत्मीय वाक्य अर्थात कि उन से भलाई निकलती है या सचाई। उन में कि जिन से भलाई फैल जाती है बहुत से उकार और ओकार मिलते हैं और बहुत थोड़े अकार पाए जाते हैं। इस के विपरीत उन में कि जिन से सचाई निलकती है बहुत से एकार और इकार पाए जाते हैं। जब कि अनुराग विशेष तार पर ध्वनि के सहाय प्रकाशित

का क्या रूप है। न० ६२०१ • ८८८५। भीतरी स्वर्ग के दूतगण के बोध आग सी ज्योति के सदृश दिखाई देते हैं। न० ६६१५। और अन्तिम स्वर्ग के दूतगण के बोध पतले चमकीले बादलों के समान देख पड़ते हैं। न० ६६१४। किसी दूत का एक ऐसा बोध देखा गया कि जिस से प्रभु की ओर किरणस्फुरण निकलता है। न० ६६२०। ध्यान के बोध दूतविषयक सभाओं में अपने तईं इधर उधर फैलाते हैं। न० ६५९८ से ६६१३ तक।

हुआ किये जाते हैं इस लिये जब मानुषक बोली में बड़े बड़े प्रसङ्ग कहने में आते हैं (जैसा कि स्वर्ग और परमेश्वर) तब लोग प्रायः वे वाक्य काम में लाते हैं कि जिन में उकार और ओकार पाए जाते हैं। गीत गाने में भी ऐसे ऐसे उत्कृष्ट प्रसङ्गों के विषय ओकार और उकार की ध्वनि संपूर्ण रूप से ऐश्वर्यमान होती है। परंतु जब कोई प्रसङ्ग उन प्रसङ्गों से घट उत्कृष्ट हो तब अन्य अन्य शब्द काम में आते हैं। और इस लिये गीत गाने की वह शक्ति होती है कि जिस से नाना प्रकार के अनुराग प्रकाशित किये जाते हैं।

२४२। दूतगण की बोली में सुस्वरयुक्त एकताल होता है जिस का वर्णन नहीं हो सकता[७७]। और यह एकताल इस हाल से पैदा होता है कि ध्यान और अनुराग जो बोली को जन्माते हैं स्वर्ग के रूप के अनुकूल अपने तईं फैलाकर व्यापते हैं। और सारा संयोग और संसर्ग उस रूप से मेल खाता है। न० २००वें से २१२वें तक के परिच्छेदों में यह देखा जा सकता है कि दूतगण स्वर्ग के रूप के अनुकूल आपस में संयोग रखते हैं और उन के ध्यान और अनुराग उस रूप के अनुसार बहते हैं।

२४३। बोली उस बोली के सदृश जो आत्मीय जगत में सर्वव्यापी है हर एक मनुष्य में भी डाली गई है परंतु वह केवल उस के भीतरी बुद्धिमय भाग में विद्यमान है। मनुष्य यह बात नहीं जानता क्योंकि वह बोली ऐसे वाक्यों से जो मनुष्य के अनुरागों से उपयुक्त हैं मिलके ठीक नहीं होती जैसा कि वह दूतगण के साथ ठीक ठीक मिलाप खाती है। तो भी इसी कारण से जब मनुष्य परलोक को जाता है तब वह आत्माओं और दूतगण की बोली विना शिक्षा पाए अनायास बोला करता है। परंतु हम थोड़ी देर पीछे इस प्रसङ्ग का और बयान करेंगे।

२४४। सब निवासी स्वर्ग में एक ही भाषा बोलते हैं। जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं। और केवल यह भिन्नता है कि जो अधिक ज्ञानी हैं उन की बोली अधिक भीतरी है और अनुरागों के विकार के प्रकाशन करने में और ध्यान के बोधों के बोलने में वह अधिक स्पष्टता से मालूम देती है[७८]। परंतु घट ज्ञानी निवासियों की बोली अधिक बाहरी और न्यून पूर्णार्थ की होती है। और भोले निवासियों की बोली और भी बाहरी है और इस में ऐसे ऐसे वाक्य हैं जिन के तात्पर्य उसी तौर पर निकाले जाते हैं जिस तौर पर लोग मनुष्य की बोली से तात्पर्य का अनुमान करते हैं। एक और भांति की बोली भी है जो मुख से प्रकाशित होती है और जो अन्त में बोधों के द्वारा कुछ कुछ शब्दजनक हो जाता है। और अन्य

---

७७ दूतविषयक बोली में सुभाव्य लय के साथ एकताल है। न० १६४८ • १६४९ • ७१९१।

७८ आत्मिक और दूतविषयक बोली मनुष्य में छिपी बैठी है यद्यपि वह इस बात से अज्ञानी हो। न० ४१०४। क्योंकि भीतरी मनुष्य के बोध आत्मिक हैं पर मनुष्य इस जगत के जीवन में उन बोधों को प्राकृतिक तौर पर मालूम करता है क्योंकि वह उस समय प्राकृतिक तत्त्व के सहाय ध्यान करता है। न० १०२३६ • १०२४६ • १०५५०। मरने के पीछे मनुष्य अपने भीतरी बोधों में आता है। न० ३२२६ • ३३४२ • ३३४३ • १०५६८ • १०६०४। और तब वे बोध उस की बोली को बनाते हैं। न० २४७० • २४७८ • २४७९।

बोली भी है कि जिस में स्वर्गीय प्रतिमाएं बोधों से मिली हुई होती हैं और बोध आप दृश्य हो जाते हैं। और अन्य बोली भी है जो ऐसे संकेतों के सहाय जो अनुरागों से प्रतिरूपता रखते हैं प्रकाशित होती है और जो ऐसी वस्तुओं का प्रकाश करती है कि जिन का प्रकाश प्रायः शब्द करते हैं। और अन्य बोली जो अनुरागों और बोधों के साधारण तत्त्व के सहाय बोली जाती है। और अन्य बोली भी है जो गरज के सदृश होती है। और अन्य अन्य बोली भी हैं।

२४५। बुरे और नरकनिवासी आत्माओं की बोली भी आत्मिक है। क्योंकि वह उन के अनुरागों से पैदा होती है परंतु बुरे अनुरागों से और उन मलीन बोधों से भी जो उन बुरे अनुरागों से पैदा होते हैं। और दूतगण सब से बढ़कर उन का घिण करते हैं। इस कारण नरक की बोली स्वर्ग की बोली के विरुद्ध है और न तो पापात्मागण दूतविषयक बोली को सह सकते हैं और न दूतगण नरकीय बोली को। क्योंकि नरकीय बोल चाल उन को ऐसी बुरी लगती है जैसी कि कुगन्ध नथनों को। उन दम्भों की बोली जो ज्योतिमय दूतगण के रूप धारण कर सकते हैं शब्दों के विषय में दूतगण की बोली के समान है परंतु अनुरागों के विषय और इस लिये ध्यान के बोधों के विषय वह दूतगण की बोली के व्यास क्रम से विरुद्ध है। इस कारण जब उस के भीतरी गुण को ज्ञानी दूतगण मालूम करते हैं तब वह दान्त पीसने की सी सुनाई देकर दूतगण को भयातुर करती है।

दूतगण की मनुष्य से बात चीत करने के बयान में।

२४६। जब दूतगण मनुष्य से बात चीत करते हैं तब वे अपनी बोली नहीं बोला करते पर उसी मनुष्य की बोली बोलते हैं कि जिस से वे उसी समय बोल रहे हैं। या कोई और बोली बोलते हैं कि जिस से वह मनुष्य परिचित होता है। परंतु वे ऐसी कोई बोली नहीं बोलते जो वह नहीं जानता। क्योंकि वे अपने तईं उस की ओर फिराते हैं और उस के साथ संयोग करते हैं और यह संयोग उन को एक ही ध्यान की अवस्था में लाता हैं। मनुष्य का ध्यान उस की स्मरणशक्ति से लग जाता है और उस की बोली उस से बह निकलती है। इस लिये जब कोई दूत या आत्मा उस की ओर फिरता है और उस से संयुक्त होता है तब वे दोनों एक ही भाषा को बोलते हैं। क्योंकि दूत मनुष्य की सारी स्मरणशक्ति में संपूर्ण रूप से प्रवेश करता है यहां तक कि वह इस बात के विश्वास करने पर उपस्थित है कि वह उस मनुष्य की सब विद्या को आप से आप जानता है हां जितनी भाषाओं को उस मनुष्य ने सीखा था उन से भी वह दूत सुपरिचित है। मैं ने दूतगण से इस बारे में बात चीत की और उन से कहा कि "कदाचित तुम को यह अनुमान हो कि तुम मेरे साथ मेरी मातृबोली बोलते हो क्योंकि तुम को ऐसा मालूम होता है। परंतु तुम उसी भाषा में नहीं बोलते केवल मैं आप उस को बोलता हूं। और यह बात प्रमाण के योग्य है क्योंकि दूतगण किसी मानुषक भाषा

की एक ही बात कह नहीं सकते (न० २३७)। और इस वास्ते कि मानुषक भाषा प्राकृतिक है और वे आत्मिक हैं और आत्मीय भूत किसी प्राकृतिक बात को कह नहीं सकते"। दूतगण बोले कि "हम जानते हैं कि जब हम किसी मनुष्य से बात चीत करते हैं तब उस मनुष्य के आत्मीय ध्यान से हमारा संयोग होता है। परंतु जब कि उस का आत्मीय ध्यान उस के प्राकृतिक ध्यान के अन्दर बहता है और उस का प्राकृतिक ध्यान उस की स्मरणशक्ति से मिल जाता है तो मनुष्य की बोली हम को ऐसी मालूम होती है कि मानों वह हमारी अपनी बोली है और उस की सारी विद्या भी हम को हमारी विद्या के सदृश मालूम होती है। और यह संयोग जो ऐसा है कि जैसा स्वर्ग का मनुष्य में प्रवेश होता है प्रभु की इच्छा से होता है। परंतु इन दिनों में मनुष्य का हाल ऐसा बदला हुआ है कि वह दूतगण से संयुक्त नहीं हो सकता परंतु केवल उन आत्माओं से जो स्वर्ग में नहीं रहते"। मैं ने आत्माओं से भी इसी बारे में बात चीत की। परंतु वे इस बात पर विश्वास करना नहीं चाहते थे कि केवल मनुष्य ही बोलता है। पर उन को यह गुमान था कि वे मनुष्य में होकर बोला करते थे और मनुष्य तो सच मुच उस को नहीं जानता जिस से वह दिखाऊ रीति से परिचित होता है। केवल उन्हीं को वही ज्ञान है। और इस से जो कुछ कि मनुष्य जानता है सो उन्हीं से निकलता है। मैं बहुत वादानुवाद करने से उन की भूल चूक दूर करने में प्रयत्न किया पर सब व्यर्थ हुआ।

हम आगे चलकर यह बतलावेंगे कि आत्मागण कौन हैं और दूतगण कौन हैं जब कि हम आत्माओं के जगत का हाल बयान करेंगे।

२४७। दूतगण का और आत्मागण का मनुष्य से इतना ठोस संयोग है कि उन को यह समझ है कि जो कुछ मनुष्य अपना जानता है उस को वे भी अपना जानते हैं इस प्रकार के संयोग का दूसरा कारण यह है आत्मीय जगत का और प्राकृतिक जगत का मनुष्य से ऐसा संयोग है कि मानों वे एक ही हैं। परंतु जब कि मनुष्य ने अपने को स्वर्ग से अलग किया तो प्रभु ने हर एक मनुष्य के लिये सहचारी दूतगण और आत्मागण प्रस्तुत किये इस वास्ते कि वे पभु की ओर से मनुष्य पर अधिकार करें। और इसी लिये मनुष्य के और दूतगण के बीच ऐसा गाढ़ा मिलाप होता है। यदि मनुष्य अपने तईं स्वर्ग से अलग न करता तो और ही अवस्था होता क्योंकि ऐसे हाल में मनष्य आत्मागण और दूतगण से संयुक्त हुए विना प्रभु की ओर से स्वर्ग के साधारण अन्तःप्रवाह के अधीन होता। परंतु इस बात का तब विशेष बयान होगा जब हम मनुष्य से स्वर्ग के संयोग होने के बारे में लिखेंगे।

२४८। दूतगण या आत्मागण की बोल चाल मनुष्य के साथ जो होती है ऐसी शब्दकारक है जैसी एक मनुष्य की बोल चाल दूसरे मनुष्य से। तो भी अन्य किसी मनुष्य को जो विद्यमान हो सुनाई नहीं देती। परंतु केवल उसी मनुष्य को सुनाई देती है जिस से दूत बोलता है। क्योंकि दूत की या आत्मा

की बोली पहिले पहिल मनुष्य के ध्यान में बहती है और पीछे किसी भीतरी पथ से सुनने के इन्द्रिय तक पहुंचती है और इस रीति से भीतर से कान पर असर करती है। इस के विपरीत मनुष्य की बोली वायु में होकर दूसरे मनुष्य पर लगती है और बाहरी पथ से सुनने के इन्द्रिय तक पहुंचती है और इस रीति से बाहर से कान पर असर करती है। इस लिये स्पष्ट है कि दूत की या आत्मा की बोली मनुष्य के साथ केवल मनुष्य ही में सुनाई देती है। और जब कि जहां तक बाहरी बोली कानों पर असर करती है वहां तक भीतरी बोली भी असर करती है तो यह उस से बराबर शब्दजनक होती है। दूत की या आत्मा की बोली भीतर से नीचे को कानों में भी बहती है। इस बात का मुझे यह प्रमाण हुआ कि वह जीभ पर कि उस में भी वह बहती है कुछ असर करती है और उस को कुछ कुछ थरथराती है। परंतु यह थरथराहट किसी विशेष इन्द्रिय का हिलाव नहीं है जैसा कि वह हिलाव जो कोई मनुष्य अपनी बोली के बोलने में आप से आप करता है।

२४९। इन दिनों में आत्माओं के साथ बात चीत करने की बहुत कम आज्ञा मिलती है इस लिये कि वह भय का स्थान है[७९]। क्योंकि उस समय वे जानते हैं कि वे मनुष्य के संग हैं जिस को विना बात चीत किये वे नहीं जानते। और बुरे आत्माओं का ऐसा स्वभाव है कि वे मनुष्य के प्राणनाशक शत्रु हैं और इस से अन्य कोई वस्तु अधिक उत्ताप से नहीं चाहते कि वे मनुष्य का शरीर और जीव दोनों का सर्वनाश करें। वे उन का सर्वनाश करते हैं जो मन की लहरों पर बहुत ध्यान दौड़ाते हैं यहां तक कि वे उन आनन्दों को जो प्राकृतिक मनुष्य के योग्य हैं अपनों से दूर करते हैं। कोई लोग जो अकेले अपने दिन काटते हैं कभी कभी विना किसी हानि और चिन्ता के अपनों से बोलते हुए आत्माओं को सुनते हैं। क्योंकि आत्मागण जो उन मनुष्यों के पास विद्यमान होवें कुछ देर पीछे प्रभु से दूर किये जाते हैं इस वास्ते कि कहीं वे यह न जानें कि "हम मनुष्यों के पास हैं"। क्योंकि बहुत से आत्मा यह नहीं जानते कि सिवाए उन के जगत के कोई और जगत भी है। और इस से वे नहीं जानते कि मनुष्य और कहीं भी हैं। इस कारण मनुष्य उन की बात का जवाब देने नहीं पाते क्योंकि ऐसे हाल में वे यह मालूम करेंगे कि यहां मनुष्य हैं। वे जो धार्मिक प्रसङ्गों पर बहुत ध्यान करते हैं और उन प्रसङ्गों पर यहां तक आसक्त हों कि वे भीतरी तौर पर मानों अपने आप में उन को देखते हैं अपने से बोलते हुए आत्माओं

---

७९ मनुष्य आत्मागण और दूतगण के साथ बोल सकता है और प्राचीन लोग बार बार उन से बोला किये। म० ६७ • ६८ • ६९ • ७८४ • १६३४ • १६३६ • ७८०२। कई पृथिवियों में दूतगण और आत्मागण मानुषक रूप पर दिखाई देकर निवासियों से बात चीत करते हैं। न० १०७५१ • १०७५२। परंतु आज कल इस पृथिवी पर आत्माओं से बात चीत करना भय का स्थान है उस समय तक कि मनुष्य सच्ची श्रद्धा पर विश्वास न लावे और प्रभु उस का पथदर्शक न हो। न० ७८४ • ९४३८ • १०७५१।

को सुनने लगते हैं। क्योंकि चाहे जैसी ही धार्मिक बातें हों जब मनुष्य आप से आप उन पर आसक्त हो और नाना उपयोगी कामों के द्वारा अपने ध्यान की दौड़ को न रोके तब वे बातें भीतर जाकर वहां स्थापित होकर उस मनुष्य के सारे जीव में फैलकर व्यापती हैं और इसी तौर पर आत्मीय जगत में जाकर वहां के रहनेवाले आत्माओं पर असर करती हैं। ऐसे मनुष्य छायाधीन और सर-गरम होते हैं और हर एक आत्मा कि जिस की बोली वे सुनते हैं पवित्र आत्मा ही को मानते हैं तो भी वे सब केवल सरगरम आत्मा हैं। उस प्रकार के आत्मा झुठाइयों को सचाइयें मानते हैं और इस वास्ते कि वे उन को देखते हैं वे उन को सच्चा होने की प्रतीति करते हैं। और जो लोग उन के अन्तःप्रवाह के पात्र होते हैं उन में वे वही विश्वास भरते हैं। और इस हेतु कि वैसे आत्मा बुरे काम करने की चाह उकसाते थे और उन की आज्ञा मानी जाती थी इस लिये वे क्रम करके दूर किये जाते थे। सरगरम आत्मागण इस विशेष गुण के द्वारा अन्य आत्माओं से विशेषित हैं कि वे अपने आप को पवित्र आत्मा जानते हैं और अपनी आज्ञाओं को ईश्वरीय वचन मानते हैं। परंतु जिस मनुष्य से वे संसर्ग रखते हैं उस की कुछ भी हानि नहीं करते क्योंकि वह उन के आगे देवकीय पूजा और संमान करता है। कभी कभी मैं ने इस प्रकार के आत्माओं से बात चीत की। तब तो मैं ने उन बुरे तत्त्वों और दुष्ट चावों को निकाला जो वे अपने भक्तों में भर देते हैं। वे एकट्ठे होकर बायें हाथ पर किसी उजाड़ स्थान में रहते हैं।

२५०। स्वर्ग के दूतगण से बात चीत करने केवल वे पाते हैं जो उन सचा-इयों में हैं जो भलाई से निकलती हैं। और विशेष करके उन को जो प्रभु को और उस के ईश्वरीय मनुष्यत्व को स्वीकार करने की अवस्था में हैं वह शक्ति दी जाती है इस हेतु कि स्वर्ग आप उसी सचाई में रहते हैं। क्योंकि (जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं) प्रभु स्वर्ग का परमेश्वर है (न० २ से ६ तक) और स्वर्ग प्रभु के ईश्वरत्व का है (न० ७ से १२ तक) और प्रभु का ईश्वरत्व स्वर्ग में प्रभु से प्रेम रखना है और उस की ओर से पड़ोसी पर अनुग्रह करना। सर्वव्यापी स्वर्ग की समष्टि मनुष्य के सदृश है और इसी रीति से स्वर्ग की हर एक सभा मनुष्य के रूप पर है। और प्रत्येक दूत मनुष्य के एक संपूर्ण रूप पर है जो प्रभु के ईश्वरीय मनुष्यत्व से पैदा होता है (न० ५९ से ८६ तक)। इस से स्पष्ट है कि स्वर्ग के दूतगण से बोलने की शक्ति केवल उसी को दी जाती है जिस के भीतरी भाग ईश्वरीय सचाइयों से प्रभु की ओर भी खुले हुए हैं। क्योंकि प्रभु उन में मनुष्य के साथ बहता है और स्वर्ग भी प्रभु के साथ अन्दर बहता है। ईश्वरीय सचाइयें मनुष्य के भीतरी भागों को खोलती हैं। क्योंकि मनुष्य ऐसा पैदा हुआ था कि वह अपने भीतरी मनुष्य के विषय स्वर्ग की एक प्रतिमा हो और अपने बाहरी मनुष्य के विषय जगत की एक प्रतिमा (न० ५७)। और भीतरी

मनुष्य विना प्रभु की ओर से निकलनेवाली ईश्वरीय सचाई की सहायता के और किसी तौर पर नहीं खुलता। क्योंकि वह स्वर्ग की ज्योति और जीव है। (न० १२६ से १४० तक)।

२५१। प्रभु का अपना अन्तःप्रवाह मनुष्य के विषय माथे में है और वहां से सारे मुख में वह निकलता है। क्योंकि मनुष्य का माथा उस के प्रेम से प्रतिरूपता रखता है और मुख उस के सब भीतरी भागों से[८०]। परंतु आत्मीय दूतगण का अन्तःप्रवाह मनुष्य के विषय सिर में की सब दिशाओं की ओर बहता है माथे और कनपटी से लेकर हर एक भाग तक जो मस्तिष्क को ढांपता है क्योंकि सिर का वह भाग बुद्धि से प्रतिरूपता रखता है। और स्वर्गीय दूतगण का अन्तःप्रवाह सिर से उस भाग में बहता है जो सीरीबिल्लम (अर्थात सिर की पिछाड़ी) को ढांपता है। और यह भाग जो कानों से ले सब दिशाओं की ओर गुद्दी तक पसरता है आक्सिपट कहाता है क्योंकि वह भाग ज्ञान से प्रतिरूपता रखता है। दूतगण की बोली मनुष्य के विषय सदैव उन पथों से उस के ध्यान में प्रवेश करती है। इस कारण इस बात पर ध्यान लगाने से मैं ने यह मालूम किया कि क्या वे आत्मीय या स्वर्गीय दूतगण थे जिन के साथ मैं ने बात चीत की थी।

२५२। वे जो स्वर्ग के दूतगण से बात चीत करते हैं उन वस्तुओं को भी देखते हैं जो स्वर्ग में हैं इस वास्ते कि वे स्वर्ग की ज्योति के सहाय कि जिस में उन की भीतरी भाग हैं देखते हैं। और दूतगण उन वस्तुओं को जो पृथिवी पर हैं मनुष्य में होकर देखते हैं[८१]। क्योंकि उन के विषय में स्वर्ग जगत से संयुक्त है और जगत स्वर्ग से। इस लिये कि (जैसा कि न० २४६ वें परिच्छेद में हम कह चुके थे) जब दूतगण अपने तई मनुष्य की ओर फिराते हैं तब वे अपने को उस के साथ ऐसे तौर पर संयोग करते हैं कि वे इस बात के विपरीत कुछ नहीं जानते कि जो कुछ मनुष्य अपना जानता है सो उन का है। और वह हाल केवल उस की बोली मात्र के विषय में नहीं होता पर उस की दृष्टि और श्रवण के विषय भी वैसा ही हाल होता है। और मनुष्य तो इस बात के विपरीत कुछ नहीं जानता कि जो कुछ दूतगण में होकर उस के अन्दर बहता है सो उस की अपनी वस्तु है। ऐसा संयोग स्वर्ग के दूतगण में और पृथिवी पर के सब से प्राचीन लोगों में था और इस लिये उन का युग सुनहरी युग कहलाता है। वे मनुष्यरूपी

---

८० माथा स्वर्गीय प्रेम से प्रतिरूपता रखता है और इस से धर्मपुस्तक में उस का अर्थ प्रेम है। न० ६६३६। मुख मनुष्य के उन भीतरी भागों से प्रतिरूपता रखता है जो ध्यान और प्रेम से होते हैं। न० १५६८ • २६८८ • २६८६ • ३६३१ • ४७६६ • ४७६७ • ४८०० • ५१६५ • ५१६८ ५६६५ • ६३०६। और मुख भीतरी भागों से प्रतिरूपता रखने के लिये बना हुआ है। न० ४७६१ से ४८०५ तक • ५६६१। और इस कारण धर्मपुस्तक में मुख से तात्पर्य भीतरी भाग है। न० १६६६ • २४३४ • ३५२७ • ४०६६ • ४७६६।

८१ आत्मागण मनुष्य में होकर कुछ नहीं देखते जो इस सूर्यसंबन्धी जगत में है। परंतु वे मेरी आंखों में होकर देख चुके हैं। इस का क्या कारण था। न० १८८०।

ईश्वरत्व को स्वीकार करते थे अर्थात वे प्रभु को अङ्गीकार करते थे। और इस लिये वे स्वर्ग के दूतगण से बोला करते थे जैसा कि अपने सहजातियों से। और दूतगण भी ऐसे तौर से उन के साथ बोला करते थे। और उन में स्वर्ग और जगत एक ही हो गया। परंतु उन दिनों के पीछे मनुष्य अपने को प्रभु से और जगत को स्वर्ग से अधिक प्यार करने के द्वारा अपने तईं स्वर्ग से दूर दूर करता रहता था। और इस कारण आत्मप्रेम का आनन्द और स्वर्ग से अलग रहते हुए जगतप्रेम का आनन्द मनुष्य पर असर करने लगता था। और अन्त में उस को और किसी आनन्द का ज्ञान न हुआ। उस के भीतरी भाग जो उस समय तक स्वर्ग की ओर खुले हुए थे बन्द हो गये और केवल उस के बाहरी भाग जगत की ओर खुले हुए रहे। और इस कारण मनुष्य जगत की सब वस्तुओं के विषय ज्योति में है परंतु स्वर्ग की सब वस्तुओं के विषय घन अंधेरे में।

२५३। उन दिनों के पीछे बहुत थोड़े लोगों ने स्वर्ग के दूतगण से बात चीत की परंतु किसी किसी ने उन आत्माओं से बात चीत की कि जो स्वर्ग में न थे। क्योंकि मनुष्य के भीतरी और बाहरी भाग या तो प्रभु की ओर मानों अपने सामान्य केन्द्र की ओर (न० १२४) फिरे हुए हैं या अपनी ओर अर्थात प्रभु से फिरकर पीछे फिरे हुए हैं। जब वे प्रभु की ओर फिरे हुए हैं तब वे स्वर्ग के भी संमुख हैं। और जब वे जगत की ओर अपनी ओर फिरे हुए हैं तब उन की उन्नति कठिनता के साथ की जाती है। तो भी उन की उन्नति जहां तक हो सकती है वहां तक प्रेम के बदलने के कारण धर्मपुस्तक की सचाइयों के द्वारा प्रभु से की जाती है।

२५४। मुझे यह बतलाया गया कि किस तौर प्रभु ने उन भावीवक्ताओं से कि जिन्हों ने धर्मपुस्तक के वचनों को प्रकाशित किया बात चीत की। उस ने उन के भीतरी भागों में अन्तःप्रवाह भरकर उन के साथ नहीं बात चीत की जैसा कि वह प्राचीन लोगों से बातें करता था। परंतु उस ने भेजे हुए आत्माओं के द्वारा उन से बातें की कि जिन में उस ने अपनी चितवन भरी और इस करके आत्माओं के चित्त में वे बातें डालीं जो उन्हों ने भावीवक्ताओं से कहीं। यह तो अन्तःप्रवाह नहीं था पर सुनाना था। और जब कि बातें प्रभु से सीधी आईं तो हर एक बात में ईश्वरत्व भरा था और उस में ऐसा भीतरी तात्पर्य है कि दूतगण की समझ में उन बातों से स्वर्गीय और आत्मीय तात्पर्य आते हैं। परंतु मनुष्य उन के केवल प्राकृतिक तात्पर्यों को मालूम करते हैं। इस से प्रभु ने धर्म-पुस्तक के द्वारा स्वर्ग और जगत संयुक्त किया है। यह भी मुझे बतलाया गया कि किस रीति से आत्मागण प्रभु के ईश्वरत्व से चितवन करके भरे हैं। वह आत्मा कि जिस में प्रभु का ईश्वरत्व भरा है इस के विपरीत कुछ नहीं जानता कि वह आप प्रभु है और जो वह कहता है सो ईश्वरीय बात है। और यह ख़्याल तब तक बना रहता है जब तक कि वह प्रभु का संदेशा न कहे। परंतु

पीछे वह यह मालूम करके स्वीकार करता है कि "मैं केवल आत्मा हूं और जो मैं ने कहा सो मेरी ओर से न था पर प्रभु की ओर से"। जब कि उन आत्माओं का जो भावीवक्ताओं से बोलते थे ऐसा हाल था तो उन्हों ने यह बात कही कि "यिहोवाह बोला"। आत्मागण भी अपने को यिहोवाह बोला करते थे। जैसा कि धर्मपुस्तक के भविष्यद्वाक्यसंबन्धी और ऐतिहासिक भागों में स्पष्ट रूप से होता है।

२५५। मैं कई अद्भुत बातों को सुनाने पाया इस हेतु से कि मनुष्य के साथ दूतगण और आत्मागण के संयोग का स्वभाव और गुण प्रकाशित होवे और ये बातें इस प्रसङ्ग के विषय दृष्टान्त देने और प्रमाण करने की सहायता दें। जब दूतगण और आत्मागण अपने तईं मनुष्य की ओर फिराते हैं तब इस के विपरीत वे कुछ नहीं जानते कि मनुष्य की बोली उन की भी बोली है और उन की और कोई बोली नहीं है। क्योंकि उसी समय वे मनुष्य की बोली में हैं पर अपनी निज बोली में नहीं हैं वरन उन की बोली की सुध भी उन को नहीं आती। परंतु ज्यों ही वे मनुष्य की ओर से अपने को फिरावें त्यों ही वे अपनी निज बोली में फिर आते हैं और मनुष्य की बोली के विषय में कुछ भी नहीं जानते। मैं ने भी यही विकार भुगता क्योंकि जब मैं दूतगण के साथ होकर उन की सी अवस्था में था तब मैं ने उन से उन की भाषा में बात चीत की और अपनी निज भाषा के विषय में न तो कुछ भी जाना और न उस का कुछ स्मरण किया। परंतु मैं उन को छोड़ते ही अपनी निज भाषा में था। यह भी कहने के योग्य है कि जब दूतगण और आत्मागण अपने तईं मनुष्य की ओर फिरावें तब वे उस के साथ किसी दूरी तक बात चीत कर सकते हैं। उन्हों ने मुझ से बहुत ही दूरी पर बात चीत की और उस समय उन की वाणी ऐसी ऊंची थी कि मानों वे पास पास थे। परंतु जब वे अपने तईं मनुष्य की ओर से फिराकर आपस में एक दूसरे से बोलता है तब मनुष्य उन की वाणी की एक भी बात नहीं सुनता यद्यपि वे उस के कानों के पास पास खड़े हों। इस से स्पष्ट है कि आत्मीय जगत में जितना निवासी आपस में एक दूसरे की ओर फिरता है उसी पर सारा संयोग अवलम्बित है। और यह भी बयान करने के योग्य है कि एक ही समय को बहुत से आत्मा मनुष्य से बात चीत कर सकते हैं और मनुष्य उन से। क्योंकि वे अपनों में से एक को उस मनुष्य के पास जिस से वे बातें करना चाहते हैं भेजते हैं और वह आत्मा अपने तईं उस की ओर फिराता है। और शेष आत्मागण अपने सन्देशहर की ओर अपने को फिराते हैं। इस आपस में के संमुख होने से वे अपने ध्यानों को एकाग्र करते हैं और वह सन्देशहर उन ध्यानों को प्रकाश करता है। सन्देशहर के मन में इस के विपरीत और कोई बोध नहीं है पर यह कि वह आप से आप बोलता है। और ऐसा ही वे भी इस के विपरीत और कुछ नहीं जानते पर यह कि वे आप से आप बोलते हैं। और इसी

तार पर आपस में एक दूसरे के संमुख होने के द्वारा एक के साथ बहुतों का संयोग होता है[८२]। इन सन्देशहरनेवाले आत्माओं के विषय में जो प्रजा कहाते हैं और उस संसर्ग के विषय में जो उन के सहाय होता है आगे चलकर अधिक बयान होगा।

२५६। कोई दूत या आत्मा अपने निज स्मरण से मनुष्य के साथ बोलने नहीं पाता परंतु केवल उस मनुष्य ही के स्मरण से। क्योंकि दूतगण और आत्मागण मनुष्य के सदृश स्मरणशक्ति रखते हैं। और यदि कोई आत्मा अपने निज स्मरण से मनुष्य के साथ बोले तो उस मनुष्य को यह मालूम होगा कि आत्मा के बोध उस के अपने ही बोध हैं। और यह ऐसा मालूम होगा कि मानों किसी को किसी बात की सुध हो जिसे उस ने न कभी सुना और न कभी देखा। और मुझे परीक्षा करने के पीछे यह हाल मालूम हुआ। इस अवस्था से प्राचीन लोगों का यह मत उपजा कि हज़ारों बरस के पीछे वे जगत में और उस के सब कारबारों में फिर आवेंगे बरन फिर आए तो वे सच मुच थे। उन्हों ने उस पर ऐसा ही विश्वास किया क्योंकि कभी कभी उन को ऐसी सुध हुई कि मानों किसी को किसी का स्मरण जो न देखने में और न सुनने में कभी आया होगा प्रत्यक्ष हुआ। और यह माया उन आत्माओं की ओर से हुई जिन का अन्तःप्रवाह उन के निज स्मरणशक्ति से मनुष्य के ध्यान के बोधों में बहे जाता था।

२५७। कोई आत्मागण जो प्राकृतिक या शारीरिक आत्मागण कहलाते हैं जब वे मनुष्य के पास आते हैं तब वे अन्य आत्माओं के सदृश उस के ध्यान से अपने को संयुक्त नहीं करते। परंतु वे उस के शरीर में जाकर सब इन्द्रियों में भर-जाकर उस के मुख में से बोल कर उस के अंगों के द्वारा काम करते हैं। और उन को इस के विपरीत कुछ ज्ञान नहीं है पर यह कि उस मनुष्य का शरीर और गुण उन का निज शरीर और गुण हैं। ये आत्मागण वे ई हैं कि जिन के अधीन मनुष्यगण पहिले थे। परंतु प्रभु ने उन को नरक में फेंक डाला और संपूर्ण रूप से दूर किया। और इस कारण आज कल कोई उन के अधीन नहीं है[८३]।

---

८२ आत्मागण जो आत्मागण की सभाओं से दूसरी सभाओं को भेजे जाते हैं प्रजाएं कहलाते हैं। न० ४४०३ • ५८५६। और आत्मीय जगत में ऐसे संदेशहरनेवाले आत्माओं के द्वारा संसर्ग किया जाता है। न० ४४०३ • ५८४६ • ५९८३। कोई आत्मा जब वह जाकर प्रजा के तौर पर काम करता है तब आप से आप कुछ ध्यान नहीं करता परंतु उन की ओर से ध्यान करता है जिन्हों ने उस को भेजा था। न० ५९८५ • ५९८६ • ५९८७।

८३ आज कल बाहरी बेढ़े अर्थात शरीर के आस पास घेरे डालने नहीं हैं जैसा कि पहिले। न० १९८३। परंतु भीतरी बेढ़े जो मन के घेर लेने हैं अब पहिले से अधिक हुआ करते हैं। न० १९८३ • ४७९३। मनुष्य भीतर में बेढ़ा जाता है जब परमेश्वर और पड़ोसी के विषय उस के मन में मलीन और घृणोत्पादक बोध उपज आते हैं। और जब उन बोधों के प्रकाशित करने में केवल दण्ड का भय उस को रोकता है और वे दण्ड ये ई हैं अर्थात कीर्त्ति यश और लाभ के बिगाड़ने का भय तथा राजाज्ञा का भय तथा जीव से मारने का भय। न० ५९९०। उन पिशाची आत्माओं के विषय जो प्रायः मनुष्य के भीतरी भागों को घेर लेते हैं। न० ४७९३। उन पिशाची आत्माओं के विषय जो मनुष्य के बाहरी भागों को घेर लेना चाहते हैं परंतु वे नरक में बन्द हुए। न० २७५२ • ५९९०।

स्वर्ग में के लिखितों के बारे में ।

२५८ । जब कि दूतगण बोल सकते हैं और उन की बोली शब्दों के द्वारा प्रकाशित होती है पस मालूम हुआ कि वे लिख भी सकते हैं। और वे अपने मन के बोधों को लिखने के द्वारा प्रकाश करते हैं जैसा कि वे बोलने के द्वारा भी। कभी कभी कागद जिस पर बहुत लेख्य लिखे हुए थे [आत्मिक तौर पर] मेरे पास आया करते थे। उन में से कोई कोई ठीक साधारण लिखितों के समान थे और कोई जगत में के छपे हुए कागदों के समान। मैं उन को उसी तौर पर पढ़ भी सका परंतु मुझे आज्ञा न थी कि दो तीन बोधों के सिवाए उन से और अधिक निकालूं। क्योंकि यह ईश्वरीय परिपाटी के विरुद्ध है कि मनुष्य धर्मपुस्तक को छोड़ स्वर्ग से किसी अन्य लेखों के द्वारा शिक्षा पावे। इसी लिये स्वर्ग का जगत से और इस कारण प्रभु का मनुष्य से संसर्ग और संयोग केवल धर्मपुस्तक ही से होता है। स्वर्ग में लिखे हुए कागद भावीवक्ताओं के आगे दिखाई दिये यह हज़कीएल की पोथी में के इन वचनों से स्पष्ट है कि "जब मैं ने देखा तो देखो एक हाथ मेरी ओर बढ़ाया हुआ है। और देखो उस में पोथी का बींड़ा है। और उस ने उसे खोलकर मेरे साम्हने रख दिया। उस में बाहर भीतर लिखा हुआ था"। (हज़कीएल पर्व २ वचन ९·१०)। और यूहन्ना ने भी यों लिखा। "मैं ने उस के दाहिने हाथ में जो गद्दी पर बैठा था एक पोथी देखी जो भीतर और बाहर लिखी हुई और सात मुहरों से बन्द थी"। (एपोकलिप्स पर्व ५ वचन १)।

२५९ । प्रभु ने धर्मपुस्तक के लिये स्वर्ग में लिखितों को प्रस्तुत किया क्योंकि धर्मपुस्तक अपने सारांश से ले ईश्वरीय सचाई है और इस से मनुष्य और दूतगण दोनों सब प्रकार का ईश्वरीय ज्ञान पाते हैं और प्रभु ने उस सचाई को सुनाया था। परंतु जो कुछ कि प्रभु सुनाता है सारे स्वर्गों में होकर क्रम करके मनुष्य तक पहुंचता है। और इस रीति से धर्मपुस्तक ऐसे तौर पर रची हुई है कि वह दूतगण का ज्ञान और मनुष्य की बुद्धि दोनों के अनुकूल हो। इस लिये धर्मपुस्तक दूतगण के पास है और वे पृथिवी पर के मनुष्यों के सदृश उस को पढ़ते हैं। वे उस पोथी के वचनों से धर्मोपदेश भी प्रगट करते हैं और उस से वे अपने धार्मिक तत्त्वों को निकालते हैं। (न० २२१)। धर्मपुस्तक स्वर्ग में और पृथिवी पर एक ही है। परंतु उस का प्राकृतिक तात्पर्य जो हमारे पास शब्दों ही का तात्पर्य है स्वर्ग में नहीं है। वहां उस का वह आत्मिक तात्पर्य है जो उस का भीतरी तात्पर्य है। आत्मिक तात्पर्य का जो स्वभाव और गुण है सो उस छोटी पोथी में जिस का नाम "उस सफेद घोड़े के बारे में जिस की सूचना एपोकलिप्स में है" देखा जा सकता है।

२६० । एक बेर स्वर्ग में से मेरे पास एक छोटा सा लेखा जिस पर केवल दो तीन बातें इब्रानी अक्षरों में लिखी हुई थीं भेजा गया था। और मुझ से यह

बात बतलाई गई कि उस के हर एक अक्षर में ज्ञान के गुप्त रहस्य समाए हुए थे। और ये रहस्य अक्षरों के झुकाव और टेढ़ाइयों में छिपे हुए थे और अक्षरों के ध्वनि में भी थे। इसी हाल से मैं ने प्रभु के इस वचन का तात्पर्य स्पष्ट रूप से समझा कि "मैं तुम से सच कहता हूं कि जब तक स्वर्ग और पृथिवी टल न जावें एक बिन्दु या एक कणिका तौरेत का कभी न मिटेगा"। (मत्ती पर्व ५ वचन १८)। कलीसिया के मेम्बर जानते हैं कि धर्मपुस्तक अपने हर एक बिन्दु के विषय ईश्वरीय है। परंतु उस का कौन सा ईश्वरत्व है सो अभी तक कोई नहीं जानता। और इसी लिये उस का कुछ बयान किया जावेगा।

सब से भीतरी स्वर्ग में लिखना नाना प्रकार के झुके हुए और मुड़े हुए रूपों का बना है और ये झुकाव और मरोड़ स्वर्ग के रूप के अनुकूल होते हैं। इन के सहाय दूतगण अपने ज्ञान के रहस्यों को प्रकाश करते हैं और इन रहस्यों में से बहुतेरे शब्दों के द्वारा कहे नहीं जा सकते। और अचम्भा की बात यह है कि दूतगण इस प्रकार के लिखने में बिना शिक्षा दिये प्रवीण हैं। क्योंकि वह उन में बोली के सदृश बैठाला हुआ है। (इस के बारे में न० १३६ को देखो)। और इस लिये यह लिखना स्वर्गीय लिखना है। जो कि किसी से सिखलाया नहीं जाता परंतु वह स्वाभाविक है। क्योंकि दूतगण के ध्यान और अनुराग का सारा फैलाव और इस से उन की बुद्धि और ज्ञान का सारा संसर्ग स्वर्ग के रूप के अनुसार होता है। (न० २०१)। और इस से उन का लिखना भी उसी रूप में बहता है। मुझ को यह कहा गया कि इस पृथिवी पर के सब से प्राचीन लोग अक्षरों की रचना से पहिले उसी तौर पर लिखा करते थे। और उस प्रकार के लिखने का इब्रानी अक्षर हो गया और प्राचीनकाल में ये अक्षर सब के सब मुड़े हुए थे। उन में से एक भी अक्षर ऐसे चौकोण रूप का न था जैसा कि इन दिनों बरताव में है और इसी कारण धर्मपुस्तक के बिन्दुओं और कणिकों और सब से सूक्ष्म भागों में स्वर्गीय रहस्य और देवकीय बातें छिपी रहती हैं।

२६१। इस प्रकार का लेखा जिस के अक्षर स्वर्ग के रूप पर हैं सब से भीतरी स्वर्ग में काम में आता है जहां निवासी सब से ज्ञानी हैं। और ऐसे अक्षरों से वे उन अनुरागों को जिन करके अपने बोध यथाक्रम एक दूसरे के पीछे चलकर बहते हैं प्रसङ्ग के स्वभाव के अनुसार प्रकाश करते हैं। और इस से उन के लेखों में ऐसे रहस्य हैं जो ध्यानगोचर से बाहर हैं। मैं उस प्रकार के लिखितों को देखने पाया जो अधमतर स्वर्गों में नहीं होते। क्योंकि वहां के लेखे जगत के लेखों के समान हैं और वे जगत के अक्षरों के बने हुए हैं। तो भी वे मनुष्य की समझ में नहीं आते क्योंकि वे दूतविषयक भाषा में लिखे हुए हैं जो कि मानुषक भाषाओं से कुछ संबन्ध नहीं रखती। (न० २३७)। क्योंकि वे स्वरों के द्वारा अनुरागों को प्रकाश करते हैं और व्यञ्जनों के द्वारा ध्यान के उन बोधों को जो अनुरागों से निकलते हैं उच्चारण करते हैं और शब्दों के द्वारा जिन में स्वर और

व्यञ्जन मिले हुए हैं अपने साधारण अभिप्रायों को स्पष्ट करते हैं। (न० २३६ · २४१ देखो)। इस प्रकार के लेखे जिन के उदाहरण मुझ को दिखलाए गये थे थोड़े शब्दों के सहाय इतना कुछ प्रकाश करते हैं जितना मनुष्य कई एक पृष्ठों में लिख नहीं सकता। धर्मपुस्तक अधमतर स्वर्गों में इसी रीति पर लिखी हुई है परंतु सब से भीतरी स्वर्ग में वह स्वर्गीय रूपों के अनुकूल लिखी हुई है।

२६२। यह कहने के योग्य है कि स्वर्गों में लिखना दूतगण के ध्यान ही ध्यान से सहज में बहता जाता है और इतनी सुगमता से बनाया जाता है कि मानों ध्यान आकार लिये आगे चलता है। और हाथ को भी शब्दों के चुन लेने में कुछ रुकावट नहीं पड़ती। क्योंकि शब्द आप चाहे वे लिखे जावें या बोले जावें दूतविषयक ध्यान के बोधों से प्रतिरूपता रखते हैं और सब प्रकार की प्रतिरूपता स्वाभाविक और स्वेच्छापूर्वक होती है। स्वर्गों में ऐसे लेखे भी हैं जो विना हाथ के लिखे हुए हैं और ये केवल बोधों ही से प्रतिरूपता रखने से निकलते हैं। परंतु ये दीर्घस्थायी नहीं हैं।

२६३। मैं ने ऐसे लेखों को स्वर्ग से आए हुए देखा जिस में केवल यथाक्रम लिखे हुए अंकों या संख्याओं को छोड़ जो कि ठीक ठीक उन लेखों के समान थे जिन में अक्षर और शब्द हैं और कुछ न था। और मैं ने यह शिक्षा पाई कि यह लेखा सब से भीतर स्वर्ग से है और स्वर्गीय दूतगण का लिखना (जिस के बारे में न० २६० · २६१ को देखो) किसी अधमतर स्वर्ग के दूतों के साम्हने तब अंकों के रूप पर है जब वह ध्यान जो उस लिखने से निकलता है वहां को नीचे बहता है। और इन अंकमय लेखों में भी ऐसे रहस्य हैं जो न तो ध्यान में आ सकते हैं न शब्दों से प्रकाश हो सकते हैं। सब अंकों के लिये प्रतिरूप हैं और उन के लिये शब्दों के सदृश प्रतिरूपता के अनुसार तात्पर्य भी हैं[८४]। परंतु इन के बीच यह अन्तर है कि अंकों में सर्वसाधारण बोध हैं और शब्दों में विविक्त बोध हैं। और जब कि एक सर्वसाधारण बोध में बहुत से विविक्त बोध समाते हैं तो उन लेखों में जो अंकों के बने हैं उन लेखों की अपेक्षा जो अक्षरों के बने हैं अधिक रहस्य समाते हैं। मैं ने इस परीक्षा से यह समझा कि धर्मपुस्तक में शब्दों को छोड़ अंकों से भी तात्पर्य वस्तुएं हैं। अर्काना सीलेस्टिया की पोथी में जहां अंको के बारे में कुछ बयान है यह देखा जा सकता है कि २ · ३ · ४ · ५ · ६ · ७ · ८ · ९ · १० · १२ के अंकों का क्या तात्पर्य है और २० · ३० · ५० · ७० · १०० · १४४ · १००० · १०००० · १२००० गुणे हुए अंकों का क्या तात्पर्य है। स्वर्ग में

---

८४ धर्मपुस्तक में सारे अंक वस्तुओं के तात्पर्य से समझे जाते हैं। न० ४८२ · ४८७ · ६४७ · ६४८ · ७५५ · ८१३ · १९६३ · १९८८ · २०७५ · २१५२ · ३२५२ · ४२६४ · ४६७० · ६१७५ · ९४८८ · ९६५९ · १०२१७ · १०२५३। यह बात स्वर्ग से प्रकाशित हुई। न० ४४९५ · ५२६५। गुणन के फल का तात्पर्य गुण्य और गुणक के तात्पर्यों से एकसां है। न० ५२९१ · ५३३५ · ५७०८ · ७९७३। सब से प्राचीन लोग अंकों में ऐसे स्वर्गीय रहस्य पाते थे कि कलीसिया की वस्तुओं के विषय एक प्रकार का गिनना बन जाता था। न० ५७५।

संख्यासंबन्धी लिखने में वह अंक जिस पर पीछेआनेवाले अंक अपने प्रसङ्गों के विषय अवलम्बन करते हैं सदैव और अंकों से आगे लिखा जाता है। क्योंकि वह अंक ऐसा है कि मानों वह किसी प्रसङ्ग का दर्शक है। और उसी अंक से पीछेआने-वाले अंक उस प्रसङ्ग के साथ अपने विशेष संबन्ध पाते हैं।

२६४। वे जो स्वर्ग के स्वभाव से अपरिचित हैं और जो स्वर्ग के विषय इस बोध से अतिरिक्त कि वह एक वायुमण्डलसंबन्धी जगह है कि जिस में दूतगण बुद्धिमान मनों के रूप पर श्रवणशक्ति और दृष्टिशक्ति के विना इधर उधर उड़ जाते हैं और किसी बोध पर विश्वास करने से विरक्त हैं उन की समझ में यह नहीं आ सकता कि दूतगण बोल सकते हैं और लिख सकते हैं। क्योंकि वे हर किसी वस्तु का होना प्रकृति में रख देते हैं। परंतु तिस पर भी यह सच है कि जो वस्तु स्वर्ग में हैं वे ऐसी वास्तव होती हैं जैसा कि वे वस्तुएं हैं जो जगत में हैं। और दूतगण को सब गुण हैं जिन से जीवन और ज्ञान के प्रयोजनों के लिये काम निकलता है।

स्वर्ग में के दूतगण के ज्ञान के बारे में।

२६५। दूतविषयक ज्ञान का स्वभाव कठिनता से समझ में आता है क्योंकि वह मानुषक ज्ञान से इतनी दूरी तक बढ़ता जाता है कि सब प्रकार का उपमा देना प्रतिबद्ध होता है। और जो कुछ कि इस पद तक सर्वोत्कृष्ट होता है सो ऐसा मालूम होता है कि जैसा वह नहीं होता। इस प्रकार के ज्ञान का बयान करना विना उन सचाइयों की सहायता के जो इस समय तक अज्ञात हैं असम्भाव्य है। परंतु जो अज्ञात है सो समझ में उन छायाओं के सदृश पड़ता है जो ध्यान के बोध के सच्चे गुण को छिपाती हैं। तो भी वे अज्ञात सचाइयें ज्ञान में और समझ में आ सकती हैं यदि किसी के मन को ज्ञान के खोज में आनन्द हो। क्योंकि आनन्द अपने साथ ज्योति ले जाता है इस वास्ते कि आनन्द प्रेम से निकलता है। और ज्योति स्वर्ग से उस पर जो दैवकीय और स्वर्गीय ज्ञान से प्रेम रखते हैं चमकती है और उन की ज्ञानशक्ति को प्रकाशित करती है।

२६६। दूतगण के ज्ञान के स्वभाव का अनुमान इस हाल से किया जा सकता है कि वे स्वर्ग की ज्योति में रहते हैं। क्योंकि स्वर्ग की ज्योति सारांश से ले ईश्वरीय सचाई या ईश्वरीय ज्ञान है। और यह ज्योति एक ही समय उन की भीतरी दृष्टि को जो मन की दृष्टि है प्रकाशित करती है और उन की बाहरी दृष्टि को भी जो आंख की दृष्टि है। स्वर्ग की ज्योति ईश्वरीय सचाई या ईश्वरीय ज्ञान है। यह बात न० १२६ वें से १३३ वें तक के परिच्छेदों में लिखी गई है। दूतगण स्वर्गीय गरमी में जो सारांश से ले ईश्वरीय भलाई या ईश्वरीय प्रेम है रहते हैं और इस से वे ज्ञानी होने का लोभ और इच्छा पाते हैं। स्वर्ग की गरमी ईश्वरीय भलाई या ईश्वरीय प्रेम है। इस बात के बारे में न० १३३ से १४० तक देखो। दूतगण ज्ञान के तत्त्वों से परिचित हैं और इस कारण वे शरीररूपी

ज्ञान कहे जा सकें। इस बात का अनुमान इस हाल से निकलता है कि उन के सब ध्यान और अनुराग स्वर्ग के अर्थात ईश्वरीय ज्ञान के रूप के अनुसार बहते हैं और उन के भीतरी भाग जो ज्ञान को ग्रहण करते हैं उस रूप के अनुकूल प्रस्तुत हुए हैं। दूतगण के ध्यान और अनुराग और इस से उन की बुद्धि और ज्ञान स्वर्ग के रूप के अनुसार बहता है। (न० २०१ से २१२ तक देखो)। दूतगण उत्तमोत्तम ज्ञानी हैं। यह अधिक स्पष्टता से इस हेतु होता है कि उन की बोली ज्ञान की बोली है। क्योंकि वह ध्यान से सीधी आप से आप उस तौर पर बहती है जिस तौर पर ध्यान अनुराग से बहता है। इस कारण उन की बोली ध्यान और अनुराग के एक बाहरी रूप पर है। और यह वही कारण है कि जिस से ईश्वरीय अन्तःप्रवाह से कुछ भी उन को उठा नहीं ले जा सकता और उन के ध्यान में कोई बाहरी बोध प्रवेश नहीं करता जैसा कि मनुष्य का हाल है जब कि वह बात चीत करता है। दूतगण की बोली उन के ध्यान और अनुराग की बोली है। (न० २३४ से २४५ तक देखो)। एक अन्य बात भी दूतगण के ज्ञान का प्रताप बढ़ाती है और वह यह है कि सब कुछ जिस को उन की आंखें देखती हैं और उन के इन्द्रिय मालूम करते हैं उन के ज्ञान के अनुकूल होता है। क्योंकि वे प्रतिरूप हैं और इस से वे ऐसे रूप हैं कि जो ज्ञानसंबन्धी वस्तुओं के प्रतिनिधि होते हैं। सब वस्तुएं जो स्वर्ग में दिखाई देते हैं दूतगण के भीतरी भागों से प्रतिरूपता रखती हैं और उन के ज्ञान के प्रतिनिधि हैं। इस बात का प्रमाण न० १७० वें से १८२वें तक के परिच्छेदों में देखा जा सकता है। इस से व्यतिरिक्त दूतगण के ध्यान फैलाव और काल के बोधों के द्वारा ऐसे घेरे हुए और रोके हुए नहीं हैं जैसा कि मनुष्यों के ध्यान घेरें हुए हैं। क्योंकि फैलाव और काल प्रकृति के हैं और वस्तुएं जो प्रकृति को योग्य हैं मन को आत्मीय वस्तुओं से हर लेती हैं और बुद्धिसंबन्धी दृष्टि का बढ़ाव भी हर लेती हैं। दूतगण के बोध काल और फैलाव से कुछ भी नहीं लेते और इस से उन के अवधि नहीं हैं जैसा कि मनुष्य के बोध सिवानों से घेरे हुए हैं। इस बात के बारे में न० १६२ से १६९ तक और १९१ से १९९ तक देखो। न तो वे पार्थिव और भौतिक वस्तुओं की ओर नीचे खींचे जाते हैं न जीविका की आवश्यकताओं की चिन्ता के द्वारा उन को रोकटोक मिलती है। और इस से दूतगण इन बातों के द्वारा ज्ञान के आनन्द की ओर से नहीं लुभाए जाते जैसा कि मनुष्य जगत में बहकाए जाते हैं। क्योंकि उन की सब आवश्यकता की वस्तुओं को प्रभु उन को सेंत देता है। उन को कपड़े सेंत दिये जाते हैं वे आहार को विना मूल्य पाते हैं और उन को घर भी सेंत दिये जाते हैं। (न०१८१ · १९०)। तिस पर भी उन को प्रभु की ओर से ज्ञान ग्रहण करने के अनुसार आनन्द और सुख दिया जाता है। ये बातें इस वास्ते लिखी गई हैं कि यह मालूम हो कि दूतगण अपने उत्तमोत्तम ज्ञान कहां से पाते हैं[८५]।

---

८५ दूतगण का ज्ञान अबोधनीय और अकथनीय है। न० २७९५ · २७९६ · २८०२ · ३३१४ · ३४०४ · ३४०५ · ९०९४ · ९१७६।

२६७। दूतगण इतने उत्तमोत्तम ज्ञान को ग्रहण करने के योग्य हैं क्योंकि उन के भीतरी भाग खुले हुए हैं और ज्ञान हर प्रकार की उत्कृष्टता के सदृश भीतरी भागों की ओर बढ़ता जाता है और जितना भीतरी भाग खुले हुए हैं उतना ही ज्ञान बढ़ता भी जाता है[८६]। हर एक दूत के जीव के तीन अवस्थाएं हैं जो तीनों स्वर्गों से प्रतिरूपता रखते हैं। (न० २९ से ४० तक देखो)। जिन की पहिली अवस्था खुली हुई है वे पहिले अर्थात अन्तिम स्वर्ग में हैं। जिन की दूसरी अवस्था खुली हुई है वे दूसरे अर्थात मझले स्वर्ग में हैं। और जिन की तीसरी अवस्था खुली हुई है वे तीसरे अर्थात सब से भीतरी स्वर्ग में हैं। दूतगण का ज्ञान स्वर्ग में इन अवस्थाओं के अनुसार होता है। और इस से सब से भीतरी स्वर्ग के दूतगण का ज्ञान मझले स्वर्ग के निवासियों के ज्ञान से कहीं बढ़कर उत्तमोत्तम है। और मझले स्वर्ग के दूतगण का ज्ञान अन्तिम स्वर्ग के निवासियों के ज्ञान से कहीं बढ़कर उत्तमोत्तम है। (न० २०९ · २१० देखो)। और अवस्थाओं के बारे में न० ३८ को देखो। ऐसी ऐसी भिन्नताएं होती हैं क्योंकि वस्तुएं जो उत्तमतर अवस्था पर हैं अधिक सूक्ष्म और विविक्त हैं। और वे जो अधमतर अवस्था पर हैं सर्वसाधारण वस्तुएं हैं और सर्वसाधारण वस्तुओं में विविक्त वस्तुएं समाती हैं। क्योंकि विविक्त वस्तुएं सर्वसाधारण वस्तुओं की अपेक्षा इतनी हैं कि जितनी हज़ारों या करोड़ों वस्तुओं हैं एक ही की अपेक्षा। और जब उत्तमतर स्वर्ग के दूतगण के ज्ञान की उपमा अधमतर स्वर्ग के दूतगण के ज्ञान से दी जाती है तब वह भी उसी तौर पर देख पड़ती। पर तौ भी अधमतर दूतगण का ज्ञान मनुष्य के ज्ञान की अपेक्षा उसी परिमाण तक उत्तमोत्तम होता है। क्योंकि मनुष्य शारीरिक स्वभाव में है और उस स्वभाव की विषयी वस्तुओं में। और मनुष्य की शारीरिक विषयी वस्तुएं उस के स्वभाव की सब से नीचे अवस्था में हैं। इस से उन का कैसा कुछ ज्ञान है जो विषयी वस्तुओं की ओर से ध्यान करते हैं और जो विषयी मनुष्य कहलाते हैं सो स्पष्ट है अर्थात उन को कुछ भी ज्ञान नहीं है केवल उन का सयानपन है[८७]। वे जो अपने ध्यानों को विषयी वस्तुओं से ऊपर

---

८६ जितना मनुष्य बाहरी वस्तुओं से ले भीतरी वस्तुओं की ओर उठता जाता है उतना ही वह ज्योति और ज्ञानशक्ति में आता जाता है। न० ६१८३ · ६३१३। यह उत्थापन वास्तव में होता है। न० ७८१६ · १०३३०। क्योंकि बाहरी वस्तुओं से ले भीतरी वस्तुओं तक उत्थापित होना धुन्धले से ज्योति में उठने के बराबर है। न० ४५९८। बाहरी वस्तुएं मनुष्य में के ईश्वरत्व से दूर हैं और इस से वे अधिक धूमली हैं। न० ६४५१। और वे उलझी पुलझी हैं। न० ९९६ · ३८५५। भीतरी वस्तुएं बहुत संपन्न हैं क्योंकि वे ईश्वरत्व के पास हैं। न० ५१४६ · ५१४७। और उन में हज़ारों वस्तुएं हैं जो बाहर एक साधारण वस्तु के समान दिखाई देती हैं। न० ५७०७। और इस से जितना ध्यान और चैतन्य भीतर की ओर है उतना ही वे स्पष्ठ होते हैं। न० ५९२०।

८७ विषयी [मन] मनुष्य के जीव का अन्तिम है और वह शरीरी वस्तुओं पर चिपटता है और उन में छिपा रहता है। न० ५०७७ · ५७६७ · ९२१२ · ९२१६ · ९३३१ · ९७३०। वह विषयी मनुष्य है जो शरीर के इन्द्रियों के सहाय सब बातों का विचार और निर्णय करता है और जो किसी बात पर प्रत्यय नहीं करता इस को छोड़ कि जिस को वह अपनी आंखों से देख सकता है और अपने हाथों से छू सकता है। न० ५०९४ · ७६९३। ऐसा मनुष्य बाहरी तौर पर ध्यान करता है

उठाते हैं और विशेष करके वे जिन के भीतरी भाग स्वर्ग की ज्योति के विषय खुले हुए हैं और ही अवस्था में हैं।

२६८। यह भी स्पष्ट है कि दूतगण का ज्ञान कैसा बड़ा है। क्योंकि स्वर्गों में सब वस्तुओं का परस्पर संसर्ग है। हर किसी की बुद्धि और ज्ञान का दूसरों से परस्पर सहभोग होता है। क्योंकि स्वर्ग सब प्रकार की भलाइयों का संसर्ग है। इस वास्ते कि स्वर्गीय प्रेम यह चाहता है कि जो कुछ स्वर्ग का है सो ई औरों का भी हो। इस लिये स्वर्ग में तब तक कोई अपनी भलाई को भलाई नहीं मानता जब तक कि वह भलाई दूसरों में भी विद्यमान न हो। यह तो स्वर्ग के सुख का कारण है और दूतगण इस गुण को प्रभु से पाते हैं क्योंकि यह ईश्वरीय प्रेम का गुण है। मुझ को परीक्षा से मालूम हुआ कि स्वर्गों में ऐसा संसर्ग होता है। क्योंकि कोई कोई भोले आत्मा स्वर्ग पर पहुंचाए गये थे और जब वे वहां पहुंचे तो उन्हों ने दूतगण का ज्ञान भी पाया और ऐसी वस्तुओं को समझा जो पहिले वे समझ नहीं सकते थे और उन्हों ने ऐसी बातें कहीं जो कि वे अपनी पहिली अवस्था में कहने के योग्य न थे।

२६९। दूतगण के ज्ञान का स्वभाव शब्दों से कहा नहीं जा सकता परंतु वह किसी साधारण बातों के सहाय कुछ कुछ प्रकाशित किया जा सकता। दूत-गण एक ही शब्द से उस को बयान कर सकते हैं जिस को मनुष्य हज़ार शब्दों से बयान नहीं कर सकता। और इस के सिवाए एक दूतविषयक बात में असंख्य ऐसी वस्तुएं हैं जिन का बयान मानुषक भाषाओं के सब शब्द नहीं कर सकते। क्योंकि दूतगण के हर एक शब्द में ज्ञान के ऐसे रहस्य लगातार श्रेणी के तौर पर हैं जो मानुषक विद्या से बाहर हैं। दूतगण अपनी वाणी की ध्वनि के सहाय उस अभिप्राय का प्रकाश करते हैं जो वे शब्दों से संपूर्ण रूप पर बयान नहीं करते। और उस ध्वनि में कहे हुए प्रसङ्ग का अनुराग अपने विविक्त भागों की परिपाटी के अनुसार यथाक्रम होता है। क्योंकि (जैसा कि हम न० २३६ वें से २४१ वें तक के परिच्छेदों में कह चुके हैं) वे ध्वनि से अनुराग को और शब्दों से ध्यान के उन बोधों को जो अनुरागों से पैदा होते हैं प्रकाश करते हैं। यह वही कारण

और न अपने में भीतरी तौर पर। न० ५०८९ · ५०९४ · ६५६४ · ७६९३। क्योंकि उस के भीतरी भाग बन्द हुए हुए हैं इस कारण वह उन में आत्मीय सचाई के विषय कुछ नहीं देखता है। न० ६५६४ · ६८४४ · ६८४५। संक्षेप में वह स्थूल प्राकृतिक ज्योति में है और इस से वह कुछ भी नहीं मालूम करता है जो स्वर्ग की ज्योति से निकलता है। न० ६२०१ · ६३१० · ६५६४ · ६८४४ · ६८४५ · ९५९८ · ६६१२ · ६६१४ · ६६२२ · ६६२४। क्योंकि भीतर में वह उन वस्तुओं के विरुद्ध हैं जो स्वर्ग और कलीसिया से संबन्ध रखती हैं। न० ६२०१ · ६३१६ · ६८४४ · ६८४५ · ६९४८ · ६९४९। विद्वान लोग जो अपने तईं कलीसिया की सचाइयों से विपरीत करते हैं वैसी अवस्था में हैं। न० ६३१६। विषयी मनुष्य औरों से अधिक कपटी और हिंसाशील होते हैं। न० ७६९३ · १०२३६। वे तिखाई से और निपुणता के साथ तर्क करते हैं परंतु वे शारीरिक स्मरणशक्ति के सहाय कि जिस में उन के निकट सारी बुद्धि रहती है तर्क करते हैं। न० १९५ · १९६ · ५७०० · १०२३६। और उन का तर्क करना इन्द्रियों के हेत्वाभासों पर अवलम्बित है। न० ५०८४ · ६९४८ · ६९४९ · ७६९३।

है कि जिस से स्वर्ग में जो बातें सुनने में आती हैं वे अकथनीय कहलाते हैं। दूतगण थोड़े शब्दों के सहाय किसी पोथी का सारा प्रसङ्ग कह सकते हैं। और वे उस के प्रत्येक शब्द में भीतरी ज्ञान मिला दे सकते हैं। क्योंकि उन की बोली ऐसी है कि उस की हर एक ध्वनि उन के अनुरागों से मिलती है और हर एक शब्द उन के बोधों से श्रुतिसुख करता है। उन के शब्द भी बातों की उस श्रेणी के अनुसार जो उन के ध्यान में एक ही समष्टि बनती है असंख्य रीतियों से रूपान्तर होते हैं। भीतरी दूतगण किसी बोलनेवाले के सारे जीवन को उस की वाणी की ध्वनि से थोड़े शब्दों के साथ भी मालूम कर सकते हैं। क्योंकि ध्वनि ही से शब्दों में के बोधों को रूपान्तर किये पर वे उस के उस प्रधान अनुराग को मालूम करते हैं जिस में उस के जीवन की सब बातें लिखी गई हैं[८८]। इन बातों से दूतविषयक ज्ञान का स्वभाव कुछ कुछ समझा जा सकता है। दूतविषयक ज्ञान मानुषक ज्ञान की अपेक्षा इतना है जितना एक की अपेक्षा करोड़। और ऐसा है कि जैसा सारे शरीर की गतिकारक शक्तियें जो असंख्य हैं संबन्ध रखती हैं उस कार्य से जो उन से पैदा होता है और जिस में वे शक्तियें एक ही देख आती हैं। या वह ज्ञान ऐसा है कि जैसा एक पदार्थ के सारभूत जो किसी सूक्ष्मदर्शकयन्त्र के द्वारा देखने में आते हैं उन निष्प्रभ पदार्थ से जो आंख ही को दृष्टि आता है संबन्ध रखते हैं। उस का हम उदाहरण देकर बयान करेंगे। एक दूत ने अपने ज्ञान से पुनर्जन्म का बयान किया और उस में सैकड़ों रहस्यों को क्रम करके निवेदन किया और हर एक रहस्य में और भी रहस्य थे जो अधिक भी भीतरी थे। इस बयान में आदि से अन्त तक सारा प्रसङ्ग समाता था। क्योंकि उस ने यह बतलाया कि क्योंकर आत्मीय मनुष्य नया जन्म पा सकता है कि मानों वह मा के पेट में फिर होकर और जन्म लेकर बढ़े और क्रम क्रम से व्युत्पन्नता तक पहुंचे। और उन ने यह कहा कि "मैं इन रहस्यों को हज़ारों तक बढ़ा सकता हूं और जो मैं ने बतलाया सो केवल बाहरी मनुष्य के पुनर्जन्म से संबन्ध रखता है परंतु असंख्य और बातें हैं जो भीतरी मनुष्य के पुनर्जन्म से संबन्ध रखती हैं"। इस दृष्टान्त और ऐसे ही और दृष्टान्तों से जो मैं ने दूतगण के मुख से सुने थे मुझे यह स्पष्ट मालूम हुआ कि उन के ज्ञान की कैसी महिमा है और उस की

---

८८ जो कुछ किसी मनुष्य पर प्रबल होकर राज करता है सो उस के जीवन की प्रत्येक बात में विद्यमान है और इस से उस के अनुराग और ध्यान की हर एक बात में। न० ४४५६ • ५१४६ • ६१५६ • ६५७१ • ७६४८ • ८०६७ • ८८५३ से ८८५८ तक। मनुष्य का गुण उस के प्रधान प्रेम के अनुकूल है। न० ६१८ • १०४० • ८८५८। यह बात दृष्टान्तों से प्रकाशित है। न० ८८५४ • ८८५७। जो सर्वत्र विराजता है वह मनुष्य के आत्मा का जीव है। न० ७६४८। और वह उस का निज संकल्पशक्ति भी है और उस का निज प्रेम है और उस के जीवन का परमार्थ भी है। क्योंकि जो कुछ कोई मनुष्य चाहता है उसी को वह प्यार करता है और जो कुछ वह प्यार करता है सो वह एक अभिप्राय मानता है। न० १३१७ • १५६८ • १५७१ • १९०९ • ३७९६ • ५९४९ • ६९३६। इस कारण मनुष्य का गुण उस के संकल्प के अनुकूल है और वह उस के प्रधान प्रेम का है और उस के जीवन के परमार्थ का भी है। न० १५६८ • १५७१ • ३५७० • ४०५४ • ६५७१ • ६९३८ • ८८५६ • १००७६ • १०१०९ • १०११० • १०२८४।

अपेक्षा मनुष्य की अज्ञानता कैसी बड़ी है। क्योंकि यह केवल कठिनता से जानता है कि पुनर्जन्म क्या है और वह अपने शरीर में उस की बढ़ती के विषय एक कलास तक को भी नहीं जानता।

२७०। अब कुछ बयान तीसरे या भीतरी स्वर्ग के दूतगण के ज्ञान का किया जाता है और कैसा कुछ वह पहिले या अन्तिम स्वर्ग के दूतगण के ज्ञान से बढ़कर होता है। तीसरे या भीतरी स्वर्ग के दूतगण का ज्ञान अन्तिम स्वर्ग के निवासियों को अबोधनीय है। क्योंकि तीसरे स्वर्ग के दूतगण के भीतरी भाग तीसरी अवस्था तक खुले हुए हैं। परंतु पहिले स्वर्ग के दूतगण के भीतरी भाग केवल पहिली अवस्था तक खुले हुए हैं। और सारा ज्ञान भीतरी भागों की ओर बढ़ता जाता है। और जितनी अवस्थाओं तक वे खुले हुए हैं उतनी ही तक वे व्युत्पन्न हैं। (न० २०८ · २६७)। जब कि तीसरे या भीतरी स्वर्ग के दूतगण के भीतरी भाग तीसरी अवस्था तक खुले हुए हैं तो ईश्वरीय सचाइयें उन पर मानों लिखी हुई हैं। क्योंकि तीसरी अवस्था के भीतरी भाग दूसरी या पहिली अवस्थाओं की अपेक्षा अधिक संपन्नभाव से स्वर्ग के रूप पर हैं। और स्वर्ग का रूप ईश्वरीय सचाई से होता है और इस लिये वह ईश्वरीय ज्ञान के अनुकूल है। यह वही कारण है कि जिस से ईश्वरीय सचाइयें ऐसी मालूम होती हैं कि मानों वे उन दूतों पर लिखी हुई हैं। या ऐसी मालूम होती हैं कि मानों वे अन्तर्वर्त्ती और अन्तर्जात हैं। और इस लिये ज्यों ही वे सच्ची ईश्वरीय सचाइयों को सुनते हैं त्यों ही वे उसी क्षण अङ्गीकार करके उन को मालूम करते हैं और पीछे ऐसा है कि जैसा वे अपने में उन को भीतरी तौर पर देखते हैं। जब कि तीसरे स्वर्ग के दूतगण का ऐसा स्वभाव है तो वे ईश्वरीय सचाइयों के बारे में कभी नहीं तर्क करते हैं। और न उन के विषय कुछ भी वादानुवाद करते हैं कि क्या यह ऐसा है कि नहीं। और न वे यह जानते हैं कि विश्वास करना और श्रद्धा लाना क्या हैं। क्योंकि वे यह पूछते हैं कि "श्रद्धा किस को कहते हैं। हम देखते हैं और मालूम करते हैं कि यह ऐसा है"। और इस का बयान दृष्टान्त देकर वे यों करते हैं कि "एक मनुष्य को जो अपने में सचाई का संपूर्ण हाल देख सकता है उकसाकर यह कहना कि श्रद्धा रखो ऐसा है कि जैसा कोई मनुष्य एक घर में जाकर उस को देखकर और उस में के सब सामान को जांचता है और उस के आस पास सैर करता है तो उस को भी कहना कि तुम इन पर श्रद्धा लाओ और जो कुछ तुम देख रहे हो उस पर विश्वास करो। अथवा ऐसा है कि जैसा किसी मनुष्य को जो एक फुलवाड़ी को उस के वृक्ष फल फूल समेत देखता है यह कहना कि तुम यह सच मानो कि यह फुलवाड़ी है और ये वृक्ष फल इत्यादि सच मुच वृक्ष फल हैं जब कि वह आप अपनी आंखों से उन को स्पष्ट रूप से देख रहा है"। यह वही कारण है कि जिस से तीसरे स्वर्ग के दूतगण श्रद्धा की बात कभी नहीं काम में लाते और उन को उस का कुछ भी बोध नहीं

है। और इस से वे न तो ईश्वरीय सचाइयों के विषय तर्क भी करते हैं न किसी सच्ची बात के बारे में वादानुवाद भी करते हैं कि क्या यह ऐसा है कि नहीं[८६]। परंतु पहिले या अन्तिम स्वर्ग के दूतगण के भीतरी भागों में ईश्वरीय सचाइयें इसी तौर पर नहीं लिखी हुई हैं। क्योंकि उन के विषय जीवन का केवल एक ही अवस्था खुली हुई रहती है और इस से वे सचाइयों के बारे में तर्क करते हैं। और वे जो तर्क करते हैं उस आसपासवाली वस्तु को छोड़ कि जिस के विषय वे तर्क करते हैं कठिनता से और किसी वस्तु को देख सकते हैं। और यदि वे उस से आगे बढ़े तो उन का केवल यह अभिप्राय है कि वे वादानुवाद करने से उस की प्रतीति करें। और जब उन्हों ने उस की प्रतीति की तब वे कहते हैं कि यह श्रद्धा की बात है और इस पर विश्वास करना चाहिये। मैं ने इन प्रसङ्गों के बारे में दूतगण के साथ बात चीत की और उन्हों ने मुझ से कहा कि तीसरे स्वर्ग के और पहिले स्वर्ग के दूतगण के ज्ञान में जो अन्तर है ऐसा है जैसा कि वह अन्तर जो उज्ज्वलता और अन्धकार के बीच है। उन्हों ने तीसरे स्वर्ग के दूतगण के ज्ञान की किसी शोभायमान राजगृह से उपमा दी जिस में सब प्रकार की उपकारकी वस्तुएं भरी हुई हैं और जो एक विस्तीर्ण सुखलोक के मध्य में नाना प्रकार की शोभायमान वस्तुओं से घेरा हुआ बना है। और उन्हों ने यह भी कहा कि वे दूतगण ज्ञान की सचाई में हैं इस लिये वे उस राजगृह में जा सकते हैं और उस के सब सामान को देख सकते हैं और इधर उधर उस सुखलोक में फिरकर उस के सुखों से आनन्द पा सकते हैं। परंतु उन की जो सचाइयों के बारे में तर्क करते हैं और विशेष करके उन की जो वादानुवाद करते हैं और ही अवस्था है। क्योंकि वे दूतगण सचाई की ज्योति से सचाइयों को नहीं देखते। पर वे या तो औरों से या धर्मपुस्तक के शब्दों ही के तात्पर्य से जो भीतरी तौर पर समझा नहीं जाता उन को पाते हैं। और इस लिये वे कहते हैं कि उन पर विश्वास करना चाहिये या उन पर श्रद्धा लाना अवश्य है। और पीछे से वे अनिच्छु हैं कि भीतरी दृष्टि उन सचाइयों पर पड़ें। इस प्रकार के लोगों के विषय में दूतगण ने कहा कि वे ज्ञान के राजगृह के बाहरी फाटक तक भी नहीं पहुंच सकते उस में पैठने की और उस के सुखलोकों में फिरने की तो क्या सूचना है। क्योंकि वे उस पथ की आदि पर जो उस राजगृह की ओर ले चला है खड़े रहते हैं। परंतु उन की

---

८६ स्वर्गीय दूतगण असंख्य बातों से परिचित हैं और आत्मीय दूतगण की अपेक्षा कहीं बढ़कर ज्ञानी हैं। न० २७१८। वे आत्मीय दूतगण के सदृश श्रद्धा के किसी तत्त्व से न तो ध्यान करते हैं और न बोलते हैं क्योंकि वे प्रभु की ओर से श्रद्धा की हर एक बात के विषय गोचर पाते हैं। न० २०२ • ५९७ • ६०७ • ७८४ • ११२१ • १३८७ • १३९८ • १४४२ • १९१९ • ७६८० • ७८७७ • ८७८० • ९२७७ • १०३३६। और श्रद्धा की सचाइयों के विषय केवल वे यह कहा करते हैं कि हां कि हां और नां कि नां। परंतु आत्मीय दूतगण वादानुवाद करते हैं कि क्या यह ऐसा है कि नहीं। न० २७१५ • ३२४६ • ४४४८ • ९१६६ • १०७८६। और यहां प्रभु के इस वचन का विवर्ण किया गया है कि "तुम्हारी बोल चाल में हां कि हां और नां कि नां होनी चाहिये"। (मत्ती पर्व ५ वचन ३६)।

जो सचाइयों में आप हैं और ही अवस्था है। क्योंकि उन ही की असीमा बढ़ती को कुछ भी नहीं रोकता। इस वास्ते कि जहां कहीं वे चले जाते हैं ऐसी सचाइयें जो दृष्टिगोचर हैं उन को ले जाती हैं और उन के आगे बड़े बड़े मैदान दिखलाती हैं। हर एक सच्ची बात असीम फैलाव की है और बहुत सी अन्य सचाइयों से संयुक्त होती है। उन्हों ने यह भी कहा कि भीतरी स्वर्ग के दूतगण के ज्ञान का यह विशेष लक्षण है कि उस के द्वारा दूतगण प्रत्येक वस्तु में ईश्वरीय और स्वर्गीय पदार्थों को देखते हैं और पदार्थों की एक श्रेणी में वे अद्भुत वस्तुओं को देखते हैं। क्योंकि सब वस्तुएं जो उन की आंखों के साम्हने दिखाई देते हैं प्रतिरूप हैं। और इस लिये जब वे राजगृह और फुलवाड़ी को देखते हैं तब उन का दृष्टिगोचर उन पदार्थों पर नहीं ठहरता पर उन से पार जाकर उन भीतरी वस्तुओं तक भी कि जिन से वे पदार्थ पैदा हुए हैं और जिन से वे प्रतिरूपता रखते हैं पहुंचता है। और यह हाल सब प्रकार की विचित्रता के साथ पदार्थों के विशेष रूप के अनुसार हुआ करता है। इस लिये वे एक ही समय में असंख्य यथानुक्रम और लगातार वस्तुओं को देखते हैं जिन से उन के मनों पर ऐसा असर पैदा हो जाता है कि मानों वे अपने शरीर से बाहर होते हैं। स्वर्ग में सब दृश्य वस्तुएं उन ईश्वरीय वस्तुओं से प्रतिरूपता रखती हैं जो प्रभु की ओर से दूतगण के पास हैं इस के बारे में १७० से १७६ तक देखो।

२७१। तीसरे स्वर्ग के दूतगण का वैसा ही गुण है क्योंकि वे प्रभु से प्रेम रखते हैं और वह प्रेम मन के भीतरी भागों को तीसरी अवस्था तक आप खोलता है और वह ज्ञान की सब बातों का पात्र है। यद्यपि अन्तिम स्वर्ग के दूतगण की अपेक्षा वे अन्य तौर पर बढ़ते हैं तो भी वे दूत ज्ञान में नित्य बढ़ते जाते हैं। क्योंकि वे न तो ईश्वरीय सचाइयों को याद में रख छोड़ते हैं न विद्या की परिपाटी पर उन को प्रस्तुत करते हैं। परंतु ज्यों ही वे उन को सुनते हैं त्यों ही वे उन के सचापन को मालूम करके अपने जीवन के काम में उन को लाते हैं। इस लिये ईश्वरीय सचाइयें उन के साथ ऐसे तौर पर रहते हैं कि मानों वे सचाइयें उन पर लिखी हुई हैं। इस वास्ते कि जो कुछ जीवन के काम में आता है सो वैसे ही तौर पर रहता है। परंतु अन्तिम स्वर्ग के दूतगण की और ही अवस्था है। क्योंकि वे पहिले पहिल ईश्वरीय सचाइयों को स्मरण में रख छोड़ते हैं और विद्या के तत्त्वों के तौर पर उन को प्रस्तुत करते हैं तो फिर वे उन को बाहर बुलाकर उन के सहाय अपनी बुद्धि की उन्नति करते हैं। और उन के सचापन को विषय कुछ भी भीतरी बोध के विना वे उन की इच्छा करते हैं और उन को अपने जीवन के काम में लाते हैं। इस से वे प्रत्येक करके अन्धेरे में रहते हैं। यह कहने के योग्य है कि तीसरे स्वर्ग के दूतगण ज्ञान में सुनने के द्वारा उन्नति पाते हैं न कि देखने के द्वारा। क्योंकि जो कुछ वे पन्दों से सुनते हैं सो उन के स्मरण में नहीं प्रवेश करता है परंतु उसी क्षण उन के चैतन्य और संकल्पशक्ति में

पैठ जाकर उन के जीवन से एक बनकर मिलता है। इस से विपरीत जो कुछ वे अपनी आंखों से देखते हैं सो उन के स्मरण में प्रवेश करता है और उस के विषय वे तर्क करते हैं और वाद करते हैं। और इस से स्पष्ट है कि उन के लिये सुनना ही ज्ञान का रस्ता है। यह भी प्रतिरूपता होने से निकलता है। क्योंकि कान वशता से प्रतिरूपता रखता है और वशता जीवन से संबन्ध रखती है। इस से विपरीत आंख बुद्धि से प्रतिरूपता रखती है और बुद्धि धर्म के तत्त्वों से संबन्ध रखती है[९०]। इन दूतगण के हाल का बयान सारी धर्मपुस्तक में किया जाता है। जैसा कि यर्मीयाह की पोथी के इन वचनों में कि "मैं अपने धर्म को उन के अन्दर रखूंगा और उन के दिल पर उसे लिखूंगा। और वे फिर अपने अपने पड़ोसी और अपने अपने भाई को यह कहकर न सिखावेंगे कि प्रभु को पहचानो क्योंकि छोटे से बड़े तक वे सब मुझे जानेंगे"। (यर्मीयाह पर्व ३१ वचन ३३ · ३४)। और मत्ती की पोथी में भी यह वचन है कि "तुम्हारी बोल चाल में हां कि हां और नां कि नां हो क्योंकि जो इस से अधिक है सो बुराई से होता है"। (मत्ती पर्व ५ वचन ३७)। जो इन से अधिक है सो बुराई से होता है क्योंकि वह प्रभु की ओर से नहीं है। इस वास्ते कि सचाइयें जो तीसरे स्वर्ग के दूतगण में हैं प्रभु की ओर से होती हैं क्योंकि वे दूतगण उस के प्रेम में रहते हैं। और उस स्वर्ग में प्रभु से प्रेम रखना ईश्वरीय सचाई की इच्छा करने का और काम में लाने का है।

२७२। दूसरा कारण (और स्वर्ग में यह तो एक मुख्य कारण है) कि जिस करके दूतगण ऐसे उन्नत ज्ञान को ग्रहण करने के योग्य हैं यह है कि वे आत्मप्रेम से विहीन हैं। क्योंकि जितना कोई उस प्रेम से विहीन हो उतना ही वह ईश्वरीय वस्तुओं के विषय ज्ञानी होने के योग्य है। आत्मप्रेम प्रभु के और स्वर्ग के विरुद्ध भीतरी भागों को बन्द करता है और बाहरी भागों को खोलकर उन को अपनी ओर फिराता है। और इस वास्ते वे सब जिन पर आत्मप्रेम प्रबल है जगत की वस्तुओं के विषय कैसी ही बुद्धिमान क्यों न हों तो भी स्वर्गीय वस्तुओं के विषय वे घन अन्धेरे में हैं। इस के विपरीत दूतगण आत्मप्रेम से विहीन होकर ज्ञान की ज्योति में हैं। क्योंकि स्वर्गीय प्रेम कि जिस में वे रहते हैं (अर्थात प्रभु से और पड़ोसी से प्रेम रखना) भीतरी भागों को खोलते हैं। इस कारण कि वे प्रेम प्रभु की ओर से होते हैं और प्रभु उन में आप है। उन प्रेमों का स्वर्ग का साधारण रूप बना है और वे हर किसी व्यक्ति के मन में स्वर्ग को

---

९० कान और श्रवण की प्रतिरूपता होने के बारे में। न० ४६५२ से ४६६० तक। कान तो चैतन्न और वशता से प्रतिरूपता रखता है और इस कारण उस का उन गुणों का तात्पर्य है। न० २५४२ · ३८६९ · ४६५३ · ५०१७ · ७२१६ · ८३६१ · ९३११ · ९३९७ · १००६५। और उस का तात्पर्य सचाई का ग्रहण करना भी है। न० ५४७१ · ५४७५ · ९९२६। आंख की और उस की दृष्टि की प्रतिरूपता होने के बारे में। न० ४४०३ से ४४२१ तक · ४५२३ से ४५३४ तक। इस से आंख की दृष्टि से तात्पर्य वह बुद्धि है जो श्रद्धा से होती है और उस का श्रद्धा आप का तात्पर्य भी है। न० २७०१ · ४४१० · ४५२६ · ९९२३ · १०५६९।

बनाते हैं। (इस बात का प्रमाण न० १३ से १९ तक देखो)। जब कि स्वर्गीय प्रेम भीतरी भागों को प्रभु की ओर खोलते हैं तो सब दूतगण अपने मुंह को भी प्रभु की ओर फिराते हैं। (न० १४२)। क्योंकि आत्मीय जगत में प्रेम अपनी ओर हर किसी के भीतरी भागों को फिराता है। और जहां कहीं की ओर वह भीतरी भागों को फिराता है वहीं की ओर मुंह को भी फिराता है। क्योंकि वहां पर मुंह भीतरी भागों से (जिन का वह बाहरी रूप है) मिला झुला होकर काम करता है। जब कि प्रेम अपनी ओर भीतरी भागों को और मुंह को फिराता है तो वह अपने तईं उन से संयुक्त भी करता है। क्योंकि प्रेम आत्मीय संयोग है और जो कुछ उस के पास है सो वह उन को भी दे देता है। और इस फिराने और संयोग करने और देने से दूतगण अपने ज्ञान को निकालते हैं। आत्मीय जगत में सब प्रकार का संयोग चितवन के अनुकूल है। इस का प्रमाण न० २५५ वें परिच्छेद में देखो।

२७३। दूतगण सदैव ज्ञान में बढ़ते जाते हैं[९१]। तो भी वे अनन्तकाल तक इतने ज्ञानी नहीं हो सकते कि उन के ज्ञान में और प्रभु के ईश्वरीय ज्ञान में कुछ भी अन्योन्य सादृश्य हो। क्योंकि प्रभु का ईश्वरीय ज्ञान असीमक है और दूतगण का ज्ञान सीमक है। और असीमक में और सीमक में कुछ भी अन्योन्य परिमाण नहीं हो सकता।

२७४। जब कि ज्ञान दूतगण को व्युत्पन्न करता है और वह उन का जीवन भी हो जाता है और जब कि स्वर्ग अपनी सब भलाइयों समेत हर किसी के अन्दर उस के ज्ञान के अनुसार बहकर जाता है तो स्वर्ग में सब निवासी ज्ञान की इच्छा करते हैं और उस की रुचि करते हैं जैसा कि भूखे मनुष्य खाने की रुचि करता है। क्योंकि विद्या और बुद्धि और ज्ञान आत्मीय आहार है जैसा कि खाना प्राकृतिक आहार है। और उन में से एक दूसरे से परस्पर प्रतिरूपता रखता है।

२७५। एक ही स्वर्ग के और एक ही सभा के दूतगण ज्ञान की एक ही अवस्था पर नहीं हैं परंतु भिन्न भिन्न अवस्थाओं पर। वे जो केन्द्र पर हैं सब से बड़े ज्ञान में हैं और वे जो इन के आस पास हैं जितना कि वे केन्द्र से दूर हैं उतना ही वे क्रम करके थोड़े थोड़े ज्ञान में होते जाते हैं। क्योंकि केन्द्र से ले दूरी पर होने के अनुसार ज्ञान की घटाई ऐसी है कि जैसा चमकाई से ले छांह तक ज्योति की घटाई होती जाती है। (न० ४३ · १२८ देखो)। दूतगण की उन के ज्ञान के अनुसार ज्योति भी है। क्योंकि स्वर्ग की ज्योति ईश्वरीय ज्ञान है और हर कोई उस ज्ञान के ग्रहण करने के अनुसार ज्योति में है। स्वर्ग की ज्योति और उस के नाना प्रकार के ग्रहणों के बारे में न० १२६ से १३२ तक देखो।

---

९१ दूतगण अनन्तकाल तक उन्नति के पथ पर आगे चले जाते हैं। न० ४८०३ · ६६४८।

स्वर्ग में के दूतगण की निर्दोषता की अवस्था के बारे में।

२७६। जगत में के बहुत थोड़े लोग निर्दोषता के स्वभाव और गुण को जानते हैं और वे जो बुराई में रहते हैं उस को कुछ भी नहीं जानते। निर्दोषता मनुष्य की आंखों के साम्हने तो दिखाई देती है और विशेष करके बालबच्चों के चिहरे और बोल चाल और इङ्गितों में देख पड़ती है। परंतु तो भी उस का स्वभाव अज्ञात है। और इस का भी बहुत ही न्यून ज्ञान है कि स्वर्ग मनुष्य के साथ मुख्य करके निर्दोषता में रहता है। इस कारण कि यह प्रसङ्ग अधिक स्पष्टता से समझ में आवे मैं पहिले पहिल लड़कपन की निर्दोषता के बारे में कुछ बयान करूंगा। इस के पीछे मैं ज्ञान की निर्दोषता के विषय बात करूंगा। और अन्त में निर्दोषता की अपेक्षा में स्वर्ग की अवस्था को बतलाऊंगा।

२७७। लड़कपन की अर्थात छोटे बच्चों की निर्दोषता सच्ची निर्दोषता नहीं है। क्योंकि वह केवल निर्दोषता का बाहरी रूप है न कि उस का भीतरी रूप। तो भी इस प्रकार की निर्दोषता से सच्ची निर्दोषता के गुण का कुछ बोध पाया जा सकता है। क्योंकि वह निर्दोषता बालबच्चे के चिहरों पर से चमकती है और उन के इङ्गितों से प्रकाशित होती है और उन की सब से पहिले बोल चाल में सुनाई देती है। और जो कोई उन को देखते हैं उन पर उस का प्रभाव लगता है। यह मनोहर गुण इस हाल से पैदा होता है कि उन को कुछ भी भीतरी ध्यान नहीं है। क्योंकि अभी वे नहीं जानते कि भलाई और बुराई कौन वस्तुएं हैं या सचाई और झूठ कौन पदार्थ हैं। वे तत्त्व ध्यान का मूल है। इस कारण उन को कुछ भी आत्मत्व पर अवलम्बित सावधानी नहीं है और उन को कुछ अभिप्राय या सुनिश्चित आशय भी नहीं है। और इस वास्ते उन को कोई बुरा मनोरथ नहीं हो सकता। उन का कोई ऐसा आत्मत्व नहीं है जो आत्मप्रेम से और जगतप्रेम से पैदा होता है। वे अपने आप के साथ कुछ भी नहीं संबद्ध करते हैं परंतु जो कुछ कि वे पाते हैं उस का स्वामी अपने मा बाप को जानते हैं। और जो छोटी छोटी वस्तुएं उन के मा बाप उन को देते हैं वे उन्हीं से प्रसन्न और आनन्दित हैं। उन को पोशाक और आहार की कुछ चिन्ता नहीं है और उन को भविष्यत के विषय कुछ भी चिन्ता नहीं है। वे जगत की ओर नहीं देखते और उस के असंख्य वस्तुओं का लालच नहीं करते। परंतु वे अपने मा बाप को और अपनी दाइयों को प्यार करते हैं और अपने किशोर साथियों का जिन के साथ वे भोलेपने से खेला करते हैं प्यार करते हैं। और जो उन को कहीं ले जावे उस के साथ हो लेते हैं। वे किसी का कहा भी मानते हैं। और जब कि वे ऐसी अवस्था में हैं इस लिये जो कुछ कि उन को सिखलाया जाता है सो वे अपने जीव में ग्रहण करते हैं और उस से वे उचित चाल चलन और बोली और स्मरण और ध्यान के मूलतत्त्वों को अनजाने निकालते हैं। उन

की निर्दोषता की अवस्था इन बातों के ग्रहण करने और बैठालने के लिये उपकारक है। परंतु यह निर्दोषता (जैसा कि हम अभी कह चुके हैं) बाहरी है। इस वास्ते कि वह शरीर ही की है न कि मन की[६२]। क्योंकि अभी उन का मन नहीं बनता इस कारण कि मन तो ज्ञानशक्ति और संकल्पशक्ति तथा वह ध्यान और अनुराग जो उन से निकलते हैं सब मिलकर होता है। स्वर्ग से मुझ को यह वाणी आई कि बालबच्चे प्रभु के विशेष आश्रय में हैं और उन में भीतरी स्वर्ग से जो निर्दोषता का स्वर्ग है अन्तःप्रवाह बहता है। और यह अन्तः-प्रवाह उन के भीतरी भागों से पार जाता है और उन पर निर्दोषता को छोड़ और कुछ असर नहीं लगाता। और इस से उन के चिहरों और इङ्गितों पर निर्दो-षता दिखाई देती है। और यह वही निर्दोषता है कि जिस से प्रायः मा बाप पर असर लगाया जाता है और जिस से मातापितृसंबन्धी प्रेम पैदा होता है।

२७८। ज्ञान की निर्दोषता सच्ची निर्दोषता है इस वास्ते कि वह भीतर की है। क्योंकि वह मन ही की है अर्थात संकल्पशक्ति ही की। और इस लिये वह ज्ञान शक्ति की भी है। और जब निर्दोषता इन तत्त्वों पर स्थायी रहती है तब वहां ज्ञान भी है। क्योंकि ज्ञान उन पर सब मिलके नियोग किया जाता है। इस कारण स्वर्ग में यह कहा जाता है कि निर्दोषता ज्ञान में रहती है और दूत-गण की इतनी निर्दोषता है जितना उन का ज्ञान भी है। और इस बात का यह प्रमाण है कि वे जो निर्दोषता की अवस्था में हैं अपने को किसी भलाई के उत्पादक नहीं जानते परंतु अपने को केवल पानेवालों मात्र को ठहराते हैं और सब वस्तुओं का स्वामी प्रभु को मानते हैं। और वे प्रभु के (और न कि अपने आप के) कहीं ले जाने से प्रसन्न हुआ करते हैं। और वे जो जो अच्छा है तिस तिस को प्यार करते हैं और जो जो सच्चा है तिस तिस से आनन्दित होते हैं क्योंकि वे जानते हैं और मालूम करते हैं कि भलाई को प्यार करना (और इस से भलाई को चाहना और काम में लाना) प्रभु से प्रेम रखना है। और जो सच्चा है उस को प्यार करना पड़ोसी से प्रेम रखना है। और जो कुछ उन को मिलता है उस से वे प्रसन्न रहते हैं चाहे वह थोड़ा हो चाहे बहुत। क्योंकि वे यह जानते हैं कि जितना उन को उचित है उतना ही वे पाते हैं। अर्थात यदि थोड़ा उन के लिये उचित हो तो उन को थोड़ा मिलेगा और यदि बहुतायत उन को योग्य हो तो बहुत कुछ मिलेगा। क्योंकि वे आप नहीं जानते कि उन के लिये क्या वस्तु सब से अच्छी है इस वास्ते कि उस को प्रभु ही जानता है जिस

---

६२ बालबच्चों की निर्दोषता सच्ची निर्दोषता नहीं है क्योंकि सच्ची निर्दोषता ज्ञान में रहती है। न० १६१६ · २३०५ · २३०६ · ३४९५ · ४५६३ · ४७९७ · ५६०८ · ९३०१ · १००२१। लड़क-पन की भलाई आत्मीय भलाई नहीं है परंतु हृदय में सचाई के गाड़ने के द्वारा वह आत्मिक हो जाती है। न० ३५०४। तो भी लड़कपन की भलाई एक ऐसी बिचवाई है कि जिस से बुद्धि गाड़ी जाती है। न० १६१६ · ३१८३ · ९३०१ · १०११०। मनुष्य लड़कपन में की गाड़ी हुई निर्दो-षता की भलाई के विना जंगली पशु के समान है। न० ३४९४। परंतु जो कुछ लड़कपन में पाया जाता है सो स्वाभाविक मालूम होता है। न० ३४९४।

का पूर्वविचार सब वस्तुओं में अनन्तकालिक अभिप्रायों को प्रस्तुत करता है। इस लिये वे भविष्यत के विषय में कुछ भी चिन्ता नहीं करते परंतु भविष्यत की चिन्ता करना कल की सावधानी कहते हैं जिस को वे दुख बोलते हैं उन वस्तुओं के छूट जाने या ग्रहण करने के लिये जो जीवन के प्रयोजनों के वास्ते अवश्य नहीं हैं। वे जो निर्दोषता की अवस्था में हैं अपने साथियों के साथ कभी बुरे मनोरथ से कोई काम नहीं करते। बरन वे ऐसी चाल चलन से विलग रहते हैं जैसा कि वे सांप के विष से दूर भागते हैं। क्योंकि वह संपूर्ण रूप से निर्दोषता के विरुद्ध है। और जब कि वे प्रभु के ले जाने से अधिक किसी अन्य बात को नहीं प्यार करते और प्रभु को सब वस्तुओं का स्वामी मानते हैं और सब कुछ उस की दत्तवस्तुओं को जानते हैं तो वे आत्मत्व से दूर हैं और जितना वे आत्मत्व से दूर होते हैं उतना ही प्रभु अन्दर बहता है। और यह वही कारण कि जिस से जो कुछ वे उस की ओर से सुनते हैं चाहे धर्मपुस्तक से हो चाहे पन्द सुनने से सो वे अपने स्मरण में नहीं रख छोड़ते परंतु उसी क्षण उस का आज्ञाकारी हो जाते हैं। अर्थात वे उस को चाहते हैं और काम में लाते हैं क्योंकि संकल्पशक्ति आप उन की स्मरणशक्ति है। वे अपने बाहरी रूप पर प्रायः भोले हैं परंतु भीतरी भागों में वे ज्ञानी और पूर्वविचारशील हैं। और प्रभु ने तब उन की सूचना की जब उस ने यह कहा कि "तुम सांपों की भांति चौकस और कबूतरों के सदृश निर्दोषी हो"। (मत्ती पर्व १० वचन १६)। ऐसा ही वह निर्दोषता भी है जो ज्ञान की निर्दोषता कहलाती है।

इस कारण कि निर्दोषता अपने को किसी भलाई की उत्पादक नहीं जानती परंतु सब वस्तुओं का स्वामी प्रभु को मानती है और इस से प्रभु के पथ दिखलाने को प्यार करती है और इसी हेतु सब प्रकार की भलाई और सचाई को ग्रहण करती है जिस से ज्ञान पैदा होता है पस इस लिये मनुष्य ऐसे तौर पर रचा हुआ है कि जब वह लड़काबाला हो तब वह बाहरी तौर पर निर्दोषी है और जब वह बुड्ढा हो जावे तब वह भीतरी तौर पर निर्दोषी हो। और वह बाहरी वस्तुओं के द्वारा भीतरी वस्तुओं में आ सके और वह भीतरी वस्तुओं से बाहरी वस्तुओं को फिर जा सके। इस कारण जब मनुष्य बुड्ढा हो जावे तब उस का शरीर भी सिकुड़ता है और ऐसा ही मालूम होता है कि मानों वह फिर लड़काबाला है। परंतु वह ज्ञानी लड़केबाले के समान है और इसी हेतु वह दूत के सदृश दिखाई देता है क्योंकि कोई दूत एक ज्ञानी लड़काबाला उत्तमोत्तम तौर पर है। यह वही कारण है कि जिस से धर्मपुस्तक में लड़केबाले से तात्पर्य निर्दोषी व्यक्ति है और बुड्ढे से तात्पर्य ऐसा ज्ञानी मनुष्य है कि जिस में निर्दोषता है[६३]।

---

६३ धर्मपुस्तक में निर्दोषता से तात्पर्य लड़केबाले हैं। न० ५६०८। और दूध के बच्चे भी हैं। न० ३१८३। बुड्ढे से तात्पर्य ज्ञानी मनुष्य है और विषयविविक्त रीति पर उस से तात्पर्य ज्ञान है। न० ३१८३ · ६५२४। मनुष्य ऐसे तौर पर रचा हुआ है कि जितना वह बुड्ढा हो जाता है

२७९। हर किसी की जो पुनर्जात हो वैसी अवस्था है क्योंकि पुनर्जन्म आत्मीय मनुष्य के विषय फिर जन्म लेना है। जन्मान्तर पानेवाला मनुष्य पहिले पहिल लड़केवाले की निर्दोषता में पहुंचाया जाता है। और उस की ऐसी अवस्था है कि वह सचाई की कुछ बात नहीं जानता और भलाई करने में उस की ओर से कुछ बस नहीं चलता परंतु प्रभु ही की ओर से बस चलता है। और वह भलाई और सचाई ही को चाहता है और ढूंढ़ता है केवल इसी कारण से कि सचाई सचाई है और भलाई भलाई है। ज्यों ज्यों वह बड़प्पन को बढ़ता जाता है त्यों त्यों प्रभु से भलाई और सचाई भी उस को दी जाती है। क्योंकि वह पहिले उन्हीं के विषय पाण्डित्य में पहुंचाया जाता है तो फिर पाण्डित्य से बुद्धि में और बुद्धि से ज्ञान में। परंतु प्रत्येक अवस्था में निर्दोषता उस की साथिनी है अर्थात वह निर्दोषता कि जो जैसा है कि हम अभी कह चुके हैं यह अङ्गीकार करती है कि "मैं आप से आप सचाई का कुछ नहीं जानता और भलाई करने में मुझ से कुछ बस नहीं चलता परंतु उस पर सब बस प्रभु ही से है"। विना इस श्रद्धा के और विना उस चैतन्य के जो उस से उपज आता है कोई स्वर्ग का कुछ नहीं पा सकता। क्योंकि उसी श्रद्धा में ज्ञान की निर्दोषता मुख्य करके रहती है।

२८०। जब कि निर्दोषता प्रभु से ले जाने की है न कि आप से ले जाने की तो स्वर्ग में के सब निवासी निर्दोषता की अवस्था में हैं। क्योंकि जो वहां पर हैं सो प्रभु से ले जाने को प्यार करते हैं। वे यह जानते हैं कि अपने आप से ले जाना और आत्मत्व से ले जाना एकसां है। और आत्मत्व और अपने आप को प्यार करना एक ही है। और जो अपने आप को प्यार करता है वह और किसी को अपने तईं ले जाने नहीं देता। पस इस से जितना कोई दूत निर्दोषता की अवस्था में है उतना ही वह स्वर्ग में है अर्थात वह ईश्वरीय भलाई और ईश्वरीय सचाई में रहता है। क्योंकि इन्हीं में रहना स्वर्ग में होना है। और सारे स्वर्ग निर्दोषता के अनुसार विशेषित हैं। वे जो अन्तिम या पहिले स्वर्ग में रहते हैं निर्दोषता की पहिली या अन्तिम अवस्था पर हैं। वे जो मझले या दूसरे स्वर्ग में रहते हैं निर्दोषता की दूसरी या मझली अवस्था पर हैं। और वे जो सब से भीतरी या तीसरे स्वर्ग में रहते हैं निर्दोषता की तीसरी या भीतरी अवस्था पर हैं। इस से स्वर्ग के सब निवासियों में से ये पिछले निवासी सच्चे निर्दोषी हैं। क्योंकि और शेष निवासियों से वे प्रभु के द्वारा ले जाने को अधिक प्यार करते हैं। जैसा कि छोकरे छोकरी अपने पिता से ले जाने को प्यार करते हैं। वे ईश्वरीय सचाई को जो वे या तो प्रभु से विचवाईरहित या धर्मपुस्तक से या पन्द सुनने से विचवाईसहित सुनते हैं अपने मनभावन में सीधे ग्रहण करते हैं और उस के अनुसार काम करते हैं और इस वास्ते वे उन को जीवन के काम में लाते हैं। और इस

उतना हो वह लड़केवाले के समान मालूम होता है इस लिये कि उस समय निर्दोषता ज्ञान के होकर मनुष्य इसी तौर पर स्वर्ग में जा सके और एक दूत हो जावे। न० ३१८३ · ५६०८।

लिये उन का ज्ञान अधमतर स्वर्गों के दूतगण के ज्ञान से कहीं बढ़कर उत्तम है। (न० २७० · २७१ देखो)। जब कि स्वर्गीय दूतगण का ऐसा गुण है तो वे अन्य सभों से प्रभु के पास जिन्हों से वे अपनी निर्दोषता पाते हैं रहते हैं। और वे आत्मत्व से भी अलग रहते हैं इस वास्ते वे मानों प्रभु ही में जाते हैं। वे तो बाहर से भोले दिखाई देते हैं और अधमतर स्वर्गों के दूतगण के साम्हने वे लड़केबालों के समान देख पड़ते हैं और इस कारण वे छोटे से डील के मालूम होते हैं। यद्यपि वे स्वर्ग के सब से ज्ञानी दूतगण हैं तौ भी वे उन के समान भी जो बहुत ज्ञानी नहीं हैं दीखते हैं। क्योंकि वे यह जानते हैं कि आप से उन का कुछ भी ज्ञान नहीं है और उसी हाल को अङ्गीकार करना और यह कहना कि जो कुछ वे जानते हैं सो कुछ भी नहीं है उस की अपेक्षा कि जिस को वे नहीं जानते यह सब सच्चा ज्ञान है। वे कहते हैं कि इस को जानना और अङ्गीकार करना और मालूम करना ज्ञान की सब से पहिली अवस्था है। ये दूतगण नंगे हैं क्योंकि नंगाई निर्दोषता से प्रतिरूपता रखती है[६४]।

२८१। बार बार मैं ने दूतगण के साथ निर्दोषता के विषय बात चीत की। और मुझ को समझाया गया कि निर्दोषता सब भलाई की सत्ता है और इस से भलाई केवल यहां तक भलाई है जहां तक उस में निर्दोषता भी है। इस कारण ज्ञान भी केवल यहां तक ज्ञान है जहां तक वह निर्दोषता का साथी है। और प्रेम और अनुग्रह और श्रद्धा की भी वैसी ही अवस्था है। और इसी हेतु से कोई विना निर्दोषता के स्वर्ग में जाने नहीं पाता। और प्रभु का यही अभिप्राय है इन वचनों से अर्थात् "लड़केबालों को मेरे पास आने दो और उन्हें न हटकाओ क्योंकि ईश्वर का राज ऐसों ही का है। मैं तुम से सच कहता हूं कि जो कोई ईश्वर के राज को छोटे लड़केबालों की भांति अङ्गीकार न करे वह उस में प्रवेश न करेगा"। (मर्कस १० पर्व १० वचन १४ · १५। लूका पर्व १८ वचन १६ · १७)। इस वचन में और धर्मपुस्तक के अन्य वचनों में लड़केबालों से तात्पर्य निर्दोषी हैं[६५]। प्रभु निर्दोषता की एक अवस्था को मत्ती की इञ्जील के ६ वें पर्व के २५ वें से ३४ वें तक के वचनों में प्रतिरूपों के सहाय बतलाता है। भलाई सच मुच केवल यहां तक भलाई है जहां तक उस में निर्दोषता रहती है। क्योंकि सब भलाई प्रभु की ओर से है इस वास्ते कि निर्दोषता प्रभु से ले जाने की इच्छा करने की है। मुझे यह भी

---

६४ सब से भीतरी स्वर्ग में सब निवासी निर्दोषता के रूप हैं। न० १५४ · २७३६ · ३८८७। और इस से वे औरों के साम्हने लड़केबालों के समान देख पड़ते हैं। न० १५४। वे नंगे भी हैं। न० १६५ · ८३७५ · ६६६०। क्योंकि नंगाई निर्दोषता का एक लक्षण है। न० १६५ · ८३७५। और आत्माओं का यह व्यवहार है कि वे अपनी निर्दोषता दिखलाने के लिये अपने कपड़ों को उतारकर नंगे खड़े रहते हैं। न० ८३७५ · ६६६०।

६५ प्रेम की हर एक भलाई में और श्रद्धा की हर एक सचाई में निर्दोषता इस वास्ते रहनी चाहिये कि वह सच मुच भला और सच हो। न० १५२६ · २७८० · ३१११ · ३६६४ · ४०१३ · ७८४० · ६२६२ · १०१३४। क्योंकि निर्दोषता भलाई और सचाई का सारांश है। न० २७८० · ७८४०। और कोई स्वर्ग में तब तक प्रवेश नहीं करता जब तक उस में निर्दोषता का कुछ न हो। न० ४७६७

सुनाया गया कि विना निर्दोषता की सहायता के न तो सचाई भलाई से संयुक्त हो सकती न भलाई सचाई से। और इस से यह निकलता है कि कोई दूत तब तक स्वर्ग का एक दूत नहीं होगा जब तक उस में निदोषता न हो। क्योंकि स्वर्ग तब तक किसी में नहीं होगा जब तक उस में सचाई भलाई से संयुक्त न हो। और इस कारण सचाई और भलाई का संयोग स्वर्गसंबन्धी व्याह कहलाता है। और यह स्वर्गसंबन्धी व्याह आप स्वर्ग है। मुझ को यह भी बतलाया गया कि सच्चा विवाहविषयक प्रेम अपना विद्यमान होना निर्दोषता से पाता है। क्योंकि वह भलाई और सचाई का उस संयोग से जिस के अधीन दो मन (अर्थात् पति और पत्नी के मन) होते हैं पैदा होता है। और यह संयोग जब वह किसी अधम मण्डल में उतर जाता है तब वह विवाहविषयक प्रेम का रूप धारण करता है। क्योंकि विवाहविषयक सहभागी यहां तक एक दूसरे को प्यार करता है जहां तक प्रेम और उन के मन संयुक्त होके समान हो जाते हैं। और इस से विवाहविषयक प्रेम में ऐसा खेलाड़ीपन है जैसा कि लड़कपन में और निर्दोषता में है[६६]।

२८२। जब कि निर्दोषता स्वर्ग के दूतगण के विषय सब भलाई की सत्ता ही है तो स्पष्ट है कि वह ईश्वरीय भलाई जो प्रभु की ओर से निकलती है आप निर्दोषता है। क्योंकि वह वही भलाई है जो दूतगण के अन्दर बहकर जाती है और उन की सब से भीतरी बातों पर असर करती है और उन को ऐसे तौर पर प्रस्तुत करती है और योग्य करती है कि जिस से वे स्वर्ग की सब भलाई को ग्रहण कर सकते हैं। लड़केबालों की ऐसी ही अवस्था है जिन के भीतरी भाग न केवल प्रभु की ओर से निर्दोषता के पार-प्रवाह के द्वारा बने हैं परंतु स्वर्गीय प्रेम की भलाई के ग्रहण करने के लिये वे नित्य संयुक्त किये जाते हैं और सुधारे जाते हैं। क्योंकि निर्दोषता की भलाई किसी भीतरी तत्त्व की ओर से काम करती है इस वास्ते कि जैसा कि हम कह चुके हैं वह सब भलाई की सत्ता है। इस से स्पष्ट मालूम होता है कि सब निर्दोषता प्रभु की ओर से है। और यह वही कारण है कि जिस से धर्मपुस्तक में प्रभु लेला कहाता है। क्योंकि लेले से तात्पर्य

---

६६ सच्चा विवाहविषयक प्रेम निर्दोषता है। न० २७३६। और वह यही है कि एक दूसरे की आकांक्षा की परस्पर तौर पर और फेरफार से अभिलाषा करे। न० २७३१। और इस कारण वे जो विवाहविषयक प्रेम में हैं एक दूसरे से जीवन की सब से भीतरी बातों के विषय संयुक्त रहते हैं। न० २७३२। इस कारण किसी दो मनों का संयोग है जो प्रेम से एक ही हो जाते हैं। न० १०१६८· १०१६९। सच्चा विवाहविषयक प्रेम अपनी उत्पत्ति और सारांश भलाई और सचाई के व्याह होने से पाता है। न० २७२८·२७२९। किसी किसी दूतविषयक आत्माओं के बारे में जो भलाई और सचाई के संयुक्त होने के बोध से यह मालूम करते हैं कि क्या विवाहविषयक तत्त्व भी है कि नहीं। न० १०७५६। क्योंकि विवाहविषयक प्रेम संपूर्ण रूप से भलाई और सचाई के संयोग के समान है। न० १०९४·२१७३·२५२९·२५०३·३१०३·३१३२·३१५५·३१७९·३१८०· ४३५८·५४०७·५८३५·९२०६·९२०७·९४९५·९६३७। और इस से धर्मपुस्तक में विवाह से तात्पर्य भलाई और सचाई का वह विवाह है जो स्वर्ग में होता है और कलीसिया में भी होना चाहिये। न० ३१३२·४४३४·४८३५।

निर्दोषता है[९७]। इस वास्ते कि निर्दोषता स्वर्ग की हर एक भलाई का भीतरी तत्त्व है तो वह मन पर ऐसा असर करती है कि जब जिस पर वह लगता है ऐसा कि जब भीतरी स्वर्ग का कोई दूत निकट आता है तब वह ऐसा हो जाता है कि मानों वह अपने शरीर से अलग हुआ है और वह ऐसा ही है कि मानों वह आनन्द से उठाया जाता है और जगत के सारे आनन्द उस आनन्द की अपेक्षा कुछ भी नहीं है। मैं परीक्षा करने के पीछे यह कहता हूं।

२८३। सब लोगों पर जो निर्दोषता की भलाई में हैं निर्दोषता का असर उतना ही लगता है जितना वे उस भलाई में हैं। परंतु उन पर जो निर्दोषता की भलाई में नहीं हैं उस का असर नहीं लगता। और इस लिये वे जो नरक में हैं निर्दोषता के संपूर्ण रूप से विरुद्ध हैं। वे यह भी नहीं जानते कि निर्दोषता कौन वस्तु है। और उन का ऐसा गुण है कि जितना कोई निर्दोषता में है उतना ही वे उस की हानि करने की चेष्टा करते हैं। इस कारण वे छोटे लड़केबालों को देखना नहीं सह सकते। और ज्यों ही वे उन को देखते हैं त्यों ही उन की हानि पर वे क्रूर लालसा से अत्यभिलाषी हैं। और इस से स्पष्ट है कि मनुष्य का आत्मत्व और इस से आत्मप्रेम भी निर्दोषता के विरुद्ध है। क्योंकि नरक के सब निवासी आत्मत्व में रहते हैं और इस से आत्मप्रेम भी में[९८]।

स्वर्ग में की शान्ति की अवस्था के बारे में।

२८४। उन लोगों को जिन पर स्वर्ग की शान्ति का असर कभी नहीं लगा उस शान्ति के स्वभाव का जो दूतगण भुगतते हैं कुछ बोध नहीं हो सकता। क्योंकि मनुष्य जब तक वह शरीर में रहे तब तक वह स्वर्ग की शान्ति नहीं ग्रहण कर सकता। और इस कारण उस को उस का कुछ भी बोध नहीं हो सकता। क्योंकि मनुष्य का बोध उस के प्राकृतिक [मन] में रहता है। इस वास्ते कि स्वर्ग की शान्ति मालूम हो चाहिये कि किसी मनुष्य को ऐसा गुण हो कि जिस से अपने ध्यान के विषय वह शरीर से अलग होकर उठाए जाने की सामर्थ्य रखे और आत्मा के रूप पर बना रह सके और इस से दूतगण के साथ हो सके। जब कि मैं ने स्वर्ग की शान्ति मालूम की है इस वास्ते मैं उस का बयान कर सकता हूं। न कि तो उस तौर पर कि जिस तौर वह वास्तव में होता है (क्योंकि मानुषक शब्दों से उस का बयान किया नहीं जाता) परंतु केवल उस अन्यापेक्ष तौर पर कि जिस तौर वह मालूम होता है। अथवा उस मन की शान्ति की अपेक्षा जिस को वे भुगतते हैं जो ईश्वर पर भरोसा करते हैं।

---

९७ धर्मपुस्तक में लेले से तात्पर्य निर्दोषता और उस की भलाई है। न० ३९९४ • १०१३२।

९८ मनुष्य का आत्मत्व ऐसा है कि जिस से मनुष्य अपने को ईश्वर से अधिक प्यार करता है और स्वर्ग से जगत को और वह अपने पड़ोसी को अपने आप की अपेक्षा तुच्छ मानता है। इस लिये मनुष्य का आत्मत्व आत्मप्रेम और जगतप्रेम है। न० ६९४ • ७३१ • ४३१७ • ५६६०। दुष्ट लोग निर्दोषता के इतने विरुद्ध हैं कि वे उस का विद्यमान होना नहीं सह सकते। न० २१२६।

२८५। स्वर्ग के सब से भीतरी सारभूत दो ही हैं अर्थात निर्दोषता और शान्ति। और वे इस वास्ते भीतरी सारभूत कहाते हैं कि वे प्रभु की ओर से सीधे बिना बिचवाई के निकलते हैं। निर्दोषता वह गुण है कि जिस से स्वर्ग की प्रत्येक भलाई होती है और शान्ति वह गुण है कि जिस से भलाई का सब आनन्द होता है। हर एक भलाई का अपना अपना आनन्द है और यह भलाई और यह आनन्द दोनों प्रेम के हैं। क्योंकि जो कुछ प्यार किया जाता है सो भला कहलाता है और उस का असर आनन्ददायक लगता है। इस से यह निकलता है कि स्वर्ग के दो सब से भीतरी सारभूत (अर्थात निर्दोषता और शान्ति) प्रभु के ईश्वरीय प्रेम से निकलते हैं और दूतगण पर अतिप्रणय से असर करते हैं।

निर्दोषता भलाई का सब से भीतरी तत्त्व है इस बात का बयान पिछले बाब में देखा जा सकता है जहां स्वर्ग के दूतगण की निर्दोषता की अवस्था का बयान है। परंतु अब इस बात का बयान होगा कि शान्ति आनन्द का वह सब से भीतरी तत्त्व है जो निर्दोषता की भलाई से निकलता है।

२८६। पहिले पहिल हम शान्ति की उत्पत्ति के बारे में कुछ बयान करते हैं। ईश्वरीय शान्ति प्रभु में है और वह उस में के ईश्वरीय मनुष्यत्व के और प्रधान ईश्वरत्व के संयुक्त होने से पैदा होती है। स्वर्ग में की ईश्वरीय शान्ति प्रभु की ओर से है और उस के और स्वर्ग के दूतगण के संयुक्त होने से पैदा होती है और विशेष करके प्रत्येक दूत में भलाई के और सचाई के संयोग से। वे तो शान्ति के मूल हैं और इस से यह स्पष्ट मालूम होता है कि स्वर्गों में शान्ति वहां की हर एक भलाई को सब से भीतरी तौर पर परमसुख देता हुआ ईश्वरत्व होती है। और इस से वह स्वर्ग के सब आनन्द का मूल है। और वह सारांश से ले प्रभु के ईश्वरीय प्रेम का वह ईश्वरीय आनन्द है जो उस के और स्वर्ग के और प्रत्येक दूत के परस्पर संयोग से पैदा होता है। यह आनन्द जो प्रभु दूतगण में देखता है और दूतगण प्रभु से आता हुआ मालूम करते हैं आप शान्ति है। और इस से दूतगण सब प्रकार का मङ्गल आनन्द और सुख पाते हैं जिन का स्वर्गीय आनन्द बना है[६६]।

२८७। जब कि शान्ति के आरम्भ इस मूल से होते हैं इस लिये प्रभु शान्ति का राजकुमार कहलाता है। और वह कहता है कि "मुझ से शान्ति होती है और मुझ में शान्ति है"। दूतगण भी शान्ति के दूत कहाते हैं और स्वर्ग शान्ति का वास पुकारा जाता है। जैसा कि इन वचनों में अर्थात "हमारे लिये एक लड़का पैदा होता है और हम को एक बेटा दिया गया और राज उस

---

६६ शान्ति का उत्तमोत्तम तात्पर्य प्रभु आप है क्योंकि उस से शान्ति पैदा होती है। और शान्ति की भीतरी तात्पर्य स्वर्ग है क्योंकि उस के निवासी शान्ति की अवस्था में हैं। न० ३७८०। ४६८१। स्वर्ग में की शान्ति वह ईश्वरत्व है जो वहां की प्रत्येक भलाई और सचाई को भीतरी तौर पर ˙गलसुख देता है। और वह मनुष्य के निकट अबोधनीय है। न० ९२। ३७८०। ५६६२। ८४५५। ८६६५। ईश्वरीय शान्ति भलाई में है न कि भलाईरहित सचाई में। न० ८७२२।

के कांधे पर होगा और वह इस नाम से कहलाता है · अद्भुत · उपदेष्टा · शक्तिमान ईश्वर · अनन्तकालस्थायी पिता · शान्ति का राजकुमार। उस के राज की उन्नति और शान्ति की बढ़ती का कुछ अन्त न होगा"। (ईसायाह पर्व ९ वचन ६ · ७)। ईसू ने कहा कि "शान्ति तुम लोगों के लिये छोड़के जाता हूं अपनी शान्ति मैं तुम्हें देता हूं न जिस रीति पर कि जगत देता है मैं तुम्हें देता हूं"। (यूहन्ना पर्व १४ वचन २७)। "मैं ने तुम्हें ये बातें कहीं इस लिये कि तुम मुझ में शान्ति पाओ"। (यूहन्ना पर्व १६ वचन ३३)। "प्रभु का चिहरा तेरी ओर अलोकन करे और तुझे शान्ति दे"। (गिनी पर्व ६ वचन २६)। "शान्ति के दूत फूट फूटके रोते हैं राजमार्ग सुनसान हैं"। (ईसायाह पर्व ३३ वचन ७ · ८)। "धर्माचार का अन्त शान्ति होगी और मेरे लोग शान्ति के मकानों में रहेंगे"। (ईसायाह पर्व ३२ वचन १७ · १८)। शान्ति जिस की सूचना धर्मपुस्तक के वचनों में है ईश्वरीय और स्वर्गीय शान्ति है। अन्य अन्य वचनों से भी जिन में उस की सूचना है यह बात स्पष्ट मालूम होती है जैसा कि ईसायाह पर्व ५२ वचन ७। पर्व ५४ वचन १०। पर्व ५९ वचन ८। यर्मीयाह पर्व १६ वचन ५। पर्व २५ वचन ३७। पर्व २९ वचन ११। हुज्जी पर्व २ वचन ९। जकर पर्व ३० वचन ३७। और अन्य अन्य वचनों में भी। जब कि शान्ति से तात्पर्य प्रभु और स्वर्ग और स्वर्गीय आनन्द भी और भलाई का आनन्द भी है तो प्राचीन दिनों में लोगों का कुशलवाद यह था कि "तुम पर शान्ति हो"। यह कुशलवाद इन दिनों तक होता चला आया और तब प्रभु ने उस को स्वीकार किया जब उस ने संदेशहर चेलों से यह आज्ञा दी कि "जिस घर में तुम प्रवेश करो पहिले कहो कि इस घर को शान्ति। अगर शान्ति का बेटा वहां होगा तो तुम्हारी शान्ति उस पर ठहरेगा"। (लूका पर्व १० वचन ५ · ६)। और जब प्रभु अपने संदेशहरों के आगे दिखाई दिया तब उस ने कहा कि "तुम पर शान्ति हो"। यूहन्ना पर्व २० वचन १९ · २१ · २६)। जहां धर्मपुस्तक में यह बात है कि "यिहोवाह ने शान्ति की बास सूंघी" तहां इस बात से तात्पर्य शान्ति की एक अवस्था है जैसा कि इन वचनों में अर्थात प्रस्थान की पोथी पर्व २९ वचन १८ · २५ · ४१। याजकों की पोथी पर्व १ वचन ९ · १३ · १७। पर्व २ वचन २ · ९। पर्व ६ वचन ८ · १४। पर्व २३ वचन १२ · १३ · १८। गिनती पर्व १५ वचन ३ · ७ · १३। पर्व २८ वचन ६ · ८ · १३। पर्व २९ वचन २ · ६ · ८ · ३६। स्वर्गीय अर्थ से शान्ति की बास की बात से तात्पर्य शान्ति का गोचर है[1]। जब कि शान्ति से तात्पर्य प्रधान ईश्वरत्व का और प्रभु

---

[1] धर्मपुस्तक में बास की बात से तात्पर्य रम्यता और अरम्यता का गोचर है प्रेम और श्रद्धा के उस गुण के अनुसार जिस के विषय में उस की सूचना हो। न० ३५७७ · ४६२६ · ४६२८ · ४७४८ · ५६२१ · १०२९२। "शान्ति की एक बास" जब यह बात यिहोवाह के विषय में कही जाती है तब उस से तात्पर्य शान्ति का गोचर है। न० ९२५ · १००५४। और इस कारण कुन्दुरु और यज्ञधूप और तेल और लेप की बास सब के सब प्रतिनिधि किये गये। न० ९२५ · ४७४८ · ५६२१ · १०१७७।

के ईश्वरीय मनुष्यत्व का संयुक्त होना है और प्रभु का तथा स्वर्ग और कलीसिया का तथा स्वर्ग और कलीसिया के सब मेम्बर जो प्रभु को ग्रहण करते हैं उन सब का संयुक्त होना भी है तो उन बातों की सुध करने के लिये विश्रामदिवस ठहराया गया और उस का नाम विश्राम अर्थात शान्ति रखा गया। और यह कलीसिया का सब से पवित्र प्रतिनिधि था। इस वास्ते प्रभु ने अपना नाम विश्रामदिवस का प्रभु रखा। (मत्ती पर्व १२ वचन ८। मर्कस पर्व २ वचन २७·२८। लूका पर्व ६ वचन ५)[२]।

२८८। इस कारण कि स्वर्ग की शान्ति वह ईश्वरत्व है कि जो सब से भीतरी तौर पर दूतगण की भलाई को श्रीमान करता है इस लिये दूतगण के दृष्टिगोचर में वह साक्षात नहीं दिखाई देता है पर जब वे अपने जीवन की भलाई में हैं तब उन पर मन का आनन्द लगता है और जब वे वही सचाई सुनते हैं जो उन की भलाई के अनुकूल है तब उन पर हर्ष लगता है और जब वे उस भलाई का और सचाई का संयुक्त होना मालूम करते हैं तब उन पर मन का उल्लास लगता है। तो भी वह शान्ति इस प्रकार के गोचरों से उन के जीवन की सब क्रियाओं और ध्यानों में बहकर जाती है और आनन्द के रूप पर भी साक्षात उन में विद्यमान होती है। स्वर्गों में निवासियों की निर्दोषता के अनुसार शान्ति का गुण और परिमाण भिन्न भिन्न होता है। इस वास्ते कि निर्दोषता और शान्ति हाथी हाथ चली जाती हैं। क्योंकि जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं निर्दोषता स्वर्ग की सब भलाई का मूल है और शान्ति उस भलाई के सब आनन्द का मूल है। इस से यह स्पष्ट मालूम हो कि शान्ति की अवस्था के विषय ऐसी बातें कही जा सकें जैसा कि पिछले खाण्ड में स्वर्ग में की निर्दोषता की अवस्था के विषय कही गई थीं। इस वास्ते कि निर्दोषता और शान्ति ऐसे तौर पर संयुक्त हैं जिस तौर पर भलाई और उस का आनन्द संयुक्त हैं। क्योंकि हम भलाई को उस के आनन्द के द्वारा पहचानते हैं और आनन्द को उस के भलाई के द्वारा। इस से स्पष्ट है कि भीतरी या तीसरे स्वर्ग में के दूतगण शान्ति के तीसरी या सब से भीतरी अवस्था पर हैं क्योंकि वे निर्दोषता के तीसरी या सब से भीतरी अवस्था पर हैं। और अधमतर स्वर्गों के दूतगण शान्ति के किसी अधम अवस्था पर हैं क्योंकि वे निर्दोषता के एक अधम अवस्था पर हैं। (न० २८० को देखो)। निर्दोषता और शान्ति इस तौर पर मिलकर रहती हैं जिस तौर पर

---

२ उत्तमोत्तम अर्थ से विश्रामदिवस से तात्पर्य प्रधान ईश्वरत्व का और प्रभु में के ईश्वरीय मनुष्यत्व का संयोग है और भीतरी अर्थ से उस का तात्पर्य प्रभु के ईश्वरीय मनुष्यत्व का और स्वर्ग और कलीसिया का संयोग है और प्रायः भलाई और सचाई का संयोग और इस करके स्वर्गीय विवाह भी उस का तात्पर्य है। न० ८४९५·१०३५६·१०७३०। और इस कारण "विश्रामदिवस को विश्राम करने" की बात से तात्पर्य उस संयोग की एक अवस्था है क्योंकि उसी समय प्रभु ने विश्राम किया। और उस करके स्वर्गों में और पृथिवी में शान्ति और मुक्ति होती है। और सापेक्ष अर्थ से उस का तात्पर्य प्रभु का और मनुष्य का संयोग है। क्योंकि उसी समय मनुष्य को शान्ति और मुक्ति है। न० ८४९४·८५१०·१०३६०·१०३६७·१०३७०·१०३७४·१०६६८·१०७३०।

भलाई और उस का आनन्द एक होकर रहते हैं। यह हाल लड़केवालों के विषय भी देखा जा सकता है कि जो इस वास्ते कि वे निर्दोषता में हैं शान्ति में भी हैं और इस लिये कि वे शान्ति में हैं उन में खेलाड़ीपन भरा है। परंतु उन की शान्ति बाहरी शान्ति है क्योंकि भीतरी शान्ति जैसा कि भीतरी निर्दोषता केवल ज्ञान ही में रहती है और इस से भलाई और सचाई के उस संयोग में हैं जो ज्ञान का मूल है। स्वर्गीय और दूतविषयक शान्ति उन मनुष्यों के साथ भी रहती है जो उस ज्ञान में हैं जो भलाई और सचाई के संयुक्त होने से पैदा होता है और इस से जिन को ईश्वर पर भरोसा रखने का बोध भी हैं। परंतु जब तक वे इस जगत में रहते हैं तब तक शान्ति उन के भीतरी भागों में पड़ी रहती है। और जब तक कि वे शरीर को छोड़कर स्वर्ग में प्रवेश न करें तब तक वह शान्ति प्रगट न होगी। क्योंकि उसी समय उन के भीतरी भाग खुल जावेंगे।

२८९। जब कि ईश्वरीय शान्ति प्रभु के और स्वर्ग के संयुक्त होने से होती है और विशेष तौर पर प्रत्येक दूत में भलाई के और सचाई के संयुक्त होने से इस लिये यह निकलता है कि जब दूतगण प्रेम की अवस्था में हैं तब वे शान्ति की अवस्था में भी हैं क्योंकि उसी समय उन के निकट भलाई सचाई से संयुक्त है। दूतगण की अवस्थाएं क्रम क्रम से विकार प्राप्त होती हैं इस बारे में न० १५४ वें से १६० वें तक के परिच्छेदों को देखो। मनुष्य की पुनर्जात होते होते वैसी ही अवस्था है। जब उस में भलाई का और सचाई का संयोग हुआ कि जो विशेष करके प्रलोभ के पीछे हुआ करता है तब वह आनन्द की एक अवस्था में जो स्वर्गीय शान्ति से पैदा होती है आ पड़ता है[3]। इस शान्ति की उपमा वसन्त ऋतु के प्रातःकाल से दी जा सकती है। उस समय रात के बीतने पर पृथिवी की सब वस्तुएं चढ़ते हुए सूर्य से नई जीवनशक्ति ले लेती हैं। जिस से तृणादिजाति आकाश पर से ओस पड़ने के द्वारा पुनर्जीवन पाकर इधर उधर अपना सुगन्ध फैलाती है और वसन्तऋतु की गरमी भूमि को फलवत्त्व देती है और मनुष्यों के मन में भी सुख उपजाती है। ये बातें ऐसी होती हैं क्योंकि वसन्तऋतु में का प्रातःकाल स्वर्ग के दूतगण की शान्ति की अवस्था से प्रतिरूपता रखता है। (न० १५५ को देखो)[4]।

२९०। मैं ने दूतगण से शान्ति के बारे में बात चीत की और उन से कहा कि जगत में जब देशों में लड़ाई भड़ाई रुक जाती है और मनुष्यों में बैर और झगड़ा थम्भ जाता है तब शान्ति होती है। और चिन्ता का दूर करना और मन का विश्राम पाना विशेष करके सौभाग्यमान व्यापार करने से जो चैन और सुख है यह सब भीतरी शान्ति कहलाता है। परंतु दूतगण ने कहा कि मन का विश्राम

---

३ भलाई और सचाई का संयोग पुनर्जात होते हुए मनुष्य के साथ शान्ति की अवस्था में हो जाता है। न० ३६९६ · ८५१७।

४ स्वर्ग में की शान्ति की अवस्था पृथिवी पर के वसन्त ऋतु के और भोर के समान है। न० १७२६ · २७८० · ५६६२।

और वह चैन और सुख जो चिन्ता के दूर करने से पैदा होता है और व्यापार करने का सफल होना शान्ति के साधक तो मालूम होते हैं। परंतु वे ऐसे साधक सच मुच नहीं हैं केवल उन के विषय जो स्वर्गीय भलाई में हैं इस वास्ते कि कुछ शान्ति कहीं नहीं है केवल उस भलाई में। क्योंकि शान्ति सब से भीतरी सारभूत में प्रभु की ओर से बहकर जाती है और भीतरी सारभूत से अधम सारभूतों में। और वह सचेतन मन में विश्राम के बोध से अपने को मालूम देती है और प्राकृतिक मन में चैन के बोध से और उस सुख से जो चैन से पैदा होता है। वे जो बुराई में हैं कुछ भी शान्ति नहीं रखते[५]। वास्तव में ऐसा मालूम होता है कि मानों जब मन की अभिलाषा सफल हुई तब वे विश्राम चैन और आनन्द को भोग करते हैं। परंतु यह केवल बाहरी हाल है भीतरी हाल नहीं है। क्योंकि भीतर से वे बैर द्वेष विरोध क्रूरता आदि लालचों से जलते हैं। और ज्यों ही वे किसी को जो उन के प्रतिकूल हैं देखते हैं त्यों ही उन का बाहरी मन उन लालचों में दौड़कर जाता है। यदि वे भय से रोके नहीं जाते तो उन के ये बुरे अनुराग भड़कके अत्यन्त उपद्रव करते हैं। और इस से उन का आनन्द उन्मत्तता में वास करता है परंतु उन का आनन्द जो भलाई की अवस्था में हैं ज्ञान में रहता है। उन के बीच इतना अन्तर है जितना नरक और स्वर्ग के बीच है।

स्वर्ग के और मनुष्यजाति के संयोग के बारे में।

२९१। कलीसिया में यह ज्ञात है कि सारी भलाई ईश्वर ही से होती है और मनुष्य से कुछ भलाई नहीं होती और इस से किसी को अपने तई किसी भलाई का उपादक मानना न चाहिये। और यह भी ज्ञात है कि बुराई शैतान से होती है। और इस से वे जो कलीसिया के सिद्धान्तों के अनुकूल बोलते हैं उन के विषय जो भले काम करते हैं और उन के विषय भी जो पवित्र रीति पर बोलते हैं और धार्मिक उपदेश देते हैं यह कहते हैं कि वे ईश्वर के ले गये हैं। परंतु उन का बयान जो बुरे काम करते हैं और धर्मनिन्दापूर्वक बोलते हैं वे विपरीत रीति पर करते हैं। यदि मनुष्य का स्वर्ग से और नरक से संयोग न होगा और यदि मनुष्य की संकल्पशक्ति का और उस की ज्ञानशक्ति का (क्योंकि इन्हीं के द्वारा शरीर काम करता है और मुंह खोलता है) स्वर्ग से और नरक से ये संयोग न होते तो यह बात ऐसी न होती। उस संयोग के स्वभाव और गुण का बयान हम अब करते हैं।

२९२। भले आत्मागण और बुरे आत्मागण दोनों हर एक मनुष्य के पास उपस्थित रहते हैं। भले आत्माओं के द्वारा उस का स्वर्ग से संयोग होता है और

---

५ वह लालसा जो आत्मप्रेम से और जगतप्रेम से पैदा होती है शान्ति संपूर्ण रूप से हर लेती है। न० ३१७० • ५६६२। किसी किसी की समझ में चञ्चलता और अन्य अन्य बातें जो शान्ति के विरुद्ध हैं शान्ति के कारक होते हैं। न० ५६६२। परंतु जब तक बुराई की लालसा दूर न हों तब तक कुछ शान्ति नहीं हो सकती है। न० ५६६२।

बुरे आत्माओं के द्वारा उस का नरक से संयोग होता है। और ये आत्मागण आत्माओं के जगत में जो स्वर्ग और नरक के बीचों बीच है रहते हैं। जब ये निकटवर्ती आत्मागण मनुष्य के पास आए हुए हैं तब वे उस के सारे स्मरण में पैठते हैं और यहां से उस के सारे ध्यान में। बुरे आत्मागण उस के स्मरण और ध्यान की उन बातों में जो बुरे हैं जाते हैं और भले आत्मागण उन बातों में जो भले हैं। आत्मागण नहीं जानते कि वे मनुष्य के निकट रहते हैं परंतु जब वे उस के निकट हैं तब उन को यह प्रतीति है कि मनुष्य के स्मरण और ध्यान में की सब बातें उन की अपनी बातें हैं। और वे मनुष्य को देखते भी नहीं। क्योंकि हमारे सूर्यसंबन्धी जगत की वस्तुएं उन के दृष्टिगोचर में नहीं पड़तीं[६]। प्रभु बहुत सावधान करके प्रयत्न करता है कि आत्मागण को उन के मनुष्य के निकटस्थ होने का कुछ ज्ञान न हो। क्योंकि यदि वे उस को जानें तो वे मनुष्य से बोलेंगे और ऐसी अवस्था में वे उस का नाश करेंगे। क्योंकि बुरे आत्मागण इस वास्ते कि वे नरक से संयुक्त हैं मनुष्य के सर्वनाश करने की अपेक्षा उत्ताप से और कुछ नहीं चाहते। और न केवल उस के जीव का अर्थात उस की श्रद्धा और प्रेम के विषय परंतु उस के शरीर का भी विनाश करना चाहते हैं। जब वे मनुष्य से नहीं बोलते तब उन की और ही अवस्था है। इस वास्ते कि उस समय वे नहीं जानते कि जो कुछ वे ध्यान करते हैं और बोलते हैं सो मनुष्य की ओर से है। क्योंकि अब वे आपस में एक दूसरे से बोलता हैं तब भी वे मनुष्य की ओर से बोलते हैं। परंतु वे इस बात पर विश्वास करते हैं कि जो बातें वे बोलते हैं सो उन की अपनी बातें हैं। और हर कोई अपनी वस्तुओं को प्यार करता है और मानता है। इस कारण यद्यपि आत्मागण इस बात को नहीं जानते तो भी वे मनुष्य को बलात्कार से प्यार करते हैं और मानते हैं। और बहुत बरसों से ले नित्य परीक्षा करने के द्वारा मुझे आत्माओं की मनुष्य की इस भांति का संयोग सच मुच होना ऐसे संपूर्ण रूप से ज्ञात हुआ कि इस की अपेक्षा किसी अन्य बात पर मैं अधिक विश्वास नहीं करता।

२९३। आत्मागण जो नरक से संसर्ग करते हैं मनुष्य के निकटस्थ हैं क्योंकि मनुष्य सब प्रकार की बुराइयों में जन्म लेता है और इस कारण उस की प्राणशक्ति बुराइयों ही से निकलती है। इस लिये जब तक आत्मागण जिन का गुण उस के गुण के समान है उस से संयुक्त न हों तब तक न तो वह जी सकता है न बुराइयों से दूर होकर भला हो सकता है। इसी हेतु से वह अपने निज जीवन में बुरे आत्माओं से रखा जाता है और भले आत्माओं से उस मे हटाया जाता

---

६ दूतगण और आत्मागण हर एक मनुष्य के पास उपस्थित हैं और उन के द्वारा उस का आत्मीय जगत से संयोग होता है। न० ६९७ • २७९६ • २८८६ • २८८७ • ४०४७ • ४०४८ • ५८४६ से ५८६६ तक • ५९७६ से ५९९३ तक। क्योंकि मनुष्य निकटवर्ती आत्माओं के विना जी नहीं सकता। न० ५९९३। परंतु न तो वह उन को देख सकता है न वे उस को। न० ५८६२। आत्मागण उस मनुष्य की वस्तुओं को छोड़ कि जिस से वे बोलते हैं हमारे सूर्यसंबन्धी जगत में का कुछ नहीं देख सकते। न० १८८०।

है। उन दोनों के प्रभाव से वह सामान्य रूप पर रहता है। वह सामान्य रूप पर होकर स्वतन्त्रता में अपने दिन बिताता है और बुराइयों से अलग होकर भलाई की ओर माइल हो सकता है। क्योंकि जब वह स्वतन्त्रता में है तब भलाई उस में गाड़ी जा सकती है जो कि किसी अन्य अवस्था में असम्भव है। परंतु जब तक नरक के आत्मागण मनुष्य के किसी भाग पर प्रभाव न करें और स्वर्ग के आत्मागण किसी अन्य भाग पर असर न करें और जब तक वह इन दो विरुद्ध प्रभावों के बीचों बीच न रखा जावे तब तक मनुष्य को स्वतन्त्रता दी नहीं जा सकती। मुझे यह भी बतलाया गया कि मनुष्य जहां तक उस में पैत्रिक और स्वार्थी वस्तुएं रहती हैं वहां तक यदि वह बुराई में और स्वतन्त्रता में भी होने न पावे उस में कुछ भी जीवनशक्ति न हो। और वह भलाई की ओर बलात्कार से नहीं झुकाया जा सकता। और जो कुछ बलात्कार से किया जाता है सो भीतर में स्थायी नहीं रहता। और जो भलाई कि मनुष्य स्वतन्त्रता की अवस्था में पाता है सो उस की संकल्पशक्ति में गाड़ी जाती है और ऐसी हो जाती है कि मानों वह उस की निज भलाई है[७]। और इस से मनुष्य का नरक से और स्वर्ग से भी संसर्ग होता है।

२९४। उस संसर्ग का स्वभाव और गुण जो स्वर्ग भले आत्माओं से और नरक बुरे आत्माओं से रखते हैं और इस से उस संसर्ग का स्वभाव और गुण जो स्वर्ग और नरक दोनों मनुष्य से रखते हैं यह सब हम अब बतलाते हैं। आत्माओं के जगत के सब आत्मागण या तो स्वर्ग से या नरक से संसर्ग करते हैं। वे जो बुरे हैं नरक से संसर्ग करते हैं वे जो भले हैं स्वर्ग से। स्वर्ग और नरक दोनों की सभा सभा हैं और हर एक आत्मा किसी विशेष सभा से संबन्ध रखता है और उस सभा के अन्तःप्रवाह के द्वारा बना रहता है इस लिये कि वह उस के साथ मिलकर काम करे। और इस से जब कि मनुष्य आत्माओं से संयुक्त है तो वह या तो स्वर्ग से या नरक से भी संयुक्त है। और वास्तव में वह उस विशेष सभा के साथ संयुक्त है कि जिस में वह अपने अनुराग या प्रेम के विषय रहता है।

---

७ जब कि जो कुछ कोई मनुष्य प्यार करता है वह उस को स्वाधीनता से करता है इस लिये सारी स्वतन्त्रता प्रेम और अनुराग से होती है। न० २८७०・३१५८・८६८७・८६६०・६५८५・६५६१। और जब कि स्वतन्त्रता प्रेम से होती है तो वह मनुष्य की जीवनशक्ति भी है। न० २८७३। स्वतन्त्रता से पैदा हुई वस्तु को छोड़ कोई अन्य वस्तु मनुष्य की दिखाई नहीं देती। न० २८८०। मनुष्य को स्वतन्त्रता इस वास्ते आवश्यकता की बात है कि वह भले होने के योग्य हो। न० १६३७・१६४७・२८७६・२८८१・३१४५・३१४६・३१५८・४०३१・८७००। किसी अन्य अवस्था में भलाई और सचाई का प्रेम मनुष्य में नहीं गाड़ा जा सकता और वह उस की निज वस्तु के समान टिकाऊ रीति से ग्रहण नहीं किया जा सकता। न० २८७७・२८७६・२८८०・२८८८・८७००। क्योंकि जो बलात्कार की ओर से होता है सो मनुष्य से संयुक्त नहीं होता। न० २८७५・८७००। और यदि मनुष्य बलात्कार से भला हो सके तो सब लोग भले होंगे। न० २८८१। परंतु भला करने में जो कुछ बलात्कार की ओर से होता है सो हानिजनक है। न० ४०३१। बलात्कार की अवस्थाएं कौन हाल हैं। न० ८३६२।

क्योंकि स्वर्ग की सब सभाएं भलाई और सचाई के अनुरागों के अनुसार अलग अलग हैं। और नरक की सब सभाएं भी बुराई और झूठ के अनुरागों के अनुसार अलग अलग हैं। स्वर्ग की सभाओं के बारे में न० ४१ से ४५ तक और न० १४८ से १५१ तक देखो।

२९५। आत्मागण जो मनुष्य से संयुक्त हैं उसी गुण के हैं जिस गुण का वह अनुराग या प्रेम के विषय आप होता है। भले आत्मागण प्रभु से मनुष्य के साथ संयुक्त किये जाते हैं परंतु बुरे आत्माओं को मनुष्य आप निकट आने का न्योता देता है। और निकटस्थ आत्मागण मनुष्य के अनुरागों के विकार के अनुसार आया जाया करते हैं। एक प्रकार का आत्मा बचपन में पास रहता है दूसरे प्रकार लड़कपन में एक प्रकार यौवनकाल एक प्रकार पुरुषत्वकाल में और एक प्रकार बुढ़ेपा में। जो आत्मागण बचपन में पास रहते हैं उन का लक्षण निर्दोषता है और इस से वे निर्दोषता के स्वर्ग से जो सब से भीतरी या तीसरा स्वर्ग है संसर्ग रखते हैं। वे जो लड़कपन में उपस्थित हैं जानने के अनुराग से विशेषित हैं और अन्तिम या पहिले स्वर्ग से संसर्ग रखते हैं। वे जो यौवनकाल में और पुरुषत्वकाल में उपस्थित रहते हैं सचाई और भलाई के अनुराग में हैं और दूसरे या मझले स्वर्ग के साथ संसर्ग रखते हैं। और वे जो बुढ़ेपा में पास रहते हैं ज्ञान और निर्दोषता में हैं और भीतरी या तीसरे स्वर्ग से संसर्ग रखते हैं। आत्मागण जो ज्ञान की निर्दोषता में हैं प्रभु से केवल उन्हीं के साथ संयुक्त किये जाते हैं जिन को भले होने और पुनर्जन्म लेने की सामर्थ्य है। वास्तव में भले आत्मा उन्हीं के साथ भी जो भले होने और पुनर्जन्म लेने के योग्य नहीं हैं संयुक्त किये जाते हैं। परंतु यह केवल इस कारण से होता है कि वे मनुष्य जितना बन पड़े उतना ही बुराई से दूर हटाए जावें क्योंकि उन का सन्निहित संयोग उन बुरे आत्माओं से होता है जो नरक से संसर्ग रखते हैं और जो उन्हीं के समान हैं। यदि वे आत्माप्रेमी हैं या स्वार्थी हैं या प्रतिहिंसाशील हैं या छिनालाप्रेमी हैं तो उन शीलों सरीखे आत्मागण विद्यमान रहें। और वे लोग ऐसे हाल में हैं कि मानों वे अपने निज बुरे अनुरागों में वास करते हैं। और जहां तक मनुष्य भले आत्माओं के द्वारा बुराई से हटाया नहीं जा सकता वहां तक बुरे आत्मागण उस में लालसा की आग फूंक देते हैं। और जितना लालसा प्रबल है उतना ही वे पास लगे रहते हैं और हट नहीं जाते। इस वास्ते पापात्मा मनुष्य नरक से संयुक्त है और धर्मात्मा मनुष्य स्वर्ग से।

२९६। मनुष्य पर प्रभु की ओर के आत्मागण राज किया जाता है इस लिये कि वह स्वर्ग की परिपाटी में नहीं है। क्योंकि वह नरक की बुराइयों में जन्म लेता है और इस से वह एक ऐसी अवस्था में जनता है कि जो संपूर्ण रूप से ईश्वरीय परिपाटी के विरुद्ध है। इस कारण अवश्य है कि वह परिपाटी में फिर आवे और यह केवल आत्माओं के सहाय हो सकता है। परंतु यदि मनुष्य भलाई में अर्थात स्वर्ग की परिपाटी के अनुसार जन्म लेता तो यह हाल और ही होता।

क्योंकि वैसी अवस्था में उस का शासन प्रभु से आत्माओं के द्वारा किया नहीं जाता पर परिपाटी ही के अर्थात सामान्य अन्तःप्रवाह के द्वारा। मनुष्य पर उन बातों के विषय में जो उस के ध्यान और मन से निकलकर काम करती हैं और इस से उस की बोल चाल के और क्रियाओं के विषय में (क्योंकि ये दोनों प्राकृतिक परिपाटी के अनुसार बहते हैं) उस अन्तःप्रवाह से राज किया जाता है। आत्मागण जो मनुष्य के निकटस्थ हैं उस की बोल चाल और क्रियाओं से कुछ संबन्ध नहीं रखते। पशु का भी शासन आत्मीय जगत के सामान्य अन्तःप्रवाह से किया जाता है क्योंकि वे अपने जीवन की परिपाटी में हैं कि जो वे नहीं बहका सकते और नाश नहीं कर सकते इस वास्ते कि उन को तर्कशक्ति [मन] नहीं है[८]। मनुष्य और पशु के बीच जो भिन्नता है सो न० ३९वें परिच्छेद में देखी जा सकती है।

२९७। स्वर्ग के और मनुष्यजाति के संयोग के बारे में यह भी कहना चाहिये कि हर एक मनुष्य के विषय प्रभु स्वर्ग की परिपाटी के अनुसार आप बहकर उस की भीतरी और अन्तिम वस्तुओं में अन्दर जाता है। और इसी तौर पर प्रभु उस को स्वर्ग के ग्रहण करने के लिये योग्य करता है और उस की अन्तिम वस्तुओं पर उस के भीतरी भागों की ओर से राज करता है और भीतरी वस्तुओं पर अन्तिम वस्तुओं की ओर से। और इसी रीति से प्रभु मनुष्य की सब वस्तुओं को आपस में एक दूसरे से संयुक्त करता है। प्रभु का यह अन्तःप्रवाह बिचवाईरहित अन्तःप्रवाह कहलाता है। परंतु दूसरा अन्तःप्रवाह जो आत्माओं के द्वारा होता है बिचवाईसहित अन्तःप्रवाह कहाता है। और पिछला अन्तःप्रवाह पहिले अन्तःप्रवाह के सहाय बना रहता है। बिचवाईरहित अन्तःप्रवाह जो प्रभु ही का है उस के ईश्वरीय मनुष्यत्व की ओर से मनुष्य के संकल्पशक्ति में और संकल्पशक्ति से बुद्धि में चलता है। इस कारण वह मनुष्य की भलाई में बहता है और उस की भलाई से पार होकर उस की सचाई में अथवा (और यह उस से एक ही बात है) उस के प्रेम में और उस के प्रेम से पार होकर उस की श्रद्धा में बहकर जाता है। परंतु वह इस प्रवाह से विपरीत कभी नहीं चलता। और न वह श्रद्धा में प्रेम के विना या सचाई में भलाई के विना या बुद्धि [के किसी भाग] में जो संक-

---

८ मनुष्यों और पशुओं के बीच यह भिन्नता है कि मनुष्य प्रभु से उस की अपनी ओर उठाए जा सकते हैं और वे परमेश्वर के विषय ध्यान कर सकते हैं और उस को प्यार कर सकते हैं और इस कारण वे प्रभु के साथ संयुक्त हो सकते हैं और इस से वे अनन्तकाल तक भी जीते हैं परंतु पशुओं की और ही अवस्था है। न० ४५२५ · ६३२३। ९२३१। क्योंकि वे अपने जीवन की परिपाटी में हैं और इस कारण वे ऐसी वस्तुओं में जन्म लेते हैं जो उन के स्वभाव के योग्य होती हैं। परंतु मनुष्य अपने जीवन की परिपाटी में जन्म नहीं लेता और इस कारण अवश्य है कि वह बुद्धिसंबन्धी वस्तुओं से उस जीवन में प्रवेश किया जावेगा। न० ६३७ · ५८५० · ६३२३। सामान्य अन्तःप्रवाह के अनुसार मनुष्य के विषय ध्यान बोल चाल में आन पड़ता है और संकल्प इङ्गितों में। न० ५८६२ · ५९९० · ६१९२ · ६२११। पशुओं के जीवनों में आत्मीय जगत के सामान्य अन्तःप्रवाह होने के बारे में। न० १६३३ · ३६४६।

ग्यशक्ति से नहीं होता किसी तौर पर बहता है। यह ईश्वरीय अन्तःप्रवाह सदैव बहकर चलता है। और वह भले लोगों से भली रीति में ग्रहण किया जाता है न कि बुरे लोगों से। क्योंकि ये या तो उस को दूर करते हैं या बुझाते हैं या बह-काते हैं। इस वास्ते बुरे लोगों का जीवन एक बुरा जीवन है जो आत्मीय जगत में मरण है[६]।

२९८। आत्मागण जो या तो स्वर्ग से या नरक से संयुक्त हैं और मनुष्य के निकटस्थ हैं अपने निज स्मरण से और उस के निकलनेवाले ध्यान से मनुष्य की ओर कभी नहीं बहकर जाती है। क्योंकि ऐसे हाल में मनुष्य इस से विपरीत कुछ नहीं जाने कि उन आत्माओं के ध्यान उस के अपने ध्यान हैं। जैसा कि न० २५६ वें परिच्छेद में देखा जा सकता है। परंतु कोई अनुराग जो भलाई और सचाई के प्रेम का है स्वर्ग की ओर से आत्माओं से पार होकर बहके अन्दर आता है और कोई अनुराग जो बुराई और झुठाई के प्रेम का है नरक की ओर से भी उन से पार होकर बहके अन्दर आता है। इस लिये जहां तक मनुष्य का अनुराग अन्दर बहनेवाले अनुराग से अनुकूल है वहां तक मनुष्य उस को अपने निज ध्यान में ग्रहण करता है (क्योंकि मनुष्य का भीतरी ध्यान उस के अनुराग या प्रेम से पूरी अनुकूलता रखता है)। परंतु जहां तक वह उस से अनुकूल नहीं है वहां तक मनुष्य उस को नहीं ग्रहण करता है। इस से जब कि ध्यान आत्माओं से मनुष्य के मन में बैठाला नहीं जाता पर केवल भलाई का या बुराई का अनुराग वहां बैठाला जाता है तो स्पष्ट है कि मनुष्य का बांछने का अधिकार है क्योंकि उस को स्वतन्त्रता है। और इस कारण वह अपने ध्यान से भलाई को ग्रहण कर सकता है और बुराई को दूर कर सकता है। इस वास्ते कि वह धर्मपुस्तक से जानता है कि कौन वस्तु भली है और कौन वस्तु बुरी। जो कुछ वह अनुराग से अपने ध्यान में ग्रहण करता है सो भी उस को दे दिया जाता है। परंतु जो कुछ वह अनुराग से अपने ध्यान में ग्रहण नहीं करता सो उस को नहीं दे दिया जाता।

---

६ प्रभु की ओर से बिचवाईरहित अन्तःप्रवाह भी और आत्मीय जगत से पार होकर बिचवाईसहित अन्तःप्रवाह भी होता है। न० ६०६३ • ६३०७ • ६४७२ • ६६८२ • ६६८३। प्रभु का बिचवईरहित अन्तःप्रवाह सब से सूक्ष्म वस्तुओं में बहता है। न० ६०५८ • ६४७४ • से ६४७८ तक • ८७१७ • ८७२८। प्रभु क्योंकर सब से पहिली वस्तुओं में और उसी समय सब से पिछली वस्तुओं में बहता है। न० ५१४७ • ५१५० • ६४७३ • ७००४ • ७००७ • ७२७०। प्रभु का अन्तःप्रवाह मनुष्य की भलाई में बहता है और भलाई से पार होकर सचाई में परंतु इस से विपरीत नहीं। न० ५४८२ • ५६४९ • ६०२७ • ८६८५ • ८७०१ • १०१५३। वह जीवन जो प्रभु की ओर से बहकर अन्दर आता है मनुष्य की अवस्था के अनुसार और उस की ग्रहणशक्ति के गुण के अनुसार बद-लता है। २८८८ • ५९८६ • ६४७२ • ७३४३। क्योंकि वह भलाई जो प्रभु की ओर से अन्दर बहता है बुरे लोगों के विषय बुराई हो जाती है और सचाई की झुठाई हो जाती है। यह बात परीक्षा करने से निकलती है। न० ३६०७ • ४६३२। भलाई और उस से निकलनेवाली सचाई जो सदैव प्रभु की ओर से बहती रहती हैं वहां तक ग्रहण की जाती हैं जहां तक बुराई की ओर से निक-लेवाली झुठाई उन को नहीं रोकतीं। न० २४११ • ३१४२ • ३१४७ • ५८२८।

इन बातों से मनुष्य के विषय स्वर्ग की ओर से भलाई के और नरक की ओर से बुराई के अन्तःप्रवाह का गुण स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है।

२९९। मुझे इस बात का जानना दिया गया कि मनुष्य कहां से चिन्ता और शोक और वह भीतरी उदासी जो विषाद कहाता है पाता है। कोई कोई आत्मा जो अभी नरक से इस वास्ते संयुक्त नहीं हैं कि वे अपनी पहिली अवस्था में हैं (जिस के विषय में हम तब कुछ बयान करेंगे जब हम आत्माओं के जगत के बारे में लिखेंगे) अजीर्ण और हिंसाशील वस्तुओं को प्यार करते हैं जैसा कि पेट में का सड़ा मांस। और इस वास्ते जहां मनुष्य में वैसी वस्तुएं हैं तहां वे भी विद्यमान होती हैं क्योंकि वे उन वस्तुओं को पसन्द करते हैं। और वहां वे अपने बुरे अनुराग से आपस में बात चीत करते हैं। और उन की बोल चाल का अनुराग मनुष्य में बहकर जाता है। और यदि वह उस मनुष्य के अनुराग के प्रतिकूल हो तो वह विषाद और शोक और चिन्ता को मचाता है। परंतु यदि वह उस के अनुराग के अनुकूल हो तो वह हर्ष और उल्लास को उकसाता है। ये आत्मागण पेट के पास कोई उस की बाईं ओर कोई उस की दाहिनी ओर कोई नीचे कोई ऊपर दिखाई देते हैं। वे उन अनुरागों के गुण के अनुसार कि जिस से वे विशेषित हैं निकटस्थ या दूरस्थ देख पड़ते हैं और इस कारण भांति भांति के तौर पर विद्यमान होते हैं। यह हाल मन की चिन्ता का कारण है और इस बात का प्रमाण मैं ने बहुत सी परीक्षा करने के पीछे मालूम किया। क्योंकि मैं ने ऐसे आत्माओं को देखा और सुना और उन की उपजाई हुई चिन्ताएं मुझ पर लग गईं और मैं ने उन से बात चीत की। जब वे हटाए गये तब चिन्ता मिट गई और जब वे फिर आए तब चिन्ता भी फिर पहुंची। और मैं ने उन के निकट आने या दूर जाने के अनुसार चिन्ता की घटती बढ़ती मालूम की। इस परीक्षा से मैं ने उस मति का मूल देखा जिस पर कोई लोग जो नहीं जानते कि अन्तःकरण कौन वस्तु है क्योंकि उन के अन्तःकरण नहीं है विश्वास करते हैं। और यह वही मति है कि अन्तःकरण के प्रोत्साह पेट की बीमारी से होते हैं[१०]।

३००। स्वर्ग का मनुष्य से संयोग मनुष्य के मनुष्य से संयोग के समान नहीं

---

१० वे जिन का कोई अन्तःकरण नहीं है नहीं जानते कि अन्तःकरण कौन वस्तु है। न० ७४६० • ९१२१। कोई लोग जब वे अन्तःकरण का स्वभाव समझते हैं तब उस पर हंसते हैं। न० ७२१७। कोई जानते हैं कि अन्तःकरण कोई वस्तु भी नहीं है। कोई जानते हैं कि वह कोई प्राकृतिक वस्तु है जिस की उदासी और शोक या तो शरीर में के उत्पादकों से होते हैं या जगत में के उत्पादकों से। और कोई जानते हैं कि वह सर्वसाधारण लोगों की कोई विशेष वस्तु है जो धर्मासक्ति से होती है। न० ९५०। तीन प्रकार के अन्तःकरण होते हैं सच्चा अन्तःकरण कृत्रिम अन्तःकरण और झूठा अन्तःकरण। न० १०३३। अन्तःकरण का दुख मन की वह चिन्ता है जो किसी अन्यायी असरल या अन्य किसी रीति से बुरी वस्तु के कारण जो मनुष्य की समझ में ईश्वर के प्रतिकूल या पड़ोसी की भलाई के प्रतिकूल होती है उपज आती है। न० ७२१७। उन को अन्तःकरण है जो ईश्वर से प्रेम और पड़ोसी से अनुग्रह रखते हैं परंतु उन का जो इन तत्त्वों पर प्रतीति नहीं रखते कोई अन्तःकरण नहीं है। न० ८३१ • ९६५ • २३८० • ७४९०।

है। परंतु वह उस के मन के भीतरी भागों से और इस कारण उस के आत्मिक अर्थात भीतरी मनुष्य से एक प्रकार का संयोग है। उस के प्राकृतिक अर्थात बाहरी मनुष्य से प्रतिरूपों के द्वारा दूसरे प्रकार का संयोग है। परंतु इस प्रकार के संयोग के बारे में हम तब कुछ और बयान करेंगे जब हम स्वर्ग के मनुष्य से धर्मपुस्तक के द्वारा संयोग के विषय लिखेंगे।

३०१। स्वर्ग के मनुष्यजाति से और मनुष्यजाति के स्वर्ग से संयोग का ऐसा स्वभाव है कि एक दूसरे के सहाय बना रहता है। इस बात का बयान इस बाब के पीछे दूसरे बाब में होगा।

३०२। मैं ने स्वर्ग के मनुष्यजाति से संयोग होने के बारे में दूतगण से बात चीत की और उन से कहा कि कलीसिया का मनुष्य वास्तव में कहता है कि सब भलाई ईश्वर की ओर से होती है और दूतगण मनुष्य के पास विद्यमान हैं। परंतु उन में से थोड़े लोग इस बात पर सच मुच विश्वास करते हैं कि दूतगण मनुष्य के साथ संयुक्त हैं। और बहुत ही थोड़े लोग जानते हैं कि दूतगण मनुष्य के ध्यान और अनुराग में हैं। दूतों ने जवाब दिया कि "हम जानते हैं कि जगत में विशेष करके कलीसिया के मेम्बरों में यद्यपि श्रद्धा का वैसा अभाव है तो भी उसी प्रकार का बोलना प्रबल है। और हम उस पर अचम्भा करते हैं क्योंकि कलीसिया के मेम्बरों के पास धर्मपुस्तक है और वह उन को स्वर्ग के विषय में और उस के मनुष्य से संयोग होने के विषय में शिक्षा देती है। और इस संयोग का स्वभाव ऐसा है कि मनुष्य यदि आत्मागण उस से संयुक्त न हों तो वह कुछ भी ध्यान न कर सके। और इस कारण मनुष्य का आत्मिक जीवन इसी संयोग पर अवलम्बित है"। उन्हों ने यह भी कहा कि "यह अज्ञानता इस अनुमान से निकलता है कि मनुष्य अपनी ओर से विना जीवन की प्रधान सत्ता से संयुक्त होने के जीता है। और इस के भी न जानने से कि वह संयोग स्वर्गों के द्वारा होता रहता है और यदि वह संयोग टूट जावे तो मनुष्य उसी क्षण मर जावे। यदि मनुष्य इस सिद्धान्त पर सच मुच विश्वास करे कि सब भलाई प्रभु की ओर से होती है और सब बुराई नरक की ओर से तो न तो वह अपनी भलाई के विषय में अपना निज गुण माने और न उस पर बुराई का दोष लगा जावे। क्योंकि ऐसी अवस्था में वह प्रत्येक भले ध्यान में और प्रत्येक भले कार्य में प्रभु की ओर देखे। और हर एक भीतर बहनेवाली बुराई नरक की ओर जहां से वह बुराई आई हटाई जावे। परंतु जब कि मनुष्य इस पर नहीं विश्वास करता कि स्वर्ग और नरक की ओर से अन्तःप्रवाह बहता है और इस लिये जब कि वह यह समझता है कि सब बातें जिन का ध्यान वह करता है और जिन को वह चाहता है उसी में हैं और उसी की ओर से हैं तो वह नरक से बुराई को ले लेता है और भलाई जो स्वर्ग की ओर से अन्दर बहता है उस को वह अपने निज गुण के एक गुमान के द्वारा बिगाड़ देता है।

स्वर्ग के धर्मपुस्तक के सहाय मनुष्य से संयोग होने के बारे में।

३०३। वे जो भीतरी तर्कशक्ति से ध्यान करते हैं यह देख सकते हैं कि प्रथम से बिचवाइयों के द्वारा सब वस्तुओं का संयोग होता है और जो कुछ उस संयोग से बांधा नहीं जाता सो गलाया जाता है। क्योंकि वे जानते हैं कि कोई वस्तु आप से नहीं बना रह सकता। पर सब कुछ किसी ऐसी वस्तु से जो अपने आप से पूर्व था बना रहता है और इसी श्रेणी से प्रथम ही से। और वे यह भी जानते हैं कि किसी वस्तु का संयोग किसी वस्तु से जो उस से पूर्व था कार्य और कारण के संयोग के समान है। क्योंकि जब कारण उस के कार्य से हरा जाता है तब कार्य गल जाता है और लोप होता है। जब कि विद्वान लोगों ने इसी रीति से ध्यान किया तो उन्हों ने यह भी देखा और कहा कि नित्य होना बना रहना है। और इस कारण जब कि आदि में सब वस्तुएं किसी प्रथम से हुई थीं तो वे उसी से नित्य होती भी हैं अर्थात वे बनी रहती हैं। परंतु वह संयोग जो हर एक वस्तु किसी पूर्व होनेवाली वस्तु से और इस कारण उस प्रथम से कि जिस से सब वस्तुएं होती हैं उस के स्वभाव का बयान संक्षेप में नहीं किया जा सकता क्योंकि वह विकार्य और भिन्न भिन्न प्रकार का है। हम केवल सामान्य प्रकार से यह कह सकते हैं कि प्राकृतिक जगत आत्मीय जगत से संयोग रखता है और इस हेतु से प्राकृतिक जगत में की सब वस्तुएं आत्मीय जगत में की सब वस्तुओं से प्रतिरूपता रखती हैं (इस प्रतिरूपता होने के बारे में न० १०३ से ११५ तक देखो) और मनुष्य की सब वस्तुएं स्वर्ग की सब वस्तुओं से संयोग और इस से प्रतिरूपता रखती है (इस के बारे में न० ८७ से १०२ तक देखो)।

३०४। मनुष्य ऐसे तौर पर रचा गया कि वह प्रभु से संगम और संयोग दोनों रखता है परंतु स्वर्ग के दूतगण से वह केवल संसर्ग रखता है। दूतगण से वह संयोग नहीं रखता उन से केवल संसर्ग है। इस वास्ते कि पैदा होने से वह अपने भीतरी भागों के विषय जो मन के हैं दूत के समान है। क्योंकि मनुष्य की संकल्पशक्ति और ज्ञानशक्ति दूत की संकल्पशक्ति और ज्ञानशक्ति के समान हैं और इस लिये मरने के पीछे यदि कोई मनुष्य ईश्वरीय परिपाटी के अनुसार चाल चलन करे तो वह दूत हो जावेगा और उस के दूतविषयक ज्ञान होगा। इस लिये जब हम स्वर्ग से मनुष्य के संयोग के बारे में बोलते हैं तब इस बात का यह तात्पर्य है कि प्रभु से मनुष्य का संयोग और उस का संसर्ग भी दूतगण से। क्योंकि स्वर्ग उसी से कि जो दूतगण के उचित है स्वर्ग नहीं होता परंतु प्रभु के ईश्वरत्व ही से। स्वर्ग प्रभु के ईश्वरत्व का है इस बारे में न० ७ से २३ तक देखो। मनुष्य न केवल अपने भीतरी भागों के विषय आत्मीय जगत में है परंतु उसी समय वह अपने बाहरी भागों के विषय प्राकृतिक जगत में है। यह हाल मनुष्य का विशेष लक्षण है और इस से वह दूत से भेदनीय है। उस के बाहरी भाग जो प्राकृतिक जगत में हैं उस के प्राकृ-

तिक या बाहरी स्मरण की वे सब वस्तुएं हैं जो ध्यान और कल्पना के प्रसङ्ग हैं। और ये प्रायः ज्ञान और विद्या हैं और इन के आनन्द और हर्ष भी यहां तक है जहां तक ये जगत पर लगे रहते हैं। और ये शरीर के विषयों के भिन्न भिन्न आनन्द इन के इन्द्रियों के साथ भी और बोली और कार्य भी होती हैं। ये सब वस्तुएं अन्तिम वस्तुएं हैं कि जिन में प्रभु का ईश्वरीय अन्तःप्रवाह निवृत्त होता है। क्योंकि वह मध्यस्थान पर समाप्त नहीं होता पर अन्तिमस्थानों तक चलता है। और इस से स्पष्ट है कि ईश्वरीय परिपाटी का अन्तिमस्थान मनुष्य में है और इस वास्ते कि वह ईश्वरीय परिपाटी का अन्तिम है वह उस की जड़ और नेव भी है। जब कि प्रभु का ईश्वरीय अन्तःप्रवाह मध्यस्थान पर नहीं निवृत्त होता पर अपने अन्तिमों तक चलता है जैसा कि हम अभी कह चुके हैं और जब कि वह मध्यस्थान कि जिस से पार होकर वह चला जाता है दूतविषयक स्वर्ग है और उस का अन्तिमस्थान मनुष्य में है और जब कि कोई वस्तु असंयुक्त नहीं हो सकता तो इस से यह निकलता है कि स्वर्ग का संगम और संयोग मनुष्यजाति से ऐसा है कि उन में से एक दूसरे के सहाय बना रहता है। और स्वर्ग के विना मनुष्यजाति का हाल ऐसा हो जावे जैसा एक शृंखल का हाल है जिस की एक कड़ी टूट गई है। और मनुष्यजाति के विना स्वर्ग का हाल ऐसा हो जावे जैसा कि किसी घर का हाल है जिस की कुछ नेव नहीं है[११]।

३०५। जब कि मनुष्य ने अपने भीतरी भागों को स्वर्ग की ओर से फेरने के और उन को आत्मप्रेम से और जगतप्रेम से जगत की ओर और अपनी ओर फिराने के द्वारा यह संयोग तोड़ा और जब कि उस ने अपने को इस रीति से उठा लिया जिस रीति से वह अब स्वर्ग की जड़ और नेव के स्थान में नहीं है इस लिये प्रभु ने एक बिचवाई प्रस्तुत किया इस वास्ते कि उस के स्थान में स्वर्ग की कुछ जड़ और नेव हो और मनुष्य से स्वर्ग का संयोग होवे। और धर्मपुस्तक यह बिचवाई है। धर्मपुस्तक किस प्रकार से बिचवाई का काम करती है सो बाहुल्य रूप से

---

११ कोई वस्तु आप से आप नहीं होती परंतु सब कुछ किसी पूर्व होनेवाली वस्तु से होता है और इस से प्रथम ही से। वे उसी के सहाय जिस ने उन को पैदा किया बने रहते हैं। क्योंकि बना रहना और नित्य होना एकसां हैं। न० २८८६ · २८८८ · ३६२७ · ३६२८ · ३६४८ · ४५२३ · ४५२४ · ६०४० · ६०५६। ईश्वरीय परिपाटी मध्यस्थान पर नहीं निवृत्त होती परंतु अन्तिमस्थानों तक चलती है और वहां पर निवृत्त होती है। मनुष्य वह अन्तिम है और इस कारण ईश्वरीय परिपाटी मनुष्य में निवृत्त होती है। न० ६३४ · (२८५३) · ३६३२ · ५८९७ · (६२३९) · ६४५१ · ६४६५ · ९२१६ · (९२१७) · ९८२४ · ९८२८ · ९८३६ · ९९०५ · १००४४ · १०३२९ · १०३३५ · १०५४८। भीतरी वस्तुएं बाहरी वस्तुओं में क्रम करके अन्तभाग या अन्तिम तक भी बहती हैं और वहां वे हो रहती हैं और बनी रहती हैं। न० ६३४ · ६२३९ · ६४६५ · ९२१६ · (९२१७)। और उन का होना और बना रहना अन्तिमों में समकालिक परीपाटी से होता है जिस के बारे में न० ५८९७ · ६४५१ · ८६०३ · १००९९ देखो। इस कारण सब भीतरी वस्तुएं अन्तिम के द्वारा प्रथम के साथ संयुक्त की जाती हैं। न० ९८२८। और इस वास्ते प्रथम और अन्तिम से तात्पर्य सब वस्तुएं और हर एक वस्तु और इस कारण इन की सारी समष्टि है। न० १००४४ · १०३२९ · १०३३५। और इस कारण अन्तिमों का बल और शक्ति है। न० ९८३६।

आर्कोना सीलेस्टिया पोथी में दिखलाया गया है और बहुत से वचनों में भी जो एक छोटी सी पुस्तक में एकट्ठे हुए हैं। इस पुस्तक का यह नाम है कि "उस संफेद घोड़े के बारे में जिस की सूचना एपोकालिप्स पोथी में है"। और उस पोथी के अन्तभाग में भी जिस का यह नाम है कि "नए यिरूसलिम और उस के स्वर्गीय तत्त्वों के बारे में"। उन वचनों में से कई एक की सूचना निम्न लिखित टीका में हैं[१२]।

३०६। मुझे स्वर्ग की ओर से बतलाया गया कि सब से प्राचीन लोगों ने बिचवाईरहित देववाणी से शिक्षा पाई क्योंकि उन के भीतरी भाग स्वर्ग की ओर फिरे हुए थे। और इस कारण उस समय प्रभु ने मनुष्यजाति से संयोग रखा। परंतु उस समय के पीछे बिचवाईरहित देववाणी सुनाई नहीं दी। उस के उपरान्त बिचवाईसहित प्रकाशन प्रतिरूपों के द्वारा हुआ किया। और लोगों की जो सब से प्राचीन लोगों के पीछे होते थे सब देवकीय पूजा प्रतिरूपों ही की बनी हुई थी। और इस कारण उन की कलीसियाएं प्रदर्शक कलीसियाएं कहलाती थी। उस समय प्रतिरूपता और प्रदर्शन का स्वभाव संपूर्ण रूप से ज्ञात हुआ। क्योंकि मनुष्य जानते थे कि जगत में की सब वस्तुएं स्वर्ग में की और कलीसिया में की आत्मीय वस्तुओं से प्रतिरूपता रखती हैं। अथवा और यह उस से एक ही है वे उन का प्रदर्शन करते हैं। और इस लिये प्राकृतिक वस्तुएं जो उन के पूजा करने की बाहरी वस्तुएं थीं उन के लिये आत्मिक प्रकार से और इस से दूतगण के साथ

---

१२ धर्मपुस्तक शब्दों ही के अर्थ के अनुसार प्राकृतिक है। न० ८७८३। क्योंकि प्राकृतिक तत्त्व वह तत्त्व है कि जिस में आत्मीय और स्वर्गीय वस्तुएं जो भीतरी वस्तुएं हैं निवृत्त होती हैं और जिस पर वे बनी रहती हैं जैसा कि एक घर अपनी नेव पर। न० ६४३० · ६४३३ · ६८२४ · १००४४ · १०४३६। इस लिये कि धर्मपुस्तक का वैसा गुण हो वह प्रतिरूपों ही की रीति पर लिखी हुई है। न० १४०३ · १४०८ · १४०६ · १५४० · (१६१५) · १६५६ · १७०६ · १७८३ · ८६१५ · १०६८७। और इस कारण कि धर्मपुस्तक अपने शब्दों के अर्थ के अनुसार प्रतिरूपों ही की बनी है तो वह आत्मीय और स्वर्गीय अर्थ का पात्र भी है। न० ६४०७। और एक ही समय मनुष्यों और दूतों के योग्य है। न० १७६७ से १७७२ तक · १८८७ · २१४३ · २१५७ · २२७५ · २३३३ · २३९५ · २५४० · २५४१ · २५४७ · २५५३ · ७३८१ · ८८६२ · १०३२२। इस से वह स्वर्ग और पृथिवी के संयुक्त करने का बिचवाई है। न० २३१० · २४९५ · ६२१२ · ६२१६ · ६३५७ · ६३९६ · १०३७५। क्योंकि प्रभु का संयोग मनुष्य से धर्मपुस्तक के द्वारा भीतरी तात्पर्य के सहाय होता है। न० १०३७५। और सारी धर्मपुस्तक से और उस के हर एक भाग से संयोग होता है और इस लिये धर्मपुस्तक सब और पुस्तकों से बढ़कर अद्भुत है। न० १०६३२ · १०६३३ · १०६३४। जब से धर्मपुस्तक लिखी गई तब से प्रभु इस के द्वारा मनुष्यों से बोलता है। न० १०२९०। कलीसिया जहां धर्मपुस्तक है और जहां प्रभु धर्मपुस्तक के द्वारा विज्ञात है जब उन से जो कलीसिया से बाहर है और जिस के पास धर्मपुस्तक नहीं है और जो प्रभु को नहीं जानते मिलाई जाती है तब वह मनुष्य के हृदय और फेफड़े के समान शरीर के अन्य भागों की अपेक्षा होती है जो उन के सहाय जीते हैं जैसा कि अपने जीवन की सोत से। न० ६३७ · ९३१ · २०५४ · २८५३। क्योंकि पृथिवी पर की सर्वव्यापी कलीसिया प्रभु के साम्हने ऐसी है कि जैसा एक ही मनुष्य है। न० ७३९६ · ९२७६। और यह वही कारण है कि जिस से यदि पृथिवी पर कोई कलीसिया न हो कि जिस के पास धर्मपुस्तक हो और जो धर्मपुस्तक के द्वारा प्रभु विज्ञात हो तो यहां की मनुष्यजाति विनाश प्राप्त होगा। न० ४६८ · ६३७ · ९३१ · ४५४५ · १०४५२।

मेल मिलाप करके ध्यान करने में बिचवाइयों का काम करती थीं। प्रतिरूपताओं और प्रदर्शनों की विद्या के मिट जाने के पीछे धर्मपुस्तक लिखी गई कि जिस में सब शब्द और हर एक वाक्य के शब्दों के अर्थ भी प्रतिरूप होते हैं। और इस लिये उन के आत्मीय या भीतरी अर्थ हैं जिन को दूतगण मालूम करते हैं। इस कारण जब मनुष्य धर्मपुस्तक को पढ़ता है और उस को शब्दों ही के अर्थ के अनुसार जो उस का बाहरी तात्पर्य है समझता है तब दूतगण उस को भीतरी या आत्मीय अर्थ के अनुसार समझते हैं। क्योंकि दूतगण का सारा ध्यान आत्मिक है परंतु मनुष्य का ध्यान प्राकृतिक है। और यद्यपि आत्मीय और प्राकृतिक ध्यान बहुत ही भिन्न मालूम होते हैं तो भी वे एक ही हैं क्योंकि वे आपस में प्रतिरूपता रखते हैं। इस लिये जब मनुष्य ने अपने को स्वर्ग से उठा लिया और संयोग का बन्धन तोड़ा तब प्रभु ने एक नए संयोग का बिचवाई धर्मपुस्तक के द्वारा प्रस्तुत किया।

३०७। स्वर्ग का संयोग किस प्रकार से धर्मपुस्तक के द्वारा मनुष्य के साथ होता है सो थोड़े वचनों के सहाय प्रकाशित किया जा सकता है। एपोकलिप्स की पोथी में नये यिरूसलिम का यह बयान होता है कि "मैं ने एक नये स्वर्ग और एक नई पृथिवी को देखा क्योंकि अगला स्वर्ग और अगली पृथिवी जाती रही थी। और मुझ यूहना ने पवित्र नगर नये यिरूसलिम को स्वर्ग से ईश्वर के पास से उतरे देखा। उस नगर का घेराव चौकोणा है और उस का लम्बान इतना है जितना उस की चौड़ान। और दूत ने उस नगर को जरीब से नापकर बारह हज़ार सतादीवस (अर्थात साढ़े सात सौ कोस) पाया। और उस का लम्बान और चौड़ान और ऊंचान एकसां हैं। फिर उस ने दीवार को नापा तो उस मनुष्य के हाथ से जो दूत था एक सौ चौआलीस हाथ पाया। और उस की दीवार यशम की बनी थी और वह नगर चोखे सोने का निर्मल कांच के सदृश था। और उस नगर की दीवार की नेवें सब प्रकार के मणि से संवरी थीं। और बारह फाटक बारह मोती थे। और उस नगर की सड़क चोखे सोने की पारदर्शक कांच के सदृश थी"। (पर्व २१ वचन १·२·१६ से १९ तक·२१)। जब मनुष्य इन बातों को पढ़ता है और उन को केवल शब्दों ही के अर्थ के अनुसार समझता है तो वह यह गुमान करता है कि दृश्य स्वर्ग रचा जावेगा और पवित्र नगर यिरूसलिम एक नई पृथवी पर उतरेगा और उस का सारा परिमाण ऊपर लिखित बयान के अनुकूल होगा। परंतु मनुष्य के निकटस्थ दूतगण इन वचनों को और ही तौर पर समझते हैं। क्योंकि जो कुछ कोई मनुष्य प्राकृतिक प्रकार से समझता है सो वे आत्मिक प्रकार से समझते हैं। "नये स्वर्ग" और "नई पृथिवी" के वाक्य से उन दूतों को एक नई कलीसिया का बोध है। "यिरूसलिम का नगर स्वर्ग से ईश्वर के पास से उतरता हुआ" इस वाक्य से उन दूतों को उस कलीसिया के प्रभु के प्रकाशित किये हुए स्वर्गीय तत्त्व का बोध है। "उस का लम्बान और चौड़ान और ऊंचान एकसां हैं और बारह बारह हज़ार सतादीवस के हैं" इस वाक्य से उन दूतों को

उस तत्त्व की सब भलाइयों और सचाइयों का बोध है। नगर के घेराव के वाक्य से उन को उस तत्त्व की रक्षाकारी सचाइयों का बोध है। "दीवार का परिमाण कि उस मनुष्य के हाथ से जो दूत था एक सौ चौआलीस हाथ है". इस वाक्य से उन को समुदाय में उन सब रक्षाकारी सचाइयों का और इन्हीं के गुण का बोध है। "उस के बारह फाटक जो बारह मोती थे" इस वाक्य से उन को प्रवेश करानेवाली सचाइयों का बोध है। मोती की बात से भी ऐसी सचाइयों का तात्पर्य है। "दीवार की नेवें सब प्रकार के मणि से संवरी थीं" इस वाक्य से उन को उस ज्ञान का बोध है जिस पर वह तत्त्व स्थित हुआ है। नगर और उस की सड़क पारदर्शक कांच सरीखे सोने की बनी हुई थी" इस वाक्य से उन को प्रेम की उस भलाई का बोध है जिस से वह तत्त्व और अपनी सचाइयें पारदर्शक हो जाती हैं। पस इस लिये दूतगण ऊपर लिखित सारी बातों को ऐसे तौर पर मालूम करते हैं जो मनुष्यों के मालूम करने के तौर से और ही है। क्योंकि यद्यपि वे धर्मपुस्तक के शब्दों के अर्थ को (जैसा कि नये स्वर्ग और नई पृथिवी के। नये नगर यिरूसलिम के। उस की दीवार के। दीवार की नेव और उस के माप के अर्थ को) कुछ भी नहीं जानते तौ भी उन के मन में मनुष्यों के प्राकृतिक बोध दूतगण के आत्मिक बोध हो जाते हैं। तिस पर भी दूतगण के बोध और मनुष्यों के बोध एक होकर मिलते हैं क्योंकि वे उन से प्रतिरूपता रखते हैं। और वे प्रायः किसी बोलनेवाले की बातों के और ऐसे सुननेवाले के जो बातों पर कुछ ध्यान न देकर केवल बातों के अर्थ ही पर ध्यान रखता है उस के समझने के सदृश एक ही बन जाते हैं। इस उदाहरण से मालूम होगा कि क्योंकर धर्मपुस्तक के द्वारा स्वर्ग मनुष्य से संयुक्त है। ईसाइयाह की पोथी का (पर्व १९ वचन २३ से २५ तक) यह दूसरा उदाहरण है। "उस दिन मिसर से असूर तक एक राजमार्ग होगा। और असूरी मिसर में आवेगा। और मिसरी असूर में जावेगा। और मिसरी असूरियों के साथ मिलके सेवा करेंगे। उस दिन इस्राईल मिसर और असूर का तीसरा होगा। और भूमि के मध्य आशिष का हेतु ठहरेगा। कि सेनाओं का प्रभु आशिष देगा और कहेगा धन्य हो मिसर मेरी प्रजा असूर मेरे हाथ की कृति और इस्राईल मेरी बपौती"। इन बातों के पढ़ने से अगर शब्दों का अर्थ आत्मिक अर्थ से अलग किया जावे तो वे नाना प्रकार के ध्यान जो मनुष्यों और दूतों में पैदा होते हैं मालूम हो सकेंगे। मनुष्य शब्दों के अर्थ को देखकर यह जानता है कि मिसरी और असूरी प्रभु की ओर फिराए जावें और स्वीकार किये जावें और इस्राईली लोगों के साथ मिलकर एक कहलावें। पर दूतगण आत्मिक कलीसिया के मनुष्य पर ध्यान करते हैं जिस का बयान भीतरी तात्पर्य के अनुसार होता है। उस का आत्मिक तत्त्व इस्राईल से सूचित होता है उस का स्वाभाविक तत्त्व मिसर से और उस का चैतन्य तत्त्व (जो उन दोनों का बिचवाई है) असूरी से[१३]।

१३ धर्मपुस्तक में मिसर से और मिसरी से तात्पर्य स्वाभाविक तत्त्व है और वह विद्याविषयक तत्त्व जो उस स्वाभाविक तत्त्व से निकलता है। न० ४९६७ • ५०७९ • ५०८० • ५०९५ •

शब्दानुसारी और आत्मिक तात्पर्य एक हो जाते हैं क्योंकि वे एक दूसरे से आपस में समता रखते हैं। और इस लिये जब दूतगण आत्मिक रीति से सोचते हैं और मनुष्य स्वाभाविक रीति से ध्यान करता है तब वे दोनों आपस में ऐसा संयोग रखते हैं जैसा कि शरीर और आत्मा के बीच होता है। क्योंकि धर्मपुस्तक का भीतरी तात्पर्य तो उस का आत्मा है और शब्दानुसारी तात्पर्य उस का शरीर है। इसी तौर पर सारी धर्मपुस्तक रची हुई है। और इस से स्पष्ट है कि धर्मपुस्तक स्वर्ग और मनुष्य के बीच संयोग का एक साधन है। और उस का शब्दानुसारी तात्पर्य उस संयोग की नेव और बुन्याद है।

३०८। वे भी जो कलीसिया के अनुगामी नहीं हैं और जिन के धर्मपुस्तक नहीं है धर्मपुस्तक के द्वारा स्वर्ग से संयोग रखते हैं। क्योंकि प्रभु की कलीसिया सर्वसंबन्धी है और उस में वे सब समाते हैं जो देवकीय सत्त्व मानते हैं और अनुग्रह के मार्ग पर चलते हैं। ऐसे लोग मरने के पीछे दूतगण से समझाए जाते हैं तब तो वे ईश्वरीय सचाइयों को पाते हैं[१४]। इस प्रसङ्ग पर और कुछ बातें उस बाब में पढ़ी जावेंगी जहां कि जेण्टाइल का बयान है। पृथिवी पर की सर्वव्यापी कलीसिया सर्वव्यापी स्वर्ग के सदृश प्रभु के दृष्टिगोचर में एक ही मनुष्य के समान है। सर्वव्यापी स्वर्ग एक मनुष्य के समान है इस बात का प्रमाण न० ५९ वें से ७२ वें तक के परिच्छेदों में है। वह कलीसिया जहां कि धर्मपुस्तक है और जहां धर्मपुस्तक के द्वारा प्रभु पहचाना जाता है मनुष्य के हृदय और फेफड़े के समान है और जब कि शरीर के सारे भीतरी भाग और बाहरी अंग हृदय और फेफड़े से भिन्न भिन्न सरणियों के द्वारा जीवन की शक्ति पाते हैं इसी तौर पर जहां धर्मपुस्तक है मनुष्यों में से जितने लोग कलीसिया से बाहर हैं और जो उस मनुष्य के अंग के समान हैं वे भी उस कलीसिया से जिस के पास धर्मपुस्तक है अपने जीवन की शक्ति पाते हैं। स्वर्ग का संयोग धर्मपुस्तक के द्वारा उन से जो कलीसिया से दूर हैं ज्योति से भी उपमा दिया जा सकता है कि जो एक केन्द्र से चारों ओर फैली जाती है। क्योंकि धर्मपुस्तक में ईश्वरीय ज्योति होती है और इसी ज्योति में स्वर्ग के साथ विद्यमान रहता है और वहां से दूरस्थ लोगों को

५१६० • ५७६६ • ६०१५ • ६१४७ • ६२५२ • ७३५५ • ७६४८ • ९३९१ • ९३४०। असूर से तात्पर्य चैतन्य तत्त्व है। न० ११९ • ११८६। और इस्राईल से तात्पर्य आत्मिक तत्त्व है। न० ५४१४ • ५८०१ • ५८०३ • ५८०६ • ५८१२ • ५८१७ • ५८१९ • ५८२६ • ५८३३ • ५८७९ • ५९५१ • ६४२६ • ६६३७ • ६८६२ • ६८६८ • ७०३५ • ७०६२ • ७१९८ • ७२०१ • ७२१५ • ७२२३ • ७९५७ • ८२३४ • ८८०५ • ९३४०।

१४ जहां धर्मपुस्तक है और धर्मपुस्तक के द्वारा प्रभु पहचाना जाता है और इस लिये जहां स्वर्ग की ईश्वरीय सचाइयें प्रकाश की जाती हैं वहां विशेष करके कलीसिया विद्यमान होती है। न० ३८५७ • १०७६१। क्योंकि सारे जगत में प्रभु की कलीसिया उन लोगों के पास विद्यमान है जो अपने धर्म के तत्त्वों पर चलते हैं। न० ३२६३ • ६६३७ • १०७६५। हर एक देश में सब लोग जो अपने धर्म के मूलसूत्रों के अनुसार भलाई करते हैं और देवकीय सत्त्व मानते हैं प्रभु से स्वीकार किये जाते हैं। न० २५८९ से २६०४ तक • २८६१ • २८६३ • ३२६३ • ४१९० • ४१९७ • ६७०० • ९२५६। और सब बालबच्चे जहां कि पैदा हुए हैं प्रभु उन को स्वीकार करता है। न० २२८९ से २३०९ तक • ४७९२।

भी प्रकाश दे देता है। अगर धर्मपुस्तक न होता तो और ही गति होती। इन सचाइयों का अधिक स्पष्ट समझना उस बयान से जो स्वर्ग के रूप के बारे में किया गया है भली भांति हो सकता है और जिस से सारे दूतविषयक संयोग और संसर्ग बने रहते हैं। (न० २०० से २१२ तक)। वे जो प्राकृतिक ज्योति में रहते हैं इस रहस्य को समझ नहीं सकते परंतु वे जो आत्मिक ज्योति में रहते हैं उस को समझते हैं। क्योंकि वे असंख्य वस्तुओं को देख सकते हैं जो केवल एक ही अस्पष्ट वस्तु के समान दिखाई देती हैं उन लोगों को जो प्राकृतिक ज्योति ही में रहते हैं।

३०९। अगर ऐसी धर्मपुस्तक इस पृथिवी पर न आती तो जगत के निवासी स्वर्ग से अलग होता और इस से वे चैतन्य भी न होता। क्योंकि मनुष्य की चैतन्यशक्ति स्वर्ग की ज्योति के अन्तःप्रवाह से पैदा होती है। इस पृथिवी पर के मनुष्य बिचवाईरहित देववाणी को नहीं पा सकते और वे ऐसी वाणी के द्वारा ईश्वरीय सचाइयों के विषय शिक्षा नहीं पा सकते उन पृथिवी के निवासियों के सदृश जिन का बयान मैं ने एक पृथक पोथी में किया है। (जिस का यह नाम है कि "सूर्यमण्डल की पृथिवियों के बारे में और उन के निवासियों का वही हाल जो कानों से सुना और आंखों से देखा")। क्योंकि हम प्राकृतिक वस्तुओं में और इस से बाहरी वस्तुओं में उन से अधिक मग्न होते हैं। परंतु भीतरी वस्तुएं वही हैं जो देववाणी ग्रहण करते हैं न कि बाहरी वस्तुएं। और इस वास्ते अगर सचाई का प्रकाशन उन के लिये जो बाहरी अवस्थाओं में रहते हैं किया जावे तो वह समझा नहीं जावेगा। इस पृथिवी के मनुष्यों का ऐसा हाल है। यह स्पष्ट रूप से जान पड़ता है उन लोगों के हाल से जो कलीसिया में हैं। ये यद्यपि धर्मपुस्तक से स्वर्ग और नरक और मरनानुगामी जीवन के बारे में शिक्षा पावें तो भी अपने मन ही मन में उन सचाइयों को नकारेंगे। और इस प्रकार के लोगों में से बहुतेरे ऐसे विद्वान मनुष्य हैं जिन की पाण्डित्य प्रसिद्ध है और इस लिये अन्य लोगों की अपेक्षा उन की अधिक बुद्धि होनी चाहिये थी।

३१०। कभी कभी मैं ने धर्मपुस्तक के विषय में दूतगण के साथ बात चीत की और उन को कहा कि कोई लोग उस के सीधे सरल वचनों के कारण उस को तुच्छ जानते हैं और उस के भीतरी तात्पर्य के विषय में कुछ भी नहीं जाना जाता और इस से कोई उस बात पर प्रतीति नहीं करता कि उस पुस्तक में उत्कृष्ट ज्ञान छिपा रहता है। दूतगण ने जवाब दिया कि "यद्यपि धर्मपुस्तक के वचन शब्दानुसारी तात्पर्य के विषय सीधे सरल मालूम होते हैं तो भी वे ऐसे हैं कि अन्य वचनों की अपेक्षा अनुपमेयता से अधिक उत्तम हैं। क्योंकि ईश्वरीय ज्ञान न केवल उस के सर्वसाधारण तात्पर्य में छिपा रहता है पर उस की हर एक बात में। और स्वर्ग उस ज्ञान से ज्योति पाता है"। उन की बातों से यह तात्पर्य है कि वह ज्ञान स्वर्ग की ज्योति है इस लिये कि वह ईश्वरीय सचाई है। क्योंकि

स्वर्ग में ईश्वरीय सचाई ज्योति के समान दृष्टि आती है। (न० १३२ देखो)। उन्हों ने यह भी कहा कि "ऐसी धर्मपुस्तक के विना हमारी पृथिवी के मनुष्य स्वर्ग से कुछ भी ज्योति पा नहीं सकते और न स्वर्ग का उन से संयोग हो सकता। क्योंकि जितना स्वर्ग की ज्योति मनुष्य में विद्यमान रहती है उतना ही संयोग होता है और उसी के अनुसार भी ईश्वरीय सचाई धर्मपुस्तक के द्वारा मनुष्य को दिखलाई जाती है"। मनुष्य नहीं जानता कि संयोग धर्मपुस्तक के आत्मिक तात्पर्य की और प्राकृतिक तात्पर्य की प्रतिरूपता से पैदा होता है। क्योंकि इस पृथिवी के मनुष्य दूतगण के आत्मिक ध्यान और बोली के विषय कुछ भी नहीं जानते और यह भी नहीं जानते कि वे मनुष्यों के प्राकृतिक ध्यान और बोली से पृथक पृथक होते हैं। परंतु जब तक यह मालूम न हो तब तक असम्भव है कि धर्मपुस्तक के भीतरी अर्थ का स्वभाव मालूम किया जावे और यह भी देखा जावे कि उस के द्वारा संयोग हो सके। उन्हों ने यह भी कहा कि "अगर मनुष्यों को उस प्रकार के तात्पर्य का कुछ बोध होवे और जब वे धर्मपुस्तक को पढ़ें तब वे अपने ध्यानों पर उस बोध का प्रभाव लगने देवें तो वे भीतरी ज्ञान में आवेंगे और स्वर्ग से अधिक भी ठोस संयोग रखेंगे। क्योंकि इसी तौर पर वे दूतगण के से बोधों में प्रवेश करेंगे।

स्वर्ग और नरक मनुष्यजाति से होते हैं।

३११। खिष्टीय मण्डल में इस बात को संपूर्ण रूप से अज्ञात है कि स्वर्ग और नरक मनुष्यजाति से होते हैं। क्योंकि इस पर विश्वास किया गया है कि आदि ही पर दूतगण पैदा किये गये थे और यही स्वर्ग का मूल और नेव है। और शैतान भी एक ज्योतिष्मान दूत था जो बलवा करके साथियों समेत स्वर्ग से निकाला गया था और यही नरक का आदिकारण है। दूतगण अचम्भा करते हैं कि खिष्टीय मण्डल में ऐसा मत प्रचलित हो। और विशेष करके कि स्वर्ग के विषय कुछ नहीं जाना जावे यद्यपि उस का होना कलीसिया का एक प्रधान तत्त्व है। परंतु जब कि ऐसी अज्ञानता प्रबल है वे मन ही मन में हुलास करते हैं कि प्रभु ने कृपा करके इन दिनों में स्वर्ग और नरक के बारे में मनुष्यों को बहुत सी बातें प्रकाशित की हैं। और इस तौर पर जहां तक सम्भव हो उस अन्धेरे को दूर किया जो प्रति दिन इस वास्ते अधिक अन्धेरा होता जाता है कि कलीसिया का अन्त आया। इस लिये उन्हों ने मुझे यह आज्ञा दी कि "तुम जाकर कहो कि सर्वव्यापी स्वर्ग में कोई ऐसा दूत नहीं है जो आदि से लेकर दूत होता है न नरक में कोई ऐसा राक्षस है जो पहिले पहिल एक ज्योतिष्मान दूत होकर पीछे स्वर्ग से नीचे फेंका गया। परंतु स्वर्ग में और नरक में सब के सब मनुष्यजाति से होते हैं। और दूतगण ऐसे मनुष्य थे जो जगत में स्वर्गीय प्रेम और श्रद्धा से रहे और राक्षस ऐसे मनुष्य थे जो नरकीय प्रेम और श्रद्धा से रहे"। उन्हों ने यह भी कहा

कि "नरक तो समुदाय में देविल और शैतान कहाता है। देविल की बात से तात्पर्य पिछवाड़ा नरक है जिस के निवासी दैत्य हैं और शैतान की बात से तात्पर्य अगवाड़ा नरक है जिस के निवासी बुरे आत्मा हैं"[१५]। नरक नरक के निज गुण का बयान हम आगे करेंगे। और दूतगण ने यह भी कहा कि "ख्रिष्टीय मण्डल के लोगों को (विना दृष्टान्त देकर और धर्मपुस्तक में के यथार्थ सिद्धान्त लगाकर उस का ठीक तात्पर्य दिखलाने के) स्वर्ग और नरक के निवासियों के विषय धर्मपुस्तक के कित्नी वचनों से ऐसा बोध हुआ। और इन वचनों का विवरण केवल शब्द ही अर्थ के अनुसार हुआ। तो भी धर्मपुस्तक का शब्दानुसारी तात्पर्य यथार्थ सिद्धान्तों की सहायता के विना मन को भिन्न भिन्न मतों की ओर भूलकर खींचता है और इसी रीति से यह अज्ञानता विधर्म और भूल चूक पैदा करता है[१६]।

३१२। कलीसिया के मेम्बरों में ऐसा प्रत्यय लाने का एक और कारण है कि उन के निकट जब तक प्रलयकाल न होगा तब तक कोई आत्मा स्वर्ग पर या नरक में नहीं जावेगा। और वे यह गुमान करते हैं कि उस काल सब वस्तुएं जो अब दृष्टिगोचर हैं विनाश प्राप्त होंगी। और नया सृष्टिचक्र पैदा होगा। और आत्मा अपने शरीर में फिर प्रवेश करेगा और इस संयोग से मनुष्य के समान फिर जीवेगा। और इस गुमान में यह दूसरा गुमान समाता है कि आदि से दूतगण दूतों के रूप पर पैदा हुए। क्योंकि कोई इस पर प्रत्यय नहीं ला सकता कि स्वर्ग और नरक मनुष्यजाति से होते हैं जब कि यह गुमान किया जाता है कि जब तक प्रलयकाल न होगा तब तक मनुष्य न इस में प्रवेश करेंगे न उस में। इस वास्ते कि यह भूल चूक दूर हो जावे मैं कभी कभी विना रोक टोक के भोर ही से रात तक दूतों से संसर्ग करने पाया और बहुत बरस तक नरक के निवासियों से बात चीत करने। और इस रीति से स्वर्ग और नरक के हाल के विषय मैं ने ठीक ठीक समाचार पाया। मुझे इस भांति की परीक्षा करने की आज्ञा इस वास्ते मिली कि प्रलयकाल के बारे में और शरीर के मरने से फिर जीने तक आत्मा के

---

१५ सारे नरक सब मिलकर या सारे नरकीय आत्मा समुदाय में देविल और शैतान कहलाते हैं। न० ६९४। और वे जो जगत में देविल कहाते हैं सो मरने के पीछे देविल हो जाते हैं। न० ६९८।

१६ कलीसिया के सिद्धान्त धर्मपुस्तक ही से निकालना चाहिये। न० ३४६४ • ५४०२ • ५४३२ • १०७६३ • १०७६४। परंतु धर्मपुस्तक सिद्धान्तों के विना समझा नहीं जाता। न० ९०२५ • ९४०९ • ९४२४ • ९४३० • १०३२४ • १०४३१ • १०५८२। क्योंकि यथार्थ सिद्धान्त उन के लिये जो धर्मपुस्तक पढ़ते हैं एक दीपक है। न० १०४००। यथार्थ सिद्धान्त उन से पाया जाता है जो प्रभु की ओर से प्रकाशित होते हैं। न० २५१० • २५१६ • २५१९ • ९४२४ • १०१०५। परंतु वे जो केवल शब्दानुसारी अर्थ को विना सिद्धान्त के ग्रहण करते हैं ईश्वरीय सचाइयों के समझने को कभी नहीं प्राप्त होते। न० ९४०९ • ९४१० • १०५८२। क्योंकि वे भूल चूक की ओर पहुंचाए जाते हैं। न० १०४३१। वे जो उन सिद्धान्तों को पढ़ पढ़ाते हैं कि कलीसिया धर्मपुस्तक से निकालती है और वे जो केवल शब्दानुसारी अर्थ मात्र से पढ़ पढ़ाते हैं इन दोनों की भिन्नता के बारे में। न० ९०२५।

ज्वाल के बारे में और दूतगण और देविल के बारे में जितनी भूल चूक कलीसिया के मेम्बरों के मन में हैं उन से वे बचाए जावें। क्योंकि यह विश्वास कि झूठ बात पर प्रत्यय करना है मन को अन्धेरे में डुबाता है। और उन लोगों के मन में जो अपनी निज बुद्धि से इस प्रसङ्ग पर ध्यान करते हैं पहिले संदेह और अन्त में नकारना उपजाता है। क्योंकि ऐसे मनुष्य अपने मन में कहते हैं कि "क्योंकर यह हो सकता है कि इतना बड़ा स्वर्ग और करोड़ों तारे और सूर्य और चान्द विनाश प्राप्त होकर लोप हो जावें। और जब कि तारे पृथिवी से आप बड़े हैं उन का आकाश से पृथिवी पर गिरना क्योंकर सम्भव हो सकता है। और यह क्योंकर सम्भव हो कि शरीर जो कि कीड़ों ने खा लिये और सड़न ने सड़ाए और जिन के परमाणु अलग अलग होकर वायु से मिल गये तो वे फिर एकट्ठे हो शरीर बनकर अपने आत्मा के साथ फिर संयुक्त होवें। इतने काल तक आत्मा कहां पर छिपे बैठेगा और जब वह उन इन्द्रियों से विहीन होगा जो उस ने शरीर से पाया तब वह किस भांति की वस्तु होगा"। ऐसे ऐसे प्रसङ्गों की सूचना करना जो अबोधनीय बातों से संबन्ध रखते हैं आवश्यकता का काम नहीं है। परंतु अबोधनीय मूलतत्त्व विश्वासयोग्य नहीं हो सकते। और बहुधा इस प्रकार के मूलतत्व कई एक बातों पर जो कलीसिया के धर्म से संबन्ध रखते हैं प्रत्यय करने का विनाश कर देते हैं जैसा कि मृत्यु के पीछे आत्मा के जीव का बना रहना तथा स्वर्ग और नरक का होना इत्यादि। उन्हों ने श्रद्धा का विनाश भी किया। यह उन लोगों की बातों से स्पष्ट है जो यह कहते हैं कि "ऐसी कौन व्यक्ति है जिस ने स्वर्ग से आकर हम को कब कहा कि सच मुच स्वर्ग होता है। अगर कोई नरक के सरीखा स्थान भी है तो वह क्या स्थान है। मनुष्य का नित्य आग में सताया जाना क्या तात्पर्य रखता है। विचारदिवस क्या है। क्या बहुतेरे शतकों तक उस की प्रतीक्षा व्यर्थ नहीं की गई"। और कई एक ऐसी बातें जिन की सूचना अवश्य नहीं जिन में उन सिद्धान्तों का अप्रत्यय पाया जाता है। इस लिये कि कहीं वे लोग जिन के मन में ऐसे ऐसे बोध हैं (जैसा कि बहुत से लोग जो अपने प्राकृतिक ज्ञान से विद्वान और पण्डित कहलाते हैं) अधिक काल तक उन लोगों को जो श्रद्धा और हृदय के विषय सीधे सच्चे हैं व्याकुल और मोहित न करें और परमेश्वर और स्वर्ग और नित्य जीवन और अन्य अन्य बातों के ऊपर जो इन से संबन्ध रखती हैं नरको अन्धेरा न फैलावें प्रभु ने मेरे आत्मा के भीतरी भागों को खोला और इसी कारण मुझ को इतनी सामर्थ्य हुई कि मैं ने उन सभों से जो मैं ने किसी समय कभी जाने थे उन की मृत्यु के पीछे बात चीत की। उन में से कई एक के साथ मैं ने दिनों तक बात चीत की कई एक के साथ महीनों तक और कई एक के साथ एक बरस तक। तिस पर भी मैं ने और मरे हुए लोगों से इतनी कुछ बात चीत की कि अगर मैं यह कहूं कि मैं ने एक लाख व्यक्तियों से बात चीत की तो बहुत न होगा। उन में से बहुतेरी व्यक्तियें स्वर्गों में थीं और बहुतेरी नरकों में। मैं ने कई एक के साथ उन के शरीर की क्या क्या तैयारी मिट्टी देने के लिये हो रही

थी कही। वे उस को सुनकर यह जवाब दिया कि उचित है कि वह वस्तु जो जगत में हम शरीर के काम में लाए दूर की जावे। और उन्हों ने मुझ से यह प्रार्थना की कि "कहो कि हम मरे नहीं हैं परंतु जीते हैं। और हम ऐसे ही सच मुच मनुष्य हैं जैसा कि हम पहिले थे। हम केवल एक जगत को छोड़कर दूसरे जगत में आए। और हम को कुछ भी बोध नहीं है कि हम कुछ खो बैठे हैं। क्योंकि हम ऐसे शरीर में हैं कि जिस में पहिले शरीर के सारे इन्द्रिय होते हैं। हम ऐसी ज्ञानशक्ति और संकल्पशक्ति काम में लाते हैं जैसा कि हम पहिले लाते थे। और हम ऐसा ध्यान अनुराग इन्द्रियज्ञान और अभिलाष है ठीकोंठीक उस के समान कि जो जगत में था"। उन में से कई एक जो नूतन काल में मरे थे जब उन्हों ने ऐसी रीति से अपने आप को जीते पाया जिस रीति से वे पहिले जीते थे (क्योंकि मरने के पीछे पहिली अवस्था ऐसी है जैसी वह जगत में थी परंतु वह क्रम करके या तो स्वर्गीय अवस्था सी बदलती जाती है या नरकीय अवस्था सी) तब उन पर नया हर्ष लगा और उन्हों ने कहा कि हम को ऐसा प्रत्यय न था। उन्हों ने बहुत अचरज किया कि मृत्यु के पीछे के जीवन के विषय में उन को इतनी अज्ञानता और अन्धता थी। और उन्हों ने इस पर अधिक भी अचरज किया कि जब कि कलीसिया के मेम्बर जगत ही में सचाई को अनायास जान सकते हैं तो वे भी वैसी अज्ञानता और अन्धता में हो रहते हैं[१७]। उस काल उन्हों ने झट पट अपने अन्धेपने और अज्ञानता का कारण जाना कि वह उन बाहरी वस्तुओं से होता है जो जगत से और शरीर से संबन्ध रखती हैं। ये वस्तुएं उन के मन में इतनी भरी हैं कि वे स्वर्ग की ज्योति में उठाए नहीं जा सकते और उन की समझ में कलीसिया की वस्तुएं तत्त्व ही तत्त्व हैं। क्योंकि जब शारीरिक और प्राकृतिक वस्तुओं पर ऐसा प्रेम किया जाता है जैसा कि आज कल लोग करते हैं तब उन वस्तुओं से अन्धेरे ही का अन्तःप्रवाह बहता है और वह कोई उत्तमतर बोध रोकता है।

---

१७ इन दिनों में खिष्टीय मण्डल में बहुत थोड़े लोग इस बात पर विश्वास करते हैं कि मनुष्य मृत्यु के पीछे झट पट उठ खड़े होते हैं। सृष्टि की पोथी के १६ वें पर्व के प्रस्ताव को देखो और न० ४६७२ · १०७५८। इस से विपरीत उन को यह मत है कि विचारदिवस पर जब दृश्य जगत विनाश को प्राप्त होगा तब मनुष्य उठ खड़े होंगे। न० १०५९५। इस विश्वास का कारण। न० १०५९५ · १०७५८। तो भी मनुष्य मृत्यु के पीछे झट पट उठ खड़े होते हैं और वे निश्चय मनुष्य सब इन्द्रियों समेत हैं। न० ४५२७ · ५००६ · ५०७८ · ८९३९ · ८९९१ · १०५९४ · १०७५८। क्योंकि आत्मा कि जो मृत्यु के पीछे जीता है मनुष्य का जी है और वह मनुष्य में आप मनुष्य है और परलोक में निश्चय मानुषक रूप पर है। न० ३२२ · १८८० · १८८१ · ३६३३ · ४६२२ · ४७३५ · ५८८३ · ६०५४ · ६६०५ · ६६२६ · ७०२१ · १०५९४। परीक्षा करने से। न० ४५२७ · ५००६ · ८९३९। धर्मपुस्तक से। न० १०५९७। पवित्र नगर में जो मरे हुए देखे गये और जिन की सूचना मत्ती की पोथी के २७ वें पर्व के ५३ वें वचन में है उन से कौन तात्पर्य है। न० ९२२९। जिस तौर पर मनुष्य मृत्यु के पीछे जीते उठते हैं उस का बयान परीक्षा करने से। न० १६८ से १८९ तक। उठने के पीछे उस की अवस्था के बयान में। न० ३१७ · ३१८ · ३१९ · २११९ · ५०७९ · १०५९६। आत्मा और उस के उठने के विषय जो झूठ मत प्रचलित हैं उन का बयान। न० ४४४ · ४४५ · ४५२७ · ४६२२ · ४६५८।

३१३। जब ख्रिष्टीय मण्डल में से बहुतेरे पण्डित मरने के पीछे देखते हैं कि वे शरीरधारी होकर पोशाक पहिने ऐसे तौर पर घर में बैठे रहते हैं जिस तौर पर वे जगत में रहते थे तब वे विस्मित करते हैं। और जब मरने के पीछे उन के पहिले गुमान दूसरे जीवन के विषय जीव के विषय आत्मागण के विषय स्वर्ग और नरक के विषय उन के मनों में फिर आते हैं तब वे लज्जित होकर सिर झुकाकर यह कहते हैं कि हमारे मूर्खता के मता थे और जो लोग सीधे सच्चे स्वभाव से श्रद्धा लाते थे वे हम से अधिक विद्वान थे। जब पण्डित लोग की जिन्हों ने ऐसे मिथ्या मत पर प्रत्यय किया था और जिन्हों ने प्रकृति से सब वस्तुएं संबन्ध की थी परीक्षा की गई तब तो देखते क्या हैं कि उन के भीतरी भाग संपूर्ण रूप से बन्द हुए हैं और केवल उन के बाहरी भाग खुले हुए हैं इस लिये उन्हों ने स्वर्ग की ओर नहीं देखे थे पर जगत की ओर और इस से नरक की ओर भी। क्योंकि जितना भीतरी भाग खुले हुए हैं उतना ही मनुष्य स्वर्ग की ओर देखता है परंतु जितना भीतरी भाग बन्द हुए हैं और केवल बाहरी भाग खुले हुए हैं उतना ही मनुष्य नरक की ओर देखता है। ऐसा हाल इस कारण से होता है कि मनुष्य के भीतरी भाग स्वर्ग की सब वस्तुओं के ग्रहण करने के योग्य हैं और उस के बाहरी भाग जगत की सब वस्तुओं के ग्रहण करने के योग्य हैं। और वे जो जगत को ग्रहण करते हैं पर उसी क्षण स्वर्ग को नहीं पाते नरक को ग्रहण करते हैं[१८]।

३१४। और यह भी स्पष्ट है कि स्वर्ग मनुष्यजाति से होता है क्योंकि दूतविषयक मन और मानुषक मन एकसां हैं। दोनों के ज्ञानशक्ति दृष्टिशक्ति और संकल्पशक्ति है और दोनों ऐसे तौर पर रचे हुए हैं कि वे स्वर्ग को ग्रहण कर सकते हैं। क्योंकि मानुषक मन दूतविषयक मन के समान ज्ञान के ग्रहण करने के योग्य है। परंतु वह जगत में बहुत ज्ञानी नहीं हो जाता क्योंकि वह एक पार्थिव शरीर में रहता है और उस शरीर में आत्मिक मन प्राकृतिक रीति पर ध्यान करता है। जब मानुषक मन अपने शरीर के बन्धन से छुड़ाया गया और ही अवस्था है। क्योंकि उस समय वह प्राकृतिक रीति पर नहीं ध्यान करता पर आत्मिक रीति पर। और जब वह आत्मिक रीति पर ध्यान करता है तब वह ऐसी बातों को समझता है जो प्राकृतिक मनुष्य की समझ में अबोधनीय और अकथनीय हैं। और इस लिये वह दूत के सदृश हो जाता है। इन बातों से यह मालूम हुआ कि मनुष्य की भीतरी वस्तु जो उस का जीव कहलाता है सारांश से लेकर दूत ही है। [न० ५७ को देखो][१९]। और जब वह पार्थिव शरीर से छुड़ाया गया तब वह

---

१८ मनुष्य में आत्मिक जगत और प्राकृतिक जगत आपस में एक दूसरे से संयुक्त होते हैं। न० ६०५७। क्योंकि उस के भीतरी भाग स्वर्ग के रूप पर हैं और उस के बाहरी भाग जगत के रूप पर। न० ३६२८ · ४५२३ · ४५२४ · ६०५७ · ६३१४ · ९७०६ · १०१५६ · १०४७२।

१९ मनुष्य के जीव के कई एक अंश हैं जैसा कि स्वर्गों के अंश हैं और मृत्यु के पीछे उस के जीवन के अनुसार वे खोले जाते हैं। न० ३७४७ · ९५९४। क्योंकि स्वर्ग मनुष्य के अन्दर है। न० ३८८४। और वे जो प्रेम और अनुग्रह के पथ पर चलते हैं अपने में दूतविषयक ज्ञान रखते हैं कि जो

मानुषक रूप पर दूत के समान है। (दूत निश्चय मानुषक रूप पर है इस बात के बारे में न० ७३ से ७७ तक देखो)। परंतु जब मनुष्य का भीतरी भाग ऊपर को नहीं खुला हुआ है पर केवल नीचे को तब यद्यपि वह शरीर से छूट जाने के पीछे अपने मानुषक रूप पर रहता है तो भी वह रूप भयङ्कर और पैशाचिक है। क्योंकि वह ऊपर को स्वर्ग की ओर देख नहीं सकता पर केवल नीचे को नरक की ओर।

३१५। जिस किसी ने ईश्वरीय परिपाटी के विषय में शिक्षा पाई वह यह भी समझ सकता है कि मनुष्य इस वास्ते पैदा किया गया था कि वह एक दूत बनाया जावे। क्योंकि उस में परिपाटी का अन्तिम रहता है [न० ३०४]। जिस में स्वर्गीय और दूतविषयक ज्ञान की कोई वस्तु बन जावे जो पुनरारम्भ और वर्द्धन के योग्य है। क्योंकि ईश्वरीय परिपाटी किसी बीचवाले स्थान पर कभी नहीं थम्भे रहती है और वहां पर किसी वस्तु को उस के अन्तिम के विना नहीं बनाती है (इस वास्ते कि ऐसी अवस्था में वह वस्तु पूर्ण और निष्पन्न न हो सके)। इस के विपरीत ईश्वरीय परिपाटी अपने अन्तिम तक चलती है और वहां पर बनाने का आरम्भ करती है। वहां तो वह संचित साधनों के द्वारा अपने आप को भी फिर जैसे का तैसा कर डालती है और और वस्तुओं को भी जन्माती है। यह जननों से होता है और इस लिये वह अन्तिम स्वर्ग का बीजारोपस्थल है।

३१६। प्रभु फिर जी उठा न केवल अपने आत्मा के विषय परंतु अपने शरीर के विषय भी। क्योंकि जब वह जगत में था तब उस ने अपने सारे मनुष्यत्व को यशस्वी किया अर्थात उस ने उस को ईश्वरत्व दिया। क्योंकि वही आत्मा जो उस ने पिता की ओर से पाया ईश्वरत्व ही आप था। और उस का शरीर आत्मा की अर्थात पिता की प्रतिमा सा बनाया गया था और इस से वह भी ईश्वरीय था। इस कारण वह किसी मनुष्य से विपरीत अपना आत्मा और शरीर दोनों के साथ फिर जी उठा[२०]। जिस को उस ने अपने चेलों के आगे प्रकाशित किया इस लिये कि उन्हों ने उस के देखते ही यह जाना कि वह आत्मा ही है। उस ने कहा कि "मेरे हाथ पांव को देखो कि मैं ही हूं। और मुझे छूओ और देखो। क्योंकि आत्मा को शरीर और हड्डी नहीं जैसा मुझ में देखते हो"। (लूका पर्व २४ वचन ३७ से ३९ तक)। इन बातों से उस ने प्रकाश किया कि वह न केवल उस के आत्मा के विषय मनुष्य था परंतु उस के शरीर के विषय भी।

३१७। इस हेतु कि यह मालूम हो जावे कि मनुष्य मृत्यु के पीछे जीता है और वह जगत में की अपनी चाल चलन के अनुसार या तो स्वर्ग को या नरक को जाता है बहुत सी बातें मनुष्य की मृत्यु की अनुगामी अवस्था के विषय मुझ

जगत में छिपा रहता है परंतु मृत्यु के पीछे प्रकाशित होता है। न० २४९४। कोई मनुष्य जो प्रभु की ओर से प्रेम और श्रद्धा की भलाई ग्रहण करते है धर्मपुस्तक में एक दूत कहलाता है। न० १०५२८।

२० मनुष्य केवल अपने आत्मा के विषय फिर जी उठता है। न० १०५९३ · १०५९४। परंतु प्रभु ही अपने शरीर के विषय भी फिर जी उठा। न० १७२९ · २०८३ · ५०७८ · १०८२५।

को प्रकाशित हुईं जिन की सूचना तब क्रम क्रम से होगी जब हम आत्माओं के जगत का बयान करेंगे ।

स्वर्ग में की, उन व्यक्तियों के बारे में कि जो कलीसिया से बाहर के देशों अर्थात लोगों की थीं ।

३१८ । सर्वसाधारण मत यह है कि वे जो कलीसिया से बाहर जन्म लेते हैं और जो हीदन या बुतपरस्त या जेण्टाइल कहलाते हैं मुक्ति नहीं पा सकते। क्योंकि उन के पास धर्मपुस्तक नहीं है और इस लिये वे प्रभु को नहीं जानते जिस के बिना मुक्ति नहीं हो सकती। परंतु निश्चय है कि वे मुक्ति पा सकते हैं क्योंकि प्रभु की कृपा सर्वव्यापी होकर हर एक व्यक्ति तक पहुंचती है। और इस वास्ते कि वे उन के सदृश जो कलीसिया के मेम्बर हैं (जिन की संख्या कम है) मनुष्य के रूप पर पैदा हुए। और इस हेतु से भी कि उन का कुछ दोष नहीं है कि वे प्रभु को नहीं जानते। हर कोई जो शिक्षित बुद्धि की सहायता से ध्यान करता है यह मालूम कर सकता है कि कोई मनुष्य नरक के लिये पैदा नहीं हुआ। क्योंकि प्रभु प्रेम ही आप हैं और उस का प्रेम इसी में है कि वह चाहता है कि हर कोई मनुष्य मुक्ति पावे। और इस कारण उस ने यह नियम कर रखा कि हर किसी का कोई न कोई धर्म हो और इस से हर एक मनुष्य किसी ईश्वरीय सत्त्व को माने और भीतरी जीव रखे। क्योंकि धार्मिक तत्त्व के अनुसार चाल चलना भीतरी तौर पर जीना है इस कारण कि उस समय एक ईश्वरीय सत्त्व की पूजा की जाती है। और जहां तक उस सत्त्व का ध्यान किया जाता है वहां तक मनुष्य जगत का ध्यान नहीं करता और वह अपने आप को जगत से अलग करता है और इस से जगत की चाल चलन से जो बाहरी है अलग रहता है[२१] ।

३१९ । जेण्टाइल ख्रिष्टीय लोग के सदृश मुक्ति पाते हैं यह बात उन को मालूम हो सकती है जो यह जानते हैं कि मनुष्य की समझ में स्वर्ग किस का है। क्योंकि स्वर्ग मनुष्य के अन्दर है। और जिन के अन्दर स्वर्ग है वे मृत्यु के

---

२१ जेण्टाइल ख्रिष्टीय लोग के सदृश मुक्ति पाते हैं। न० ९३२ · १०३३ · १०५९ · २२८४ · २५८९ · २५९० · ३७७८ · ४१९० · ४१९७। परलोक में के कलीसिया से बाहरी देशों और लोगों की अवस्था के बारे में। न० २५८९ से २६०४ तक। जहां धर्मपुस्तक है और जहां उस के द्वारा प्रभु पहचाना जाता है वहां विशेष करके कलीसिया है। न० ३८५७ · १०७६१। तौ भी वे जो जहां धर्मपुस्तक है और जहां प्रभु पहचाना जाता है पैदा होते हैं इस कारण से कलीसिया के मेम्बर नहीं हैं पर वे कलीसिया के मेम्बर हैं जो अनुग्रह और श्रद्धा के पथ पर चलते हैं। ६६३७ · १०१४३ · १०१५३ · १०५७८ · १०६४५ · १०८२९। क्योंकि प्रभु की कलीसिया जगत में के सब लोगों से रहती है जो अपने धार्मिक तत्त्व के अनुसार चलते हैं और एक ईश्वरीय सत्त्व को मानते हैं। और सारे ऐसे लोगों को प्रभु स्वीकार करता है और वे स्वर्ग को जाते हैं। न० २५८९ से २६०४ तक · २८६१ · २८६३ · ३२६३ · ४१९० · ४१९७ · ६७०० · ९२५६।

पीछे स्वर्ग को जाते हैं। मनुष्य में एक ईश्वरीय सत्त्व का मानना और उस से पथदर्शन पाना स्वर्ग का विद्यमान होना है। क्योंकि एक ईश्वरीय सत्त्व का मानना सारे धर्म का पहिले और उत्तमतर तत्त्व है और इस मानने के विना कोई धर्म नहीं हो सकता। हर एक धर्म के तत्त्व पूजा करने से संबन्ध रखते हैं क्योंकि वे यह शिक्षा सिखलाते हैं कि क्योंकर ईश्वरीय सत्त्व की पूजा करनी चाहिये ता कि मनुष्य उस सत्त्व की समझ में ग्रहण किये जाने के योग्य हो जावे। और जितना ये तत्त्व मन में आकर रहते हैं और मनुष्य उन से प्यार रखता है उतना ही वह प्रभु से पथदर्शन पाता है। यह भली भांति मालूम हुआ कि जेण्टाइल लोग ख्रिष्टीय लोगों के सदृश धार्मिक तत्त्वों पर चलते हैं और कई एक उन में से ख्रिष्टीय लोगों की रीति से उत्तम रीति पर चलते हैं। मनुष्य धार्मिक तत्त्वों पर इस वास्ते चलते हैं कि या तो ईश्वरीय सत्त्व उन की सुध करे या जगत के लोग उन को भले मानें। परंतु ईश्वरीय सत्त्व के निमित्त धार्मिक तत्त्वों पर चलना आत्मिक जीवन भी कहलाता है। और यद्यपि बाहरी ओर से दोनों एकसां दृष्टि आते हैं तो भी भीतरी ओर से वे संपूर्ण रूप से भिन्न होते हैं। क्योंकि एक तो मनुष्य को मुक्त करता है और दूसरा उस को मुक्ति नहीं देता। क्योंकि जो मनुष्य ईश्वरीय सत्त्व के निमित्त धार्मिक तत्त्वों पर चलता है उस को ईश्वरत्व ले चलता है परंतु जो मनुष्य जगत के निमित्त धार्मिक तत्त्वों पर चलता है वह अपने आप को ले चलता है। इस बात को हम उदाहरण देकर बयान कर सकते हैं। वह जो अपने पड़ोसी का इस वास्ते बुरा नहीं करता कि बुरा करना धर्म के विरुद्ध है और इस लिये ईश्वरत्व के विरुद्ध है आत्मिक हेतु के निमित्त बुराई से अलग रहता है। परंतु वह जो केवल राजाज्ञा की डर से या अपनी सुकीर्त्ति और महात्मा के विनाश की डर से या धन के लोभ से और इस से अपने आप के और जगत के लिये पड़ोसी का बुरा नहीं करता केवल प्राकृतिक हेतु के निमित्त बुराई से अलग रहता है और वह अपने आप का पथदर्शक है। इस का जीवन प्राकृतिक है और उस का जीवन आत्मिक। उस मनुष्य में कि जिस का धार्मिक जीवन आत्मिक है स्वर्ग रहता है परंतु स्वर्ग उस मनुष्य में नहीं रहता जिस का धार्मिक जीवन केवल प्राकृतिक है। और इस का यह कारण है कि स्वर्ग ऊपर से आकर भीतर बहता है और मनुष्य के भीतरी भागों से पार होकर बाहरी भागों में बहता है। परंतु जगत नीचे से आकर भीतर बहता है और बाहरी भागों को खोल देता है न कि भीतरी भागों को। क्योंकि प्राकृतिक जगत से आत्मिक जगत में अन्तः-प्रवाह नहीं हो सकता परंतु आत्मिक जगत से प्राकृतिक जगत में। और इस लिये अगर जगत के साथ ही स्वर्ग भी नहीं पाया जावे तो भीतरी भाग बन्द हो जावें। इन बातों से यह मालूम होगा कि कौन कौन अपने अपने में स्वर्ग को ग्रहण करता है और कौन कौन उस को ग्रहण नहीं करता। परंतु स्वर्ग हर एक में एकसां नहीं है क्योंकि वह हर एक में उस के अनुराग के अनुसार भलाई के लिये और उस सचाई के लिये जो भलाई से पैदा होती है भिन्न भिन्न होता है।

वे जो ईश्वरत्व के निमित्त भलाई के अनुराग में रहते हैं ईश्वरीय सचाई से प्रेम रखते हैं। क्योंकि भलाई और सचाई आपस में परस्पर एक दूसरे से प्रेम रखते हैं और परस्पर संयोग चाहते हैं[२२]। और इस से यद्यपि जेण्टाइल लोग इस संसारिक जीवन में सीधी सचाइयों को नहीं रखते तो भी परलोक में वे उन को प्रेम के किसी विधान से पाते हैं।

३२०। जेण्टाइल आत्माओं में से किसी आत्मा ने जो जगत में अपने धर्म के अनुसार अनुग्रह की भलाई में रहा था किसी ख्रिष्टीय आत्माओं को श्रद्धा के सिद्धान्तों के विषय तर्क करते सुना (क्योंकि आत्मागण मनुष्यों की अपेक्षा तीक्ष्णता से और संपूर्ण रूप से तर्क वितर्क करते हैं विशेष करके भलाई और सचाई के विषय) तब उस ने अचरज किया कि आत्मागण ऐसे प्रसङ्गों पर इस रीति से वादानुवाद करें। और उस ने यह कहा कि मैं इन बातों को नहीं सुना चाहता क्योंकि तुम बाहरी रूप से और मिथ्याहेतुओं से तर्कवितर्क करते हैं। और उस ने उन को दोष लगाके कहा कि अगर मैं भला होऊं तो मैं भलाई ही से सच्ची बातों को पहचानूं और जो कुछ मैं पहचान नहीं सकता सो भी मैं ग्रहण कर सकता हूं।

३२१। मुझ को बार बार यह शिक्षा दी गई कि जेण्टाइल लोग जो धर्मशीलता से जीते हैं और वशता और अधीनता और परस्पर अनुग्रह के पथ पर चलते हैं और धर्माचारी हैं और इस से अपने में कुछ कुछ अन्तःकरण रखते हैं परलोक में स्वीकार किये जाते हैं। और वहां दूतगण से श्रद्धा की भलाई और सचाई के बारे में निपट सावधानी के साथ सिखलाए जाते हैं। और जब वे यह शिक्षा पाते हैं तब वे विनय के साथ और प्रवीणता और ज्ञान से सुनते हैं और अनायास से सचाइयों को ग्रहण करते हैं और समझते हैं। क्योंकि उन्हों ने श्रद्धा की सचाइयों के विपरीत कोई मिथ्यामत नहीं बांधा जिस का पहिले ही त्यागना चाहिये। प्रभु पर दोष लगाने की तो क्या सूचना है जैसा कि बहुत से ख्रिष्टीय लोगों की है जो प्रभु को केवल मनुष्य मात्र बांधकर ध्यान करते हैं। जेण्टाइल लोगों का यह हाल नहीं है। क्योंकि जब वे यह सुनते हैं कि ईश्वर ने मनुष्य बनकर अपने को जगत में प्रकाश किया तब वे झट पट उस बात को स्वीकार करते हैं। और प्रभु की पूजा करके कहते हैं कि सच मुच ईश्वर ने अपने तईं प्रकाशित किया क्योंकि वह स्वर्ग और पृथिवी का परमेश्वर है और मनुष्यजाति उस की अपनी है[२३]। यह एक ईश्व-

---

२२ भलाई और सचाई में विवाह की सदृशता पाई जाती है। न० १६०४ • २१७३ • २५०८। और संयोग की ओर नित्य अनुराग भी पाया जाता है क्योंकि भलाई सचाई को ढूंढती है और उस से संयोग करना चाहता है। न० ६२०६ • ६२०७ • ६४९५। भलाई और सचाई का संयोग किस प्रकार से और कौन सी व्यक्तियों से होता है। न० ३८३४ • ३८४३ • ४०९६ • ४०९७ • ४३०१ • ४३४५ • ४३५३ • ४३६४ • ४३६८ • ५३६५ • ७६२३ से ७६२७ तक • ६२५८।

२३ जेण्टाइल लोगों की और ख्रिष्टीय लोगों की भलाई की भिन्नता के बारे में। न० ४१८९ • ४१९७। जेण्टाइल लोगों की सचाइयों के विषय। न० ३२६३ • ३७७८ • ४१३०। जेण्टाइल लोगों के भीतरी भाग ऐसे तौर पर बन्द नहीं हो सकते जिस तौर पर ख्रिष्टीय लोगों के भीतरी

रीय सचाई है कि प्रभु के विना मुक्ति नहीं हो सकती। परंतु इस बात का यह तात्पर्य है कि प्रभु ही की ओर से मुक्ति हो सकती है। सर्वजगत में बहुत सी पृथिवियें हैं और वे सब निवासियों से भरपूर हैं तो भी उन निवासियों में से बहुत थोड़े लोग यह जानते हैं कि प्रभु हमारी पृथिवी पर आकर मनुष्य हो गया। तिस पर भी जब कि वे ईश्वरीय सत्त्व एक मानुषक रूप जानकर उस की पूजा करते हैं तो वे प्रभु से स्वीकार किये जाते हैं और लिये जाते हैं। इस बारे में उस छोटी पुस्तक को देखो जो सर्वजगत की पृथिवियों के बारे में है।

३२२। जेण्टाइल लोगों में जैसा कि ख्रिष्टीय लोगों में ज्ञानी और बावले लोग दोनों हैं। और इस वास्ते कि मैं उन दोनों का स्वभाव जान सकूं मैं कभी घण्टों तक और कभी दिनों तक उन के साथ बात चीत करने पाया। आज कल कोई ऐसे ज्ञानी लोग नहीं हैं जैसा कि प्राचीन काल में और विशेष करके प्राचीन कलीसिया के मेम्बरों में हुआ करते थे जो एशिया के प्रदेशों में बहुत दूर तक बसते थे और जिन्हों ने जेण्टाइल लोगों को दे दिया था। इस वास्ते कि मैं उन के विशेष गुण को जान सकूं मुझ को आज्ञा हुई कि उन में से मैं किसी किसी से सुगमता के साथ बात चीत करूं। उन में से मैं ने एक के साथ बात चीत की जो प्राचीन काल में उत्तम ज्ञानियों में गिना था और इस कारण विद्वान लोगों की सभा में प्रसिद्ध था। मैं ने उस से कई एक प्रसङ्गों के बारे में बात चीत की और मुझ को मालूम हुआ कि वह सिसेरो नामक पण्डित था। मुझे मालूम हुआ था कि सिसेरो एक विद्वान मनुष्य था और इस लिये मैं ने उस के साथ ज्ञान बुद्धि परिपाटी धर्मपुस्तक और प्रभु के विषय में बात चीत की। ज्ञान के विषय तो उस ने मुझ से यह कहा कि जीव के ज्ञान को छोड़ अन्य ज्ञान कहीं नहीं पाया जाता और किसी अन्य ज्ञान की इतनी योग्यता नहीं है कि वह ज्ञान बोला भी जावे। बुद्धि के विषय उस ने कहा कि वह ज्ञान से पैदा होती है। और परिपाटी के विषय उस ने कहा कि वह परमेश्वर की ओर से है और उस की परिपाटी के अनुसार चलना आप ज्ञान और बुद्धि है। धर्मपुस्तक के विषय जब मैं ने उस के निमित्त भाविवक्ताओं की पोथियों में से एक वचन पढ़कर सुनाया तब उस को निपट आनन्द हुआ और इस बात से परमानन्द हुआ कि उस पोथी में हर एक नाम और हर एक वचन से भीतरी वस्तुओं का तात्पर्य होता था। और उस ने इस बात पर अचम्भा किया कि आज कल के पण्डित लोग ऐसे विद्याभ्यास से हर्षित नहीं होते। मैं ने स्पष्ट

भाग बन्द हो सकते हैं। न० ६२५६। और न जेण्टाइल लोगों के साथ जो अपने धर्म के सिद्धान्तों पर चलते हैं ऐसा सघन बादल विद्यमान हो सकता है जैसा कि उन ख्रिष्टीय लोगों के साथ है जो अनुग्रह से अलग रहते हैं। इस का कारण। न० १०५९ · ६२५६। जेण्टाइल लोग ख्रिष्टीय लोगों के तौर पर पवित्र वस्तुओं को अशुद्ध नहीं कर सकते क्योंकि वे उन वस्तुओं को नहीं जानते। न० १३२७ · १३२८ · २०५१। वे ख्रिष्टीय लोगों से अपने जी के भय के निमित्त डरते हैं। न० २५९६ · २५९७। वे जो भली रीति पर अपने धर्म के अनुसार चलें दूतगण से सिखलाए जाते हैं और अनायास से श्रद्धा की सचाइयों को ग्रहण करते हैं और प्रभु को स्वीकार करते हैं। न० २०४९ · २५९५ · २५९८ · २६०० · २६०१ · २६०३ · २८६१ · २८६३ · ३२६३।

रूप से मालूम कर लिया कि उस के ध्यान या मन के भीतरी भाग खुले हुए थे। परंतु उस ने कहा कि "मैं इस बारे में और बातों का सुनना नहीं चाहता क्योंकि मुझ को किसी ऐसी पवित्र वस्तु का बोध है जिस की पवित्रता मेरी सहनशक्ति से बाहर है और जिस का प्रभाव मुझ पर निपट भीतरी रीति से लगता है"। निदान मैं ने उस से प्रभु के विषय बात चीत की और कहा कि वह मनुष्य के रूप पर पैदा हुआ परंतु परमेश्वर ने उस को जन्माया। और उस ने अपने मातृक मनुष्यत्व को उतारकर ईश्वरीय मनुष्यत्व धारण किया। और वह वही है जो सर्वजगत का राज्य करता है। इस के जवाब में उस ने कहा कि "मैं प्रभु के विषय बहुत सी बातें जानता हूं और मैं अपने तौर पर आप मालूम करता हूं कि केवल आप की बातों के अनुसार मनुष्य की मुक्ति हो सकती है"। इतने में कई कुशील ख्रिष्टीय लोग आनकर निन्दा करने लगे परंतु उस ने उन की बातों पर कुछ भी ध्यान न देकर कहा कि उन की चाल चलन कुछ अचरज की बात नहीं है क्योंकि शारीरिक जीवन में रहते उन्हों ने इस प्रसङ्ग के विषय अनुचित बोधों को अपने मन में जगह दी। और उन बोधों के निवारण करने के आगे सचाई के प्रमाण उन के मन में आकर स्थापित नहीं हो सकते जैसा कि वे अज्ञानी लोगों में स्थापित हो सकते।

३२३। मुझ को औरों से बात चीत करने की आज्ञा हुई जो प्राचीन काल में जीते थे और जो उत्तम से उत्तम ज्ञानियों में गिने गये थे। पहिले पहिल वे आगे को कुछ दूरी पर दिखाई देते थे और वहां से वे मेरे ध्यान के भीतरी भागों को मालूम कर सकते थे और इस कारण बहुत सी बातों को संपूर्ण रूप से देख सकते थे। क्योंकि ध्यान के एक ही बोध के द्वारा वे सारी श्रेणी को निकाल सकते थे और उस में ज्ञान के रमणीय बोध सुन्दर प्रतिमाओं समेत भर सकते थे। इस हेतु से मैं ने जाना कि वे उत्तम से उत्तम ज्ञानी थे और मुझ को बतलाया गया कि वे प्राचीन काल में जिये थे। वे कुछ अधिक निकट आए और मैं ने उन को धर्मपुस्तक के कई एक वचन पढ़कर सुनाया और उन को निपट आनन्द हुआ। और मैं ने उन के आनन्द और हुलास का स्वभाव मालूम किया। और वह मुख्य करके इस बात से पैदा हुआ कि सब कुछ कि उन्हों ने धर्मपुस्तक से सुना था सो स्वर्गीय और आत्मीय वस्तुओं का वर्णन करता था और दिखलाता था। उन्हों ने यह भी कहा कि उन के समय में जब कि वे जगत में थे तब उन के ध्यान करने की और बोलने की और लिखने की भी रीति ऐसी ही थी। और यह उन के ज्ञान का अभ्यास था।

३२४। आज कल के जेण्टाइल लोग यद्यपि उन में से बहुत लोग सीधे सच्चे हैं तौ भी वे इतने ज्ञानी नहीं हैं जितने कि प्राचीन लोग थे। और उन में से जितने लोग कि जो आपस में परस्पर अनुग्रह किया करते हैं उतने ही परलोक में ज्ञान को ग्रहण करते हैं। उन में से दो तीन उदाहरण देता हूं। एक बेर जब मैं मेका नामक मनुष्य के विषय न्यायाधीशों की पोथी के १७वें और १८वें पर्व

को पढ़ रहा था जहां मैका की खोदी हुई तेराफ़ीम नाम मूर्त्ति और लीवैट पुरोहित को डानजाति के बेटों ने लूट लिया तब एक जेण्टाइल आत्मा विद्यमान था जो शरीर के जीवन में एक खोदी हुई मूर्त्ति की पूजा किया करता था। उस ने मैका के हाल और शोक को खोदी हुई मूर्त्ति के लूट लेने के लिये चित्त लगाकर सुना। और उस पर इतना असर हुआ कि भीतरी शोक ने उस से ध्यानशक्ति बहुत करके हर ली। मैं ने उस का शोक और उस के अनुरागों की निर्दोषता साथ ही मालूम की। कोई कोई खिष्टीय आत्मा वर्त्तमान थे जिन्हों ने भी उस की उदासी मालूम की और उन्हों ने इस बात पर अचरज किया कि किसी खोदी हुई मूर्त्ति के पूजारी के हृदय पर दया और निर्दोषता के अनुराग का इतना प्रभवा होवे। आगे किसी भले आत्माओं ने आनकर उस से बात चीत की और कहा कि "तुम को किसी खोदी हुई मूर्त्ति की पूजा करनी न चाहिये। तुम चैतन्य होकर उस बात के समझने के योग्य हो। तुम को खोदी हुई मूर्त्ति को अलग रखके केवल परमेश्वर ही का ध्यान सर्वजगत का कर्त्ता और शासक करके करना चाहिये। प्रभु ही परमेश्वर है"। जब ये वचन कहे गये तब मुझ को उस पुजारी का भीतरी अनुराग प्रकाशित हुआ और मैं ने मालूम किया कि वह अनुराग खिष्टीय लोगों के अनुराग से कहीं बढ़कर पवित्र था। इस बखान से स्पष्ट है कि आज कल के जेण्टाइल लोग खिष्टीय लोगों की अपेक्षा स्वर्ग में अधिक अनायास से प्रवेश करते हैं। और यह बात प्रभु के इन वचनों के अनुसार है जो लूका की इञ्जील में हैं कि "तब तो लोग पूर्व पच्छिम उत्तर दखिन से आवेंगे और परमेश्वर के राज में बैठेंगे। और देखो जो पिछले हैं सो पहिले होंगे और जो पहिले हैं सो पिछले होंगे"। (पर्व १३ वचन २९ · ३०)। क्योंकि यह जेण्टाइल आत्मा उस अवस्था में कि जिस में वह था श्रद्धा के सारे सिद्धान्तों को ग्रहण करने के योग्य था। और वह उन को भीतरी अनुराग से ग्रहण कर सका। इस वास्ते कि उस को वह दया थी जो प्रेम से पैदा होती है और उस की अज्ञानता निर्दोषता से भरी हुई थी। परंतु जहां वे बातें विद्यमान हैं वहां श्रद्धा के सारे सिद्धान्त ऐसी रीति से ग्रहण किये जाते हैं कि मानों वे आनन्द के साथ और स्वेच्छापूर्वक ग्रहण किये जावें। आगे वह दूतगण में गिना गया।

३२५। एक दिन मुझ को कई एक मनुष्यों की बोल दूर से सुनाई दी और उन प्रकाशनों से जो उस बोल के साथ आते थे मुझे मालूम हुआ कि वे चीनदेश के लोग हैं। क्योंकि एक ऊन से ढंपे हुए बकरे का रूप और जवारी की रोटी और आबनूस की लकड़ी का चमचा और तैरता हुआ नगर इन चारों वस्तुओं का बोध उन्हों ने मेरे मन में उपजाया। उन्हों ने मेरे निकट आना चाहा और जब वे पास आए तब उन्हों ने मेरे साथ अकेले रहने की इच्छा की इस वास्ते कि वे अपने ध्यानों को प्रकाश करें। परंतु उन को बतलाया गया कि वे वहां अकेले ही नहीं हैं क्योंकि अन्य भी व्यक्तियें वहां पर विद्यमान हैं जो उन की प्रार्थना सुनकर अप्रसन्न हुई इस वास्ते कि वे बाहरी लोग हैं। उन की अप्रसन्नता देखते ही वे

इस बात पर अपने मन में सोचने लगा कि क्या हम ने या तो अपने पड़ोसियों को असंतुष्ट किया या किसी दूसरे की वस्तु को अपनाया। और जब कि परलोक में सब ध्यान प्रकाशित होते हैं तो उस समय मुझे उन के मन की व्याकुलता मालूम हो गई और मैं ने यह भी जाना कि इस प्रकार की व्याकुलता इस बोध से पैदा होती है कि "कदाचित हम ने किसी की कुछ हानि की हो"। और वह व्याकुलता उस लज्जा से भी पैदा होती है जो उस प्रकार के संशय से निकलती है। और अन्य अन्य अच्छे अनुरागों से भी। इस से स्पष्ट है कि उन को अनुग्रह का स्वभाव था। उस के पीछे कुछ काल के बीतने पर मैं ने उन के साथ बात चीत की और अन्त को उन से प्रभु के विषय संभाषण किया। परंतु जब मैं ने ख्रिष्ट का नाम उन के आगे लिया तब मैं ने देखा कि उन को किसी प्रकार की विमुखता मालूम हुई जिस का यह कारण था कि जब वे जगत में थे उन्हों ने जाना कि ख्रिष्टीय लोग उन से बुरी चाल चलते थे और अनुग्रह करने के विना जीते थे। परंतु जब मैं ने केवल प्रभु का नाम लिया तब उन पर कुछ असर भीतरी रीति से लगा। पीछे दूतों ने उन को बतलाया कि ख्रिष्टीय धर्म जगत के हर किसी धर्म से बढ़कर प्रेम और अनुग्रह करने का निर्देश करता है परंतु बहुत थोड़े लोग हैं जो उस धर्म पर चलते हैं। कोई जेण्टाइल लोग ऐसे हैं जो जगत में भी संभाषण करने से और लोकवार्त्ता से जानते हैं कि ख्रिष्टीय लोग बुरी चाल पर चलते हैं और छिनाले द्वेष झगड़े मतवालेपन आदि अपराधों पर आसक्त हैं जिन की घृणा जेण्टाइल लोग करते हैं क्योंकि वे अपराध उन के धर्म के सिद्धान्तों के विरुद्ध हैं। ये तो परलोक में श्रद्धा की सचाइयों के ग्रहण करने में औरों से अधिक भीरु हैं। परंतु वे दूतों से समझाए जाते हैं कि ख्रिष्टीय धर्म और सच्ची ख्रिष्टीय श्रद्धा और ही शिक्षा देती है और ख्रिष्टीय लोग अपने धर्म के सिद्धान्तों के अनुसार जेण्टाइल लोग की अपेक्षा बहुत कम चलते हैं और जब वे इस बात पर प्रत्यय करते हैं तब वे श्रद्धा की सचाइयों को स्वीकार करते हैं और प्रभु की पूजा करते हैं। पर ऐसी शीघ्रता से नहीं करते जैसी शीघ्रता से और जेण्टाइल लोग किया करते हैं।

३२६। व्यवहार है कि जेण्टाइल लोग जो किसी देवता की पूजा मूर्त्ति या प्रतिमा के रूप पर या किसी खोदी हुई मूर्त्ति की पूजा किया करते जब वे परलोक में प्रवेश करते हैं तब वे किसी आत्माओं से (जो उन के देवता या मूर्त्ति के स्थान खड़े हैं) भेंट होते हैं इस वास्ते कि उन के मनों की लहरें तित्तर वित्तर हो जाएं। और जब वे उन आत्माओं के पास कुछ दिन तक रह गये तब वे उन से दूर किये जाते हैं। वे जो मनुष्यों की पूजा किया करते बारबार उन्हीं मनुष्यों से भेंट हो जाते हैं या और मनुष्यों से उन के भेष में। यह हाल बहुधा यहूदी का है जो इब्राहीम याकूब मूसा और दाऊद की भेंट किया करते हैं। परंतु जब वे यह देखते हैं कि वे हमारे सरीखे मनुष्य ही हैं और वे हमारी सहायता कुछ नहीं कर सकते तब वे लज्जित होकर अपनी अपनी चाल चलन के अनुसार भिन्न भिन्न स्थानों को पहुंचाए जाते हैं। सब जेण्टाइल लोगों में से स्वर्ग में आफ्रीका लोग सब से प्यारे

होते हैं क्योंकि वे स्वर्ग की भलाई और सचाई औरों की अपेक्षा ऐसी अवस्था नहीं हो जब तक कि वे उस धर्म को ग्रहण न करें या (जैसा कि वे आप कहते हैं) जब तक कि हम उस को ग्रहण कर सकें।

३२७। मैं ने कई एक लोगों से बात चीत की जो उस प्राचीन कलीसिया के मेम्बर थे कि जो जलप्रलय के पीछे वर्त्तमान थी और बहुत से देशों में फैली हुई थी जैसा कि असूर मीसोपोतामिया स्याम हबश अरब लीबिया मिसर फ़िलिस्तीय जिस देश में टाइर और सैडन के नगर थे और केनून देश योर्दन नदी के दोनों किनारों पर[२४]। जब वे लोग जगत में थे तब उन्हों ने जाना कि प्रभु आवेगा और वे श्रद्धा की भलाइयों में मग्न हुए तो भी वे उस श्रद्धा को छोड़कर मूर्त्तिपूजक हो गए। वे आगे को बाईं की ओर एक अन्धेरे स्थान में दुखदायक अवस्था में थे। उन की बोली किसी बंसी के ध्वनि के समान थी जिस का केवल एक ही स्वर है और उस में प्रायः चैतन्य ध्यान से विहीन थी। और उन्हों ने कहा कि "हम इस स्थान में सैकड़ों बरसों से हो रहते हैं और बार बार हम इस स्थान से औरों के लिये नीच नौकरी करने को लिये आते हैं"। उन की बातों से मेरा ध्यान बहुत से ख्रिष्टीय लोगों पर लगा जो देखने में मूर्त्तिपूजक नहीं हैं परंतु वे भीतर में मूर्त्ति-पूजक हैं क्योंकि वे अपने आप की और जगत की पूजा करते हैं और हृदय में प्रभु को अस्वीकार करते हैं। और उन की परलोक में की अवस्था पर मैं ने ध्यान दिया।

३२८। ऊपर लिखित न० ३०८ वें परिच्छेद में यह देखा जावेगा कि प्रभु की कलीसिया सारी जगत में फैली हुई है और इस लिये सर्वव्यापक है। और उस में सब कोई समाते हैं जो अपने धर्म के अनुसार अनुग्रह की भलाई में रहते हैं। और जहां धर्मपुस्तक है और उस के द्वारा प्रभु पहचाना जाता है वहां कलीसिया उन लोगों के लिये जो कलीसिया के मण्डल से बाहर हैं मनुष्य के हृदय और फेफड़े के समान है जिन से शरीर के सब भीतरी भाग और बाहरी अंग अपने रूप स्थान और संयोग के अनुसार जीने की शक्ति पाते हैं।

---

२४ पहिली और सब से प्राचीन कलीसिया का बयान सृष्टि पोथी के पहिले पर्व में है। और अन्य कलीसियाओं की अपेक्षा वह सभों से बढ़कर स्वर्गीय थी। न० ६०७ · ८९५ · ९२० · ११२१ · ११२२ · ११२३ · ११२४ · २८९६ · ४४९३ · ८८९१ · ९९४२ · १०५४५। स्वर्ग में उस कलीसिया के मेम्बरों का क्या गुण है। न० १११४ से ११२५ तक। जलप्रलय के पीछे कई एक कलीसियाएं वर्त्तमान थीं जो प्राचीन कलीसियाएं कहलाईं थीं उन के बारे में। न० ११२५ · ११२६ · ११२७ · १३२७ · १०३५५। प्राचीन कलीसिया के मनुष्यों के गुण के विषय। न० ६०७ · ८९५। प्राचीन कलीसियाएं प्रतिरूपक कलीसियाएं थीं। न० ५१९ · ५२१ · २८९६। उन के पास एक धर्मपुस्तक थी परंतु वह खोई गई है। न० २८९७। जब प्राचीन कलीसिया घटने लगी तब उस का कैसा गुण था। न० ११२८। प्राचीन कलीसिया में और सब से प्राचीन कलीसिया में जो भिन्नता थी उस के बारे में। न० ५९७ · ६०७ · ६४० · ६४१ · ७६५ · ७८४ · ८९५ · ४४९३। यहूदी कलीसिया में के कुछ एक नियम और शासन और विधि प्राचीन कलीसिया के नियमों के समान थे। न० ४२८८ · ४४४९ · १०१४९। प्रभु सब से प्राचीन कलीसिया का और प्राचीन कलीसिया का भी परमेश्वर था और वह यहोवाह कहलाता था। न० १३४३ · ६८४६।

स्वर्ग में के बालबच्चों के बारे में।

३२९। कोई कोई इस बात पर विश्वास रखते हैं कि केवल वे बालबच्चे जो कलीसिया के मण्डल में जन्म लेते हैं स्वर्ग में प्रवेश करने पाते हैं परंतु वे जो कलीसिया के मण्डल से बाहर जन्म लेते हैं स्वर्ग में प्रवेश नहीं करते। और वे इस का यह कारण बतलाते हैं कि बालबच्चे कलीसिया के मण्डल में जलसंस्कार पाते हैं और इस से कलीसिया की श्रद्धा का दान भी पाते हैं। परंतु वे यह नहीं जानते कि केवल जलसंस्कार के द्वारा कोई मनुष्य श्रद्धा को या स्वर्ग को नहीं पाते। क्योंकि जलसंस्कार केवल मनुष्य के शुद्ध होने का एक चिह्न या स्मारकवस्तु है। और वह यह भी दिखलाता है कि जो मनुष्य कलीसिया के मण्डल में जन्म लेता है वह शुद्धता पाने के योग्य है। क्योंकि कलीसिया के पास वह धर्मपुस्तक है जिस में शुद्धिदायक ईश्वरीय सचाइयें समाती हैं और कलीसिया के मण्डल में प्रभु पहचाना जाता है जिस की ओर से शोधन करना होता है[२५]। इस लिये यह बात जानना चाहिये कि हर एक शिशु जहां कहीं जन्म लेवे के कलीसिया के मण्डल में पैदा हो के उस से बाहर के वह धार्मिक मा बाप का शिशु हो के बुरे मा बाप का वह मरते ही प्रभु से ग्रहण किया जाता है और स्वर्ग में सिखलाया जाता है। वहां ईश्वरीय परिपाटी के अनुसार वह शिक्षा पाता है और भलाई के अनुरागों से पूरा किया जाता है और उन अनुरागों से उस को सचाई की विद्या मिलती है। और जब वह बुद्धि और ज्ञान में व्युत्पन्न हो तब वह स्वर्ग में प्रवेश करके दूत हो जाता है। हर एक मनुष्य जो चेतना से ध्यान करता है मालूम कर सकता है कि कोई लोग नरक के लिये नहीं पैदा हुआ है परंतु सब कोई स्वर्ग के लिये। और अगर कोई मनुष्य नरक को जावे तो उस ही का वह दोष होगा। परंतु बालबच्चे दोषवान नहीं हो सकते।

३३०। जब बालबच्चे मर जाते हैं तब वे परलोक में बच्चे ही बच्चे बने रहते हैं। उन के वही शिशुसंबन्धी मन और उसी अज्ञानता की निर्दोषता और सब बातों में वही करुणा है जैसा कि उन की जगत में थी। वे केवल उन मूलिक अवस्थाओं में हैं जो दूतविषयक अवस्था तक पहुंचाती हैं। क्योंकि बालबच्चे दूत नहीं हैं पर वे दूत हो जाते हैं। हर कोई लोग मरते ही उसी दशा में रहता है कि जिस में वह जगत में था। शिशु बचपन में रहता है और लड़का लड़कपन में और किशोर मनुष्य और बुड्ढा क्रम करके जोबन मनुष्यत्व और बुड्ढेपन में बने

---

२५ जलसंस्कार से यह तात्पर्य है कि प्रभु की ओर से वह शोधन करना जो धर्मपुस्तक की श्रद्धा की सचाइयों से पैदा होता है। न० ४२५५ • ५१२० • ९०८८ • १०२३९ • १०३८६ • १०३८७ • १०३८८ • १०३९२। और उस से यह तात्पर्य भी है कि मनुष्य उस कलीसिया का है जिस में प्रभु कि जिन की ओर से शुद्धि होती है पहचाना जाता है। और जिस के पास वह धर्मपुस्तक है जिस में श्रद्धा की वे सचाइयें समाती हैं जिन के द्वारा शोधन किया जाता है। न० १०३८६ • १०३८७ • १०३८८। जलसंस्कार न तो श्रद्धा देता है न मुक्ति परंतु वह इस बात का प्रमाण देता है कि जैसे लोग शुद्ध होते रहते हैं उतने ही उन वस्तुओं को पावेंगे। न० १०३९१।

रहते हैं। परंतु पीछे हर किसी की अवस्था बदल जाती है। शिशुओं की अवस्था औरों की अवस्था से श्रेष्ठ है क्योंकि वे निर्दोषी हैं और उन में अभी तक जगत के व्यवहारों से बुराई का बीज जड़ नहीं पकड़ गया है। क्योंकि निर्दोषता का ऐसा स्वभाव है कि उस में स्वर्ग की सब वस्तुएं गाड़ी जा सकती है। इस वास्ते कि निर्दोषता श्रद्धा की सचाई का और प्रेम की भलाई पात्र है।

३३१। परलोक में शिशुओं की अवस्था जगत में के शिशुओं की अवस्था से बढ़कर व्युत्पन्न हैं। क्योंकि वे एक पार्थिव शरीर में मुंदे हुए नहीं हैं। परंतु उन का एक दूत का सा शरीर है। पार्थिव शरीर अतीव्या है और अपना पहिला इन्द्रियज्ञान और पहिला चित्तसंस्कार भीतरी अर्थात आत्मिक जगत से नहीं ग्रहण करता है परंतु बाहरी अर्थात प्राकृतिक जगत से। और इस लिये जगत में बाल-बच्चों को पैरों चलना अंग हिलाना और बोलना सीखने की आवश्यकता है। और उन के इन्द्रिय भी (जैसा कि दृष्टि और श्रवण) उन में प्रयत्न करने से खोले जाते हैं। परंतु परलोक में बालबच्चों की और ही अवस्था है। क्योंकि वे आत्मा हैं और इस लिये वे झट पट अपने भीतरी भागों के अनुसार काम करते हैं। विना शिक्षा पाए वे पैरों चलते हैं और बोलते भी हैं। परंतु पहिले वे केवल सर्वसाधारण अनुरागों से जो ध्यान के बोध बनकर स्पष्ट रूप से प्रकाशित नहीं होते हैं बोलते हैं। थोड़े काल पीछे वे इन ही में भी व्युत्पन्न हो जाते हैं और इन को शीघ्र ही ग्रहण करते हैं। क्योंकि उन के बाहरी भाग उन के भीतरी भागों से जातिसमता रखते हैं। ऊपर लिखित न० २३४ वें से २४५ वें तक के परिच्छेदों में यह बात देखी जावेगी कि दूतगण की बोली उन अनुरागों से जो ध्यान के बोधों के द्वारा नाना प्रकार के हो जाते हैं बहती है इस रीति पर कि वह उन के उन ध्यानों से जो अनुराग से पैदा होते हैं संपूर्ण समता रखती है।

३३२। बालबच्चे मृत्यु के उपरान्त जी उठते ही (कि जो मरने के पीछे लगा चला होता है) स्वर्ग को पहुंचाए जाते हैं और वहां उन स्त्रीसंबन्धी दूतगण की चौकसी के अधीन सौंपे जाते हैं जो शरीर के जीते जी बालबच्चों को अति कृपा कर प्यार करती थी और उसी समय परमेश्वर पर प्रेम करती थी। जब कि ये दूतगण उस समय कि वे जगत में थी सब बालबच्चों को एक प्रकार की मातृक करुणा से प्यार करती थी तो वे उन को अपने बच्चे कर ग्रहण करती हैं। और बालबच्चे भी उस अनुराग से जो उन में रहता है उन दूतों को अपनी माताएं कर प्यार करते हैं। हर एक स्त्रीसंबन्धी दूत अपनी चौकसी के अधीन इतने ही बाल-बच्चों को रखती है जितने वह अपने आत्मीय मातृक अनुराग से चाहती है। यह स्वर्ग सीधे आगे माथे के संमुख दिखाई देता है ठीक उस लकीर पर कि जिस की लम्बान में दूतगण प्रभु की ओर देखते हैं। क्योंकि सब बालबच्चे ठीक प्रभु की दृष्टिगोचर में रहते हैं। वे तो निर्दोषता के स्वर्ग से जो तीसरा स्वर्ग है कुछ अन्तःप्रवाह पाते हैं।

३३३। बालबच्चों स्वभाव नाना प्रकार के हैं किसी किसी का आत्मिक दूतों का स्वभाव है किसी का स्वर्गीय दूतों का स्वभाव। वे जो स्वर्गीय स्वभाव के हैं ऊपर सूचित हुए स्वर्ग में दहिनी ओर पर दिखाई देते हैं। और वे जो आत्मिक स्वभाव के हैं बाईं ओर पर देख पड़ते हैं। प्रधान पुरुष में अर्थात स्वर्ग में सब बालबच्चे आंख के स्थल में रहते हैं। अगर वे आत्मिक स्वभाव के हों तो वे बाईं आंख के स्थाल में हैं। अगर वे स्वर्गीय स्वभाव के हों तो वे दहिनी आंख के स्थल में हैं। क्योंकि प्रभु उन दूतगण के निकट जो आत्मिक राज में हैं बाईं आंख के आगे दिखाई देता है और उन की समझ में जो स्वर्गीय राज में हैं दहिनी आंख के आगे। (न० ११८ देखो)। इस वास्ते कि बालबच्चे प्रधान पुरुष की आंखों के स्थल पर हैं तो स्पष्ट है कि वे ठीक प्रभु की दृष्टिगोचर और चौकसी में रहते हैं।

३३४। जिस रीति पर कि बालबच्चे स्वर्ग में शिक्षा पाते हैं उस रीति का भी थोड़ा सा बयान किया जाता है। वे अपने अपने उपदेशक से बोलने की विद्या सीखते हैं और उन की पहिली बोली केवल अनुराग का एक स्वर है जो क्रम क्रम से ज्यों ध्यान के बोध प्रवेश करते हैं त्यों अधिक स्पष्टता से सुनाई देता है। क्योंकि दूतविषयक बोली अनुरागों से पैदा हुए ध्यान के बोधों की बनी हुई है। इस प्रसङ्ग के बारे में न० २३४ वें से २४५ वें तक के परिच्छेदों को देखो। पहिले पहिल उन के अनुरागों में (जो सब के सब निर्दोषता से निकलते हैं) ऐसी वस्तुएं निवेशित की जाती हैं जो उन की आंखों के आगे दिखाई देती हैं और जो रमणीय होती हैं। और जब कि ये वस्तुएं किसी आत्मिक मूल से पैदा होती हैं तो स्वर्ग की वस्तुएं उसी समय उन में बहकर आती हैं और इस से उन बालबच्चों के भीतरी भाग खुल जाते हैं और वे दिन दिन अधिक निष्पन्न होते जाते हैं। जब यह पहिला नियतकाल हो चुका है तब वे दूसरे स्वर्ग को पहुंचाए जाते हैं और वहां वे उस्तादों से सिखलाए जाते हैं। और इसी रीति से वे बढ़ते जाते हैं।

३३५। बालबच्चे प्रायः अपनी योग्यता के उचित प्रतिनिधियों से सिखलाए जाते हैं जो सुन्दरता में और उस ज्ञान की उत्तमता में जो किसी भीतरी स्थल से उपज आती है सारी प्रतीति से बाहर है। और इस सिखलाने से बुद्धि जो अपने जीव को भलाई से निकालती है उन में क्रम क्रम से धीरे धीरे पैठती है। दो प्रतिरूपों से (जिन के देखने की आज्ञा मुझ को हुई थी) शेष प्रतिरूपों के विषय एक सिद्धान्त निकाला जा सकता है। पहिले पहिल दूतविषयक उस्तादों ने समाधि से उठते हुए प्रभु को और उसी समय उस के मनुष्यत्व का ईश्वरत्व से संयोग होना भी दिखलाया। और उन्हों ने यह हाल ऐसी ज्ञानी रीति पर दिखलाया कि वह सारे मानुषक ज्ञान से बाहर था। तो भी वह बयान निर्दोषी शिशुसंबन्धी रीति पर था। उन्हों ने एक समाधि का बोध भी दिखलाया परंतु उसी समय प्रभु का बोध नहीं दिखाया। केवल उस का प्रकाशन ऐसे पतले रूप

पर था कि कठिनता से मालूम हुआ कि प्रभु है। क्योंकि समाधि के बोध में कुछ भयानक और विलापी ध्यान है कि जो उस रीति से दूर किया गया। पीछे उन्हों ने उस समाधि में कुछ वायुसंबन्धी वस्तु जो किसी पतला जलरूप सा तत्त्व दिखाई दी सावधान के साथ पैठने दी। और जिस करके उन्हों ने जलसंस्कार में के आत्मिक जीवन का प्रकाशन किया और यह ऐसे तौर पर किया गया जिस तौर से सब अनुचित वस्तुएं यथोचित रीति से दूर की गईं। फिर तो मैं ने देखा कि उन्हों ने प्रभु का स्वर्ग पर से उतरना उन लोगों तक जो जेलखाने में थे और उन के साथ उस का स्वर्ग तक चढ़ना दिखलाया। और यह दिखाव अनुपम पूर्वविचार और पुण्यता के साथ दिखाया गया। एक लक्षण तो विशेष रीति से शिशुसंबन्धी था। उन्हों ने छोटी मृदु कोमल प्रायः अदृश्य रस्सियों को नीचा किया जिन करके उन्हों ने प्रभु के चढ़ने की सहायता की। और उस समय उन के मन में एक प्रकार का पुण्य भय था कि कहीं इस दिखाव में कोई ऐसी न हो कि जो आत्मीय स्वर्गीय तत्त्व से विहीन हो। अन्य प्रतिरूपों की सूचना करनी आवश्यकता की बात नहीं है जैसा कि रमणीय लीलाएं जो शिशु लोगों की समझ को उचित हैं जिस करके शिशुगण सचाई का ज्ञान और भलाई का अनुराग उपार्जन करते हैं।

३३६। उन की कोमल बुद्धि का गुण तब मुझ को प्रकाशित हुआ जब मैं ने प्रभु की प्रार्थना को जप किया और जब उन के बुद्धिसंबन्धी तत्त्व से कुछ अन्तःप्रवाह मेरे ध्यान के बोधों में बहकर पैठा था। उन का अन्तःप्रवाह ऐसा मृदु और कोमल था कि यह प्रायः अनुराग ही का अन्तःप्रवाह था। और उसी समय मालूम हुआ कि उन के बुद्धिसंबन्धी तत्त्व प्रभु से लेकर भी खुला हुआ था। क्योंकि जो कुछ कि उन से चलता था सो पारप्रवाहक था अर्थात ऐसा देख पड़ा था जैसा कि वह उन के भीतर में होकर पार जाता था। प्रभु भी शिशु लोगों के बोधों में प्रायः भीतरी तत्त्वों से बहकर जाता है क्योंकि कोई वस्तु उन के बोधों को नहीं बन्द करती है जैसा कि मनुष्यों के बोध बन्द किये जाते हैं। कोई मिथ्या तत्त्व उन को सचाई के समझने में नहीं रोकते और न बुरा व्यवहार करना उन के भलाई के ग्रहण करने में और इस से उन के ज्ञान के उपार्जन करने में कुछ रोक टोक डालता है। इस से स्पष्ट है कि शिशु लोग मृत्यु के पीछे झट दूतविषयक अवस्था में नहीं आते परंतु वे उस में क्रम क्रम से भलाई और सचाई के ज्ञान के द्वारा पहुंचाए जाते हैं। और यह प्रवेशन स्वर्गीय परिपाटी के अनुसार है। क्योंकि उन की शीलता की सब से सूक्ष्म बातों को प्रभु जानता है और इस लिये उन के अनुराग की हर एक गति के अनुसार वे भलाई की सचाइयों को और सचाई की भलाइयों को क्रम क्रम से ग्रहण करते हैं।

३३७। मैं ने उस रीति का बयान कि जिस से उन में उन की शीलता के अनुसार सुख और आनन्द के सहाय सब प्रकार की बातें प्रवेश करती हैं किया है। मैं अति सुन्दर पोशाक पहिने कई एक बालबच्चों को कि जिन की छातियों पर और

कोमल बांहों के गिर्द अति मनोहर स्वगाय रंग राते फूलों की मालाएं विराजती थीं देखने पाया। और एक बेर मैं ने कई एक बालबच्चों को उन के उपदेशकों और सुकुमारी लड़कियों के साथ एक स्वर्गयोग्य फुलवाड़ी में जाते हुए देखा कि जिस में बहुत करके शोभाकारक वृक्ष ही नहीं थे पर लारल एस्पेलिया के वृक्ष थे और इस कारण डेवढ़ियें भी थीं ऐसे पत्रों समेत जो भीतरी फुलवाड़ियों की ओर पसरते थे। वे बच्चे अपनी पोशाक आप पहिने हुए खड़े थे जैसा कि मैं ने अभी ऊपर बयान किया। और जब वे उस फुलवाड़ी में प्रविष्ट हुए तब फूलों के गुच्छे जो डेवढ़ियों के ऊपर लग रहे थे खिलकर देदीप्यमान हो गये। इस लिये उन के आनन्दों के विशेष गुण का अनुमान निकल सकता है और वे मनोरञ्जक सुखद वस्तुओं के द्वारा निर्दोषता और अनुग्रह की भलाइयों में जो प्रभु की ओर से नित्य उन विचवाइयों के द्वारा आती जाती हैं पहुंचाए जाते हैं।

३३८। मुझ को परलोक के एक प्रकार के संवाद करने के सहाय प्रकाशित हुआ कि जब शिशु लोग किसी वस्तु को देखते हैं तब उन के बोधों का क्या गुण है। हर एक वस्तु चाहे जितनी सूक्ष्म क्यों न हो उन को जीती हुई मालूम होती है। और इस कारण हर एक शिशुसंबन्धी बोध में जीव पाया जाता है। मैं ने मालूम किया कि जगत में शिशुओं के बोध उन आत्मिक शिशुओं के बोधों से तब प्रायः एकसां हैं जब कि वे अपने बालेय खेलों में मग्न हो खेल रहे हैं। क्योंकि उस समय उन को उस सोच विचार की शक्ति नहीं है जैसा कि मनुष्य रखते हैं कि जिस से वे निर्जीव और सजीव वस्तुओं की विवेचना कर सकते हैं।

३३९। यह बयान ऊपर हो चुका है कि शिशुगण या तो स्वर्गीय हैं या आत्मीय। उन की विवेचना अनायास से हो सकती है क्योंकि स्वर्गीय शिशु आत्मीय शिशुओं की अपेक्षा अति मृदुता से ध्यान करते हैं और बोलते हैं और काम करते हैं। इस से [उन की चाल चलन और बोलने में] सिवाए प्रेम और भलाई के जो प्रभु की ओर से आकर अन्य बच्चों की ओर बहकर जाती है बिरले कोई बात नहीं देख पड़ती। परंतु आत्मीय शिशुगण इतनी कुछ मृदुता नहीं प्रकाश करते हैं और जो काम वे करते हैं उस में एक प्रकार का फड़फड़ाहटसंबन्धी लहकता हुआ गुण होता है। यह हाल उन के कोप से और अन्य चिह्नों से स्पष्ट होता है।

३४०। कदाचित बहुत से लोग यह ध्यान करते होंगे कि बालबच्चे स्वर्ग के दूतों में नित्य बच्चे ही बच्चे बने रहते हैं। और जो लोग दूतगण के विशेष स्वभाव नहीं जानते वे लोग उन प्रतिमाओं से जो कभी कभी उन कलीसियाओं में जहां दूतगण बालबच्चों के रूप पर दिखाए जाते हैं देखने में आते हैं उस मिथ्या बोध पर प्रत्यय कर सकते हैं। परंतु यह बात उस से संपूर्ण रूप से विपरीत है। दूत बुद्धि और ज्ञान का बना हुआ है और जब तक बच्चों को बुद्धि और ज्ञान नहीं होता यद्यपि वे दूतों के संग रहें तो भी वे दूत नहीं हैं। परंतु जब

वे बुद्धिवान और ज्ञानी हो जाते हैं तब वे दूत हो जाते हैं। मुझे तो तब अचरज हुआ जब मैं ने देखा कि वे उस समय बालबच्चों के रूप पर नहीं दिखाई देते परंतु जवान मनुष्यों के रूप पर। क्योंकि उस समय उन की शिशुसंबन्धी शीलता नहीं थी परंतु उन का पूरा दूतविषयक स्वभाव था। और बुद्धि और ज्ञान उस परिपक्वता को पैदा करता है। जितना बच्चे बुद्धि और ज्ञान में व्युत्पन्न होते हैं उतना ही वे वयस्थ देख पड़ते हैं और इस कारण वे किशोर और जवान मनुष्य के रूपों को धारण करते हैं। क्योंकि बुद्धि और ज्ञान आवश्यक आत्मीय आहार है[२८]। जो उन के मनों को पालन करता है सो उन के शरीरों को भी प्रतिरूपता होने से पालन करता है। क्योंकि शरीर का रूप भीतरियों के बाहरी रूप से और कुछ नहीं है। यह कहना चाहिये कि बालबच्चे जो स्वर्ग में बड़े हो जाते हैं कुमार की अवस्था से बढ़कर अधिक बड़े नहीं बढ़ते परंतु उसी अवस्था में अनन्त-काल तक बने रहते हैं। और इस लिये कि मैं उस बात पर प्रत्यय करूं मुझ को कई एक बच्चों के साथ जो शिशु बनकर स्वर्ग में पालन किये गये थे और जो वहां बड़े हो गये थे बात चीत करने की आज्ञा हुई। मैं ने कई एक से बात चीत की जब कि वे अभी शिशु थे और पीछे उन्हीं से जब कि वे कुमार हुए बात चीत की और मैं ने उन से उन के जीवन की गति का हाल बचपन से लेकर जोबन तक सुना।

३४१। जो हम पहिले न० २७६ वें से २८३ वें तक के परिच्छेदों में स्वर्ग में के दूतगण की निर्दोषता के बारे में लिख चुके थे उस से स्पष्ट हो सकता है कि निर्दोषता स्वर्ग की सब वस्तुओं का पात्र है और इस से शिशुओं की निर्दोषता भलाई और सचाई के सब अनुरागों का पटपड़ है। वहां यह कहा गया था कि निर्दोषता यह है कि कोई अपने निज ले चलने को छोड़ प्रभु से ले जाना चाहता है। इस कारण जहां तक मनुष्य निर्दोषता में बढ़ता है वहां तक वह आत्मत्व से दूर हो जाता है। और जहां तक कोई अपने निज आत्मत्व से दूर होता है वहां तक वह प्रभु के आत्मत्व में बढ़ता जाता है। और प्रभु का आत्मत्व उस का न्याय और श्रेष्ठता कहलाता है। शिशुओं की निर्दोषता सच्ची निर्दोषता नहीं है इस वास्ते कि वह ज्ञान के बिना है। क्योंकि सच्ची निर्दोषता ज्ञान है। और जितना कोई मनुष्य ज्ञानी है उतना ही वह प्रभु के पथदर्शन को चाहता है। या यों कहो (और यह उस से एक ही बात है) कि जितना कोई प्रभु से निबाहा जाता है उतना ही वह ज्ञानी है। इस लिये शिशु लोग बाहरी निर्दोषता से

---

२८ विद्या बुद्धि और ज्ञान आत्मीय आहार है और इस वास्ते वह आहार वह भलाई और सचाई भी है कि जिस से वे गुण पैठा होते हैं। न० ३११४ · ४४५९ · ४७९२ · ५१४७ · ५२९३ · ५३४० · ५३४२ · ५४१० · ५४२८ · ५५७६ · ५५८२ · ५५८८ · ५६५५ · ८५६२ · ९००३। और इस लिये आहार (एक आत्मिक तात्पर्य के अनुसार) हर कोई बात है जो प्रभु के मुख से निकलती है। न० ६८१। रोटी से तात्पर्य सारा आहार समुदाय में है और इस लिये वह हर कोई स्वर्गीय और आत्मीय भलाई है। न० २७६ · ६८० · २१६५ · २१७७ · ३४७८ · ६११८ · ८४१०। क्योंकि स्वर्गीय और आत्मीय भलाई मन को जो भीतरी मनुष्य के है पालन करती है। न० ४४५९ · ५२९३ · ५५७६ · ६२७७ · ८४१०।

होकर (जिस में वे पहिले थे और जो बचपन की निर्दोषता कहलाता है) भीतरी निर्दोषता तक (जो ज्ञान की निर्दोषता है) लाए जाते हैं। और ज्ञान की निर्दोषता उस की सारी शिक्षा और उन्नति का अन्त है। इस लिये जब वे ज्ञान की निर्दोषता तक पहुंचते हैं तब बचपन की भिर्दोषता (कि जो उस समय तक उन के लिये पटपड़ बनकर काम में आती थी) उन से संयुक्त होती है। बचपन की निर्दोषता का विशेष गुण मुझ को काठ के टुकड़े के रूप पर दिखलाया गया। वह तो प्राय: जीवहीन था परंतु ज्यों बालबच्चे सचाई के ज्ञान से और भलाई के अनुराग से निष्पन्न किये जाते हैं त्यों वह लकड़ी क्रम क्रम से सजीव होकर उगती थी। पीछे सच्ची निर्दोषता का स्वभाव एक अति सुन्दर फुर्तीले नंगे शिशु के रूप पर दिखलाया गया। क्योंकि अतिशय रूप से निर्दोषी व्यक्तियें जो सब से भीतरी स्वर्ग में प्रभु के पास पास रहते हैं अन्य दूतों को शिशु के रूप पर दिखाई देते हैं और उन में से कोई नंगे भी देख पड़ते हैं। इस कारण कि निर्दोषता का प्रतिरूप वह नंगाई है कि जिस के निमित्त कुछ भी लाज किसी पर नहीं लगती। जैसा कि हम सुखलोक में के पहिले मनुष्य के और उस की स्त्री के हाल के बारे में सृष्टि नाम पोथी के १ पर्व के २५ वें वचन में पढ़ सकते हैं। और इस लिये जब उन की निर्दोषता नष्ट हो गई तब उन्हों ने अपनी नंगाई पर लज्जित होकर अपने तई छिपा रखा। (पर्व ३ वचन ७· १०· ११)। संक्षेप में जितना दूतगण ज्ञानी हैं उतना ही वे निर्दोषी भी हैं और जितना वे निर्दोषी हैं उतना ही वे अपने को शिशु के समान दिखाई देते हैं। और इस से धर्मपुस्तक में बचपन से तात्पर्य निर्दोषता है। (न० २७८ को देखो)।

३४२। मैं ने शिशुओं के बारे में दूतगण के साथ बात चीत की और उन से पूछा कि क्या इस हेतु से कि शिशुओं के कोई अपराध नहीं हैं जैसा कि मनुष्यों के हैं वे अपराधों से विहीन हैं कि नहीं। परंतु उन्हों ने मुझ को कहा कि मनुष्य के समान शिशु भी बुराई में हैं और वे केवल बुराई मात्र भी हैं[२७]। और वे सब दूतगण के सदृश प्रभु की सहायता के द्वारा बुराई से

---

२७ सब मनुष्य सब प्रकार की बुराइयों में जन्म लेते हैं यहां तक कि उन का आत्मत्व केवल बुराई मात्र है। न० २१० · २१५ · ७३१ · ८७४ · ८७५ · ८७६ · ९८७ · १०४७ · २३०७ · २३०८ · ३५१८ · ३७०१ · ३८१२ · ८४८० · ८५५० · १०२८३ · १०२८४ · १०२८६ · १०७३२। और इस से चाहिये कि मनुष्य फिर जन्म लेवें अर्थात द्विज हो जावें। न० ३७०१। मनुष्य की बपौती की बुराई यह है कि मनुष्य परमेश्वर की अपेक्षा अपने को अधिक प्यार करता है और जगत को स्वर्ग से बहुत प्यार करता है और अपने आप की अपेक्षा अपने पड़ोसी को अपने हित के हेतु को छोड़कर तुच्छ जानता है और यह तो आत्मप्रेम है इस लिये बपौती की बुराई आत्मप्रेम और जगतप्रेम है। न० ६९४ · ७३१ · ४३१७ · ५६६०। जब ये प्रेम प्रबल हैं तब उन से सब बुराइयें पैदा होती हैं। न० १३०७ · १३०८ · १३२१ · १५९४ · १६९१ · ३४१३ · ७२५५ · ७३७६ · (७४८०) · ७४८८ · ८३१८ · ९३३५ · ९३४८ · १००३८ · १०७४२। जैसा कि घृणा बैर द्वेष पलटा लेना क्रूरता छल। न० ६६६७ · ७३७२ · ७३७३ · ७३७४ · ९३४८ · १००३८ · १०७४२। इन बुराइयों से सारी झुठाई निकलती है। न० १०४७ · १०२८३ · १०२८४ · १०२८६। अगर वे प्रेम बागों को पकड़ लेते हैं तो वे मुंह के बल दौड़ जाते हैं और आत्मप्रेम परमेश्वर के सिंहासन की भी लालसा करता है। न० ७३७५ · ८६७८।

बचाए जाते हैं और भलाई में स्थापित किये जाते हैं। और इस से उन का हाल ऐसा मालूम होता है कि मानों वे आप से आप भलाई में हैं। इस लिये कि कहीं शिशुजन (जो स्वर्ग में बड़े हो गये) अपने आप के विषय मिथ्या मत न समझें और उस भलाई को जो उन की है अपनी ओर से न समझें और न कि प्रभु की ओर से तो उन बुराइयों में जो उन्हों ने बपौती में से पाई थीं वे कभी कभी गिर पड़ते हैं। और उन में तब तक रहते हैं जब तक कि वे जानते हैं और स्वीकार करते हैं और पतियाते हैं कि उन की भलाई प्रभु की ओर से है। एक राजकुमार जो बचपन में मरके स्वर्ग में बड़ा हो गया ऊपर लिखित मिथ्या मत पर विश्वास करता था और इस कारण वह उन बुराइयों में कि जिन में उस ने जन्म लिया गिर पड़ा। तब तो मैं ने उस के जीव के मण्डल से मालूम किया कि उस को अत्याचार से शासन करने का स्वभाव था और छिनाले के पाप को हलका जानता था क्योंकि उस ने उन बुराइयों को अपने मा बाप से पाया। जब उस ने अपने बुरे स्वभाव को स्वीकार किया तब वह उन दूतों से मिल गया कि जिन से उस ने पहिले संसर्ग किया था। परलोक में किसी को बपौती की बुराई के निमित्त ताड़न नहीं मिलता। क्योंकि वह बुराई उस की बुराई नहीं है पस इस लिये उस को उस में कुछ दोष नहीं है। परंतु उस को अपने किये का ताड़न भोगना पड़ता है और इस लिये जितना वह अपनी चाल चलन के द्वारा बपौती की बुराई अपनाता है उतना ही उस को ताड़न भोगना पड़ता है।' जब शिशुजन मनुष्यत्व तक पहुंचते हैं तब वे अपनी बपौती की बुराई की अवस्था में गिर पड़ते हैं न कि इस कारण कि उस बुराई के लिये उन को ताड़न मिले परंतु इस लिये कि वे यह जान लेवें कि वे अपनी ओर से केवल बुराई निकालते हैं और प्रभु की कृपा से वे उस नरक से निकाले गये जो उन से चिमटता है और स्वर्ग में पहुंचाए गये और वे अपने किसी पुण्यता के कारण स्वर्ग में नहीं हैं परंतु केवल प्रभु की कृपा के कारण। और इस लिये वे औरों के संमुख अपनी भलाई के विषय डींग मारना न चाहिये क्योंकि डींग मारना परस्पर प्रेम की भलाई के ऐसा विरुद्ध है जैसा कि वह श्रद्धा की सचाई के भी विरुद्ध है।

३४३। बार बार जब बहुत ही छोटे शिशु मेरे साथ गानेवालों के बीच विद्यमान थे तब उन की बोली कुछ मृदु और अनभियुक्त सुनाई दी। जिस से यह निकला कि वे उसी समय सब मिलके काम नहीं करते थे जैसा कि वे पीछे काम करते हैं जब कि वे बड़े हो गये। और मुझ को इस बात से अचरज हुआ कि आत्मागण जो मेरे साथ थे उन को बोलने की शिक्षा देने से बर आ न सके। क्योंकि यह आत्मागण की निज इच्छा है। मैं ने इन समयों पर मालूम किया कि शिशुजन अस्वीकार करते थे और उस तौर पर बोलना नहीं चाहते थे जिस तौर पर उन को निर्देश किया जाता था। बार बार मैं ने मालूम किया कि उन के नकारने और विरोध करने के साथ एक प्रकार का क्रोध हो लिया। और जब उन्हों ने बिन अटकाव बोलने की आज्ञा पाई तब उन्हों ने केवल यह कहा कि

यह यों नहीं है। मुझ को समाचार मिला कि यहीं खास शिशुओं की परीक्षा है। और यह इस लिये अनुमत होता है न केवल कि उन को झुठाई और बुराई के विरोध करने का अभ्यास हो पर इस लिये कि उन को यह शिक्षा दी जावे कि उन को औरों की ओर से ध्यान करना और बोलना और काम करना न चाहिये और इस कारण प्रभु ही को छोड़कर उन को अपने आप को ले जाना और किसी के हाथ में देना न चाहिये।

३४४। इन उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि शिशुओं की शिक्षा स्वर्ग में सचाई की बुद्धि के द्वारा और भलाई के ज्ञान के द्वारा उन का दूतविषयक जीवन में पहुंचाया जाना है। परंतु दूतविषयक जीवन प्रभु से प्रेम रखना है और परस्पर प्रेम भी है। और उन प्रेमों में निर्दोषता रहती है। एक उदाहरण से मालूम होगा कि बहुधा पृथिवी पर के बालबच्चों की शिक्षा स्वर्ग में की शिक्षा से कैसी विपरीत है। मैं किसी बड़े नगर के एक रस्ते में था और मैं ने छोटे छोटे लड़कों को आपस में लड़ते हुए देखा और उस समय भीड़ जो वहां उन के चारों ओर घेर रही थी बड़े आनन्द से देख रही थी। और मुझ को यह समाचार मिली कि बच्चों के मा बाप अपने बालबच्चों को ऐसी लड़ाइयों में आप उकसाते हैं। भले आत्मा और दूत जो मेरी आंखों में होकर सब माजरा देख रहे थे इतना व्याकुल हुए कि मैं ने उन का भयकम्प मालूम किया और इस भयकम्प का यह विशेष कारण था कि वह झगड़ा उन मा बाप का काम था जो अपने बालबच्चों को ऐसे बुरे व्यवहारों में उकसाते थे। उन्हीं ने कहा कि मा बाप बचपन में भी सारे परस्पर प्रेम को और सारी निर्दोषता को जो शिशुजन प्रभु की ओर से पाते हैं इस रीति से मिटाते हैं और उन बच्चों में द्वेष और वैर स्थापित करते हैं। और इस से वे अपने बालबच्चों को सावधान करके स्वर्ग से अलग रखते हैं क्योंकि वहां परस्पर प्रेम को छोड़ और कुछ नहीं है।

३४५। जो बचपन में मर जाते हैं और जो युवावस्था को पहुंचकर मरते हैं उन की भिन्नता का बयान भी किया जावेगा। जो जवान होकर मरते हैं उन के पार्थिव और प्राकृतिक जगत से पाया हुआ एक पटपड़ है जो वे अपने साथ ले जाते हैं। और यह पटपड़ उन की सुधि और उस सुधि का शारीरिक और स्वाभाविक अनुराग है जो मृत्यु के पीछे स्थायी बना रहता है और निश्चल रहता है। तो भी वह ध्यान के पटपड़ के काम में आता है क्योंकि उस में ध्यान बहकर जाता है। पस इस लिये उस पटपड़ के गुण के अनुसार और चैतन्य [मन] की प्रतिरूपता के अनुसार उन वस्तुओं से जो उस पटपड़ में हैं ऐसा ही मनुष्य का गुण भी मृत्यु के पीछे हो जाता है। परंतु वे जो बचपन में मरते हैं और स्वर्ग में शिक्षा पाते हैं ऐसा पटपड़ नहीं रखते पर उन के एक आत्मिक-स्वाभाविक पटपड़ है। क्योंकि वे प्राकृतिक जगत से और पार्थिव शरीर से कुछ भी नहीं ग्रहण करते। और इस लिये वे उस भांति के स्थूल अनुरागों में और इस से उस भांति के स्थूल ध्यानों में नहीं रह सकते। क्योंकि वे स्वर्ग से सब कुछ ग्रहण करते हैं।

तिस पर भी शिशुजन नहीं जानते कि वे जगत में पैदा हुए थे और इस लिये उन की यह कल्पना है कि वे स्वर्ग में पैदा हुए थे। इस कारण वे आत्मीय जन्म को छोड़ जो भलाई और सचाई के ज्ञान से और उस बुद्धि और ज्ञान से कि जिस से मनुष्य मनुष्य हो रहता है उत्पन्न होता है अन्य किसी जन्म का कुछ भी नहीं जानते। और जब कि ये सिद्धान्त प्रभु की ओर से हैं तो वे इस बात पर विश्वास करते हैं और उस पर विश्वास करना चाहते हैं कि वे प्रभु के बालबच्चे आप हैं। तिस पर भी उन मनुष्यों की अवस्था जो पृथिवी पर बड़े होकर मनुष्यत्व तक पहुंचते हैं शिशुओं की अवस्था सरीखी जो स्वर्ग ही में बड़े हो जाते हैं निष्पन्न हो सकती है। इस छोड़ से कि मनुष्य शारीरिक और पार्थिव प्रेमों को जो आत्मप्रेम और जगतप्रेम हैं दूर करते हैं और उन के स्थान आत्मीय प्रेमों को ग्रहण करते हैं।

स्वर्ग में के ज्ञानी और निष्कपट व्यक्तियों के बारे में।

३४६। बहुत लोग इस बात पर विश्वास करते हैं कि ज्ञानी लोग स्वर्ग में निष्कपट लोगों से अधिक यश और उत्कृष्टता पावेंगे। क्योंकि डानियेल की पोथी में यह वचन है कि "वे जो ज्ञानी हैं आकाश की चमक के सदृश चमकेंगे और वे जिन के प्रयत्न से बहुतेरे लोग धार्मिक हो गये तारों के सदृश अनन्तकाल तक"। (पर्व १२ वचन ३)। परंतु थोड़े लोग जानते हैं कि "ज्ञानी" की बात का क्या तात्पर्य है और "बहुतेरे लोग धार्मिक हो गये" इस वाक्य का क्या तात्पर्य है। बहुधा वे इस पर विश्वास करते हैं कि ये लोग वे ई हैं जो ज्ञानी और पण्डित कहाते हैं और विशेष करके वे हैं जो कलीसिया में उपदेशक हुए थे और जो सिद्धान्तों के समझने में और उपदेश देने में औरों से उत्कृष्ट थे और अधिक भी विशेषिता के साथ वे ई हैं जिन्हों ने बहुतेरे अन्य लोगों को श्रद्धा की ओर फिरा दिया था। वे सब लोग जगत में बुद्धिमान कहाते हैं परंतु यदि उन की बुद्धि स्वर्गीय बुद्धि न हो तो स्वर्ग में वे वे ई बुद्धिमान नहीं हैं जिन की सूचना ऊपर लिखित वचन में है। इस बुद्धि के स्वभाव और गुण का बयान अब किया जाता है।

३४७। स्वर्गीय बुद्धि वह भीतरी बुद्धि है जो न कि जगत के यश के निमित्त और न स्वर्ग के यश के निमित्त परंतु सचाई ही के निमित्त कि जो भीतरी प्रभाव और आनन्द पैदा करती है सचाई के प्रेम से निकलती है। जो लोग सचाई आप से उपहत और आनन्दित हैं वे स्वर्ग की ज्योति से भी उपहत और आनन्दित हैं। और जो लोग स्वर्ग की ज्योति से उपहत और आनन्दित हैं वे ईश्वरीय सचाई से बरन प्रभु आप से उपहत और आनन्दित हैं। क्योंकि स्वर्ग की ज्योति ईश्वरीय सचाई है और ईश्वरीय सचाई स्वर्ग में का प्रभु आप है। (न० १२६ से १४० तक देखो)। यह ज्योति केवल मन के भीतरी भागों में प्रवेश करती है (क्योंकि मन के भीतरी भाग उस के ग्रहण करने के योग्य हैं) और ज्यों वह उन में प्रवेश करती है त्यों वह उन को उपहत और आनन्दित करती रहती है। किस लिये कि जो कुछ स्वर्ग से बहकर अन्दर आता है और ग्रहण किया जाता है उसी

में आनन्द और सुख समाता है। इस से सचाई का यथार्थ अनुराग होता है जो सचाई से सचाई ही के निमित्त अनुराग रखता है। और वे जो उसी अनुराग में रहते हैं (या यों कहो उसी प्यार में रहते हैं) स्वर्गीय बुद्धि में रहते हैं और स्वर्ग में आकाश की चमक के सदृश चमकते हैं। वे इस वास्ते चमकते हैं कि ईश्वरीय सचाई जहां कहीं स्वर्ग में हो वहीं वह चमकती है। (न० १३२ देखो)। और प्रतिरूपता होने के कारण "स्वर्गी आकाश" के वाक्य से यह तात्पर्य है कि मनुष्य और दूत दोनों का वह भीतरी बुद्धिमान तत्त्व जो कि स्वर्ग की ज्योति में रहता है। परंतु वे जो जगत में के यश के लिये या स्वर्ग में के यश के निमित्त सचाई के प्रेम में रहते हैं स्वर्ग में नहीं चमक सकते। क्योंकि वे स्वर्ग की ज्योति से आनन्दित और उपहत नहीं होते परंतु जगत की ज्योति से कि जो स्वर्ग में घोर अन्धरा है[२८]। ऐसे ऐसे लोगों पर आत्मयश प्रबल है क्योंकि वह उन की सारी प्रवृत्ति का अन्त है। और जब कि आत्मयश प्रवृत्ति का अन्त है तो मनुष्य पहिले पहिल अपनपा देखता है और वह उन सचाइयों को जो उस के यश के बढ़ाने में उपकारक हैं केवल उस अन्त तक पहुंचाने के उपाय मात्र (और इस से अपने नौकरों के समान) मानता है। क्योंकि जो मनुष्य अपने यश के निमित्त ईश्वरीय सचाइयों को प्यार करता है वह अपने को ईश्वरीय सचाइयों में देखता है और न कि प्रभु को। और इस कारण वह अपनी ज्ञानशक्ति की दृष्टि को और अपनी श्रद्धा की आंख को स्वर्ग से जगत की ओर फिराता है और प्रभु से अपने आप की ओर। इस लिये ऐसे लोग जगत की ज्योति में हैं और स्वर्ग की ज्योति में नहीं हैं। बाहरी रूप के विषय और मनुष्य की दृष्टि में वे वहां तक बुद्धिमान हैं जहां तक वे लोग बुद्धिमान हैं जो स्वर्ग की ज्योति में रहते हैं। क्योंकि वे उन लोगों के तौर पर बोलते हैं और कभी कभी वे प्रत्यक्ष रूप से अधिक ज्ञान के साथ बात चीत करते हैं। इस वास्ते कि वे आत्मप्रेम से उकसाए जाते हैं और इस लिये उन को ईश्वरीय अनुरागों के भेष के धारण करने की शिक्षा दी जाती है। परंतु भीतरी रीति से और दूतगण की दृष्टि में उन का स्वभाव संपूर्ण रूप से और ही है। ऊपर लिखित बयान से "बुद्धिमान लोग जो स्वर्ग में आकाश की चमक के सदृश चमकेंगे" इस वाक्य का तात्पर्य कुछ स्पष्टता से जान पड़ता है। परंतु "वे जिन के प्रयत्न से बहुतेरे लोग धार्मिक हो गये तारों के सदृश चमकेंगे" इस वाक्य का तात्पर्य अब प्रगट होता है।

---

२८ जगत की ज्योति बाहरी मनुष्य के लिये है और स्वर्ग की ज्योति भीतरी मनुष्य के लिये। न० ३२२२ · ३२२३ · ३३३७। स्वर्ग की ज्योति प्राकृतिक ज्योति में बहकर आती है और प्राकृतिक मनुष्य उतना ही ज्ञानी है जितना वह स्वर्ग की ज्योति को ग्रहण करता है। न० ४३०२ · ४४०८। जगत की ज्योति के द्वारा जो प्राकृतिक ज्योति कहलाती है स्वर्ग की ज्योति में की वस्तुएं देखी नहीं जा सकतीं परंतु स्वर्ग की ज्योति का विपरीत हाल है। न० ९७५५। इस लिये वे जो जगत ही की ज्योति में होते हैं उन वस्तुओं को जो स्वर्ग की ज्योति में है देख नहीं सकते। न० ३१०८। क्योंकि दूतगण को जगत की ज्योति घोर अन्धेरा है। न० १५२१ · १७८३ · १८८०।

३४८। "जिन के प्रयत्न से बहुतेरे धार्मिक हो गये" इस वाक्य से तात्पर्य ज्ञानी लोग हैं। और स्वर्ग में वे लोग ज्ञानी कहाते हैं जो भलाई में रहते हैं। और स्वर्ग में वे भलाई में हैं जो ईश्वरीय सचाइयों को झट पट जीवन के काम में लाते हैं। क्योंकि जब ईश्वरीय सचाई जीव से मिली हुई है तब वह भली हो जाती है। इस वास्ते कि वह संकल्प और प्रेम का एक तत्त्व हो जाता है। और जो कुछ संकल्प और प्रेम का है सो भला कहलाता है। ये तो ज्ञानी कहाते हैं क्योंकि ज्ञान जीव का है। परंतु वे लोग बुद्धिमान कहलाते हैं जो ईश्वरीय सचाइयों को जीवन के काम में नहीं लाते पर उन सचाइयों को पहिले पहिल स्मरण में रखते हैं और पीछे उन को वहां से निकालकर जीवन के काम में लाते हैं। किस रीति से और कितने परिमाण तक स्वर्ग में बुद्धिमान लोग ज्ञानी लोग से असमान हैं उस बाब में देखा जा सकता है जहां स्वर्ग के दो राजों का हाल बयान किया गया अर्थात स्वर्गीय और आत्मीय राज (न० २० से २८ तक) और जहां तीन स्वर्ग का बयान है (न० २९ से ४० तक)। जो लोग प्रभु के स्वर्गीय राज में हैं और इस से तीसरे या सब से भीतरी स्वर्ग में हैं वे न्यायानुसारी कहलाते हैं क्योंकि वे अपने से कुछ न्याय्यत्व नहीं संबद्ध करते परंतु सब कुछ प्रभु से। और स्वर्ग में प्रभु का न्याय्यत्व वही भलाई है जो प्रभु की ओर से निकलती है[२९]। ये तो वे ई हैं जिन के प्रयत्न से बहुतेरे धार्मिक हो गये और ये तो वे ई भी हैं जिन के बारे में प्रभु यों कहता है कि "मेरे पिता के राज में न्यायानुसारी लोग सूर्य के सदृश चमकेंगे"। (मत्ती पर्व १३ वचन ४३)। यह लिखा गया है कि वे सूर्य के सदृश चमकेंगे क्योंकि वे प्रभु की ओर से प्रभु से प्रेम रखते हैं और इस कारण कि सूर्य से तात्पर्य प्रेम है। (न० ११६ से १२५ तक देखो)। जो ज्योति उन के आस पास चमकती है सो भी भड़कीली रीति से दमकती है। और उन के ध्यान के बोधों में एक भड़कीला तत्त्व मिला हुआ है क्योंकि वे प्रेम की सचाई को प्रभु की ओर से (जैसा कि स्वर्ग के सूर्य की ओर से) सीधे ग्रहण करते हैं।

३४९। वे लोग जिन्हों ने जगत में बुद्धि और ज्ञान पाया है स्वर्ग में अङ्गीकार किये जाते हैं। और हर एक अपनी अपनी बुद्धि और ज्ञान के गुण और परिमाण के अनुसार दूत बन जाते हैं। क्योंकि जो कुछ कि मनुष्य जगत में पाता है सो उस के साथी होकर उस के संग मरने के पीछे हो लेता है। और तब तो बढ़ता बढ़ता संपूर्णता तक पहुंचता है। परंतु यह बढ़ती और संपूर्णता उस के अनुराग के परिमाण से और उस के सचाई और भलाई के चाव से सरस नहीं होती।

---

२९ प्रभु की पुण्यता और साधुता वह भलाई है जो स्वर्ग में राज करती है। न० ९४८६·९९८४। और साधु और पाप से मुक्त हुई व्यक्ति वही है कि जिस से प्रभु की पुण्यता और साधुता संबद्ध की गई है और वह असाधु है जो अपनी साधुता और आत्मपुण्यता रखती है। न० ५०६९·९२६३। उन के गुण के बारे में जो परलोक में अपने से अपनी साधुता संबद्ध करते हैं। न० ९४२·२०२७। धर्मपुस्तक में न्याय्यत्व या साधुता भलाई बोलते हैं और विचार सचाई कहाता है और इस से न्याय और विचार करना भला और सच्चा काम करना है। न० २२३५·९८५७।

जिन लोगों ने सचाई के थोड़े अनुराग और चाव को और सचाई की थोड़ी भलाई को पाया है वे थोड़ी बढ़ती और संपूर्णता को ग्रहण करते हैं। तो भी वे इतना कुछ ग्रहण करते हैं जितना कि वे अपने अनुराग और चाव के अनुसार ग्रहण कर सकते हैं। और वे जो उस अनुराग और चाव का अधिक परिमाण रखते हैं उस बढ़ती और संपूर्णता का भी अधिक परिमाण पाते हैं। अनुराग और चाव का यथार्थ परिमाण इस का एक ऐसा मापनेवाला पात्र है जो भरा हुआ होगा। इस लिये जिस के एक बड़ा पात्र है उस को बहुत कुछ दिया जाता है और जिस के एक छोटा पात्र है उस को कम दिया जाता है। और इस का यह हेतु है कि प्रेम जो अनुराग और चाव का मूल है सब कुछ ग्रहण करता है कि जो उस के समान है और इस लिये प्रेम और ग्रहणशक्ति बराबर होती हैं। यही तात्पर्य प्रभु की इन बातों से है कि "जिस के पास कुछ है उस को दिया जावेगा और उस की बहुत बढ़ती होगी"। (मत्ती पर्व १३ वचन १२। पर्व २५ वचन २९)। "अच्छा नपवा दाब दाब और हिला हिलाके मुंहामुंह गिरता हुआ भरके तुम्हारी गोद में देंगे"। (लूका पर्व ६ वचन ३८)।

३५०। जिन्हों ने सचाई और भलाई को केवल अपनी श्रेष्ठता के लिये प्यार किया है वे स्वर्ग में प्रवेश कर ग्रहण किये जाते हैं। जिन्हों ने बहुत प्यार किया वे ज्ञानी कहलाते हैं और जिन्हों ने कम प्यार किया है वे भोले कहाते हैं। स्वर्ग में ज्ञानी लोग बड़ा ज्योति में रहते हैं परंतु भोले लोग कम ज्योति में रहते हैं। और हर कोई भलाई और सचाई के अपने अपने प्रेम के परिमाण के अनुसार ज्योति में रहता है। सचाई और भलाई को सचाई और भलाई ही के निमित्त प्यार करना और उन गुणों की इच्छा रखना है और उन के अनुसार चलना भी है। क्योंकि जो लोग इच्छा रखते हैं और उस इच्छा के अनुसार काम करते हैं वे प्यार भी करते हैं। न कि वे जो इच्छा नहीं करते और न उस के अनुसार काम करते हैं। जो लोग इच्छा रखते हैं और उस पर चलते हैं वे प्रभु को प्यार करते हैं और प्रभु से प्यार किये जाते हैं। क्योंकि भलाई और सचाई प्रभु की ओर से निकलती है। और जब कि वे गुण प्रभु की ओर से होती हैं तो प्रभु उन में है और इस कारण वह उन के साथ भी रहता है जो जगत में इच्छा रखने और भली चाल पर चलने के द्वारा भलाई और सचाई को ग्रहण करते हैं। अगर मनुष्य के स्वभाव की परीक्षा सावधान करके की जावे तो यह मालूम होगा कि वह केवल अपनी भलाई और सचाई ही आप है। क्योंकि भलाई उस की संकल्पशक्ति से होती है और सचाई उस की बुद्धि से तथा संकल्पशक्ति और बुद्धि का गुण मनुष्य का गुण भी है। इस से स्पष्ट है कि जितना किसी मनुष्य की संकल्पशक्ति भलाई की बनी हुई है और जितना उस की बुद्धि सचाई की बनी है उतना ही वह मनुष्य प्रभु से प्यार किया जाता है। प्रभु से प्यार किया जाना और प्रभु से प्यार रखना एकसां हैं क्योंकि प्रेम अन्योन्यानुगामी है और को प्यार किया जाता है उस को प्रभु प्यार करने की शक्ति देता है।

३५१। जगत में लोग ध्यान करते हैं कि वे जिन के अधिक ज्ञान है (चाहे वह ज्ञान कलीसिया के सिद्धान्तों से संबन्ध रखता हो चाहे वह धर्मपुस्तक से संबन्ध रखता हो चाहे वह बाह्यप्रपञ्चविद्या से संबद्ध हो) अन्य लोगों से अधिक भीतरी तौर से और अधिक तीव्रबुद्धि से सचाइयों को समझ लेते हैं। और इस से वे अधिक बुद्धिमान और ज्ञानी हैं। और ऐसे लोग अपने आप के बारे में ऐसे मत पर आप भी प्रतीति करते हैं। परंतु यथार्थ बुद्धि और ज्ञान के स्वभाव का तथा कृत्रिम और झूठी बुद्धि और ज्ञान के स्वभाव का भी बयान अब किया जाता है। यथार्थ बुद्धि और ज्ञान वही शक्ति है कि जिस से कोई सच्ची और भली वस्तु (और इस से कोई झूठी और बुरी वस्तु भी) देखी जाती है और मालूम की जाती है। तथा सहज्ञान और अन्तर्ज्ञान के द्वारा वैसी वस्तुएं एक दूसरे से यथार्थता से विविक्त की जाती है। प्रत्येक मनुष्य में भीतरी वस्तुएं और बाहरी वस्तुएं हैं। भीतरी वस्तुएं भीतरी या आत्मिक मनुष्य से संबन्ध रखती हैं और बाहरी वस्तुएं बाहरी या प्राकृतिक मनुष्य से संबद्ध हैं। और मनुष्य की बुद्धि और ज्ञानशक्ति का गुण उस के भीतरी भागों के रूप पर अवलम्बित है और जिस परिमाण तक कि भीतरी भाग और बाहरी भाग आपस में मिलकर एक हो जाते हैं उस परिमाण पर भी वह गुण अवलम्बित है। मनुष्य के भीतरी भाग स्वर्ग ही में बनाए जा सकते हैं परंतु उस के बाहरी भाग जगत में। और जब भीतरी भाग स्वर्ग में बने हुए हैं तब उन की ओर से उन बाहरी भागों में जो जगत की ओर से होते हैं एक अन्तःप्रवाह बहकर जाता है और इस से वे अनुरूपक हो जाते हैं अर्थात वे दोनों मिलकर काम करते हैं। जब यह हाल होता है तब मनुष्य एक भीतरी तत्त्व की सहायता से देखता है और मालूम करता हूं। भीतरी भागों के बन जाने के वास्ते केवल एक ही उपाय है और वह यह है कि मनुष्य ईश्वरत्व और स्वर्ग की ओर देखे। क्योंकि (जैसा कि हम ने अभी सूचित किया है) भीतरी भाग स्वर्ग में बनाए जाते हैं। और जब मनुष्य परमेश्वर के होने पर विश्वास करता है और इस बात पर प्रतीति करता है कि सारी भलाई और सचाई और इस कारण सारी बुद्धि और ज्ञान परमेश्वर से निकलता है तब वह परमेश्वर की ओर देखता है। और जब वह परमेश्वर से पथदर्शन को चाहता है तब वह परमेश्वर पर श्रद्धा लाता है। इसी तौर पर मनुष्य के भीतरी भाग खुल जाते हैं और न कि किसी अन्य तौर पर। वह मनुष्य जो इस बात पर और इस बात के अनुसार चलने पर श्रद्धा लाता है बुद्धिमान और ज्ञानी हो जाने की शक्ति रखता है। परंतु उस के बुद्धिमान और ज्ञानी हो जाने के वास्ते चाहिये कि वह न केवल स्वर्ग से संबद्ध पर जगत से संबद्ध भी बहुत सी बातें सीखे। वे बातें जो स्वर्ग से संबन्ध रखती हैं धर्मपुस्तक और कलीसिया के द्वारा सीखी जाती हैं और वे जो जगत से संबद्ध हैं बाह्यप्रपञ्चविद्या के द्वारा। और जितना कोई मनुष्य इन बातों को सीखता है और उन को अपने जीवन के काम में लाता है उतना ही वह बुद्धिमान और ज्ञानी हो जाता है क्योंकि ठीक ठीक उतना ही उस की बुद्धि की भीतरी

बुद्धि और उस की संकल्पशक्ति का भीतरी अनुराग संपन्न होता जाता है। इस जाति के भोले लोग वे हैं जिन के भीतरी भाग खुले हुए तो हैं परंतु आत्मिक धार्मिक नीतिसंबन्धी और प्राकृतिक सचाइयें उन में उतने परिमाण तक संपन्न नहीं हो गये। जब वे सच्ची बातें को सुनते हैं तब वे उन को मालूम करते हैं परंतु वे अपने में उन को नहीं देख सकते। परंतु इस जाति के ज्ञानी लोग वे हैं जिन के भीतरी भाग न केवल खुले हुए हैं पर संपन्न भी हैं और जो इस कारण अपने में सचाइयों को देख सकते हैं और मालूम कर सकते हैं। और इस से यथार्थ बुद्धि और ज्ञान का गुण स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है।

३५२। कृत्रिम बुद्धि और ज्ञान का यह हाल नहीं है कि कोई किसी भीतरी स्थल की ओर से किसी सच्ची और भली वस्तु को (और इस से किसी झूठी और बुरी वस्तु को भी) देखे और मालूम करे परंतु उन गुणों का केवल यह हाल है कि जो बात कि और लोग सच्ची और भली या झूठी और बुरी कहते हैं उस पर कोई पहिले पहिल श्रद्धा लावे और पीछे उस का प्रमाण करे। जो लोग सचाई की ओर से सचाई को नहीं देखते पर औरों के कहने से देखते हैं वे अनायास से कदाचित या तो झुठाई को स्वीकार करें या सचाई को और पीछे ऐसी बातें की तब तक प्रतीति कर सकें जब तक कि झूठी बात सच की सच मालूम होती है। क्योंकि जिस का प्रमाण किया गया वह सचाई के रूप पर दिखाई देता है। कोई वस्तु नहीं है जिस का प्रमाण नहीं हो सकता। ऐसे लोगें के भीतरी भाग केवल नीचे से खुले हुए हैं परंतु उन के बाहरी भाग के विषय जितना उन लोगें ने अपने आप का प्रमाण किया हो उतना ही उन के बाहरी भाग खुले हुए हैं। इस कारण वह ज्योति जिस के द्वारा वे देखते हैं स्वर्ग की ज्योति नहीं है परंतु जगत की ज्योति है जो कि प्राकृतिक ज्योति कहलाती है। और इस ज्योति में झूठी बातें पारदर्शक सचाइयों के सदृश दिखाई देती हैं और जब उन का प्रमाण किया गया हो तब वे चमकीली देख पड़ती हैं परंतु स्वर्ग की ज्योति में वे नहीं चमकती। इस प्रकार के लोगें में से वे कम बुद्धिमान और कम ज्ञानी हैं जिन्हें ने अपने मत का प्रमाण दृढ़ता से किया हो और वे अधिक बुद्धिमान और अधिक ज्ञानी हैं जिन्हें ने अपने मत का प्रमाण कम दृढ़ता से किया हो। और इस बात से कृत्रिम बुद्धि और ज्ञान का गुण स्पष्ट है। परंतु इन लोगें में वे गिने नहीं जाते जो बच्चपन में उन बातें को सच मानते हैं जो वे अपने शिक्षकों से सुन रहे थे। इस होड़ पर कि जब वे बड़े हो जावें और अपनी ज्ञानशक्ति से ध्यान कर लें तब वे उन बातें पर हठ करके आसक्त न हों पर सचाई की इच्छा करें और ढूंढें और जब सचाई उन को मिले तो वे अपने आप पर उस का असर भीतरी तौर पर लगने दें। क्योंकि ऐसे लोग सचाई ही के निमित्त सचाई पर आसक्त हैं और इस लिये वे पहिले सचाई को देखते हैं और

पीछे उस का प्रमाण करते हैं[३०]। एक उदाहरण देकर इस का बयान स्पष्ट हो जावे। कई आत्माओं में इस प्रसङ्ग की बात चलाई गई कि क्या कारण है कि पशु उस सारी विद्या में जो उन के स्वभाव के योग्य हैं जन्म लेते हैं। परंतु मनुष्यों का ऐसा हाल नहीं है। और उस प्रश्न का यह उत्तर हुआ कि पशु अपने जीवन की परिपाटी में रहते हैं परंतु मनुष्य अपनी परिपाटी में नहीं। और इस लिये इस को ज्ञान और विद्या के द्वारा परिपाटी में ले जाना चाहिये। परंतु यदि मनुष्य अपने जीवन की परिपाटी में जन्म लेवे (जो कि सब वस्तुओं की अपेक्षा परमेश्वर से अधिक प्रेम रखना है और पड़ोसी को अपने सरीखा प्यार करना है) तो वह बुद्धि में और ज्ञान में जन्म लेवे। और इस से वह प्रत्येक सचाई पर श्रद्धा लाने में अपने ज्ञान की बढ़ती के अनुसार जन्म लेवे। भले आत्मा जो वहां विद्यमान थे यह बात सुनकर झट पट मान गये और केवल सचाई की ज्योति ही से उस की सचावट मालूम की। परंतु वे आत्मा जिन्हों ने अपने तईं केवल श्रद्धा लाने में दृढ़ किया और इस से प्रेम और अनुग्रह करने को छोड़ दिया उस बात को समझ न सकें। क्योंकि उन झुठाइयों की ज्योति ने जिन का प्रमाण उन आत्माओं ने किया था सचाई की ज्योति को अन्धेरा किया था।

३५३। सारी बुद्धि और ज्ञान झूठ है जो ईश्वरीय सत्त्व के स्वीकार करने पर स्थायी नहीं है। क्योंकि जो लोग ईश्वरीय सत्ता को स्वीकार नहीं करते परंतु ईश्वरत्व के बदले प्रकृति को अङ्गीकार करते हैं वे शारीरिक-विषयत्व से ध्यान करते हैं और चाहे जितना वे जगत में अपनी विद्वत्ता और पाण्डित्य के निमित्त माने जाते हों तो भी वे विषयी ही विषयी हैं[३१]। क्योंकि उन की विद्वत्ता उन

---

३० ज्ञान तो किसी वस्तु की सचावट को प्रमाण करने के आगे देखता और मालूम करता है न कि औरों की कही बात का प्रमाण करना। न० १०१७ • ४७४१ • ७०१२ • ७६८० • ७९५०। प्रमाण करने के आगे किसी वस्तु की सचावट के देखने और मालूम करने की शक्ति केवल उन्हीं को दी गई है जो सचाई के निमित्त और जीवन के निमित्त सचाई पर आसक्त हों। न० ८५२१। प्रमाण करने की ज्योति प्राकृतिक ज्योति है और न आत्मिक ज्योति। और वह वैषयिक ज्योति है जो कि बुरे लोगों के पास भी पाई जाती है। न० ८७८०। क्योंकि सब वस्तुओं का चाहे वे झूठी वस्तुएं भी हों प्रमाण करना हो सके यहां तक कि वे सचाइयों के समान दिखाई देवें। न० २४८२ • २४९० • ५०३३ • ६८६५ • ८५२१।

३१ विषयक तत्त्व मनुष्य के जीव का अन्तिम है कि जो उस के शारीरिक तत्त्व में लगता है और गड़ जाता है। न० ५०७७ • ५७६७ • ९२१२ • ९२१६ • ९३३१ • ९७३०। और जो मनुष्य सब बातों का अपने शरीर के इन्द्रियों से विचार करता है और निर्णय करता है और उस वस्तु को छोड़के जिस पर अपनी आंख की दृष्टि पड़ती हैं और जिस को अपने हाथ छूते हैं अन्य किसी बात पर विश्वास नहीं करता वह एक विषयी मनुष्य कहाता है। न० ५०६४ • ७६९३। ऐसा मनुष्य अपने सब से बाहरी तत्त्वों से ध्यान करता है न कि अपने आप में भीतरी तौर पर। न० ५०८९ • ५०६४ • ६५६४ • ७६९३। क्योंकि उस के भीतरी भाग बन्द होते हैं यहां तक कि वह ईश्वरीय सचाई का कुछ भी नहीं देख सकता। न० ६५६४ • ६८४४ • ६८४५। संक्षेप में वह स्थूल प्राकृतिक ज्योति में है और इस लिये वह कुछ भी नहीं मालूम करता जो स्वर्ग की ज्योति से निकलता है। न० ६२०१ • ६३१० • ६५६४ • ६८४४ • ६८४५ • ६५९८ • ६६१२ • ६६१४ • ६६२२ • ६६२४। और इस लिये वह अपने अन्तःकरण में स्वर्ग की और कलीसिया की सब बातों के विरुद्ध है।

विषयों के सिवाए जो जगत में उन के आंखों के साम्हने दृष्टि में आते हैं किसी और बात तक पहुंच नहीं सकती। यद्यपि उन की विद्या वही विद्या है कि जो सच्चे बुद्धिमान लोग अपनी ज्ञानशक्ति के बढ़ाने के लिये काम में लाते हैं तो भी वे उन विषयों को अपने स्मरण में रखते हैं और प्रायः भौतिक भाव से देखते हैं। विद्या की बात से तात्पर्य वे नाना प्रकार की परीक्षारूपी विद्यागण हैं जैसा कि साकारपदार्थविज्ञान ज्योतिष रसायनविद्या यन्त्रविद्या रेखागणित शरीरपरिच्छेद आत्मतत्त्वविद्या तत्त्वविद्या राजों का इतिहास और पण्डित लोगों का गुणागुण-ज्ञान और सालङ्कारवाक्य। इस कारण कलीसिया के आफ़िसर लोग जो एक ईश्वरीय सत्ता का होना अस्वीकार करके बाहरी मनुष्य की वैषयिक वस्तुओं से ऊपर अपने ध्यान को नहीं उठाते धर्मपुस्तक का और उस की संबद्ध वस्तुओं का ऐसे तौर से ध्यान करते हैं जिस तौर से अन्य लोग विद्यागण का ध्यान किया करते हैं इस वास्ते कि वे लोग बुद्धिमान और सचेत मन से उन विद्याओं को न तो ध्यान के प्रसङ्ग बनवाते हैं न अन्तर्ज्ञान के प्रसङ्ग। क्योंकि उन के भीतरी भाग बन्द हुए हैं और उन के बाहरी भाग भी जो भीतरी भागों के पास ही पास हैं बन्द हुए हैं। वे भाग इस वास्ते बन्द हुए हैं कि ऐसे मनुष्य स्वर्ग की ओर से अपने तई फिराते हैं और उन इन्द्रियों को जो उस की ओर देखने के योग्य हैं और जो (जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं) मानुषक मन के भीतरी भाग हैं विपरीत दिशा की ओर झुकाते हैं। और इस से वे सच्ची और भली वस्तुओं को देख नहीं सकते। क्योंकि उन मनुष्यों के विषय सचाई और भलाई घोर अन्धेरे में होती हैं परंतु झुठाई और बुराई ज्योति में हैं। तिस पर भी वैषयिक मनुष्य तर्कवितर्क कर सकते हैं और उन में से कई एक लोग अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक चतुराई से और अधिक तीक्ष्णता से तर्क करते हैं। परंतु उन का तर्कवितर्क इन्द्रियों की विद्याप्रमाणित झुठाइयों से निकलता है। इस वास्ते कि वे तर्क करने में निपुण हैं वे अपने को औरों से अधिक ज्ञानी जानते हैं[१२]। परंतु वह आग जो उन के तर्क करने को अनुराग से तप्त करती है आत्मप्रेम की और जगतप्रेम की आग है। ये वे ई हैं जो कृत्रिम बुद्धि और ज्ञान में रहते हैं और उन का बयान प्रभु ने मत्ती की इञ्जील के इस वचन में किया है कि "वे देखते हुए नहीं देखते और सुनते हुए नहीं सुनते और नहीं समझते हैं"। (पर्व १३ वचन १३ · १४ · १५)। और दूसरे

न० ६२६१ · ६३१६ · ६८४४ · ६८४५ · ६९४८ · ६९४९। जो पण्डित लोग कलीसिया की सचाइयों के विरुद्ध अपने तई दृढ़ रूप से स्थापन करते हैं वे विषयी मनुष्य हैं। न० ६३१६। विषयी मनुष्यों के बयान के बारे में। १०२३६।

१२ वैषयिक मनुष्य तीक्ष्णता से और चतुराई से इस वास्ते तर्क करते हैं कि उन की समझ में सब बुद्धि शारीरिक स्मरण से बोलना है। न० १९५ · १९६ · ५७०० · १०२३६। परंतु वे इन्द्रियों की झुठाइयों के द्वारा तर्क करते हैं। न० ५०८४ · ६९४८ · ६९४९ · ७६९३। और वे औरों से अधिक धूर्त और छली हैं। न० ७६९३ · १०२३६। प्राचीन लोगों ने ऐसे मनुष्यों का नाम विद्या के वृक्ष के सांप रखा। न० १९५ · १९६ · १९७ · ६३९८ · ६९४९ · १०३१३।

वचन में यह है कि "तू ने इन बातों को ज्ञानियों और बुद्धिमानों से छिपाया और बच्चों पर खोल दिया"। (पर्व ११ वचन २५ • २६)।

३५४। मुझ को उन पण्डितों से जो जगत से कूच कर गये थे बात चीत करने की आज्ञा हुई और उन में वे सब से प्रसिद्ध लोग समाविष्ट हैं जो सारे साहित्यसंबन्धी जगत में अपने ग्रन्थों के द्वारा प्रतिष्ठ थे और मैं ने अन्य लोगों से बात चीत की जो इतने कीर्त्तिमान न थे परंतु तो भी जिन के गुप्त ज्ञान था। पहिले लोग जो अपने मन में ईश्वरीय सत्ता को अस्वीकार करते थे चाहे जितना वे अपने मुंह से उस को अङ्गीकार करते थे इतने बावले हो गये थे कि वे किसी जगतसंबन्धी सचाई को कष्ट से समझते थे किसी आत्मिक सचाई के समझने का तो क्या सूचना है। मैं ने मालूम किया और देखा भी कि उन के मनों के भीतरी भाग यहां तक बन्द हो गये थे कि वे काले रंग के दिखाई दिये-(आत्मीय जगत में ऐसी वस्तुएं दृष्टिगोचर देख पड़ती हैं)-और इस से वे कुछ स्वर्गीय ज्योति का तेज नहीं सह सकते। इस लिये वे स्वर्ग की ओर से कुछ अन्तःप्रवाह को अपने अन्दर जगह नहीं दे सकते। जिन्हों ने अपनी विद्या के द्वारा अपने को ईश्वरत्व के विरुद्ध स्थिर किया उन के भीतरी भागों का अन्धेरा अधिक विशाल और अधिक विस्तीर्ण दिखाई दिया। परलोक में ऐसे लोग प्रत्येक झूठ तत्त्व आनन्द के साथ ग्रहण करते हैं और जैसा कि इस्पञ्ज पानी को सूख लेता है वैसा ही वे इन झूठों को पी लेते हैं। परंतु वे हर एक सत्य को दूर करते हैं जैसा कि हड्डी की लचीली वस्तु उस पदार्थ को दूर करती है जो उस पर गिर पड़ती है। मुझ को यह भी बतलाया गया कि उन लोगों के भीतरी भाग जो ईश्वरत्व के विरुद्ध होकर प्रकृति का गुण मानते हैं हड्डी हो जाते हैं उन के सिर भी ऐसे कठोर देख पड़ते हैं कि मानों वे आबनूस के बने हुए थे। और यह आकृति नाक तक भी पहुंचती है और यह चिह्न इस हाल का प्रमाण है कि उन को विशयग्रहणशक्ति नहीं है। इस प्रकार के आत्मागण ऐसे भंवरों में डूब गये हैं जो दलदल के रूप पर दिखाई देते हैं जहां उन भावनाओं से जिन के रूप उन की झूठाइयें धारण करती रहती हैं वे भय खाते हैं। वह नरकीय आग कि जो उन को यातना देती है यश और नाम की वह लालच है जिस से वे एक दूसरे के विपरीत कड़ाई से बोलने में उकसाए जाते हैं और जिस करके वे नरकीय उत्साह से उन लोगों को सताते हैं जो उन को देवता कर नहीं मानते। वे बारी बारी एक दूसरे को यातना देते हैं। जब जगत की पाण्डित्य ने ईश्वरत्व के स्वीकार करने के द्वारा स्वर्ग से ज्योति नहीं पाई है तब वह पाण्डित्य उस प्रकार के विकार को प्राप्त होता है।

३५५। इस प्रकार के पण्डित लोग जब वे मरने के पीछे आत्मीय जगत को जाते हैं तब उन का वैसा ही गुण है। और यह बात इस से भी मालूम की जा सकती है कि सब बोध जो प्राकृतिक स्मरण में रहते हैं और जो शरीर के वैषयिक तत्त्वों से गाढ़ेपन के साथ संयुक्त हुए हैं (जैसा कि वे विद्यागण संयुक्त

हैं जिस की सूचना हम ऊपर कर चुके हैं) उस काल निश्चल और स्थिर रहते हैं और यथायुक्त सिद्धान्त जो उन बोधों से पैदा होते हैं ध्यान और बोलने का अकेला मूल हो जाते हैं। मनुष्य तो कूच करने के समय अपने साथ अपने सारे प्राकृतिक स्मरण को ले जाता है परंतु वे बातें जो कि उस स्मरण में रहती हैं उस मनुष्य के दृष्टिगोचर में नहीं हैं और उस के ध्यान में नहीं पड़तीं जैसा कि वे उस के ध्यान में पड़ती थीं जब कि वह मनुष्य जगत में था। इस कारण वह उस स्मरण से किसी बात को निकालकर उस की परीक्षा आत्मीय ज्योति में नहीं कर सकता। क्योंकि वह उस ज्योति से कुछ संबन्ध नहीं रखता। परंतु वे सचेतन और बुद्धिमान तत्त्व जो मनुष्य शरीर में रहते विद्यागण से पाता है आत्मीय जगत की ज्योति के अनुरूप हैं। और इस से जितना मनुष्य का आत्मा जगत में ज्ञान और विद्या के द्वारा सचेतन होता जाता हैं उतना ही वह पञ्चत्व प्राप्त होकर सचेतन रहता है। क्योंकि उस काल मनुष्य आत्मा का रूप धारण करता है और आत्मा ही वही शक्ति है जो शरीर में भी ध्यान करता है[३३]।

३५६। इस के विपरीत जिन्हों ने ज्ञान और विद्या के द्वारा बुद्धि और ज्ञान पाया है (जैसा कि उन का हाल है जो सब वस्तुओं को जीवन के काम में लाते हैं और उसी तरह एक ईश्वरीय सत्ता को अङ्गीकार करते हैं और धर्म्मपुस्तक को प्यार करते हैं और आत्मीय धार्मिक चाल पर चलते हैं और जिन की सूचना हम न० ३१९ वें परिच्छेद में कर चुके हैं) उन को विद्यागण ज्ञानी हो जाने के उपाय होते हैं और श्रद्धा के सिद्धान्तों का प्रमाण भी कर देते हैं। मैं ने उन के मनों को मालूम किया और देखा भी जो कि सफेद चमकीली आसमानी रंग की ज्योति से पारदर्शक दिखाई देते थे जैसा कि उन हीरे या माणिक्य या नीलकान्त की ज्योति जो पारदर्शक हैं देख पड़ती है। और वह रंग एक ईश्वरीय सत्ता के होने के प्रमाण करने के अनुसार और उन ईश्वरीय सचाइयों के अनुसार जिन को उन्हों ने विद्यागण से निकाला था नाना प्रकार का था। जब सच्ची बुद्धि और सच्चा ज्ञान आत्मीय जगत में दृश्य रूप को धारण करता है तब उस का वैसा ही रूप है। यह प्रयुक्ति स्वर्ग की ज्योति से अर्थात प्रभु की ओर की ईश्वरीय ज्योति से जो कि सब बुद्धि और ज्ञान का मूल है (न० १२६ से १३३ तक देखो) पैदा होती है। उस ज्योति के पटपर जिन में रंग की सी विचित्रता है मन के भीतरी भाग हैं और ईश्वरीय सचाई के प्राकृतिक वस्तुओं के किये हुए प्रमाण जो विद्यागण के प्रसंग हैं उस विचित्रता का कारण है[३४]। क्योंकि मनुष्य का भीतरी

---

३३ विद्यागण उस प्राकृतिक स्मरण के हैं जो मनुष्य के शरीर में है। न० ५२१२ • ९९२२। वह सब स्मरण मनुष्य के पास मृत्यु के पीछे रहता है। न० २४७५। इस का प्रमाण परीक्षा करने से। न० २४८१ से २४८६ तक। परंतु वह कई एक हेतुओं से उस से कुछ नहीं निकाल सकता जैसा कि वह जगत में निकाल सकता था। न० २४७६ • २७७७ • २७४९।

३४ स्वर्ग में निपट सुन्दर रंग दिखाई देते हैं। न० १०५३ • १६२४। वे स्वर्ग की ज्योति से निकलते हैं और उस के रूपान्तरकरण और विभिन्नता हैं। न० १०४२ • १०४३ • १०५३ • १६२४ •

मन प्राकृतिक स्मरण के संग्रह में देखता है और प्रमाण करनेवाली बातों को पकड़कर उन को ऐसा शुद्ध करता है कि मानों वह कीमियाई आग से चुलाता है

१९९३ • ४५३० • ४९२२। इस हेतु से भलाई से निकले हुए सचाईरूपी दिखाव हैं और उस से तात्पर्य ऐसी वस्तुएं हैं जो बुद्धि और ज्ञान से संबन्ध रखती हैं। न० ४५३० • ४९२२ • ४९७७ • ६४६६।

विद्यागण के विषय आर्काना सीलेस्टिया नामी पोथी से निकाला हुआ संग्रह।

मनुष्य को चाहिये कि वह विद्या और ज्ञान चूस ले इस वास्ते कि वह उन के द्वारा ध्यान करने की रीति सीखता है और सच्ची और भली बातों को समझता है और अन्त में ज्ञानी हो जाता है। न० १२६ • १४५० • १४५१ • १४५३ • १५४८ • १८०२। विद्या वही नेव है कि जिस पर मनुष्य का नीतिसंबन्धी और धार्मिक और आत्मिक जीव बना है और स्थापित है और वह प्रयोजन ही के निमित्त ग्रहण की जाती है। न० १४८९ • ३३१०। ज्ञान भीतरी मनुष्य के लिये एक रस्ता खोलता है और पीछे वही मनुष्य बाहरी वस्तुओं से प्रयोजनों के अनुसार संयुक्त करता है। न० १५६३ • १६१६। विद्या और ज्ञान के द्वारा सचेतन [मन] पैदा होता है। न० १८९५ • १९०० • ३०८६। न कि ज्ञान ही के द्वारा परंतु प्रयोजनों के उस अनुराग के द्वारा जो ज्ञान से पैदा होता है। न० १८९५।

कोई कोई विद्यागण ईश्वरीय सचाइयों को स्वीकार करते हैं कोई उन को नहीं स्वीकार करते। न० ५२१३। शून्य विद्यागण का विनाश करना चाहिये। न० १४८९ • १४९२ • १४९९ • १५८०। वे विद्यागण शून्य हैं जिन का अभिप्राय आत्मप्रेम और जगतप्रेम है और जो उन प्रेमों को दृढ़ता के साथ स्थापित करते हैं और जो परमेश्वर और पड़ोसी की ओर प्रेम रखने से मन को उठा लेते हैं। क्योंकि ऐसे विद्यागण भीतरी मनुष्य को ऐसी रीति से बन्द करते हैं कि पीछे वह मनुष्य स्वर्ग से कुछ भी नहीं ग्रहण कर सकता। न० १५६३ • १६००। विद्यागण ज्ञानी हो जाने के उपाय हैं और बौड़हा हो जाने के उपाय भी हैं। क्योंकि उन करके भीतरी मनुष्य या तो खुला हुआ या बन्द हुआ होता जाता है और इस कारण से सचेतन [मन] या तो सुधरा हुआ या नष्ट हुआ होता जाता है। न० ४१५६ • ८६२८ • ६९२२।

यदि मनुष्य का अभिप्राय भला प्रयोजन है विशेष करके यदि वह प्रयोजन अनन्त जीव से संबन्ध रखता है तो भीतरी मनुष्य विद्यागण के द्वारा खोला जाता है और क्रम क्रम से व्युत्पन्न किया जाता है। न० ३०८६। क्योंकि ऐसी अवस्था में उन विद्यागण को जो प्राकृतिक मनुष्य में हैं आत्मीय और स्वर्गीय वस्तुएं आत्मिक मनुष्य की ओर से मिलती जाती हैं। और उन विद्याओं में से जितनी विद्याएं यथायोग्य हैं उतनी ही वे वस्तुएं ग्रहण कर लेती हैं। न० १४९५। और इस रीति से स्वर्ग के प्रयोजन उन विद्यागण के द्वारा जो प्राकृतिक मनुष्य में हैं प्रभु की ओर के भीतरी मनुष्य से निकाले जाते हैं और पवित्र किये जाते हैं और उन्नत भी किये जाते हैं। न० १८९५ • १८९६ • १९०० • १९०१ • १९०२ • ५८७४ • ५९०१। और उसी समय अयोग्य और विरोधी विद्यागण अलग किये जाते हैं और नष्ट किये जाते हैं। न० ५८७१ • ५८८६ • ५८८९।

भीतरी मनुष्य की दृष्टि बाहरी मनुष्य के विद्यागण से अपने प्रेमसंयुक्त वस्तुओं को छोड़ कुछ भी नहीं निकालती है अर्थात देखती है। न० ९३९४। क्योंकि भीतरी मनुष्य के दृष्टिगोचर में प्रेमसंयुक्त वस्तुएं मध्य में और चमकाहट में हैं और जो वस्तुएं प्रेम की नहीं हैं वे किनारे पर और अन्धकार में रहती हैं। न० ६०६८ • ६०८५। योग्य विद्यागण क्रम क्रम से मनुष्य के प्रेम में गाड़े जाते हैं मानों कि वे उस में बसते हैं। न० ६३२५। यदि मनुष्य अपने पड़ोसी की ओर के प्रेम में पैदा होवे तो वह बुद्धि में भी पैदा होगा। परंतु जब कि वह आत्मप्रेम में और जगत-प्रेम में पैदा होता है तो वह घोर अज्ञानता में पैदा होता है। न० ६३२३ • ६३२५। विद्या और बुद्धि और ज्ञान परमेश्वर की ओर के तथा पड़ोसी की ओर के प्रेम की सन्तान हैं। न० १२२६ • २०४९ • २११६।

एक बात तो ज्ञानी होना है एक समझना है एक जानना है और एक करना है तो भी उन लोगों में जो आत्मीय जीवन में रहते हैं वे बातें क्रम करके एक दूसरे के पीछे लगी चली आती हैं और सब मिलके काम करती हैं। न० १०३३१। एक बात तो भी जानना है एक स्वीकार करना है और एक श्रद्धा लाना है। न० ८९६।

और उन को निकालकर पवित्र करता है यहां तक कि वे बातें आत्मीय बोध बन जाती हैं। परंतु यह व्यवहार मनुष्य को शरीर में रहते अज्ञात है। क्योंकि यद्यपि

बाहरी अर्थात प्राकृतिक मनुष्य के विद्यागण जगत की ज्योति में हैं। परंतु वे सचाइयें जिन की श्रद्धा और प्रेम की सचाइयें हो गई हैं और इस से सजीव हो गई हैं स्वर्ग की ज्योति में हैं। न० ५२१२। वे सचाइयें जिन्हों ने आत्मिक जीव को पाया है प्राकृतिक बोधों से समझी जाती हैं। न० ५५१०। आत्मीय अन्तःप्रवाह भीतरी या आत्मिक मनुष्य की ओर से बहकर उन विद्यागण में आता है जो बाहरी या प्राकृतिक मनुष्य में हैं। न० १९४० · ८००५। क्योंकि विद्यागण उस सचाई और भलाई के आश्रय अर्थात पात्र हैं जो भीतरी मनुष्य के पास हैं। न० १४६९ · १४९६ · ३०६८ · ५४८९ · ६००४ · ६०२३ · ६०५२ · ६०७१ · ६०७७ · ७७७० · ९९२२। वे तो यों कहो ऐसे दर्पण भी हैं जिन में भीतरी मनुष्य की सचाई और भलाई प्रतिबिम्ब के समान दिखाई देती है। न० ५२०१। क्योंकि वे सब मिलके वहां देख पड़ती हैं जैसा कि वे अपने अन्तिम में होवें। न० ५३७३ · ५८७४ · ५८८६ · ५९०१ · ६००४ · ६०२३ · ६०५२ · ६०७१।

अन्तःप्रवाह आत्मिक है न कि साकारपदार्थसंबन्धी। अर्थात भीतरी मनुष्य की ओर से बाहरी मनुष्य में अन्तःप्रवाह बहकर आता है। परंतु बाहरी मनुष्य से भीतरी मनुष्य को कुछ भी अन्तःप्रवाह नहीं बहता। और इस से बाहरी मनुष्य के विद्यागण की ओर से श्रद्धा की सचाइयों में कुछ अन्तःप्रवाह नहीं बहता। न० ३२१९ · ५११९ · ५२५९ · ५४२७ · ५४२८ · ५४७८ · ६३२२ · ९११० · ९१११। कलीसिया के धर्म के उन सत्यों से जो धर्मपुस्तक से निकलते हैं एक सिद्धान्त निकाला जा सकता है। पहिले उन सत्यों का स्वीकार करना चाहिये पीछे विद्यागण से सहायता लेना चाहिये। न० ६०४७। इस कारण उचित है कि वे लोग जो श्रद्धा के सत्यों के विषय अस्तिपक्षी तत्त्व में हैं उन सत्यों का प्रमाण विद्यागण के द्वारा बुद्धिमान रीति से करें परंतु उन लोगों को जो अस्वीकार तत्त्व में हैं वैसे तौर पर प्रमाण करना अनुचित है। न० २५४८ · २५८८ · ४७६० · ६०४७। क्योंकि मनुष्य जो बिना विद्यागण के प्रबोध करने के ईश्वरीय सत्यों पर श्रद्धा नहीं लाता कभी नहीं श्रद्धा लाता। न० २०९४ · २८३२। क्योंकि विद्यागण के पथ से श्रद्धा के सत्यों में पैठना परिपाटी के विरुद्ध है। न० १०२३६। वे लोग जो उस रीति से परिपाटी के विरुद्ध चलते हैं स्वर्ग और कलीसिया की बातों के विषय बुद्धिभ्रष्ट हो जाते हैं। न० १२८ · १२९ · १४०। और बुराई के झूठों में पड़ते हैं। न० २३२ · २३३ · ६०४७। और परलोक में जब वे लोग आत्मिक प्रसङ्गों पर ध्यान करते हैं तो वे मतवालों सरीखे हो जाते हैं। न० १०७२। अन्य बातें उन के गुण के बारे में। न० १९६। कई एक उदाहरण दिये हुए हैं इस बात के प्रकाश करने के लिये कि यदि कोई मनुष्य आत्मिक वस्तुओं में विद्यागण के पथ से पैठने की चेष्टा करे तो वह उन वस्तुओं को नहीं समझ सकेगा। २३३ · २०९४ · २१९६ · २२०३ · २२०९। बहुत से पण्डित लोग आत्मिक वस्तुओं के विषय भोले लोगों से अधिक बावले हैं क्योंकि वे किसी अस्वीकार तत्त्व में रहते हैं और वे उस तत्त्व का प्रमाण उन विद्यागण से जो इन के दृष्टिगोचर में नित्य बहुतायत से रहते हैं करते हैं। न० ४७६० · ८६२९।

वे जो विद्यागण के द्वारा श्रद्धा के सत्यों के विरुद्ध तर्क करते हैं तीक्ष्णता के साथ तर्क करते हैं इस कारण कि वे इन्द्रियों के झूठों से जो मनोहर और प्रवर्तक हैं तर्कवितर्क करते हैं। क्योंकि वे झूठ कष्ट से तितर बितर किये जा सकते हैं। न० ५७००। इन्द्रियों के झूठ कौन से और किस गुण के हैं। न० ५०८४ · ५०९४ · ६४०० · ६९४८। वे जो सचाई को कुछ भी नहीं समझते और जो बुराई में रहते हैं श्रद्धा की सचाई और भलाई के बारे में तर्कवितर्क कर सकते हैं तौ भी वे उन बातों को नहीं समझ सकते। न० ४२१४। क्योंकि केवल किसी सिद्धान्त का प्रमाण करना मात्र किसी बुद्धिमान लोग का कर्तव्य नहीं है परंतु प्रमाण करने के आगे उन को चाहिये कि वे इस प्रश्न का उत्तर दें कि क्या यह सिद्धान्त सत्य है कि नहीं। न० ४७४१ · ६०४७।

विद्यागण मृत्यु के पीछे कुछ भी उपकारक नहीं हैं। परंतु जो कुछ किसी मनुष्य ने विद्यागण के द्वारा अपनी ज्ञानशक्ति में और जीव में चूस लिया सो उपकारक है। न० २४८०। तौ भी सब विद्यागण निश्चल अवस्था में मृत्यु के पीछे बने रहते हैं। न० २४७६ से २४७९ तक · २४८१ से २४८६ तक।

उस काल वह आत्मिक रीति से और प्राकृतिक रीति से ध्यान करता है तो भी वह केवल उन बोधों को मानता है जिन का ध्यान वह प्राकृतिक रीति से करता है और उस को मालूम नहीं करता जिस का ध्यान वह आत्मिक रीति से करता है। जब वह आत्मीय जगत में आता है तब उस की अवस्था बदल जाती है। क्योंकि उस काल जिस का ध्यान वह जगत में प्राकृतिक रीति से करता है उस का कुछ बोध उस को नहीं है। उस को केवल उस का बोध है जिस का ध्यान वह आत्मिक रीति से करता था। इन बातों से स्पष्ट है कि मनुष्य ज्ञान और विद्या के द्वारा आत्मिक हो जाता है। और वे ज्ञानी हो जाने के उपाय हैं। परंतु वे केवल उन लोगों के लिये उपाय होते हैं जो ईश्वरत्व को श्रद्धा लाने में और चाल चलन में स्वीकार करते हैं। ये लोग औरों से बढ़कर स्वर्ग में अङ्गीकार किये जाते हैं और उन के साथ जो स्वर्ग के मध्य में रहते हैं (न० ४३) खड़े रहते हैं। क्योंकि औरों की अपेक्षा वे अधिक ज्योति में हैं। ये वे ई हैं जो स्वर्ग में "बुद्धिमान" और "ज्ञानी" होते हैं और जो "आकाश की झलक के समान चमकते

बुरे लोगों में कोई विद्यागण झूठ हैं क्योंकि वे बुराइयों पर लगे रहते हैं। और भले लोगों में वे ई विद्यागण सच्च हैं क्योंकि वे भलाइयों पर लगे रहते हैं। न० ६९१७। विद्याविषयक सत्य बुरे लोगों में सत्य नहीं हैं चाहे जितना कहने के समय वे सत्यों के समान दिखाई देवें क्योंकि उन सत्यों में बुराई रहती है। न० १०३३१।

जानने की इच्छा का जो आत्माओं के पास है क्या गुण है। एक उदाहरण इस के बारे में। न० १९७३। दूतगण में जानने की और ज्ञानी हो जाने की बड़ी बड़ी इच्छा है क्योंकि विद्या और बुद्धि और ज्ञान आत्मिक आहार हैं। न० ३११४ • ४४५९ • ४७९२ • ४९७६ • ५१४७ • ५२९३ • ५३४० • ५३४२ • ५४१० • ५४२६ • ५५७६ • ५५८८ • ५६५५ • ६२७७ • ८५६२ • ९००३। प्राचीन लोगों की विद्या प्रतिरूपों और प्रतिनिधियों की विद्या थी जिस करके उन्हों ने अपने तईं आत्मीय वस्तुओं के ज्ञान में प्रवेश किया। परंतु इन दिनों में वह विद्या संपूर्ण रूप से मिट गया। न० ४८४४ • ४७४९ • ४९६४ • ४९६५।

यदि ये सर्वव्यापक बातें जानी नहीं जावें तो आत्मिक सत्य समझे नहीं जावेंगे। अर्थात (१) सर्वजगत की सब वस्तुएं भलाई से और सचाई से संबन्ध रखती हैं और इन दो गुणों के संयोग से भी संबन्ध रखती हैं। इस वास्ते कि वे कुछ न कुछ हो सकें। जैसा कि प्रेम से और श्रद्धा से और इन के संयोग से वे संबन्ध रखती हैं। (२) मनुष्य के ज्ञानशक्ति और मनभावन हैं। और ज्ञानशक्ति सचाई का पात्र है और मनभावन भलाई का पात्र। और सब वस्तुएं मनुष्य में इन दो तत्त्वों से और इन के संयोग से संबन्ध रखती हैं। क्योंकि सब वस्तुएं सचाई और भलाई से और उन के संयोग से संबन्ध रखती हैं। (३) भीतरी मनुष्य और बाहरी मनुष्य दोनों होते हैं और वे एक दूसरे से ऐसे विभिन्न हैं जैसा कि स्वर्ग और पृथिवी विभिन्न हैं। तो भी इस हेतु कि मनुष्य यथार्थ रीति से मनुष्य हो यह अवश्य है कि वे दो एक ही हो जावें। (४) भीतरी मनुष्य स्वर्ग की ज्योति में है और बाहरी मनुष्य जगत की ज्योति में। और स्वर्ग की ज्योति ईश्वरीय सचाई आप है जो कि सब बुद्धि का मूल है। (५) वस्तुएं जो भीतरी मनुष्य में हैं उन वस्तुओं से प्रतिरूपता रखती हैं जो बाहरी मनुष्य में हैं। और इस से वे सब अवस्थाओं में अन्य रूप पर दिखाई देती हैं यहां तक कि प्रतिरूपता की विद्या की सहायता के विना वे दृष्टि में नहीं आतीं। यदि ये बातें और बहुत सी अन्य बातें भी जानी नहीं जावें तो अयोग्य बोधों को छोड़ आत्मीय और स्वर्गीय सत्यों के विषय कोई बोध मन में नहीं उठ सकता। और इस कारण मनुष्य की विद्या और ज्ञान इन सर्वव्यापक बातों के विना समझने के और उन्नत हो जाने के लिये सचेतन मनुष्य के लिये कम काम के हैं। इस से स्पष्ट है कि विद्यागण आवश्यकता की बातें हैं।

हैं" और "तारों के सदृश" झलकते हैं। परंतु वहां वे भोले हैं जो जब उन के मन के भीतरी भाग ज्ञान और विद्या के द्वारा जोते भी नहीं गये उस समय भी वे ईश्वरीय तत्त्व को स्वीकार करते थे और धर्मपुस्तक को प्यार करते थे और आत्मीय धार्मिक चाल पर चलते थे। क्योंकि मानुषक मन भूमि के समान है जो कि जोतने के अनुसार सुगुण पाता है।

स्वर्ग में के धनी और दरिद्री लोगों के बारे में।

३५७। स्वर्ग में अङ्गीकार करने के विषय बहुत से मत प्रचलित हैं। कोई लोग जानते हैं कि वहां दरिद्री लोग अङ्गीकार किये जाते हैं न कि धनी लोग। कोई जानते हैं कि धनी और दरिद्री लोग दोनों एकसां अङ्गीकार किये जाते हैं। और कोई जानते हैं कि यदि धनी लोग अपने धन को छोड़कर दरिद्री नहीं हो जाते तो वे वहां अङ्गीकार नहीं किये जावेंगे। और हर कोई धर्मपुस्तक से अपने मत का प्रमाण करता है। परंतु वे जो धनी और दरिद्री के बीच स्वर्ग में पैठने के विषय भिन्नता पैदा करते हैं धर्मपुस्तक को नहीं समझते। धर्मपुस्तक अपनी छातों में आत्मिक है परंतु अक्षरों में प्राकृकित है। इस लिये वे जो धर्मपुस्तक को केवल उस के अक्षरसंबन्धी तात्पर्य के अनुसार समझते हैं न कि उस के आत्मिक तात्पर्य के अनुसार बहुत सी बातों के बारे में भूल चूक करते हैं विशेष करके धनी और दरिद्री के विषय। क्योंकि वे यह जानते हैं कि जितनी कठिनता से कोई ऊंट सूई के छिद्र से पार जा सके उतनी ही कठिनता से कोई धनी स्वर्ग में प्रवेश कर सके। और वहां में पैठना दरिद्री को सुसाध्य है केवल इस कारण से कि वे दरिद्री हैं जब कि यह बात लिखी हुई है कि "धन्य है दरिद्री लोग क्योंकि स्वर्ग का राज उन का है"। (लूका पर्व ६ वचन २०·२१)। परंतु उन का जो धर्मपुस्तक के आत्मिक तात्पर्य का कुछ भी जानते हैं और ही मत है। वे जानते हैं कि स्वर्ग उन लोगों के लिये है जो श्रद्धा और प्रेम की चाल पर चलते हैं चाहे वे धनी हों चाहे दरिद्री। परंतु धर्मपुस्तक में जिन से तात्पर्य "धनी" और "दरिद्री" है उन का बयान आगे होगा। दूतगण के साथ बहुत बात चीत करने से और चिर काल तक उन के साथ रहने से मुझे यह ज्ञान निश्चिंत रीति से हुआ कि जितने अनायास से दरिद्री लोग स्वर्ग में पैठते हैं उतने ही अनायास से धनी लोग भी वहां में प्रवेश करते हैं। और कोई मनुष्य धनी होने के कारण स्वर्ग से बाहर नहीं किया जाता और कोई दरिद्री होने के कारण स्वर्ग में पैठने नहीं पाता। धनी और दरिद्री दोनों स्वर्ग में प्रवेश किया करते हैं और बहुतेरे धनी लोग दरिद्री लोगों की अपेक्षा अधिक तेज और सुख भोगते हैं।

३५८। पहिले पहिल इस बात का कहना उचित है कि मनुष्य को जितना बन पड़े उतना ही सम्पत्ति पाना और धन का उपार्जन करना यथायोग्य है इस होड़ पर कि वह कुछ छल और कपट काम में न लावे। वह सुस्वादु खट

रस भोजन को खावे और सुमिष्ठ पेय को पीवे इस होड़ पर कि वह अपने मन की चेष्टा केवल उन्हीं पर न लगावे। वह अपने पदवी के अनुकूल सुशोभित भवन में रह सके और अन्य लोगों के तौर पर औरों से बात चीत कर सके और वह लीलाओं और दिखावों को जाकर खेल कर सके और जगत के प्रसङ्गों के बारे में बात चीत कर सके। उस को न चाहिये कि वह वैरागी का रूप बनकर उदास और शोक-युक्त होकर अपने सिर को नीचे झुकावे। इस से विपरीत उस को आनन्द और हर्ष होवे और यदि उस के मन का अनुराग दान देने को न उकसावे तो न उस को आवश्यकता की बात है कि वह दरिद्री लोगों को कुछ देवे। संक्षेप में कोई मनुष्य बाहरी रूप से जगतसंबन्धी मनुष्य के तौर पर समय व्यतीत कर सके परंतु ऐसी चाल पर चलना स्वर्ग के पैठ जाने में उस के साम्हने कुछ भी विघ्न न डालेगा। इस होड़ पर कि वह यथायोग्य रीति से परमेश्वर के विषय भीतरी तौर पर ध्यान करे। और उस के पड़ोसी के साथ सत्यशीलता से और न्यायता से पेश आवें। क्योंकि मनुष्य का गुण ऐसा है जैसा उस के अनुराग और ध्यान का अर्थात उस के प्रेम और श्रद्धा का गुण है। सब बाहरी क्रियाएं अपनी जीवन-शक्ति को अनुराग और ध्यान से निकालती हैं। क्योंकि काम करने से तात्पर्य इच्छा करना है और बोलने से तात्पर्य ध्यान करना है। इस कारण कि हर कोई इच्छा करने से काम करता है और ध्यान करने से बोलता है। पस इस लिये यह जो धर्मपुस्तक में लिखा है कि मनुष्य अपने काम करने के अनुकूल न्याय पावेगा और अपनी क्रियाओं का बदला पावेगा तो उस का तात्पर्य यह है कि वह अपने उन ध्यानों और अनुरागों के अनुसार जो उस की क्रियाओं को पैदा करते हैं और जो उस की क्रियाओं में विद्यमान हैं निर्णय किया जावेगा और उन का प्रतिफल पावेगा। क्योंकि ध्यान और अनुराग के विना क्रियाएं तुच्छ बातें हैं और क्रियाएं अपने गुण को केवल ध्यान और अनुराग ही से निकालती हैं[३५]। इस से स्पष्ट है कि मनुष्य का वहिर्भूत न

३५ धर्मपुस्तक में बार बार यह लिखा है कि मनुष्य "अपनी क्रियाओं के अनुसार" और "अपने काम के अनुसार" विचार किया जावेगा और प्रतिफल पावेगा। न० ३९३४। परंतु ऐसे वचनों में क्रियाओं से और कामों से तात्पर्य क्रियाएं और काम उन के भीतरी रूप पर है न कि उन के बाहरी रूप पर। क्योंकि अच्छे काम अपने बाहरी रूप पर बुरे लोगों से भी किये जाते हैं परंतु केवल भले लोगों से अपने बाहरी रूप पर और उसी तरह अपने भीतरी रूप पर किये जाते हैं। न० ३९३४ • ६०७३। काम अन्य सब क्रियाओं के समान अपनी सत्ता और प्रकाशन को और अपने गुण को मनुष्य के भीतरी भागों से जो उस के ध्यान और मनभावन के हैं निकालते हैं। क्योंकि इस कारण कि वे वहां से निकलते हैं इस लिये जैसे भीतरी भाग हैं वैसे ही काम भी हैं। न० ३९३४ • ८९११ • १०३३१। इस लिये प्रेम और श्रद्धा के विषय वे भीतरी भागों के अनुसार हैं। न० ३९३४ • ६०७३ • १०३३१ • १०३३३। क्योंकि कामों में वे तत्त्व समाते हैं और वे वही प्रेम और श्रद्धा हैं जो काम करने की अवस्था में है। न० १०३३१। इस लिये क्रियाओं और कामों के अनुसार विचार किया जाने से और प्रतिफल पाने से तात्पर्य प्रेम और श्रद्धा के अनुसार विचार किया जाना और प्रतिफल पाना है। न० ३१४७ • ३९३४ • ६०७३ • ८९११ • १०३३१ • १०३३३। क्रियाएं जहां तक कि वे आत्म और जगत से संबन्ध रखती हैं वहां तक वे अच्छी नहीं हैं परंतु केवल जहां तक कि वें प्रभु और पड़ोसी से संबन्ध रखती हैं। न० ३१४७।

कुछ बात है। परंतु उस का अन्तर्भूत कि जिस से बहिर्भूत निकलता है वही वस्तु है जो निर्णय किया जाता है। यह बात इस रीति से प्रकाशित हो सकता है। यदि कोई मनुष्य सत्यशीलता से काम करता है और दूसरे को धोखा नहीं देता केवल इस कारण से कि वह या तो विधानों से डरता है या अपनी सुख्याति के सत्य-नास से भय करता है और इस से या तो यश या लाभ की घटी का अनुभव करता है तो वह जितना बन पड़े दूसरे को धोखा देकर ले लेगा यदि वह इस भय से रोक नहीं जावे। और इस से उस के ध्यान और मनभावन में छल रहता है यद्यपि बाहर से उस की क्रियाएं सत्यशीलता से की जाती हैं। ऐसे मनुष्य के अन्दर नरक है क्योंकि वह भीतरी भाग में असत्यशील है और कपटी है। परंतु जो लोग काम करने में सत्यशील है और दूसरे को धोखा नहीं देता क्योंकि धोखा देना परमेश्वर के विरुद्ध और पड़ोसी के विरुद्ध पाप करना है वह किसी को धोखा न देवे यद्यपि वह निःशङ्क धोखा भी दे सके। क्योंकि उस का ध्यान और मनभावन अन्तःकरण से उकसाया जाता है। इस लिये इस मनुष्य के अन्दर स्वर्ग है। दोनों मनुष्यों की क्रियाएं बाहर से एकसां हैं परंतु भीतर से वे संपूर्ण रूप से असदृश हैं।

३५९। जब कि कोई मनुष्य अन्य लोगों की चाल पर चले और धनी हो जावे और सुस्वादु आहार खावे और सुन्दर सुशोभित घर में रहे और उस की पदवी और व्यापार के अनुसार सुन्दर कपड़ा पहिने और सुख आनन्द भोगे और बणिज व्योपार करने के लिये और मन और बदन बहलाने के लिये जगतसंबन्धी काम काज में प्रवृत्त होवे इस होड़ पर कि वह भीतर से ईश्वरीय सत्ता को स्वीकार करता है और अपने पड़ोसी के कल्याण का बढ़ाव चाहता है तो स्पष्ट है कि स्वर्ग में प्रवेश करना ऐसी कठिन बात नहीं है जैसा कोई लोग जानते हैं। इस में केवल एक कठिनता है अर्थात आत्मप्रेम और जगतप्रेम के हटा देने की सामर्थ्य का और उन प्रेमों के प्रबल होने के रोकने की सामर्थ का अभाव होना। क्योंकि वे अवस्थाएं सब बुराइयों का मूल हैं[३६]। स्वर्ग में प्रवेश करना ऐसी कठिन बात नहीं है जैसा कि लोग प्रायः जानते हैं। यह बात प्रभु के इस वचन से स्पष्ट है कि "मुझ से सीखो क्योंकि मैं विनयी और दर्पहीन हूं तो तुम अपने जीओं में सुख पाओगे। क्योंकि मेरा जूआ अनुकूल और मेरा बोझ हलका है"। (मत्ती पर्व ११ वचन २९ · ३०)। प्रभु का जूआ अनुकूल है और उस का बोझ हलका है क्योंकि जितना कोई मनुष्य उन बुराइयों से विरोध करता है जो आत्मप्रेम और जगतप्रेम से निकलती हैं उतना ही वह प्रभु से पथ-

३६ सब बुराइयें आत्मप्रेम और जगतप्रेम से निकलती हैं। न० १३०७ · १३०८ · १३२१ · १५९४ · १६९१ · ३४१३ · ७२५५ · ७३७६ · ७४८० · ७४८८ · ८३१८ · ९३३५ · ९३४८ · १००३८ · १०७४२। जैसा कि औरों का अवमान वैर द्वेष बदला लेना निर्दयता छल। न० ६६६७ · ७३७२ · ७३७३ · ७३७४ · ९३४८ · १००३८ · १०७४२। क्योंकि मनुष्य इन प्रेमों में पैदा होता है और इस से उस की बपौठी संबन्धी बुराइयें उन में रहती हैं। न० ६९४ · ४३१७ · ५६६० ।

दर्शन पाता है और न आप पथ देखाता है। और क्योंकि प्रभु पीछे मनुष्य में उन बुराइयों का विरोध करता है और उन को उस से दूर करता है।

३६० । मैं ने ऐसे आत्माओं से बात चीत की जो पृथिवी पर रहते जगत को अस्वीकार करके प्रायः वैरागी हो गये इस वास्ते कि वे अपने ध्यानों को जगतसंबन्धी बातों से फिराकर धार्मिक ध्यानों के समाधि करने का अवकाश पावे और उन्हों ने इस पर विश्वास किया कि इस तौर पर समाधि करने से वे स्वर्ग के पथ पर चलें। परंतु परलोक में ऐसे मनुष्य उदासी स्वभाव के हैं और उन आत्माओं की अवज्ञा करते हैं जो उन के सदृश नहीं हैं। और वे इस से अतिकोप करते हैं कि वे औरों की अपेक्षा अधिक सुख नहीं पाते क्योंकि वे यह जानते हैं कि हम को अधिक सुख पाना चाहिये। वे औरों की कुछ भी चिन्ता नहीं करते और अनुग्रह करने से अलग रहते यद्यपि ये बातें स्वर्ग से संयोग करने के उपाय हैं। वे औरों की अपेक्षा अधिक अभिलाषा से चाहते हैं परंतु जब वे दूतों के मध्य चढ़ जाते हैं तब वे कई एक बातों की चिन्ता करते हैं जिस से उन के आनन्द में कुछ विघ्न पड़ता है। और इस से वे दूतों से अलग होकर उजाड़ स्थानों में जाकर रहते हैं। जहां कि वे उस रीति से काल बीतते हैं जिस रीति से वे जगत में अपने दिन काटते थे। विना जगत की सहायता के मनुष्य स्वर्ग के योग्य नहीं हो जा सकता। वहां अन्तिम कर्मफल विद्यमान हैं जो कि अनुराग के अन्त हैं। क्योंकि यदि अनुराग आप प्रत्यक्ष न करे अथवा कामों में बहकर न जावे (जो कि हर एक बहुसंख्यक जनसमूह में होता है) तो वह बुझाया जावेगा और अन्त को वह इतने संपूर्ण रूप से बुझ जाता है कि मनुष्य अपने पड़ोसी की ओर कुछ भी ध्यान नहीं देता पर केवल अपने आप की ओर। इस से स्पष्ट है कि पड़ोसी पर अनुग्रह करना (जो कि हर एक काम में और सब प्रकार की नौकरी करने में न्यायिक और धार्मिक चाल चलन है) स्वर्ग को पहुंचाता है परंतु अनुग्रहहीन परमेश्वरभक्ति स्वर्ग को नहीं पहुंचाता है[२७]। इस कारण से अनुग्रह करना और इस के द्वारा आनुग्राहक जीवन का बढ़ाना केवल यहां तक क्रियावान हो सकता है जहां तक मनुष्य किसी व्यवहार से लगा रहता है। और जितना वह व्यवहार से अपने तईं अलग करता है उतना ही अनुग्रह नष्ट होता जाता है। मैं इस बात को एक उदाहरण के द्वारा प्रकाशित करता हूं। बहुत से लोग जो जगत में वणिज व्योपार में प्रवृत्त हुए और उस प्रकार के व्यवहार करने से धनी हो गये अब स्वर्ग में हैं। परंतु उन की अपेक्षा बहुत ही कम लोग स्वर्ग में हैं जो ऊंचे पद पर होकर अपने उहदा के द्वारा धनी हो गये। इस का यह कारण है कि लोग जो ऊंचे पद पर थे न्याय और

२७ पड़ोसी पर अनुग्रह करने का यह अभिप्राय है कि कोई लोग हर एक काम में और सब प्रकार के व्यवहार करने में भलाई और न्याय और धर्म किया करे। म० ८१२० · ८१२१ · ८१२२। इस कारण वह हर एक बात में और प्रत्येक काम में जो मनुष्य ध्यान करता है और इच्छा करता है और सिद्ध करता है अपने को पसारता है। म० ८१२४। परमेश्वरभक्ति करना विना अनुग्रह करने की कुछ काम की नहीं है। परंतु परमेश्वरभक्ति अनुग्रह के साथ सब बातें के लाभदायक है। म० ८२५२ · ८२५३।

धर्म करने से और अन्य अन्य लोगों को लाभजनक और कीर्त्तिकर अधिकारपद देने से लाभ और कीर्त्ति प्राप्त करते हैं पस इस लिये वे अपने को और जगत को प्यार करते हैं और इस से वे अपने ध्यानों और अनुग्रहों को स्वर्ग की ओर से दूर करते हैं और उन को अपनी ओर फिराते हैं। क्योंकि जितना मनुष्य अपने को और जगत को प्यार करता है और सब बातों में अपने को और जगत को मानता है उतना ही वह अपने को ईश्वरत्व से दूर करता है और स्वर्ग से अलग करता है।

३६१। स्वर्ग में धनी लोगों की ऐसी अवस्था है कि वे औरों की अपेक्षा अधिक धनवान हैं। उन में से कोई ऐसे राजगृहों में रहते हैं जिन में सब वस्तुएं सोने और रूपे की चमक से चमकीली हैं और वे लोग सब प्रकार के पदार्थ भोगते हैं जिन से उन का जीवन सफल हो जाता है। तो भी वे उन पदार्थों पर अपना दिल नहीं लगाते परंतु वे उन प्रयोगों पर आसक्त हैं जिन के वे पदार्थ काम में आते हैं। वे लोग उन प्रयोगों को चमक और ज्योति में देखते हैं परंतु प्रयोगों की अपेक्षा सोना और रूपा सापेक्ष धुन्धले और छांह में दिखाई देते हैं। क्योंकि वे जगत में प्रयोजनों को प्यार करते थे और सोना और रूपा केवल प्रयोजनों के उपाय सरीखा मानते थे। इस लिये स्वर्ग में प्रयोग आप चमकीले हैं। प्रयोग की भलाई सोने के समान चमकती है और उस की सचाई रूपे के समान[३८]। इस लिये स्वर्ग में धनी लोगों की धनाढ्यता और आनन्द और सुख उन प्रयोगों के अनुसार होता है जिन को वे जगत में किया करते थे। भले प्रयोग तो ये हैं कि मनुष्य अपने को और अपने कुटुम्ब को पालन करे और अपने देश के हित के निमित्त और अपने पड़ोसी पर अनुग्रह करने के निमित्त धनाढ्यता चाहे। क्योंकि धनी लोग दरिद्री लोगों की अपेक्षा अपने पड़ोसी को बहुप्रकार से पालन कर सकता है। और उस प्रकार के भले काम करने से वह अपने मन को आलस्य में काटने से जो कि अपकारक अवस्था है अलग करता है क्योंकि आलसी मनुष्य बुरे ध्यानों के द्वारा जो कि उस बुराई में पैदा होते हैं कि जिस में वह भी जन्म लेता है प्रवर्त्तित होता है। ये प्रयोग यहां तक भले हैं जहां तक उन में एक ईश्वरीय तत्त्व रहता है अर्थात जहां तक मनुष्य ईश्वरत्व और स्वर्ग की ओर देखकर उन में अपनी उत्तम भलाई रख देता है और धन को केवल भला करने का एक उपाय मात्र मानता है।

---

३८ हर एक भलाई अपना आनन्द प्रयोजन से और प्रयोजन के अनुसार निकालती है। न० ३०४९ · ४६८४ · ७०३८। और अपना गुण भी उसी से निकालती है इस कारण जैसा प्रयोजन है वैसा ही भलाई है। न० ३०४९। जीवन का सारा सुख और आनन्द प्रयोजनों से निकलता है। ६६७। जीवन प्रायः प्रयोजनों का जीवन आप है। न० १६६४। दूतविषयक जीवन प्रेम और अनुग्रह की भलाइयों का है और इस से प्रयोग करने का। न० ४५२। प्रभु और उस की ओर के दूतगण केवल उन प्रयोजनों पर दृष्टि देते हैं जिन को मनुष्य आप मानता है और जिन का अन्तिम प्रयोग है। न० १३१७ · १६४५ · ५८४४। क्योंकि प्रभु का राज प्रयोजनों का एक राज है। न० ४५४ · ६६६ · ११०३ · ३६४५ · ४०५४ · ७०३८। और प्रभु की सेवा करना तो प्रयोग करना है। न० ७०३८। सब लोगों का गुण उन प्रयोजनों के गुण के अनुसार जिन को वे काम में लाते हैं बना हुआ है। न० ४०५४ · ६८१५। इस बात का एक उदाहरण। न० ७०३८।

३६२। उन धनी लोगों की अवस्था जो ईश्वरीय सत्ता पर श्रद्धा नहीं लाते और जो अपने मन से स्वर्ग की और कलीसिया की बातों को निकालते हैं संपूर्ण रूप से भिन्न है। क्योंकि इस प्रकार के लोग नरक में अर्थात मल के और दुख के और कंगालता के घर में रहते हैं। धन की इस प्रकार की वस्तुएं तब हो जाती हैं जब वह परमार्थ के समान प्यार किया जाता है। और न केवल धन ही बदल जाता है परंतु वे प्रयोग भी बदल जाते हैं जिन के वास्ते वे काम में आते हैं। वे प्रयोग ये ई हैं अर्थात या तो प्राकृतिक स्वभाव का संतोष करना और सुख बिलास भोगना या मन को बहुतायत से बुरे करने के पथ पर छोड़ देना या दीन का अपमान करके अपने को औरों से ऊंचे पद तक बढ़ाने की चेष्टा करना। ऐसे धन और ऐसे प्रयोग मलीन हो जाते हैं क्योंकि उन में कुछ भी आत्मीय वस्तु नहीं है परंतु उन में केवल पार्थिव वस्तुएं हैं। क्योंकि धन में और उस के प्रयोजनों में एक आत्मीय तत्त्व का होना ऐसा है कि जैसा शरीर में एक आत्मा का होना है। ऐसे तत्त्व के अभाव से वे सड़े हो जाते हैं जैसा कि आत्माहीन शरीर सड़ावट प्राप्त करता है और गीली भूमि स्वर्ग की ज्योति के विना रोगजनक हो जाता है। ये वे ई हैं जो धन से मोहित होकर स्वर्ग से अलग हुए हैं।

३६३। प्रत्येक मनुष्य का प्रधान अनुराग या प्रेम उस की मृत्यु के पीछे उस के साथ रहता है और अनन्तकाल तक कभी नहीं उखाड़ा जाता है। क्योंकि मनुष्य का जीव उस के प्रेम के संपूर्ण रूप से समान है। और एक रहस्य यह है कि हर एक आत्मा और प्रत्येक दूत का शरीर उस के प्रेम का बाहरी रूप है और उस के भीतरी रूप से जो कि उस के प्राकृतिक और सचेत मन का रूप है संपूर्ण रूप से प्रतिरूपता रखता है। इस से आत्माओं का गुण उन की चितवन से उन के इंगितों से और उनकी बोली से विज्ञात होता है। और मनुष्य के जीव का गुण जगत में रहते भी उसी तौर पर विज्ञात भी होता यदि वह अपनी चितवन में अपने इंगितों में और अपनी बोली में सद्गुणों का रूप जिस से वह कुछ संबन्ध नहीं रखता धारण करने न सीखता। इस से स्पष्ट हुआ कि मनुष्य अनन्तकाल तक अपने प्रधान अनुराग या प्रेम के गुण के समान रहता है। मुझ को यह शक्ति दी गई कि मैं कई एक लोगों के साथ बात चीत करूं जो कि सत्रह सौ बरस बितीत हुए जब जीते थे और जिन का जीवनचरित्र उस काल की पुस्तकों से प्रसिद्ध है और मालूम हुआ कि इसी काल तक हर एक पर उस प्रेम का असर रहता जो उस के सांसारिक जीवन में उस पर प्रबल था। इस से स्पष्ट है कि धन का लोभ और उन प्रयोजनों का लोभ जो धन से निकलते हैं हर एक के साथ अनन्तकाल तक रहता है। और उस लोभ का गुण ठीक ऐसा ही बना रहता है जैसा कि वह जगत में था। परंतु उन में यह भिन्नता है कि उन लोगों के लिये जो अपने धन को भले काम में लाए धन का अपने प्रयोजनों के अनुसार आनन्द हो जाता है परंतु उन के लिये जो धन को बुरे काम में लाए धन का मल हो जाता है। बुरे लोग उस

मल से उस रीति से प्रसन्न हैं जिस रीति से वे जगत में बुरे प्रयोजनों के निमित्त धन से आनन्दित हुए थे। और वे मल से प्रसन्न हैं इस वास्ते कि मलीन हर्षों और अपराधों से जिन के काम में वे अपने धन को लाए और लोभ से भी जो किसी प्रयोजन को छोड़ केवल धन मात्र की अभिलाषा है मल आप प्रतिरूपता रखता है। क्योंकि आत्मीय मल और कोई वस्तु नहीं है।

३६४। दरिद्री लोग अपनी दरिद्रता के कारण स्वर्ग को नहीं जाते परंतु अपनी चाल चलन के कारण। क्योंकि चाहे कोई मनुष्य धनी हो चाहे दरिद्री तो भी उस का जीवनचरित्र उस के संग जाता है। और न तो किसी को औरों की अपेक्षा विशेष दया मिलती है[३९]। परंतु वह जो अच्छी चाल पर चलती है वहां आदर के साथ अङ्गीकार किया जाता है और वह जो बुरी चाल पर चलता है वहां से दूर किया जाता है। इस से अतिरिक्त दरिद्रता मनुष्यों को मोह देकर स्वर्ग से इतने बल के साथ खींच लेती है जितने बल से धन भी खींच लेता है। क्योंकि बहुत से दरिद्री लोग अपने बुरे दिनों पर अछताते पछताते हैं और बहुत सी वस्तुओं का लालच करते हैं और धन को विशेष मंगल कर मानते हैं[४०]। इस कारण यदि वे उन वस्तुओं को नहीं पावें तो वे क्रोध में आवेंगे और ईश्वरीय परिपाटी पर दोष लगावेंगे। वे दूसरे के धन पर जलते हैं और अन्य लोगों को छल देने पर ऐसी रीति से उपस्थित हैं जैसा कि धनियों में के बुरे लोग छल देना चाहते हैं। और वे अवकाश पाके कृपण के आनन्द में अपने दिन काटते हैं। परंतु दरीद्री लोग जो अपने भाग्यों पर संतुष्ट हैं। और जो अपने व्यवहारों में सावधान और परिश्रम किया करते हैं और जो आलस्य की अपेक्षा श्रम करने को अधिक प्यार करते हैं और जो सीधेपने से और खराई से काम करते हैं और जो ईसाई धर्म पर चलते हैं इन सभों की अवस्था और ही है। मैं ने कई एक से बात चीत की जो ग्रामी थे और प्रजाओं में नीच पद के लोग थे और जो जगत में रहते परमेश्वर पर श्रद्धा लाए और न्याय की और खराई की विधियों पर काम करने में चले थे। उन्हों ने अनुग्रह और श्रद्धा के स्वभाव के बारे में पूछा क्योंकि वे सचाई के जानने के अनुराग में थे और इस कारण से कि उन्हों ने जगत में श्रद्धा के विषय बहुत सी बातें सुनी थीं और परलोक में उन्हों ने अनुग्रह के बारे में बहुत कुछ सुना था। और इस से उन को यह बतलाया

---

३९ कुछ बिचवाईरहित दया नहीं है परंतु सब दया बिचवाईसहित है और उन पर उस का प्रभाव है जो प्रभु के वचनों पर चलते हैं। क्योंकि दया की एक विधि से वह जगत में मनुष्यों को सदैव ले चलता है और पीछे अनन्तकाल तक वह उन को ले चलता है। न० ८७०० • १०६५९।

४० प्रधानता और धन यथार्थ में मंगल नहीं है और इस लिये वे बुरे लोगों को और भले लोगों को दिये जाते हैं। न० ८९३९ • १०७७५ • १०७७६। परंतु प्रभु की ओर के प्रेम और श्रद्धा के ग्रहण करना और उस के द्वारा संयुक्त होना सच मंगल है। क्योंकि इस से नित्य सुख होता है। न० १४२० • १४२२ • २८४६ • ३०१७ • ३४०८ • ३५०४ • ३५१४ • ३५३० • ३५६५ • ३५८४ • ४२१६ • ४९८१ • ८९३९ • १०४९५।

गया कि अनुग्रह वे सब बातें हैं जो जीवन से संबन्ध रखती हैं और श्रद्धा वे वे बातें हैं जो धर्म के तत्त्वों से संबन्ध रखती हैं। और इस लिये अनुग्रह हर एक काम में न्याय और सत्याचार करना और चाहना है और श्रद्धा न्याय से और धर्म से ध्यान करना है। और श्रद्धा और अनुग्रह एक दूसरे से संयुक्त है जैसा कि धर्म के तत्त्व और वह जीवन जो उन तत्त्वों के अनुकूल है अथवा जैसा कि ध्यान और मनभावन एक दूसरे से संयुक्त है। जब कोई मनुष्य उस काम को करता है और चाहता है जिस को वह न्याय से और यथाधर्म ध्यान करता है तब श्रद्धा का अनुग्रह हो जाता है। और तब अनुग्रह और श्रद्धा दो बातें नहीं हैं वे तो एक ही बात हैं। उन लोगों ने इस बयान को अनायास से समझा और उस पर बहुत प्रसन्न होकर कहा कि जब हम जगत में थे तब हम यह बात समझ नहीं सकते थे कि क्योंकर श्रद्धा लाना जीने के तात्पर्य से अतिरिक्त और कोई बात हो सकता है।

३६५। इन बातों से स्पष्ट है कि धनी लोग और दरिद्री लोग दोनों स्वर्ग को जाते हैं और जैसा कि उन में से एक अनायास से वहां जा सकता है वैसे ही अनायास से दूसरा जा सकता है। परंतु यह माना गया कि दरिद्री लोग अनायास से प्रवेश करने पाते हैं और धनी लोग कठिनता से। क्योंकि धर्मपुस्तक के वचन नहीं समझे जाते जहां कि धनी और दरिद्री का बयान किया जाता है। धर्मपुस्तक में आत्मीय अभिप्राय के अनुसार धनी से तात्पर्य यह है कि वे जो भलाई और सचाई का ज्ञान बाहुल्य रूप से रखते हैं और जो उस कलीसिया के मेम्बर हैं जहां कि धर्मपुस्तक है। धनी मनुष्य जो लाल और महीन कपड़े पहिनता था और जो नरक में गिराया गया इस वाक्य से तात्पर्य यहूदी जाति है जिस का नाम धनी रखा क्योंकि उस जाति के पास धर्मपुस्तक था और इस से भलाई और सचाई का ज्ञान बाहुल्य रूप से रखती थी। लाल कपड़े से तात्पर्य सचाई का ज्ञान है"[१]। परंतु दरिद्री मनुष्य जो धनी की डीवाढ़ी पर बैठता था और जो यह प्रार्थना करता था कि उन टुकड़ों से जो धनी के भोजनफलक से गिरते थे अपना पेट भरे और जिस को दूत स्वर्ग को ले गये उस वचन से तात्पर्य जेण्टाइल जाति है जिस के भलाई और सचाई का ज्ञान नहीं था परंतु वे उस के अभिलाषी थे। (लूका पर्व १६ वचन १९ · ३१)। वे धनी लोग जिन्हों ने एक बड़ी बियारी का नेवता पाकर अस्वीकार किया इस वाक्य से तात्पर्य यहूदी जाति भी है। और दरिद्री लोगों से जो उन के स्थान विद्यमान थे तात्पर्य वे जेण्टाइल हैं जो कलीसिया से बाहर हैं। (लूका पर्व १४ वचन १६ से २४ तक)। किसी धनी मनुष्य के बारे में प्रभु ने यह वचन कहा कि "ऊंट का सूई के नाके में होकर जाना उस से आसान है कि एक धनी मनुष्य प्रभु के राज में प्रवेश करे" (मत्ती पर्व १९ वचन २४) इस वचन

---

४१ कपड़े से तात्पर्य सचाई है और रंग से ज्ञान है। न० १०७३ · ५५७८ · ५३१६ · ५६५४ · ६३१२ · ६३१८ · ६६५२ · १०५३६। लाल से तात्पर्य स्वर्गीय भलाई है। न० ६४६७। और महीन कपड़े से तात्पर्य वह सचाई है जो एक स्वर्गीय मूल से पैदा होती है। न० ५३१९ · ६५६६ · ६७५४।

का बयान अब किया जाता है। इस वाक्य में धनी से तात्पर्य वे लोग हैं जो दोनों रीति से धनी है चाहे प्राकृतिक रीति पर चाहे आत्मिक रीति पर। प्राकृतिक तात्पर्य के अनुसार धनी लोग वे हैं जिन के पास बहुत सा धन है और धन पर अपना हृदय लगाते हैं। परंतु आत्मिक तात्पर्य के अनुसार धनी लोग वे हैं जिन का बहुत ज्ञान और विद्या है (क्योंकि ये वस्तुएं आत्मिक धन हैं) और जो उस ज्ञान और विद्या के द्वारा उन बातों में जो आत्मजनक बुद्धि के पथ से स्वर्ग और कलीसिया से संबन्ध रखती हैं अपने को पहुंचाना चाहते हैं। यह ईश्वरीय परिपाटी के विरुद्ध है और इस लिये यह बात कही गई कि "उस से यह आसान है कि एक ऊंठ सूई के नाके में होकर जावें"। क्योंकि आत्मिक तात्पर्य के अनुसार ऊंठ से तात्पर्य साधारण रूप से ज्ञान और विद्या का तत्त्व है और सूई के नाके से तात्पर्य आत्मीय सचाई है[४२]। इन दिनों में कोई नहीं जानता कि ऊंठ का और सूई के नाके का वैसा तात्पर्य है। क्योंकि वह विद्या कि जो उन बातों के द्वारा जो धर्मपुस्तक के शब्दों में कही जाती हैं आत्मीय अर्थ के तात्पर्य को सीखती है इस काल तक प्रगट नहीं की गई। परंतु धर्मपुस्तक की हर एक बात में आत्मीय तात्पर्य और प्राकृतिक तात्पर्य भी है। क्योंकि जब स्वर्ग और जगत के बीच अथवा दूतों और मनुष्यों के बीच बिचवाईरहित संयोग थम्भ गया तब धर्मपुस्तक यथार्थ प्रतिरूपों के द्वारा जो कि प्राकृतिक वस्तुओं के और आत्मिक वस्तुओं के संबन्ध हैं लिखी गई इस वास्ते कि वह संयोग का उपाय हो सकता। इस से स्पष्ट है कि ऊपर लिखे हुए वचनों में धनी मनुष्य की बात से कौन विशेषक तात्पर्य है। धर्मपुस्तक में आत्मीय अर्थ के अनुसार धनी की बात का यह तात्पर्य है कि वे जो सचाई और भलाई के ज्ञान में रहते हैं। और धन की बात से तात्पर्य ज्ञान आप है जो कि आत्मीय धन है। यह बात कई एक वचनों से स्पष्ट रूप से मालूम हुई जैसा कि ईसायाह पर्व १० वचन १२ · १३ · १४। पर्व ३० वचन ६ · ७। पर्व ४५ वचन ३। यर्मीयाह पर्व १७ वचन ३। पर्व ४८ वचन ७। पर्व ५० वचन ३६ · ३७।

---

४२ धर्मपुस्तक में ऊंठ से तात्पर्य साधारण रूप से ज्ञान और विद्या का तत्त्व है। न० ३०४८ · ३०७१ · ३१४३ · ३४१५। सूई के काम का और सूई से काम करने का और इस से सूई का कौन सा तात्पर्य है। न० ६६८८। विद्यागण की ओर से श्रद्धा की सचाइयों में पैठना ईश्वरीय परिपाटी के विरुद्ध है। न० १०२३६। और वे जो इस रीति से प्रवेश करते हैं उन वस्तुओं के विषय जो स्वर्ग की और कलीसिया की हैं बुद्धिभ्रष्ट हो जाते हैं। न० १२८ · १२९ · १३० · २३२ · २३३ · ६४०७। और परलोक में जब वे आत्मीय वस्तुओं पर ध्यान धरते हैं तब वे मतवाले सरीखे हो जाते हैं। न० १०७२। उन के गुण का कुछ अधिक बयान। न० १९६। कई एक दृष्टान्त इस बात के प्रकाशित करने के लिये दिये हुए हैं कि यदि आत्मीय बातों में विद्यागण के पथ से कोई लोग प्रवेश करे तो वह उन बातों को समझ न सकेगा। न० २३३ · २०९४ · २१९६ · २२०३ · २२०९। आत्मीय सचाई की ओर से प्राकृतिक मनुष्य के विद्यागण में प्रवेश करना उचित है परंतु इस रीति से विपरीत प्रवेश करना अनुचित है। क्योंकि आत्मत्व प्रकृति में बहता है परंतु प्रकृति आत्मत्व में नहीं बहता। न० ३२१९ · ५११९ · ५२५९ · ५४२७ · ५४२८ · ५४७८ · ६३२२ · ९११० · ९१११। इस लिये पहिले धर्मपुस्तक के और कलीसिया के सत्यों को स्वीकार करना चाहिये पीछे विद्यागण की परीक्षा करना उचित है। परंतु इस रीति से विपरीत करना अनुचित है। न० ६०४७।

पर्व ५१ वचन १३। दानीएल पर्व ५ वचन २ · ३ · ४। हज़्क़ीएल पर्व २३ वचन ७ · १२। पर्व २७ वचन १ से अन्त तक। ज़करयाह पर्व ९ वचन ३ · ४। ज़बूर पर्व ४० वचन १३। होसीआ पर्व १२ वचन ९। एपोकलिप्स पर्व ३ वचन १७ · १८। लूका पर्व १४ वचन ३३। और कई एक अन्य वचनों से। आत्मीय अर्थ के अनुसार दरिद्री की बात का यह तात्पर्य है कि वे जो भलाई और सचाई का ज्ञान नहीं रखते परंतु उस ज्ञान के अभिलाषी हैं। यह बात इन वचनों से मालूम हुई अर्थात मत्ती पर्व ११ वचन ५। लूका पर्व ६ वचन २० · २१। पर्व १४ वचन २१। ईसायाह पर्व १४ वचन ३०। पर्व २९ वचन १९। पर्व ४१ वचन १७ · १८। सफ़नयाह पर्व ३ वचन १२ · १८। इन सब वचनों का बयान आत्मीय अर्थ के अनुसार आर्काना सीलेस्टिया की पोथी में (न० १०२२७) किया गया।

स्वर्ग में के ब्याहों के बारे में।

३६६। जब कि स्वर्ग मनुष्यजाति की ओर से होता है तो स्वर्ग के दूतों का लिंगभेद भी होता है। और जब कि सृष्टि से लेकर यह विधि स्थापित हुई कि स्त्री लोग मनुष्य के लिये हो और मनुष्य स्त्रियों के लिये और इस से एक दूसरे का उपकारी हो। और जब कि वह प्रेम कि जिस से वह अवस्था हो सकती है दोनों में स्वभावज है तो इन बातों से यह सिद्धान्त निकलता है कि स्वर्ग में भी जैसा कि पृथिवी पर ब्याह होते हैं। परंतु उन ब्याहों के गुण और स्वभाव भिन्न भिन्न होते हैं। इस लिये मैं स्वर्ग में के ब्याहों के स्वभाव और गुण का बयान करूंगा और यह बतलाऊंगा कि किस किस बात में स्वर्ग के और जगत के ब्याहों में भिन्नता होती है और किस किस बात में वे अनुकूल हैं।

३६७। स्वर्ग में ब्याह करना यह दशा है कि दो मन का एक मन हो जावे और इस प्रकार के संयोग के गुण का बयान किया जावेगा। मन के दो भाग हैं एक तो ज्ञानशक्ति कहलाता है और दूसरा मनभावन। और जब ये दो भाग मिलकर काम करते हैं तब वे एक मन कहाते हैं। स्वर्ग में भर्त्ता [एकाकी] मन के उस भाग का काम करता है जिस का नाम ज्ञानशक्ति रखा और स्त्री उस भाग का काम करती है जिस का नाम मनभावन धरा। और जब यह संयोग जो भीतरी भागों का है शरीर के अधम तत्त्वों पर उतरता है तब वह प्रेम बनकर मालूम किया जाता है और पहचाना जाता है। और वह प्रेम विवाहविषयक प्रेम है। इस से स्पष्ट है कि विवाहविषयक प्रेम दो मन के एक मन हो जाने से अपने मूल को पाता है। और यह अवस्था सहवास कहलाता है। और इन दो मनों के बारे में यह कहा जाता है कि वे तो दो नहीं हैं पर एक हैं। इस से स्वर्ग में दो ब्याहे हुए सहकारी दो दूत नहीं कहलाते पर एक दूत[४३]।

---

४३ आज कल यह मालूम नहीं कि विवाहविषयक प्रेम क्या वस्तु है और कहां से आया है। न० २७२७। विवाहविषयक प्रेम तब पैदा होता है जब दो लोगों का अन्योन्य और परस्पर

३६८। भर्त्ता और स्त्री का अपने सब से भीतरी तत्त्वों में (जो कि मन के हैं) ऐसा संयोग विद्यमान होना सृष्टि ही से पैदा होता है। क्योंकि मनुष्य बुद्धिमान होने के लिये और इस से ज्ञानशक्ति के द्वारा ध्यान करने के लिये पैदा हुआ। परंतु स्त्री स्वेच्छाचारी होने के लिये और इस से मनभावन के द्वारा ध्यान करने के लिये पैदा हुई। और यह अवस्था उन की शीलता से या सहजात स्वभाव से प्रकाशित है और उन के रूप से भी प्रकाशित है। उन की शीलता से प्रकाशित है इस वास्ते कि मनुष्य बुद्धि से काम करता है परंतु स्त्री अनुराग से। और यह अवस्था उन के रूप से प्रकाशित है क्योंकि मनुष्य का रूप क्रूर और कम सुन्दर है और उस की वाणी गम्भीर है और उस का शरीर बलवान है। परंतु स्त्री का कोमल और बहुत सुन्दर मुख और मनोहर वाणी और सुकुमार शरीर है। ज्ञानशक्ति और मनभावन में या ध्यान और अनुराग में ऐसी भिन्नता भी है। और सचाई और भलाई में तथा श्रद्धा और प्रेम में भी ऐसी भिन्नता है। क्योंकि सचाई और श्रद्धा ज्ञानशक्ति की ओर से है और भलाई और प्रेम मनभावन की ओर से। और इस से धर्मपुस्तक में आत्मीय अर्थ के अनुसार जवान की बात से और मनुष्य की बात से तात्पर्य सचाई का समझना है। और कुमारी की बात से और स्त्री की बात से तात्पर्य भलाई का अनुराग है। कलीसिया भलाई और सचाई के अनुराग से स्त्री और कुमारी कहलाती है। और सब की सब जो भलाई के अनुराग में हैं कुमारी कहलाती हैं। एपोकलिप्स की पोथी के १४ वें पर्व के ४ वें वचन को देखो[४४]।

३६९। हर किसी की (क्या पुरुष क्या स्त्री) ज्ञानशक्ति और मनभावन है। परंतु मनुष्य में ज्ञानशक्ति प्रबल है और स्त्री में मनभावन। और साधारण स्वभाव उस से जो प्रबल है ठहराया जाता है। परंतु स्वर्ग में के ब्याहों में कुछ भी प्रबलता नहीं है। क्योंकि पत्नी की इच्छा पति की इच्छा भी है और पति की ज्ञानशक्ति पत्नी की ज्ञानशक्ति भी है। क्योंकि एक तो इस रीति से इच्छा करने का

एक ही मनभावन है। न० २७३१। और इस लिये वे लोग जो विवाहविषयक प्रेम की अवस्था में हैं अपने जीवन के सब से भीतरी भागों में सहवास करते हैं। न० २७३२। क्योंकि उन में दो मनों का संयोग है जो प्रेम के द्वारा एक ही हो गये। न० १०१६८ · १०१६९। क्योंकि मनों का प्रेम जो आत्मीय प्रेम है आप संयोग है। न० १३९४ · २०५७ · ३९३९ · ४०१८ · ५८०७ · ६१९५ · ७०८१ से ७०८६ तक · ७५०१ · १०१३० ।

४४ धर्मपुस्तक में जवान से तात्पर्य सचाई का समझना है अर्थात वे लोग जो बुद्धिमान हैं। न० ७६६८। मनुष्य की बात का भी ऐसा ही तात्पर्य है। न० १५६ · २६५ · ७४९ · ९१५ · १००७ · २५१७ · ३१३४ · ३२३६ · ४८२३ · ९००७। स्त्री से तात्पर्य भलाई और सचाई का अनुराग है। न० ५६८ · ३१६० · ६०१४ · ७३३७ · ८९९४। कलीसिया से भी ऐसा ही तात्पर्य है। न० २५२ · २५३ · ७४९ · ७७०। पत्नी से भी ऐसा ही तात्पर्य है। न० २५२ · २५३ · ४०९ · ७४९ · ७७०। इस में क्या भिन्नता है। न० ९१५ · २५१७ · ३२३६ · ४५१० · ४८२२। सब से उत्तम अर्थ के अनुसार पति और पत्नी से तात्पर्य प्रभु है और उस का संयोग स्वर्ग और कलीसिया से। न० ७०२२। कुमारी से तात्पर्य भलाई का अनुराग है। न० ३०६७ · ३११० · ३१७९ · ३१८९ · ६७३१ · ६७४२। कलीसिया से भी ऐसा ही तात्पर्य है। न० २३६२ · ३०८१ · ३९६३ · ४६३८ · ६७२९ · ६७७५ · ६७७८ ।

और ध्यान करने का अभिलाषी है जिस रीति से दूसरा इच्छा करता है और ध्यान धरता है। और इस से दोनों अन्योन्य और परस्पर इच्छा करते हैं और ध्यान धरते हैं। और इस से उन का एक दूसरे से संयोग होता है। यह संयोग यथार्थ संयोग है। क्योंकि पत्नी का मनभावन पति की ज्ञानशक्ति में प्रवेश करता है और पति की ज्ञानशक्ति पत्नी के मनभावन में पैठती है। विशेष करके जब कि एक दूसरे के मुंह पर दृष्टि करता है। क्योंकि जैसा कि बार बार बयान किया गया है स्वर्ग में ध्यानों का और अनुरागों का विशेष करके विवाहविषयक सहभागी के बीच परस्पर समझाना है। क्योंकि ये लोग एक दूसरे को प्यार करते हैं। इन बातों से यह सिद्धान्त स्पष्ट रूप से मालूम हुआ कि मनों का वह संयोग जो विवाह कराता है और स्वर्ग में विवाहविषयक प्रेम पैदा करता है यही है कि हर एक व्यक्ति अपने मन में यह चाहती है कि जो कुछ मेरा है सो दूसरे का भी होगा और यह एक परस्पर इच्छा है।

३७० । मुझ को दूतों से यह कहा गया कि जहां तक दो ब्याहे हुए सहभागी ऐसे संयोग में हैं वहां तक वे विवाहविषयक प्रेम में रहते हैं और उसी काल और उसी परिमाण तक भी वे बुद्धि और ज्ञान और सुख में रहते हैं। क्योंकि ईश्वरीय भलाई और ईश्वरीय सचाई जिन से सब बुद्धि और ज्ञान और सुख निकलता है प्रायः विवाहविषयक प्रेम में बहती है। और इस कारण प्रेम तो ईश्वरीय अन्तःप्रवाह का समतल ही आप है। क्योंकि वह सचाई और भलाई का ब्याह है। विवाहविषयक प्रेम सचाई और भलाई का संयोग है इस लिये कि वह ज्ञानशक्ति और मनभावन का संयोग है। क्योंकि ज्ञानशक्ति ईश्वरीय सचाई को ग्रहण करती है और सचाइयों से बनाई भी जाती है। और मनभावन ईश्वरीय भलाई को ग्रहण करता है और भलाइयों से बनाया जाता है। क्योंकि जो कुछ कोई मनुष्य चाहता है सो उस के निकट अच्छा है। और जो कुछ वह समझता है सो उस के निकट सच्चा है। इस कारण चाहे हम ज्ञानशक्ति और मनभावन का संयोग कहें चाहे हम सचाई और भलाई का संयोग कहें तो भी दोनों बातें एकसां हैं। सचाई और भलाई का संयोग एक दूत को और उस की बुद्धि और ज्ञान और सुख को भी पैदा करता है। क्योंकि किसी दूत का गुण उस दूत की भलाई के उस परिमाण पर जो सचाई से संयुक्त है और सचाई के उस परिमाण पर जो भलाई से संयुक्त है अवलम्बित है। या यों कहो (क्योंकि यह उस से एक ही बात है) उस के प्रेम के उस परिमाण पर जो श्रद्धा से संयुक्त है और श्रद्धा के उस परिमाण पर जो प्रेम से संयुक्त है अवलम्बित है।

३७१ । प्रभु की ओर का ईश्वरत्व प्रायः विवाहविषयक प्रेम में बहता है क्योंकि विवाहविषयक प्रेम भलाई और सचाई के संयोग से उतरता है। क्योंकि जैसा कि हम अभी कह चुके हैं चाहे हम ज्ञानशक्ति और मनभावन का संयोग कहें या भलाई और सचाई का संयोग दोनों बातें एकसां हैं। और भलाई और

सचाई का संयोग प्रभु के ईश्वरीय प्रेम से उन सभों की ओर जो स्वर्ग में और पृथिवी पर हैं अपने मूल को पाता है। ईश्वरीय भलाई ईश्वरीय प्रेम से निकलती है और ईश्वरीय भलाई दूतों और मनुष्यों से ईश्वरीय सचाइयों में पाई जाती है। क्योंकि सचाई भलाई का अकेला पात्र है। और इस लिये जो कुछ कि प्रभु से और स्वर्ग से निकलता है किसी से नहीं ग्रहण किया जा सकता जो सचाइयों में नहीं रहता। इस लिये जितना सचाई मनुष्य में की भलाई से संयुक्त है उतना ही मनुष्य प्रभु से और स्वर्ग से संयुक्त है। यह तो विवाहविषयक प्रेम का मूल ही मूल है और इस लिये प्रेम ईश्वरीय अन्तःप्रवाह का समतल ही है और इस से स्वर्ग में भलाई और सचाई का संयोग स्वर्गीय विवाह कहलाता है और धर्मपुस्तक में स्वर्ग विवाह से उपमा दिया जाता है और विवाह भी कहलाता है और प्रभु दूलहा और पति कहाता और स्वर्ग और कलीसिया का नाम दुलहिन और पत्नी रखा[४५]।

३७२। एक दूत में या एक मनुष्य में संयुक्त हुई भलाई और सचाई दो वस्तुएं नहीं हैं पर एक ही हैं। क्योंकि जब वे संयुक्त हो गईं तब भलाई सचाई की है और सचाई भलाई की। और यह संयोग उस संयोग के सदृश है जब कि मनुष्य अपनी इच्छा के अनुकूल ध्यान करता है और अपने ध्यान के अनुकूल इच्छा करता है। क्योंकि उस समय उस का ध्यान और मनभावन एक ही अर्थात एक ही मन हो जाता है। उस का ध्यान उस के मनभावन की इच्छा को रूप देता है अर्थात उस इच्छा को किसी रूप पर दिखलाता है। और उस की इच्छा उस के ध्यान को प्रसन्न करता है। इस से यह भी निकला कि स्वर्ग में दो ब्याहे हुए सहभागी दो दूत नहीं कहलाते पर एक ही। और यह बात प्रभु के इन वचनों का तात्पर्य है कि "क्या तुम ने नहीं पढ़ा कि विधाता ने प्रथम काल में [उन्हें] एक ही मनुष्य और एक ही स्त्री बनाई। और आज्ञा दी कि इस लिये मनुष्य अपने मा बाप को छोड़ेगा और अपनी जोरू से मिला रहेगा। और वे दोनों एक तन होंगे। इस लिये अब वे दो नहीं बल्कि एक तन हैं। पस जिसे परमेश्वर ने जोड़ा इसे मनुष्य न तोड़े। सब लोग यह बात नहीं स्वीकार कर सकते उन को छोड़ जिन को स्वीकार करने की शक्ति दी जाती है"। (मत्ती पर्व १९ वचन ४·५·६·११। मरकस पर्व १० वचन ६·७·८·९। सृष्टि पर्व २ वचन २४)। इस वचन

---

४५ यथार्थ विवाहविषयक प्रेम अपना मूल अपना कारण और अपना तत्त्व भलाई और सचाई के विवाहित होने से और इस लिये स्वर्ग से पाता है। न० २७२८·२७२९। दूतविषयक आत्माओं के बारे में जो भलाई और सचाई के संयुक्त होने के बोध से विवाहविषयक तत्त्व का होना मालूम करते हैं। न० १०७५६। क्योंकि विवाहविषयक प्रेम भलाई और सचाई के संयोग की अवस्था के सदृश संपूर्ण रूप से होता है। न० १०९४·२१७३·२४२९·२५०३·३१०१·३१०२·३१५५·३१७९·३१८०·४३५८·५४०७··५८३५·९२०६·९६३७। भलाई और सचाई का संयोग किस तौर पर और किस के द्वारा कराया जाता है। न० ३८३४·४०९६·४०९७·४३०१·४३४५·४३५३·५३६४·४३६८·५३६५·७६२३ से ७६७७ तक·९२५८। यह मालूम नहीं हुआ कि विवाह-विषयक प्रेम कौन वस्तु है परंतु यह बात उन को मालूम हुआ जो प्रभु की ओर की भलाई और सचाई में रहते हैं। न० १०१७१। धर्मपुस्तक में विवाह से तात्पर्य भलाई और सचाई का विवाह है। न० ३१३२·४४३४·४८३५। प्रभु का राज और स्वर्ग विवाहविषयक प्रेम में है। न० २७३७।

में उस स्वर्गीय विवाह का बयान जिस से दूतगण आपस में संयुक्त हैं किया जाता है और उसी तरह भलाई और सचाई के विवाह का बयान। "जिसे परमेश्वर ने जोड़ा इसे मनुष्य न तोड़े" इस आज्ञा का यह तात्पर्य है कि भलाई सचाई से अलग करना न चाहिये।

३७३। इन बातों से यथार्थ विवाहविषयक प्रेम का मूल स्पष्ट रूप से मालूम किया जा सकता है। अर्थात कि पहिले पहिल वह उन के मनों में जो विवाह की अवस्था में हैं बनाया जाता है और तब वहां से उतरकर शरीर में फैल जाता है और वहां पर प्रेम बनकर मालूम किया जाता है और पहचाना जाता है। क्योंकि जो कुछ शरीर में पहचाना जाता है और मालूम किया जाता है सो मनुष्य के आत्मिक तत्त्व से अपना मूल पाता है। इस वास्ते कि वह उस की ज्ञानशक्ति और मनभावन से जो कि आत्मीय मनुष्य है निकलता है। और जो कुछ आत्मीय मनुष्य से शरीर में उतरता है सो अपने को अन्य रूप पर दिखलाता है। परंतु तौ भी वह अपनी समता और एकात्मत्व रखता है जैसा कि आत्मा और शरीर और जैसा कि कारक और कार्य। और यह उन बातों से स्पष्ट है कि जो उन दो बाबों में लिखी हुई हैं जिन में प्रतिरूपों का बयान किया जाता है।

३७४। एक बेर मैं ने किसी दूत को यथार्थ विवाहविषयक प्रेम का और उस के स्वर्गीय सुख का बयान यों करते सुना कि वह प्रभु का स्वर्ग में का ईश्वरत्व—कि जो ईश्वरीय भलाई और ईश्वरीय सचाई है—दो व्यक्तियों में ऐसे संपूर्ण रूप से संयुक्त होना है कि वे आगे दो व्यक्तियें नहीं हैं पर एक ही हैं। उस ने कहा कि स्वर्ग में दो व्याहे हुए सहभागी वही रूपधारक प्रेम हैं। क्योंकि हर कोई व्यक्ति मन और शरीर दोनों के विषय अपने निज की भलाई और अपने निज की सचाई है। इस वास्ते कि शरीर मन की प्रतिमा है इस कारण कि वह उस के रूप के अनुकूल बन जाता है। और इस से उस ने यह सिद्धान्त निकाला कि ईश्वरत्व की प्रतिमा दो व्यक्तियों में जो यथार्थ विवाहविषयक प्रेम में हैं दिखाई देती है। और जब कि वे ईश्वरत्व की प्रतिमा हैं तो वे स्वर्ग की प्रतिमा भी हैं। क्योंकि सर्वव्यापी स्वर्ग प्रभु से निकलती हुई ईश्वरीय भलाई और ईश्वरीय सचाई है। और इस कारण स्वर्ग की सब बातें असंख्य आनन्दों और हर्षों के साथ उस प्रेम पर लिखी हुई हैं। वह दूत उस संख्या के बयान करने में एक ऐसा शब्द काम में लाया कि जिस से तात्पर्य करोड़ों करोड़ हैं। और उस ने उस बात पर अचम्भा किया कि कलीसिया का मनुष्य उस का कुछ भी नहीं जानता यद्यपि कलीसिया प्रभु का पृथिवी पर का स्वर्ग है और स्वर्ग भलाई और सचाई का विवाह है। उस ने कहा कि मैं इस बात पर विस्मय करता हूं कि कलीसिया के मेम्बरों से उन की अपेक्षा जो कलीसिया के बाहर है बहुत छिनाले किये जाते हैं। और कोई लोग छिनाला करना उचित जानकर उस का पक्ष करते हैं। यद्यपि आत्मीय अर्थ के अनुसार (और इस लिये आत्मीय जगत में) छिनाला करने का आनन्द बुराई से

संयुक्त हुई झुठाई के प्रेम के आनन्द को छोड़ और कुछ नहीं है। यह आनन्द नरकीय है। क्योंकि वह स्वर्ग के आनन्द के (जो भलाई से संयुक्त हुई सचाई के प्रेम का आनन्द है) व्यासक्रम से विरुद्ध है।

३७५। हर कोई जानता है कि दो ब्याहे हुए सहभागी जो आपस में एक दूसरे को प्यार करते हैं भीतरी रीति से संयुक्त हैं और विवाह की आवश्यकता की बात मनों का परस्पर संयोग है। और इस से यह भी मालूम हो कि उन के प्रेम का गुण और उन के संयोग का स्वभाव उन के मनों के विशेष लक्षण पर अवलम्बित है। सचेतन मन सचाई और भलाई ही से बन जाता है। क्योंकि सर्वजगत की सब वस्तुएं भलाई और सचाई से और इन के संयोग से भी संबन्ध रखती हैं। और इस से मनों का संयोग उस सचाई और भलाई से कि जिस के वे मन बने हुए हैं अपने गुण को पाते हैं। और इस कारण वही संयोग सब से संपन्न और ठोस है जो यथार्थ सचाई और भलाई के बने हुए मनों के बीच बना रहता है। सचाई और भलाई की अपेक्षा अन्य कोई दो वस्तुएं आपस में परस्पर अधिक प्यार नहीं करतीं। और इस कारण वही प्रेम यथार्थ विवाहविषयक प्रेम का मूल है[४८]। झुठाई और बुराई भी आपस में एक दूसरे को प्यार करती है परंतु पीछे इस प्रेम का नरक हो जाता है।

३७६। विवाहविषयक प्रेम के पैदा होने के बारे में उन बातों से कि जो हम अभी कह चुके हैं ये अनुमान निकलते हैं कि उस प्रेम में कौन कौन है और कौन कौन उस में नहीं है। कि वे विवाहविषयक प्रेम में हैं जो ईश्वरीय सचाई से निकली हुई ईश्वरीय भलाई में हैं। कि विवाहविषयक प्रेम यहां तक यथार्थ है जहां तक कि वह सचाई यथार्थ है जिस से वह संयुक्त है। और जब कि सब भलाई जो सचाई से संयुक्त है प्रभु की ओर से है तो इस से यह निकलता है कि यदि कोई प्रभु को और उस के ईश्वरत्व को स्वीकार न करे तो वह यथार्थ विवाहविषयक प्रेम में नहीं हो सकेगा। क्योंकि उस स्वीकार करने के विना प्रभु का अन्तःप्रवाह नहीं बह सकता और उन सत्यों से जो मनुष्य में हैं संयुक्त नहीं हो सकता।

३७७। इस से स्पष्ट है कि वे जो झुठाई में रहते हैं विवाहविषयक प्रेम में नहीं हैं। इन से उतरकर वे जो बुराई से निकली हुई झुठाई में रहते हैं विवाहविषयक प्रेम नहीं रखते। क्योंकि उन के (जो बुराई में और इस लिये झुठाई

---

४८ स्वर्ग और जगत दोनों में सर्वजगत में की सब वस्तुएं भलाई और सचाई से संबन्ध रखती हैं। न० २४५१ · ३१६६ · ४३९० · ४४०९ · ५२३२ · ७२५६ · १०१२२। और उन के संयोग से भी। न० १०५५५। भलाई और सचाई के बीच विवाह होता है। न० १०९४ · २१७३ · २५०३। क्योंकि भलाई सचाई को प्यार करती है और इस कारण उस को चाहती है और उस से संयोग की इच्छा करती है। और इस लिये वे दोनों संयोग करने की ओर नित्य झुकती हैं। न० १५८९ · १९९७ · २५७९ · ४०७० · ४०९६ · ४०९७ · ४७३६ · ४७५७ · ४८८४ · ५१४७ · ९६६७। और सचाई भलाई का रूप है। न० ३०४९ · ३१८० · ४५७४ · ९१५४। सचाई भलाई से ऐसा संबन्ध रखती है जैसा कि पानी रोटी में। न० ४९७६।

में रहते हैं) भीतरी भाग (जो सचेतन मन के हैं) बन्द हो जाते हैं और इस लिये वहां विवाहविषयक प्रेम को कोई मूल नहीं हो सकता। परंतु उन भीतरी भागों के नीचे बाहरी या प्राकृतिक मनुष्य में जो भीतर से अलग है भुठाई से बुराई का संयोग है। और वह संयोग नरकीय विवाह कहलाता है। मैं उस विवाह के स्वभाव को देखने पाया जो बुराई की भुठाई में के रहनेवाले आपस में करते हैं और जो नरकीय विवाह कहलाता है। वे आपस में एक दूसरे से रतार्थी कामना से बोलते हैं और संयोग करते हैं परंतु भीतर से वे एक दूसरे पर घोर द्वेष से जल पकते हैं। और यह द्वेष इतना घोर है कि उस का बयान किसी से किया नहीं जाता।

३६८। दो व्यक्तियों में जिन के भिन्न भिन्न धर्म हैं विवाहविषयक प्रेम नहीं हो सकता। क्योंकि एक ही सचाई दूसरे की भलाई से नहीं मिल सकती। और दो असदृश और विरुद्ध कामना दो मनों का एक मन नहीं कर सकता। इस लिये उन के प्रेम का मूल किसी आत्मीय वस्तु से कुछ संबन्ध नहीं रखता। और यदि वे सह-वास करें और मित्रता के साथ रहें तो वह अवस्था केवल प्राकृतिक हेतुओं से होगी[४७]। इस कारण स्वर्ग में उन में विवाह किया जाता है जो एक ही सभा में हैं क्योंकि वे समभलाई और समसचाई में रहते हैं। न कि उन में जो भिन्न भिन्न सभाओं के मेम्बर हैं। सब व्यक्तियें जो एक ही सभा में हैं समभलाई और समस-चाई में रहती हैं और अन्य सभाओं के मेम्बरों से भिन्न भिन्न हैं। इस बात का बयान न० ४१ आदि के परिच्छेदों में किया गया है। इस अवस्था का प्रकाशन यहूदी देशजन से होता है जिन में लोग एक ही जाति में विवाह किया करते थे और विशेष करके एक ही कुटुम्ब में। और उन से बाहर विवाह नहीं किया जाता था।

३६९। न तो यथार्थ विवाहविषयक प्रेम एक पति और बहुत सी पत्नी हो सकता। क्योंकि यह अवस्था विवाह के आत्मीय स्वभाव को जो दो मनों का एक ही मन करना है नाश करती है। इस कारण वह भीतरी संयोग को जो भलाई और सचाई का संयोग है और जिस से विवाहविषयक प्रेम की आवश्यकता का तत्त्व निकलता है नाश करती है। कोई मनुष्य जिस के कई एक पत्नी हैं ज्ञानशक्ति के सदृश है जो कई एक संकल्पशक्तियों में बंटी हुई है। और वह एक ऐसे मनुष्य के सदृश है जो एक ही कलीसिया से संबद्ध नहीं है परंतु कई एक कलीसियाओं से यहां तक कि उस की श्रद्धा व्याकुल होकर नष्ट हो जाता है। दूतगण यह भी कहते हैं कि एक से अधिक पत्नियों से विवाह करना ईश्वरीय परिपाटी के संपूर्ण रूप से विरुद्ध है। और वे यह बात बहुत कारणों से जानते हैं और विशेष करके इस कारण से कि ज्यों ही वे एक से अधिक पत्नियों से विवाह करने का ध्यान करते हैं त्यों ही वे भीतरी परमानन्द से और स्वर्गीय सुख से

[४७] विवाह करना उन में जिन के भिन्न भिन्न धर्म हैं विधिविरुद्ध है इस वास्ते कि उन के भीतरी भागों में समभलाई और समसचाई का संयोग नहीं हो सकता। न० ८९९८।

अलग होते हैं। और वे मतवालों के समान हो जाते हैं। क्योंकि उन में भलाई अपने निज की सचाई से असंयुक्त हो जाती है। और जब कि भीतरी भाग जो उन के मनों के हैं केवल बहुपत्नीत्व के ध्यान से किसी अभिप्राय के विना ऐसी अवस्था में गिरते हैं तो वे स्पष्ट रूप से मालूम करते हैं कि एक से अधिक पत्नियों से विवाह करना भीतरी मनुष्य को बन्द करता है और वह अवस्था लम्पटता का प्रेम विवाहविषयक प्रेम के स्थान में रख देती है। परंतु लम्पटता का प्रेम स्वर्ग से खींचता है[४८]। वे यह भी कहते हैं कि मनुष्य यह बात कठिनता से समझता है क्योंकि आज कल थोड़े लोग यथार्थ विवाहविषयक प्रेम में हैं। और वे जो उस प्रेम में नहीं हैं उस के भीतरी आनन्द के विषय कुछ भी नहीं जानते। वे केवल लम्पटता का सुख जानते हैं और यह सहवास करने में थोड़े काल बीतने पर असुख हो जाता है। परंतु यथार्थ विवाहविषयक प्रेम का सुख न केवल जगत में बुड्ढेपने तक बना रहता है पर मृत्यु के पीछे स्वर्ग का सुख भी हो जाता है और तब तो उस में भीतरी आनन्द भरा है और वह अनन्तकाल तक संपन्न होता रहता है। वे दूत यह भी बतलाते हैं कि यथार्थ विवाहविषयक प्रेम के आनन्द हज़ारों तक गिने जा सकते हैं और इन आनन्दों में से एक भी मनुष्य से नहीं जाना जाता या उस से जो प्रभु की ओर से निकली हुई भलाई और सचाई के विवाह में नहीं है नहीं समझा जा सकता।

३८० । एक दूसरे को दमन करने का प्रेम विवाहविषयक प्रेम को और उस के स्वर्गीय सुख को संपूर्ण रूप से हर लेता है। क्योंकि (जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं) विवाहविषयक प्रेम और उस का सुख यही है कि एक का संकल्प दूसरे का संकल्प परस्पर और अन्योन्य रीति पर होता है। परंतु दमन करने का प्रेम इस अन्योन्यता का नाश करता है। क्योंकि जो दमन करता है वह यह चाहता है कि केवल उस का संकल्प ही दूसरे में रहे और दूसरे के संकल्प का कुछ भी अन्योन्य रीति पर उस में न रहे। और इस से कुछ अन्योन्यता नहीं है और इस कारण से किसी प्रेम का और उस के सुख का कुछ परस्पर लेना देना नहीं हो सकता। परंतु यह लेना देना और अनुगामी संयोग उस भीतरी आनन्द आप है जो विवाह में परमानन्द कहलाता है। दमन करने का प्रेम इस परमानन्द को और इस के साथ

---

४८ जब कि पति पत्नी को एक ही होना चाहिये और अपने जीवन की सब से भीतरी बातों में सहवास करना चाहिये और जब कि वे मिलके स्वर्ग में एक ही दूत बन जाते हैं तो यथार्थ विवाहविषयक प्रेम एक पति और कई एक पत्नियों के बीच नहीं हो सकता। न० १९०७ • २७४० । एक ही समय को एक से अधिक पत्नियों से विवाह करना ईश्वरीय परिपाटी के विरुद्ध है। न० १०८३७। एक पति और एक पत्नी से विवाह करने को छोड़ विवाह करना नहीं हो सकता। यह बात उन की अवस्था से जो प्रभु के ईश्वरीय राज में हैं मालूम की जाती है। न० ८६५ • ३२४६ • ६६६१ • १०१७२। और इस का यह हेतु है कि वहां दूतगण भलाई और सचाई के विवाह में रहते हैं। न० ३२४६। यहूदी देशजन कई पत्नियों से विवाह करने पाए और एक पत्नियों के साथ उपपत्नियों से भोगने पाए। परंतु ख्रीष्टीयन लोग ऐसा काम करने नहीं पाए। क्योंकि यहूदी लोग भीतररहित बाहरी भागों में थे। परंतु ख्रीष्टीयन लोग भीतरी भागों में हो सकते हैं और इस से भलाई और सचाई के विवाह में। न० ३२४६ • ४८३७ • ८८०६ ।

विवाहविषयक प्रेम की हर एक स्वर्गीय और आत्मीय बात को संपूर्ण रूप से बुझाता है यहां तक कि उस प्रेम का होना भी अज्ञात हो जावेगा। और यदि उस का होना प्रमाण से ठहराया जावे तो भी वह यहां तक तुच्छ माना जावेगा कि ऐसी अवस्था से परमानन्द के निकलने की सूचना ही केवल प्रहास या क्रोध को उकसावेगा।

जब एक व्यक्ति उस वस्तु की इच्छा करती है या प्यार करती है जिस वस्तु की इच्छा या प्यार दूसरी भी करती है तो दोनों स्वतन्त्र हैं। क्योंकि सब स्वतन्त्रता प्रेम का सन्तान है। क्योंकि जहां दमन करना है वहां न तो एक स्वतन्त्र है न दूसरा। इस वास्ते कि एक दूसरे का दास है और स्वामी भी दमन करने के लोभ का दास है। यह तो उस को संपूर्ण रूप से अबोधनीय है जो स्वर्गीय प्रेम की स्वतन्त्रता को नहीं जानता। परंतु विवाहविषयक प्रेम के मूल और स्वभाव के बारे में जिस का बयान किया गया है उस से यह मालूम हो कि जितना दमन करना उस में प्रवेश करता है उतना ही मनों का संयोग नहीं हो सकता परंतु वे अलग अलग हो जाते हैं। क्योंकि दमन करना दबाता है। और दबाए हुए मन का या तो कुछ संकल्प नहीं है या उस का विरुद्ध संकल्प है। यदि उस का कुछ संकल्प नहीं हो तो उस का कुछ प्रेम भी नहीं होगा। और यदि उस का विरुद्ध संकल्प हो तो उस का प्रेम के स्थान में द्वेष होगा। उन के भीतरी भाग जो इस प्रकार के विवाह में हैं आपस में एक दूसरे के विरुद्ध ऐसे परस्पर टक्कर मारते हैं और लड़ाई करते हैं जैसा कि दो विरोधियों के बीच नित्य होता है चाहे जितना शान्ति के निमित्त उन के बाहरी भाग रोके जावें और प्रतिबद्ध किये जावें। और उन के भीतरी भागों का टक्कर मारना और झगड़ा करना मृत्यु के पीछे प्रगट रूप से दिखाई देता है जब वे शत्रुओं के सदृश प्रायः आपस में एक दूसरे का साम्हना करके लड़ाई करते हैं कि मानों एक दूसरे को टुकड़े टुकड़े तोड़ डाले। क्योंकि उस समय वे अपने भीतरी भागों की अवस्था के अनुसार उद्यम करते हैं। मैं ने कभी कभी उन की लड़ाई करने और चीर फाड़ने को देखा जो बहुधा पलटा लेने और क्रूरता से पुर था। क्योंकि हर एक के भीतरी भाग परलोक में हो जाते हैं और बाहरी बातों से कि जो जगत के कारणों में मूल पकड़ती हैं रोके नहीं जाते। इस वास्ते कि उस समय हर कोई प्रगट रूप से दिखाई देता है जैसा कि उस के भीतरी भाग होते हैं।

३८१। किसी किसी के पास विवाहविषयक प्रेम की कुछ एक उपमा है जो कि यदि वे भलाई और सचाई के प्रेम में न हो यथार्थ में विवाहविषयक प्रेम नहीं है। पर केवल उन की एक माया है जो बहुत कारणों से पैदा होती है। उन कारणों में ये हैं कि घर में उन की सेवा की जावे या वे निर्भय और सुख चैन से रहें या रुग्नावस्था में या बुड्ढेपन में उन की सेवा की जावे अथवा उन के लड़के बाले के निमित्त जिन को वे प्यार करते हैं। और कभी कभी दूसरे सहभागी के भय से बलात्कार भी हो जैसा कि अपकीर्त्ति के भय से या हानि के भय

से। और कभी कभी लम्पटता के द्वारा विवाहविषयक प्रेम की माया पैदा हो सके। विवाहविषयक प्रेम दो ब्याहे हुए सहभागियों में भिन्न भिन्न हो। उन में से एक में उस का न्यूनाधिक परिमाण हो सके और दूसरे में बहुत थोड़ा हो या कुछ भी न हो। और इस से एक की बांट स्वर्ग हो सके और दूसरे की बांट नरक।

३८२। सब से भीतरी स्वर्ग में यथार्थ विवाहविषयक प्रेम प्रबल है क्योंकि उस स्वर्ग के दूतगण भलाई और सचाई के विवाह में और निर्दोषता में भी रहते हैं। निचले स्वर्गों के दूतगण भी विवाहविषयक प्रेम में हैं परंतु केवल जहां तक कि वे निर्दोषता में हैं। क्योंकि विवाहविषयक प्रेम आप ही आप निर्दोषता की एक अवस्था है। और इस कारण विवाहित सहभागी जो विवाहविषयक प्रेम में हैं स्वर्गीय आनन्द को भोगते हैं जो कि उन के मनों को बालकों के निर्दोषी लीला विहार के समान देखने में आता है। क्योंकि हर एक वस्तु उन को प्रसन्न करती है इस वास्ते कि स्वर्ग अपने आनन्द के साथ उन के जीव की सब से सूक्ष्म बात में बहकर जाता है। इस कारण स्वर्ग में विवाहविषयक प्रेम सब से सुन्दर वस्तुओं के भेष में संवारा जाता है। मैं ने उस को एक कन्या के भेष में जिस की सुन्दरता अकथनीय थी और जो एक चमकीले बादल से घेरी हुई थी देखा था। और मुझ को यह बतलाया गया कि स्वर्ग में के दूतगण अपनी सारी सुन्दरता विवाहविषयक प्रेम से निकालते हैं। अनुराग और ध्यान जो उस से बहते हैं हीरे सरीखे चमकीले आकाशों के भेष में प्रकाशित होते हैं और वे ऐसी रीति से झलझलाते हैं कि मानों वे सर्पमणि और माणिक्य की चमक से झलकते हैं। और ऐसे ऐसे प्रतिरूपक भेषों के साथ ऐसे प्रकार के आनन्द हो लेते हैं जो मन के भीतरी भागों पर असर करते हैं। संक्षेप में स्वर्ग अपने को विवाहविषयक प्रेम के भेष में इस कारण से प्रकाशित करता है कि दूतों में स्वर्ग भलाई और सचाई का संयुक्त होना है। और यह संयोग विवाहविषयक प्रेम का कारण है।

३८२। स्वर्ग में के विवाहों और पृथिवी पर के विवाहों में इतनी भिन्नता है कि पृथिवी पर के विवाह अन्य प्रयोजनों के सिवाए सन्तान के जन्माने के लिये नियुक्त हुए थे। परंतु स्वर्ग में सन्तान के जन्माने के बदले भलाई और सचाई का जन्माना है। इस प्रकार का जनन पहिले प्रकार के जन्माने के स्थान में है क्योंकि स्वर्ग में का विवाह भलाई और सचाई का विवाह है। जैसा कि हम ऊपर बयान कर चुके हैं। और उस प्रकार के विवाह में भलाई और सचाई तथा उन का संयोग अन्य सब वस्तुओं से अधिक प्यार किया जाता है। इस कारण ये गुण स्वर्ग में के विवाहों से पैदा होते हैं और इसी हेतु से धर्मपुस्तक में उद्भव और जनन से तात्पर्य आत्मीय उद्भव और आत्मीय जनन है जो कि भलाई और सचाई के हैं। माता और पिता से सचाई का पैदा करनेवाली भलाई से संयुक्त होना तात्पर्य है। बेटों और बेटियों से तात्पर्य पैदा हुई सचाइयां और भलाइयां हैं। और दामादों और बहूओं से तात्पर्य उन गुणों का संयुक्त होना है। इत्यादि

इत्यादि[४६]। इस से स्पष्ट है कि स्वर्ग में के विवाह पृथिवी पर के विवाहों के समान नहीं हैं। स्वर्ग में के विवाह चात्मिक हैं और उन के नाम पाणिग्रहण रखना न चाहिये पर वे मनों के ऐसे संयोग हैं जो भलाई और सचाई के विवाह से पैदा होते हैं। परंतु पृथिवी पर वे सच मुच पाणिग्रहण होते हैं क्योंकि वे न केवल आत्माओं के संयोग हैं पर वे मांस के संयोग भी हैं। और जब कि स्वर्ग में कोई पाणिग्रहण नहीं होता तो वहां दो ब्याहे हुए सहभागी पति और पत्नी नहीं कहलाती। परंतु यह दूतविषयक बोध के अनुसार कि दो मनों का एक होना हर एक का ऐसा नाम रखा जाता है जो दोनों का परस्पर है। इन वाक्यों से यह मालूम हो सकता है कि प्रभु की बातों से ब्याह के बारे में जो लूका की इञ्जील के २० वें पर्व के ३५ वें और ३६ वें वचनों में हैं क्या समझना चाहिये।

३८३। मैं यह भी देखने पाया कि किस रीति से स्वर्ग में विवाह होते हैं। सारे स्वर्ग में जो लोग एक ही गुण के हैं संसृष्टि में होते हैं और जो लोग असदृश हैं अलग अलग रहते हैं। और इस लिये स्वर्ग की प्रत्येक सभा ऐसे दूतों की बनी है जो एक ही गुण के हैं। क्योंकि वे जो एक ही गुण के हैं आपस में एक दूसरे को खींचकर इकट्ठे होते हैं। और यह आकर्षण आप से नहीं होता परंतु प्रभु की ओर से है। न० ४१·४३·४४· इत्यादि को देखो। इसी रीति से विवाहविषयक सहभागी जिन के मन एक होने के योग्य हैं आपस में एक दूसरे को देखते ही अपने भीतरी जीव के द्वारा एक दूसरे को खींचकर मिल जाते हैं। और इस कारण वे एक दूसरे को प्यार करते हैं और यह ध्यान करके कि हम विवाहविषयक सहभागी हैं आपस में ब्याह करते हैं। पस इस से स्वर्ग में सब विवाह केवल प्रभु से होते हैं। हर एक विवाह के होने पर वे मंगलाचार करते हैं जिस में बहुतेरे लोग आकर एकट्ठे होते हैं। और ये मंगलाचार सभा सभा में भिन्न भिन्न हैं।

३८४। दूतगण पृथिवी पर के विवाह बहुत पवित्र और पाक जानते हैं क्योंकि वे विवाह मनुष्यजाति के बीजारोपस्थल होते हैं और इस लिये दूतगण के बीजारोपस्थल भी होते हैं। पहिले एक विशेष बाब में बयान हो चुका है कि

---

४६ गर्भाधान और जन्म और उद्भव और जनन से तात्पर्य आत्मीय गर्भाधान जन्म और उद्भव है जो कि भलाई और सचाई की उत्पत्ति है या प्रेम और श्रद्धा की उत्पत्ति है। न० ६१३· ११४५·११५५·२०२०·२५८४·३८६०·३८६८·४०७०·४६६८·६२३९·८०४२·९३२५·(१०१९७)। और इस से जनन और उद्भव से तात्पर्य श्रद्धा और प्रेम के द्वारा पुनर्जनन और पुनर्जन्म है। न० ५१६०·५५९८·९०४२·९८४५। माता से तात्पर्य कलीसिया सचाई के विषय है और इस से कलीसिया की सचाई भी है। और पिता से तात्पर्य कलीसिया भलाई के विषय है और इस से कलीसिया की भलाई भी है। न० २६९१·२७१७·३७०३·५५८०·८८९७। बेटों से तात्पर्य सचाई के अनुराग हैं और इस से सचाइयां आप हैं। न० ४८९·५९१·५३३·२६२३·३३७३· ४२५७·८६४९·९८०७। बेटियों से तात्पर्य भलाई के अनुराग हैं और इस से भलाइयां आप हैं। न० ४८९·४९०·४९१·२३६२·३९६३·६७२९·६७७५·६७७८·९०५५। दामाद से तात्पर्य भलाई के अनुराग की संयुक्त हुई सचाई है। न० २३८९। और बहू से तात्पर्य भलाई अपनी निज सचाई से संयुक्त हुई है। न० ४८४३।

स्वर्ग का होना मनुष्यजाति से है। दूतगण उन विवाहों को इस कारण पवित्र मानते हैं कि उन का एक आत्मीय मूल है अर्थात वे भलाई और सचाई के विवाह से होते हैं और इस वास्ते भी कि प्रभु का ईश्वरत्व विशेष रीति से विवाहविषयक प्रेम में बहकर जाता है। इस से विपरीत वे छिनाले को इस लिये अपवित्र जानते हैं कि वे विवाहविषयक प्रेम के विरुद्ध हैं। क्योंकि जैसा कि विवाहों में दूतगण भलाई और सचाई के विवाह को मानते हैं जो कि स्वर्ग आप है तो छिनालों में वे झुठाई और बुराई के विवाह को देखते हैं जो कि नरक है। इस वास्ते जब वे केवल छिनालों की सूचना सुनते हैं तब वे अपने को फिराते हैं। यह वही हेतु है कि जिस से स्वर्ग मनुष्य के विरुद्ध तब बन्द हो जाता है जब वह आनन्द के साथ छिनाला करता है। परंतु जब स्वर्ग उस के विरुद्ध बन्द हो जाता है तब वह न तो ईश्वरीय सत्ता अङ्गीकार करता है न कलीसिया की श्रद्धा का कुछ भी स्वीकार करता है[५०]। जो मण्डल कि इस अवस्था से चारों ओर पसरकर फैल जाता है और जो कि विवाहों के भ्रष्ट करने के लिये नित्य प्रयत्न करने के समान है उस मण्डल से मुझे इस बात के मालूम करने की शक्ति दी गई कि सब कोई जो नरक में हैं विवाहविषयक प्रेम के विरुद्ध हैं। और इस अनुभव से यह स्पष्ट है कि नरक का प्रधान आनन्द छिनाले का सुख है और छिनाले का सुख भलाई और सचाई के संयोग के भ्रष्ट करने का आनन्द भी है और स्वर्ग इस संयोग का बना है। इस से यह निकलता है कि छिनाले का सुख एक ऐसे नरकीय आनन्द है जो विवाह के सुख के संपूर्ण रूप से विरुद्ध है और यह एक स्वर्गीय आनन्द है।

३८५। वहां कोई कोई ऐसे आत्मा थे जो किसी व्यवहार के द्वारा कि जिस को उन्हों ने शरीर के जीने में उपार्जन किया था विशेष चतुराई के साथ एक ऐसे धीमे (या यों कहो लहराते) अन्तःप्रवाह से कि जो सुशील आत्माओं के अन्तःप्रवाह के सदृश था मुझे सताते थे। पर मैं ने मालूम किया कि उन में कपट छल आदि ऐसी ऐसी बुराइयां थीं जो उन को लुभाने और बहकाने के काम में उकसाती थीं। अन्त में मैं उन में से एक के साथ बोला जिन्हों ने मुझ से कहा कि वह जगत में सेनापति था। और मैं ने मालूम किया कि उस के ध्यान के बोधों में कुछ लम्पटता छिपी हुई थी इस कारण मैं ने उस के साथ विवाह के बारे में बात चीत की। मैं आत्मीय बोली में प्रतिरूपों के साथ कि जिन से बातों का अर्थ संपूर्ण रूप से प्रकाशित किया जाता है और एक क्षण में बहुत से बोध

---

५० छिनाले अपवित्र हैं। न० ९८६१ · १०१७४। स्वर्ग छिनलों के विरुद्ध बन्द हुआ है। न० २७५०। और वे जो छिनाला करने में सुख और आनन्द उठाते हों स्वर्ग में नहीं प्रवेश कर सकते। न० ५३९ · २७३३ · २७४७ · २७४८ · २७४९ · २७५१ · १०१७५। छिनले दयाहीन और बिना धार्मिक तत्त्व के हैं। न० ८२४ · २७४७ · २७४८। छिनलों के बोध मलीन हैं। न० २७४७ · २७४८। और परलोक में वे मल को प्यार करते हैं और मलीन नरकों में रहते हैं। न० २७५५ · ५३९४ · ५७२२। धर्मपुस्तक में छिनालों से तात्पर्य भलाई का खोटा करना है और लम्पटता से तात्पर्य सचाई का टेढ़ा करना है। न० २४६६ · २७२९ · ३३९९ · ४८६५ · ८९०४ · १०६४८।

कहे जाते हैं उस से बोला। उस ने कहा कि उस के शरीर के जीने में वह छिनालों को तुच्छ मानता था। परंतु मुझे ऐसा सामर्थ्य दिया गया कि मैं ने उस को कहा कि यद्यपि उस आनन्द से कि जिस से वे उस के सरीखे लोगों को लुभाते हैं और उस अनुमान से कि जिस को वह आनन्द पैदा करता है वे निन्दनयी नहीं मालूम होते पर स्वीकरणीय तो भी छिनाले अतिदुष्ट हैं। और उस को इस बात पर प्रतीति करनी चाहिये क्योंकि विवाह मनुष्यजाति के बीजारोपस्थल हैं और इस से स्वर्ग के राज के बीजारोपस्थल। और इस लिये विवाह कहीं भ्रष्ट करना न चाहिये पर पवित्र मानना चाहिये। और जब कि वह उस समय परलोक में था और चैतन्य की अवस्था में था तो उस को जानना चाहिये था कि विवाहविषयक प्रेम प्रभु से निकलकर स्वर्ग में होकर उतरता है और उस प्रेम से मानों एक पिता से परस्पर प्रेम होता है जो कि स्वर्ग का बलवान करनेवाला बन्धन होता है। और छिनले जब कि वे स्वर्गीय सभाओं के पास पहुंचते हैं तब वे अपनी कुवास को सूंघते हैं और वहां से अपने आप को नरक की ओर सिर के बल गिरा देते हैं। और कम से कम उस को यह जानना चाहिये था कि विवाहों के भ्रष्ट करना परमेश्वर के नियमों के विरुद्ध है और सब देशों के नीतिसंबन्धी नियमों के विरुद्ध भी है और तर्कशक्ति की यथार्थ ज्योति के विरुद्ध भी है। क्योंकि वह ईश्वरीय और मानुषक परिपाटी से विपरीत है और अन्य अन्य बातों के विरुद्ध है जिन की सूचना करने की कुछ आवश्यकता नहीं है। परंतु उस ने जवाब दिया कि उस के शरीर के जीने के समय उस ने इन बातों पर कुछ भी ध्यान नहीं किया। वह इस बात पर तर्कवितर्क करने को माइल था कि क्या यह सच है कि नहीं। परंतु उस को यह कहा गया कि सत्य तर्कवितर्क करने से बाहर है। क्योंकि तर्कवितर्क करना आनन्द बढ़ाता है और इस से बुराइयां और झुठाइयां बढ़ाता है। और उस को चाहिये कि उन बातों पर ध्यान करे जो अभी कही गईं क्योंकि वे सचाइयां हैं। और उस को इस सिद्धान्त के सहाय जो जगत में प्रबल है ध्यान करना चाहिये कि कोई दूसरों के वास्ते कोई ऐसा काम न करे जिस को वह अपने वास्ते दूसरों से करना स्वीकार न करे। यदि कोई छिनला उस की स्त्री को कि जिस को वह प्यार करता था जैसा कि हर एक मनुष्य पहिले विवाह के समय अपनी स्त्री को प्यार किया करता है सन्मार्गभ्रष्ट करे तो वह छिनालों से घृणा करे। और यदि वह उस दुष्टता के कारण क्रोध करके बोले तो वह एक बलवान और साहसी मनुष्य के सदृश औरों की अपेक्षा अपने को छिनालों की दुष्टता के विश्वास पर अधिक प्रतीति करेगा और छिनलों को नरक जाने का दण्ड देगा।

३८६। मुझे यह बतलाया गया कि किस रीति से विवाहविषयक प्रेम के आनन्द स्वर्ग की ओर बढ़ते जाते हैं और छिनालों के आनन्द नरक की ओर। विवाहविषयक प्रेम के आनन्दों का प्रगमन स्वर्ग की ओर परमसुखों और आनन्दों की संख्या के नित्य बढ़ जाने से किया जाता था यहां तक कि वे असंख्य और अकथनीय हो गये। और जितना वे भीतरी मार्ग पर बढ़ते जाते थे उतना ही वे

अधिक असंख्य और अधिक अकथनीय हो जाते थे जब तक कि वे सब से भीतरी स्वर्ग के परमसुखों और आनन्दों ही को न पहुंचे जो कि निर्दोषता का स्वर्ग है। यह सब संपूर्ण स्वतन्त्रता के साथ किया गया। क्योंकि सारी स्वतन्त्रता प्रेम से होती है। और इस कारण सब से संपन्न स्वतन्त्रता विवाहविषयक प्रेम है जो कि स्वर्गीय प्रेम आप है। परंतु छिनाले का प्रगमन नरक की ओर था और क्रम क्रम करके सब से नीचे नरक की ओर (जहां घोर और भयानक वस्तुओं को छोड़ कुछ भी नहीं है) चला जाता था। यह वही अवस्था है कि जिस में छिनले छिनाल इस जगत में जीने के पीछे पड़ जाते हैं। और छिनले की बात से यह तात्पर्य है कि वे लोग जो छिनालों में आनन्द भोगते हैं पर विवाहों में कुछ भी सुख नहीं पाते।

स्वर्ग में के दूतगण के व्यवहारों के बारे में।

३८७। स्वर्ग में के व्यवहारों का जातित्व से गणना करना या बयान करना असम्भव है क्योंकि वे असंख्य हैं और हर एक सभा के विशेष प्रयोजनों के अनुसार वे भिन्न भिन्न होते हैं। परंतु उन के बारे में साधारण रूप से कुछ कहा जा सकता है। हर एक सभा का कोई विशेष प्रयोजन है क्योंकि जैसा कि सभाएं भलाइयों के अनुसार भिन्न भिन्न हैं (न० ४१ को देखो) तैसा ही वे प्रयोजनों के अनुसार भी भिन्न भिन्न हैं। इस वास्ते कि भलाइयां स्वर्ग के सब रहनेवालों के विषय में कार्यों की भलाइयां हैं और कार्यों की भलाइयां प्रयोजन हैं। वहां पर हर कोई कुछ प्रयोजन काम में लाता है क्योंकि प्रभु का राज प्रयोजनों का एक राज है[५१]।

३८८। स्वर्ग में पृथिवी के तौर पर कई एक कर्मनिर्वाह हैं क्योंकि वहां कलीसियासंबन्धी कार्य होते हैं नीतिसंबन्धी कार्य भी हैं और गृहसंबन्धी कार्य हैं। देवकीय पूजा करने के बारे में उन बातों से जो ऊपर न० २२१ से २२७ तक हो चुकी हैं स्पष्ट रूप से देख पड़ता है कि स्वर्ग में कलीसियासंबन्धी कार्य होते हैं। और न० २१३ वें परिच्छेद से २२० वें परिच्छेद तक उन बातों से जो स्वर्ग में के राज्यों के विषय में कही गई थीं नीतिसंबन्धी कार्यों का होना मालूम हुआ। और दूतगण के घरों और मकानों के बारे में उन बातों से जो न० १८३ वें से १९० वें तक के परिच्छेदों में लिखी गई थीं गृहसंबन्धी कार्यों का होना स्पष्ट रूप से दिखाई दिया। और स्वर्ग में के विवाहों का बयान न० ३६६ वें से ३८६ वें तक के परिच्छेदों में है। इस से स्पष्ट है कि हर एक स्वर्गीय सभा में कई एक व्यवसाय और कर्मनिर्वाह होते हैं।

---

५१ प्रभु का राज प्रयोजनों का एक राज है। न० ४५४ · ६९६ · ११०३ · ३६४५ · ४०५४ · ७०३८। प्रभु की सेवा करना प्रयोजनों का काम में लाना है। न० ७०३८। परलोक में सब कोई प्रयोजनों को काम में लाते हैं। न० ६९६। सब कोई अपने गुण को उन प्रयोजनों से निकालते हैं जिन को वे काम में लाते हैं। न० ४०५४ · ६८१५। इस बात का एक उदाहरण। न० ७०३८। दूतविषयक परमसुख अनुग्रह करने की भलाइयों का बना है और इस से प्रयोजनों के काम में लाने का। न० ४५४।

३८९। स्वर्ग में सब कुछ ईश्वरीय परिपाटी के अनुसार प्रस्तुत है। जो कि हर कहीं दूतगण के कर्मनिर्वाहों के द्वारा रक्षित होता है। विद्वान दूतगण उन वस्तुओं की रक्षा करते हैं जो साधारण भलाई या प्रयोजन के काम में आता हैं और कम विद्वान दूतगण उन वस्तुओं की रक्षा करते हैं जो विशेष भलाई से या विशेष प्रयोजन से संबन्ध रखती हैं। इत्यादि इत्यादि। सब कोई आपस में एक दूसरे के अधीन है जैसा कि प्रयोजन ईश्वरीय परिपाटी के अधीन आप है। और इस से हर एक व्यवसाय की महिमा उसी व्यवसाय के प्रयोजन की महिमा के अनुसार है। तो भी कोई दूत अपने आप पर महिमा नहीं लगाता पर सारी महिमा प्रयोजन पर लगाता है। और जब कि प्रयोजन वही भलाई है जो वह काम में लाता है और सारी भलाई प्रभु से होती है तो वह सब महिमा प्रभु को देता है। इस कारण जो कोई महिमा के विषय यह ध्यान करता है कि महिमा मुझ में से होकर प्रयोजन पर लगती है न कि प्रयोजन में से होकर मुझ पर लगती है वह स्वर्ग में कुछ भी कार्य नहीं कर सकता। क्योंकि वह अपने को ऊंचे पद पर रखकर और प्रयोजन नीचे पद पर रख देने के द्वारा प्रभु की ओर से पीछे देखता है। जब हम प्रयोजन की बात काम में लाते हैं तब उस से तात्पर्य प्रभु भी है इस वास्ते कि जैसा कि हम अभी कह चुके हैं प्रयोजन भला है और सब भलाई प्रभु से निकलती है।

३९०। स्वर्ग में की अधीनताओं के स्वभाव और गुण का इन बातों से अनुमान किया जा सकता है अर्थात जितना कोई प्रयोजन को प्यार करता है और आदर करता है और संमान करता है उतना ही वह उस व्यक्ति को प्यार करता है और आदर करता है और संमान करता है जिस से वह प्रयोजन संयुक्त है। और जितना वह व्यक्ति अपने पर प्रयोजन की महिमा न लगाकर उस को प्रभु को देती है उतना ही वह व्यक्ति प्यार की जाती है और उस का आदर संमान किया जाता है। क्योंकि वह उतना ही विद्वान है और जो प्रयोजन वह काम में लाता है सो भलाई के एक तत्त्व से होते हैं। आत्मीय प्रेम और आदर और संमान उस प्रयोजन के प्रेम और आदर और संमान को छोड़ जो उस व्यक्ति में है कि जो उस को काम में लाता है और कुछ नहीं है। और उस व्यक्ति की महिमा प्रयोजन से निकलती है न कि प्रयोजन की महिमा व्यक्ति से होती है। वह जो मनुष्यों को आत्मीय सचाई की ओर से देखता है उन को और किसी रीति से नहीं मानता। क्योंकि वह यह देखता है कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के समान है चाहे वह ऊंचे पद पर हो चाहे नीचे पद पर। और वह यह भी देखता है कि मनुष्य केवल ज्ञान मात्र से भिन्न भिन्न हैं। और ज्ञान प्रयोजन के प्यार करने का बना है और इस से हमारे सहदेशी की ओर लोकसमूह की ओर हमारे देश की ओर कलीसिया की भलाई के प्यार करने का। प्रभु का प्यार करना भी इस में है क्योंकि सब भलाई कि जो प्रयोजन की भलाई है प्रभु की ओर से है। पड़ोसी की ओर का प्रेम भी ऐसा ही है क्योंकि हमारा पड़ोसी वह भलाई है जो सहदेशी में

और लोकसमूह में और हमारे देश में और कलीसिया में प्यार होने के योग्य है और जो उन का कर्तव्यकर्म है[५२]।

३९१। स्वर्गों में की सब सभाएं अपने प्रयोजनों के अनुसार भिन्न भिन्न हैं क्योंकि वे अपनी भलाइयों के अनुसार भिन्न भिन्न हैं। जैसा कि हम न० ४१ आदि परिच्छेदों में कह चुके हैं। और वे भलाइयां क्रियाओं में की भलाइयां हैं अर्थात अनुग्रह की भलाइयां हैं जो कि प्रयोजन हैं। ऐसी सभाएं होती हैं जिन का स्व-धर्म बालबच्चों का पालन करना है। अन्य अन्य सभाएं हैं जिन का यह काम है कि ज्यों ज्यों बालक बड़े होते जाते हैं त्यों त्यों उन को शिक्षा देती हैं। कोई सभाएं ऐसे तौर पर उन यौवनों को शिक्षा देती हैं जिन्हों ने जगत में शिक्षा से अच्छे स्वभाव को पाया है और जो इस हेतु से स्वर्ग में आते हैं। कोई सभाएं ईसवी मण्डल के भले लोगों को सिखलाती हैं और उन को स्वर्ग के मार्ग से ले जाती हैं। कोई सभाएं जेण्टाइल के देश देश के लिये वैसा ही काम करती हैं। कोई सभाएं नवशिष्यत्व के आत्माओं को (अर्थात उन को जो थोड़े दिनों से जगत में से आए थे) बुरे आत्माओं के सताने से बचाती हैं। कोई भी उन के साथ हो लेती हैं जो नीची पृथिवी पर रहते हैं और कोई उन के साथ विद्यमान हैं जो नरक में हैं इस वास्ते कि वे आत्मा आपस में एक दूसरे को नियुक्त अवधि से अधिक यातना करने में रोका जावें। कोई भी हैं जो उन के पास विद्यमान हैं जो मरी हुई अवस्था से खड़े हो जाते हैं। प्रायः हर एक सभा के दूतगण मनुष्यों के पास भेजे जाते हैं इस वास्ते कि वे उन की रक्षा करें और उन को बुरे अनुरागों की ओर से और इस से बुरे ध्यानों की ओर से ले जावें और उन में भले अनुराग भरें यहां तक कि वे उन अनुरागों को मन से ग्रहण करने को स्वीकार करते हैं। ऐसे अनु-रागों के द्वारा वे मनुष्यों के कार्यों या क्रियाओं का अनुशासन करते हैं और उन से जितना बन पड़े बुरे अभिप्रायों को दूर करते हैं। जब दूतगण मनुष्य के पास विद्यमान हैं वे मानों उस के अनुरागों में रहते हैं और जितना वह उस भलाई में है जो सचाइयों से निकलती है उतना ही वे उस के पास हैं परंतु जितना उस

---

५२ पड़ोसी का प्यार करना उस के शरीर का प्यार करना नहीं है पर उस को प्यार करना जो उस से संबन्ध रखता है और जिस का वह बना हुआ है। न० ५०२५ · १०३३६। क्योंकि वे जो शरीर को प्यार करते हैं न कि वह जो शरीर से संबन्ध रखता है और जिस का मनुष्य बना है बुराई और भलाई दोनों एकसां प्यार करते हैं। न० ३८२०। और वे बुराई और भलाई दोनों का उपकार करते हैं तो भी बुरों का हित करना भलों की हानि करना है और यह पड़ोसी को प्यार करना नहीं है। न० ३८२० · ६७०३ · ८१२०। न्यायाधीश जो बुरों को मार खिलाता है इस वास्ते कि वे भले हो जावें और उन के बिगाड़ने से और हानि करने से भले लोगों को बचाता है अपने पड़ोसी को प्यार करता है। न० ३८२० · ८१२० · ८१२१। हर एक मनुष्य और प्रत्येक सभा और हमारा देश और कलीसिया और सर्वसंबन्धी अर्थ के अनुकूल प्रभु का राज भी सब के सब हमारे पड़ोसी हैं। और उन की अवस्था के गुण के अनुसार उन का हित करना भलाई करने के प्रेम हो से हमारे पड़ोसी को प्यार करना है। इस कारण उन का हित जिस का करना हमारा कर्तव्य है सो भी हमारा पड़ोसी है। न० ६८१८ से ६८२४ तक · ८१२३।

का जीव भलाई से दूर है उतना ही वे उस से दूर रहते हैं[५३]। दूतगण के ये सब व्यवसाय कर्म हैं जो प्रभु उन की सहायता से करता है। क्योंकि दूतगण उन कार्यों को आप से नहीं करते पर प्रभु की आज्ञा से। और इस लिये धर्मपुस्तक में प्राकृतिक अर्थ के अनुसार दूतगण की बात से तात्पर्य दूतगण नहीं है परंतु कुछ कुछ प्रभु की ओर से। और इसी हेतु से धर्मपुस्तक में दूतगण देवता कहलाते हैं[५४]।

३९२। दूतगण के ये स्वधर्म उन के साधारण स्वधर्म कहाते हैं परंतु हर एक दूत का कोई निज विशेष धर्म है। क्योंकि हर एक साधारण प्रयोजन में असंख्य अन्य प्रयोजन समाते हैं जिन का नाम मध्यवर्त्ती और अनुवर्त्ती और उपयोगी रखा है। ये सब मिलके और इन में से हर एक पृथक पृथक ईश्वरीय परिपाटी के अनुकूल समपदस्थ और अप्रधान हैं और सब मिलके वे साधारण प्रयोजन होते हैं और इन प्रयोजनों को संपन्न करते हैं। और यह साधारण भलाई है।

३९३। स्वर्ग में कलीसिया के कार्य उन के अधीन हैं जो जगत में धर्मपुस्तक को प्यार करते थे और उस की सचाइयों के खोज में उत्ताप से जांचते थे। न कि संमान के या लाभ के लिये पर अपने और दूसरों के निमित्त जीवन के प्रयोजनों के लिये। ये लोग प्रयोजनों के लिये अपने प्यार और इच्छा करने के अनुसार प्रकाश में और स्वर्ग में के ज्ञान की ज्योति में रहते हैं। क्योंकि वे धर्मपुस्तक की ओर से स्वर्गों में की उस ज्योति में आते हैं जो कि वहां प्राकृतिक नहीं हैं जैसा कि वह जगत में है पर आत्मिक है। (न० २५९ को देखो)। वे धर्मोपदेशक का काम करते हैं और ईश्वरीय परिपाटी के अनुसार वे ऊंची जगह पर बैठते हैं जो प्रकाशन करने से ज्ञान में औरों से श्रेठ होते हैं। परंतु नीतिसंबन्धी कार्य उन के अधीन हैं जो जगत में अपने निज लाभ की अपेक्षा अपने देश को और अपने देश के सर्वसाधारण हित को अधिक प्यार करते थे और न्याय और सचौटी के लिये धार्मिक और न्यायी चाल पर चलते थे। ऐसे मनुष्य स्वर्ग में उतना ही नीतिसंबन्धी कार्यों के निवाह करने के योग्य हैं जितना उन में सचौटीविषयक प्रेम न्याय के नियमों के जांचने की इच्छा पैदा करता है और इस से

---

५३ उन दूतगण के बारे में जो बालबच्चों की सेवा करते हैं और पीछे क्रम करके लड़कों की सेवा करते हैं। न० २३०३। मनुष्य मरी हुई अवस्था से दूतगण के द्वारा खड़ा हो जाता है। इस का प्रमाण परीक्षा करने से। न० १६८ से १८९ तक। दूतगण उन के पास भेजे जाते हैं जो नरकों में हैं इस वास्ते कि नरकनिवासी आपस में एक दूसरे को अति यातना करने से रोके जावें। न० ९६७। दूतगण का स्वधर्म उन मनुष्यों के विषय जो परलोक में आते हैं। न० २१३१। आत्मागण और दूतगण मनुष्य के पास खड़े रहते हैं और मनुष्य उन के द्वारा प्रभु की आज्ञा के अनुसार लाया जाता है। न० ५० • ६९७ • २७९६ • २८८७ • २८८८ • ५८४७ से ५८६६ तक ५९७६ से ५९९३ तक • ६२०९। बुरे आत्मागण दूतगण के बस हैं। न० १७५५।

५४ धर्मपुस्तक में दूतगण की बात से कोई ईश्वरीय वस्तु जो प्रभु की ओर से निकलती है प्रकाशित होती है। न० १९२५ • २८२१ • ३०३९ • ४०८५ • ६२८० • ८१९२। और धर्मपुस्तक में प्रभु की ओर से निकलनेवाली ईश्वरीय सचाई और भलाई को अपने ग्रहण करने के कारण देवता कहलाते हैं। न० ४२९५ • ४४०२ • ८१९२ • ८३०१।

उन को बुद्धिमान करता है। और जिन कार्यों का निवाह वे करते हैं सो उन की बुद्धि के परिमाण से ठीक ठीक प्रतिरूपक हैं और उन की बुद्धि उन के प्रेम के तुल्य सर्वसाधारण हित के लिये होती है। उन कार्यों के सिवाए स्वर्ग में इतने कार्योद्योग और इतने राज्य और इतने व्यवसाय भी होते हैं कि उन की अति संख्या के कारण उन की गणना करना असम्भव है। परंतु जगत में उन की संख्या उपमापूर्वक थोड़ी है। सब दूतगण चाहे जितने बहुसंख्यक हों अपने काम और व्यवसाय में जो प्रयोजन के प्रेम से निकलता है आनन्द पाते हैं। और उन में से कोई दूत आत्मप्रेम से या लाभप्रेम से आनन्द नहीं पाता। और न कोई अपनी जीविका के निमित्त लाभ के प्रेम के द्वारा प्रवर्त्तित होता है। क्योंकि जीवन की सब आवश्यकताएं उन को संत मेंत दी जाती है अर्थात घर पोशाक और आहार उन को संत में मिलता है। पस इस लिये स्पष्ट है कि वे जो अपने को और जगत को प्रयोजन की अपेक्षा अधिक प्यार करते हैं स्वर्ग में कोई जगह नहीं पाते। क्योंकि हर एक मनुष्य का प्रेम या अनुराग उस के इस जगत में के जीव के पीछे साथ रहता है और वह अनन्तकाल तक भी कभी नहीं विनाश प्राप्त होता है। (न० ३६३ को देखो)।

३९४। स्वर्ग में हर कोई प्रतिरूपता के अनुसार अपने काम को पाता है। और यह प्रतिरूपता काम ही से नहीं होती पर काम के प्रयोजन से। (न० ११२ को देखो)। और सब वस्तुएं आपस में एक दूसरे से प्रतिरूपता रखती है। (न० १०६ को देखो)। वह जो स्वर्ग में अपने प्रयोजन के किसी प्रतिरूपक काम में लगता है जीव की एक ऐसी अवस्था में है जो उस अवस्था के ठीक समान है कि जिस में वह था जब कि वह जगत में रहता था (क्योंकि जो कि आत्मिक है और जो कि प्राकृतिक है दोनों एक होकर प्रतिरूपों के द्वारा काम करते हैं) पर उन की अवस्थाओं में यह भिन्नता है कि स्वर्ग में वह अधिक भीतरी आनन्द में रहता है इस वास्ते कि वह आत्मीय जीवन में है (जो कि भीतरी जीवन है) और इस लिये वह स्वर्गीय परमसुख को अधिक ग्रहण करने के योग्य है।

स्वर्गीय हर्ष और आनन्द के बारे में।

३९५। स्वर्ग का स्वभाव और स्वर्गीय हर्ष इन दिनों में प्रायः किसी को ज्ञात नहीं हैं। क्योंकि उन को जिन्हों ने इस प्रसङ्ग पर ध्यान किया ऐसा स्थूल और साधारण बोध है कि वह कठिनता से एक बोध कहा जा सकता है। मुझ को उन आत्माओं से जो जगत से जाकर परलोक में पहुंचे थे स्वर्ग के और स्वर्गीय हर्ष के विषय उन का ठीक ठीक बोध बतलाया गया। क्योंकि जब वे आप से आप ध्यान करते हैं तब वे उस रीति से ध्यान करते हैं जिस रीति से वे जगत में ध्यान करते थे। यह बात नहीं ज्ञात है कि स्वर्गीय हर्ष कौन सी वस्तु है क्योंकि जिन्हों ने उस प्रसङ्ग पर सोच विचार किया उन्हों ने उन बाहरी हर्षों से अपना

निर्णय निकाला जो प्राकृतिक मनुष्य के हैं और उन्हों ने भीतरी या आत्मीय मनुष्य के विषय कुछ भी नहीं जाना और इस लिये उस के हर्ष और परमसुख के बारे में भी कुछ नहीं जाना। यदि वे जो आत्मीय या भीतरी आनन्द में हैं उन को स्वर्गीय हर्ष का ठीक स्वभाव कहें तो वे उस को समझ न सकें। क्योंकि उस के समझने के लिये ऐसे बोधों की आवश्यकता है कि उन को ज्ञात नहीं हैं और इस लिये उन की समझ में नहीं आ सकते और इस कारण वह हर्ष उन वस्तुओं में है जो प्राकृतिक मनुष्य अनङ्गीकार करता है। तो भी हर कोई यह जान सकता है कि जब वह बाहरी या प्राकृतिक मनुष्य को छोड़ता है तब वह भीतरी या आत्मीय मनुष्य में आता है। और इस लिये स्वर्गीय आनन्द भीतरी और आत्मीय है न कि बाहरी और प्राकृतिक। और जब कि वह भीतरी और आत्मीय है तो वह प्राकृतिक आनन्द की अपेक्षा अधिक पवित्र और अधिक उत्कृष्ट होता है। क्योंकि वह मनुष्य के भीतरी भागों पर असर करता है जो कि उस के जीव के या आत्मा के हैं। केवल इन बातों ही से हर कोई यह निर्णय कर सकता है कि परलोक में उस के आनन्द का ऐसा गुण होगा जो इस जगत में उस के आत्मा के आनन्द का है। और शरीर का आनन्द जो कि मांस का आनन्द कहलाता है स्वर्गीय नहीं है। जो कि मनुष्य के आत्मा में है सो उस समय उस के साथ रहता है जब वह मरने के पीछे शरीर को छोड़ता है। क्योंकि उस समय वह मानुषक आत्मा बनकर जीता है।

३९६। सब आनन्द प्रेम से बहते हैं। क्योंकि जो कुछ कोई मनुष्य प्यार करता है सो उस को आनन्ददायक मालूम होता है। और अन्य किसी मूल से कुछ भी आनन्द नहीं पैदा होता है। और इस से यह निकलता है कि जैसा प्रेम है वैसा ही आनन्द भी है। शरीर के या मांस के आनन्द सब के सब आत्मप्रेम से और जगत प्रेम से बहकर निकलते हैं जो कि स्वार्थित्व के और सहचारी आनन्दों के मूल हैं। परंतु जीव के या आत्मा के आनन्द सब के सब प्रभु को प्यार करने से और पड़ोसी के अनुग्रह करने से बहते हैं जो कि भलाई और सचाई के अनुरागों के और भीतरी प्रसन्नता के मूल हैं। ये प्रेम अपने आनन्दों के साथ प्रभु की ओर से अन्दर बहते हैं और स्वर्ग की ओर से किसी ऐसे भीतरी मार्ग से जो ऊपर से चलता है बहकर भीतरी भागों पर असर करते हैं। परंतु पहिले प्रेम अपने आनन्दों के साथ मांस की ओर से और जगत की ओर से किसी ऐसे बाहरी मार्ग से जो नीचे से चलता है अन्दर बहकर बाहरी भागों पर प्रभाव करते हैं। इस कारण जितना ये दो प्रेम ग्रहण किये जाते हैं और मनुष्य पर असर करते हैं उतना ही मनुष्य के भीतरी भाग जो जीव से या आत्मा से संबन्ध रखते हैं खुले हुए हैं और जगत की ओर से स्वर्ग को देखते हैं। परंतु जितना जगत के वे दो प्रेम ग्रहण किये जाते हैं और मनुष्य पर असर करते हैं बाहरी भाग जो शरीर से या मांस से संबन्ध रखते हैं खुले हुए और स्वर्ग की ओर से जगत को देखते हैं। जब कि प्रेम अन्दर बहते हैं और ग्रहण किये जाते हैं तो उन के आनन्द भी उन के साथ अन्दर बहते हैं। स्वर्ग के

आनन्द भीतरी भागों में बहते हैं और जगत के आनन्द बाहरी भागों में। क्योंकि (जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं) सारा आनन्द प्रेम से निकलता है।

३९७। स्वर्ग तो आनन्दों से इतना पूरित है कि यदि उस पर पृथक रूप से ध्यान किया जावे तो वह आनन्द और परमसुख के सिवाए और कुछ नहीं है। क्योंकि ईश्वरीय भलाई जो प्रभु के ईश्वरीय प्रेम से निकलती है हर एक दूत के निकट स्वर्ग का साधारण रूप और उस का विशेष रूप भी होती है। और ईश्वरीय प्रेम भीतरी तत्त्वों से और संपूर्ण रूप से सभों की मुक्ति और आनन्द की इच्छा करने का बना हुआ है। इसी हेतु से चाहे हम स्वर्ग के विषय बोलें चाहे स्वर्गीय आनन्द के विषय दोनों एक ही बात हैं।

३९८। स्वर्ग के आनन्द अकथनीय और असंख्य हैं। परंतु वे कहीं असंख्य क्यों न हों तो भी उन में से एक भी उस को जो केवल शरीर के या मांस के आनन्द मात्र में है न तो ज्ञात हो सके न विश्वास किया जा सके। इस वास्ते कि (जैसा कि हम अभी कह चुके हैं) उस के भीतरी भाग स्वर्ग की ओर से जगत को देखते हैं और इस कारण पीछे को देखते हैं। क्योंकि वह जो शरीर के या मांस के आनन्द में संपूर्ण रूप से मग्न हो या (और यह उस से एक ही बात है) आत्मप्रेम में और जगतप्रेम में मग्न हो प्रधानता और लाभ और शरीर के या इन्द्रियों के विषयी आनन्दों को छोड़ अन्य किसी वस्तु में कुछ भी हर्ष हुलास नहीं भोगता। परंतु ये आनन्द भीतरी आनन्दों को जो स्वर्ग के हैं यहां तक बुझाते हैं और दबाते हैं कि उन के होने पर प्रतीति का विनाश भी कर डाला जाता है। इस कारण ऐसे मनुष्य यदि कोई उन को यह बात कहे कि अगर प्रधानता और लाभ के आनन्द दूर भी हों तो भी अन्य अन्य आनन्द हो रहें निपट अचरज करेंगे। और यदि उन को यह बात कही जावे कि स्वर्ग के आनन्द जो प्रधानता के और लाभ के स्थान में क्रम से पीछे आते हैं असंख्य हैं और ऐसे स्वभाव के हैं कि शरीर के और मांस के आनन्द जो प्रायः प्रधानता के और लाभ के भी हैं उन से उपमा नहीं दिये जा सकते तो उन को अधिक भी अचरज होगा। अब यह स्पष्ट है कि किस वास्ते स्वर्गीय आनन्द का स्वभाव ज्ञात नहीं होता।

३९९। स्वर्ग के आनन्द का उत्तमत्व केवल इस बात ही से देख पड़े कि स्वर्ग के सब रहनेवालों को अपने आनन्द और परमसुख आपस में परस्पर देना एक बहुत ही सुखदायक काम है। और जब कि स्वर्ग में सभों का वही लक्षण है तो स्पष्ट है कि उस का कैसा अपरिमाण आनन्द होगा। क्योंकि (जैसा कि न० २६८ वें परिच्छेद में बयान हो चुका है) स्वर्ग में सभों का हर एक से और हर एक का सभों से संसर्ग होता है। ऐसा संसर्ग स्वर्ग के उन दो प्रेमों से निकलकर बहता है जो कि (जैसा कि अभी कहा गया है) प्रभु को प्यार करना और पड़ोसी का अनुग्रह करना है। और इन दो प्रेमों का ऐसा स्वभाव है कि वे औरों को अपने निज आनन्द देते हैं। क्योंकि प्रभु की ओर का प्रेम संप्रदानशील है

इस वास्ते कि प्रभु का प्रेम वही प्रेम है कि जिस से प्रभु अपनी सब वस्तुएं अपनी सब प्रजाओं को दे देता है क्योंकि वह सभों के सुख की इच्छा करता है। और ऐसा प्रेम हर एक व्यक्ति में है जो उस को प्यार करता है इस हेतु से कि प्रभु उन में है। और इस कारण हर एक दूत से सब दूतों तक और सभों से हर एक तक आनन्दों का एक परस्पर संसर्ग बहता जाता है। पीछे आनेवाली बातों से यह देखा जावेगा कि पड़ोसी की ओर का प्रेम ऐसे ही स्वभाव का है। इस से स्पष्ट है कि उन प्रेमों का ऐसा स्वभाव है कि वे अपने आनन्दों को दे देते हैं। परंतु आत्मप्रेम की और जगतप्रेम की और ही अवस्था है। क्योंकि आत्मप्रेमी औरों से सब प्रकार का आनन्द ले लेता है और हर लेता है और सब कुछ अपने में स्थापित करता है क्योंकि वह केवल अपने आप का हित चाहता है। और जगतप्रेमी अपने पड़ोसी के धन को अपने बस करना चाहता है। और इसी हेतु उन प्रेमों का ऐसा स्वभाव है कि वे औरों के आनन्दों का विनाश करते हैं। जब वे संप्रदानशील हो जाते हैं तब वे अपने निमित्त ऐसे शील का प्रकाशन करते हैं न कि औरों के निमित्त। और इस कारण वे औरों के विषय संप्रदानशील नहीं हैं पर विनाशक हैं। सिवाए इस के कि औरों के आनन्द उन से संबन्ध रखते हैं या उन में रहते हैं। बार बार मैं यथार्थ परीक्षा करने से मालूम करने पाया कि जब आत्मप्रेम और जगतप्रेम आधिपत्य करते हैं तब वे वैसे गुण के हैं। क्योंकि जब आत्मा जो इन तत्त्वों के अधीन हुए जब कि वे मनुष्य के रूप पर जगत में रहते थे मेरे पास आते थे तब मेरा आनन्ददायक ज्ञानसाधन दूर होकर लोप हुआ। और मुझ को यह भी कहा गया कि यदि वे किसी स्वर्गीय सभा के पास पहुंचें तो उस सभा की सब व्यक्तियों का आनन्द न्यून हो जाता है ठीकों ठीक उन की निकटता के अनुसार। और अचरज की बात यह है कि उस समय वे बुरे आत्मा आनन्दित हो रहे हैं। इस से ऐसे मनुष्यों के आत्माओं का गुण जब कि वे शरीर में थे स्पष्ट रूप से दिखलाया गया है। क्योंकि वह उस गुण के समान है जो शरीर से अलग होने के पीछे होता है। अर्थात वे आत्मागण औरों का आनन्द या धन की इच्छा करते हैं या लुभाते हैं। और जहां तक कि वे उन वस्तुओं को पाते हैं वहां तक वे आनन्दित हैं। इस कारण आत्मप्रेम और जगतप्रेम स्वर्ग के आनन्दों के विनाशकारी होते हैं। और इसी हेतु से वे स्वर्गीय प्रेमों के जो संप्रदानशील होते हैं संपूर्ण रूप से विरुद्ध हैं।

४००। यह कहना चाहिये कि वह आनन्द जिस को आत्मप्रेमी और जगतप्रेमी लोग भुगतते हैं जब कि वे किसी स्वर्गीय सभा के पास जाते हैं उन के रतार्थित्व का आनन्द है और इस लिये स्वर्ग के आनन्द के संपूर्ण रूप से विरुद्ध है। क्योंकि वे अपने रतार्थित्व के आनन्द में तब आ जाते हैं जब वे स्वर्गीय आनन्द को उन लोगों से जो उस में हैं हर लेते हैं या दूर करते हैं। परंतु जब वह हर लेना और दूर करना सिद्ध न हो तब और ही अवस्था है। क्योंकि उस समय वे निकट नहीं पहुंच सकते इस वास्ते कि जितना वे पहुंचते जाते हैं उतना

ही वे यातनाग्रस्त और पीड़ाग्रस्त होते जाते हैं। और इस कारण वे विरल इतना साहस करते कि वे निकट जावें। इस बात के जानने की योग्यता भी मुझ को बहुत परीक्षा करने से ही गई। उस परीक्षा करने के मैं कई एक उदाहरणों का बयान करता हूं।

आत्मागण जो जगत से परलोक में आते हैं इस बात से अधिक उत्ताप से कुछ नहीं चाहते कि वे स्वर्ग में प्रवेश करने की आज्ञा पावें। प्रायः सब के सब प्रवेश करने की प्रार्थना करते हैं क्योंकि वे यह कल्पना करते हैं कि केवल पैठ जाने का और ग्रहण किये जाने का मात्र स्वर्ग बना है। और इस कल्पना और दृढ़ इच्छा के कारण वे सब से नीचे स्वर्ग में की किसी सभा को लाए जाते हैं। परंतु जब वे जो आत्मप्रेम में और जगतप्रेम में हैं स्वर्ग के पहिले द्वार के पास पहुंचते हैं तब वे इतने व्याकुल हो जाते हैं और उन के भीतरी भागों में इतनी यातना पड़ती है कि वे अपने में स्वर्ग के बदले नरक से उपहत होते हैं। और इस कारण वे अपने तईं सिर के बल नीचे गिरा देते हैं और जब तक कि वे अपने सरीखे आत्माओं में न पहुंचें तब तक वे विश्राम न पावें। यह भी बहुधा हुआ कि ऐसे आत्मागण स्वर्गीय आनन्द के स्वभाव को जानने की इच्छा करते हैं और जब वे यह सुनते हैं कि वह दूतगण के भीतरी भागों में है तब वे चाहते हैं कि वह आनन्द उन को दिया जावे। और यह दान भी दिया गया है (क्योंकि जिस वस्तु की इच्छा कोई आत्मा जो न तो स्वर्ग में है न नरक में करता है सो उस को दिया जाता है इस होड़ पर कि वह दान देना किसी भले काम के सिद्ध होने का उपकार करता है) तो भी जब उन को यह वर दिया गया था तब उन पर इतनी तीव्रता से यातना पड़ी कि उस पीड़ा के द्वारा वे यह नहीं जानते थे कि वे अपने शरीरों को किस ढंग से धर दें। पीड़ के मारे वे अपने सिरों को पाओं से मिला देते थे और अपने को भूमि पर डालकर सांप की रीति से मरोड़ा करते थे। उन पर जो आत्मप्रेम के और जगतप्रेम के आनन्दों में थे स्वर्गीय आनन्द ऐसा प्रभाव हुआ इस लिये कि वे प्रेम स्वर्गीय प्रेमों के संपूर्ण रूप से विरुद्ध हैं और जब एक विरोधी दूसरे विरोधी पर प्रभाव करता है तब ऐसी पीड़ा पैदा होती है। स्वर्गीय आनन्द एक भीतरी मार्ग से अन्दर आता है। इस कारण जब वह आनन्द बुरे लोगों को दिया जाता है तब वह वहां से किसी विरुद्ध आनन्द में आकर बहता है और उन भीतरी भागों को जो उस आनन्द में हैं पीछे को मरोड़ता है अर्थात वह उन को ऐसी दिशा की ओर उलटा देता है कि जो उन के स्वभाव के विरुद्ध है और इस से वैसी यातना पैदा होती है। स्वर्गीय और नरकीय प्रेमों की विरुद्धता उन्हीं के स्वभाव का फल है। क्योंकि (जैसा कि ऊपर बयान हो चुका) प्रभु को प्यार करना और पड़ोसी को प्यार करना दोनों अपनी सब वस्तुएं औरों को देने की इच्छा करते हैं और ऐसे दे देने में अपना आनन्द पाते हैं। परंतु आत्मप्रेम और जगतप्रेम दोनों औरों से सब वस्तुओं को हर लेने की अभिलाषा करते हैं और सब कुछ अपने बस कर लेते हैं। और वे यहां तक

आनन्द में हैं जहां तक कि वे इस ले लेने को सिद्ध करते हैं। इन बातों से यह जाना जा सकता है कि किस कारण से नरक स्वर्ग से अलग है। सब कोई जो नरक में हैं जब कि वे जगत में जीते थे तब वे केवल शरीर के और मांस के उन आनन्दों में रहते थे जो आत्मप्रेम और जगतप्रेम से निकलते हैं। परंतु सब कोई जो स्वर्ग में हैं जब कि वे जगत में जीते थे तब वे जीव के और आत्मा के उन आनन्दों में रहते थे जो प्रभु को और पड़ोसी को प्यार करने से निकलते हैं। इन प्रेमों के विरुद्ध होने के कारण स्वर्ग और नरक ऐसे संपूर्ण रूप से अलग होते हैं कि किसी आत्मा को जो नरक में है इतना साहस नहीं है कि वह नरक से बाहर अपने सिर की शिखा को उठावे या एक उंगली पसारे। क्योंकि जितना वह ऐसी चेष्ठा करता है उतना ही वह सताया जाता है और उस पर यातना लगती है। मैं ने यह माजरा बार बार देखा है।

४०१। जो मनुष्य कि आत्मप्रेम और जगतप्रेम में है जब तक कि वह जगत में रहता है तब तक वह उन प्रेमों की ओर से आनन्द पाता है और उन सब हर्षों को भोगता है जो उन से पैदा होते हैं। परंतु जो मनुष्य कि परमेश्वर के और पड़ोसी के प्रेम में है जब तक कि वह जगत में रहता है तब तक वह न तो उन प्रेमों की ओर से कुछ स्पष्ट आनन्द पाता है न उन भले अनुरागों से हर्ष भुगतता है जो उन प्रेमों से पैदा होते हैं। वह केवल प्रायः अदृश्य परमसुख को भोगता है क्योंकि वह सुख उस के भीतरी भागों में रख छोड़ा जाता है और शरीर के बाहरी भागों से छिपाया जाता है और जगत के कार्यों के द्वारा कम इन्द्रियार्थग्राही किया जाता है। ये अवस्थाएं मृत्यु के पीछे संपूर्ण रूप से बदल जाती हैं। आत्मप्रेम और जगतप्रेम के आनन्दों के उस समय दुखदायक और भयानक इन्द्रिज्ञान हो जाते हैं जो कि नरक की आग कहलाते हैं। और कभी कभी वे ऐसी अपवित्र और मलीन वस्तुएं हो जाते हैं जो उन अपवित्र हर्षों से कि जो (और यह अचरज की बात है) बुरे लोगों को सुखदायक हैं प्रतिरूपता रखते हैं। परंतु वह अस्पष्ट आनन्द और प्रायः अदृश्य परमसुख जो जगत में के उन लोगों से संबन्ध रखते हैं जो परमेश्वर के और पड़ोसी के प्रेम में रहे उस समय स्वर्ग का आनन्द हो जाते हैं जो कि सर्वथा दृश्य और इन्द्रियार्थग्राही है। क्योंकि वह परमसुख जो जब कि वे जगत में थे उन के भीतरी भागों में रख छोड़ा गया और छिपाया गया था उस समय प्रकाशित होकर स्पष्ट इन्द्रियज्ञान के रूप पर निकाला जाता है। क्योंकि उस समय वे आत्मा के रूप पर हैं और वह परमसुख उन के आत्मा का आनन्द था।

४०२। स्वर्ग के सब आनन्द प्रयोजनों से संयुक्त हैं और उन में अन्तर्जात हैं। क्योंकि प्रयोजन प्रेम और अनुग्रह की वे भलाइयाँ हैं जिन में दूतगण जीते हैं। और इस कारण हर किसी के ऐसे आनन्द हैं जिन का गुण उस के प्रयोजनों से प्रतिरूपता रखता है और जिन की तीव्रता उस के अनुराग के प्रयोजन के लिये प्रतिरूपता रखती है। स्वर्ग के सब आनन्द प्रयोजनों के आनन्द हैं और यह बात

शरीर के पांच इन्द्रिय उन आनन्दों के साथ उपमा देने से स्पष्ट हो सकता है। क्योंकि प्रत्येक इन्द्रिय को उस के प्रयोजन के अनुसार कोई विशेष आनन्द दिया जाता है। दृष्टि का एक विशेष आनन्द है और श्रवण घ्राण रसनेन्द्रिय और स्पर्श सब के अपने अपने आनन्द हैं। दृष्टि अपने आनन्द को रंग और रूप की सुन्दरता से निकालती है। श्रवण का आनन्द सुस्वर धुनियों से। घ्राण का सुगन्धित बासों से। रसनेन्द्रिय का सुस्वाद आहार से निकाला जाता है। और वे प्रयोजन जो प्रत्येक इन्द्रिय एक एक करके काम में लाते हैं उन व्यक्तियों को ज्ञात हैं जो ऐसी वस्तुओं को मनोयोग से विचार करते हैं और अधिक स्पष्टता से ज्ञात हैं उन लोगों को जो उन के प्रतिरूपों से परिचित हैं। दृष्टि का इस प्रकार का आनन्द है उस प्रयोजन के कारण से कि जिस को वह ज्ञानशक्ति की सेवा में (जो कि भीतरी दृष्टि है) करती है। श्रवण का आनन्द उस प्रयोजन के कारण से है जिस को श्रवण ज्ञानशक्ति और संकल्प दोनों की सेवा में सुनने के और चित लगाने के द्वारा करता है। घ्राण का ऐसा आनन्द है उस प्रयोजन के कारण से कि जिस को घ्राण मस्तिष्क की और फेफड़े की भी सेवा में करता है। और रसनेन्द्रिय का आनन्द उस प्रयोजन के कारण से है कि जिस को वह झोझे की और इस से सारे शरीर की सेवा में करती है क्योंकि वह झोझे में आहार खाने की इच्छा उकसाता है। विवाहविषयक आनन्द जो कि स्पर्श का एक पवित्र और बहुत अच्छा आनन्द है उस के प्रयोजन के कारण जो कि मनुष्यजाति का जन्माना है और इस से स्वर्ग के दूतगण का जन्माना है अन्य सब आनन्दों से उत्तम है। ये आनन्द इन्द्रियों की सेवा में स्वर्ग की ओर से जहां कि प्रत्येक आनन्द प्रयोजन से और प्रयोजन के अनुसार होता है अन्तःप्रवाह के द्वारा उपस्थित खड़े रहते हैं।

४०३। कोई कोई आत्मा एक बोध से जो जगत में पैदा हुआ था इस बात पर विश्वास करते थे कि सुख चैन से रहना और दूसरों की नौकरी से किसी का व्यवहार करना स्वर्गीय आनन्द है। परंतु उन को यह कहा गया कि आनन्द केवल काम न करने से सर्वथा नहीं पैदा होता क्योंकि ऐसी अवस्था में हर कोई अपने हित के बढ़ाने के लिये दूसरों के सुख को हर लेने की इच्छा करे। और जब कि सब का वही चाव हो तो कोई सुखी न होवे। और ऐसा जीवन परिश्रमी न होवे पर आलसी। और आलस्य जीव को सुन करता है। और फुर्ती के बिना कुछ भी आनन्द नहीं हो सकता। और काम का निवृत्त होना केवल विश्राम के निमित्त होता है ता कि मनुष्य विश्राम भोगने के पीछे नये साहस के साथ जीवन का काम फिर करे। इस के उपरान्त बहुतेरे उदाहरणों से यह बतलाया गया कि दूतविषयक जीवन अनुग्रह की भलाइयों को अर्थात प्रयोजनों को काम में लाने का है। और दूतगण अपने सब आनन्द को प्रयोजन में प्रयोजन से और प्रयोजन के अनुसार पाते हैं। जिन को यह बोध है कि आलस्य से जीना और बिना काम करने के अनन्तकालिक आनन्द से सांस लेना स्वर्गीय आनन्द है वे कुछ समय तक इसी रीति से जीने पाए ता कि वे उस पर लज्जित हों। तब तो उन्हों ने

मालूम किया कि यह जीवन बहुत ही शोकजनक है और सब आनन्द का विनाश प्राप्त होकर कुछ काल बीते पर उन्हों ने उस प्रकार के जीने से घिण खाया और उस की अवज्ञा की ।

४०४ । कोई आत्मागण जो औरों की अपेक्षा अपने को सुशिक्षित जानते थे यह प्रकाशित करते थे कि जगत में उन्हों ने इस बात पर विश्वास किया कि स्वर्गीय आनन्द केवल परमेश्वर की प्रशंसा करना और उस का गुण मानना होता है और यही अवस्था स्वर्गीय फुर्तीला जीवन है। परंतु उन को यह कहा गया कि परमेश्वर की प्रशंसा करना और उस का गुण मानना यथार्थ में फुर्तीला जीवन नहीं है और परमेश्वर को प्रशंसित होने की कुछ भी आवश्यकता नहीं है। परंतु उस को यह इच्छा है कि सब लोग प्रयोजनों को काम में लावें और इस लिये उन भले कामों को करें जो अनुग्रह के काम कहलाते हैं। तो भी उन आत्माओं को अनुग्रह करने में स्वर्गीय आनन्द का कुछ भी बोध नहीं हुआ और उन्हों ने उस के साथ नौकरी करने का बोध मिलाया। परंतु दूतगण ने यह गवाही दी कि ऐसे भले काम करने में सब से उत्तम स्वतन्त्रता रहती है। क्योंकि स्वतन्त्रता भीतरी अनुराग से निकलती है और अकथनीय आनन्द के साथ संयुक्त होती है ।

४०५ । प्रायः सब के सब जो परलोक में प्रवेश करते हैं यह समझते हैं कि सब कोई एक ही नरक में हैं या एक ही स्वर्ग में। परंतु नरक और स्वर्ग दोनों में भांति भांति के और प्रकार प्रकार के असंख्य नरक और स्वर्ग हैं। एक का नरक दूसरे के नरक के ठीक ठीक समान कभी नहीं है और एक का दूसरे का एक ही स्वग नहीं है। और ये भिन्नताएं मनुष्य के और आत्मा के और दूत के भिन्न भिन्न रूपों से प्रकाशित की जा सकती है क्योंकि इन में से कोई दो एक दूसरे के साथ केवल चिहरे के विषय भी संपूर्ण रूप से एकसां नहीं है। जब मैं ने केवल दो मात्र के एकसां होने का ध्यान किया तब दूतगण ने दारुणता करके कहा कि प्रत्येक समष्टि अपने भिन्न भिन्न अंशों के मिले झुले होने से बना रहती है और वह उसी संमति से अपना गुण निकालती है। और इस लिये स्वर्ग की हर एक सभा एक ही है और स्वर्ग की सारी सभाएं भी सब मिलके एक ही है और यह एकता होना प्रभु की ओर से प्रेम के द्वारा होता है[५५]। स्वर्गों में प्रयोजन भांति भांति के और प्रकार प्रकार के हैं। एक दूत का प्रयोजन दूसरे दूत के प्रयोजन

---

५५ प्रत्येक इकाई भांति भांति की वस्तुओं की बनी है और इस कारण वह उन वस्तुओं के हेल मेल होने के और संमति के गुण के अनुसार अपना रूप और गुण और व्युत्पन्नता ग्रहण करती है। न० ४५७ • ३२४१ • ८००३। भिन्नता असीमक है और एक वस्तु दूसरी वस्तु के समान कभी नहीं है। न० ७२३६ • ९००२ • स्वर्ग में भी यही भिन्नता है। न० ५७४४ • ४००५ • ७२३६ • ७८३३ • ७८३६ • ९००२। और इस से स्वर्ग में की सब सभाएं और हर एक सभा में का प्रत्येक दूत एक दूसरे से भिन्न भिन्न है। क्योंकि वे भांति भांति की भलाइयों और प्रयोजनों में रहते हैं। न० ६९० • ३२४१ • ३५१९ • ३८०४ • ३९८६ • ४०६७ • ४१४९ • ४२६३ • ७२३६ • ७८३३ • ७९८६। प्रभु का देवकीय प्रेम सब को सब एक स्वर्गीय रूप पर प्रस्तुत करता है और उन को आपस में एक दूसरे से ऐसी रीति से संयुक्त करता है कि वे एक मनुष्य आकार खड़े रहते हैं। न० ४५७ • ५५९८ ।

से कभी ठीक ठीक एकसां नहीं है। और इस लिये एक दूत का आनन्द दूसरे दूत के आनन्द से कभी ठीक ठीक एकसां नहीं है। परंतु हर किसी के प्रयोजन के आनन्द असंख्येय हैं और ये असंख्येय आनन्द भिन्न भिन्न भी हैं। तो भी वे ऐसी परिपाटी के अनुसार संयुक्त हुए हैं कि वे आपस में एक दूसरे को परस्पर मानते हैं। यह परस्पर संबन्ध शरीर के हर एक अंग और इन्द्रिय और अन्तरी के प्रयोजन के समान है। और वह हर एक अंग और इन्द्रिय और अन्तरी की शिरा और सूत के प्रयोजनों के समपदस्थत्व से अधिक भी सदृश्यता रखती है। ये वस्तुएं सब मिलके और एक एक करके आपस में इतनी संयुक्तता रखती हैं कि हर एक अपने हित का स्थान किसी दूसरी में देखती है और इस से सभों में और सब की सब आपस में परस्पर तौर पर अपने हित को प्रत्येक वस्तु में देखती हैं। इस सर्वसाधारण और विशेष संबन्ध होने के कारण वे एक होकर काम करती हैं।

४०६। कभी कभी मैं ने अनन्तकालिक जीवन की अवस्था के बारे में ऐसे आत्माओं से बात चीत की जो थोड़े दिन हुए जगत से आए थे और उन से कहा कि अनन्तकालिक राज का प्रभु कौन है और उस के राज्य का स्वभाव कौन सा है और उस का कौन सा रूप है इन बातों का जानना भारी बात है। क्योंकि जैसा कि जगत में जब कोई लोग एक देश से जाकर दूसरे देश में रहना चाहता है तब उस को इन बातों से कोई अधिक भारी बात नहीं है कि उस देश के राजा का क्या नाम और शील है राज्य का क्या स्वभाव है और उस देश की क्या क्या अन्य विशेष बातें हैं वैसा ही सब से बढ़कर भारी बात है कि कोई लोग यह जाने कि उस राज का कौन सा स्वभाव है कि जिस में वह अनन्तकाल तक जीवेगा। इस कारण यह जानना चाहिये कि प्रभु स्वर्ग का राजा और सर्वव्यापी जगत का राजा भी है। क्योंकि जिस के बस इन राजों में से एक है उस के बस दूसरा राज भी है। और वह राज कि जिस में आत्मागण प्रवेश करते हैं प्रभु का राज है। और इस राज के नियम अनन्तकालिक सचाइयें हैं जो यह प्राथमिक नियम पर स्थापित हैं कि इस राज की प्रजाओं को अन्य सब वस्तुओं से बढ़कर प्रभु से प्रेम रखना चाहिये और अपने पड़ोसी को अपने आप के समान प्यार करना चाहिये। यदि वे दूतगण से समता रखने की इच्छा करें तो उन को चाहिये कि वे अपने पड़ोसी को अपने आप से बढ़कर अधिक प्यार करें। इन बातों के सुनते ही वे आत्मागण चुप होकर कुछ भी जवाब नहीं दे सके क्योंकि शरीर के जीने के समय उन्हों ने उन बातों का कुछ कुछ सुना था परंतु उन पर विश्वास न किया। उन को अचरज हुआ कि स्वर्ग में ऐसा प्रेम होवे और उन को यह अवस्था असम्भाव्य मालूम हुई कि वहां कोई अपने आप से बढ़कर अपने पड़ोसी से अधिक प्रेम रखे। परंतु उन को यह बतलाया गया कि परलोक में सब प्रकार की भलाइयें बहुत ही वृद्धि पाती हैं। और मनुष्य के जीव का जब कि मनुष्य शरीर में रहता है ऐसा स्वभाव है कि मनुष्य इस से आगे नहीं बढ़ सकता कि वह अपने पड़ोसी को अपने समान प्यार करे। क्योंकि उस समय वह शारी-

रिक तत्वों में रहता है। और जब वे तत्व दूर होवें तब प्रेम अधिक पवित्र हो जाता है और अन्त में दूतविषयक प्रेम पैदा होता है। और दूतविषयक प्रेम यही है कि कोई अपने पड़ोसी को अपने आप से बढ़कर अधिक प्यार करे। और यह बात दूतविषयक आनन्द के स्वभाव से जो कि औरों के हित करने का बना हुआ है स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। परंतु दूतगण के निकट अपने निज हित का करना आनन्दजनक चाल नहीं है विना इस छोड़ के कि जिस लाभ को वे पाते हों सो दूसरे के पास भी होगा। वास्तव में यह दूसरे के निमित्त काम करना है और इस कारण यह भी आत्महित से बढ़कर पड़ोसी को अधिक प्यार करना है। इस प्रकार के प्रेम की सम्भावना इन दृष्टान्तों से दिखलाई गई कि जगत में के कई एक लोगों के विवाहविषयक प्रेम से जिस के उत्तेज से उन्हों ने मृत्यु को स्वीकार किया पर अपने विवाहविषयक सहभागी को हानि का पहुंचना न सह सके। और उस प्रेम की सम्भावना मा बाप के अपने लड़के बालों की ओर के प्रेम से दिखलाई जाती है इस हेतु से कि कोई माता भूखों मरेगी पर अपनी सन्तान को आहार से विहीन नहीं देख सकती। और सीधी सच्ची मित्रता से भी वह दिखलाई जाती है कि जो एक व्यक्ति उस के अपने मित्र के निमित्त आपद की जोखों उठाने को उकसाती है। और सभ्य या कपटी मित्रता से भी वह दिखलाई जाती है जो खराई के अनुकरण की चेष्टा करती है और अपने सब से अच्छे द्रव्यों को उन्हीं के साम्हने रखती है जिन के हित के बढ़ाने के लिये वह प्रत्यक्ष प्रतिज्ञा करती है यद्यपि हृदय का कुशील और ही हो। और अन्त को प्रेम के स्वभाव ही से वह दिखलाई जाती है जो अपने आनन्द को औरों की सेवा करने से निकालता है न कि अपने हित के लिये पर औरों के हित के लिये। तो भी ये बातें वे लोग समझ नहीं सकते जो अपने आप को औरों से बढ़कर अधिक प्यार करते हैं और जो शरीर के जीने के समय लाभ के लोभी थे। और कृपण लोग और लोगों की अपेक्षा सब से विरल उन बातों को समझ सकते हैं।

४०७। कोई आत्मा जो शरीर के जीने के समय अनूठा आधिपत्य रखता था परलोक में जाकर आधिपत्य करने की इच्छा रखता था। परंतु उस को यह कहा गया कि वह उस समय एक ऐसे राज में था जो अनन्तकालिक है और जो आधिपत्य कि वह पृथिवी पर करता था सो समाप्ति को प्राप्त हुआ और उस जगत में कि जिस में वह उस समय था उस भलाई और सचाई के अनुसार जो किसी व्यक्ति में है और प्रभु की दया के परिमाण के अनुसार जो जगत में जीने के कारण कोई व्यक्ति ग्रहण करती है इन हेतुओं को छोड़ कोई आत्मा माना नहीं जाता। और उस को यह भी कहा गया कि वह राज पृथिवी पर के राजों के सदृश है जहां मनुष्य अपने धन के कारण या राजा के अनुग्रह के कारण माने जाते हैं। परंतु वहां का धन भलाई और सचाई है और राजा का अनुग्रह प्रभु की दया है जो हर एक मनुष्य को उस की जगत में की चाल चलन के अनुसार दी जाती है। और यदि वह प्रभु के आधीन होने के विना आधिपत्य करने की इच्छा रखता

हो तो वह राजद्रोही होगा क्योंकि वह दूसरे राजा के देश में होगा। इन बातों के सुनती ही वह लज्जित हुआ।

४०८। मैं ने ऐसे आत्माओं से बात चीत की जिन को यह बोध हुआ कि स्वर्ग और स्वर्गीय आनन्द महिमा पाने का बना हुआ है। परंतु उन को यह बात कही गई कि स्वर्ग में वह जो सब से ऊंचे पद का है छोटे से छोटा है। क्योंकि वह छोटे से छोटा कहलाता है जिस का उस की अपनी ओर से कुछ भी आधिपत्य और ज्ञान नहीं है और प्रभु को छोड़ किसी की ओर से कुछ भी आधिपत्य और ज्ञान नहीं चाहता। और जो इसी रीति से सब से छोटा है उत्तम से उत्तम आनन्द भोगता है। और जब कि वह सब से उत्तम आनन्द भोगता है तो वह सब से बड़ा है। क्योंकि वह प्रभु की ओर से सारा आधिपत्य पाता है और ज्ञान में अन्य सब लोगों से उत्कृष्ट है। अति आनन्द भोगने को छोड़ बड़ाई रखना क्या वस्तु है। क्योंकि अति आनन्दित होना वही अवस्था है जिस का खोज ऐश्वर्यवान लोग आधिपत्य करने में करते हैं और धनी लोग धन बटोरने में। और उन को यह भी कहा गया कि स्वर्ग सब से नीचे पद की इस वास्ते इच्छा करने का नहीं है कि उस पद के द्वारा ऊंचे पद तक पहुंचना हो (क्योंकि ऐसी अवस्था में किसी का मन सब से ऊंचे पद के लोभ से सच मुच जलता हो) परंतु स्वर्ग स्वकीय हित की अपेक्षा सीधेपने से औरों के हित के उन्नत होने की इच्छा करने का है और यथार्थ प्रेम के कारण औरों के हित के लिये विना कुछ स्वार्थी फल की आशा के उन की सेवा करने का भी है।

४०९। स्वर्गीय आनन्द का सारांश से लेकर बयान नहीं किया जा सकता। क्योंकि वह दूतगण के जीव के सब से भीतरी तत्त्वों में रहता है और इस से उन के ध्यान और अनुराग की प्रत्येक बात में और इस लिये उन की बोली और क्रिया की हर एक बात में भी रहता है। यह ऐसा है कि जैसा उन के भीतरी भाग संपूर्ण रूप से खुले हुए हैं और आनन्द और परमसुख को विना रुकावट के ग्रहण कर सकते हैं और ये आनन्द उन के प्रत्येक सूत में और इस से उन के सारे शरीर में फैले हुए हैं। विषयग्रहणशक्ति और इन्द्रियबोध जो उस आनन्द और परमसुख से पैदा होते हैं बयान करने से बाहर हैं। क्योंकि जो कुछ सब से भीतरी भाग में पैदा होता है सो हर एक भाग में जो भीतरी भाग से संबन्ध रखता है बहता है और अपने आप को नित्य बढ़ाते बढ़ाते बाहरी भागों की ओर पसारता है। जब भले आत्मागण जो अभी उसी आनन्द में नहीं है क्योंकि वे अभी तक स्वर्ग में नहीं उठाए हुए हैं उस को किसी दूत की ओर से उस के प्रेम के मण्डल के मार्ग से बहता हुआ देखते हैं तब उन में ऐसा आनन्द भरा है कि वे गिर पड़ते हैं जैसा कि वे अति सुख के द्वारा मूर्छा खाते हों। यह अवस्था बार बार उन को होती है जो स्वर्गीय आनन्द के स्वभाव को जानने की इच्छा करते हैं।

४१० । कोई कोई आत्मा जो स्वर्गीय आनन्द के स्वभाव को जानने की इच्छा करते थे उस को यहां तक मालूम करने पाए कि वे उस का तेज देर तक नहीं सह सकते थे। तो भी जो उन्हों ने देखा सो दूतविषयक आनन्द न था परंतु वह एक ऐसे प्रकार का आनन्द था जो दूतविषयक आनन्द के सब से नीचे अंश तक कष्ट से पहुंचता था। और इस बात का प्रमाणसिद्ध तब हुआ जब मुझे भी वही आनन्द दिया गया। तब तो मैं ने मालूम किया कि वह इतना तुच्छ है कि यद्यपि वे उस को सब से स्वर्गीय आनन्द पुकारते थे इस वास्ते कि वह उन का सब से भीतरी आनन्द था तो भी वह प्रायः ठंड होने पर था। इस लिये मालूम होता है कि न केवल स्वर्ग में आनन्द के कई एक अंश हैं पर एक अंश का सब से भीतरी आनन्द दूसरे अंश के अन्तिम या मझले आनन्द तक कष्ट से पहुंचता है। इस पर भी जब कोई लोग अपने निज आनन्द के भीतरी हर्ष को ग्रहण करता है तब वह अपने निज स्वर्गीय आनन्द में है और वह किसी आनन्द को नहीं सह सकता जो उस आनन्द से अधिक भीतरी है। क्योंकि ऐसा आनन्द उस को पीड़ा देगा।

४११ । कोई कोई आत्मा जो कुशील न थे नींद की सी अवस्था में होकर उन के मन के भीतरी भागों के विषय स्वर्ग में पहुंचाए गये। क्योंकि आत्मागण अपने भीतरी भागों के खुल जाने के पहिले स्वर्ग में पहुंचाए जा सकते हैं और वहां के निवासियों के कुशल क्षेम के बारे में कुछ शिक्षा पा सकते हैं। और मैं ने उन को विश्राम की इसी अवस्था में अधघण्टे तक देखा और इस के उपरान्त वे अपने बाहरी भागों में कि जिन में वे पहिले थे फिर आए। तो भी वे तिस के पीछे जो कुछ उन्हों ने देखा था अपने स्मरण में रखते थे। उन्हों ने कहा कि वे स्वर्ग में दूतगण के मध्य में होकर अद्भुत वस्तुओं को देखा था और मालूम किया था। और वे वस्तुएं सोने चान्द और मणिओं से चमकती थीं और निपट सुन्दर रूप की थी और अद्भुत रीति से भिन्न भिन्न थीं। और दूतगण उन बाहरी वस्तुओं से उतना प्रसन्न नहीं हुए जितना वे उन वस्तुओं के प्रतिरूपों पर जो कि ईश्वरीय और अकथनीय और ज्ञान में असीमक थे प्रसन्न होते थे। और ये प्रतिरूप उन के निकट आनन्द का एक मूल थे। अन्य असंख्य वस्तुओं की सूचना करना न चाहिये जिन का दस हज़ारवां भाग मानुषक बोली से बोला नहीं जा सकता या उन बोधों में आ सकता है जो भौतिकत्व से कुछ भी संबंन्ध रखते हैं।

४१२ । प्रायः सब लोग जो परलोक में प्रवेश करते हैं स्वर्गीय परमसुख और आनन्द के स्वभाव को नहीं जानते। परंतु वे उस के विषय में अपना बोध शारीरिक और जगतसंबन्धी हर्ष और आनन्द से निकालते हैं। और जो कुछ वे नहीं जानते सो वे तुच्छ मानते हैं। तो भी शारीरिक और जगतसंबन्धी आनन्द उपमापूर्वक व्यर्थ है। इस वास्ते कि सुशील लोग जो स्वर्गीय आनन्द नहीं जानते इस आनन्द के स्वभाव को जानें और समझ लें पहिले पहिल वे ऐसे सुखलोकसं-

भन्यों स्थानों में पहुंचाए जाते हैं जो कल्पनाशक्ति से बाहर हैं। तब तो वे यह जानते हैं कि अब हम स्वर्गीय सुखलोक में हैं। परंतु वे सिखलाए जाते हैं कि वह अवस्था सब मुख स्वर्गीय आनन्द नहीं है। उस के पीछे वे आनन्द की ऐसी भीतरी अवस्थाओं को भोगने पाते हैं जो उन के सब से भीतरी तत्त्वों में प्रवेश करती हैं। उस के उपरान्त जब वे अपने सब से भीतरी तत्त्वों के विषय शान्ति की किसी अवस्था में पैठने पाते हैं तब वे यह कहते हैं कि उस सरीखी अन्य कोई वस्तु कहने में या सोचने में आ नहीं सकती। और अन्त में वे अपनी सब से भीतरी बुद्धि के विषय निर्दोषता की एक अवस्था में पैठने पाते हैं और वहां से वे आत्मीय और स्वर्गीय भलाई के यथार्थ गुण को जानने पाते हैं।

४१३। इस लिये कि मैं स्वर्ग का स्वभाव और स्वर्गीय आनन्द का गुण जानूं मैं प्रभु की कृपा से स्वर्गीय हर्ष के आनन्दों को बार बार और बहुत काल तक मालूम करने पाया। इस कारण इस हेतु से कि मुझ से वे आनन्द भोग किये गये तो मैं उन का गुण जानता हूं। तो भी मैं उन का बयान नहीं कर सकता। तिस पर भी थोड़ी बातें उन के बारे में कुछ बोधन दे सकती हैं। स्वर्गीय आनन्द असंख्य हर्षों और आनन्दों का एक अनुराग है और ये आनन्द सब मिलकर किसी ऐसी अवस्था या अनुराग होते हैं कि जिस में असंख्य अनुरागों की सदृश्यताएं समाती हैं। ये सदृश्यताएं स्पष्ट रूप से नहीं मालूम की गईं पर अस्पष्टता से क्योंकि उन का गोचर बहुत से साधारण प्रकार का था। परंतु तो भी मैं यह मालूम करने पाया कि उस अनुराग में असंख्य वस्तुएं समाती थीं। और उस परिपाटी का बयान जिस के अनुकूल वे वस्तुएं प्रस्तुत की गईं किसी रीति से किया नहीं जा सकता। क्योंकि वे वस्तुएं स्वर्ग की परिपाटी की ओर से बहती हैं। अनुराग की सब से सूक्ष्म बातों में जो कि सब मिलकर अपने प्रसङ्ग की योग्यता के अनुसार एक ही साधारण अवस्था बनकर मन के आगे रखी जाती हैं और मालूम की जाती हैं वही परिपाटी प्रबल है। संक्षेप में हर एक समष्टि में या साधारण अवस्था में असंख्य बातें समाती हैं जो सब से उत्तम परिपाटी के अनुसार प्रस्तुत की गई हैं। और उन में से हर एक जीती है और भीतर की ओर से औरों पर प्रभाव करती है। क्योंकि ऐसे प्रभाव के लगने से सब स्वर्गीय आनन्द बहते हैं। मैं ने यह भी मालूम किया कि वह हर्ष और आनन्द ऐसे तौर पर आता जाता था कि मानों वह हृदय से निकलता था। और अति मृदुता से सब भीतरी सूतों में और इन से सूत के संघातों में संतोष के एक ऐसे अन्तर्बोध के साथ अपने को फैलाता था कि हर एक सूत आनन्द और हर्ष को छोड़ कुछ भी नहीं मालूम होता था और सब विषयग्राहक और इन्द्रियविशिष्ट शक्तियें आनन्द से साथ जीती मालूम होती थीं। उन आनन्दों की अपेक्षा शारीरिक आनन्दों का सुख ऐसा है जैसा द्रव्य की कोई स्थूल और कड़वी चाशनी किसी पवित्र और मृदु वायु के साथ उपमा देने से मालूम होती है। और मैं ने यह भी मालूम किया कि जब मैं ने अपना सब आनन्द दूसरे को देने की इच्छा की तब एक नया

आनन्द मुझ में बहता था जो पहिले आनन्द से अधिक भीतरी और संपन्न था। और जितनी मेरी इच्छा प्रचण्ड थी उतना ही उस आनन्द का परिमाण था। मालूम हुआ कि यह भी प्रभु की ओर से था।

४१४। वे जो स्वर्ग में हैं जीवन के वसन्तकाल की ओर सदा बढ़ते जाते हैं। और जितने हज़ारों बरसों तक वे जीते रहते हैं उतना ही वह वसन्त कि जिस को वे प्राप्त होते हैं आनन्ददायक और सुखमय होता जाता है। और यह प्रगमन उन लोगों के प्रेम और अनुग्रह और श्रद्धा के प्रगमनों और अंशों के अनुसार कुछ वृद्धि के साथ अनन्तकाल तक चला जाता है। स्त्रीजन जो बुड्ढी और बुड्ढेपन से जराजुरा होकर मरी थीं और जो प्रभु पर श्रद्धा लाती थीं और अपने पड़ोसी पर अनुग्रह करती थीं और अपने पति से विवाहविषयक प्रेम रखती थीं कई एक बरसों के पीछे क्रम क्रम से बराबर यौवनवती होती जाती हैं और ऐसी सुन्दर हो जाती हैं कि उन की सुन्दरता सुन्दरता के उन सब बोधों से श्रेष्ठ है जो उस सुन्दरता से कि जो आंखों में देखी पैदा हो सकते हैं। भलाई और अनुग्रह किसी व्यक्ति के रूप को अपने रूप के समान बनाते हैं और किसी के मुख के हर एक भाग की ओर से अनुग्रह के आनन्द और सुन्दरता को ऐसी रीति से प्रकाश करते हैं कि वे भाग अनुग्रह ही के रूप धारण करते हैं। कोई कोई लोग जिन्हों ने वे देखे थे आश्चर्य से चकित हो गये। अनुग्रह का रूप जो स्वर्ग में ठीक ठीक यथायोग्य देखने में आता है अनुग्रह ही से पैदा होता है। और वह अपने कारण का प्रतिनिधि ऐसे संपूर्ण रूप से होता है कि सारा दूत और विशेष करके दूत का मुख ऐसा है कि मानों वह अनुग्रह आप प्रत्यक्ष में दृश्य और इन्द्रियगोचर है। जब यह रूप देखने में आता है तब वह अकथनीय रूप से सुन्दर दिखाई देता है। और मन के सब से भीतरी जीव पर अनुग्रह के साथ असर करता है। संक्षेप में स्वर्ग में बुड्ढा हो जाना यौवनवान हो जाना है। वे जो प्रभु की ओर के प्रेम में और पड़ोसी की ओर के अनुग्रह में जीते हैं परलोक में ऐसे ऐसे रूप धारण करते हैं और ऐसे ऐसे सुन्दर लोग हो जाते हैं। दूतगण असंख्य भांति भांति के ऐसे ऐसे रूप हैं और स्वर्ग उन का बना हुआ है।

स्वर्ग के अपरिमाणत्व के बारे में।

४१५। बहुत सी बातों से जिन की सूचना गुज़रे हुए बाबों में थी और विशेष करके इस बात से कि स्वर्ग मनुष्यजाति से पैदा होती है (न० ३११ से ३१७ तक देखो) न कि केवल उन्हीं से जो कलीसिया में जन्म लेते हैं परंतु उन्हीं से भी जो कलीसिया के बाहर जन्म लेते हैं (न० ३१८ से ३२८ तक) और इस कारण उन सभों से जो पृथिवी की सृष्टि से लेकर भलाई में जीते थे इन सब बातों से व्यक्त हुआ कि प्रभु का स्वर्ग अपरिमाण है। इस सर्वव्यापी पार्थिव गोल के निवासियों का कैसा बड़ा समूह है इस बात का निर्णय सब कोई कर सकते हैं,

जिन का पृथिवी की दिशाओं और देशों और राजों का कुछ ज्ञान है। क्योंकि गणन करने से मालूम हुआ कि दिन दिन हज़ारों और बरस बरस करोड़ों या अरबों मनुष्य मरा करते हैं। सब से प्राचीन काल में हज़ारों बरस हुए इस का आरम्भ हुआ और उस काल से लेकर सब मरे हुए लोग परलोक में जो आत्मीय जगत कहलाता है प्रवेश किया करते हैं और इन दिनों तक भी दिन दिन पैठा करते हैं। परंतु कितने लोग स्वर्ग के दूत हो गये और कितने लोग इन दिनों में दूत हो जाते हैं ये बातें किसी से कही नहीं जा सकतीं। मुझ को यह बतलाया गया कि प्राचीन काल में बहुत ही ऐसे लोग थे क्योंकि उन दिनों में मनुष्य अधिक भीतरी रीति पर और अधिक आत्मीय रीति पर ध्यान करते थे और इस लिये वे स्वर्गीय अनुराग में थे। परंतु परम्परागत शतकों में वे थोड़े थोड़े हो गये। क्योंकि मनुष्य क्रम क्रम से अधिक बाहरी हो गये और प्राकृतिक रीति से ध्यान करने लगे और इस से पार्थिव अनुराग में होने लगे। इन बातों ही से यह स्पष्ट है कि स्वर्ग जो केवल पृथिवी के निवासियों मात्र का बना है बहुत बड़ा होगा।

४१६। प्रभु का स्वर्ग अपरिमाण है यह इसी बात ही से निकलता है कि छोटे बालबच्चे सब के सब चाहे वे कलीसिया के मण्डल में पैदा हुए चाहे उस मण्डल के बाहर तो भी प्रभु से ग्रहण किये जाते हैं और वे दूत हो जाते हैं। क्योंकि ये बालबच्चे पृथिवी की सारी मनुष्यजाति की चौथाई या पंचमांश है। न० ३२९वें से ३४५वें तक के परिच्छेदों में यह देखा जा सकता है कि हर एक बालक जहां कहीं पैदा हो (चाहे कलीसिया के मण्डल में पैदा हो चाहे उस मण्डल के बाहर चाहे वह धार्मिक माबाप का बालक हो चाहे दुष्ट माबाप का बालक) वह मरने के समय प्रभु से ग्रहण किया जाता है स्वर्ग में शिक्षा पाता है और ईश्वरीय परिपाटी के अनुसार सिखलाया जाता है फिर उस में भलाई के अनुराग भर जाते हैं और उन अनुरागों से वह सचाई का ज्ञान पाता है और पीछे ज्यों ज्यों वह बुद्धि और ज्ञान में व्युत्पन्न होता जाता है त्यों त्यों वह स्वर्ग में बढ़ता जाता है और अन्त में वह एक दूत हो जाता है। पस इस कारण इस से यह अनुमान निकलता है कि जगत की सृष्टि से लेकर केवल इस मूल ही से स्वर्ग के दूतों का कैसा बड़ा समूह पैदा हुआ होगा।

४१७। प्रभु के स्वर्ग का अपरिमाणत्व इस बात से अधिक भी स्पष्टता से प्रकाशित होगा कि सब यह जो सूर्य के मण्डल में देखने में आते हैं पृथिवियें हैं। और इन से अतिरिक्त सर्वजगत में और भी असंख्य निवासियों से भरी पृथिवियें हैं। इन का विशेष बयान एक छोटी सी पुस्तक में है जिस का नाम "सर्वजगत की पृथिवियों के बारे में" रखा। इस पुस्तक से ये वचन निकाले जाते हैं कि "परलोक में यह प्रसिद्ध है कि बहुतेरी पृथिवियें हैं जिन में मनुष्य बसते हैं जो मरने के पीछे आत्मागण और दूतगण हो जाते हैं। क्योंकि वहां पर हर एक लोग जो सचाई के प्रेम के निमित्त और इस लिये प्रयोजन के निमित्त अन्य पृथिवियों के आत्माओं के साथ बात चीत करने की इच्छा करता है वह

ऐसी बात चीत करने की आज्ञा पाता है। और इस हेतु से वह जगतों के अनेकत्व होने पर प्रतीति करने और मनुष्यजाति एक ही जगत में न बसना पर असंख्य जगतों में इस बात को भी सीखने पाता है। मैं ने इस प्रसङ्ग के बारे में पृथिवी के आत्माओं से बात चीत की और उन से कहा कि कोई बुद्धिमान पुरुष कई एक बातों से जो उस को ज्ञात हैं यह जान सकता है कि बहुत सी पृथिवियें वर्तमान होती हैं जिन पर मनुष्य बसते हैं। और अनुमानशक्ति आप यह बतलाती है कि यह सरीखे बड़े पदार्थ जिन में से कोई कोई हमारी पृथिवी के परिमाण से बड़ी हैं निरे शून्य पदार्थ नहीं हैं जो केवल सूर्य के आस पास घूमने के लिये और उन की अल्प ज्योति एक ही जगत पर डालने के लिये पैदा हुई परंतु उन का अभिप्राय उस से बढ़कर बहुत उत्तम होगा। वह मनुष्य जो इस बात पर विश्वास करता है (जैसा कि हर किसी को विश्वास करना चाहिये) कि ईश्वरीय सत्ता ने केवल इस अभिप्राय पर सर्वजगत को रचा है कि वह मनुष्यजाति के होने के लिये और इस से स्वर्ग के होने के लिये होगा (क्योंकि मनुष्यजाति स्वर्ग का बीजारोपस्थल है) वह अवश्य करके इस बात पर भी विश्वास करता होगा कि जहां कहीं कोई पृथिवी हो वहीं मनुष्य भी होंगे। वे यह जो हमारे दृष्टिगोचर में दृश्य हैं इस वास्ते कि वे सूर्यसंबन्धी मण्डल के परिधि में घूमते हैं पृथिवियें हैं। यह बात स्पष्ट है इस लिये कि वे भौतिक पदार्थों के बने हैं। क्योंकि वे सूर्य की ज्योति फिर देते हैं और जब वे दूरदर्शकयन्त्र के द्वारा देखे जाते हैं तब वे जलते हुए तारों के समान नहीं दिखाई देते हैं पर पृथिवियों के समान ज्योति और अन्धेरे से चित्रविचित्र देख पड़ते हैं। और वही बात इस हेतु से भी स्पष्ट है कि वे पृथिवी के समान सूर्य के चारों ओर घूमा करते हैं और राशिचक्र के मार्ग पर बढ़ते जाते हैं और इस कारण उन को बरस और ऋतु और वसन्त ग्रीष्म शरत हिम के ऋतु होते हैं। तिस पर भी वे पृथिवी के समान अपने अपने अक्ष पर घूमा करते हैं और इस कारण उन को दिन और दिन के पहर और तड़का दोपहर सांझ रात के समय होते हैं। उन में से कई एक के चान्द अर्थात उपग्रह होते हैं जो उन के चारों ओर नियुक्त समय में घूमा करते हैं जैसा कि चान्द हमारी पृथिवी के चारों ओर घूमा करता है। और सूर्य से ले अत्यन्त दूरी के कारण से एक बड़ा चमकीला चक्र शनिनामक ग्रह को घेर लेता है और वह चक्र उस पृथिवी को बहुत ज्योति (पर वह फेर दी हुई ज्योति है) देता है। क्या जो मनुष्य इन बातों को जानता हो वह क्योंकर बुद्ध्यनुसार यह समझ सके कि यह निरे शून्य पदार्थ हैं। तिस पर भी मैं ने आत्माओं के साथ इस बात के बारे में बात चीत की कि सर्वजगत में पृथिवी को छोड़ अन्य अन्य पृथिवियों का होना विश्वास करने के योग्य हैं कि नहीं। क्योंकि तारामय आकाश बहुत बड़ा है और भिन्न भिन्न डील के तारे असंख्य हैं और हर एक अपनी अपनी जगह पर या अपने अपने मण्डल में हमारे सूर्य के सदृश्य एक सूर्य है। जो कोई इस बात पर यथायोग्य ध्यान करता है वह यह अनुमान करेगा कि ऐसा निपट बड़ा सामान किसी

अभिप्राय के सिद्ध करने का उपाय है और वह अभिप्राय सृष्टि का अन्तिम अभिप्राय होगा। परंतु सृष्टि का अन्तिम अभिप्राय स्वर्गीय राज का बना रहना है ता कि वहां ईश्वरीय सत्ता दूतगण और मनुष्यगण के साथ रहेगा। क्योंकि दृश्य सर्वजगत अर्थात वह आकाश जो हमारे ऊपर बहुतेरे तारों से (जो कि सूर्य हैं) चमकीला है केवल एक ऐसा स्थान है कि जिस में मनुष्यों से भरी पृथिवियों का रहना हो जिन का एक स्वर्गीय राज बना हो। और इस से कोई बुद्धिमान मनुष्य इस बात पर प्रतीति करता होगा कि ऐसा बड़ा उपाय जो ऐसे बड़े अभिप्राय के लिये पैदा हुआ केवल एक ही पृथिवी पर की मनुष्यजाति के लिये रचा नहीं गया। ईश्वरीय सत्ता की अपेक्षा जो निरवधि है और जिस के आगे हज़ारों हां कोटियों निवासियों से भरी हुई पृथिवियें एक छोटी से छोटी वस्तु है यह सब क्या बात होगी। कोई कोई ऐसे आत्मा हैं जो केवल ज्ञान मात्र के उपार्जन करने का अभ्यास किया करते हैं। क्योंकि वे ज्ञान ही से प्रसन्न होते हैं। और इस कारण वे इधर उधर फिरने चलने पाते हैं और वे इस सूर्य के मण्डल से अन्य सूर्यों के मण्डल में भी जाने पाते हैं। ये आत्मा मुझ को यह बतलाया कि न केवल इस सूर्य के ग्रहसमूह में पर इस से बाहर भी तारामय आकाश में ऐसी पृथिवियें हैं जिन में मनुष्य बसते हैं। और ये पृथिवियें अत्यन्त बहुत हैं। ये आत्मा बुध ग्रह से आए। यह गणन किसी से किया गया कि यदि सर्वजगत में एक नियुत पृथिवी हों और हर एक पृथिवी पर तीस करोड़ मनुष्य हों और यदि छ हज़ार बरसों के अर्से में दो सौ पीढ़ी हुई हों और यदि प्रत्येक मनुष्य या आत्मा के लिये १२२५ घन इञ्च के रहने का स्थान दिया जावे तो सब के सब इस पृथिवी के तुल्य स्थान पूरा न भर दें और वास्तव में वे एक ऐसी जगह में समा सकें जो एक ग्रह के उपग्रह के परिमाण से कुछ कुछ बड़ी हो। यह स्थान सर्वजगत का एक ऐसा छोटा भाग होगा कि वह प्रायः अदृश्य हो क्योंकि एक उपग्रह आंख ही के साथ कष्टता से देखा जा सकता है। परंतु यह छोटी जगह सर्वजगत के सृष्टिकर्त्ता के आगे जिस को सर्वजगत की भरपूर समष्टि अयथेष्ट होगी इस वास्ते कि वह असीमक है क्या वस्तु है। मैं ने इस प्रसङ्ग के बारे में दूतगण के साथ बात चीत की और उन्हों ने कहा कि सृष्टिकर्त्ता की अमितता की अपेक्षा मनुष्य की थोड़ाई के बारे में उन को वैसा ही बोध था। परंतु तो भी वे जगहों की ओर से नहीं ध्यान करते हैं पर अवस्थाओं की ओर से। और उन की समझ में इतनी करोड़ों पृथिवियें जितनी पृथिवियों की कल्पना ध्यान करने के योग्य है प्रभु की अपेक्षा निरी न कुछ बात हैं"। सर्वजगत की पृथिवियों और उन के निवासियों के बारे में और उन पृथिवियों से आते हुए दूतों और आत्माओं के बारे में उस छोटी सी पुस्तक को पढ़ो जिस की सूचना ऊपर हो चुकी है। उस का प्रसङ्ग मुझ को इस वास्ते प्रकाशित हुआ कि ये बातें मालूम हो जावें अर्थात प्रभु का स्वर्ग बहुत बड़ा है और वह स्वर्ग संपूर्ण रूप से मनुष्यजाति से होता है और हमारा प्रभु सब कहीं स्वर्ग और पृथिवी का परमेश्वर कर स्वीकार किया जाता है।

४१८। यह भी स्पष्ट है कि प्रभु का स्वर्ग बहुत बड़ा है क्योंकि वह सब मिलकर मनुष्य के सदृश है। और मनुष्य के हर एक भाग से वास्तव में प्रतिरूपता रखता है। और यह प्रतिरूपता कभी भी संपूर्ण रूप से पूरी नहीं हो सकती। क्योंकि वह प्रतिरूपता न केवल साधारण रूप से शरीर के हर एक अंग और इन्द्रिय और अन्तरी से संबन्ध रखती है परंतु वह उन के सब लादों और इन्द्रियों से तथा प्रत्येक छोटी छोटी लाद और इन्द्रिय से भी विशेष करके और एक एक करके संबन्ध रखती है। हां वह प्रतिरूपता हर एक शिरा से और हर एक तन्तु से भी संबन्ध रखती है। और न केवल इन्हीं से पर उन इन्द्रियमय पदार्थों से भी संबन्ध रखती है जो स्वर्ग का अन्तःप्रवाह भीतरी मार्ग से ग्रहण करते हैं और जो उन भीतरी फुर्त्तियों के विघ्नबाधारहित मूल हैं जो मन की क्रियाओं के आधीन हैं। इस हेतु से कि जो कुछ मनुष्य में भीतरी रीति पर रहता है सो ऐसे रूपों पर है जो पदार्थ हैं और जो कुछ अपने विषयों के रूप पर पदार्थों में नहीं रहता सो कुछ वस्तु नहीं है। इन सब वस्तुओं की स्वर्ग से प्रतिरूपता है और यह उस बाब में देखा जा सकता है जो स्वर्ग की सब वस्तुओं की मनुष्य की सब वस्तुओं से प्रतिरूपता होने के बारे में है। (न० ८७ से १०२ तक)। और वह प्रतिरूपता कभी मालामाल नहीं हो सकती। क्योंकि स्वर्ग जितनी दूतविषयक सभाएं एक मेम्बर से प्रतिरूपता रखती है उतना ही स्वर्ग अधिक व्युत्पन्न होता जाता है। और यह स्वर्ग के व्युत्पन्न होने का नियम है इस वास्ते कि सब दूत एक ही अभिप्राय को मानते हैं और उसी अभिप्राय को मतैक्य से देखते हैं। स्वर्ग में का सर्वव्यापी अभिप्राय सर्वसाधारण हित है। और जब वह हित प्रबल है तब हर एक व्यक्ति सर्वसाधारण हित से अपना निज हित निकालती है और सर्वसाधारण हित अलग अलग हितों के एकट्ठे होने से बढ़ता जाता है और प्रभु सभों का कर्त्ता है। क्योंकि वह स्वर्ग में की सब व्यक्तियों को अपनी ओर फिराता है (न० १२४ को देखो) और इस कारण वह अपने में उन को एक ही कर डालता है। हर किसी को जो शिक्षित बुद्धि से ध्यान करता है यह बात स्पष्ट होगी कि बहुतों का मतैक्य और मिलाप विशेष करके जब कि वे ऐसे मूल से निकलते हैं और ऐसे बन्धन में संयुक्त हुए हैं व्युत्पन्नता करता होगा।

४१९। मुझ को यह सामर्थ्य दिया गया कि मैं ने स्वर्ग की विपुलता जिस में निवासी हैं और जिस में भी निवासी नहीं हैं देखी और मैं ने देखा कि स्वर्ग में का वह स्थान कि जिस में निवासी न थे इतना बड़ा था कि कोटी कोटी पृथिवियें कि जिन में इतने निवासी हों जितने हमारे पृथिवी में हैं उस स्थान को अनन्तकाल तक भी नहीं भर सकेंगीं। इसी प्रसङ्ग के बारे में उस छोटी सी पुस्तक को जो सर्वजगत की पृथिवियों के विषय में है (न० १३८) देखो।

४२०। धर्मपुस्तक के कई एक वचनों से जो शब्दों ही के तात्पर्य से समझे जाते हैं यह मत निकलता है कि स्वर्ग बहुत बड़ा है पर सीमक है। जैसा

कि उन वचनों से कि जिन में ये बातें लिखी हैं कि दरिद्रियों के सिवाए स्वर्ग में कोई नहीं ग्रहण किये जाते हैं और बाछे हुओं के सिवाए कोई नहीं अङ्गीकार किये जाते हैं और केवल वे लोग जो कलीसिया के मण्डल में हैं प्रवेश किये जा सकते हैं न कि वे जो उस मण्डल के बाहर हैं और वह केवल उन के लिये है जिन की मुक्ति के वास्ते प्रभु आप बीचबिचाव करता है और जब वह स्थान माला-माल हो जाता है तब वह बन्द हो जावेगा और उस के भरपूर होने के समय आगे से नियत हुआ। परंतु वे लोग जिन को ऐसे ऐसे बोध हैं यह नहीं जानते कि स्वर्ग कभी नहीं बन्द हो जावेगा। और कोई नियत समय नहीं है कि जिस में वह बन्द होगा न लोगों की कोई नियत संख्या है जो प्रवेश की जावेगी। और वे बाछे हुए कहलाते हैं जो भलाई और सचाई के जीवन में हैं[५६]। और वे दरिद्री कहाते हैं जो भलाई और सचाई के ज्ञान में नहीं हैं परंतु जो उन गुणों को अभी तक चाहते हैं और इस कारण वे भुखार्त्त भी कहाते हैं[५७]। वे जो धर्म-पुस्तक के न समझने के कारण यह गुमान करते हैं कि स्वर्ग की छोटी सी विपु-लता है यह जानते हैं कि स्वर्ग एक ही जगह में है जहां सभों का एक बड़ा समूह है परंतु स्वर्ग असंख्य सभाओं का बना हुआ है। (न० ४१ से ५० तक देखो)। वे यह कल्पना भी करते हैं कि हर किसी को बिना छोड़ किये स्वर्ग दिया जाता है और इस कारण सब का सब निरी दया से प्रवेश के और ग्रहण के पाने पर अवलम्बित है। वे यह नहीं समझते कि प्रभु अपनी दया से हर किसी को ले जाता है जो उस को ग्रहण करता है। और वे उस को ग्रहण करते हैं जो ईश्वरीय परिपाटी के नियमों के अनुसार जो कि प्रेम और श्रद्धा के सिद्धान्त हैं चलते हैं। और इसी रीति से दया की बात का तात्पर्य यह है कि जगत में बच्चपन से लेकर जीने के अन्त तक और इस के पीछे अनन्तकाल तक भी प्रभु से लाया जाना। इस कारण यह जानना चाहिये कि हर एक मनुष्य स्वर्ग के लिये पैदा हुआ और स्वर्ग में वह ग्रहण किया जाता है जो जगत में जीते हुए अपने में स्वर्ग को ग्रहण करता था और वह स्वर्ग से अलग रखा जाता है जो उस को ग्रहण नहीं करता था।

---

५६ वे बाछे हुए हैं जो भलाई और सचाई के जीवन में हैं। न० ३७५५ • ३९००। क्योंकि निरी दया के कारण स्वर्ग में किसी का बाछ लेना और ग्रहण करना नहीं है जैसा कि साधारण लोगों से समझा जाता है परंतु चाल चलने के कारण। न० ५०५७ • ५०५८। प्रभु की दया बिच-वाईरहित नहीं है पर बिचवाईसहित है और जो उस की आज्ञाओं पर चलते हैं उन पर दया की जाती है। क्योंकि प्रभु दया के एक तत्त्व से उन को जगत में नित्य ले जाता है और इस के पीछे अनन्तकाल तक। न० ८७०० • १०६५९।

५७ धर्मपुस्तक में दरिद्री से तात्पर्य आत्मीयभाव से दरिद्री लोग हैं अर्थात वे लोग जो सचाई की अज्ञानता में हैं परंतु अभी तक शिक्षा पाना चाहते हैं। न० ९२०९ • ९२५३ • १०२२७। और वे भूख के मारे और प्यास के मारे कहाते हैं इस वास्ते कि उन का भलाई और सचाई के ज्ञान का लोभ जिस करके कलीसिया में और स्वर्ग में प्रवेश करना पाया जाता है प्रकाशित हो जावे। न० ४९५८ • १०२२७।

आत्मिक जगत के बारे में

और

मनुष्य की मरने के पीछे की अवस्था के बारे में

आत्माओं का जगत क्या है।

४२१। आत्माओं का जगत न तो स्वर्ग है न नरक परंतु वह उन दोनों के बीच एक ऐसा मध्यस्थ स्थान या अवस्था है कि जिस में मनुष्य मरने के पीछे ही पीछे तत्त्वण प्रवेश करता है। और वहां कुछ काल बीतने पर (और यह काल-परिमाण किसी मनुष्य के जगत में के जीवन के गुण पर अवलम्बित है) वह या तो स्वर्ग तक उठाया जाता है या नरक में गिरा दिया जाता है।

४२२। आत्माओं का जगत स्वर्ग और नरक के बीच एक मध्यस्थ स्थान है और मनुष्य के जीव की मरने के पीछे एक मध्यवर्ती अवस्था भी है। मुझे स्पष्ट रूप से प्रकाशित हुआ कि वह एक मध्यस्थ स्थान है क्योंकि नरक उस के नीचे हैं और स्वर्ग उस के ऊपर। और वह मध्यवर्ती अवस्था है क्योंकि जब तक मनुष्य वहां रहता है तब तक वह न तो स्वर्ग में है न नरक में। स्वर्ग की अवस्था मनुष्य में भलाई और सचाई का संयोग है और नरक की अवस्था मनुष्य में बुराई और झुठाई का संयोग है। जब आत्मा में भलाई सचाई से संयुक्त हो तब वह स्वर्ग में प्रवेश करता है। क्योंकि (जैसा कि अभी बयान हो चुका) उसी में भलाई और सचाई का संयोग स्वर्ग है। परंतु जब आत्मा में बुराई झुठाई के साथ संयुक्त हो तब वह नरक में गिरा दिया जाता है क्योंकि उस में वह संयोग नरक है। और ये संयोग आत्माओं के जगत में होते हैं इस कारण कि उस समय मनुष्य मध्यवर्ती अवस्था में है। चाहे हम ज्ञानशक्ति और संकल्पशक्ति का संयोग कहें चाहे सचाई और भलाई का संयोग तो भी दोनों एक ही बात हैं।

४२३। जब कि यह संयोग आत्माओं के जगत में किया जाता है तो ज्ञानशक्ति और संकल्पशक्ति के संयोग से इस संयोग की सदृशता रखने के बारे में अब कुछ बयान होता है। मनुष्य के पास ज्ञानशक्ति और संकल्पशक्ति हैं। ज्ञान-शक्ति सचाइयों का पात्र है और उन की बनी है। और संकल्पशक्ति भला-इयों का पात्र है और उन की बनी है। पस इस कारण जो कुछ कोई मनुष्य समझता है और ध्यान करता है सो वह सत्य पुकारता है और जो कुछ वह संकल्पता है सो वह भलाई बोलता है। मनुष्य ज्ञानशक्ति के सहारे से ध्यान करने को योग है और इस से जो कुछ सच्चा और भला हो सो वह मालूम करने के योग

है। परंतु यदि जिस को ज्ञानशक्ति मानती है सो वह संकल्प न करे और काम में न लावे तो वह संकल्पशक्ति के सहारे से ध्यान नहीं करता। जब वह इसी रीति से संकल्प करता और काम करता है तब सचाई ज्ञानशक्ति और संकल्पशक्ति दोनों में है और इस लिये मनुष्य में है। क्योंकि मनुष्य न तो ज्ञानशक्ति ही का बना है न संकल्पशक्ति का। परंतु ज्ञानशक्ति और संकल्पशक्ति दोनों का वह बना है। और इस कारण जो कुछ संकल्पशक्ति और ज्ञानशक्ति दोनों में है सो मनुष्य में भी है और उस से ग्रहण किया जाता है। जो कि केवल ज्ञानशक्ति में है सो मनुष्य के साथ तो है परंतु उस में नहीं है। क्योंकि वह केवल स्मरण की एक बात है और स्मरण में की विद्या की एक बात है जिस का ध्यान जब कि वह अपने में नहीं है पर औरों के साथ अपने से बाहर है कर सकता है। इस कारण वह एक ऐसी बात है कि जिस के विषय वह बोल सकता है और तर्क कर सकता है और जिस के अनुसार वह सुशील और सुभाव की बनावट का भेष भी धारण कर सकता है।

४२४। मनुष्य ज्ञानशक्ति से ध्यान करने के योग है परंतु वह उसी समय संकल्पशक्ति से ध्यान नहीं करता तो कि वह शुद्ध होने के योग हो जावे। क्योंकि मनुष्य सचाइयों के द्वारा शुद्ध हो जाता है। और सचाइयें (जैसा कि अभी बयान हो चुका) ज्ञानशक्ति से संबन्ध रखती हैं। मनुष्य संकल्प के विषय सब प्रकार की बुराइयों में पैदा होता है और इस वास्ते वह आप से आप अपने ही हित को छोड़ किसी के हित को संकल्प नहीं करता। और वह कि जो अपने हित ही को चाहता है औरों की आपतों पर प्रसन्न और सुखी है विशेष करके यदि वे आपतें उस का उपकार करें। क्योंकि वह औरों के हित को ले लिया चाहता है चाहे वह महिमा हो चाहे धन। और जहां तक वह इस ले लेने को सिद्ध करता है वहां तक वह प्रसन्न होता है। और इस वास्ते कि संकल्पशक्ति की यह अवस्था भली बनाई जावे और शुद्ध हो जावे मनुष्य को सचाइयों के समझने की योग्यता दी जाती है और सचाइयों के द्वारा संकल्प से निकलनेवाले बुरे अनुरागों के दमन करने की शक्ति भी दी जाती है। पस इस से यह निकलता है कि मनुष्य ज्ञानशक्ति से सचाइयों के ध्यान करने के और बोलने के और काम में लाने के योग है। तो भी जब तक कि वह ऐसे गुण का है कि वह आप से आप अर्थात अपने हृदय से सचाइयों का ध्यान करता है और उन को काम में लाता है तब तक वह संकल्पशक्ति से सचाइयों का ध्यान नहीं कर सकता। जब मनुष्य ऐसे गुण का है तब जो कुछ वह ज्ञानशक्ति से ध्यान करता है सो उस की श्रद्धा के साथ एक ही हो जाता है और जो कुछ वह संकल्पशक्ति से ध्यान करता है सो उस के प्रेम के साथ एक ही हो जाता है। और इस कारण श्रद्धा और प्रेम ज्ञानशक्ति और संकल्पशक्ति के सदृश उस में संयुक्त हैं।

४२५। इस कारण जहां तक ज्ञानशक्ति की सचाइयें संकल्पशक्ति की भलाइयों से संयुक्त हैं अर्थात जहां तक मनुष्य सचाइयों को चाहता है और उन को

काम में लाता है वहां तक वह अपने में स्वर्ग रखता है। क्योंकि (जैसा कि ऊपर कहा गया) स्वर्ग भलाई और सचाई का संयोग है। परंतु जहां तक कि ज्ञानशक्ति की झुठाइयें संकल्पशक्ति की बुराइयें से संयुक्त हैं वहां तक मनुष्य अपने में नरक रखता है। क्योंकि नरक झुठाई और बुराई का संयोग है। और जहां तक कि ज्ञानशक्ति की सचाइयें संकल्पशक्ति की भलाइयें से संयुक्त नहीं हैं वहां तक मनुष्य मध्यवर्ती अवस्था में है। इन दिनों में प्रायः हर एक मनुष्य ऐसी अवस्था में है कि वह सचाइयें को जानता है और विद्याओं से और ज्ञानशक्ति से सचाइयें का ध्यान करता है जब तक कि वह उन सचाइयें में से बहुत सी या थोड़ी सचाइयें को काम में लाता है या एक भी काम में नहीं लाता और जब तक कि वह बुराई के प्रेम से और उस झूठी श्रद्धा के प्रेम से जो उस से निकलती है उन सचाइयें के विरुद्ध काम करता है। इस कारण से इस वास्ते कि वह या तो स्वर्ग की एक प्रजा हो या नरक की एक प्रजा वह मरने के पीछे पहिले पहल आत्माओं के जगत में पहुंचाया जाता है। और उस जगत में उन में जो स्वर्ग तक उठनेवाले हैं भलाई और सचाई का संयोग किया जाता है और उन में जो नरक में गिर जाने के हैं बुराई और झुठाई का संयोग किया जाता है। क्योंकि कोई लोग (चाहे वह स्वर्ग में हो चाहे नरक में) भिन्न मन को जो कि एक वस्तु समझता है और दूसरी वस्तु चाहता है रखने की आज्ञा नहीं पाता। परंतु जिस की इच्छा वह करता है सो वह अवश्य करके समझेगा और जो वह समझता है उस की इच्छा भी वह अवश्य करेगा। और इस कारण जो स्वर्ग में भलाई की इच्छा करता है उस को सचाई का समझना अवश्य होगा और जो नरक में बुराई की इच्छा करता है उस को झुठाई का समझना अवश्य होगा। इसी हेतु से भी आत्माओं के जगत में भले आत्माओं से झुठाइयें दूर की जाती हैं और उन को ऐसी सचाइयें दी जाती हैं जो उन की भलाई से मिलती है और उस के सदृश हैं। परंतु बुरे आत्माओं से सचाइयें दूर की जाती हैं और उन को ऐसी झुठाइयें दी जाती हैं जो उन की बुराई से मिलती है और उस के सदृश हैं। इन बातों के द्वारा आत्माओं के जगत का स्वभाव सहज में समझाया जावेगा।

४२६। आत्माजगत में के आत्मागण निपट बहुसंख्यक हैं क्योंकि वह जगत पुनरुत्थान के होते ही सब लोगों का साधारण सभास्थल है। और वहां सब लोगों की परीक्षा की जाती है और वे अपने समाप्तिक निवास के लिये सज्ज हो जाते हैं। परंतु प्रत्येक व्यक्ति एक ही समय तक उस जगत में नहीं रहता। कोई उस में पैठते ही झट या तो स्वर्ग में उठाए जाते हैं या नरक में गिरा डाले जाते हैं। कोई वहां कई सप्ताहों तक रहते हैं और कोई कई बरसों तक। परंतु कोई तीस बरस से बढ़कर वहां नहीं रहते। ये भिन्नताएं मनुष्य के भीतरी भागों और बाहरी भागों की प्रतिरूपता या अप्रतिरूपता से उत्पन्न होती हैं। परंतु जिस रीति से वह एक अवस्था से दूसरी अवस्था में पहुंचाया जाता है और अपने समाप्तिक निवास के लिये सजाया जाता है उस रीति का बयान दूसरे ब.ब में होगा।

४२७। ज्यों ही मनुष्य मरने के पीछे आत्माजगत में प्रवेश करते हैं त्यों ही वे प्रभु से पृथक पृथक जातियों में विशेषित किये जाते हैं। बुरे आत्मा उस नरकीय सभा से झट पट संयुक्त किये जाते हैं जिस में वे जब कि वे जगत में थे अपने प्रधान प्रेम के विषय रहते थे। और भले आत्मा उस स्वर्गीय सभा के साथ झट संयुक्त किये जाते हैं जिस में वे जब कि वे जगत में थे अपने प्रेम अनुराग और श्रद्धा के विषय रहते थे। परंतु यद्यपि वे इसी रीति से अलग किये जाते हैं तो भी वे जो शरीर के जीवन के समय में मित्र और बन्धु थे आत्माजगत में जब वे चाहें तब वे आपस में एक दूसरे से मिलकर (विशेष करके पति पत्नी से और भाई बहिन से) बात चीत करते हैं। मैं ने एक पिता उस के छ पुत्रों से जिन को उस ने पहचाना था बात चीत करता देखा और मैं ने बहुत से अन्य लोगों को उन के बन्धुओं और मित्रों से संभाषण करता देखा। परंतु जब कि उन के गुण जगत के व्यवहारों के कारण भिन्न भिन्न थे तो कुछ काल बीतने पर वे एक दूसरे से अलग हो गये। वे जिन्हों ने आत्माजगत से जाकर स्वर्ग में या नरक में प्रवेश किया यदि समप्रेम से उन का सद्गुण न हो तो वे एक दूसरे को नहीं पहचानते और एक दूसरे को फिर नहीं देखते। आत्माजगत में न कि स्वर्ग में या नरक में वे आपस में एक दूसरे को देखते हैं क्योंकि वे जो आत्माजगत में हैं ऐसी अवस्थाओं में पहुंचाए जाते हैं जो उन के शरीर के जीवन की अवस्थाओं के सदृश हैं। वे एक अवस्था से दूसरी अवस्था में पहुंचाए जाते हैं। परंतु पीछे सब के सब ऐसी नित्य अवस्था में लाए जाते हैं जो उन के प्रधान प्रेम के समान है। उस समय एक दूसरे को केवल प्रेम की सदृशता से पहचानता है। क्योंकि (जैसा कि न० ४१ से ५० तक बयान हुआ) सदृशता संयुक्त करती है और असदृशता अलग करती है।

४२८। जब कि मनुष्य के विषय आत्माजगत एक मध्यगामी अवस्था स्वर्ग और नरक के बीच है तो वह एक मध्यगामी स्थान भी है। उस के नीचे नरक है और उस के ऊपर स्वर्ग। सब नरक आत्माजगत की ओर बन्द हुए हैं परंतु चट्टान की सी दरारों और चीरों में से होकर और गड़हों में से भी होकर छेद है। इन सब छेदों की रखवाली की जाती है इस वास्ते कि विना आज्ञा दिये कोई न निकलने पावे और यह आज्ञा किसी आवश्यक कारणों से दी जाती है और इस का बयान हम आगे बढ़कर करेंगे। चारों ओर पर स्वर्ग की भी रक्षा संपूर्ण रूप से की जाती है और एक सकरे रस्ते को छोड़ जिस की रक्षा की जाती है किसी स्वर्गीय सभा का कोई द्वार नहीं है। ये निर्गममार्ग और द्वार वे ही पदार्थ हैं जो धर्मपुस्तक में नरक और स्वर्ग के फाटक और द्वार कहलाते हैं।

४२९। आत्मा जगत ऐसा दिखाई पड़ता है जैसा एक ऊंचा नीचा दरा पर्वतों और चट्टानों के बीच देख पड़ता है। उन को छोड़ जो स्वर्ग में जाने के लिये सजाए गए कोई व्यक्ति स्वगाय सभाओं के फाटकों और द्वारों को देख नहीं सकती। अन्य व्यक्तिएं उन द्वारों को खोज नहीं निकालतीं। आत्माजगत से प्रत्येक

सभा की ओर एक द्वार है और इस द्वार से आगे चलकर एक मार्ग है कि जो फटकर ऊपर की ओर कई एक मार्ग हो जाता है। नरक के फाटक और द्वार भी छिपे रहते हैं परंतु वे जो नरक में पैठा चाहते हैं उन द्वारों को देख सकते हैं। ऐसे लोगों के आगे वे खुले रहते हैं। और जब वे द्वार खोले जाते हैं तब उन के अन्दर अन्धेरे कन्दर दिखाई देते हैं कि मानों वे कज्जलमय गड़हे हैं जो तिरछी ओर ऐसे स्थान को नीचे उतरते हैं जहां फिर कई एक द्वार भी हैं। इन गड़हों में से घृणाजनक और दुर्गन्धी कुबास निकलती है जिस से भले आत्मा अलग रहते हैं क्योंकि वे उन कुबासों से घिण खाते हैं परंतु बुरे आत्मा उन की रुचि करते हैं क्योंकि वे उन कुबासों पर प्रसन्न होते हैं। जैसा कि जगत में हर कोई जना अपनी निज बुराई पर प्रसन्न है जिस से उस की बुराई प्रतिरूपता रखती है। और इस के विषय में बुरे आत्मा लुटेरे पंछियों और पशुओं से (जैसा कि धंड़कौवा भेड़िया सूअर आदि से) प्रतिमा दिये जा सकते हैं। जो जब सड़ती लोथ या घूर की कुबास सूंघते हैं तब वे उस के पास शीघ्र ही उड़ जाते हैं या दौड़ते हैं। एक बेर मैं ने कोई आत्मा स्वर्ग की सुगन्धी बास के मारे चिल्लाके पुकारता सुना कि मानों वह भीतरी यातना से पकड़ा गया था। और पीछे मैं ने उस को तब स्वस्थ और आनन्दित देखा जब वह नरक में की दुर्गन्धी कुबास सूंघता था।

४३०। हर एक मनुष्य में दो फाटक भी हैं उन में से एक तो नरक की ओर खुलता है और दूसरा स्वर्ग की ओर। एक तो बुराइयों और झुठाइयों से कि जो नरक से निकलती हैं खोला जाता है और दूसरा भलाइयों और सचाइयों से कि जो स्वर्ग से निकलती हैं। नरक की ओर का फाटक उन में खुला रहता है जो बुराई में और इस से झुठाई में रहते हैं जब कि स्वर्ग से ऊपर की दरारों में से होकर ज्योति की केवल दो चार किरणें भी बहकर प्रवेश करती हैं जिन के सहारे से वे आत्मा ध्यान करते हैं तर्क करते हैं और बोलते हैं। परंतु स्वर्ग की ओर का फाटक उन में खुला है जो भलाई में और इस से सचाई में हैं। क्योंकि दो मार्ग हैं जो मनुष्य के चैतन्य मन तक चलते हैं। एक तो उत्तमतर या भीतरी मार्ग है जिस करके प्रभु की ओर से भलाई और सचाई प्रवेश करती हैं दूसरा अधमतर या बाहरी मार्ग है जिस करके बुराई और झुठाई नरक की ओर से प्रवेश करती हैं। चैतन्य मन आप केन्द्र पर है जिस की ओर वे दो मार्ग झुके हुए हैं। और इस कारण जहां तक ज्योति स्वर्ग से मन में पैठने पाती है वहां तक मनुष्य चैतन्य है परंतु जहां तक कि ज्योति पैठने नहीं पाती वहां तक चाहे जितना वह अपनी समझ में चैतन्य जान पड़े वह चैतन्य नहीं है। ये बातें इस वास्ते लिखी जाती हैं कि मनुष्य की जो प्रतिरूपता स्वर्ग से और नरक से होती है उस प्रतिरूपता का स्वभाव समझाया जा सके। उस का चैतन्य मन अपने बन जाने के समय में आत्माजगत से प्रतिरूपता रखता है। जो कुछ उस मन के ऊपर है सो स्वर्ग से प्रतिरूपता रखता है और जो कुछ उस के नीचे है नरक से। उन

लोगों के विषय जो स्वर्ग के लिये सजाए जाते हैं वे मानसिक तत्त्व जो चैतन्य मन के ऊपर खुले हुए हैं और वे जो उस के नीचे हैं बुराई और झुठाई के अन्तःप्रवाह के विरुद्ध बन्द हुए हैं। परंतु उन के विषय जो नरक के लिये सजाए जाते हैं अधमतर तत्त्व खुले हुए हैं और उत्तमतर तत्त्व भलाई और सचाई के अन्तःप्रवाह के विरुद्ध बन्द हुए हैं। इस कारण ये पिछले लोग अपने नीचे की ओर (अर्थात नरक की ओर) के सिवाय किसी और दिशा की ओर देख नहीं सकते और पहिले लोग अपने ऊपर की ओर (अर्थात स्वर्ग की ओर) के सिवाए किसी और दिशा की ओर देख नहीं सकते। ऊपर की ओर देखना प्रभु की ओर देखना है क्योंकि वह वही साधारण केन्द्र है जिस की ओर स्वर्ग में की सब वस्तुओं की चितवन फिरी हुई है। परंतु नीचे की ओर देखना प्रभु की ओर से उस के विरुद्ध केन्द्र की ओर पीछे देखना है जिस की ओर सारा नरक झुकता रहता है और जिस को नरक में की सब वस्तुएं मानती हैं। (न० १२३ · १२४ देखो)।

४३१। जहां कहीं पूर्ववर्त्ती पृष्ठों में आत्माओं की सूचना है वहीं आत्मा की बात से तात्पर्य वे व्यक्तियें हैं जो आत्माजगत में होती हैं और दूत की बात से तात्पर्य वे हैं जो स्वर्ग में हैं।

हर एक मनुष्य अपने भीतरी भागों के विषय आत्मा है।

४३२। हर कोई जो इस प्रसङ्ग पर यथायोग्य सोच विचार करता है इस बात का निर्णय अवश्य करेगा कि शरीर नहीं ध्यान करता क्योंकि वह प्राकृतिक है परंतु जीव ध्यान करता है क्योंकि वह आत्मिक है। मनुष्य का जीव (जिस की अमरता के बारे में कैसा कुछ लिखा गया है) मनुष्य का आत्मा है क्योंकि यह संपूर्ण रूप से अमर है। आत्मा वही वस्तु है जो शरीर में ध्यान करती है क्योंकि वह आत्मिक है और जो कुछ आत्मिक है सो आत्मीय बातों को ग्रहण करता है और आत्मीय रीति पर चलता है। परंतु आत्मीय रीति पर चलना ध्यान करना और इच्छा करना भी है। इस कारण सारा चैतन्य जीवन जो शरीर में जान पड़ता है आत्मा का है। और उस में कुछ नहीं है जो शरीर का है। क्योंकि शरीर (जैसा कि ऊपर बयान हो चुका है) प्राकृतिक है। और प्राकृतिकत्व (जो शरीर का निज गुण है) आत्मा से जोड़ा या यों कहो प्रायः उस में लगाया जाता है। इस वास्ते कि इस जगत में की सब वस्तुएं प्राकृतिक और जीवहीन हैं। अब जब कि जो कुछ प्राकृतिक है सो नहीं जीता पर केवल आत्मीय वस्तुएं जीती हैं तो स्पष्ट है कि जो कुछ मनुष्य में जीता है सो उस का आत्मा है और शरीर आत्मा के काम में केवल इस रीति से आता है जिस रीति से कोई साधन किसी जीते चलते बल के काम में आता है। यह तो कहा जाता है कि एक साधन काम करता है या चलता है या मारता है परंतु इस बात पर विश्वास करना कि कोई

साधन आप से आप उन्हीं कार्यों को करता है न कि वह जो उस साधन को काम में लाता है सो मिथ्या मत है।

४३३। जब कि सब कुछ जो शरीर में जीता है और जीवन के किसी तत्त्व से काम करता है या समझता है सो आत्मा ही का है न कि शरीर का तो इस से यह निकलता है कि आत्मा वास्तविक मनुष्य आप है या (और यह उस से एक ही बात है) मनुष्य आप ही आत्मा है और उस का आत्मा मानुषक रूप पर है। क्योंकि जो कुछ मनुष्य में जीता है और ज्ञानेन्द्रियविशिष्ट है सो उस के आत्मा का है। और उस के शिख से पांव के तले तक सब कुछ जीता है और ज्ञानेन्द्रियविशिष्ट है। इस लिये जब शरीर जीव से अलग होता है जो कि मरना कहाता है तभी मनुष्य आप बना रहता है और जीता है। मैं ने स्वर्ग की ओर से यह बात सुनी कि मरे हुओं में से कई एक पुनरुत्थान की अवस्था प्राप्त करने के पहिले जड़ लोथ के रूप पर पड़े रहने के समय भी ध्यान करते हैं और इस के विपरीत उन को कुछ भी बोध नहीं है पर यह है कि वे अभी जीते हैं। तो भी वे यह जानते हैं कि वे प्राकृतिक शरीर का एक भी अणु हिला नहीं सकते।

४३४। यदि कोई इन्द्रिय न हो जो द्रव्य है कि जिस की ओर से और जिस में मनुष्य ध्यान और इच्छा कर सके तो वह न तो ध्यान न इच्छा कर सकेगा। क्योंकि जिस के होने के विषय किसी द्रव्यमय इन्द्रिय के विना एक कल्पना बांधी है सो कुछ वस्तु नहीं है। यह स्पष्ट है क्योंकि मनुष्य देखने के इन्द्रिय के विना देख नहीं सकता और सुनने के इन्द्रिय के विना सुन नहीं सकता। क्योंकि दृष्टि और श्रवण आंख और कान के विना न तो होते हैं न हो सकते हैं। और यदि ध्यान जो कि भीतरी दृष्टि है और समझ जो कि भीतरी श्रवण है किसी द्रव्यमय इन्द्रिय में जो कि इन्द्रियजनित रूप है न हो और किसी द्रव्यमय इन्द्रिय से काम न करे तो वे भी नहीं हो सकेंगे। इस कारण यह स्पष्ट है कि मनुष्य का आत्मा किसी रूप पर है जैसा कि उस का शरीर किसी रूप पर है। और आत्मा का रूप ज्ञानाशय और इन्द्रियमय मानुषक रूप है जो कि जब शरीर से अलग हो तब ऐसे सिद्ध रूप पर है जैसा कि उस का रूप था जब कि वह शरीर में था। और आंख के जीवन की समष्टि और कान के जीवन की समष्टि सब की सब उस के शरीर की नहीं है परंतु उस के आत्मा की उन ज्ञानाशय इन्द्रियों में और उन के सूक्ष्म ही सूक्ष्म भागों में होती है। इस कारण आत्मागण मनुष्यों की रीति पर देखते हैं और सुनते हैं और समझते हैं। परंतु वे शरीर के अलग होने के पीछे उन क्रियाओं को करते हैं जब कि वे आत्मीय जगत में हैं न कि प्राकृतिक जगत में। प्राकृतिक इन्द्रियबोध जो आत्मा का था जब कि वह शरीर में था उस प्राकृतिक तत्त्व से उत्पन्न हुआ जिस से वह संबन्ध रखता था। तो भी उसी समय उस का ध्यान करने से और इच्छा करने से आत्मीय इन्द्रियबोध भी था।

४३५। ये बातें इस वास्ते लिखी जाती हैं कि चैतन्य मनुष्य इस पर प्रतीति करे कि मनुष्य आत्मा आप है और वह शारीरिक रूप जो उस से जोड़ा हुआ है इस लिये कि वह प्राकृतिक और भौतिक जगत में अपना निज कर्म करे मनुष्य नहीं है परंतु वह केवल एक प्रकार का साधन उस के आत्मा के प्रयोजनों के लिये है। तिस पर भी परीक्षा करने से जो प्रमाण निकलते हैं वे तर्क करने से उत्तम हैं क्योंकि बहुत से लोग तर्क करने के सिद्धान्तों को समझ नहीं सकते और इस वास्ते से भी कि वे लोग जो विरुद्ध मत पर प्रतीति रखते हैं ऐसे तर्क करने के द्वारा जो इन्द्रियों के मिथ्या मतों से निकलता है चैतन्य सिद्धान्तों को संशय की बातों में कर डालते हैं। इस प्रकार के लोग यह ध्यान किया करते हैं कि पशु का मनुष्य का सा जीव और इन्द्रियज्ञान होता है और इस कारण वे यह अनुमान करते हैं कि पशु का मनुष्य का सा आत्मीय तत्त्व होता है। तो भी यह तत्त्व शरीर के साथ मरता है। परंतु पशुओं के आत्मीय भाग का गुण मनुष्य के आत्मीय भाग के गुण के समान नहीं हैं। क्योंकि मनुष्य की एक सब से भीतरी [अवस्था] है जो पशु की नहीं है और जिस में ईश्वरत्व बहकर जाता है और जिस करके वह ईश्वरत्व अपने पास मनुष्य को उठाता है और अपने साथ उस को संयुक्त करता है। इस लिये मनुष्य सिवाए उस शक्ति के जो पशु की है परमेश्वर के बारे में और ईश्वरीय बातों के विषय जो स्वर्ग से और कलीसिया से संबन्ध रखती हैं ध्यान कर सकता है। और वह उन बातों से और उन बातों में परमेश्वर को प्यार करने के योग्य है और इस से परमेश्वर के साथ संयुक्त होने के उचित है। परंतु जो कुछ ईश्वरत्व के साथ संयुक्त होने के योग्य है सो नहीं उड़ाया जा सकता। परंतु जो कुछ ईश्वरत्व से संयुक्त नहीं हो सकता सो उड़ जाता है। मनुष्य के निज भीतरी तत्त्व का बयान न० ३९ वें परिच्छेद में था और उस की सूचना यहां फिर की जाती है इस वास्ते कि यह एक बड़ी भारी बात है कि वे मिथ्या मत उड़ा दिये जावें जो उन साधारण लोगों में प्रबल हैं कि जो दूषसंयुक्त विद्या के द्वारा और सिकुड़ी हुई ज्ञानशक्ति के सहारे से चैतन्य सिद्धान्तों को ऐसे प्रसङ्गों से निकाल नहीं सकते। वह परिच्छेद जिस की सूचना की जाती है यहां लिखित है अर्थात–"अन्त में तीनों स्वर्गों के दूतगण के विषय में एक ऐसे रहस्य का बयान करने की आज्ञा है जो पहिले कभी किसी मनुष्य के मन में न आया था क्योंकि इस समय तक किसी ने इन अवस्थाओं के गुण को नहीं जाना। प्रत्येक दूत और प्रत्येक मनुष्य के भीतर एक भीतरी या परम अवस्था (अर्थात कोई न कोई भीतरी और परम वस्तु) रहती है जिस में प्रभु का ईश्वरत्व पहिले ही या समीपरूप से बहता और जहां से वह सब वस्तुओं को परिपाटी की अवस्थाओं के अनुसार यथाक्रम रखता है। यह भीतरी और परम [अवस्था] प्रभु का द्वार दूतों और मनुष्यों में जाने के लिये है और उन में उस का विशेष बास है। इस भीतरी और परम [अवस्था] के द्वारा मनुष्य अपने मनुष्यत्व को पाता है और इस से मनुष्य और पशु की भिन्नता है क्योंकि पशुओं की वैसी अवस्था नहीं है।

इस कारण मनुष्य अपने बुद्धिमान और प्राकृतिक मन के विषय प्रभु से प्रभु की ओर उठाए जाने के योग्य है इस वास्ते कि वह प्रभु पर श्रद्धा लावे और उस से प्रेम करे और उस को देख ले। और वह उस अवस्था के द्वारा बुद्धि और ज्ञान पाकर चैतन्य से बोलता है। इसी कारण वह सदैव जीता रहता है। परंतु वे परिपाटी और विधि जो इस भीतरी [अवस्था] में प्रभु ने प्रस्तुत की हैं वे दूतगण की समझ में प्रत्यक्ष नहीं बहती हैं क्योंकि वे दूत के ध्यान से बाहर हैं और दूत के ज्ञान से कहीं बढ़कर जाती हैं"।

४३६। मनुष्य अपने भीतरी भागों के विषय आत्मा है। इस बात का निर्णय बहुत परीक्षा करने से मुझे स्पष्ट हुआ परंतु उस परीक्षा के संपूर्ण बयान करने के लिये बहुत सी पृष्ठों को भरना चाहिये। मैं ने आत्मा बनकर आत्माओं से बात चीत की और मैं ने मनुष्य बनकर शरीर में रहते उन के साथ बात चीत की। जब मैं आत्मा बनकर उन से बोल रहा था तब इस के विपरीत उन को कोई अन्य बोध न था पर यह था कि मैं आत्मा मनुष्य के रूप पर आप था जैसा कि वे आप थे। और इस कारण मेरे भीतरी भाग उन को दिखाई दिये क्योंकि जब मैं आत्मा बनकर उन से बोल रहा था तब मेरा भौतिक शरीर दिखाई नहीं दिया।

४३७। मनुष्य अपने भीतरी भागों के विषय आत्मा है। यह बात स्पष्ट है क्योंकि शरीर के परमाणुओं के पृथक पृथक होने के पीछे जो कि मृत्यु के समय हुआ करता है मनुष्य जीता रहता है जैसा कि पहिले वह जीता था। मुझ को यह सामर्थ्य हुआ कि मैं प्रायः उन सब मरे हुओं से सम्भाषण करूं कि जिन को मैं ने शरीर के जीने के समय जाना था। मैं किसी से घण्टों तक किसी से सप्ताहों या महीनों तक किसी से बरसों तक बात चीत किया करता था इस वास्ते कि मैं इस बात पर प्रतीति करूं और दूसरों के आगे उस का प्रमाण करूं।

४३८। इस प्रसङ्ग से इस बात का जोड़ना उचित है कि प्रत्येक मनुष्य यद्यपि वह उस को नहीं जानता तौ भी वह अपने आत्मा के विषय अपने शरीर के जीने के समय भी आत्माओं से संसर्ग किया करता है। कोई भला मनुष्य उन बिचवाइयों के द्वारा किसी दूतविषयक सभा में है और कोई बुरा मनुष्य किसी नरकीय सभा में। और एक एक मरने के पीछे उसी सभा में प्रवेश करता है जिस से एक एक जीते जी अनिषेध से संसर्ग करता रहता था। यह बात बार बार उन को जो मरने के पीछे आत्माओं के बीच आए थे कही गई और उन के लिये उस का निर्णय किया गया। मनुष्य तो जब कि वह जगत में रहता है उस सभा को कि जिस से वह संसर्ग किया करता है आत्मा के रूप पर नहीं दिखाई देता क्योंकि उस समय वह प्राकृतिक रीति से ध्यान करता है। परंतु वे जो शरीर से अलग होकर विषयविविक्त रीति से ध्यान करते हैं कभी कभी अपनी निज सभा में दिखाई देते हैं क्योंकि उस समय वे आत्मा के रूप पर हैं। वे तो उन आत्माओं से जो

वास्तव में वहां विद्यमान हैं अनायास से विशेषित किये जाते हैं क्योंकि वे उन लोगों के समान जो घोर ध्यान या समाधि करते हैं इधर उधर चुप चाप फिरते चले जाते हैं और दूसरों पर कुछ भी ध्यान नहीं करते कि मानों वे उन को नहीं देखते और जब कोई आत्मा उन को टोकता है तब झट पट वे बिलाय जाते हैं।

४३९। मनुष्य अपने भीतरी भागों के विषय आत्मा है इस सच्च बात के बारे में उदाहरण देने के लिये मैं परीक्षा करने से संचित इन बातों का बयान करता हूं कि किस रीति से वह शरीर से अलग किया जाता है और क्योंकर वह आत्मा के द्वारा किसी दूसरी जगह तक पहुंचाया जाता है।

४४०। जब कोई मनुष्य शरीर से अलग किया जाता है तब वह एक ऐसी अवस्था में डुबाया जाता है कि जो सोने और जागने के मध्य में है। और इस अवस्था में उस को और कोई बोध नहीं है पर यह है कि वह संपूर्ण रूप से जागता रहता है। इस अवस्था में उस के सब इन्द्रिय ऐसे फुर्तीले हैं कि जैसे वे शरीर की सब से तीक्ष्ण जागरणशीलता में थे। दृष्टि श्रवण और स्पर्श भी (जो कि एक अचरज की बात है) सब फुर्तीले हैं। उस समय स्पर्श जागते शरीर के स्पर्श की अपेक्षा अधिक भी तीक्ष्ण है। आत्मागण और दूतगण जीवन की वास्तविक दशा में देख पड़ते हैं वे सुनाई देते हैं (और यह भी एक अचम्भा की बात है) वे छुलाई देते हैं क्योंकि उन के और मनुष्य के बीच शरीर का प्रायः कुछ भी नहीं है। यह वही अवस्था है जो शरीर से अलग होना कहलाता है और इस बारे में किसी ने जो किसी समय उसी अवस्था में था यह बात कही कि उस समय मैं ने यह नहीं जाना कि क्या मैं शरीर में हूं या शरीर से बाहर। मैं इस अवस्था में केवल दो तीन बेर हुआ ता कि मैं उस का स्वभाव जानूं और इस बात पर विश्वास करूं कि आत्मागण और दूतगण सब इन्द्रियों का भोग करते हैं और मनुष्य भी जब कि वह शरीर से अलग किया गया तब अपने आत्मा के विषय इन्द्रियों का भोग करता है।

४४१। मुझ को वास्तविक परीक्षा से यह दिखलाया गया कि आत्मा के द्वारा एक जगह से दूसरी जगह तक का ले जाना क्या बात है और किस रीति से वह गति पैदा होती है। परंतु यह मुझे केवल दो तीन बेर दिखलाया गया। मैं एक दृष्टान्त का बयान करता हूं। एक बेर मैं किसी नगर के रस्तों में और खेतों में आत्माओं के साथ बात चीत करता करता चला जाता था और उस समय मैं इस के विपरीत कुछ नहीं जानता था पर यह जानता था कि मैं खुली हुई आंखों से जाग रहा हूं जैसा कि पहिले मैं जागता था। यद्यपि मैं वास्तव स्वप्न में था तौ भी बिना मार्ग को भूलने के मैं बन नदी मन्दिर घर मनुष्य और भांति भांति के पदार्थों को देखता देखता चला जाता था। जब कई घण्टों तक मैं इसी रीति से चला गया था तब मुझे झट पट शारीरिक दृष्टि फिर आई। तो फिर मैं क्या देखता हूं कि मैं किसी दूसरी जगह में हूं। मुझे बड़ा अचरज हुआ

और मैं ने यह मालूम किया कि उस समय मैं ऐसी अवस्था में था जो उन की अवस्था के समान है जिन के बारे में यह बात कही गई कि वे आत्मा के द्वारा किसी दूसरी जगह तक पहुंचाए गये थे। इस अवस्था में रहते न तो मार्ग की लम्बाई पर (यद्यपि वह बहुत कोसों तक चली हो) कुछ भी ध्यान है न काल पर (यद्यपि बहुत से घण्टे या दिन भी बीत गये) कुछ ध्यान है न इन्द्रियों पर कुछ भी थकाई लगती है। परंतु मनुष्य ऐसे मार्गों में से होकर जिस का उस को कुछ भी बोध नहीं है विना भूल चूक किये तब तक पहुंचाया जाता है जब तक कि वह अपने नियुक्तस्थान को न पहुंचे।

४४२। मनुष्य की ये दो अवस्थाएं जो भीतरी अवस्थाएं हैं या (और यह उस से एक ही बात है) जो उस की अवस्थाएं हैं जब कि वह आत्मा में है अनूठी अवस्थाएं हैं और वे मुझ को केवल इस हेतु से दिखलाई गई कि मैं उन का स्वभाव इस वास्ते समझूं कि उन का होना कलीसिया में जाना जाता है। परंतु बहुत बरसों से मैं यह सामर्थ्य रखता हूं कि मैं संपूर्ण जागती हुई अवस्था में आत्माओं से बात चीत करूं और उन के साथ साथी बनकर रहूं।

४४३। मनुष्य अपने भीतरी भागों के विषय आत्मा होने के बारे में न० ३११ वें से ३१७ वें तक के परिच्छेदों के प्रसङ्गों से अधिक प्रमाण निकलेगा जहां कि इस बात का बयान हुआ कि स्वर्ग और नरक मनुष्यजाति से होते हैं।

४४४। जब हम यह कहते हैं कि मनुष्य अपने भीतरी भागों के विषय एक आत्मा है हमारा यह अभिप्राय है कि वह उन वस्तुओं के विषय जो उस के ध्यान और संकल्पशक्ति की हैं आत्मा है। क्योंकि ये वे ई भीतरी भाग हैं कि जिन से मनुष्य वास्तव में मनुष्य है और जो अपना गुण मनुष्य पर इतने गाढ़ेपन से छापते हैं कि वह उन के समान हो जाता है।

मरने के पीछे मनुष्य के फिर जिलाने के और उस के अनन्त जीवन के आरम्भ करने के बारे में।

४४५। प्राकृतिक जगत में जब शरीर अपने निज कार्यों को जो उस के ध्यानों और अनुरागों के साथ प्रतिरूपता रखते हैं और जो आत्मीय जगत से निकलते हैं नहीं कर सकता तब लोग कहते हैं कि मनुष्य मर जाता है और यह तब हुआ करता है जब फेफड़े के सांस लेने की हांफी और हृदय का हिलन डोलन थम्भ जाता है। तो भी उस समय मनुष्य नहीं मर जाता। वह केवल अपनी शारीरिक मूर्त्ति से जो जगत में उस के काम में आती थी अलग हो जाता है। मनुष्य आप जीता रहता है। कहते हैं कि मनुष्य आप जीता रहता है क्योंकि मनुष्य अपने शरीर के कारण मनुष्य नहीं है पर आत्मा के कारण। क्योंकि आत्मा वही वस्तु है जो मनुष्य में ध्यान करता है और मनुष्य ध्यान का अनुराग

के साथ बना हुआ है। इस से स्पष्ट है कि जब मनुष्य मर जाता है तब वह केवल एक जगत से दूसरे जगत में जाता है। और इस कारण धर्मपुस्तक के भीतरी तात्पर्य के अनुसार मृत्यु से तात्पर्य पुनरुत्थान है और जीवन का बना रहना है[५८]।

४४६। सांस लेने में और हृदय के हिलन डोलन में आत्मा और शरीर का सब से परस्पर भीतरी संसर्ग है। क्योंकि ध्यान सांस लेने के साथ संसर्ग रखता है और अनुराग जो प्रेम का है हृदय के साथ संसर्ग रखता है[५९]। इस कारण जब ये दो गतियां थम्भ जाती हैं तब आत्मा शरीर से झट पट अलग हो जाता है। फेफड़े का सांस लेना और हृदय का हिलन डोलन वे ई बन्धन हैं जिन के टूट जाने पर आत्मा अलग होकर अकेला हो जाता है और शरीर जीवहीन होकर जड़त्व पाकर सड़ता है। मनुष्य का सब से भीतरी संसर्ग सांस लेने और हृदय के साथ है क्योंकि सब प्रकार की जीवसंबन्धी गतियां न केवल शरीर में साधारण रीति पर परंतु उन के प्रत्येक भाग में भी उन दोनों पर अवलम्बित हैं[६०]।

४४७। मनुष्य का आत्मा अलग होने के पीछे शरीर में तब तक रहता है जब तक कि हृदय की गति संपूर्ण रीति से थम्भ न जावे। और यह थम्भना उस बीमारी के स्वभाव के अनुसार जो मृत्यु का कारण था शीघ्रता से या विलम्ब करके हुआ करता है। क्योंकि कभी कभी हृदय चिरकाल तक डोला करता है और कभी शीघ्रता से थम्भ जाता है। उस गति के थम्भते ही मनुष्य का पुनरुत्पादन होता है परंतु यह पुनरुत्पादन प्रभु ही से किया जाता है। पुनरुत्पादन से तात्पर्य आत्मा का शरीर से अलग करना और उस का आत्मीय जगत में पहुंचाना है जो प्रायः पुनरुत्थान कहलाता है। मनुष्य का आत्मा तब तक शरीर से अलग नहीं किया जाता जब तक कि हृदय का डोलन थम्भ न जावे क्योंकि हृदय उस अनुराग से प्रतिरूपता रखता है जो प्रेम से होता है और प्रेम मनुष्य का जीव ही जीव है। क्योंकि प्रेम जीवसंबन्धी गरमी का मूल है[६१]। और इस कारण जब तक

---

५८ धर्मपुस्तक में मृत्यु से तात्पर्य पुनरुत्थान है क्योंकि जब मनुष्य मर जाता है तब उस का जीवन बना रहता है। न० ३४९८ • ३५०५ • ४६१८ • ४६२१ • ६०३६ • ६२२२।

५९ हृदय संकल्पशक्ति से और इस लिये प्रेम के अनुराग से प्रतिरूपता रखता है और सांस लेना ज्ञानशक्ति से और इस लिये ध्यान से प्रतिरूपता रखता है। न० ३८८८। इस कारण धर्मपुस्तक में हृदय से तात्पर्य संकल्प और प्रेम है। न० ७५४२ • ९०५० • १०३३६। और जीव से तात्पर्य ज्ञानशक्ति श्रद्धा और सचाई है। इस कारण जीव की ओर से और हृदय की ओर से तात्पर्य ज्ञानशक्ति श्रद्धा और सचाई की ओर से है। और संकल्पशक्ति की ओर से तात्पर्य प्रेम और भलाई की ओर से है। न० २९३० • ९०५०। हृदय और फेफड़े की प्रधान पुरुष अर्थात स्वर्ग के साथ प्रतिरूपता रखने के बारे में न० ३८८३ से ३८९६ तक देखो।

६० हृदय की थरथरी और फेफड़े का सांस लेना सारे शरीर में प्रबल हैं और उस के प्रत्येक भाग में परस्पर बहते हैं। न० ३८८७ • ३८८९ • ३८९० ।

६१ प्रेम मनुष्य के जीव की सत्ता है। न० ५००२। प्रेम आत्मीय गरमी है और इस लिये मनुष्य का अत्यावश्यक जीवसंबन्धी तत्त्व है। न० १५८९ • २१४६ • ३३३८ • ४९०६ • ७०८१ से ७०८६ तक • ९९५४ • १०७४०। और अनुराग प्रेम का निरन्तर तत्त्व है। न० ३९३८ ।

हृदय की गति होती जाती है तब तक वह प्रतिरूपता बनी रहती है और इस लिये शरीर में आत्मा का जीव भी बना रहता है।

४४८। पुनरुत्पादन करने की रीति का बयान न केवल मेरे लिये किया गया परंतु वास्तविक परीक्षा के द्वारा उस का प्रमाण भी किया गया। क्योंकि मैं उस परीक्षा का कर्मपद आप था इस वास्ते कि मैं पुनरुत्पादन करने की रीति संपूर्ण रूप से समझूं।

४४९। मैं अपने शारीरिक इन्द्रियों के विषय अचेतना की अवस्था में डुबाया गया और इस कारण मैं प्रायः एक मरते हुए मनुष्य की अवस्था में था तो भी मेरा भीतरी जीव और ध्यान करने की शक्ति अखण्ड रूप पर बनी रहती थी इस वास्ते कि मैं उन कार्यों को जिन का करना मुझे पड़ें और उन को भी पड़ते हैं जो मरी हुई अवस्था से पुनरुत्पादन प्राप्त करते हैं मालूम करूं और स्मरण में रखूं। मैं ने मालूम किया कि सांस लेना शरीर से प्रायः संपूर्ण रूप से हर लिया गया परंतु भीतरी सांस लेना जो आत्मा का है शरीर के एक धीमे निःशब्द सांस लेने के साथ संयुक्त होकर बना रहता है। इस समय हृदय के डोलन के विषय स्वर्गीय राज से संसर्ग होने लगा। क्योंकि स्वर्गीय राज हृदय से प्रतिरूपता रखता है[६२]। उस राज से दूत भी दिखाई दिये। कोई कोई दूरी पर थे और दो दूत मेरे सिर के पास थे। इस हेतु मेरा सब निज अनुराग हर लिया गया परंतु ध्यान और इन्द्रियज्ञान तब तक बच रहा। मैं उसी अवस्था में कई घण्टों तक रहा और उस समय आत्मा जो मेरे आस पास थे यह समझकर कि वह मर गया अलग हो गये। मैं ने सुगन्ध वास भी मालूम की कि मानों सुगन्धिद्रव्य भरी लोथ पास पास थी। क्योंकि जब स्वर्गीय दूतगण विद्यमान हैं तब लोथ का सुगन्ध वास के जैसे मालूम देता है। जब आत्मा उस सुगन्ध को सूंघते हैं तब वे उस के पास चल नहीं सकते। और इस रीति से बुरे आत्मा भी मनुष्य के आत्मा से भगा दिये जाते हैं जब कि मनुष्य पहिले ही अनन्तकालिक जीवन में भीतर लाया जाता है। दूत जो मेरे सिर के पास बैठे हुए थे चुप चाप रहते थे परंतु उन्हों ने अपने ध्यान के बोध मेरे बोधों से मिला दिये। और जब इस प्रकार का समझाना ग्रहण किया जाता है तब वे जानते हैं कि मनुष्य का आत्मा ऐसी अवस्था में है कि जिस में वह शरीर से संपूर्ण रूप से अलग होने के योग्य है। उन के ध्यानों का समझाना मेरे मुख पर देखने के द्वारा हुआ करता था क्योंकि स्वर्ग में उस प्रकार का समझाना इसी रीति पर हुआ करता है। जब कि ध्यान और इन्द्रियज्ञान मेरे साथ इस वास्ते रहा कि मैं पुनरुत्पादन की रीति को समझूं और स्मरण में रखूं तो मैं ने मालूम किया कि पहिले पहिल उन दूतों ने मेरे ध्यानों की इस लिये परीक्षा की कि वे इस बात का निर्णय करें कि मेरे ध्यान

---

६२ हृदय प्रभु के स्वर्गीय राज से प्रतिरूपता रखता है और फेफड़ा उस के आत्मीय राज से। न० ३६३५ · ३८८६ · ३८८७।

मरते लोग के ध्यानों के समान हैं कि नहीं। मरते हुओं के ध्यान प्रायः अनन्त-कालिक जीवन पर आसक्त हैं और वे दूत मेरे मन को उस अवस्था में रखा चाहते थे। पीछे मुझ को यह कहा गया कि मनुष्य का आत्मा ध्यान की उस अवस्था में कि जिस में वह मरने के समय पर था तब तक रख छोड़ा है जब तक कि वह उन ध्यानों की ओर फिर न जावे जो उस प्रधान या प्रबल अनुराग से बहकर निकलता है जिस करके वह जगत में विशिष्ठ था। मुझ को यह आज्ञा दी गई कि मैं एक प्रकार का खींचना कि मानों मेरे मन के और इस लिये मेरे आत्मा के भीतरी भाग मेरे शरीर से खींचे जाते थे अत्यन्त स्पष्टता से मालूम करूं। और मुझ को यह कहा गया कि यह खींचना प्रभु से होता है और यह वही साधन है कि जिस से पुनरुत्थान होता है।

४५०। स्वर्गीय दूतगण जो पुनरुत्पादित व्यक्ति की सेवा करते हैं उस को नहीं छोड़ते क्योंकि वे हर किसी को प्यार करते हैं। परंतु यदि उस का गुण ऐसा है कि वह स्वर्गीय दूतों के साथ नहीं रह सकता तो वह उन को छोड़ा चाहता है। और उस समय प्रभु के आत्मीय राज के दूत निकट आकर उस को ज्योति का उपकार देते हैं। क्योंकि उस समय तक वह केवल ध्यान करता रहता था और कुछ भी नहीं देखता। वह रीति कि जिस से ज्योति का दान दिया जाता है मुझ को दिखलाई गई। यह मालूम होता था कि मानों आत्मीय दूत बाईं आंख की झिल्ली नाक की मध्यभीत की ओर उधेड़ते थे इस लिये कि आंख खुल जाकर दृष्टि फिर काम में आवे। यह केवल माया है परंतु आंख उस को सत्य-विषय जानकर देखती है। और जब आंख की झिल्ली उधेड़े हुए रूप पर दिखाई देती है तब एक स्वच्छ और गूढ़ छाया देखने में आती है जैसा कि वह छाया जो जागते समय पहिले पहिल पलकों में से होकर देख पड़ती है। यह अस्पष्ट और स्वच्छ छाया मुझ को आसमानी रंग की देख पड़ी परंतु पीछे मुझ को यह कहा गया कि उस का रंग व्यक्ति व्यक्ति की समझ में भिन्न भिन्न मालूम देता है। इस के पीछे एक प्रकार का इन्द्रियबोध आ पड़ा कि मानों कोई वस्तु मुझ पर से धीमे धीमे उधेड़ी जाती है और इस के पीछे आत्मीय ध्यान की एक विशेष अवस्था आ पड़ी। यह मुझ पर से उधेड़ा जाना भी माया है जो प्राकृतिक ध्यान का आत्मीय ध्यान हो जाना प्रकाशित करता है। दूतगण बहुत सा सावधान करते हैं कि पुनरुत्पादित व्यक्ति में कोई बोध न हो जो प्रेम से नहीं होता। अब वे इस से कहते हैं कि तू एक आत्मा है। ज्योति देने के पीछे आत्मीय दूतगण नये आनेवाले की सेवा में सब प्रकार का मनमानता शिष्टाचार करते हैं और परलोक की वस्तुओं के बारे में उस को यहां तक शिक्षा देते हैं जहां तक वह उन वस्तुओं को समझ सकता है। परंतु यदि उस का मन शिक्षा ग्रहण करना नहीं चाहता तो वह उन से अलग होना चाहता है। वे दूत तो उस को नहीं छोड़ते पर वह अपने आप को उन से अलग करता है। क्योंकि दूतगण हर किसी को प्यार करते हैं और इस से बढ़कर किसी बात की इच्छा नहीं करते कि वे उन

की सेवा करें उन को शिक्षा दें और उन को स्वर्ग में पहुंचावें क्योंकि ऐसा ऐसा काम करना दूतगण का परमसुख है। जब आत्मा अपने आप को सहगामी दूतों से इसी रीति से अलग करता है तब भले आत्मा उस को ग्रहण करते हैं और वे भी जब तक कि वह उन के साथ रहता है तब तक उस की सेवा में सब प्रकार का शिष्टाचार करते रहते हैं। परंतु यदि जगत में उस का चाल चलन ऐसा हुआ था कि वह सत्संगत को नहीं सह सकता तो वह उन को भी छोड़ा चाहता है। और ये विकार तब तक होते जाते हैं जब तक कि वह ऐसे आत्माओं से संसर्ग न करे जो उस के जगत में के व्यवहारों को संपूर्ण रूप से उपयुक्त हैं। वह उन के साथ अपना जीव पाता है और अचरज की बात है कि उस समय वह ऐसी चाल पर चलता है जिस चाल पर वह जगत में चलता था।

४५१। मरने के पीछे मनुष्य के जीव की अवस्था थोड़े दिनों से अधिक काल तक बनी नहीं रहती। परंतु जिस रीति पर वह पीछे एक अवस्था से दूसरी अवस्था में और अन्त में या तो स्वर्ग में या नरक में पहुंचाया जाता है उस का बयान उस विस्तीर्ण परीक्षा के सहारे से जिस के करने की आज्ञा मुझ को दी गई आगे होगा।

४५२। मैं ने किसी किसी से उन के मरने के पीछे दो दिन देकर तीसरे दिन को (जब कि वे विकार जो न० ४४९ वें और ४५० वें परिच्छेदों में लिखे हैं समाप्त हुए) बात चीत की। इन आत्माओं में से मैं ने जगत में तीन आत्मा जाने थे और उन से कहा कि आप के मित्र आप के शरीरों को मिट्टी देने को उपस्थित हैं। जब मैं ने मिट्टी देने की बात कही तब उन्हों ने चकित होकर अचम्भा किया और दृढ़ रूप से कहा कि हम अभी जीते हैं तो भी हमारे मित्र उस पदार्थ को मिट्टी देवें जो जगत में शरीर बनकर हमारे काम में आता था। पीछे उन्हों ने इस बात पर अचरज किया कि उन्हों ने जीते जी मरने के पीछे के इस प्रकार के जीने पर विश्वास नहीं किया और विशेष करके उन्हों ने इस पर अचम्भा किया कि कलीसिया के मेम्बरों में प्रायः सर्वत्र ऐसा अविश्वास प्रबल हो।

जब वे लोग जो जीव की अमरता को नटते हैं देखते हैं कि हम मरने के पीछे जीते भी हैं तब वे निपट लाज करते हैं। और वे जिन्हों ने ऐसे अविश्वास पर प्रतीति की अपने जैसों से संसर्ग करते हैं और उन आत्माओं से अलग रहते हैं जो सच्च तत्त्व पर विश्वास करते थे। ऐसे नास्तिक लोग प्रायः किसी नरकीय सभा से संयुक्त होते हैं। क्योंकि वे किसी ईश्वरीय सत्ता का होना भी नटते हैं और कलीसिया के सच्च तत्त्वों की निन्दा करते हैं। क्योंकि जितना कोई अपने को जीव की अमरता के विरुद्ध प्रबोध करता है उतना ही वह अपने को हर एक मत के विरुद्ध कलीसिया के और स्वर्ग के बारे में भी प्रबोध करता है।

मनुष्य मरने के पीछे सिद्ध मानुषक रूप पर है।

४५३। मनुष्य के आत्मा का रूप मानुषक रूप पर है अर्थात आत्मा अपने रूप के विषय भी मनुष्य है। यह बात कई एक अगले बाबों से स्पष्ट हुई और विशेष करके उन बाबों के प्रसङ्ग से जिन में यह लिखा है कि हर एक दूत संपन्न मानुषक रूप पर है (न० ७३ से ७७ तक) और हर एक मनुष्य उस के भीतरी भागों के विषय आत्मा है (न० ४३२ से ४४४ तक) और स्वर्ग में के दूतगण मनुष्यजाति से उत्पन्न होते हैं (न० ३११ से ३१७ तक)। यह बात इस से अधिक स्पष्टता के साथ देखा जा सकता है कि मनुष्य अपने आत्मा के द्वारा मनुष्य है न कि अपने शरीर के द्वारा। और आत्मा शारीरिक रूप से नहीं जोड़ा जाता पर शारीरिक रूप आत्मा से। क्योंकि आत्मा अपने निज रूप के अनुसार एक शरीर से ओढ़ा जाता है। इस कारण मनुष्य का आत्मा शरीर के प्रत्येक भाग पर सब से सूक्ष्म परमाणु तक भी ऐसे गाढ़ेपन से और ऐसी सर्वव्यापी रीति से प्रभाव करता है कि यदि कोई ऐसा भाग हो कि जिस पर आत्मा का प्रभाव नहीं लगता या जिस में आत्मा फुर्तीली रीति से नहीं काम करता तो वह भाग मर जाता है। यह बात इस अकेली मनःकल्पना से स्पष्ट होती है कि ध्यान और संकल्प शरीर के सब भागों को या एक एक भाग को चलाते हैं और वे अपनी शक्ति की ऐसी संपन्न रीति से उन भागों को चलाते हैं कि हर एक परमाणु अङ्गीकार करता है और जो कुछ अङ्गीकार नहीं करता सो वास्तव में शरीर का कुछ भी भाग नहीं है और शरीर से निकाला जाता है इस वास्ते कि उस में कोई जीवसंबन्धी तत्त्व नहीं है। परंतु ध्यान और संकल्प मनुष्य के आत्मा के हैं शरीर के नहीं हैं। यद्यपि आत्मा मनुष्य के रूप पर है तो भी वह न तो शरीर से अलग होने के पीछे मनुष्य को दिखाई देता है न मनुष्य में जब कि वह जगत में जीता है देख पड़ता है। क्योंकि आंख अर्थात शारीरिक दृष्टि का इन्द्रिय भौतिक है। परंतु जो कुछ भौतिक है सो भौतिक वस्तुओं को छोड़ कुछ नहीं देखता है और जो कुछ आत्मिक है सो आत्मीय वस्तुओं को देखता है। इस कारण जब आंख का भौतिक तत्त्व ढंपनी से ढंपता है और उस के आत्मीय वस्तुओं के सहोद्योग से विहीन है तब आत्मा अपने निज रूप पर जो कि मानुषक रूप है दृश्य हो जाते हैं। और न केवल वे आत्मा जो आत्मीय जगत में हैं पर मनुष्यों के आत्मा भी जब कि वे शरीर में जीते भी हों दृश्य हो जाते हैं।

४५४। आत्मा का रूप मानुषक है क्योंकि मनुष्य अपने आत्मा के विषय इस वास्ते पैदा हुआ कि वह स्वर्ग का एक रूप होवे। क्योंकि स्वर्ग की और उस की परिपाटी की सब वस्तुएं उन वस्तुओं में जो मनुष्य के मन से संबन्ध रखती हैं एकट्ठी हुई हैं[६१]। और इस कारण मनुष्य बुद्धि और ज्ञान के ग्रहण करने की

---

६१ मनुष्य वही प्राणी है जिस में ईश्वरीय परिपाटी की सब वस्तुएं एकट्ठी हुई हैं क्योंकि वह सृष्टि से लेकर ईश्वरीय परिपाटी की मूर्त्ति है। न० ४२१९ · ४२२० · ४२२३ · ४५२३ · ४५२४ ·

शक्ति रखता है। चाहे हम बुद्धि और ज्ञान के ग्रहण करने की शक्ति कहें चाहे हम स्वर्ग के ग्रहण करने की शक्ति कहें दोनों वाक्य एक ही हैं जैसा कि न० १२६ वें से १४० वें तक के परिच्छेदों में स्वर्ग की ज्योति और गरमी के बारे में और न० २०० वें से २१२ वें तक के परिच्छेदों में स्वर्ग के रूप के विषय और न० २६५ वें से २७५ वें तक के परिच्छेदों में दूतगण के ज्ञान के बारे में दिखाई देता है। और यह बात उस बाब में भी देख पड़ती है जिस में यह बयान है कि सर्वव्यापी स्वर्ग सब मिलकर एक मनुष्य के सदृश है (न० ५९ से ७७ तक)। न० ७८ वें से ८६ वें तक के परिच्छेदों में यह बयान है कि स्वर्ग का मानुष्यक रूप प्रभु के ईश्वरीय मनुष्यत्व से पैदा होता है।

४५५। चैतन्य मनुष्य इन बातों को समझ सकता है क्योंकि वह कारणों की एक श्रेणी से और इस लिये यथाक्रम सचाइयों से तर्कवितर्क कर सकता है। परंतु जो मनुष्य सचेतन नहीं है वह उन को नहीं समझ सकता। इस के कई एक कारण हैं परंतु उन में से मुख्य कारण यह है कि वह उन बातों के समझने की इच्छा नहीं करता। क्योंकि वह उन झुठाइयों के विरुद्ध हैं जो वह अपनी सचाइयों को कर डालता है। और वह जो इस कारण समझने की इच्छा नहीं करता स्वर्ग के अन्तःप्रवाह के विरुद्ध अपने चैतन्य तत्त्व को बन्द करता है। तो भी यदि संकल्पशक्ति प्रतिरोध करने से निवारण करती है तो संसर्ग फिर हो सके। (न० ४२४ को देखो)। जो चाहे तो मनुष्य सचाइयों को समझकर सचेतन हो सके। इस बात का प्रमाण बहुत परीक्षा करने से मुझे प्रकाशित हुआ। बार बार मैं ने ऐसे बुरे आत्माओं को देखा जो जगत में ईश्वरीय सत्ता के होने के और कलीसिया की सचाइयों के नकारने से अचैतन्य हो गये और जिन्हों ने इन सचाइयों के नकारने में अपने को दृढ़ किया था। ऐसे आत्माओं को मैं ने ईश्वरीय शक्ति से उन आत्माओं की ओर जो सचाई की ज्योति में हैं फिराया हुआ देखा और उस समय उन्हों ने दूतों के सदृश उन सब सचाइयों को जो पहिले वे नकारते थे समझा और उन की सत्यता को स्वीकार किया और यह भी कहा कि हम सब को समझते हैं। परंतु ज्यों ही वे अपने में मग्न होकर अपने संकल्प के प्रेम की ओर फिरे हुए थे त्यों ही वे कुछ भी नहीं समझे और सचाई के विरुद्ध बोल रहे थे। मैं ने नरकीय आत्माओं को यह कहता हुआ सुना कि हम जानते हैं और मालूम करते हैं कि जो काम हम करते हैं सो बुरा है और जो ध्यान हम करते हैं सो झूठ है पर हम अपने प्रेम के आनन्द का और इस लिये अपनी इच्छा का विरोध नहीं कर सकते। और यह इच्छा उन के ध्यानों पर ऐसा प्रभाव करती है कि उन की समझ में बुराई की भलाई हो जाती है और झुठाई की सचाई। इस से यह सिद्धान्त निकला कि वे जो बुराई से निकली

५११४ · ५३६८ · ६०१३ · ६०५७ · ६६०५ · ६६२६ · ९७०६ · १०१५६ · १०४७२। और वह परलोक में यहां तक व्युत्पन्न और सुन्दर दिखाई देता है जहां तक कि वह ईश्वरीय परिपाटी के अनुसार बनता है। न० ४८३९ · ६६०५ · ६६२६।

हुई झुठाइयों में हैं सचाई के समझने के योग्य हैं और इस कारण चैतन्य होने के योग्य परंतु वे चैतन्य होने की इच्छा नहीं करते। और वे इस की इच्छा नहीं करते क्योंकि वे सचाइयों की अपेक्षा झुठाइयों से अधिक प्रेम रखते हैं इस वास्ते कि झुठाइयें उन की बुराइयों से मिलती हैं। प्रेम करना और इच्छा करना एक ही है क्योंकि जिस की इच्छा कोई मनुष्य करता है तिस से वह प्रेम रखता है और जिस से वह प्रेम रखता है तिस की इच्छा वह करता है। इस कारण जब कि मनुष्य की अवस्था ऐसी है कि यदि वह सचाइयों के समझने की इच्छा करे तो वह उन के समझने के योग्य होगा तो मुझे आज्ञा दी गई कि मैं चैतन्य बातों के सहारे से स्वर्ग की और कलीसिया की आत्मीय सचाइयों की प्रतीति करूं इस वास्ते कि वे झुठाइयें जिन्हों ने बहुत से लोगों का चैतन्य तत्त्व बन्द किया तर्क-शक्ति के सिद्धान्तों के द्वारा उड़ाए जावें और इसी रीति से उन लोगों की मानसिक आंखें कुछ कुछ खोली जावें। आत्मीय सचाइयों की ऐसी ऐसी प्रतीतियें का करना उन सभों को दिया जाता है जो सचाइयों में स्थायी रहते हैं। क्योंकि यदि कोई मनुष्य धर्मपुस्तक में की सचाइयों को किसी बुद्धिमान चैतन्य तत्त्व के द्वारा न देखे तो वह धर्मपुस्तक को उस के शब्दों ही के तात्पर्य से कैसा समझ सके। यदि ऐसे तत्त्व का अभाव न होता तो इतने मिथ्या मत का क्या कारण होता जब कि सब के सब प्रतिज्ञापूर्वक एक ही धर्मपुस्तक से निकाले गये[६४]।

४५६। मनुष्य का आत्मा शरीर से अलग होने के पीछे मनुष्य आप है और मनुष्य के रूप पर है। इस बात का प्रमाण मुझ को बहुत से बरसों में दिन दिन परीक्षा करने के द्वारा मालूम हुआ। क्योंकि मैं ने सहस्रों बेर आत्माओं को देख सुना और सम्भाषण किया है और मैं ने इस बात पर के (अर्थात क्या आत्मगण मनुष्य हैं) साधारण अविश्वास के बारे में भी बात चीत की और उन ने कहा कि विद्वान लोग उन को मूर्ख पुकारते हैं जो उस बात पर प्रतीति रखते हैं। आत्मागण शोक के मारे बड़े उदास हुए कि जगत में इतनी अज्ञानता हो रही है और विशेष करके कलीसिया में भी। और उन्हों ने कहा कि नास्तिकता प्रायः विद्वान लोगों से जो जीव पर अपनी शारीरिक विषयक ज्ञानशक्ति के अनुसार ध्यान करते हैं पैदा होती है। और इस कारण वे यह अनुमान करते हैं कि जीव केवल

---

६४ हम को चाहिये कि कलीसिया की उन धर्मसंबन्धी सचाइयों से लेकर जो धर्मपुस्तक से निकाली गई हैं ध्यान करने का आरम्भ करें और पहिले पहिल उन सचाइयों को स्वीकार करें तब तो विद्यानुसेवन करना स्वीकरणीय है। न० ६०४७। इस कारण वे जो श्रद्धा की सचाइयों के विषय अस्तिपक्षी तत्त्व में हैं उन सचाइयों की प्रतीति विद्यानुसेवन करने के द्वारा चैतन्य रीति से कर सकते हैं। परंतु उन को जो नास्तिपक्षी तत्त्व में हैं इस रीति से प्रतीति करना स्वीकरणीय नहीं है। न० २५३८ · २५८८ · ४७६० · ६०४७। क्योंकि आत्मीय सचाइयों से चलकर चैतन्य रीति से विद्यानुसेवन करने में जो कि प्राकृतिक सचाइयें हैं प्रवेश करना ईश्वरीय परिपाटी के अनुसार है परंतु विद्यानुसेवन से आत्मीय सचाइयों की ओर चलना ईश्वरीय परिपाटी के अनुसार नहीं है। क्योंकि आत्मीय अन्तःप्रवाह प्राकृतिक वस्तुओं में बहकर चल सकता है परंतु प्राकृतिक या द्रव्यसंबन्धी अन्तःप्रवाह का आत्मीय वस्तुओं में बहना नहीं हो सकता। न० ३२१९ · ५११९ · ५२५९ · ५४२७ · ५४२८ · ५४७८ · ६३२२ · ६११० · ६१११।

ध्यान मात्र है जो कि जब वह किसी विषय से कि जिस में और जिस से वह तिष्टता है अलग होकर देखा जाता है तब वह निरे आकाश के उड़नेवाले सांस के समान दिखाई देता है जो कि जब शरीर मरता है तब विना उपाय उड़ाया जाता है। परंतु जब कि कलीसिया के मेम्बर धर्मपुस्तक के साक्ष्य के बल जीव की अमरता पर श्रद्धा लाते हैं तो यद्यपि वे यह बात अस्वीकार करते हैं कि जीव किसी ज्ञानेन्द्रियविशिष्ट तत्त्व को तब तक रखता है जब तक कि वह शरीर से फिर संयुक्त न हो तो भी उन को अवश्य करके उस को कोई जीवसंबन्धी तत्त्व (जैसा कि ध्यान) देना पड़ता है। यह मत पुनरुत्थान के और यह प्रत्यय (कि कल्यान्त के दिन मनुष्य का जीव फिर शरीर से मिलाया जावेगा) इन दोनों विषयों में प्रधान मत का मूल है। और इस लिये जब कोई मनुष्य जीव के बारे में उस धर्ममत और अनुभव के सहारे से ध्यान करता है तब उस को यह समझ नहीं है कि जीव मनुष्यरूपी आत्मा है। और वास्तव में आज कल बहुत थोड़े लोग जानते हैं कि आत्मीय तत्त्व कौन वस्तु है और उन को इस बात के विषय न्यूनतर ज्ञान भी है कि आत्मीय सत्ता क्या दूत क्या आत्मा मनुष्य के रूप पर हैं। इस कारण प्रायः सब लोग जो इस जगत से परलोक में जाते हैं इस बात पर अचम्भा करते हैं कि हम जीते हैं और जैसा कि हम पहीले मनुष्य थे वैसा ही हम अभी मनुष्य रहते हैं। हम देखते हैं सुनते हैं और बोलते हैं। हम जैसा कि पहीले स्पर्श के इन्द्रिय का भोग करते थे वैसा ही हम अब छूते हैं। संक्षेप में दोनों अवस्थाओं में कुछ भी दृश्य भिन्नता नहीं है। (न० ७४ को देखो)। परंतु जब यह चमत्कार निवृत्त हुआ है तब वे अचरज करते हैं कि कलीसिया के मेम्बर मनुष्य के मरने के पीछे की अवस्था के विषय और इस लिये स्वर्ग और नरक के विषय संपूर्ण रूप से विद्याहीन होवें जब कि सब लोग जो किसी समय जगत में रहे थे परलोक को जाकर मनुष्य की रीति पर जीते हैं। वे इस बात पर भी अचम्भा करते हैं कि यह हाल दृश्य मूर्त्ति के सहारे से क्यों मनुष्य को स्पष्ट रूप से प्रकाशित न किया जावे। क्योंकि यह मत कलीसिया की भक्ति की आवश्यकता की बात है। परंतु स्वर्ग की ओर से उन को यह बात कही गई कि ऐसे ऐसे प्रकाश दिये जा सकें (क्योंकि जब प्रभु चाहे तब इस से बढ़कर किसी काम का करना अधिक अनायास नहीं है) परंतु वे जो झुठाइयों पर प्रतीति रखते हैं अपने निज इन्द्रियों के साक्ष्य पर भी श्रद्धा न लावें। और सचाई के ऐसे ऐसे प्रमाण उन को हिंसाजनक होंगे। क्योंकि पहिले पहिल वे उन पर विश्वास करें और पीछे उन को नकारें और इस से सचाई आप को अपवित्र करें। पहिले सचाई पर श्रद्धा लाना और पीछे उस को नकारना अपवित्र करने की बात है। और वे जो सचाइयों को अपवित्र करते हैं सब से नीचे और सब से घोर नरक में गिरा दिये जाते हैं[६५]। यह भय प्रभु की इन बातों का तात्पर्य है कि "उस ने

६५ अपवित्र करना मनुष्य में भलाई और बुराई या सचाई और झुठाई का मिलाव है। न० ६३४८। और सिवाय उन के जो उन बातों को पहिले स्वीकार करते हैं कोई लोग सचाई

उन की आंखें अंधा कीं और उन के हृदय कठोर किये ता न हो कि वे आंखों से देखें और हृदय से समझें और धर्म में आवें और मैं उन्हें चंगा करूं"। (यूहन्ना पर्व १२ वचन ४०)। और वे जो झुठाइयों में हैं उन में हठ करके रहेंगे इन बातों का तात्पर्य है अर्थात "इब्राहीम ने धनी से नरक में कहा कि उन के पास मूसा और भावीवक्ता हैं चाहिये कि वे उन की सुनें। उस ने कहा कि नहीं हे पिता इब्राहीम पर यदि कोई मरे हुओं में से उन के पास जावे वे पश्चात्ताप करेंगे। और इब्राहीम ने उस से कहा कि जब वे मूसा और भावीवक्ताओं की न सुनते तो यदि मरे हुओं में से कोई उठे तो उस की न मानेंगे"। (लूका पर्व १६ वचन २९ · ३० · ३१)।

४५७। जब मनुष्य का आत्मा पहिले पहिल आत्माओं के जगत में प्रवेश करता है जो कि उस के पुनरुत्पादन के पीछे कुछ थोड़े काल पर हुआ करता है तब वह वही मुंह और बोली रखता है जो जगत में उस के थे। क्योंकि उस समय वह अपने बाहरी भागों की अवस्था में है और भीतरी भाग खुले नहीं हैं। यह अवस्था मनुष्य की मरने के पीछे की पहिली अवस्था है। परंतु पीछे उस का मुंह बदल जाता है और संपूर्ण रूप से भिन्न हो जाता है। क्योंकि उस समय वह उस प्रधान अनुराग का या प्रेम का रूप जिस में मन के भीतरी भाग जगत में थे और जिस में आत्मा शरीर में था धारण करता है। क्योंकि मनुष्य के आत्मा का मुंह उस के शरीर के मुंह से अत्यन्त भिन्न है। शरीर का मुंह माता पिता से होता है परंतु आत्मा का मुंह उस के अनुराग से होता है और उस अनुराग की प्रतिमा तो भी है। शरीर के जीवन के पीछे जब बाहरी भाग अलग होकर भीतरी भाग प्रकाश किये गये हैं तब आत्मा अपना सच्चा मुंह लिये दिखाई देता है। यह अवस्था मनुष्य की [मरने के पीछे की] तीसरी अवस्था है। मैं ने कई

और भलाई को या धर्मपुस्तक और कलीसिया की पवित्र वस्तुओं को अपवित्र नहीं कर सकते हैं। और यदि वे लोग पहिले उन मतों के अनुसार चाल चलें और पीछे उन को नकारकर श्रद्धा से हठ आके केवल स्वार्थ और जगत ही के खोज में अपने दिन काटें तो इस प्रकार का अपवित्र करना अधिक भी पापी है। न० ५९३ · १००८ · १०१० · १०५९ · ३३९८ · ३३९९ · ३८९८ · ४२८९ · ४६०१ · १०२८४ · १०२८७। यदि मनुष्य हृदय से पश्चात्ताप कर अपनी पहिली बुराइयों में फिर गिर पड़े तो वह अपवित्र करने का पाप करता है और उस की पिछली अवस्था उस की पहिली अवस्था से बढ़कर बुरी है। न० ८३९४। वे जिन्हों ने पवित्र वस्तुओं को कभी नहीं स्वीकार किया उन वस्तुओं को अपवित्र नहीं कर सकते और इन से उतरकर वे जो पवित्र वस्तुओं को कभी नहीं जानते ऐसी अपवित्रता का काम नहीं कर सकते। न० १००८ · १०१० · १०५९ · ९१८८ · १०२८४। इस कारण जेण्टाइल लोग जो कलीसिया से बाहर हैं और जिन की धर्मपुस्तक नहीं है उस पुस्तक को अपवित्र नहीं कर सकते। न० १३२७ · १३२८ · २०५१ · २०८१। भीतरी सचाइयें यहूदियों से नहीं पाई गईं क्योंकि यदि वे लोग उन को पाकर स्वीकार करता तो वे उन को अपवित्र करता। न० ३३९८ · ३३९९ · ६९६३। परलोक में अपवित्र करनेवालों की अवस्था और सब अवस्थाओं से बढ़कर बुरी है। क्योंकि वह भलाई और सचाई जो उन्हों ने स्वीकार किया था रहती है और बुराई और झुठाई भी रहती है और इस वास्ते कि ये विरुद्ध गुण आपस में एक दूसरे से लिपट जाते हैं उन लोगों का जीव फाड़ा जाता है। न० ५७१ · ५८२ · ६३४८। इस कारण अपवित्र करने के रोकने के लिये प्रभु से बहुत से उपाय किये जाते हैं। न० २४२६ · १०३८४।

आत्मा जगत में से उन के आने के कुछ काल पीछे देखकर उन के मुंह और बोली के द्वारा उन को पहचाना परंतु आगे जब मैं ने उन को फिर देखा तब उन को नहीं पहचाना। वे जो भले अनुरागों पर आसक्त थे सुन्दर मुंहों से दिखाई देते थे परंतु उन के मुंह जो बुरे अनुरागों पर आसक्त थे कुरूप थे। क्योंकि मनुष्य का आत्मा केवल उसी मनुष्य का अनुराग मात्र है जिस का बाहरी रूप मुंह है। मुंह के ये विकार इस वास्ते होते हैं कि परलोक में कोई मनुष्य ऐसे अनुरागों का रूप धारण करने नहीं पाता जो उस के निज अनुराग नहीं हैं और इस लिये वह चिहरे का ऐसा रूप नहीं बनाने पाता जो उस के सच्चे अनुराग के विरुद्ध है। इस कारण सब प्रकार के स्वभाव के आत्मागण ऐसी अवस्था में लाए जाते हैं जिस में वे अपने ध्यानों के अनुसार बोलते हैं और जिस में अपनी संकल्पशक्ति की इच्छाओं को चिहरे से और इङ्गितों से दिखलाते हैं। इसी हेतु सब से आत्माओं के चिहरे उन के अनुरागों के रूप और प्रतिमाएं हो जाते हैं और इस लिये सब लोग जो जगत में एक दूसरे को जानते हैं आत्माओं के जगत में भी एक दूसरे को पहचानते हैं परंतु न कि स्वर्ग में न नरक में। (न० ४२७ को देखो)[६६]।

४५८। दम्भी लोगों के चिहरे अन्य आत्माओं के चिहरों की अपेक्षा धीमे धीमे बदल जाते हैं। क्योंकि कृत्रिमव्यवहार भीतरी भागों के सुधारने की ऐसी रीति से उकसाता है कि वे आत्मा भले अनुरागों का अनुकरण करते हैं। और इस कारण वे बहुत काल तक असुन्दर नहीं दिखलाई देते हैं। परंतु जब कि उन के कृत्रिमव्यवहार क्रम क्रम से हटाए जाते हैं और मनसंबन्धी भीतरी भाग अपने अनुरागों के रूप के अनुसार सुधरता जाता है तो वे अन्त में अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक कुरूप हो जाते हैं। मनुष्य जो दूतों की रीति से बोलते हैं परंतु अभ्यन्तर में केवल प्रकृति मात्र मानते हैं दम्भी हैं। क्योंकि वे वास्तव में ईश्वरीय सत्ता का होना नकारते हैं और इस लिये जो कुछ कि स्वर्ग और नरक से संबन्ध रखता है सो भी वे नटते हैं।

४५९। यह बयान करने के योग्य है कि मरने के पीछे हर एक मनुष्य का मानुषक रूप यहां तक सुन्दर है जहां तक कि ईश्वरीय सचाई से उस मनुष्य का प्रेम भीतरी रीति पर संबन्ध रखता है और जहां तक कि उस का चालचलन उन सचाइयों के साथ अनुरूप करता है। क्योंकि हर एक के भीतरी भाग उस प्रेम

---

६६ चिहरा भीतरी भागों के अनुसार बनाया जाता है। न० ४७९१ से ४८०५ तक॰ ५६९५। मन के अनुरागों से चिहरे की और उस के विकारों की प्रतिरूपता रखने के बारे में। न० १५६८॰ २९८८॰ २९८९॰ ३६३१॰ ४७९६॰ ४७९७॰ ४८००॰ ५१६५॰ ५१६८॰ ५६९५॰ ९३०६। स्वर्ग के दूतों में चिहरा भीतरी भागों से जो कि मन के हैं एक ही हो जाता है। न० ४७९६ से ४७९९ तक॰ ५६९५॰ ८२५०। और इस हेतु से धर्मपुस्तक में चिहरे से तात्पर्य मनसंबन्धी भीतरी भाग हैं अर्थात वे भीतरी भाग जो अनुराग से और ध्यान से संबन्ध रखते हैं। न० १९९९॰ २४३४॰ ३५२७॰ ४०६६॰ ४७९६॰ ५१०२॰ ९३०६॰ ९५४६। मस्तिष्क से चिहरे में जो अन्तःप्रवाह है वह काल बीतने पर क्योंकर बदलाया गया और उस के साथ चिहरा भीतरी भागों से प्रतिरूपता रखने के विरुद्ध क्योंकर आप बदल गया। न० ४३२६॰ ८२५०।

और चालचलन के अनुसार खुले हुए और बने हुए हैं। और इस कारण जितना अनुराग भीतरी है उतना ही वह स्वर्ग के अनुसारी है और उतना ही चिहरा सुन्दर है। इस वास्ते सब से भीतरी स्वर्ग के दूतगण सब से सुन्दर हैं क्योंकि वे स्वर्गीय प्रेम के रूप हैं। परंतु वे जो ईश्वरीय सचाइयों से अधिक बाहरी रीति पर प्रेम रखते हैं और इस लिये घट भीतरी रीति पर उन सचाइयों पर चलते हैं कम सुन्दर हैं इस वास्ते कि केवल उन के बाहरी भाग उन के चिहरों पर से चमकते हैं। न तो भीतरी स्वर्गीय प्रेम उन में से पार होकर पारदर्शक है न इस लिये स्वर्ग की आवश्यकता का रूप। परंतु उन के चिहरों पर कुछ सापेक्ष रीति से अस्पष्ट वस्तु दिखाई देती है जो भीतरी जीव की पारदर्शकता के सहारे से नहीं जिलाई जाती। संक्षेप में सब संपन्नता भीतर की ओर बढ़ती जाती है और बाहर की ओर घटती जाती है और संपन्नता की नाप सुन्दरता की नाप भी है क्योंकि एक दूसरे के साथ हो लेती है। मैं ने तीसरे स्वर्ग के दूतों के चिहरे देखे जो ऐसे सुन्दर थे कि कोई चित्रकार सब से संपन्न निपुणता से उन की ज्योति और जीव की चमक के सहस्रवें भाग को नहीं खींच सकता। परंतु सब से नीचे स्वर्ग के दूतों के चिहरे कुछ कुछ यथेष्टता से खींचे जा सकते हैं।

४६० । अन्त में एक रहस्य का बयान जो इस समय तक किसी ने नहीं जाना किया जा सकता है। हर एक भलाई और सचाई जो प्रभु की ओर से निकलती है और जिस का स्वर्ग बना है न केवल सब मिलके किसी मानुषक रूप पर है पर उस के प्रत्येक भाग में भी। और यह रूप हर एक व्यक्ति पर जो प्रभु की ओर से भलाई और सचाई को ग्रहण करती है प्रभाव करता है और हर एक को उस के ग्रहण करने के परिमाण के अनुसार मानुषक रूप धारण करवाता है। इसी हेतु से स्वर्ग साधारण रूप से और विशेष रूप से अपने आप के समान है और मानुषक रूप सभों का रूप क्या सभा क्या दूत होता है। जैसा कि चार बाबों में (न० ५९ से ८६ तक) बयान हो चुका है। और इस बात के साथ यह जोड़ा जा सकता है कि मानुषक रूप ध्यान के सब से सूक्ष्म अंश में जो दूतों में के स्वर्गीय प्रेम से निकलते हैं व्यापता है। तो भी मनुष्य यह रहस्य कठिनता से समझ सकता है परंतु दूतगण उस को स्पष्टता से समझते हैं क्योंकि वे स्वर्ग की ज्योति में हैं।

स्मरण ध्यान अनुराग आदि सब वस्तुएं जो मनुष्य जगत में रखता था मरने के पीछे उस के साथ हो लेती हैं और वह अपने पार्थिव शरीर को छोड़ जगत से जाकर और कुछ नहीं छोड़ता।

४६१ । जब मनुष्य मरता है और इस रीति से प्राकृतिक जगत से जाकर आत्मीय जगत में प्रवेश करता है तब वह अपने पार्थिव शरीर को छोड़ अपने

साथ अपनी निज मानुषक वस्तुओं को ले जाता है। इस का प्रमाण मैं ने बहुत सी परीक्षा करने से किया। क्योंकि जब वह आत्मीय जगत में अर्थात मरने के पीछे के जीवन में प्रवेश करता है तब वह एक शरीर में है जैसा कि वह एक शरीर में था जब कि वह प्राकृतिक जगत में था। और देखने में वह उसी पार्थिव शरीर में है कि जिस में वह पहिले था। क्योंकि न तो स्पर्श न दृष्टि उन दो शरीरों में कुछ भी भिन्नता देख सकती है। परंतु तिस पर भी उस समय उस का शरीर आत्मिक है और इस कारण पार्थिव वस्तुओं से अलग होता है या शुद्ध किया जाता है। जब आत्मीय व्यक्तियें आत्मीय वस्तुओं को छूती हैं और देखती हैं तब इन्द्रियों पर ऐसा ही प्रभाव ठीक ठीक लगता है जैसा कि उन पर लगता है जब कि प्राकृतिक व्यक्तियें प्राकृतिक वस्तुओं को छूती हैं और देखती हैं। इस वास्ते जब मनुष्य पहिले ही आत्मा हो जाता है तब वह अपनी मृत्यु को नहीं जानता और इस बात पर विश्वास करता है कि वह उस समय तक उसी शरीर में है जिस में वह जगत में था। कोई आत्मा हर एक इन्द्रिय का भोग क्या बाहरी क्या भीतरी करता है जिस का भोग वह जगत में करता था। जैसा वह पहिले देखता था वैसा ही वह अब देखता है। जैसा वह पहिले सुनता था और बोलता था वैसा ही वह अब सुनता है और बोलता है। जैसा वह पहिले सूंघता था और स्वाद लेता था वैसा ही वह अब सूंघता है और रस लेता है। और जब वह छूआ जाता है तब जैसा उस को इन्द्रियबोध पहिले होता था वैसा ही अब उस को इन्द्रियबोध है। वह लालच करता है अभिलाषा करता है इच्छा करता है ध्यान करता है विचार करता है अनुभव करता है प्यार करता है और संकल्प करता भी है जैसा कि पहिले ऐसे ऐसे प्रभाव उस पर लगते थे। संक्षेप में जब मनुष्य एक जीव से दूसरे जीव को जाता है या एक जगत से जाकर दूसरे जगत में प्रवेश करता है तब वह चलना ऐसा है कि जैसा वह एक जगह से दूसरी जगह को चलता है। क्योंकि जितनी वस्तुएं मनुष्य के पास उस की मानुषक अवस्था में थीं सब की सब मनुष्य अपने साथ ले जाता है। इस कारण यह बात नहीं कही जा सकती कि मृत्यु मनुष्य से कुछ भी हर लेती है जो वास्तव में मनुष्य का सारभूत हैं क्योंकि मृत्यु केवल शरीर से अलग होना है। प्राकृतिक स्मरण भी स्थायी है क्योंकि आत्मागण जो कुछ उन्हों ने जगत में शिशुपन की आदि से लेकर जीवन के अन्त तक सुना देखा पढ़ा पढ़वाया और ध्यान किया था सब का सब स्मरण में रखते हैं। परंतु जब कि वे प्राकृतिक वस्तुएं जो स्मरण में रहती हैं आत्मीय जगत में फिर उत्पन्न नहीं की जा सकतीं तो वे निश्चल रहती हैं जैसा कि इस जगत में वे तब स्थिर रहती हैं जब कोई मनुष्य उन के द्वारा ध्यान नहीं करता है। तो भी जब प्रभु चाहें तब वे वस्तुएं फिर उत्पन्न होती हैं। परंतु इस स्मरण के और मरने के पीछे इस स्मरण की अवस्था के बारे में और कुछ बयान आगे होगा। विषयी मनुष्य इस पर विश्वास नहीं कर सकते कि मरने के पीछे मनुष्य की ऐसी अवस्था है।

क्योंकि वे उस को नहीं समझते। इस वास्ते कि विषयी मनुष्य आत्मिक वस्तुओं के बारे में भी विना उपाय प्राकृतिक रीति से ध्यान करता है। इस कारण जो कुछ शारीरिक इन्द्रियों के आगे प्रत्यक्ष नहीं है अर्थात जो कुछ वह मनुष्य अपनी आंखों से न देखे और हाथों से न छूवे तिस के विषय में वह कहता है कि इस की वर्तमानता नहीं है। जैसा कि हम टामस जी के विषय में यूहन्ना की इञ्जील के २० वें पर्व में के २५ वें २७ वें और २९ वें वचनों में पढ़ सकते हैं। विषयी मनुष्य के लक्षणों का बयान न० २६७ वें परिच्छेद में हो चुका और उस विवरण में भी जिस की संख्या ८७ धरी।

४६२। तिस पर भी मनुष्य का जीवन आत्मीय जगत में और उस का जीवन प्राकृतिक जगत में बाहरी इन्द्रियों और उन के अनुरागों के तथा भीतरी इन्द्रियों और उन के अनुरागों के विषय भी बहुत ही भिन्न है। क्योंकि स्वर्ग के निवासियों के इन्द्रिय जगत में के इन्द्रियों की अपेक्षा अत्यन्त तीक्ष्ण हैं। वे अति तीक्ष्णता से देखते हैं और सुनते हैं और वे अति ज्ञान से ध्यान करते हैं। क्योंकि वे स्वर्ग की ज्योति के द्वारा देखते हैं और यह ज्योति जगत की ज्योति से कहीं बढ़कर चमकीली है (न० १२६ को देखो)। और वे आत्मीय वायुमण्डल में सुनते हैं और यह वायुमण्डल पृथिवी के वायुमण्डल से बहुत शुद्ध है (न० २३५)। बाहरी इन्द्रियों की ये भिन्नताएं उस भिन्नता के समान है जो स्वच्छ आकाश के और अन्धेरे कुहासे के बीच या दोपहर की ज्योति के और सांझ की छाया के बीच होती है। क्योंकि जब कि स्वर्ग की ज्योति ईश्वरीय सचाई है तो उस के द्वारा दूतविषयक दृष्टि सब से सूक्ष्म वस्तुओं को मालूम करती है और विवेचन करती है। दूतों की बाहरी दृष्टि उन की भीतरी दृष्टि से या ज्ञानशक्ति से भी प्रतिरूपता रखती है क्योंकि उन दृष्टियों में से एक दूसरे में बहती जाती है और वे मिलकर काम करती हैं। और इस कारण से उन की दृष्टि की आश्चर्ययुक्त तीक्ष्णता उत्पन्न है। उन का श्रवण उन की विषयग्रहणशक्ति से जो कि ज्ञानशक्ति और संकल्पशक्ति दोनों से संबन्ध रखती है प्रतिरूपता रखता है। और इस कारण दूतगण बोलनेवाले की वाणी की धुनि में और शब्दों में उस के अनुराग और ध्यान की सब से सूक्ष्म बातों को मालूम करते हैं। वे उस की वाणी की धुनि में उस के अनुराग की और उस के शब्दों में उस के ध्यान की बातों को मालूम करते हैं। (न० २३४ से २४५ तक देखो)। परंतु दूतों के अन्य इन्द्रिय दृष्टि और श्रवण के इन्द्रियों की अपेक्षा कम तीक्ष्ण हैं। क्योंकि ये उन की बुद्धि और ज्ञान की सहायता करते हैं परंतु शेष इन्द्रिय ऐसी सहायता नहीं करते। इस कारण यदि ये इन्द्रिय ऐसे तीक्ष्ण हों जैसे दृष्टि और श्रवण के इन्द्रिय तीक्ष्ण हैं तो वे दूतगण की ज्ञान की ज्योति और आनन्द हर लेवें और उन लालचों के आनन्द को प्रवेश कर दें जो नाना प्रकार की अभिलाषों से और शरीर से पैदा होते हैं और जो जहां तक वे प्रधान हैं वहां तक वे ज्ञानशक्ति को अन्धेरा करते हैं और बिगाड़ देते हैं। जगत में मनुष्य के विषय यह हाल हुआ करता है क्योंकि वे आत्मीय सचा-

द्रयों के बारे में यहां तक मन्दमति और मूर्ख हैं जहां तक वे शारीरिक स्पर्श और स्वाद लेने के विलास का भोग करते हैं। स्वर्ग के दूतगण के भीतरी इन्द्रिय जो उन के ध्यान और अनुराग से संबन्ध रखते हैं उन के जगत में के इन्द्रियों से बढ़कर अधिक तीक्ष्ण और व्युत्पन्न होते हैं। यह बात उस बाब से स्पष्ट है जो स्वर्ग में के दूतगण के ज्ञान के बारे में है (न० २६५ से २७५ तक)। नरक में के रहनेवालों की अवस्था भी उन की जगत में की अवस्था की अपेक्षा बहुत ही भिन्न है। क्योंकि जहां तक स्वर्ग के दूतों के बाहरी और भीतरी इन्द्रिय उत्तम और व्युत्पन्न हैं वहां तक नरक में के आत्माओं के इन्द्रिय दूषणयुक्त और तेजोहीन हैं। इस प्रसङ्ग के बारे में आगे अधिक बयान होगा।

४६२ ख०। जब मनुष्य जगत से चलता है तब वह अपने सारे स्मरण को अपने साथ ले जाता है। इस बात के बहुत से प्रमाण हैं और उन प्रमाणों में से कई एक बयान करने के योग्य हैं। मैं थोड़े प्रमाणों का बखान करता हूं। कई आत्माओं ने उन दुष्कर्मों और महापापों को जो वे जगत में किया करते थे अनङ्गीकार किया और इस कारण कि कहीं वे निर्दोषी न समझे जावें उन की सब क्रियाएं प्रकाशित हुईं और उन के निज स्मरण से शिशुपन से लेकर जीवन के अन्त तक सब क्रियाओं का वर्णन क्रम करके किया गया। ये क्रियाएं प्रायः छिनाले और लम्पटता की क्रियाएं थीं। कोई कोई जिन्हों ने औरों को छद्मन से धोखे दिये थे और डकैती और चोरी की थी यद्यपि जगत में उन पापों में से प्रायः एक भी पाप प्रसिद्ध न था तो भी उसी रीति से परखे गये और उन के सारे छलों का बयान एक एक करके किया गया। उन्हों ने सचाई को और उस के साथ हर एक ध्यान अभिप्राय आनन्द और भय जो उसी समय उन के मनों में था अङ्गीकार किया क्योंकि सब का सब ऐसा प्रकाशित हुआ जैसा कि वह ज्योति में था। कोई आत्मा जिन्हों ने घूस खाके न्याय करने में लाभ उठाया था परखे भी गये और उन के अधिकारसंबन्धी व्यवहारों का बयान अपने ही स्मरण के द्वारा क्रम क्रम से किया था। हर एक बात का वर्णन किया गया। प्रत्येक घूस का परिमाण और स्वभाव घूस खाने का समय उन के मन की अवस्था उन का घूस खाने का अभिप्राय सब के सब उन के मनों में दौड़कर चले आए और पास रहनेवालों को प्रत्यक्ष दिखाई दिये। महापाप जो इस रीति से प्रकाशित हुए सब मिलके सैकड़ों तक पहुंचते थे। इस रीति की परीक्षा कई बेर हुई और (यह अचरज की बात है) स्मारकपत्र भी कि जिन में इन आत्माओं ने अपने व्यवहारों का बयान लिखा था खोलकर पृष्ठ पृष्ठ करके पढ़े गये। कोई जिन्हों ने कन्याओं को बलात्कार या छल से सम्भोग किया था उसी रीति से अपराधी ठहराए गये और उन के पापों की हर एक बात का बखान उन के स्मरण से किया गया। कन्याओं और स्त्रियों के चिहरे भी जिन को उन्हों ने काला किया था और

ख० मूलपुस्तक में यह संख्या फिरकर लिखी है।

उन जगहों के चित्र जहां वे एक दूसरे से मिले थे और उन का सम्भाषण करना और उन के मनों की अवस्था सब के सब ऐसे दिखाई दिये कि मानों वे विद्यमान थे। कभी कभी ये देखाव घण्टों तक बने रहते थे और कभी कभी एक दूसरे के पीछे फिरते हुए चित्रों के समान शीघ्रता से आते जाते थे। कोई आत्मा था जिस ने पीठ पीछे निन्दा करने का दोष तुच्छ माना था। मैं ने उस के कहे हुए चवाव और लुतराई का बखान क्रम करके सुना और मैं ने वही बातें सुनीं जिन को वह काम में लाया। और वे लोग जिन की निन्दा उस ने की थी और वे भी जिन को उस ने निन्दा की बात कही थी दोनों ऐसे स्पष्ट रूप से प्रकाशित हुए कि मानों वे वास्तव में वर्त्तमान थे। तो भी जब वह जगत में रहा तब उन निन्दाओं की हर एक बात सावधान के साथ छिपी रहती थी। एक आत्मा जिस ने किसी बंधु की बपौती छल से छान ली उसी रीति से परखकर दण्डित हुआ (आश्चर्य की बात है) जितनी चिट्ठी और पत्र उन के बीच आते जाते थे सब के सब मेरे साम्हने पढ़े गये और मुझ को यह कहा गया कि उन में से एक भी बात छोड़ी न गई। उसी व्यक्ति ने अपने मरने से कुछ समय पहिले अपने पड़ोसी को छिपके विष देकर मारा था और यह पाप भी प्रकाशित हुआ। हत्यारा भूमि में एक गड़हा खोदता हुआ दिखाई दिया और उस गड़हे में से एक मनुष्य निकलकर कि मानों कोई मनुष्य समाधि से निकल आवे उस से पुकारकर कहा कि तू ने मुझ पर क्या किया। उस समय हर एक बात प्रकाशित हुई। हत्यारे और मारे हुए मनुष्य के बीच जो मित्रतापूर्वक सम्भाषण था और जिस रीति से उस ने उस को विष दिया और ध्यानों की श्रेणी जिस से वह हत्या पैदा हुई और अनुवर्त्ती बातें जो उस हत्या के पीछे थीं सब की सब प्रकाशित हुईं। ज्यों ही ये बातें प्रकाशित हुईं त्यों ही उस ने नरक का दण्ड पाया। संक्षेप में सब प्रकार की बुराइयें बुरी क्रियाएं लूटपाट छल और कपट हर एक आत्मा के साम्हने उस के निज स्मरण के द्वारा इतनी स्पष्टता से दिखाई दिये कि वह आप से आप अपराधी ठहराया गया। और अस्वीकार करने का कुछ भी स्थान नहीं है क्योंकि सारी बातें सब मिलकर एक साथ दिखाई देती हैं। किसी आत्मा की स्मरणशक्ति दूतों ने देखकर परीक्षा की और मैं ने उस के ध्यानों को जो दिन दिन एक महीने पर्यन्त हुआ करते थे ठीक ठीक सुना क्योंकि प्रत्येक दिन का सच्चा हाल सुनाया गया। इन दृष्टान्तों से स्पष्ट है कि मनुष्य परलोक में जाकर अपना सारा स्मरण अपने साथ ले जाता है और कोई बात नहीं है जो चाहे जितनी वह यहां छिपी रहे कि वहां बहुतों के देखते प्रभु के इन वचनों के अनुसार प्रकाशित न होगी कि "कोई वस्तु ढंपी नहीं जो खुल न जावे और न छिपी जो जानी न जावे। इस लिये कि जो कुछ तुम ने अंधेरे में कहा है ज्योति में सुनाया जावेगा और जो कुछ तुम ने कोठरियों में कानों कान कहा कोठों पर प्रगट न किया जावेगा"। (लूका पर्व १२ वचन २·३)।

४६३। जब मरने के पीछे किसी मनुष्य की क्रियाएं उस के साम्हने प्रगट की जाती हैं तब वे दूत जिन का परीक्षा करने का कर्तव है उस मनुष्य के मुख

पर देखते हैं और अपनी परीक्षा प्रत्येक हाथ की उंगलियों से लेकर सारे शरीर में फैलाते हैं। मैं ने उस पर अचरज किया इस लिये मुझ को उस का बयान किया गया। मनुष्य के ध्यान और संकल्प की हर एक बात आदि से अन्त तक मस्तिष्क पर लिखी हुई है। वे सारे शरीर पर भी लिखी हुई हैं। क्योंकि ध्यान और संकल्प की सारी बातें अपनी आदि से उधर को चलती हैं और वहां जैसा कि अपने अन्तिम में समाप्त हुईं। इस लिये जो कुछ संकल्पशक्ति और उस की अनुवर्ती ध्यान की ओर से स्मरण में लिखा हुआ है सो न केवल मस्तिष्क पर लिखा हुआ है पर सारे मनुष्य पर भी और वहां शरीर के भागों की परिपाटी के अनुसार यथार्थ हो रहता है। और इस कारण मैं ने यह देखा कि संपूर्ण मनुष्य ऐसा है जैसा उस की संकल्पशक्ति और जैसा उस का ध्यान भी है जो उस शक्ति से निकलता है। इस लिये बुरा मनुष्य अपने आप की बुराई है और भला मनुष्य अपने आप की भलाई है[९८]। मनुष्य की "जीवन की पोथी" से जिस की सूचना धर्मपुस्तक में है अब तात्पर्य स्पष्ट है अर्थात यह कि उस की सब क्रियाएं और उस के सब ध्यान सारे मनुष्य में लिखे हुए हैं और जब वे स्मरण में से बुलाए जाते हैं तब वे ऐसे दिखाई देते हैं कि मानों वे या तो पोथी की पृष्ठ से पढ़े जाते हैं या प्रतिमा के रूप पर देख पड़ते हैं जब कि आत्मा स्वर्ग की ज्योति में देखा जाता है। एक स्मरणयोग्य घटना के द्वारा स्मरण के मरने के पीछे के बने रहने के बारे में मैं ने इस सत्य की प्रतीति की कि न केवल साधारण बातें पर सब से सूक्ष्म बातें भी जो स्मरण में प्रवेश करती हैं बनी रहती हैं और कभी न मेटी जावेंगी। एक बेर मैं ने कई पोथियें देखीं कि जिन में ऐसी लिपि थी जो जगत में की लिपि के समान थी और मुझे यह बतलाया गया कि वह लिपि ग्रन्थकर्ता के स्मरण ही से निकली थी और मूल में की एक भी बात इन प्रतिलिपियों से नहीं छोड़ी गई। इस कारण सब से सूक्ष्म बातें भी जो कि मनुष्य जगत में भूल गया था उस के स्मरण से बुलाई जा सकती हैं। इस के हेतु का बयान भी मुझे बतलाया गया। मनुष्य का बाहरी स्मरण और भीतरी स्मरण भी है। बाहरी स्मरण उस के प्राकृतिक मनुष्य का है और भीतरी स्मरण उस के आत्मिक मनुष्य का है। जो कुछ कि कोई मनुष्य ध्यान करता है या इच्छा करता है या बोलता है या जो कुछ उस से किया गया या सुना गया या देखा गया सो सब का सब उस के भीतरी या आत्मीय स्मरण में लिखा हुआ है[९९]। परंतु जो कुछ आत्मीय स्मरण में ग्रहण किया जाता

---

९८ भला मनुष्य या आत्मा या दूत अपने आप की भलाई और सचाई है अर्थात वह सब मिलकर ऐसा है जैसा उस की भलाई और सचाई है। न० १०२९८ · १०३६७। क्योंकि भलाई संकल्पशक्ति को बनाती है और सचाई ज्ञानशक्ति को। और संकल्पशक्ति और ज्ञानशक्ति मनुष्य-संबन्धी और आत्मासंबन्धी और दूतसंबन्धी जीवन की समष्टि को बनाती हैं। न० ३३३२ · ३६२३ · ६०६५। इसी रीति पर यह कहा जा सकता है कि हर एक मनुष्य और आत्मा और दूत अपने आप का प्रेम है। न० ६८७२ · १०१७७ · १०२८४।

९९ मनुष्य के दो स्मरण हैं एक बाहरी और दूसरा भीतरी या एक प्राकृतिक और दूसरा आत्मिक। न० २४६९ से २४९४ तक। परंतु मनुष्य नहीं जानता कि उस का कोई भीतरी स्मरण

है सो कभी मिटाया नहीं जावेगा। क्योंकि वह आत्मा में और उसी समय शरीर के अंगों में भी लिखा जाता है जैसा कि ऊपर बयान हो चुका। और इस कारण आत्मा संकल्पशक्ति के ध्यानों और क्रियाओं के अनुसार बनाया जाता है। मैं जानता हूं कि ये बातें लोकविरुद्धाभास के समान दिखाई देती हैं और उन पर कठिनता से विश्वास किया जाता है परंतु तिस पर भी वे सच्ची बातें हैं। इस कारण कोई मनुष्य कहीं यह न समझे कि जो कुछ उस ने छिपके ध्यान किया हो या गुप्त प्रकार से सिद्ध किया हो सो मृत्यु के पीछे गुप्त रहता होगा। परंतु वह इस पर प्रतीति रखे कि हर एक क्रिया और हर एक ध्यान उस समय खुला हुआ पड़ा रहेगा कि मानों वह स्वच्छ दिन की ज्योति में पड़ा रहता है।

४६४। यद्यपि मृत्यु के पीछे बाहरी या प्राकृतिक स्मरण मनुष्य में है तौ भी परलोक में उस स्मरण की प्राकृतिक वस्तुएं मात्र नहीं पुनरुत्पादित होती हैं परंतु आत्मीय वस्तुएं भी उत्पन्न की जाती हैं जो प्रतिरूपों के द्वारा उन प्राकृतिक वस्तुओं से संयुक्त होती हैं। तिस पर भी ये आत्मीय वस्तुएं जब वे दृश्य रूप धारण करती हैं उन प्राकृतिक वस्तुओं के समान ठीक ठीक दिखाई देती हैं जिन से वे प्राकृतिक जगत में प्रतिरूपता रखती हैं। क्योंकि स्वर्गों में यद्यपि स्वर्गों की वस्तुएं सारांश से ले प्राकृतिक नहीं हैं पर आत्मिक हैं तौ भी सब वस्तुएं दूतों को इसी रीति से दृष्टिगोचर हैं जिस रीति से प्राकृतिक वस्तुएं मनुष्यों को दृश्य हैं। इस भिन्नता का बयान उस बाब में जो स्वर्ग में की प्रतिमा और रूप के बखान में है (न० १७० से १७६ तक) हो चुका। बाहरी या प्राकृतिक स्मरण जहां तक कि वह उन सब बोधों से संबन्ध रखता है जो भौतिकत्व काल फैलाव और अन्य सब वस्तुओं से जो प्रकृति के निज लक्षण है निकलते हैं यहां तक वह आत्मा की सेवा उसी प्रयोजन के लिये नहीं करता जिस प्रयोजन के लिये जगत में वह मनुष्य की सेवा करता था। क्योंकि जब जगत में मनुष्य बाहरी विषयी तत्त्व के सहारे से ध्यान करता है और उसी समय भीतरी विषयी (या बुद्धिमान) तत्त्व के सहारे से नहीं ध्यान करता तब वह प्राकृतिक रीति से ध्यान करता है न कि आत्मिक रीति से। परंतु परलोक में वह आत्मीय जगत में का एक आत्मा है और इस कारण वह प्राकृतिक रीति से

है। न० २४७० · २४७१। भीतरी स्मरण बाहरी स्मरण से कहीं बढ़कर उत्तम है। न० २४७३। जो वस्तुएं बाहरी स्मरण में हैं सो स्वर्ग की ज्योति में हैं। न० ५२१२। और मनुष्य भीतरी स्मरण के सहाय बुद्धिमान रूप से और चैतन्य रूप से ध्यान कर सकता है और बोल सकता है। न० ६३६४। जो कुछ कोई मनुष्य कहता है या करता है और जो कुछ वह देखता है और सुनता है सो भीतरी स्मरण में लिखा जाता है। न० २४७४ · ७३९८। क्योंकि भीतरी स्मरण मनुष्य के जीवन की पोथी है। न० २४७४ · ९३८६ · ९८४१ · १०५०५। वे सचाइयें जिन की श्रद्धा की सचाइयें हो गईं और वे भलाइयें जिन की प्रेम की भलाइयें हो गईं सब की सब भीतरी स्मरण में हैं। न० ५२१२ · ८०६७। वे बातें जो व्यवहारिक हो गई थीं और जो जीव की आवश्यकताएं हुई थीं बाहरी स्मरण में मिट गईं परंतु भीतरी स्मरण में रहती हैं। न० ९३९४ · ९७२३ · ९८४१। आत्मागण और दूतगण भीतरी स्मरण से बोलते हैं और इस लिये उन की एक सर्वव्यापी बोली है। न० २४७२ · २४७६ · २४९० · २४९३। परंतु जगत में बोलियां बाहरी स्मरण की हैं। न० २४७२ · २४७६।

नहीं ध्यान करता पर आत्मिक रीति से। आत्मीय रीति से ध्यान करना यह है कि कोई बुद्धिमान रीति से या चैतन्य रीति से ध्यान करे। यह वही हेतु है कि जिस से बाहरी या प्राकृतिक स्मरण सब भौतिक बोधों के विषय मृत्यु के पीछे विश्राम पावेगा। और जो कुछ कि मनुष्य ने भौतिक वस्तुओं के सहारे से ग्रहण किया था सो उस समय उस के काम में नहीं आता इस को छोड़ कि जो उस ने चिन्तावती रीति से काम करने के द्वारा चैतन्य किया था। बाहरी स्मरण सब भौतिक वस्तुओं के विषय विश्रान्त होगा इस वास्ते कि आत्मीय जगत में भौतिक बोधों का पुनरुत्पादन नहीं हो सकता। क्योंकि आत्मागण और दूतगण अपने अनुरागों से और उन ध्यानों से जो आप से आप उन अनुरागों से बहकर निकलते हैं बोलते हैं। और इस लिये वे किसी बात को नहीं कह सकते जो उन के अनुरागों के और ध्यानों के अनुकूल नहीं है। (इस बात का बयान तब हुआ था जब हम ने दूतगण के आपस में की बात चीत करने और मनुष्य से बोलने का बखान किया न० २३४ से २५७ तक)। यह वही हेतु है कि जिस से जहां तक मनुष्य जगत में बोलियों और विद्याओं के द्वारा चैतन्य हो जाता है वहां तक वह मृत्यु के पीछे चैतन्य रहेगा। न कि जहां तक उस की केवल पाण्डित्य या विद्या मात्र है वहां तक वह चैतन्य होगा। मैं ने बहुतेरे ऐसे लोगों से बात चीत की जो जगत में विद्वान लोग पुकारे गये थे इस वास्ते कि वे प्राचीन लोगों की बोलियों से जैसा कि इब्रानी और यवनी और लाटिन भाषाओं से सुपरिचित थे पर उन्हों ने अपनी चैतन्यशक्ति की उन्नति उन पोथियों के द्वारा जो उन भाषाओं में लिखी गई थीं नहीं की थी। उन में से कोई कोई ऐसे भोले मनुष्य थे जैसा कि वे थे जो अपनी निज भाषा को छोड़ किसी और भाषा से परिचित न हुए थे। और कोई वास्तव में मूर्ख के मूर्ख दिखाई दिये तौ भी वे अभिमान करके अपने उत्तमतर ज्ञान पर विश्वास करते थे। मैं ने ऐसे आत्माओं से बात चीत की जो जगत में रहते हुए यह बात समझते थे कि जितना मनुष्य स्मरण करता है उतना ही वह ज्ञानी है और इस लिये वे अपने स्मरण में बातों के समूह के समूह भर देते थे। वे प्रायः स्मरण ही से और इस लिये औरों से न कि अपनी ओर से बात चीत करते थे क्योंकि वे अपने स्मरण की बातों को अपनी चैतन्यशक्ति की उन्नति करने में नहीं लगाते थे। इस कारण उन में से कोई मूर्ख थे और कोई ऐसे पागले थे कि वे किसी सत्य के समझने में संपूर्ण रूप से असमर्थ थे यहां तक कि वे यह भी नहीं देख सकते थे कि क्या यह बात सच्ची है कि नहीं। तौ भी वे उन सब सचाइयों को शीघ्रता के साथ ग्रहण करते थे जो आत्मप्रोक्त विद्वान लोग सचाइयें कहते हैं। क्योंकि वे किसी बात की सचाई या झुठाई आप से आप मालूम नहीं कर सकते थे और इस कारण वे औरों की किसी कही बात को चैतन्य रूप से समझ नहीं सकते थे। मैं ने ऐसे आत्माओं से भी बात चीत की जिन्हों ने जगत में सब प्रकार के विद्याविषयक प्रसङ्गों के बारे में मज़मून लिखे थे और जो इसी रीति से अपने ज्ञान के कारण प्रसिद्ध हो गया था। उन में से कोई तो सचाइयों के विषय तर्कवितर्क कर सकते थे कि क्या ये

बातें सच्ची हैं कि नहीं। कोई लेग जब वे उन लोगें की ओर फिरते थे जो सचाई की ज्योति में हैं तब वे समझ सकते थे कि ये बातें सच ही सच है परंतु वे इन बातों के समझने की इच्छा नहीं करते थे और इस लिये जब वे अपनी झुठाई की ओर और इस से अपने आप की ओर अपने के फिराते थे तब वे फिर उन बातों के अस्वीकार करते थे। कोई कोई अविद्वान लोगें सरीखे अज्ञानी थे। और इस प्रकार से वे जहां तक कि उन्हें ने उन विद्याविषयक पोथियें के द्वारा जिन के उन्हें ने लिखा था या जिन की प्रतिलिपि के उन्हें ने किया था अपनी चैतन्यशक्ति की उन्नति की थी वहां तक वे एक दूसरे से भिन्न भिन्न थे। परंतु जिन्हें ने कलीसिया की सचाइयों के विरुद्ध विद्याविषयक बातों के सहाय ध्यान किया था और इसी रीति से झुठाइयों पर प्रतीति की थी उन्हें ने अपनी चैतन्य-शक्ति की उन्नति नहीं की थी पर केवल अपनी तर्कवितर्क करने की शक्ति। यह तो वास्तव में जगत के लोग चैतन्यत्व कहते हैं परंतु वह चैतन्यत्व से कुछ भी संबन्ध नहीं रखता। क्योंकि यह केवल वह चतुराई है कि जिस से जिस बात पर कोई मनुष्य प्रसन्न करे वह सचाई के रूप पर दिखाई जाती है। ऐसे ऐसे मनुष्य पूर्वबुद्ध तत्त्वों से या मिथ्या ज्ञान से झुठाइयों के सचाइयों के रूप पर देखते हैं और सचाई के नहीं देख सकते। और वे सचाइयों के स्वीकार करने के उकसाए नहीं जा सकते क्योंकि सचाइयें झुठाइयों की ओर से नहीं देखी जा सकतीं परंतु झुठाइयें सचाइयों की ओर से देखी जा सकती हैं। मनुष्य की चैतन्यशक्ति वाटिका या फुलवाड़ी या परती भूमि के समान है। स्मरण भूमि है विद्याविषयक सत्य और ज्ञान वे ई बीज हैं कि जिन से वह भूमि बोई जाती है। परंतु जब कि सूर्य की ज्योति और गरमी के विना प्राकृतिक अंखवाना असम्भव है तो इसी रीति पर स्वर्ग की ज्योति और गरमी के विना कुछ आत्मीय अंखवाना भी नहीं हो सकता। स्वर्ग की ज्योति ईश्वरीय सचाई है और स्वर्ग की गरमी ईश्वरीय प्रेम है और यथार्थ चैतन्यत्व उन दोनें ही से होता है। दूतगण इस बात का अत्यन्त खेद करते हैं कि विद्वानें में से बहुतेरे लोग सब वस्तुओं का कारण प्रकृति ठहराते हैं और इस रीति से अपने मन के भीतरी भाग बन्द करते हैं यहां तक कि वे सचाई की ज्योति से जो स्वर्ग की ज्योति है सचाई का कुछ भी नहीं देख सकता। इस कारण परलोक में उन से तर्कवितर्कशक्ति हर ली जाती है कि कहीं वे भोले साधुओं में अपने तर्कवितर्क करने के द्वारा झुठाइयों के न फैलावें और उन साधुओं के न लुभावें। वे उजाड़ स्थानें के भी भिजवा दिये जाते हैं।

४६५। किसी आत्मा ने इस वास्ते कोप किया कि वह बहुत सी बातें नहीं स्मरण कर सका कि जिस से शरीर के जीवन के समय वह सुपरिचित था। और उस ने उस सुख का खेद किया जो किसी समय अत्यन्त आनन्ददायक था और जो उस समय खो गया था। परंतु उस के यह कहा गया था कि तुम ने कुछ भी नहीं खोया था। जो कुछ तुम ने किसी समय जाना था से तुम अभी

जानते हो। परंतु जिस जगत में तुम अब रहते हो उस में कोई आत्मा उसी प्रकार की बातें स्मरण करने नहीं पाता। यथेष्ट है कि अपनी चैतन्यशक्ति को स्थूल अस्पष्ट भौतिक शारीरिक वस्तुओं में डुबाने के विना (जो वस्तुएं इस जगत में कि जिस में तुम ने अभी प्रवेश किया है कुछ काम की नहीं है) तुम अब जगत के तौर की अपेक्षा अच्छी रीति से और अधिक निपुणता के साथ ध्यान करते हो और बोलते हो। अब तुम्हारे सब वस्तुएं हैं जो अनन्तकालिक जीवन के प्रयोजनों को चला सकती हैं और तुम इस रीति से पवित्र और सुख होगे न कि किसी अन्य रीति से। अज्ञानता का यह एक प्रमाण है कि कोई व्यक्ति यह जानें कि जिस राज में तुम अब रहते हो उस में स्मरण की भौतिक वस्तुओं के दूर करने और विश्रान्त होने पर बुद्धि नष्ट होती है। वास्तव में जितना मन बाहरी मनुष्य की या शरीर की विषयी वस्तुओं से अलग किया जाता है उतना ही वह आत्मीय और स्वर्गीय वस्तुओं के पास उठाया जाता है।

४६६। कभी कभी परलोक में दोनों स्मरणों के विशेष लक्षण ऐसे ऐसे रूप पर दिखाई देते हैं जो उस अवस्था के विशेषक रूप हैं। क्योंकि वहां बहुत सी वस्तुएं आंखों के आगे स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं जिन का सोच विचार मनुष्य केवल ध्यान में कर सकता है। बाहरी स्मरण कड़े मास के रूप पर देख पड़ता है और भीतरी स्मरण मज्जासंबन्धी पदार्थ के रूप पर जो मानुषक मस्तिष्क के समान है दृष्टि आता है। और पृथक पृथक आत्मा का गुण उन रूपों के कोई विकारों से जान पड़ता है। उन आत्माओं में जो शरीर के जीने के समय केवल स्मरण ही की उन्नति करते थे और इस कारण चैतन्यशक्ति की उन्नति नहीं करते थे वह डला कड़ा मालूम होता है और उस में स्नायु की सी लकीरें हैं। उन आत्माओं में जो अपने स्मरण में झुठाइयें भरते थे वह डला लोममय और खुरखुरा देख पड़ता है क्योंकि उस में वस्तुओं का एक उलटा पुलटा समूह समाता है। उन आत्माओं में जो आत्मप्रेम और जगतप्रेम के लिये अपने स्मरण की उन्नति करते थे उस डले के स्नायु लासे से जोड़े हुए और हड्डियाए हुए दिखाई देते हैं। उन आत्माओं में जो ईश्वरीय रहस्यों का भेद विद्याविषयक उपायों से और विशेष करके तत्त्व-विचार के उपाय से समझने की इच्छा करते थे और जो यदि आत्मीय सचाइयों का निर्णय विद्या से किया न जावे उन सचाइयों पर विश्वास न करते थे स्मरण अन्धेरा दीखता है। और वह अन्धकार ऐसा है कि वह ज्योति की किरणें पी लेता है और उन को अन्धकार कर डालता है। कपटी और दम्भी आत्माओं में वह डला हड्डी सा और केन्दु सरीखा कड़ा देख पड़ता है और उस से ज्योति की किरणें प्रतिक्षिप्त होती हैं। परंतु उन आत्माओं में जो प्रेम की भलाई में और श्रद्धा की सचाइयों में रहते थे वैसा डला नहीं है। क्योंकि उन का भीतरी स्मरण बाहरी स्मरण में ज्योति की किरणों को पहुंचाता है। और बाहरी स्मरण के अभिप्राय और बोध उस ज्योति के अन्तिम और तल और रमनीय पात्र हैं। क्योंकि

बाहरी स्मरण परिपाटी का अन्तिम है जिस में (जब कि भलाइयें और सचाइयें उन में हैं) आत्मीय और स्वर्गीय वस्तुएं शान्तता से समाप्त होकर रहती हैं।

४६७। मनुष्य जो प्रभु की ओर के प्रेम में और पड़ोसी की ओर के अनुग्रह में रहते हैं जगत में रहते हुए भी दूतविषयक बुद्धि और ज्ञान को रखते हैं। परंतु वह बुद्धि और ज्ञान उन के भीतरी स्मरण के सब से भीतरी तत्वों में रख छोड़ता है। और जब तक मनुष्य अपनी शारीरिक वस्तुओं को न उतारें तब तक वह बुद्धि और ज्ञान उन मनुष्यों को भी दिखाई नहीं दे सकता। उस समय प्राकृतिक स्मरण सुलवाया जाता है और मनुष्य भीतरी स्मरण में जागते हैं और पीछे क्रम करके दूतविषयक स्मरण में भी जागते हैं।

४६८। चैतन्य [मन] की उन्नति करने की रीति का बयान अब थोड़ी बातों से किया जाता है। यथार्थ चैतन्यत्व सचाइयों का बना हुआ है न कि झुठाइयों का इस वास्ते कि जो कुछ झुठाइयों का बना है सो चैतन्यत्व नहीं है। सचाइयें तीन प्रकार की हैं नीतिसंबन्धी धर्मसंबन्धी और आत्मासंबन्धी। नीतिसंबन्धी सचाइयें नियम के प्रसङ्गों से और राजों के राज्यसंबन्धी प्रसङ्गों से और प्रायः न्याय से और नीति से संबन्ध रखती हैं। धर्मसंबन्धी सचाइयें जनसमूह के और जनसमूह के व्यवहारों के विषय मनुष्य के चाल चलन से संबन्ध रखती हैं। इस कारण साधारण रूप से वे खराई और सत्यशीलता के साथ संबन्ध रखती हैं और विविक्त रूप से सब प्रकार के धर्मों के साथ। परंतु आत्मासंबन्धी सचाइयें स्वर्ग की और कलीसिया की वस्तुओं से संबन्ध रखती हैं और इस कारण वे प्रायः प्रेम की भलाई से और श्रद्धा की सचाई से संबन्ध रखती हैं। प्रत्येक मनुष्य में जीवन की तीन अवस्थाएं हैं। (न० २६७ को देखो)। चैतन्य तत्त्व नीतिसंबन्धी सचाइयों के द्वारा पहिली अवस्था तक और धर्मसंबन्धी सचाइयों के द्वारा दूसरी अवस्था तक और आत्मासंबन्धी सचाइयों के द्वारा तीसरी अवस्था तक खुला हुआ है। परंतु यह कहना चाहिये कि केवल उन सचाइयों के जानने ही से चैतन्य तत्त्व न तो बनाया जाता है न खोला जाता है। परंतु चैतन्य तत्त्व उन सचाइयों पर चलने से अर्थात आत्मीय अनुराग के द्वारा उन को प्यार करने से बनाया जाता है और खोला जाता है। और उन पर आत्मीय अनुराग के द्वारा प्यार करना यही है कि कोई मनुष्य न्यायी और धार्मिक बातों से प्रेम रखे केवल इस कारण कि ये बातें न्यायी और धार्मिक हैं और वह खरी और सत्यशील बातों से प्रेम रखे केवल इस हेतु से कि वे बातें खरी और सत्यशील हैं और वह भली और सच्ची बातों से प्रेम रखे केवल इस निमित्त से कि वे बातें भली और सच्ची हैं। नीतिसंबन्धी और धर्मसंबन्धी और आत्मासंबन्धी सचाइयों के अनुसार चाल चलना और उन से शारीरिक अनुराग से प्यार करना उन सचाइयों का प्यार करना आत्मार्थ या सुख्याति के निमित्त या श्रेष्ठता के कारण या लाभ के लिये है। और इस कारण जहां तक मनुष्य उन को शारीरिक अनुराग से प्यार करता है वहां तक वह चैतन्य नहीं है। क्योंकि वह सचमुच उन से प्रेम नहीं रखता परंतु अपने आप से प्रेम रखता है और उन सचा-

इयों को नौकर बनकर केवल उन के स्वामी की सेवा करनी पड़ती है। परंतु जब सुखादयें नौकर हो जाती हैं तब वे मनुष्य में न तो प्रवेश करती हैं न उस के जीवन को पहिली अवस्था तक भी खोलती हैं। परंतु वे केवल स्मरण में द्रव्य-रूपी विद्या मात्र बनकर रहती हैं और वहां आत्मप्रेम से जो शारीरिक प्रेम है संयुक्त होती हैं। अब मनुष्य के चैतन्य हो जाने की रीति स्पष्ट मालूम हुई अर्थात वह उस भलाई और सचाई के आत्मासंबन्धी प्रेम के द्वारा जो स्वर्ग की ओर कलीसिया की है चैतन्यत्व की तीसरी अवस्था को प्राप्त करता है और वह खराई और सत्यशीलता के प्रेम के द्वारा दूसरी अवस्था तक पहुंचता है और न्याय और नीति के प्रेम के द्वारा पहिली अवस्था को प्राप्त करता है। यथार्थ चैतन्य मनुष्य में पिछले दो प्रेम बदलके आत्मासंबन्धी प्रेम भी हो जाते हैं। क्योंकि भलाई और सचाई का आत्मासंबन्धी प्रेम उन में बहकर जाता है और उन से संयुक्त होता है और उन को अपनी प्रतिमा कर डालता है।

४६९। आत्मागण और दूतगण को मनुष्य के तौर पर स्मरणशक्ति है। क्योंकि जो कुछ वे सुनते हैं और देखते हैं और जिस पर वे ध्यान करते हैं और जिस की इच्छा वे करते हैं और जो काम वे करते हैं सब का सब उन के पास रहता है और यह वही उपाय है जिस से उन का चैतन्य तत्त्व अनन्तकाल तक क्रम क्रम से संपन्न होता जाता है। इस से आत्मागण और दूतगण मनुष्यों के समान सचाई और भलाई के ज्ञान की सहायता से बुद्धि और ज्ञान में नित्य बढ़ते जाते हैं। आत्मागण और दूतगण स्मरणशक्ति रखते हैं इस बात का प्रमाण मैं ने बहुत परीक्षा करने से पाया। क्योंकि मैं ने यह सुना कि जब वे और आत्माओं के साथ बोल रहे थे तब उन्हों ने अपनी स्मरणशक्ति से बहुत सी ऐसी बातों के बारे में बात चीत की कि जिन पर उन्हों ने प्रकट रूप से और गुप्त रूप से ध्यान किया था और जिन को वे काम में लाए थे। और मैं ने यह भी देखा कि वे जो केवल भलाई मात्र से किसी सच बात पर स्थायी रहते थे ज्ञान से भरे थे और ज्ञान के द्वारा बुद्धि से भरपूर थे और इस के पीछे वे स्वर्ग तक उठाए गये थे। तो भी यह कहना चाहिये कि कोई मनुष्य ज्ञान से और इस के द्वारा बुद्धि से भरपूर नहीं है केवल उस अंश तक कि जहां तक भलाई और सचाई के अनुराग पर वह जगत में स्थायी रहता था। क्योंकि हर एक आत्मा और दूत का अनुराग और गुण और तीक्ष्णता के विषय उस अंश पर बराबर रहता है जिस अंश तक वह जगत में पहुंचा था यद्यपि वह पीछे अनन्तकाल तक भराव से अर्थात भर जाने से नित्य संपन्न होता जाता है। कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो अनन्तकाल तक भर जाने के योग्य नहीं है। क्योंकि हर एक वस्तु अनन्त रूप से पलटाई जा सकती है और शोभित की जा सकती हैं और बढ़ाई की जा सकती है और सफल की जा सकती है और किसी भली वस्तु का कोई अन्त नहीं ठहराया जा सकता है इस वास्ते कि वह असीमत्व से पैदा होती है। उन परिच्छेदों में (न० २६५ से २७५ तक) जो स्वर्ग में के दूतगण के ज्ञान के बारे में

हैं और उन में (न० ३१८ से ३२८ तक) जो स्वर्ग में के उन आत्माओं के विषय हैं जो कलीसिया से बाहर के देशों और लोगों के थे और उन में (न० ३१९ से ३४५ तक) जो स्वर्ग में के बाल बच्चों के बारे में हैं यह देखा जा सकता है कि आत्मागण और दूतगण सचाई और भलाई के ज्ञान से बुद्धि और ज्ञान में बराबर अधिक संपन्न होते जाते हैं और यह बढ़ाई उस अंश तक पहुंचती है जिस अंश तक वे जगत में भलाई और सचाई के अनुराग में रहते थे। परंतु उस अंश से बढ़कर वे चढ़ नहीं सकते।

मनुष्य का गुण मृत्यु के पीछे उस के जगत में के जीवन से ठहराया जाता है।

४७०। धर्मपुस्तक के द्वारा हर एक ख्रिष्टीय मनुष्य यह जानता है कि हर किसी का जीवन मृत्यु के पीछे उस के साथ रहता है। क्योंकि उस पुस्तक में के बहुत ही वचनों से यह बात प्रकाशित की जाती है कि मनुष्य अपने आचरण के अनुसार या तो दण्ड पावेगा या पारितोषिक। और हर कोई जो भलाई की ओर से और निराली सचाई की ओर से ध्यान करता है और वह अवश्य करके इस बात पर विश्वास करता है कि जो मनुष्य अच्छी चाल पर चलता था वह स्वर्ग को जावेगा और वह जो बुरी चाल पर चलता था नरक में पड़ेगा। परंतु वे जो बुराई में हैं इस बात पर श्रद्धा लाने की इच्छा नहीं करते कि मृत्यु के पीछे उन की अवस्था जगत में के जीवन के अनुसार होगी। क्योंकि वे विशेष करके बीमार होने के समय यह ध्यान करते हैं कि स्वर्ग हर किसी के लिये (जिस के जीवन का कैसा गुण क्यों न हो) दया ही के कारण से खुला रहता है। और श्रद्धा ही के अनुसार (जिस को वे आचरण से अलग करते हैं) स्वर्ग में प्रवेश करने की आज्ञा दी जाती है।

४७१। धर्मपुस्तक के बहुत से वचनों में यह सिद्धान्त प्रकाश किया जाता है कि मनुष्य अपने आचरण के अनुसार दण्ड या पारितोषिक पावेगा। जैसा कि "मनुष्य का पुत्र अपने पिता के ऐश्वर्य्य में अपने दूतों के साथ आवेगा। तब हर एक को उस के आचरण के अनुसार बदला देगा"। (मत्ती पर्व १६ वचन २७)। "धन्य वे मरे हुए हैं जो प्रभु में होकर अब से मरते हैं। आत्मा कहता है कि हां ता कि वे अपने परिश्रम से आराम पावें और उन की क्रियाएं उन के साथ पीछे चली आती हैं"। (ऐपोकलिप्स पर्व १४ वचन १३)। "मैं तुम में से हर एक को उस के आचरण के अनुसार बदला दूंगा"। (ऐपोकलिप्स पर्व २ वचन २३)। "मैं ने देखा कि मरे हुए क्या छोटे क्या बड़े प्रभु के सोंहीं खड़े हैं। और किताबें खोली गईं। और मरे हुओं का न्याय जिस रीति से उन किताबों में लिखा था उन के आचरण के अनुसार किया गया। और समुद्र ने

उन मरे हुओं को जो उस में थे उछाल फेंका। और मृत्यु और नरक ने उन मरे हुओं को जो उन में थे उपस्थित किया। और उन में से हर एक का न्याय उस के आचरण के अनुसार किया गया"। (ऐपोकलिप्स पर्व २० वचन १२·१३)। "देखो मैं जल्द आता हूं और मेरा पारितोषिक मेरे साथ है ता कि हर एक को उस के आचरण के अनुसार बदला दूं"। (ऐपोकलिप्स पर्व २२ वचन १२)। "जो कोई मेरी ये बातें सुनता और उन्हें काम में लाता है मैं उसे ज्ञानी मनुष्य के समान ठहराता हूं। पर जो कोई मेरी ये बातें सुनता और उन पर काम नहीं करता वह अज्ञानी मनुष्य के समान ठहरेगा"। (मत्ती पर्व ७ वचन २४·२६)। "न हर एक जो मुझे प्रभु प्रभु कहता है स्वर्ग के राज में प्रवेश करेगा पर वही जो मेरे पिता की जो स्वर्ग पर है उस की आज्ञा पर चलता है। उस दिन बहुतेरे मुझे कहेंगे हे प्रभु हे प्रभु क्या हम ने तेरे नाम से आगम नहीं कहा और तेरे नाम से दैत्यों को नहीं निकाला और तेरे नाम से बहुत सी अद्भुत क्रियाएं नहीं कीं। और उस समय मैं उन से स्पष्ट कहूंगा कि मैं कभी तुम से परिचित न था। अरे कुकर्मकारियो मेरे पास से दूर हो"। (मत्ती पर्व ७ वचन २२·२३)। "तब तुम कहने लगोगे कि हम ने तेरे संमुख खाया पिया है। और तू ने हमारी गली कुचों में शिक्षा दी है। पर वह उत्तर देगा कि मैं तुम से कहता हूं कि अरे कुकर्मकारियो तुम को नहीं पहचानता"। (लूका पर्व १३ वचन २६·२७)। "मैं उन को उन के आचरण के अनुसार और उन के हाथों के कामों के अनुकूल बदला दूंगा"। (यमायाह पर्व २५ वचन १४)। "यहोवाह की आंखों की दृष्टि मनुष्य के बेटों के सारे मार्गों पर पड़ती है और वह हर एक को उस के मार्ग के अनुसार और उस के कामों के फल के अनुकूल देता है"। (यर्मीयाह पर्व ३२ वचन १९)। "मैं उन के आचरण का दण्ड उन्हें दूंगा और उन के कामों का बदला उन से लूंगा"। (होसीआ पर्व ४ वचन ९)। "हमारे आचरण और हमारे कामों के अनुसार वैसा ही यहोवाह ने हम से किया है"। (ज़करियाह पर्व १ वचन ९)। जहां कहीं प्रभु अन्तिम विचार के बारे में कुछ बातें प्रकाश करता है वहीं वह केवल क्रियाओं ही की सूचना करता है और कहता है कि वे लोग जो अच्छी चाल पर चलते हैं अनन्तजीवन में प्रवेश करेंगे और वे जो बुरे कामों को करते हैं अनन्तयातना पावेंगे। मत्ती की इञ्जील के २५ वें पर्व के ३२ वें से ४६ वें तक के वचनों को और बहुत से अन्य वचनों को देखो जिन्हों में मुक्ति की और मनुष्य की दण्डाज्ञा की सूचना है। स्पष्ट है कि काम और क्रियाएं मनुष्य का बाहरी जीवन है और उन में उस के भीतरी जीवन का गुण प्रगट होता है।

४७२। काम और क्रियाएं जिन के अनुकूल मनुष्य को बदला दिया जाता है इस वाक्य से यह तात्पर्य नहीं है कि वे काम और क्रियाएं हैं जैसा कि वे अपने बाहरी रूप ही पर दिखाई देते हैं परंतु अपने भीतरी और सच्चे रूप पर भी। क्योंकि हर कोई जानता है कि प्रत्येक क्रिया और प्रत्येक काम मनुष्य की

इच्छा और ध्यान से निकलता है। अगर यह ऐसा न हो तो वे निरी गतियें मात्र होंगी जैसा कि किसी कल या प्रतिमा की गतियें हैं। इस लिये कोई क्रिया या काम अपने आप के विषय एक कर्म्मफल को छोड़ और कुछ नहीं है जो अपना जीव और जीवन इच्छा और ध्यान से इतनी संपूर्णता के साथ निकालता है कि वह इच्छा और ध्यान कर्म्मफल के रूप पर है अर्थात इच्छा और ध्यान अपने बाहरी रूप पर। इस से यह निकलता है कि कोई क्रिया और काम ऐसा है कि जैसा वह इच्छा और ध्यान है जिस से वह क्रिया और काम पैदा होता है। यदि ध्यान और इच्छा भली हो तो क्रियाएं और काम भी भले होंगे परंतु यदि ध्यान और इच्छा बुरी हो तो क्रियाएं और काम भी बुरे होंगे यद्यपि बाहर से दोनों एकसां मालूम देते हैं। हज़ार मनुष्य अपनी क्रियाओं को इस रीति से एक ही तौर पर कर सकते हैं कि उन क्रियाओं में कुछ भी भिन्नता नहीं देखी जा सकती तो भी हर एक मनुष्य की सारांश से ले भिन्न भिन्न क्रियाएं हो सकें क्योंकि ये क्रियाएं भिन्न भिन्न इच्छाओं से निकलती हैं। इस का यह एक उदाहरण है। पड़ोसी के साथ खराई और न्याय की चाल पर चलने के बारे में एक मनुष्य खराई और न्याय के साथ इस वास्ते काम कर सके कि वह अपने आप के लिये और अपनी सुख्याति के निमित्त सत्यशील और न्यायशील मालूम होवे। दूसरा मनुष्य जगत और लाभ के लिये। एक पारितोषिक और श्रेष्ठता के निमित्त। एक मित्रता के हेतु। एक नियम के डर से या सुकीर्त्ति और नौकरी की हानि करने के डर से। एक इस वास्ते कि यद्यपि वह मिथ्यामत पर प्रत्यय करता है तो भी वह कोई दूसरा मनुष्य अपना पक्षपाती कर डालना चाहता है। एक धोखा खिलाने के लिये। और अन्य अन्य लोग अन्य अन्य हेतुओं से। इन सभों की क्रियाएं अच्छी दिखाई दे सकती हैं क्योंकि पड़ोसी के साथ खरा और न्यायी आचरण करना अच्छा है तो भी वे बुरे हैं क्योंकि वे क्रियाएं न तो खराई और न्याय के निमित्त की जाती हैं न खराई और न्याय के प्रेम से पर आत्मप्रेम और जगतप्रेम ही के हेतु। ये वे ई अभिप्राय हैं जिन की सेवा यथार्थ में की जाती और बाहरी खराई और न्याय उन अभिप्रायों के अधीन हैं जैसा कि एक नौकर उस स्वामी के अधीन है जो नौकरी भंग होने पर उस नौकर को घर से निकाल देता है। जो लोग खराई और न्याय के प्रेम से काम करते हैं उन का खरा और न्याय आचरण बाहर से उन लोगों के आचरण के समान दिखाई देता है जो आत्मप्रेम और जगतप्रेम की सेवा करते हैं। उन में से कोई लोग श्रद्धा की सचाई पर चलते हैं या वशता के हेतु से क्योंकि धर्मपुस्तक से खराई और न्याय करने की आज्ञा दी जाती है। कोई श्रद्धा की भलाई पर चलते हैं या अन्तःकरण के हेतु से क्योंकि वे धार्मिक तत्त्वों पर चलते हैं। कोई पड़ोसी की ओर के अनुग्रह करने की भलाई के अनुकूल काम करते हैं क्योंकि किसी को पड़ोसी का भला करना चाहिये। और कोई प्रभु की ओर के प्रेम की भलाई के हेतु अच्छी चाल पर चलते हैं क्योंकि भलाई और इस लिये खराई और न्याय भी उस के अपने निमित्त करना चाहिये। वे खराई और न्याय

को प्यार करते हैं क्योंकि वे गुण प्रभु की ओर से होते हैं और इस वास्ते कि वह ईश्वरत्व जो प्रभु की ओर से निकलता है उन में है और इस लिये कि वे सारांश से ले ईश्वरीय हैं। जो क्रियाएं और काम इन अभिप्रायों के निमित्त किये जाते हैं वे अभ्यन्तर में भले हैं और इस लिये वे बाहर में भी भले हैं। क्योंकि जैसा कि हम ने ऊपर लिखा है क्रियाएं और काम अपने गुण को ध्यान और इच्छा से निकालते हैं और ध्यान और इच्छा के विना वे केवल निर्जीव गतियें हैं। इन बातों से स्पष्ट है कि धर्मपुस्तक में क्रियाओं और कामों से कौन तात्पर्य है।

४७३। जब कि क्रियाएं और काम इच्छा और ध्यान से होते हैं इस लिये वे प्रेम और श्रद्धा से भी होते हैं और इस कारण वे उसी गुण के हैं जिस के प्रेम और श्रद्धा भी हैं। क्योंकि चाहे हम मनुष्य के प्रेम के विषय बोलें या उस की इच्छा के विषय दोनों एक ही बात हैं। और चाहे हम उस की श्रद्धा के विषय बोलें या उस के निर्णीत ध्यान के विषय ये दोनों भी एकसां हैं। क्योंकि जो कुछ कोई मनुष्य प्यार करता है तिस की इच्छा भी वह करता है और जिस पर वह श्रद्धा लाता है उस का भी ध्यान करता है। यदि कोई मनुष्य उस को प्यार करता है जिस पर वह विश्वास करता है तो वह उसी की इच्छा भी करता है और जितना बन पड़े उतना ही वह उस को काम में लाता है। हर एक मनुष्य जान सकता है कि प्रेम और श्रद्धा मनुष्य की इच्छा और ध्यान में रहते हैं न कि उन से बाहर। क्योंकि इच्छा प्रेम से फूंक दी जाती है और ध्यान श्रद्धा की सचाइयों से प्रकाशित किया जाता है। इस लिये उन को छोड़ जो ज्ञान से ध्यान करते हैं कोई लोग प्रकाशित नहीं होते। और वे सचाइयों का ध्यान और सचाइयों की इच्छा वहां तक करते हैं जहां तक उन को प्रकाश होने का सामर्थ्य है या (और यह उस से एक ही बात है) जहां तक कि वे उन पर विश्वास करते हैं और उन को प्यार करते हैं[७०]।

४७४। संकल्पशक्ति ही तो मनुष्य है और ध्यान केवल वहां तक मनुष्य को बनाता है जहां तक ध्यान संकल्पशक्ति से निकलता है। क्रियाएं और काम इन

---

७० जैसा सर्वजगत में सब वस्तुएं जो परिपाटी के अनुसार होती हैं सचाई और भलाई से संबन्ध रखती हैं वैसा ही मनुष्य में वे संकल्पशक्ति और ज्ञानशक्ति से संबन्ध रखती हैं। न० ८०३ • १०१२२। क्योंकि संकल्पशक्ति भलाई का पात्र है और ज्ञानशक्ति सचाई का पात्र। न० ३३३२ • ३६२३ • ५२३२ • ६०६५ • ६१२५ • ७५०३ • ९३०० • ९९९५। चाहे हम सचाई के विषय बोलें या श्रद्धा के विषय दोनों एक ही बात हैं। क्योंकि श्रद्धा सचाई की है और सचाई श्रद्धा की। और चाहे हम भलाई के विषय बोलें या प्रेम के विषय सो भी एक ही बात हैं क्योंकि प्रेम भलाई का है और भलाई प्रेम का। न० ४३५३ • ४९९७ • ७१७८ • १०१२२ • १०३६७। इस से यह निकलता है कि ज्ञानशक्ति श्रद्धा का पात्र है और संकल्पशक्ति प्रेम का पात्र। न० ७१७९ • १०१२२ • १०३६७। और जब कि मनुष्य की ज्ञानशक्ति परमेश्वर पर श्रद्धा लाने को ग्रहण करने के योग्य है और संकल्पशक्ति परमेश्वर पर प्यार करने को ग्रहण करने के योग्य है तो इस से यह निकलता है कि मनुष्य श्रद्धा और प्रेम में परमेश्वर से संयुक्त होने के योग्य भी है। परंतु कोई सत्व जो श्रद्धा और प्रेम के द्वारा परमेश्वर से संयुक्त होने के योग्य है कभी नहीं मर सकता। न० ४५२५ • ६३२३ • ९२३१।

दोनों से चलते हैं। यदि हम कहें कि प्रेम आप मनुष्य है या श्रद्धा केवल वहां तक मनुष्य है जहां तक वह प्रेम से निकलती है या क्रियाएं और काम प्रेम और श्रद्धा दोनों से चलते हैं तो सब तीनों बातें एकसां हैं और इस से यह बात निकलती है कि संकल्पशक्ति अर्थात प्रेम आप यथार्थ में मनुष्य है। क्योंकि जो कुछ किसी वस्तु से निकलता है सो उस वस्तु के अधीन है कि जिस से वह निकलता है। निकलने से यह तात्पर्य है कि कोई वस्तु ऐसे रूप पर पैदा हो या शारीरिक हो कि जो रूप मालूम किया जा सकता है और समझाया जा सकता है[७१]। इस से स्पष्ट है कि श्रद्धा प्रेम से अलग होकर श्रद्धा नहीं है पर केवल आत्मीय जीवन से विहीन विद्या मात्र है। और कोई प्रेमरहित क्रिया या काम जीव की एक क्रिया या काम नहीं है परंतु मृत्यु की एक क्रिया या काम है। और वह अपने जीव की सदृशता को बुराई के प्रेम से और झुठाई पर श्रद्धा लाने से निकलता है। जीव की सदृशता आत्मिक मृत्यु कहलाती है।

४७५। सारा मनुष्य अपनी क्रियाओं और कामों में दिखलाया जाता है। इच्छा और ध्यान अर्थात प्रेम और श्रद्धा जो कि मनुष्य के भीतरी भाग हैं तब तक संपन्नता को नहीं प्राप्त होते हैं जब तक कि वे क्रियाओं और कामों में जो कि मनुष्य के बाहरी भाग हैं प्रकाशित होते हैं। क्योंकि क्रियाएं और काम उत्तमावधियें हैं जिन में प्रेम और श्रद्धा अपने अन्तों को पहुंचते हैं और जिन के विना वे केवल अनिर्णीत तत्त्व हैं जिन की यथार्थ सत्ता नहीं है और इस लिये वे मनुष्य का कोई भाग नहीं हैं। जब काम करना संभाव्य है तब विना काम किये ध्यान और इच्छा करना ऐसा है कि जैसा टेम किसी मूंदे भाजन में ढकने से ढांपी

---

७१ मनुष्य की संकल्पशक्ति उस के जीव की सत्ता ही है क्योंकि वह प्रेम अर्थात भलाई का पात्र है। और ज्ञानशक्ति जीव का वह प्रकाशन है जो संकल्पशक्ति से निकलता है इस वास्ते कि वह श्रद्धा अर्थात सचाई का पात्र है। न० ३६१९ · ५००२ · ९२८७। इस लिये संकल्पशक्ति का जीव मनुष्य का मुख्य जीव है और ज्ञानशक्ति का जीव उस से निकलती है। न० ५८५ · ५९० · ३६१९ · ७३४२ · ८८८५ · ९२८२ · १००७६ · १०१०९ · १०११०। जैसा कि ज्योति आग या टेम से निकलती है। न० ६०३२ · ६३१४। इस से यह बात चलती है कि मनुष्य अपनी संकल्पशक्ति के प्रभाव से और अपनी ज्ञानशक्ति के प्रभाव से (किस वास्ते कि यह संकल्पशक्ति से निकलती है) मनुष्य होता है। न० ८९११ · ९०६९ · ९०७१ · १००७६ · १०१०९ · १०११०। हर एक मनुष्य अपनी संकल्पशक्ति की भलाई के अनुसार और अपनी ज्ञानशक्ति भी की भलाई के अनुसार (जो कि संकल्पशक्ति से निकलती है) औरों से प्यार किया जाता है और माना जाता है। क्योंकि वह प्यारा और माना जाता है जो भली इच्छा करता है और जिस की भली ज्ञानशक्ति है परंतु वह त्यागा और तुच्छ माना जाता है जो भली भांति समझता है और भली बातों की इच्छा नहीं करता। न० ८९११ · १००७६ ·। जैसा मनुष्य की संकल्पशक्ति है और जैसा उस की संकल्पशक्ति से निकलनेवाली ज्ञानशक्ति है वैसा ही वह मृत्यु के पीछे बना रहता है। न० ९०६९ · ९०७१ · ९३८६ · १०१५३। और इस लिये जैसा उस का प्रेम है और जैसा उस के प्रेम से निकलनेवाली श्रद्धा है वैसा ही वह बना रहता है। और जितनी वस्तुएं कि जो श्रद्धा की हैं और उसी समय प्रेम की नहीं हैं उतनी ही मृत्यु के पीछे जाती रहती हैं। क्योंकि वे मनुष्य में नहीं हैं और उस का कोई भाग नहीं होती हैं। न० ५५३ · २३६४ · १०१५३।

हुई है जो कि कुम्हलाके नष्ट होती है। या ऐसा है कि जैसा बीज रेत पर डाला हुआ है जो नहीं उगता पर विनाश को प्राप्त होता है। परंतु ध्यान और इच्छा करना और उन के अनुकूल काम करना ऐसा है कि जैसा टेम खुले हुए वायु में जलती है जो चारों ओर गरमी और ज्योति फैलाती है। या ऐसा है कि जैसा एक बीज भूमि में बोआ हुआ है जो उगके पेड़ या फूल हो जाता है और इस रीति से अपनी सत्ता की संपन्नता को प्राप्त होता है। हर कोई जान सकता है कि इच्छा करना और जब काम करना संभाव्य हो तब काम नहीं करना यथार्थ में इच्छा करना नहीं है। और प्यार करना और जब भला करना संभाव्य हो तब भला नहीं करना यथार्थ में प्यार करना नहीं है। क्योंकि वह इच्छा जो काम करने के पहिले थम्भ जाती है और वह प्रेम जो भला नहीं करता केवल ध्यान की लहरें हैं जो लोप होकर उड़ाई जाती हैं। प्रेम और इच्छा हर एक क्रिया और प्रत्येक काम के जीव के जीव हैं और वे खरे और न्यायी काम में अपने लिये एक शरीर बनाते हैं। और आत्मिक शरीर का अर्थात मनुष्य के आत्मा के शरीर का और कोई मूल नहीं है। क्योंकि वह केवल उन कामों से बनाया जाता है जो मनुष्य अपने प्रेम या इच्छा के द्वारा करता है। (न० ४६३ को देखो)। संक्षेप में मनुष्य की सब वस्तुएं और मनुष्य के आत्मा की सब वस्तुएं उस की क्रियाओं और कामों में रहती हैं[७२]।

४७६। इस लिये यह स्पष्ट रूप से मालूम हुआ कि वह जीव जो मनुष्य के मरने के पीछे उस के साथ हो लेता है मनुष्य का प्रेम है और वह वही श्रद्धा भी है जो उस प्रेम से निकलती है। वह वही प्रेम और श्रद्धा नहीं है जो केवल सम्भाव्यता ही में है पर वह वही प्रेम और श्रद्धा है जो कामों में प्रकाशित है। इस कारण क्रियाएं और काम मनुष्य का आत्मिक जीव हैं क्योंकि वे अपने आप में मनुष्य के प्रेम और श्रद्धा की सब वस्तुओं को धारण करते हैं।

४७७। प्रधान प्रेम मनुष्य के साथ मृत्यु के पीछे रहता है और अनन्तकाल तक बिना विकार के बना रहता है। हर एक मनुष्य पर बहुतेरे प्रेमों से असर किया जाता है पर तो भी वे सब उस के प्रधान प्रेम से संबन्ध रखते हैं और वे या तो उस के साथ एक ही हैं या उस के कोई भाग हैं। संकल्पशक्ति की सब

---

७२ भीतरी वस्तुएं क्रम क्रम से बाहरी वस्तुओं से तब तक बहकर चलती हैं जब तक कि वे अन्तिम या उत्तमावधि तक न पहुंचें और वहां वे स्थायी होती हैं और बनी रहती हैं। न० ६३४ · ६४५१ · ६४६५ · ९२१६। वे न केवल अन्दर बहकर जाती हैं पर वे अन्तिम में उस वस्तु को बनाती हैं जो समकालिक है। इस की किस प्रकार की श्रेणी है। न० ५८९७ · ६४५१ · ८६०३ · १००९९। इस लिये सब भीतरी वस्तुएं आपस में एक दूसरे के साथ संयुक्त होती हैं और बनी रहती हैं। न० ९८२८। क्रियाएं और काम उत्तमावधियें हैं जिन में भीतरी वस्तुएं समाती हैं। न० १०३३१। और इस लिये क्रियाओं और कामों के अनुकूल बदला पाना और बिचार किया जाना प्रेम और श्रद्धा की या इच्छा और ध्यान की वस्तुओं के अनुकूल बदला पाना और बिचार किया जाना है। क्योंकि ये वे ही भीतरी वस्तुएं हैं जो उन में समाती हैं। न० ३१४७ · ३९३४ · ६०७३ · ८९११ · १०३३१ · १०३३८।

वस्तुएं जो प्रधान प्रेम से मेल खाती हैं प्रेम कहाती हैं किस वास्ते कि वे वस्तुएं प्यार की जाती हैं। और ये प्रेम भीतरी और बाहरी हैं क्योंकि उन में से कई एक विना बिचवाई के प्रधान प्रेम के साथ संयुक्त हैं और कई एक बिचवाई के द्वारा संयुक्त हैं। कई एक उस प्रधान प्रेम के पास पास हैं और कई एक कुछ कुछ दूरी पर हैं पर सब के सब किसी रीति पर उस प्रेम के नैाकर हैं। वे सब मिलके ऐसे हैं कि मानों वे एक राज हैं क्योंकि यद्यपि मनुष्य इस से संपूर्ण रूप से अपरिचित है तो भी उन की परिपाटी उस के भीतर एक राज की अधीनताओं के समान हैं। और परलोक में मनुष्य को इस बात का कुछ कुछ प्रकाश होता है। क्योंकि उन के ध्यान और अनुराग का फैलाव उस के अनुरागों की परिपाटी पर अवलम्बित है। यदि उस का प्रधान प्रेम स्वर्गीय प्रेमों का हो तो उस का ध्यान और अनुराग स्वर्गीय सभाओं तक पसरकर पहुंचते हैं। और यदि उस का प्रधान प्रेम नरकीय प्रेमों का हो तो वे नरकीय सभाओं तक पसरते हैं। उस बाब में कि जो स्वर्ग में के दूतगण के ज्ञान के बारे में है और उस में कि जो स्वर्ग के उस रूप के बारे में है जिस के अनुसार दूतविषयक संयोग और संसर्ग बना रहता है यह देखा जा सकता है कि आत्माओं और दूतों के सब ध्यान और अनुराग आसपासवाली सभाओं तक पहुंचते हैं।

४७८। इस समय तक वे सचाइयें जिन का बयान किया गया है चैतन्य मनुष्य के ध्यान ही पर असर करती हैं परंतु इस वास्ते कि वे इन्द्रियों से भी समझाई जा सकें मैं उन के प्रकाश करने और प्रमाण देने के लिये किसी बातों का बयान करूंगा। पहिले पहिल यह दिखाया जावेगा कि मनुष्य मृत्यु के पीछे अपना निज प्रेम या अपनी निज इच्छा होता है। दूसरा कि वह अनन्तकाल तक अपनी निज इच्छा या प्रधान प्रेम के गुण के सदृश बना रहता है। तीसरा कि वह मनुष्य जो स्वर्गीय और आत्मीय प्रेम में है स्वर्ग को जाता है और वह जो स्वर्गीय और आत्मीय प्रेम के विना शारीरिक और जगत के प्रेम में है नरक को जाता है। चौथा कि यदि श्रद्धा स्वर्गीय प्रेम से नहीं उपज आवे तो वह मनुष्य के साथ नहीं रहती। और पांचवां कि क्रियाओं में का प्रेम जो कि मनुष्य के जीव का जीव है मनुष्य के साथ रहता है।

४७९। बहुत परीक्षा करने से मुझे इस बात का प्रमाण दिया गया है कि मनुष्य मरने के पीछे अपना निज प्रेम या अपनी निज इच्छा होता है। सर्वव्यापी स्वर्ग भलाई के प्रेम की भिन्नताओं के अनुसार पृथक पृथक सभाओं का बना हुआ है और हर एक आत्मा जो स्वर्ग तक उठा कर एक दूत हो जाता है उस सभा तक पहुंचाया जाता है जिस का लक्षण उस आत्मा का प्रधान प्रेम है। वहां आते ही वह ऐसा सुखी हो जाता है कि मानों वह उसी घर में है कि जिस में उस ने जन्म लिया। वह इस को मालूम करता है और उस की सदृशता के साथ संयोग करता है। जब वह उस सभा को छोड़कर दूसरी जगह को जाता है

तब किसी प्रकार के भीतरी झुकाव का असर उस पर लगता है और इस के साथ वह उन के पास जो उस के समान हैं फिर जाना चाहता है और इस लिये वह अपने प्रधान प्रेम को जाना चाहता है। और यह वही कारण है कि जिस से स्वर्ग के दूतगण पृथक पृथक सभाओं में रहते हैं। और इस लिये नरक के निवासी भी उन प्रेमों के अनुकूल जो स्वर्गीय प्रेमों के विरुद्ध हैं आपस में संयुक्त होते हैं। न० ४१ वें से ५० वें तक के और न० २०० वें से २१२ वें तक के परिच्छेदों में यह देखा जा सकता है कि स्वर्ग और नरक असंख्य सभाओं के हैं और वे प्रेम की भिन्नताओं के अनुकूल आपस में एक दूसरे से भिन्न भिन्न हैं। यह भी स्पष्ट है कि मनुष्य मृत्यु के पीछे अपना निज प्रेम है। क्योंकि उस समय वे वस्तुएं जो उस के प्रधान प्रेम के साथ एक ही नहीं बनतीं उस से दूर की जाती हैं कि मानों वे उस से हर ली जाती हैं। यदि वह अच्छा आत्मा हो तो सब वस्तुएं जो उस की भलाई से अनमेल हैं या उस के अयोग्य हैं दूर की जाती हैं कि मानों वे हर ली जाती हैं और इस लिये वह अपने प्रेम में प्रवेश करने पाता है। और यदि वह बुरा हो तो वैसी ही अवस्था है। परंतु इस में यह भिन्नता है कि सचाइयें बुराई से तब तक अलग की जाती हैं और झुठाइयें भलाई से जब तक कि अन्त में हर एक आत्मा अपना अपना प्रेम हो जाता है। यह हाल तब होता है जब आत्मा अपनी तीसरी अवस्था में है और इस का बयान एक अनुगामी बाब में होगा। उस समय वह अपना मुंह अपने प्रेम की ओर नित्य फिराता है। और जिस किसी दिशा की ओर वह फिरा हो उस दिशा में उस की आंखों के संमुख वही प्रेम नित्य रहेगा। (न० १२३ · १२४ को देखो)। सब आत्मा अनायास से लाए जा सकते हैं इस होड़ पर कि वे अपने प्रधान प्रेम में रखे जावें। क्योंकि यद्यपि वे भली भांति जानते हैं कि वे उस प्रेम से लाए जाते हैं और उस के प्रभाव का विरोध करना मन में संकल्प करते हैं तो भी वे उस के आकर्षण का विरोध नहीं कर सकते। क्या आत्मा अपने प्रधान प्रेम का विरोध कुछ कुछ कर सकते हैं कि नहीं इस बात की परीक्षा बार बार की गई है पर उन्हों ने सदैव उस की परीक्षा व्यर्थ की। उन का प्रेम एक सिलसिला या रस्से के समान है जिस से यों कहो वे बन्द हुए हैं और जिस के द्वारा वे खींचे जा सकते हैं और जिस से वे अपने को नहीं बचा सकते। और जगत में के मनुष्यों के विषय वैसी ही अवस्था है। क्योंकि उन का प्रधान प्रेम उन को ले चलता है और उस प्रेम के द्वारा वे और मनुष्यों से लाए जाते हैं। परंतु जब वे आत्मा हो जाते हैं उन के प्रधान प्रेम का राज्य अधिक संपन्न है इस वास्ते कि उस समय कोई किसी पराए प्रेम के रूप को धारण करने नहीं पाता है न किसी गुण का भेष जो यथार्थ में उस का गुण नहीं है धारण करने पाता है। परलोक में हर प्रकार के परस्पर-संसर्ग में यह स्पष्ट है कि मनुष्य का आत्मा उस का अपना प्रधान प्रेम है। क्योंकि जहां तक कोई किसी दूसरे लोग के प्रेम के अनुकूल काम करता है या बोलता है वहां तक वह उस के साथ संपूर्ण रूप से विद्यमान दिखाई देता है। और उस

का चिहरा प्रफुल्लित और हर्षित और आनन्दी है। परंतु जहां तक कोई किसी दूसरे लोग के प्रेम के प्रतिकूल काम करता है या बोलता है वहां तक उस का चिहरा बदलने लगता है और अस्पष्ट हो जाता है और फीका हो जाता है और अन्त में संपूर्ण रूप से जाता रहता है। बार बार मैं ने इस बात पर अचरज किया क्योंकि जगत में वैसे प्रकार का हाल कभी नहीं हो सकता। परंतु मुझ को यह बतलाया गया कि मनुष्य में के आत्मा के विषय भी ऐसी अवस्था होती है इस वास्ते कि जब आत्मा अपने आप को किसी दूसरे आत्मा की ओर से फिराता है तब वह उस समय से लेकर उस को दिखाई नहीं देता। हर एक आत्मा सब कुछ जो उस के प्रेम से मेल रखता है पकड़ता है और अपनाता है और सब वस्तुओं को जो उस प्रेम से अनमेल रखता है ऽस्वीकार करता है और अलग कर देता है इस बात से मुझे इस का प्रमाण हुआ कि हर एक आत्मा अपना निज प्रधान प्रेम है। क्योंकि प्रधान प्रेम पेड़ की पिचपिची छिद्रयुक्त लकड़ी के समान है जो ऐसे द्रवद्रव्य को कि उगाव के उचित है पी लेता है और अन्य सब द्रव्यों को अस्वीकार करता है। वह हर प्रकार के पशुओं के समान भी है जो अपना उचित खाना जानते हैं और जो आहार उन के अपने स्वभाव से मेल रखता है ढूंढ़ते हैं परंतु सब वस्तुओं को जो उन के लिये अनुचित हैं त्यागते हैं। क्योंकि हर एक प्रेम अपने निज खाने से पाला जाना चाहता है। बुरे प्रेम झुठाइयों से पाले जाना चाहते हैं और भले प्रेम सचाइयों से। कभी कभी मैं ने यह देखा कि अच्छे बावले आत्माओं ने बुरों को सचाइयों और भलाइयों के बारे में शिक्षा देने की इच्छा की परंतु ये उस शिक्षा से दूर तक भाग गये और जब वे अपने साथियों तक फिर पहुंचे तब उन्हों ने उतावली के साथ उन झुठाइयों को पकड़ लिया जो उन के प्रेम से मेल रखती थीं। मैं ने यह भी देखा कि जब भले आत्मा आपस में एक दूसरे से सचाइयों के बारे में बात चीत कर रहे हैं तब उन की बात भले आत्माओं से आनन्द के साथ सुनी जाती है। परंतु बुरे आत्मा सुनी अनसुनी कर उन की बातों पर कुछ भी ध्यान नहीं धरते।

आत्माओं के जगत में बहुत से मार्ग हैं। उन में से कोई कोई स्वर्ग को जाते हैं कोई नरक को और हर एक मार्ग किसी विशेष सभा को ले जाता है। भले आत्मा उन मार्गों को छोड़ जो स्वर्ग तक पहुंचाते हैं उन मार्गों में से किसी मार्ग पर नहीं चलते। और विशेष करके वे केवल उन मार्गों पर चलते हैं जो किसी सभा की ओर जाता है जो उन आत्माओं के निज प्रेम की भलाई से विशेषित है। और वे और किसी मार्ग को देखते भी नहीं। परंतु बुरे आत्मा उन मार्गों को छोड़ जो नरक की ओर पहुंचाते हैं किसी मार्ग पर नहीं चलते और विशेष करके वे केवल उन मार्गों पर चलते हैं जो किसी सभा की ओर जाता है जो उन आत्माओं के निज प्रेम की बुराई से विशेषित है और वे भी और किसी मार्ग को नहीं देखते। या यदि वे और मार्गों को देखें तो वे उन पर चलने के विमुख हैं। आत्मिक जगत में इस प्रकार के मार्ग ऐसे यथार्थ रूप हैं जो या तो सचाइयों

से प्रतिरूपता रखते हैं या झुठाइयों से और इस लिये धर्मपुस्तक में मार्गों से तात्पर्य सचाइयें हैं या झुठाइयें[७३]। इस कारण परीक्षा करना चैतन्यता की इस बात का प्रत्यय करता है कि हर मनुष्य मृत्यु के पीछे अपना निज प्रेम और अपनी निज इच्छा है। हम "अपनी निज इच्छा" की बात कहते हैं क्योंकि हर किसी की इच्छा उस का प्रेम भी है।

४८० । बहुत सी परीक्षा करने से मुझे इस बात का भी प्रमाण दिया गया है कि मनुष्य अनन्तकाल तक अपनी निज इच्छा या प्रधान प्रेम के गुण के सदृश बना रहता है। मैं आत्माओं से जो दो हज़ार बरस हुए जीते थे और जिन के जीवनचरित्र इतिहासों में लिखे हुए हैं बात चीत करने पाया और मैं ने यह देखा कि वे अभी तक अपने विशेष गुण को रखते थे और जैसे का तैसा उन का बयान किया गया था वे वैसा ही बने रहते थे। क्योंकि उन के प्रेम का गुण जिस से और जिस के अनुकूल उन के जीव बने हुए थे बराबर एकसां बना रहता था। मैं ने उन के साथ भी बात चीत की जो सत्रह सौ बरस हुए जीते थे और जिन के जीवनचरित्र इतिहासों से प्रकाश किये गये हैं। और उन के साथ भी जो चार सौ बरस हुए जीते थे और औरों के साथ जो तीन बरस हुए जीते थे और औरों के साथ भी जो नूतन काल में जीते थे। परंतु मैं ने नित्य यह पाया कि वह गुण जो जगत में उन का विशेष गुण था अभी तक उन पर प्रबल है। केवल यह भिन्नता थी कि उन के प्रेम के आनन्द बदलके ऐसी वस्तुएं हो गईं जो उन आनन्दों से प्रतिरूपता रखती हैं। दूतगण कहते हैं कि प्रधान प्रेम का जीव अनन्तकाल तक विना विकार के बना रहता है क्योंकि हर कोई अपना निज प्रेम है और इस लिये किसी आत्मा के प्रधान प्रेम का बदलाना उस से अपनी जान का हर लेना है अर्थात उस का नष्ट करना है। वे इस का बयान इस रीति से करते हैं कि मनुष्य मृत्यु के पीछे शिक्षा पाने के द्वारा ऐसे तौर पर सुधरने के योग्य नहीं है जैसा कि वह जगत में था क्योंकि अन्तिम समतल जो प्राकृतिक ज्ञान और अनुरागों का बना हुआ है उस समय स्थिर रहता है और खोला नहीं जा सकता इस वास्ते कि वह आत्मिक नहीं है। (न० ४६४ को देखो)। और भीतरी भाग जो चैतन्य और प्राकृतिक मनों के हैं उस समतल पर इस तौर से स्थायी रहते हैं जैसा कि एक घर अपनी नेव पर। और इस लिये मनुष्य जैसा कि जगत में उस के प्रेम का जीव था वैसा ही वह अनन्तकाल तक बना रहता है। दूतगण इस बात पर बहुत अचरज करते हैं कि मनुष्य यह नहीं जानता कि हर कोई अपने प्रधान प्रेम के गुण का है और वे इस बात पर भी

---

७३ मार्ग पथ सड़क रस्ते और चौड़ी सड़क से तात्पर्य वे सचाइयें हैं जो भलाई तक पहुंचाती हैं और उन से तात्पर्य वे झुठाइयें भी हैं जो बुराई तक पहुंचाती हैं। न० ६२७ • २३३३ • १०४२२। मार्ग के झाड़ने से तात्पर्य सचाइयों के ग्रहण करने का तैयार करना है। न० ३१४२। एक मार्ग के बताने से जब वह वाक्य प्रभु के विषय कहा जाता है तब तात्पर्य उन सचाइयों के बारे में शिक्षा देना है जो भलाई की ओर पहुंचाती हैं। न० १०५६५।

अचरज करते हैं कि बहुत से लोग अपने जीवन के गुण पर कुछ ध्यान न धरके इस पर विश्वास करते हैं कि वे बिचवाई रहित दया से और श्रद्धा ही से मुक्ति पावेंगे। और वे लोग यह नहीं जानते कि ईश्वरीय दया बिचवाइयों के द्वारा काम करती है और वह दया यही चाल है अर्थात प्रभु से जगत में और पीछे अनन्तकाल तक लाया जाना। वे दया से पहुंचाए जाते हैं जो बुराई में नहीं जीते। दूतगण इस पर अचरज करते हैं कि मनुष्य नहीं जानते कि श्रद्धा सचाई का वह अनुराग है जो प्रभु की ओर के निकलनेवाले स्वर्गीय प्रेम से पैदा होता है।

४८१। वह मनुष्य जो स्वर्गीय और आत्मीय प्रेम में है स्वर्ग को जाता है और वह जो स्वर्गीय और आत्मीय प्रेम के विना शारीरिक और जगत के प्रेम में है नरक को जाता है। इस बात का प्रमाण मुझ को सब लोगों से जो मैं ने स्वर्ग तक उठाए हुए या नरक में गिराए हुए देखे थे दिया गया है। क्योंकि वे जो स्वर्ग तक उठाए हुए थे स्वर्गीय और आत्मीय प्रेम में थे परंतु वे जो नरक में गिराए हुए थे शारीरिक और जगत के प्रेम में थे। स्वर्गीय प्रेम वह प्रेम है जो भलाई और खराई और न्याय को इन्हीं गुणों के निमित्त ही से प्यार करता है और इसी प्यार से भलाई और न्याय करता है। इस से भलाई खराई और न्याय का जीव जो स्वर्गीय जीव है पैदा होता है। वे लोग जो भलाई खराई और न्याय को इन्हीं गुणों के निमित्त ही से प्यार करते हैं और इन गुणों के अनुसार चलते हैं सब वस्तुओं की अपेक्षा प्रभु को बहुत प्यार करते हैं। क्योंकि भलाई खराई और न्याय इसी की ओर से निकलता है। इसी हेतु से वे अपने पड़ोसी को भी प्यार करते हैं। क्योंकि भलाई खराई और न्याय यथार्थ में वही पड़ोसी है जिस के प्यार करने की आज्ञा हम ने पाई[७४]। परंतु शारीरिक प्रेम तो भलाई खराई और न्याय

---

७४ परमोत्तम तात्पर्य के अनुकूल प्रभु हमारा पड़ोसी है क्योंकि सब वस्तुओं की अपेक्षा उस को बहुत प्यार करना चाहिये। परंतु प्रभु को प्यार करना उस वस्तु को प्यार करना है जो प्रभु की ओर से निकलती है। क्योंकि वह हर एक वस्तु में आप रहता है जो उस से होती है। इस लिये प्रभु को प्यार करना भलाई और सचाई को प्यार करना है। न० २४२५ · ३४१९ · ६७०६ · ६७११ · ६८१९ · ६८२३ · ८१२३। उस भलाई और सचाई का जो उस की ओर से होती है प्यार करना उन गुणों के अनुसार चलना है। और यह चाल चलन प्रभु को प्यार करना है। न० १०१४३ · १०१५३ · १०३१० · १०३३६ · १०५७८ · १०६४५। हर एक मनुष्य और हर एक सभा तथा किसी मनुष्य का देश और कलीसिया और सर्वव्यापी तात्पर्य के अनुकूल प्रभु का राज भी हमारा पड़ोसी है। और भलाई ही के निमित्त से उन सभों की अवस्था के गुण के अनुसार उन को भलाई करना पड़ोसी को प्यार करना है। इस लिये उन की भलाई जिस का संमान करना चाहिये हमारा पड़ोसी है। न० ६८१८ से ६८२४ तक · ८१२३। धार्मिक भलाई भी जो खराई है और नीतिसंबन्धी भलाई भी जो न्याय है हमारा पड़ोसी है। और खराई और न्याय के साथ खराई और न्याय ही के प्रेम के निमित्त काम करना हमारे पड़ोसी को प्यार करना है। न० २९१५ · ४७३० · ८१२० · ८१२१ से ८१२३ तक। इस लिये हमारे पड़ोसी की ओर अनुग्रह करना मनुष्य के जीव की सब वस्तुओं तक पहुंचता है। और भलाई और न्याय करना और हर एक व्यवहार में और हर एक काम में मन की ओर से खराई के साथ काम करना हमारे पड़ोसी को प्यार करना है। न० २४१७ · ८१२१ · ८१२४। तत्त्व प्राचीन कलीसियां में अनुग्रह का तत्त्व था और इस कारण कलीसिया ज्ञान रखती थी। न० २४१७ · २३८५ · ३४१९ · ३४२० · ४८४४ · ६६२९।

को न कि इन्हीं गुणों के निमित्त परंतु स्वार्थ के निमित्त प्यार करता है। क्योंकि वे केवल सुख्याति कीर्त्ति और लाभ के लिये प्यारे होते हैं। इस प्रकार के प्रेम में प्रभु और पड़ोसी का कुछ भी संमान नहीं है पर केवल स्वार्थ और जगत का संमान। और इस कारण वे छल पर प्रसन्न करते हैं और छल उन की भलाई को बुराई कर देता है उन की खराई को अखराई और उन के न्याय का अन्याय। इस वास्ते कि बुराई अखराई और अन्याय उन के प्रेम के यथार्थ विषय हैं। इस कारण जब कि मनुष्य के प्रेम का गुण उस के जीव का गुण ठहराता है तो मृत्यु के पीछे आत्मिक जगत के पैठ जाने पर सब आत्माओं की परीक्षा की जाती है और जब उन के गुण का निर्णय किया गया तब वे उन के साथ जो एक ही प्रेम में हैं संबद्ध किये जाते हैं। वे जो स्वर्गीय प्रेम में हैं उन से संयुक्त किये जाते हैं जो स्वर्ग में उन के समान हैं। और वे जो शारीरिक प्रेम में हैं उन से जो नरक में उन के समान हैं संयुक्त किये जाते हैं। जब वे अपनी पहिली और दूसरी अवस्थाओं से पार हुए तब उन दो भांति के आत्माओं में इतनी भिन्नता है कि वे न तो आपस में एक दूसरे को पहचानते हैं न देखते भी हैं। क्योंकि हर कोई न केवल अपने भीतरी भागों के विषय (जो मन के हैं) पर अपने बाहरी भागों के विषय भी (जो अपना मुंह अपना शरीर और अपनी बोली है) अपना ही प्रेम हो जाता है। और इस लिये हर कोई अपने प्रेम का एक दृश्य रूप हो जाता है। वे जो रूप में शारीरिक प्रेम हैं मन्दतेज अस्पष्ट काला और कुरूप मालूम देते हैं। परंतु वे जो रूप में स्वर्गीय प्रेम हैं विलासी उज्ज्वल गोरा और रूपवान देख पड़ते हैं। उन के मन और ध्यान इतने अंशों तक भी असदृश हैं। क्योंकि वे जो स्वर्गीय प्रेमों के रूप हैं बुद्धिमान और विद्वान हैं परंतु वे जो शारीरिक प्रेमों के रूप हैं मूर्ख और जड़ हैं। जब उन के ध्यान और अनुराग का जांच लिया जाता है तब उन के भीतरी भाग जो स्वर्गीय प्रेम में हैं ज्योति के सदृश और कभी कभी चटकीली ज्योति के सदृश दिखाई देते हैं। और उन के बाहरी भाग रामधनुक के सदृश चित्रविचित्र रंग के देख पड़ते हैं। परंतु उन के भीतरी भाग जो शारीरिक प्रेम में हैं काला रंग मालूम देते हैं इस वास्ते कि वे बन्द हुए हैं और कभी कभी वे धून्धले आग से रूप के हैं। ऐसे आत्मा भीतर से हिंसाशीलता से कपटी हैं और उन के बाहरी भाग भयानक और विषादी रंगों के हैं। जब प्रभु चाहे तब भीतरी और बाहरी भाग जो चैतन्य और प्राकृतिक मन के हैं आत्मिक जगत में देख पड़ते हैं। वे जो शारीरिक प्रेम में हैं स्वर्ग की ज्योति में कुछ भी नहीं देख सकते क्योंकि उन की दृष्टि में घन अन्धेरा देख पड़ता है परंतु नरक की ज्योति जो जलते हुए कोएले के सदृश है उन को स्वच्छ ज्योति के समान दिखाई देती है। स्वर्ग की ज्योति में उन की भीतरी दृष्टि भी धुन्धली हो जाती है इस लिये वे उन्मत्त हो जाते हैं। और इस कारण उस ज्योति से दूर भागते हैं और गुफों और गड़हों में इतनी गहिराई तक जा छिपते हैं जितनी उन की झुठाइयें हैं जो बुराइयों से पैदा होती हैं। इस से विपरीत वे जो स्वर्गीय प्रेम में हैं सब वस्तुओं को यहां तक स्पष्ट रूप से देखते

हैं जहां तक कि वे अधिक भीतरी तौर पर या अधिक उत्तम रीति पर स्वर्ग की ज्योति में प्रवेश करते हैं। और इतने ही परिमाण तक भी हर एक वस्तु जो वे देखते हैं अधिक सुन्दर दिखाई देती है और हर एक सच्ची बात अधिक बुद्धि से और अधिक ज्ञान से मालूम की जाती है। वे जो शारीरिक प्रेम में हैं स्वर्ग की गरमी में नहीं जी सकते हैं क्योंकि स्वर्ग की गरमी स्वर्गीय प्रेम है। परंतु नरक की गरमी उन को मनोरञ्जक है क्योंकि वह गरमी उन पर जो उन आत्माओं को उपकारक नहीं हैं निर्दयता करना है। और उस प्रेम के आनन्द औरों की घृणा करना बैर और द्रोह करना और बदला लेना हैं। ये आनन्द उन के जीवों की रुचि हैं। भलाई से और भलाई के निमित्त औरों की भलाई करना उन को संपूर्ण रूप से अज्ञात है। परंतु बुराई से और बुराई के निमित्त बुराई करने से वे सुपरिचित हैं। ऐसे आत्मा स्वर्ग में सांस नहीं ले सकते क्योंकि जब कोई बुरा आत्मा वहां तक पहुंचाया जाता है तब वह मीच की पीड़ों से दुखित मनुष्य के समान सांस लेने में तड़पता है। परंतु वे जो स्वर्गीय प्रेम में हैं वहां तक अधिक अनायास से सांस लेते हैं और अधिक संपन्नता से जीते हैं जहां तक वे स्वर्ग में अधिक भीतरी तौर पर प्रवेश करते हैं। इस से स्पष्ट है कि मनुष्य के विषय स्वर्गीय और आत्मीय प्रेम आप स्वर्ग है। क्योंकि स्वर्ग की सब वस्तुएं उस प्रेम में लिखी हुई हैं। और शारीरिक और जगत का प्रेम स्वर्गीय और आत्मीय वस्तुओं से रहित मनुष्य के विषय नरक है क्योंकि नरक की सब वस्तुएं उन प्रेमों में लिखी हुई हैं। इस से यह बात निकलती है कि वह जो स्वर्गीय और आत्मीय प्रेम में है स्वर्ग को जाता है और वह जो स्वर्गीय और आत्मीय वस्तुओं से रहित शारीरिक और जगत के प्रेम में है नरक को जाता है।

४८२। यदि श्रद्धा स्वर्गीय प्रेम से नहीं उपज आवे तो वह मनुष्य के साथ नहीं रहेगी। यह बात इतनी कुछ परीक्षा करने से मुझ को प्रगट की गई कि उस का बयान सारी पोथी को भर देगा। इस बात का प्रमाण मैं दे सकता हूं कि उन की जो स्वगाय और आत्मीय प्रेम के विना शारीरिक और जगत के प्रेम में हैं न तो कुछ भी श्रद्धा है न हो सकती है। और उन की श्रद्धा या तो केवल विद्या मात्र है या किसी बात के यथार्थ होने का एक अनियत बोध है इस वास्ते कि वह बोध आत्मप्रेम की सेवा करता है। बहुतेरे लोग जिन के यह गुमान था कि हम को श्रद्धा है उन के पास जिन को सच मुच श्रद्धा थी पहुंचाए गये और जब इन से संसर्ग हुआ तब उन्हों ने मालूम किया कि हमारी श्रद्धा यथार्थ में श्रद्धा नहीं है। आगे वे इस बात को अङ्गीकार किया कि केवल सत्य पर और धर्मपुस्तक पर विश्वास करना ही श्रद्धा नहीं है। परंतु स्वर्गीय प्रेम से सचाई को प्यार करना और भीतरी अनुराग से सचाई की इच्छा करना और उस पर चलना यह श्रद्धा है। यह भी बतलाया गया कि उन का बोध जिस को वे श्रद्धा बोले थे जाड़े काल की ज्योति के समान है जिस में कुछ भी गरमी नहीं है और जिस कारण पृथिवी पर की सब वस्तुएं ठिठरी सी पड़ी रहती हैं पाले में बन्द हो रहती हैं और तुहिन से गाड़ी हुई हैं। ज्यों ही स्वर्ग की ज्योति की

किरणें इस प्रोत्साहक श्रद्धा की ज्योती पर पड़ती हैं त्यों ही न कि वह केवल बुझ गई है परंतु घन अन्धेरा भी हो जाती है जिस में कोई अपने आप को नहीं देख सकता। भीतरी भाग भी अन्धेरे हो जाते हैं इस लिये ऐसे आत्मा कुछ भी समझ नहीं सकते और अन्त में झुठाइयों के द्वारा उन्मत्त हो जाते हैं। सब सच्ची बातें जो उन्हों ने धर्मपुस्तक से और कलीसिया के सिद्धान्तों से सीखी थीं और जिन को वे अपनी श्रद्धा के तत्त्व बोले थे उन से हर ली जाती हैं और उन बातों के स्थान पर हर एक झूठा तत्त्व जो उन के जीवन की बुराई से मेल रखता है उन में भरा हुआ है। क्योंकि सब लोग अपने निज प्रेमों में और उन झुठाइयों में जो उन प्रेमों से मेल रखती हैं पैठने पाते हैं और इस कारण वे सचाइयों की घृणा करते हैं और उन को अङ्गीकार करते हैं क्योंकि ये सचाइयें उन की बुराई की झुठाइयों के विरुद्ध हैं। मैं स्वर्ग और नरक के विषय अपनी सारी परीक्षा करने से यह प्रमाण देता हूं कि सब लोग जो इस तत्त्व पर श्रद्धा लाते हैं कि श्रद्धा ही से मुक्ति प्राप्त होती है और बुरी चाल पर चलते हैं नरक में हैं। मैं ने उन में से कई हज़ार उधर को नीचे गिराते हुए देखे हैं। उन के बारे में "अन्तिम विचार और बेबिलन नगर के नष्ट होने" की पोथी को देखो।

४८३। क्रियाओं में का प्रेम कि जो मनुष्य के जीव का जीव है मनुष्य के साथ रहता है। यह एक सिद्धान्त है जो ऊपर लिखे हुए परीक्षालब्ध प्रमाण से और क्रियाओं और कामों के विषय जो लिखा गया था उस से भी निकलता है। क्रियाओं में का प्रेम तो काम और क्रिया आप है।

४८४। सारे काम और क्रियाएं धर्मसंबन्धी और नीतिसंबन्धी जीवन से संबन्ध रखती हैं और इस कारण वे खराई और सत्यशीलता से तथा न्याय और नीति से संबन्ध रखती हैं। खराई और सत्यशीलता धर्मसंबन्धी जीवन से संबन्ध रखती हैं और न्याय और नीति नीतिसंबन्धी जीवन से। और वह प्रेम कि जिस के द्वारा वे काम में आती हैं या तो स्वर्गीय है या नरकीय। यदि धर्मसंबन्धी और नीतिसंबन्धी जीवन के काम और क्रियाएं स्वर्गीय प्रेम के प्रभाव से की जावें तो वे स्वर्ग की हैं। क्योंकि जो कुछ स्वर्गीय प्रेम के प्रभाव से किया जाता है सो प्रभु के प्रभाव से किया जाता है। और जो कुछ प्रभु के प्रभाव से किया जाता है सो भला है। परंतु यदि धर्मसंबन्धी और नीतिसंबन्धी जीवन के काम और क्रियाएं नरकीय प्रेम के प्रभाव से की जावें तो वे नरक की हैं। क्योंकि जो कुछ इस प्रेम के प्रभाव से कि जो आत्मप्रेम और जगतप्रेम है किया जाता है सो मनुष्य ही के प्रभाव से किया जाता है। और जो कुछ मनुष्य ही के प्रभाव से किया जाता है सो बुराई ही आप है। क्योंकि मनुष्य या तो अपने आप के विषय या अपने विशेषभाव के विषय केवल बुराई ही मात्र है[७५]।

---

७५ मनुष्य का विशेषभाव यह है कि वह अपने आप को परमेश्वर की अपेक्षा और जगत को स्वर्ग की अपेक्षा अधिक प्यार करता है और अपने पड़ोसी को अपने आप की अपेक्षा तुच्छ

हर किसी के जीवन के आनन्द मृत्यु के पीछे ऐसे आनन्द हो जाते हैं जो जीवन के आनन्दों से प्रतिरूपता रखते हैं।

४८५। पिछले बाब में यह बतलाया गया है कि प्रधान अनुराग या प्रबल प्रेम हर किसी के साथ अनन्तकाल तक रहता है। परंतु अब यह बतलाया जावेगा कि उस अनुराग या प्रेम के आनन्द बदलके प्रतिरूपक आनन्द हो जाते हैं। प्रतिरूपक आनन्द वे आत्मिक आनन्द हैं जो प्राकृतिक आनन्दों से प्रतिरूपता रखते हैं। और यह स्पष्ट है कि परलोक में ये बदलके आत्मिक आनन्द हो जाते हैं। क्योंकि जब तक मनुष्य प्राकृतिक जगत में है तब तक वह पार्थिव शरीर में है। परंतु जब वह आत्मिक जगत में प्रवेश करता है तब वह आत्मिक शरीर को धारण करता है। ऊपर लिखित परिच्छेदों में (न० ७३ से ७७ तक) यह देखा जा सकता है कि दूतगण संपन्न मानुषक रूप पर हैं और मनुष्य मृत्यु के पीछे अपने पहिले रूप पर हैं और वे शरीर जिन को वे उस समय धारण करते हैं आत्मिक शरीर हैं। और न० ८७ वें से ११५ वें तक के परिच्छेदों में यह बयान हुआ कि प्राकृतिक वस्तुओं और आत्मिक वस्तुओं के बीच जो प्रतिरूपता है उस का क्या स्वभाव है।

४८६। सब आनन्द जिन का असर मनुष्य पर लगता है उस के प्रधान प्रेम से पैदा होते हैं क्योंकि मनुष्य को कोई वस्तु आनन्दजनक नहीं है जिस को वह नहीं प्यार करता। इस कारण जिस वस्तु से वह सब से बड़े प्रेम रखता है वह परमोत्तम से आनन्दजनक है। क्योंकि चाहे हम प्रधान प्रेम के विषय बोलें या उस वस्तु के विषय बोलें जो सब वस्तुओं से अधिक प्यारी है दोनों वाक्य के तात्पर्य एक ही हैं। आनन्द भिन्न भिन्न हैं क्योंकि साधारण रूप से इतने आनन्द हैं जितने प्रधान प्रेम हैं और इस कारण इतने आनन्द हैं जितने मनुष्य और आत्मा और दूत भी हैं। किस वास्ते कि एक का प्रधान प्रेम हर एक तौर पर दूसरे के प्रधान प्रेम के समान नहीं है। और इस से कोई दो चिहरे ठीक ठीक एकसां

मानता है। न० ६६४ · ७३१ · ४३१७। मनुष्य इस विशेषभाव में जो घन बुराई है पैदा होता है। न० २१० · २१५ · ७३१ · ८७४ · ८७५ · ८७६ · ६८७ · १०४७ · २३०७ · २३०८ · ३५१८ · ३७०१ · ३८१२ · ८४८० · ८५५० · १०२८३ · १०२८४ · १०२८६ · १०७३२। न कि केवल सब बुराई परंतु हर एक भुठाई भी मनुष्य के विशेषभाव से पैदा होती है। न० १०४७ · १०२८३ · १०२८४ · १०२८६। मनुष्य के विशेषभाव से ये बुराइयें पैदा होती हैं अर्थात औरों की अवज्ञा करना द्वेष घृणा बदला लेना क्रूरता और कपट। न० ६६६७ · ७३७० · ७३७३ · ७३७४ · ६३४८ · १००३८ · १०७४२। जब कि मनुष्य का विशेषभाव राज करता है तो प्रेम की भलाई और श्रद्धा की सचाई या तो अस्वीकार की जाती है या बुझाई जाती है या बिगाड़ी जाती है। न० २०४१ · ७४६१ · ७४६२ · ७६४३ · ८४८७ · १०४५५ · १०७४२। क्योंकि मनुष्य के विषय मनुष्य का विशेषभाव आप नरक है। न० ६६४ · ८४८०। और वह भलाई जो मनुष्य अपने विशेषभाव के प्रभाव से करता है सो भलाई नहीं है परंतु वह केवल बुराई ही है। न० ८४८०।

नहीं हैं। क्योंकि चिहरा मन की प्रतिमा है और आत्मिक जगत में प्रधान प्रेम की एक प्रतिमा हो जाता है। हर एक व्यक्ति के विशेष आनन्द भी अमितरूप से भिन्न भिन्न हैं और चाहे हम आनुक्रमिक आनन्दों पर ध्यान धरें चाहे समकालिक आनन्दों पर तो भी किसी का एक भी आनन्द किसी दूसरी व्यक्ति के किसी आनन्द के ठीक ठीक समान नहीं है। तिस पर भी हर एक के विशेष आनन्द अपने प्रेम से जो उस के प्रधान प्रेम है संबन्ध रखते हैं क्योंकि वह उन से बना हुआ है और इस लिये वह प्रेम और आनन्द एक ही वस्तु बन जाते हैं। और इसी प्रकार से सब आनन्द साधारण रूप से एक ही सर्वव्यापी प्रधान प्रेम से संबन्ध रखते हैं। स्वर्ग में वे प्रभु के प्रेम से संबन्ध रखते हैं और नरक में आत्मप्रेम से।

४८७। पतिरूपता की विद्या के विना उन आत्मिक आनन्दों का जो मृत्यु के पीछे प्राकृतिक आनन्दों के हो जाते हैं स्वभाव और गुण नहीं समझा जा सकता है। यह विद्या साधारण रूप से यह शिक्षा देती है कि किसी प्रतिरूपक वस्तु के विना कोई प्राकृतिक वस्तु नहीं हो सकती। और वह विद्या उस प्रतिरूप के विशेष स्वभाव और गुण का बयान भी करती है। इस कारण इस विद्या के द्वारा यदि कोई मनुष्य अपने निज प्रेम जाने और उस का संबन्ध भी उस सर्वव्यापी प्रधान प्रेम से जिस की सूचना अभी की गई है और जिस से सब प्रेम संबन्ध रखते हैं समझे तो वह अपनी मृत्यु के पीछे की अवस्था को भी जान सकेगा। परंतु वे जो आत्मप्रेम में हैं अपने प्रधान प्रेम नहीं जान सकते क्योंकि वे अपनी निज वस्तुओं को प्यार करते हैं। इस कारण वे अपनी बुराइयों को भलाइयें पुकारते हैं और वे झुठाइयें जो उन को उपकारक हैं और जिन के द्वारा वे अपनी बुराइयों का प्रत्यय करते हैं सचाइयें पुकारते हैं। तिस पर भी यदि वे चाहें तो वे अपने यथार्थ गुण को औरों से जो ज्ञानी हों जान ले सकें। क्योंकि उस प्रकार के मनुष्य ऐसी वस्तुओं को देख सकते हैं जो वे आप नहीं देख सकते। परंतु यदि वे आत्मप्रेम से ऐसे उन्मत्त हों कि वे सब प्रकार का उपदेश अस्वीकार करते हैं तो वे अपने यथार्थ गुण नहीं जान सकते। वे जो स्वर्गीय प्रेम में हैं शिक्षा ग्रहण करते हैं और जब वे उन बुराइयों में कि जिन में वे पैदा हुए थे कपट से गिर पड़ते हैं तब वे उन को देख सकते हैं। क्योंकि वे उन सचाइयों के प्रभाव से जो बुराइयों को प्रगट करते हैं उन को मालूम करते हैं। हर एक मनुष्य बुराई को और बुराई की झुठाइयों को भलाई की ओर से निकलनेवाली सचाई के द्वारा देखने के योग्य है। पर कोई मनुष्य भलाई और सचाई को बुराई के प्रभाव से नहीं देख सकता। क्योंकि बुराई की झुठाइयें अन्धेरा हैं और अन्धेरे से प्रतिरूपता रखती हैं। वे जो बुराई की ओर से निकलनेवाली झुठाइयों में हैं अन्धे मनुष्यों के समान हैं जो ज्योति में भी नहीं देख सकते। वे सचाइयों से इस तौर पर अलग रहते हैं जिस तौर पर रात के पक्षी[७६] दिन से दूर रहते हैं। क्योंकि सचाइयें जो भलाई से

---

७६ प्रतिरूपता के होने से जब धर्मपुस्तक में अन्धेरे की सूचना होती है तब उस से तात्पर्य झुठाइयें हैं और घन अन्धेरे से तात्पर्य बुराई की झुठाइयें हैं। न० १८३९ • १८६० •

निकलती हैं ज्योति हैं और ज्योति से प्रतिरूपता भी रखती हैं। (न० १२६ से १३४ तक देखो)। इस हेतु से वे जो उन सचाइयों में हैं जो भलाई से निकलती हैं देखनेवाले हैं और ऐसे मनुष्य हैं जिन की आंखें खुली हुई हैं ता कि वे अन्धेरे की और ज्योति की वस्तुओं को भी मालूम करें। इन बातों का प्रमाण भी परीक्षा करने से किया गया। स्वर्ग में के दूतगण उन बुराइयों और झुठाइयों को जो कभी कभी उन में उपज आती हैं और उन बुराइयों और झुठाइयों को भी जो आत्माओं के जगत में उन आत्माओं पर प्रबल हैं जो नरकों से संबन्ध रखते हैं देखते हैं और मालूम करते हैं। परंतु वे ई आत्मा अपनी निज बुराइयों और झुठाइयों को आप नहीं देख सकते। उन को इन बातों का कुछ भी बोध नहीं हो सकता कि स्वर्गीय भलाई कौन वस्तु है और अन्तःकरण क्या है और यदि खराई और न्याय किसी स्वकीय अभिप्राय के लिये काम में नहीं आते तो वे कौन वस्तुएं हैं और प्रभु से ले चलना क्या है। वे कहते हैं कि इस प्रकार की वस्तुएं कहीं नहीं होतीं इस लिये वे कुछ काम की नहीं हो सकतीं। ये बातें इस वास्ते लिखी हुई हैं कि उन के द्वारा मनुष्य अपने आप की परीक्षा करने को खींचे जावें और अपने आनन्दों से अपने प्रेम के गुण को सीख लें और इस से जहां तक वे प्रतिरूपता की विद्या को समझते हैं वहां तक वे अपने जीव की मृत्यु के पीछे की अवस्था को आगे से जान सकें।

४८८। प्रतिरूपता की विद्या से यह जाना जा सकता है कि किस तौर पर मृत्यु के पीछे हर किसी के जीव के आनन्द बदलके वे आनन्द हो जाते हैं जो उन से प्रतिरूपता रखते हैं। परंतु जब कि वह विद्या साधारण रूप से ज्ञात नहीं होती तो मैं परीक्षा करने के उदाहरणों से उस प्रसङ्ग का प्रकाशन करूंगा। सब लोग जिन्हों ने बुराई में होकर कलीसिया की सचाइयों के विरुद्ध अपने को दृढ़ किया और विशेष करके वे जिन्हों ने धर्मपुस्तक को अस्वीकार किया स्वर्ग की ज्योति से अलग होकर भूमि के नीचे ऐसी जगहों में कूद पड़ते हैं जो बाहर से अत्यन्त अन्धेरी मालूम देती हैं और चट्टान के छेदों में दौड़ पड़ते हैं जहां वे छिपे रहते हैं। यह सब हाल प्रतिरूपता होने से होता है। वे झुठाइयों को प्यार करते हैं और सचाइयों की घृणा करते हैं इस लिये वे वैसे वैसे आश्रयस्थानों में जा रहते हैं। क्योंकि भूमि के नीचे के गड़हे और चट्टानों के छेद[७७] और अन्धेरा आप भी झुठाइयों से प्रतिरूपता रखता है और ज्योति सचाइयों से। इस लिये

७६८८ · ७७११। बुरे लोगों के लिये स्वर्ग की ज्योति घन अन्धेरा है। न० १८६१ · ६८३२ · ८१९७। कहते हैं कि नरक के निवासी अन्धेरे में हैं इस वास्ते कि वे बुराई की झुठाइयों में हैं। न० ३३४० · ४४१८ · ४५३१। धर्मपुस्तक में अन्धे से यह तात्पर्य है कि वे लोग जो झुठाइयों में हैं और जो शिक्षा की इच्छा नहीं करते। न० २३८३ · ६९९० ।

७७ धर्मपुस्तक में गड़हे से और चट्टान के छेद से तात्पर्य श्रद्धा का एक अस्पष्ट और मिथ्या तत्त्व है। न० १०५८२। क्योंकि चट्टान से तात्पर्य प्रभु की ओर की श्रद्धा है। न० ८५८१ · १०५८०। और पत्थर से तात्पर्य श्रद्धा की सचाई है। न० ११४ · ६४३ · १२९८ · ३७२० · ६४२६ · ८६०९ · १०३७६।

उन को वैसी जगहों में रहना आनन्दजनक है और खुले खेतों में रहना अनानन्द-जनक है। अन्य लोग जो गुप्त और कपटी अभिप्रायों में गुप्त रीति से छली उपायों के करने में आनन्द पाते हैं उसी तौर पर भी चलते हैं क्योंकि वे भी भूमि के नीचे के ऐसे अन्धेरे गाड़ों और कन्दरों में रहते हैं कि वे एक दूसरे को देख भी नहीं सकते और वहां वे कोणों में आपस में एक दूसरे के कानों में फुसफुसाकर बोलते हैं। इस कारण कि उन के प्रेम के आनन्द बदलके वैसे वैसे प्रतिरूप हो जाते हैं। फिर जो लोग केवल पाण्डित्य की कीर्त्ति के उपार्जन करने के लिये विद्या का अभ्यास करते हैं और जो विद्या के द्वारा चैतन्य तत्त्व की उन्नति नहीं करते और अहङ्कार के कारण केवल स्मरण ही की पूंजी मात्र में मिथ्या आनन्द पाते हैं वे लोग रेतीले स्थानों को पसन्द करते हैं और इन स्थानों पर खेतों और फुलवाड़ियों की अपेक्षा प्रसन्न हैं इस वास्ते कि रेतीले स्थान ऐसे अभ्यासों से प्रतिरूपता रखते हैं। जो लोग अपनी निज कलीसिया के तत्त्वों से सुपरिचित हैं परंतु उन तत्त्वों पर नहीं चलते वे शिलामय स्थानों को पसन्द करते हैं और वहां जोते हुए स्थानों से अलग होकर पत्थरों के ढेरों के मध्य रहते हैं। ये लोग जोते हुए स्थानों को नापसन्द करते हैं। जो लोग सब वस्तुओं का कारण प्रकृति से संयुक्त करते हैं और वे लोग भी जो सब बातों का कारण अपनी सावधानता से संयुक्त करते हैं और जो नाना प्रकार की चतुराई से कीर्त्ति और यश उपार्जन करते हैं वे लोग परलोक में जादूगरी के अभ्यास में जो ईश्वरीय परिपाटी के कुव्यवहारक है अपना मन लगाते हैं और उन अभ्यासों को अपना परमानन्द मानते हैं। जो लोग अपने निज प्रेमों की उन्नति करने के लिये ईश्वरीय सचाइयों को काम में लाते हैं और इन से उन सचाइयों को झूठा करते हैं वे लोग मूत्रसंबन्धी स्थानों और कुगन्धों को प्यार करते हैं क्योंकि ऐसे स्थान उस प्रेम के आनन्दों से प्रतिरूपता रखते हैं[७८]। वे जो अत्यन्त लालची हैं तलघर में रहते हैं और सूअरों के मल को और ऐसी दुर्गन्धी कुबासों को जो पेट में की अजीर्ण वस्तुओं से निकलती हैं प्यार करते हैं। जो लोग सुख विलास ही में अपने दिन काटते हैं और सुन्दर पाकीज़ा कपड़ा पहिनके ऐसे षटरस का भोजन करते हैं कि मानों वह जीवन का परमार्थ है वे लोग परलोक में गोबरारों और जा-इ-जरूरों को प्यार करते हैं और इन में आनन्द पाते हैं क्योंकि सुख विलास मात्र आत्मिक मल है। इस प्रकार के आत्मा उन स्थानों से जो शुद्ध और मलहीन हैं अलग रहते हैं क्योंकि उन को शुद्ध स्थान अनानन्ददायक हैं। वे जो छिनाला करने में आनन्दित होते हैं परलोक में पुंतिया के छोटे मैले घरों में रहते हैं जिन को वे प्यार करते हैं। और वे शुद्ध निर्मल घरों से अलग होते हैं और यदि वे अचानचक उन के पास आ पड़ें तो वे मूर्छा खाके गिर पड़ते हैं। उन को विवाहबन्धन तोड़ने से कोई क्रिया अधिक सुखदायक नहीं है। वे द्रोही लोग जिन्हों ने प्रतिहिंसा के लालस से निष्ठुर और

---

७८ सचाई का अपवित्र करना मूत से प्रतिरूपता रखता है। न० ५३८७।

और स्वभाव को हासिल किया समाधियों और लाशों के पास रहने को प्यार करते हैं और इस प्रकार के नरकों में रहते हैं। अन्य अन्य लोगों के ऐसे ऐसे हाल हैं।

४८९। इस के विपरीत जो लोग जगत में स्वर्गीय प्रेम की हालत में रहते हैं उन के जीव के आनन्द बदलकर ऐसी प्रतिरूपक वस्तुएं हो जाते हैं उन वस्तुओं के समान जो स्वर्गों में स्वर्ग के सूर्य से होती हैं और उस सूर्य की ज्योति से। परंतु वे वस्तुएं जो वह ज्योति प्रगट करती है अपने आप में ऐसी ईश्वरीय वस्तुओं को रख छोड़ती हैं जो दूतविषयक मनों के भीतरी भागों पर और उसी समय उन बाहरी भागों पर भी जो शरीर से संबन्ध रखते हैं असर करते हैं। और जब कि ईश्वरीय ज्योति जो प्रभु की ओर से निकलनेवाली ईश्वरीय सचाई है उन मनों में जो ईश्वरीय प्रेम से खोले जाते हैं बहकर जाती है तो वह ऐसी ऐसी वस्तुओं को जो उन मनों के प्रेम के आनन्दों से प्रतिरूपता रखती हैं दृश्य मूर्त्ति पर संमुख उपस्थित करवाती है। उस बाब में जो स्वर्ग में की प्रतिमाओं और रूपों के बारे में है (न० १७० से १७६ तक) और उस बाब में जो स्वर्ग के दूतों के ज्ञान के बारे में है (न० २६५ से २७५ तक) इस बात का बखान किया गया कि स्वर्ग में की दृश्य वस्तुएं दूतों के भीतरी भागों से प्रतिरूपता रखती हैं या उन वस्तुओं से प्रतिरूपता रखती हैं जो दूतों की श्रद्धा और प्रेम की और इस से उन की बुद्धि और ज्ञान की हैं। जब कि हम ने परीक्षा करने के उदाहरणों से इस बात का प्रमाण देने का बीड़ा उठाया तो इस वास्ते कि वे सिद्धान्त जो वस्तुओं के कारणों से अभी निकाले गये हैं प्रकाशित होवें मैं उन स्वर्गीय आनन्दों के विषय कि जो उन लोगों में जो जगत में स्वर्गीय प्रेम के प्रभाव के अधीन हैं प्राकृतिक आनन्दों से पैदा होते हैं कोई कोई प्रामाणिक बातों का बयान करता हूं। जो लोग भीतरी अनुराग से या सचाई आप के अनुराग से ईश्वरीय सचाइयों और धर्मपुस्तक को प्यार करते हैं वे लोग परलोक में ऊंचे स्थानों पर जो पर्वत के समान दीखते हैं ज्योति में स्वर्ग के नित्य तेज से चमकते हुए रहते हैं। और उन को ऐसे अन्धेरे का जैसा कि जगत में रात रात आ पड़ता है कुछ भी बोध नहीं है। जलवायु की अवस्था जिस में वे रहते हैं वसन्त सरीखी है और उन आत्माओं के चारों ओर खेत और अंगूरी बाग़ हरियाले तरोताज़ा हैं और उन के साम्हने खेतों का उपज हिल हिलके फुरफुराता है। उन के घरों में हर एक वस्तु ऐसी चमकीली है कि मानों वह रत्न मणि की है और जब वे खिड़कियों में से देखते हैं तो ऐसा है कि जैसा वे स्वच्छ कांच से पार देखते हैं। ये आनन्ददायक वस्तुएं दृष्टिगोचर हैं परंतु भीतरी भागों में वे ई वस्तु स्वर्गीय वस्तुओं से प्रतिरूपता रखने का कारण अधिक भी आनन्ददायक हैं। क्योंकि धर्मपुस्तक की सचाइयें जिन को उन्हों ने प्यार किया था अनाज के उपज अंगूरी बाग़ रत्न मणि खिड़की और कांच से प्रतिरूपता रखती हैं[७९]। जो लोग कलीसिया के उन तत्त्वों को जो धर्मपुस्तक से

---

७९ धर्मपुस्तक में पक्के अनाज के उपज से तात्पर्य भलाई की सचाई का ग्रहण करना और उस का बढ़ जाना है। न० ९२९४। खेत की उगती हुई खेती से तात्पर्य सचाई का अनुभव

निकाले जाते हैं जीवन के काम में बिचवाई के विना लाते हैं वे लोग सब से भीतरी स्वर्ग में रहते हैं तथा ज्ञान के आनन्द के विषय और सब लोगों से श्रेष्ठ हैं। क्योंकि जिस किसी वस्तु पर वे दृष्टि करते हैं उस में वे ईश्वरीय बातों को देखते हैं। सच तो है कि वे उन वस्तुओं को देखते हैं परंतु उसी समय ऐसी ईश्वरीय बातें जो उन वस्तुओं से प्रतिरूपता रखती हैं उन के मनों में बहकर जाती हैं और उन में ऐसा परमसुख भर देती हैं जो हर एक इन्द्रिय में व्यापती हैं और सब वस्तुएं हंसती खेलती कूदती हुई देख पड़ती हैं। इस प्रसङ्ग के बारे में न० २७० को देखो। जो लोग विद्या को प्यार करते हैं और उस के द्वारा अपने चेतन्य तत्त्व की उन्नति किया करते हैं और इस से ईश्वरीय सत्ता के स्वीकार करनेसंयुक्त ज्ञान को उपार्जन करते हैं वे लोग परलोक में विद्या और चैतन्य के आनन्दों को बदलकर ईश्वरीय आनन्द (जो भलाई और सचाई के ज्ञान का आनन्द है) हो जाने पाते हैं। वे ऐसे बाग़ों में रहते हैं जिन में फुलवाड़ी मैदान सुन्दर सुन्दर हरितस्थल पेड़ों की पांति पांति सायाबान कुंज इत्यादि हैं। दिन दिन पेड़ फूल वहां अन्यरूप होते जाते हैं और ज्यों ज्यों समस्त दृष्टिगोचर साधारण आनन्दों को पैदा करता है त्यों त्यों हर एक विकार उन आनन्दों को फिरकर उपजाया करता है। परंतु जब कि ये सब वस्तुएं ईश्वरीय वस्तुओं से प्रतिरूपता रखती हैं और वे लोग जो उन को देखते हैं प्रतिरूपों की विद्या समझते हैं तो वे उस नये ज्ञान से जो उन के आत्मिक चेतन्य तत्त्व को संपन्न करता है नित्य पूरित होते जाते हैं। वे उन आनन्दों से सुपरिचित हैं क्योंकि बाग़ फुलवाड़ी मैदान और पेड़ विद्या और ज्ञान से और इस से बुद्धि के साथ भी प्रतिरूपता रखते हैं[८०]। जो लोग सब वस्तुओं का कारण ईश्वरत्व ठहराते हैं और जानते हैं कि प्रकृति या तो मरी हुई है या आत्मिक वस्तुओं की सेवा करती है और इस प्रत्यय में अपने को दृढ़ करते हैं वे लोग स्वर्गीय ज्योति में (जो उन के दृष्टिगोचर में सब वस्तुओं को पारदर्शक कर देती है) रहते हैं और उस पारदर्शकत्व में वे ज्योति के असंख्य विकारों को देखते हैं जिन को उन की भीतरी दृष्टि उसी तरह भीतरी आनन्दों के मालूम करने के साथ ऐसी रीति से देखती है कि मानों वह उन को पी जाती हैं। उन के घरों का सामान ऐसा दिखाई देता है कि जैसा वह ऐसे हीरमणि का बना हुआ है जो ज्योति के वैसे वैसे विकारों से चमकता है। मुझ से यह कहा गया कि

करना है। न० ६१४६। अंगूरी बाग़ से तात्पर्य आत्मिक कलीसिया और उस कलीसिया को सचाइयें हैं। न० १०६९ · ६१३९। रत्न मणि से तात्पर्य स्वर्ग की सचाइयें और कलीसिया का भलाई के कारण पारदर्शक होना हैं। न० ११४ · ९८६३ · ९८६५ · ९८६८ · ९८७३ · ९९०५। खिड़की से तात्पर्य भीतरी दृष्टि का चैतन्य तत्त्व है। न० ६५५ · ६५८ · ३३९१।

८० बाग़ और उपवन और सुखलोक से तात्पर्य बुद्धि है। न० १०० · १०८ · ३२२०। और इस कारण प्राचीन लोग उपवनों में पूजा किया करते थे। न० २७२२ · ४५५२। फूल और फुलवाड़ी से तात्पर्य विद्यासंबन्धी सचाई और ज्ञान है। न० ९५५३। ओषधि घास और हरितस्थल से तात्पर्य विद्यासंबन्धी सचाइयें हैं। न० ७५७१। पेड़ों से तात्पर्य बोध और ज्ञान हैं। न० १०३ · २१६३ · २६८२ · २७२२ · २९७२ · ७६९२।

उन के घरों की भीतें कांच सरीखी पारदर्शक हैं और उन भीतों में बहते हुए रूप जो नित्य विकारों से स्वर्गीय वस्तुओं को प्रगट करते हैं दिखाई देते हैं। वहां ऐसे अद्भुतदर्शन होते हैं क्योंकि पारदर्शकत्व ऐसी बुद्धिशक्ति से प्रतिरूपता रखता है जो प्रभु से प्रकाशित हुई है और जो उन छायाओं से विहीन है जो केवल प्राकृतिक ही श्रद्धा से और प्राकृतिक वस्तुओं को प्यार करने से पैदा होती हैं। इन अद्भुतों और अन्य अन्य असंख्य अद्भुतदर्शनों ने उन को जो स्वर्ग में थे यह बात कहवा दी कि हम ने यहां ऐसी वस्तुएं देखीं जो आंखों ने न देखी थीं और (ईश्वरीय वस्तुओं के मालूम करने से जो इस बात से बढ़कर निकलता है) हम ने ऐसी बातें सुनीं जो कानों ने न सुनी थीं। फिर जो लोग कि चुपके से नहीं काम करते परंतु चाहते हैं कि उन के सब बोध वहां तक प्रगट हो जहां तक कि प्रगट होना नीतिविद्या के अनुकूल हो (क्योंकि वे उन खरी और न्यायसंबन्धी बातों के सिवाए जो ईश्वरत्व से निकलती हैं कुछ भी नहीं ध्यान करते हैं) स्वर्ग में चमकीली ज्योति के चिहरों के साथ जिन में हर एक अनुराग और हर एक ध्यान प्रतिबिम्बित हैं दिखाई देते हैं और उन की बोली और गति उन के अनुरागों के रूप ही रूप हैं। इस कारण वे औरों की अपेक्षा अधिक प्यारे होते हैं। जब वे बोलते हैं तब उन के चिहरों पर कुछ कुछ धुन्धलाई छाई जाती है परंतु जब वे बोल चुके हैं तब उन की बात का संपूर्ण प्रसङ्ग चिहरे पर एक साथ देख पड़ता है। उन के चारों ओर सब वस्तुएं ऐसे ऐसे रूप धारण करती हैं (अपने भीतरी भागों से प्रतिरूपता रखने के कारण) कि उन की प्रतिमा और तात्पर्य स्पष्ट रूप से मालूम है। जब आत्मागण कि जो गुप्त बातों पर प्रसन्न हैं उन निष्कपट आत्माओं को दूरी पर देखते हैं तब वे उन से अलग रहते हैं और उन की ओर से सांप के समान रेंगके चले जाते हैं। वे जो छिनाला करना घिण से नापाक मानते हैं और ब्याह के जितेन्द्रिय प्रेम में रहते हैं मरने के पीछे स्वर्ग की परिपाटी और रूप में और सभों से श्रेष्ठ हैं। इस वास्ते उन का सुरूप अत्युत्तम सुन्दर है और उन का जोबन अनन्तकाल तक बना रहता है। उन के प्रेम के आनन्द अकथनीय हैं और वे आनन्द अनन्तकाल तक नित्य बढ़ते रहते हैं। क्योंकि स्वर्ग के सब आनन्द और सुख उस प्रेम में बहकर जाते हैं कि इस वास्ते कि वह प्रेम प्रभु के स्वर्ग और कलीसिया से संयोग होने से और साधारण रूप के अनुकूल सचाई से भलाई के संयोग होने से उतरता है। परंतु भलाई और सचाई का संयोग समुदाय में और हर एक दूत में स्वर्ग आप है। न० ३६६ से ३८६ तक देखो। कोई मानुषक बोली उन के बाहरी आनन्दों का बयान नहीं कर सकती।

जो आनन्द स्वर्गीय प्रेम में हैं उन के प्रतिरूपों की ये सूचनाएं उन बातों का केवल एक छोटा सा भाग हैं जो मेरे संमुख प्रकाशित हुईं।

४९०। इस से यह जाना जा सकता है कि सब मनुष्यों के आनन्दों को मृत्यु के पीछे बदलकर प्रतिरूपक आनन्द हो जाते हैं और वह विशेष प्रेम जो

उन का मूल है अनन्तकाल तक एक ही बना रहता है जैसा कि विवाहविषयक प्रेम न्याय का प्रेम खराई का प्रेम भलाई का प्रेम सचाई का प्रेम विद्या और ज्ञान का प्रेम बुद्धि और ज्ञान का प्रेम और अन्य अन्य सब प्रकार के प्रेम। उन से आनन्द ऐसे बहते हैं जैसा कि नदी अपनी सोत से और इस लिये वे विना विकार रहते हैं। परंतु जब प्राकृतिक आनन्दों को बदलकर आत्मिक आनन्द हो जाते हैं तब वे किसी उच्च पद तक उठाए जाते हैं।

मृत्यु के पीछे मनुष्य की पहिली अवस्था के बारे में।

४९१। मृत्यु के पीछे स्वर्ग या नरक में प्रवेश करने के पहिले मनुष्य तीन अवस्था में होकर जाता है। पहिली अवस्था मनुष्य के बाहरी भागों की है। दूसरी अवस्था उस के भीतरी भागों की और तीसरी अवस्था उस के प्रस्तुत होने के हाल की है। ये सब अवस्थाएं आत्माओं के जगत में होते हैं। परंतु कोई कोई आत्मा उन अवस्थाओं में होकर नहीं चलते। क्योंकि वे मरते ही एक साथ या तो स्वर्ग तक उठाए जाते हैं या नरक में गिराए जाते हैं। वे जो एक साथ स्वर्ग तक उठाए जाते हैं जगत में पुनर्जात हुए और इस से स्वर्ग के लिये प्रस्तुत हुए। सब के सब जो ऐसी रीति से पुनर्जात और प्रस्तुत होते हैं कि उन को शरीर के साथ केवल प्राकृतिक मल का छोड़ना पड़ता है साथ ही दूतगण से स्वर्ग को पहुंचाए जाते हैं। मैं ने कोई कोई आत्मा देखे जो मृत्यु के पीछे स्वर्ग को इस रीति से शीघ्र ही पहुंचाए गये थे। परंतु वे लोग जो भलाई के बाहरी भेष के नीचे भीतरी भागों में दुष्टी रहते थे और इस लिये भलाई से धोखा देने का साधन निकालके अपनी बुराई में कपट भरी थी उसी क्षण नरक में भेज दिये जाते हैं। मैं ने उन में से कोई लोगों को देखा है जो मरते ही क्षणमात्र में उधर को भेजे गये थे। सब से कपटियों में से एक आत्मा सिर नीचे पांव ऊपर नरक में गिराया गया। और अन्य अन्य आत्मा भिन्न भिन्न तौर पर। कोई आत्मा मृत्यु के पीछे एक साथ गड़हों में फेंके जाते हैं और इस कारण उन से अलग किये जाते हैं जो आत्माओं के जगत में हैं। बारी बारी वे अपने गुफे में से निकालकर फिर उन गुफों को भेजे जाते हैं। ये वे हैं जो सुशीलता के भेष में अपने पड़ोसी के साथ द्रोह करते हैं। परंतु आत्माओं की इन दो जाति की संख्या उन की संख्या की अपेक्षा बहुत थोड़ी है जो आत्माओं के जगत में धर रखे जाते हैं और जो वहां ईश्वरीय परिपाटी के अनुसार स्वर्ग या नरक के लिये प्रस्तुत किये जाते हैं।

४९२। मनुष्य मरते ही क्षणमात्र में ऊपर लिखित पहिली अवस्था में प्रवेश करता है और यह उस के बाहरी भागों की अवस्था है। क्योंकि आत्मा के विषय हर एक मनुष्य के भीतरी और बाहरी भाग दोनों हैं। आत्मा के बाहरी भाग मनुष्य को ऐसी शक्ति देते हैं कि वह अपने शरीर को और विशेष करके अपने चिहरे बोली और आचरण को उस सभा के योग्य कर सकता है जिस में वह

जगत में रहता है। परंतु आत्मा के भीतरी भाग अपनी निज संकल्पशक्ति के और इस के औत्सर्गिक ध्यान के हैं और ये चिहरे बोली और आचरण में बहुत कम दिखाई देते हैं। क्योंकि मनुष्य बालकपन से लेकर मित्रता हितेच्छा और खराई का भेष धारण करके अपनी संकल्पशक्ति के ध्यानों को छिपा रहता है। इस लिये उस को कैसा ही यथार्थ गुण क्यों न हो तो भी वह अपनी बाहरी आचरण को धर्मसंबन्धी और नीतिसंबन्धी जीवन के अनुकूल कर देता है। और इस आचरण का यह फल है कि मनुष्य अपने भीतरी भागों के विषय प्रायः कुछ भी नहीं जानता और उन पर कुछ भी ध्यान नहीं धरता।

४९३। मृत्यु के पीछे मनुष्य की पहिली अवस्था उस की जगत में की अवस्था के समान है। क्योंकि वह अब भी बाहरी दशा में है। इस कारण उस के चिहरे बोली शील और धर्मसंबन्धी और नीतिसंबन्धी जीवन की अवस्था का कुछ भी विकार नहीं है इस लिये यदि वह अपने गुज़रे हुए हाल के बारे में कुछ बात न करे और इस की सुध भी न करे कि जब वह फिर सजीव हुए तब दूतों ने उस से यह कहा कि तुम आत्मा हो तो इस से विपरीत कि वह अब भी जगत में है उस को कुछ बोध नहीं है। (न० ४५०)। इस कारण परलोक का जीवन इस लोक के जीवन का उत्तरभाग है और मृत्यु केवल वह मार्ग है जो एक जीवन से दूसरे जीवन तक पसरता है।

४९४। जब कि मनुष्य का आत्मा जो थोड़े दिन हुए जगत से गया वैसे स्वभाव का है तो मनुष्य अपने मित्रों से और उन से जो जगत में उस को जानते थे पहचाना जाता है क्योंकि आत्मागण न कि केवल चिहरे और बोली के द्वारा परंतु जब आत्मा निकट चले आते हैं तब उन के जीवन के मण्डल के द्वारा भी औरों को पहचानते हैं। जब परलोक में कोई आत्मा किसी और आत्मा पर ध्यान करता है तो वह उन के चिहरे पर ध्यान करता है और उसी समय उस के जीवन की कई एक हालतों पर भी ध्यान करता है। और जब वह इसी रीति से ध्यान करता है तब वह आत्मा आनकर उपस्थित है कि मानों वह मंगवाया जावे या बुलाया जावे। यह हाल आत्मिक जगत में के ध्यानों के व्यवहारिक संसर्ग से और ऐसे अभ्यन्तरस्थानों के अभाव से जैसा कि प्राकृतिक जगत में हैं पैदा होता है। (न० १९१ से १९९ तक देखो)। इस से सब आत्मा परलोक में जाते ही अपने मित्रों और भाईबन्धों से और उन सभों से जिन को वे कभी जानते थे पहचाने जाते हैं और वे उन से बात चीत करते हैं और जहां तक जगत में इन से उन से मित्रता थी वहां तक पीछे इन से उन से संसर्ग भी होता है। बार बार मैं ने जगत में से नये अभ्यागतों को उन के मित्रों से फिर मिलने के कारण हुलास करते हुए और उन के मित्र उन के आने के कारण उन के साथ आनन्द करते हुए देखे हैं। विवाहित सहभागी बार बार आपस में एक दूसरे के साथ मिलके धन्यवाद करते हैं और आनन्द के उस अंश के तुल्य जिस अंश तक

वे जगत में पहुंचे थे वे घट बढ़ कितने एक दिन तक एक दूसरे के साथ रहते हैं। यदि यथार्थ विवाहविषयक प्रेम जो स्वर्गीय प्रेम के कारण मनों का आपस में का संयोग है उन का एक दूसरे के साथ संयोग न करता रहा होता तो कुछ काल बीते वे अलग होगा। परंतु यदि उन के मन विपरीत होते और वे भीतरी तार से एक दूसरे पर घिण करते रहे होते तो इस समय उन का परस्पर बैर खुलके फूट निकलता है और कभी कभी वे यथार्थ लड़ाई करने लगते हैं। तिस पर भी जब तक वे दूसरी अवस्था में (जिस का बयान आगे दूसरे बाब में होगा) प्रवेश नहीं करते तब तक वे अलग नहीं किये जाते।

४९५। जब कि थोड़े दिनों से मरे हुओं के आत्माओं का जीवन उन के प्राकृतिक जगत में के जीवन के समान है और जब कि जो कुछ वे धर्मपुस्तक के शब्दों ही के तात्पर्य से और पन्द सुनने से सीखते हैं तिस के सिवाए उन को पहिले से मृत्यु के पीछे के जीवन के स्वभाव के विषय तथा स्वर्ग और नरक के विषय कुछ भी बोध नहीं है तो वे शरीर को धारण करने पर और जगत में के हर एक इन्द्रिय के भोग करने पर अचरज करने के पीछे स्वर्ग और नरक के स्वभाव के जानने की अभिलाषा करते हैं और अपने निवासस्थान का भी स्वभाव जानना चाहते हैं। इस कारण उन के मित्र अनन्तकालिक जीवन की दशा के बारे में उन को शिक्षा देते हैं और उन को इधर उधर ले जाते हैं और भिन्न भिन्न सभाओं में प्रवेश करवाते हैं। उन में से कोई कोई आत्मा नगरों बाग़ों और सुखलोकों में लाए जाते हैं और बार बार अतिशोभायमान मन्दिर और सुन्दर सुन्दर भूमियें उन को दिखलाई जाती हैं क्योंकि ऐसी ऐसी वस्तुएं उन बाहरी भागों को जिन में वे रहते हैं प्रसन्न करती हैं। वे वारी वारी आत्मा की मरने के पीछे की अवस्था के विषय में और स्वर्ग और नरक के बारे में उन ध्यानों की सुध जिन का वे शारीरिक अवस्था में ध्यान करते थे करवाए जाते हैं यहां तक कि वे क्रोध करते हैं कि वे उन प्रसङ्गों के बारे में संपूर्ण रूप से अपरिचित थे और कलीसिया के मेम्बरों में अभी वैसी अज्ञानता भी प्रबल हो रहती है। उन में से प्रायः सब आत्मा इस बात की चिन्ता करते हैं कि क्या हम स्वर्ग को जायेंगे कि नहीं। और बहुत से आत्मा स्वर्ग को जाने पर विश्वास करते हैं इस हेतु से कि वे जगत में धर्मसंबन्धी और नीतिसंबन्धी चाल पर चलते थे। इस बात का सोच वे नहीं करते कि बुरे भले लोग दोनों बाहर से एक ही चाल पर चलते हैं और दूसरों की भलाई एक ही रीति पर करते हैं और वे गिर्जे घरों को जाते हैं पन्द सुनते हैं और ईश्वरप्रार्थना करते हैं और वे यह भी नहीं जानते कि बाहरी क्रियाओं और बाहरी संस्कारों से कुछ काम नहीं निकलता परंतु भीतरी तत्त्व जिन से बाहरी क्रियाएं निकलती हैं फलदायक हैं। हज़ारों मनुष्यों में कदाचित एक ही मनुष्य पाया जा सके जिस को भीतरी तत्त्वों के विषय कुछ कुछ बोध है और यह भी जानता है कि मनुष्य में स्वर्ग और कलीसिया इन तत्त्वों के बने हुए हैं। बहुत ही थोड़े लोग जानते हैं कि बाहरी क्रियाओं का गुण संकल्पों और ध्यानों पर और उस प्रेम

और श्रद्धा पर जिन का प्रभाव उन पर लगता है और जिन से वे संकल्प और ध्यान पैदा होते हैं अवलम्बित है। इन दिनों में खिष्टीय जगत के बहुत से आत्मा नहीं समझ सकते कि ध्यान और इच्छा करना कोई भारी बातें हैं। उन की समझ में बोलना और आचरण करना सब से उत्तम हैं।

४९६। भले आत्मा उन की परीक्षा करके नाना प्रकार की रीतियों से उन का यथार्थ गुण ठहराते हैं। क्योंकि पहिली अवस्था में बुरे आत्मा भले आत्माओं के सदृश सच्ची बात बोलते हैं और भला आचरण करते हैं। क्योंकि (जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं) वे भी बाहर से धार्मिक चाल पर चलते थे। इस वास्ते कि वे सविधि राज्यों में आचरण करते थे और नियमों के अधीन थे और नीति-संबन्धी परिपाटी के अनुकूल ठीक ठीक चलने के द्वारा वे न्याय और खराई करने की कीर्त्ति उपार्जन करने की चेष्टा करते थे और वे सर्वसाधारण लोगों को प्रसन्न करते थे और धन और यश पाते थे। परंतु बुरे आत्मा भले आत्माओं से विशेष करके विवेचित हैं क्योंकि वे बाहरी वस्तुओं पर उत्ताप से ध्यान देते हैं और भीतरी वस्तुओं से जो स्वर्ग और कलीसिया की सचाइयें और भलाइयें हैं असावधान रहते हैं। वे इन बातों को सुनते तो हैं पर वे उन को असावधानी से और आनन्द के विना सुनते हैं। बुरे आत्मा भले आत्माओं से इस रीति पर भी विवेचित हैं कि वे बार बार किसी विशेष दिशाओं की ओर अपने आप को फिराते हैं और जब वे अकेले होते हैं तब वे ऐसे मार्गों पर चलते हैं जो उन दिशाओं तक चलते हैं। जो दिशाएं कि जिन की ओर वे फिरते हैं और जो मार्ग कि जिन पर वे चलते हैं दर्शक हैं जो उस प्रेम के गुण को प्रकाशित करते हैं जो उन आत्माओं को ले चलता है।

४९७। सब आत्मा जो जगत से जाते हैं या तो किसी विशेष सभा से स्वर्ग में संबन्ध रखते हैं या नरक से। परंतु यह संबन्ध केवल उन के भीतरी भागों के विषय होता है। और जब तक कि वे आत्मा अपने बाहरी भागों में रहते हैं तब तक वे भीतरी भाग प्रगट नहीं हो जाते। क्योंकि बाहरी वस्तुएं भीतरी वस्तुओं को विशेष करके उन आत्माओं के विषय जो भीतरी बुराई में रहते हैं ढांपते हैं और छिपाते हैं। तो भी पीछे से वे दूसरी अवस्था में खुलके स्पष्ट होते हैं। क्योंकि उस अवस्था में भीतरी भाग प्रगट होते हैं और बाहरी भाग पड़े सो रहते हैं।

४९८। मनुष्य की मरने के पीछे की पहिली अवस्था कोई आत्माओं के विषय दिनों तक बनी रहती है। किसी के विषय महीनों तक और किसी के विषय बरस भर तक। परंतु किसी के विषय वह बरस भर से अधिक काल तक कम बनी रहती है। उस का बना रहना हर एक आत्मा के विषय भीतरी और बाहरी भागों की सम्मति और असम्मति पर अवलम्बित है। क्योंकि बाहरी और भीतरी भागों को सम्मति से एकाग्रचित होकर काम करना पड़ता है। इस वास्ते

कि आत्माओं के जगत में किसी को एक तार पर ध्यान और इच्छा करना और दूसरे तार पर बोलना और काम करना कभी नहीं पड़ता। वहां हर किसी को उस के अपने अनुराग की या उस के अपने प्रेम की प्रतिमा होना पड़ता है। इस कारण वह बाहर से और भीतर से एकसां है। इस लिये पहिले पहिल हर एक आत्मा के बाहरी भाग उघाड़कर विधिवत किये जाते हैं ता कि वे प्रतिरूपक समतल होकर भीतरी भागों के काम में आवें।

मृत्यु के पीछे मनुष्य की दूसरी अवस्था के बारे में।

४९९। मनुष्य की मरने के पीछे की दूसरी अवस्था उस के भीतरी भागों की अवस्था कहलाती है। क्योंकि वह उस समय उन भीतरी भागों में जो उस के मन के या इच्छा और ध्यान के हैं प्रवेश करने पाता है। और बाहरी भाग जिन में वह अपनी पहिली अवस्था में था पड़े सो रहते हैं। हर किसी को जो मनुष्य के जीवन पर अर्थात उस की बात चीत पर और क्रियाओं पर ध्यान करता है जानना पड़ेगा कि वह बाहरी और भीतरी वस्तुओं का या बाहरी या भीतरी ध्यानों और संकल्पों का बना हुआ है। कई एक बातें इस का प्रमाण देती हैं। जैसा कि हर एक मनुष्य जो किसी नीतिसंबन्धी सभा में रहता है औरों के बारे में उन बातों के अनुसार जिस को उस ने उन के विषय या तो आवेदन से या सम्भाषण से सुना है और समझा है ध्यान करता है तिस पर भी वह उन से अपने ध्यान के अनुसार नहीं बोलता पर यद्यपि वह उन की बुराई पर विश्वास करे तो भी वह सभ्यता के साथ उन का उपकार करता है कपटी और चापलूस इस प्रकार की चाल चलन में प्रसिद्ध हैं क्योंकि वे अपने ध्यान और इच्छा के व्यास क्रम से विरुद्ध बोलते हैं। दम्भी लोग भी परमेश्वर के और स्वर्ग के और जीवों की मुक्ति पाने के और कलीसिया की सचाइयों के और अपने देश और पड़ोसी के हित के बारे में ऐसे बोलते हैं कि मानों श्रद्धा और प्रेम उन को हिलाता है तो भी उन के हृदयों में और ही इच्छाएं और आत्मप्रेम ही है। इस से स्पष्ट है कि ध्यान दो प्रकार के हैं एक बाहरी दूसरा भीतरी। और उस प्रकार के लोग अपने बाहरी ध्यान की ओर से बोलते हैं परंतु उन के भीतरी ध्यान उस से बहुत ही भिन्न है। और कहीं न हो कि भीतरी ध्यान बाहरी ध्यान में बहकर जावे और किसी रीति से प्रगट होवे तो इन दो प्रकार के ध्यान एक दूसरे से चौकसी रखवाले के साथ अलग किये जाते हैं। मनुष्य सृष्टि से ऐसे तार पर बनाया गया कि उस के भीतरी ध्यान बाहरी ध्यान के साथ मिलकर प्रतिरूपता के द्वारा काम करे। और यह मिलाव भले लोग मानते हैं क्योंकि वे केवल भले विषयों पर ध्यान करते हैं और जो कुछ वे ध्यान करते हैं सो वे बोलते हैं। परंतु बुरे लोगों में भीतरी ध्यान बाहरी ध्यान से मिलकर नहीं काम करते क्योंकि वे बुरे विषयों पर ध्यान करते हैं परंतु भली बात बोलते हैं। इस कारण उन के विषय परिपाटी उलट

पुलट हो जाती है क्योंकि जो भला है सो बाहर है और जो बुरा है सो भीतर है और इस लिये बुराई भलाई पर राज्ज करती है जैसा कि कोई स्वामी अपने दास के ऊपर ता कि भलाई के उपाय से वह उन बुरे फलों को पा सके जो बुरे प्रेम से पैदा होते हैं। उन भली बातों में जिन को वे बोलते हैं और करते हैं वह अभिप्राय छिपा रहता है इस से यह स्पष्ट है कि उन की भलाई भलाई नहीं है परंतु उस की भलाई कैसी ही सुन्दर उन लोगों को जो उस की भीतरी बुराई नहीं जानते क्यों न मालूम हो तो भी वह बुराई से दूषित है। भले लोगों की वैसी अवस्था नहीं है। क्योंकि उन के विषय परिपाटी उलटी पुलटी नहीं है पर भलाई भीतरी ध्यान से बाहरी ध्यान में बहकर जाती है और वहां से बोल चाल और क्रियाओं में। यह वही परिपाटी है कि जिस में मनुष्य पैदा हुआ था। क्योंकि इस रीति से उस के भीतरी भाग स्वर्ग में हैं और स्वर्ग की ज्योति में। परंतु स्वर्ग की ज्योति वह ईश्वरीय सचाई है जो प्रभु की ओर से निकलती है और यह स्वर्ग में प्रभु आप है (न० १२६ से १४० तक) और इस कारण भले लोग प्रभु से लाए जाते हैं। इन बातों का बयान इस वास्ते किया गया है ता कि इस बात का प्रमाण हो कि हर एक मनुष्य को भीतरी ध्यान है और बाहरी ध्यान भी है। और ध्यान एक दूसरे से भिन्न भिन्न हैं। जब ध्यान की सूचना की जाती है तब उस में इच्छा का तात्पर्य भी समाता है क्योंकि सब प्रकार का ध्यान इच्छा से होता है इस वास्ते कि इच्छा करने के विना ध्यान करना असम्भाव्य है। इन बातों से मनुष्य के बाहरी और भीतरी भागों का परस्पर संबन्ध स्पष्ट रूप से समझाया जा सकता है।

५०० । जब हम इच्छा और ध्यान के बारे में बोलते हैं तब इच्छा से तात्पर्य अनुराग और प्रेम भी है और सब प्रकार का आनन्द और हर्ष जो अनुराग और प्रेम से पैदा होते हैं। क्योंकि अनुराग और प्रेम अपने कर्त्ता की संकल्पशक्ति से संबन्ध रखता है किस वास्ते कि जिस किसी की इच्छा कोई मनुष्य करता है सो वह प्यार करता है और उस को रमणीय और सुखदायक मानता है। और व्यतिक्रम से जो कुछ कोई मनुष्य प्यार करता है और रमणीय और सुखदायक मानता है तिस की इच्छा भी वह करता है। और ध्यान से तात्पर्य हर पकार की वस्तु है जिस के द्वारा कोई मनुष्य अपने अनुराग और इच्छा की प्रतीति करता है। क्योंकि ध्यान इच्छा के रूप के सिवाए या उस साधन के सिवाए कि जिस से किसी मनुष्य का संकल्पविषय ज्योति में प्रगट होवे और कोई वस्तु नहीं है। यह रूप नाना चैतन्यसंबन्धी भञ्जन करने के द्वारा पैदा होता है। इस भञ्जन करने का मूल आत्मिक जगत की ओर से है और यथार्थ में मनुष्य के आत्मा का है।

५०१ । बड़ी भारी बात है कि हम यह वचन याद में रखें कि मनुष्य का गुण केवल उस के भीतरी भागों ही पर अवलम्बित है। न कि भीतरी भागों से अलग करके उस के बाहरी भागों में। क्योंकि भीतरी भाग आत्मा के हैं और मनुष्य

का जीव उस के आत्मा का जीव है इस वास्ते कि शरीर आत्मा के द्वारा जीता है। इस कारण मनुष्य का गुण जैसा कि वह उस के भीतरी भागों से ठहराया गया है वैसा ही वह अनन्तकाल तक बना रहता है। परंतु जब कि बाहरी भाग शरीर के भी हैं तो वे मृत्यु के पीछे अलग हो जाते हैं और जो कुछ उन से निकलता है और आत्मा पर चिपटता है सो सुलाया जाता है और केवल एक समस्थल होकर भीतरी भागों के काम में आता है। जैसा कि जब हम ने मनुष्य के उस स्मरण का जो मृत्यु के पीछे उस के साथ रहता है बयान किया तब प्रगट हुआ। इस लिये जो यथार्थ मनुष्य का है और जो यथार्थ उस का नहीं है सो स्पष्ट है। अर्थात बुरे लोगों के विषय बाहरी ध्यान का कि जिस से वे बोलते हैं या बाहरी इच्छा का कि जिस से वे काम करते हैं कुछ भी भाग यथार्थ उन का नहीं है परंतु केवल वे वस्तुएं ही उन की हैं जो उन के भीतरी ध्यान और इच्छा की हैं।

५०२। जब कोई मनुष्य पहिली अवस्था में होकर जो बाहरी भागों की अवस्था है जिस का बयान पिछले बाब में था पार गया है तब वह मनुष्य जो इस समय एक आत्मा हुआ है अपने भीतरी भागों की अवस्था में पहुंचाया जाता है या भीतरी इच्छा की और इस इच्छा से निकलनेवाले ध्यान की उस अवस्था में जिस में वह तब रहा था जब वह जगत में स्वाधीन होकर बिन अटकाव ध्यान करता था। वह इस अवस्था में उस तौर पर अचिन्तित पड़ता है जिस तौर पर वह जगत में उसी अवस्था में पड़ता है जब कि वह उस ध्यान को जो बोली के पास ही पास है और जिस से बोली निकलती है अपने भीतरी ध्यान की ओर खींचता है और उस में रहता है। इस कारण जब मनुष्य जो इस समय एक आत्मा है इस अवस्था में है तब वह अपने आप में और अपने जीव के जीव में है। क्योंकि बिन अटकाव निज यथार्थ अनुराग से ध्यान करना मनुष्य के जीव का जीव है और वह मनुष्य आप है।

५०३। जब कोई आत्मा इस अवस्था में है तब वह अपने यथार्थ संकल्प की ओर से और इस कारण अपने यथार्थ अनुराग या प्रेम की ओर से ध्यान करता है। इस से उस का ध्यान और उस का संकल्प एक ही हो जाता है। और यह एकता यहां तक संपन्न है कि आत्मा ध्यान करने में प्रवृत्त होता हुआ नहीं दिखाई पड़ता पर इच्छा करने में। जब वह बोलता है तब प्रायः वैसा ही हाल है इस को छोड़ कि उस समय उस को इस बात का कुछ कुछ डर है कि कहीं मेरी इच्छा के ध्यान नंगी दशा में न चले जावें। यह हटाव केवल संकल्पशक्ति ही की रीति है जो जगत में सर्वसाधारण लोगों के साथ संसर्ग करने से पैदा होता है।

५०४। सब मनुष्य एक भी न छोड़कर मृत्यु के पीछे इस अवस्था में पैठने पाते हैं क्योंकि वह उन के आत्माओं की यथार्थ अवस्था है। परंतु पहिली अवस्था उस अवस्था के समान है जो वे संगतियों में धारण करते हैं और उन की यथार्थ अवस्था नहीं है। बहुतेरी बातों से इस बात का प्रमाण दिया जा सकता है कि

यह अवस्था जो बाहरी भागों की अवस्था है जिस में मनुष्य मरते ही एक साथ हो आता है (जैसा कि पिछले बाब में दिखलाया गया) मनुष्य की यथार्थ अवस्था नहीं है। एक प्रमाण यह है कि आत्मा अपने निज अनुराग से न केवल ध्यान करते हैं पर बोलते भी हैं। क्योंकि जैसा कि उस बाब में जो दूतगण की बोली के बारे में हैं बयान हुआ (न० २३४ से २४५ तक) आत्माओं की बोली उन के अनुराग से निकलती है। मनुष्य भी जगत में तब उसी तौर पर ध्यान करता है जब वह अपने मन में सोचता है। क्योंकि उस समय वह अपने शरीर की बोली की ओर से नहीं ध्यान करता। परंतु वह बोधों ही को देखता है और उन का इतना समूह विद्यमान है कि क्षण मात्र में इतनी संख्या दृष्टिगोचर हैं जितनी संख्या वह मनुष्य अधघण्टे तक भी नहीं कह सकता। यह स्पष्ट है कि जब मनुष्य अपने भीतरी भागों में है तब उस की अवस्था यथार्थ में उस की निज अवस्था नहीं है और इस लिये उस के आत्मा की यथार्थ अवस्था भी नहीं है। क्योंकि जब जगत में वह संगतियों में है तब वह धर्मसंबन्धी और नीतिसंबन्धी नियमों के अनुसार बोल रहा है और उस का भीतरी ध्यान उस के बाहरी ध्यान पर राज करता है जैसा कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य पर राज करता है ता कि वह सभ्यता और अच्छी चाल की मर्याद के पार न जावे। इस पर भी जब कोई मनुष्य अपने मन में ध्यान करता है तब यद्यपि वह अपने प्राकृतिक शील के और अपनी स्वेच्छा की आज्ञाओं के विरुद्ध उपायों को काम में लाता है तो भी वह अपने बोलने और आचरण करने का सोच विचार करता है ता कि वह औरों को प्रसन्न करे और मित्रता हितेच्छा और उपकार पावे। इस से स्पष्ट है कि उन के भीतरी भागों की वह अवस्था कि जिस में उस का आत्मा लाया जाता है उस की यथार्थ अवस्था है और जब वह जगत में मनुष्य बनके रहता था तब भी उस का वही हाल था।

५०५। जब कोई आत्मा अपने भीतरी भागों की अवस्था में है तब मनुष्य का वह गुण स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता जिस का मनुष्य जगत में जीते हुए आप बना हुआ था। क्योंकि उस समय वह अपने आत्मत्व की ओर से आचरण करता है। अगर वह जगत में रहते हुए भीतर से भलाई के तत्त्वों पर चलता था तो अब वह चैतन्य से और ज्ञान से आचरण करता है। और वह जगत में के अपने आचरण करने से भी अधिक ज्ञान से आचरण करता है। क्योंकि वह शरीर के संबन्ध से और इस लिये अपने संबन्ध से उन पार्थिव वस्तुओं के साथ जिन्हों ने उस के ज्ञान के ऊपर अस्पष्टता और छाया फैलाई थी संपूर्ण रूप से छुड़ाया गया है। परंतु यदि वह जगत में रहते हुए बुरे तत्त्वों पर चलता था तो अब वह मूर्खता से और पागलपने से आचरण करता है। और जगत में के अपने आचरण करने से अधिक पागलपने से आचरण करता है। क्योंकि वह अब स्वतन्त्र और बिन अटकाव है। जब वह जगत में रहता था तब वह अपने बाहरी भागों में अनुन्मत्त था और इस लिये वह एक चैतन्य मनुष्य का रूप धारण करता था। परंतु जब बाहरी वस्तुएं उस से हर ली जाती हैं तब उस का पागलपन प्रगट हो जाता है। बुरा

मनुष्य जो भलाई का भेष धारण करता है एक ऐसे भाजन से उपमा दिया जा सकता है जो बाहर से चमकीला और चिकना और ढपने से ढंपा हुआ है परंतु जिस में हर प्रकार का मल छिपा हुआ रहता है। और यह हाल प्रभु के इस वचन के अनुकूल है अर्थात "तुम सफेदी फिरी हुई समाधियों के समान हो जो बाहर से बहुत अच्छी मालूम होती हैं पर भीतर मुर्दों की हड्डियों और हर प्रकार की अशुद्धता से भरी हैं"। (मत्ती पर्व २३ वचन २७)।

५०६। सब लोग जो जगत में भलाई में रहते थे और अन्तःकरण के मार्ग पर चलते थे (जैसा कि उन की अवस्था है जो ईश्वरीय सत्ता को स्वीकार करते हैं और ईश्वरीय सचाइयों को प्यार करते हैं और विशेष करके उन की अवस्था है जो इन सचाइयों को अपने जीवन के काम में लाते हैं) जब कि वे अपने भीतरी भागों की अवस्था में पहुंचने पाते हैं तब वे अपनी समझ में ऐसे दिखाई देते हैं कि मानों वे नींद से जाग पड़े या छाया में से होकर ज्योति में आ निकले। वे स्वर्ग की ज्योति से और इस लिये भीतरी ज्ञान से ध्यान करते हैं और वे भलाई से और इस लिये भीतरी अनुराग से आचरण करते हैं और इसी समय स्वर्ग उन के ध्यानों और अनुरागों में ऐसे भीतरी सुख और आनन्द के साथ जिस से पहिले वे कुछ भी परिचित न थे आप बहकर जाता है इस वास्ते कि अब वे स्वर्ग के दूतों के साथ संसर्ग करते हैं। अब वे प्रभु को भी स्वीकार करते हैं और अपने जीव के जीव से उस की पूजा करते हैं। क्योंकि जब वे अपने भीतरी भागों की अवस्था में हैं तब वे अपने निज के जीव में होते हैं जैसा कि ऊपर न० ५०५ वें परिच्छेद में कहा जा चुका है। वे स्वतन्त्रता से प्रभु को स्वीकार करके पूजा करते हैं इस कारण कि स्वतन्त्रता भीतरी अनुराग का होता है। और इस लिये वे बाहरी साधुता से छूट जाते हैं और उस भीतरी साधुता में प्रवेश करते हैं जिस की खरी पूजा सच मुच बनी है। ऐसी अवस्था उन लोगों की है जो जगत में धर्मपुस्तक के नियमों के अनुसार खिष्टीय चाल पर चलते थे। परंतु उन की अवस्था जो बुराई में जीते थे और जिन का कुछ भी अन्तःकरण न था और जो इस कारण ईश्वरीय सत्ता का होना अस्वीकार करते थे व्यासक्रम से विपरीत है। सब लोग जो बुराई में जीते हैं भीतर से एक ईश्वरीय सत्ता का होना अस्वीकार करते हैं चाहे जितना वे जब कि वे बाहरी भागों में हैं यह बोध करते हों कि हम उस सत्ता के होने पर अप्रत्यय नहीं करते पर उस को स्वीकार करते हैं। क्योंकि एक ईश्वरीय सत्ता का स्वीकार करना और बुरी चाल पर चलना विरुद्ध बातें हैं। जब ऐसे मनुष्य परलोक में अपने भीतरी भागों की अवस्था में आते हैं तब वे बुद्धिभ्रष्ट देख पड़ते हैं क्योंकि उन की बोली और क्रियाओं में उन की बुरी लालसाएं सब प्रकार के कुकर्मों के रूप पर फूट निकलती हैं जैसा कि औरों की निन्दा भंड़ैती अपवाद और द्वेष करना पलटा लेना और कपटप्रबन्ध करना। उन में से कई एक मनुष्य इन प्रबन्धों को इतने कपट और द्वेष के साथ बांधते हैं कि किसी मनुष्य में इस प्रकार के बोधों का होना अविश्वास्य मालूम होता है। इस समय ये बुरा-

हुये वर्त्तमान हैं इस वास्ते कि अब वे ऐसी अवस्था में हैं कि वे अपने संकल्पशक्ति के ध्यानों के अनुसार स्वतन्त्रता के साथ आचरण कर सकते हैं क्योंकि वे उन बाहरी वस्तुओं से अलग हैं जो जगत में उन को रोकती और आड़ रखती हैं। संक्षेप में वे चैतन्यविहीन हैं क्योंकि यद्यपि वे अपनी समझ में औरों की अपेक्षा अधिक ज्ञानी दिखाई देते थे तो भी वह चैतन्यशक्ति जो जगत में उन के पास थी उन के भीतरी भागों में नहीं रहती थी पर उन के बाहरी भागों में। इस कारण इस दूसरी अवस्था में वे जो ऐसे स्वभाव के हैं कभी कभी थोड़े दिनों तक अपने बाहरी भागों की अवस्था में (जब कि वे अपने भीतरी भागों की अवस्था में थे) लौटा दिये जाते हैं। उस समय कोई कोई लज्जित हो जाते हैं और यह बात सच मानते हैं कि हम पागल थे। परंतु किसी किसी को कुछ भी लाज नहीं है। और कोई कोई इस लिये क्रोध करते हैं कि वे अपने बाहरी भागों की अवस्था में नित्य रहने नहीं पाते। परंतु उन को वह हाल जिस में वे होते अगर वे इस अवस्था में रहते दिखलाया जाता है। और ऐसी अवस्था में वे तब तक उस प्रकार की बुराइयों का भोग छिपके से करते और भलाई खराई और न्याय के भेषों से उन लोगों को जो कि हृदय और श्रद्धा में भोले हैं लुभाते जब तक कि वे अपने आप का सत्यानाश न करते। क्योंकि अन्त में उन के बाहरी भाग उस आग के द्वारा जो उन के भीतरी भागों में प्रज्वलित है जल जावें और उन का सारा जीव नष्ट होगा।

५०७। जब आत्मागण इस दूसरी अवस्था में हैं तब उन का सच्चा हाल जब वे जगत में थे निष्कपट रूप पर दिखाई देता है। क्योंकि वे हर एक बात को जो उन्हों ने छिपके से की या कही थी प्रकाश करते हैं इस वास्ते कि उस समय बाहरी बातें उन को नहीं रोकती। इस कारण वे अपनी सुकीर्त्ति के उस संमान के विना जो जगत में उन पर प्रभाव करता था उस प्रकार की बातों को प्रगट रूप से कहते हैं और उस प्रकार की क्रियाओं को प्रत्यक्ष रूप से करते हैं। इस लिये कि दूतगण और भले आत्मागण उन का सच्चा गुण देख सकें वे अपनी बुराइयों की बहुत सी अवस्थाओं में भी पहुंचने पाते हैं। और इस से छिपी हुई बातें खोली जाती हैं और गुप्त बातें उघाड़ी जाती हैं प्रभु के इन वचनों के अनुसार अर्थात "कोई वस्तु ढंपी नहीं जो खुल न जावे और न छिपी जो जानी न जावे। इस लिये कि जो कुछ तुम ने अन्धेरे में कहा है उजाली में सुनाया जावेगा। और जो कुछ तुम ने कोठरियों में कानों कान कहा कोठों पर प्रकाशित किया जावेगा"। (लूका पर्व १२ वचन २·३)। और फिर "मैं तुम से कहता हूं कि हर एक अनर्थक बात जो कि लोग कहें विचार के दिन उस का विवरण करेंगे"। (मत्ती पर्व १२ वचन ३६)।

५०८। बुरे लोगों का गुण इस अवस्था में थोड़ी बातों के द्वारा नहीं कहा जा सकता क्योंकि उन में से हर एक मनुष्य अपनी निज लालसा के अनुसार

पागल है और ये लालसाएं भिन्न भिन्न हैं। इस कारण मैं केवल कई विशेष उदाहरणों का बयान करता हूं कि जिन से बाक़ी सब उदाहरणों के विषय एक सिद्धान्त निकाला जा सकता है। जो लोग अन्य सब वस्तुओं की अपेक्षा अपने आप को बहुत प्यार करते थे और अपने उहदा या व्यवसाय के काम करने में अपनी निज सुकीर्त्ति की उन्नति की चेष्टा करते थे और जो न कि प्रयोजन ही के निमित्त और प्रयोग करने में आनन्द पाने के कारण परंतु सुकीर्त्ति के निमित्त प्रयोग करते थे ता कि वे औरों की अपेक्षा अधिक मान्यवर होवें और इस लिये अपनी श्रेष्ठता का भोग करें वे इस दूसरी अवस्था में औरों की अपेक्षा अधिक मन्द-मति होते हैं। क्योंकि जितना कोई मनुष्य अपने आप को प्यार करता है उतना ही वह स्वर्ग से दूर किया जाता है और जितना वह स्वर्ग से दूर किया जाता है उतना ही वह ज्ञान से भी अलग किया जाता है। वे लोग जो जगत में आत्म-प्रेम और कपटी के कारण विशेषित थे और जो धूर्तता के द्वारा अपने को ऊंचे पद तक पहुंचाते थे सब से बुरे आत्माओं के साथ संसर्ग करते हैं और जादूगरी या मायाविद्या को सीखते हैं जो कि ईश्वरीय परिपाटी के कुव्यवहार हैं जिन के द्वारा वे उन सभों को जो उन का संमान नहीं करते हानि करके सताते हैं। वे उन के लिये फन्दा लगाते हैं और उन के विरुद्ध द्वेष का प्रतिपालन करते हैं और उन से पलटा लेने की अभिलाष के साथ जलते हैं और उस लालसा के साथ उन पर जो उन के बस में नहीं आते अपने निर्दय करने को प्रसिद्ध होने की इच्छा करते हैं और जितना उन के बुरे साथी उन की सहायता करना चाहते हैं उतना ही वे इस अतिदुष्टता के यथार्थ करने में दौड़कर चले आते हैं। अन्त में वे अपने मन में यह सोच विचार करते हैं कि क्या हम किस रीति से स्वर्ग में चढ़कर उस का नाश करें या वहां पर देवता होकर पूजित होवें। उन के पागल-पने के ऐसे ऐसे अत्याचार हैं। रोमन केथोलिक लोग जिन का ऐसा शील है बाक़ी सब लोगों से अधिक पागल हैं क्योंकि उन के मन में यह लहर है कि स्वर्ग और नरक दोनों उन के बस हैं और उन को उन की अपनी इच्छा के अनुसार पापों से छुड़ाने का सामर्थ्य है। वे दम्भ करके हर एक ईश्वरीय गुण अपने आप को देते हैं और अपने को ख्रिष्ट भी पुकारते हैं। और वे इस बात की सत्यता पर इतना दृढ़ विश्वास रखते हैं कि जहां कहीं वह विश्वास बहकर प्रवेश करता है वहीं मन मलीन हो जाता है और पीड़ामय अन्धेरा आ पड़ता है। इस प्रकार के आत्मा दोनों अवस्थाओं में प्रायः एकसां हैं परंतु दूसरी अवस्था में वे चैतन्य-विहीन हैं। कई एक बातें उन के पागलपनों के बारे में इस अवस्था में होने के पीछे उन के भाग्यों के बारे में एक छोटी सी पुस्तक में हैं जिस का नाम "प्रलय-काल का विचार और बेबिलन का विनाश" रखा है। वे लोग जो प्रकृति को सृष्टि का कारण ठहराते हैं (और इस लिये अपने मन में एक ईश्वरीय सत्ता को और इस कारण कलीसिया की और स्वर्ग की सब वस्तुओं को स्वीकार करते हैं) इस अवस्था में अपने जैसों से संसर्ग करते हैं और हर किसी को जो उन से अधिक धूर्त हैं वे

देवता पुकारते हैं और देवकीय पूजा के साथ उन की पूजा करते हैं। मैं ने उन में से कई एक आत्मा एकट्ठे होकर किसी मायावी की पूजा करते हुए देखे हैं। वे प्रकृति के बारे में तर्कवितर्क करते थे और अचेतन्य रूप से ऐसी चाल पर चलते थे कि मानों वे मनुष्यरूपी पशु थे। तौ भी इन आत्माओं में कोई ऐसे आत्मा थे जो जगत में ऊंचे पद तक पहुंचे थे और जो पाण्डित्य और ज्ञान के कारण प्रसिद्ध थे। और ऐसे ऐसे हाल अन्य अन्य आत्माओं के थे। इन थोड़े उदाहरणों से यह सिद्धान्त निकाला जा सकता है कि उन आत्माओं का क्या गुण है जिन के भीतरी भाग जो मन के हैं स्वर्ग की ओर बन्द हुए हैं जैसा कि उन का हाल है जिन्हों ने एक ईश्वरीय सत्ता के होने के स्वीकार करने के द्वारा और श्रद्धा की चाल पर चलने के द्वारा स्वर्ग की ओर से कुछ अन्तःप्रवाह नहीं पाया है। हर कोई अपने ही मन में विचार कर इस बात का निर्णय कर सकता है कि यदि मेरा ऐसा शील हो और मैं नियमों से भय खाने के विना या प्राण देने के विना या अपनी सुकीर्त्ति की हानि करने के विना या संमान के अपहार के विना या लाभ के खोने के विना या उन सुखों के घटाने के विना जो कि इन सब वस्तुओं से निकलते हैं स्वतन्त्रता के साथ अपनी इच्छा के अनुसार आचरण कर सकूं तो मेरी कौन अवस्था होगी। तौ भी ऐसे आत्माओं का पागलपन प्रभु से रोका जाता है ता कि वे प्रयोजन की सीमाओं से बाहर दौड़कर बढ़ जाने में रोके जावें क्योंकि हर कोई (कहो कि उस का ऐसा शील भी हो) किसी न किसी प्रयोजन तो काम में लाता है। भले आत्मा उन में यह देखते हैं कि बुराई क्या वस्तु है और बुराई का क्या स्वभाव है और अगर प्रभु मनुष्य को न ले चले तो मनुष्य की कैसी अवस्था होगी। उन बुरे आत्माओं का यह भी एक प्रयोजन है कि वे अपने सरीखे आत्माओं को एकट्ठा करके उन को भले आत्माओं से अलग कर दें। और यह एक प्रयोजन भी है कि सचाइयें और भलाइयें जिन का भेष पापी लोग कपट करके धारण करते थे उन पापी लोगों से दूर की जावें और वे लोग अपने निज जीवन की बुराइयों में और इन बुराइयों की झुठाइयों में लाए जावें और इस रीति से नरक के लिये प्रस्तुत किये जावें। क्योंकि कोई मनुष्य नरक को तब तक नहीं जाता जब तक कि वह अपनी बुराई में और उस बुराई की झुठाइयों में न हो। इस कारण से कि वहां पर कोई आत्मा विभिन्न मन को रखने नहीं पाते या एक बात का ध्यान कर दूसरी बात बोलने नहीं पाते। वहां हर एक आत्मा को बुराई से निकली हुई झूठी बात का ध्यान करना और उस झुठाई की ओर से बोलना पड़ता है। परंतु तौ भी उस का ध्यान करना और बोलना दोनों संकल्पशक्ति से और इस लिये संकल्पशक्ति के निज प्रेम से इस प्रेम के आनन्द और सुख के साथ निकलते हैं जैसे के तैसे वे सुख जगत में उस समय थे जब कि वह मनुष्य बनकर अपने आत्मा में या अपने मन में भीतरी अनुराग के अधीन होकर ध्यान करता था। इस का यह हेतु है कि संकल्पशक्ति मनुष्य आप है और जहां तक ध्यान संकल्प से संबन्ध रखता है वहां तक के ध्यान को कोई

ध्यान आप मनुष्य नहीं है। और संकल्प मनुष्य के स्वभाव का स्वभाव या सच्चा शील है। इस लिये उस के संकल्प में पैठने पाना उस के सच्चे स्वभाव या सच्चे शील में और उस के निज जीव में भी पैठने पाना है। क्योंकि मनुष्य ऐसे स्वभाव को पाता है जो उस के जीव के अनुसार है और वह मृत्यु के पीछे उसी गुण का बना रहता है जैसा वह स्वभाव है जो उस ने जगत में जीने के द्वारा पाया था। मृत्यु के पीछे पापी लोगों में यह गुण या तो ध्यान करने के द्वारा या सत्य को समझने के द्वारा कभी नहीं सुधारा या बदल दिया जा सकता।

५०९। इस दूसरी अवस्था में बुरे आत्मा हर प्रकार के पापों में माथे के बल दौड़कर चले जाते हैं और इस कारण वे बार बार खेदजनक ताड़न भुगतते हैं। आत्मागण के जगत में ताड़न नाना प्रकार के हैं। और वहां चाहे एक अपराधी जगत में नौकर था चाहे राजा था इस हेतु से उस का कुछ भी संमान नहीं है। क्योंकि हर भांति की बुराई अपने साथ अपने ताड़न को लाती है इस लिये कि बुराई और ताड़न एक दूसरे से संयुक्त होते हैं और इस कारण जो बुराई में है सो बुराई के ताड़न में भी है। तौ भी वहां कोई मनुष्य किसी अपराध का कि जो उस ने जगत में किया था ताड़न नहीं भुगतता। वह केवल उन अपराधों का ताड़न भुगतता है जिन को वह उसी समय किया करता है। चाहे हम कहें कि बुरे लोग जगत में के अपराधों का ताड़न भुगतते हैं चाहे हम कहें कि वे परलोक में अपराधों का ताड़न भुगतते हैं यथार्थ में इन दो वाक्यों के बीच कुछ भी भिन्नता नहीं है। क्योंकि हर कोई मृत्यु के पीछे अपने निज जीवन में और इस लिये समबुराइयों में फिर जाता है इस वास्ते कि आत्मा का गुण अविकृत बना रहता है (न० ४७० से ४८४ तक देखो)। और बुरे आत्मा इस लिये ताड़न भुगतते हैं कि इस अवस्था में उन की बुराइयों को बस कर लेने का अकेला उपाय ताड़न भोगने का भय है। न तो उपदेश का न शिक्षा का न नियमों के भय का न सुकीर्त्ति की हानि का कुछ उन पर बस आता। क्योंकि आत्मा अपने स्वभाव की ओर से आचरण करता है और यह स्वभाव अगर ताड़न का भय उस को न रोके न तो रोका जा सकता है न तोड़ा जा सकता है। परंतु यद्यपि भले आत्मा जगत में पाप करते थे तौ भी वे कभी नहीं ताड़न भुगतते हैं क्योंकि उन की बुराइयें नहीं फिर आती हैं। मुझ को यह भी बतलाया गया कि उन की बुराइयें अन्य भांति या स्वभाव की हैं और वे न तो किसी हेतु से जो सचाई के विरुद्ध है की जाती हैं न बुरे हृदय की ओर से। परंतु वे बुराइयें उस बुराई की ओर से जो उन आत्माओं के मा बाप से बपौती की रीति पर पाई जाती है की जाती हैं। और वे आत्मा अन्धे आनन्द के फंसाव के द्वारा पाप में गिर पड़ते हैं जब कि वे ऐसे बाहरी भागों में हैं जो भीतरी भागों से अलग हैं।

५१०। हर कोई उस सभा में आता है जिस में उस का आत्मा था जब कि वह जगत में रहता था। क्योंकि प्रत्येक मनुष्य अपने आत्मा के विषय या तो स्वर्ग की या नरक की किसी सभा से संयुक्त है। बुरा मनुष्य नरक की किसी सभा

से संयुक्त है और भला मनुष्य स्वर्ग की किसी सभा से। और न० ४३८ वें परिच्छेद में यह देखा जा सकता है कि हर कोई मृत्यु के पीछे अपनी निज सभा को फिर जाता है। आत्मा इस सभा तक क्रम क्रम करके लाया जाता है और अन्त में यथार्थ उस सभा में प्रवेश करता है। जब एक बुरा आत्मा अपने भीतरी भागों की अवस्था में है तब वह अपनी सभा की ओर क्रम क्रम से फिराया जाता है और अन्त में इस अवस्था के सिद्ध होने के पहिले ठीक ठीक उस के संमुख खड़ा होता है। तब वह अपने को उस नरक में गिरा देता है जिस में उस के सरीखे आत्मा बसते हैं। और जब वह अपने को गिरा देता है तब वह किसी मनुष्य के समान दिखाई देता है जो पांव ऊपर की ओर उलटे माथे के बल गिर पड़ता हो। यह दिखाव परिपाटी के उलटाने से नरकीय वस्तुओं को प्यार करने के और स्वर्गीय वस्तुओं को हटा देने के द्वारा होता है। इस दूसरी अवस्था में कोई कोई बुरे आत्मा नरकों में प्रवेश करते हैं और फिर उन से निकलते हैं। परंतु ये आत्मा माथे के बल गिरते हुए नहीं दिखाई देते जैसा कि वे देख पड़ते हैं जो संपूर्ण रूप से बिगाड़े गये हैं। वही सभा कि जिस में वे मनुष्य जब कि वे जगत में थे अपने आत्मा के विषय रहते थे उन को जब कि वे अपने बाहरी भागों की अवस्था में हैं दिखलाई भी जाती है ता कि वे यह जान लें कि अपने शरीर के जीने के समय भी वे नरक में थे। परंतु वे उसी अवस्था में नहीं हैं कि जिस में वे आत्मा हैं जो नरक में हैं पर वे ऐसी अवस्था है जो उन आत्माओं की अवस्था के समान है जो आत्माओं के जगत में हैं। जब उन की अवस्था नरकनिवासियों की अवस्था के साथ उपमा दी जाती है तब उन की जो अवस्था है उस के बारे में अधिक बयान आगे किया जावेगा।

५११। इस दूसरी अवस्था में बुरे आत्मा भले आत्माओं से अलग किये जाते हैं क्योंकि पहिले अवस्था में वे एकट्ठे होके रहते हैं। इस हेतु से कि जब तक कोई आत्मा अपने बाहरी भागों में है तब तक वह ऐसे हाल में है जिस हाल में वह जगत में था जहां कि बुरे लोग भले लोगों के साथ संसर्ग करते हैं और भले लोग बुरे लोगों के साथ। परंतु जब वह अपने भीतरी भागों में लाया जाता है और अपने निज स्वभाव या संकल्पशक्ति के अधीन होता है तब उस का हाल और ही है। भले लोगों का बुरे लोगों से अलग करना नाना रीति से होता है। प्रायः वे उन सभाओं के पास पहुंचाए जाते हैं जिन के साथ वे अपनी पहिली अवस्था में अच्छे ध्यानों और अनुरागों के द्वारा संसर्ग करते थे। और इस कारण वे उन के पास भी पहुंचाए जाते हैं जो बाहरी आकृतियों से इस बात पर विश्वास करते थे कि हम बुरे नहीं हैं। प्रायः वे बड़ा चक्कर मारके चारों ओर चलते हैं और इस चक्र के प्रत्येक भाग पर उन का सच्चा शील भले आत्माओं को दिखलाया जाता है। और जब वे फिरकर चले जाते हैं बुरे आत्मा भी उन की ओर से आप अपने मुखों को उन से फिराकर उस दिशा की ओर देखते हैं जहां उस नरकीय सभा है जिस में वे पैठनेवाले हैं। अलग करने की बहुत सी अन्य रीतियों की जा सकती है।

मृत्यु के पीछे मनुष्य की तीसरी अवस्था के बारे में जो शिक्षा की वह अवस्था है जो स्वर्गनिवासियों के लिये प्रस्तुत की हुई है।

५१२। मृत्यु के पीछे मनुष्य की या मनुष्य के आत्मा की तीसरी अवस्था शिक्षा की एक अवस्था है। यह अवस्था उन के लिये प्रस्तुत की हुई है जो स्वर्ग को जाकर दूत हो जाते हैं न कि उन के लिये जो नरक को जाते हैं क्योंकि ये नहीं शिक्षा किये जा सकते। इस कारण उन्हीं की दूसरी अवस्था उन की तीसरी अवस्था भी तो है। और इस अवस्था का यह अन्त है कि वे अपने निज प्रेम की ओर और इस लिये नरक की उस सभा की ओर जो उसी प्रेम में है संपूर्ण रूप से फिरे हुए हैं। जब यह हाल आन पड़ता है तब वे उस प्रेम की ओर से ध्यान करते हैं और इच्छा करते हैं। और जब कि वह प्रेम नरक का है तो वे बुराइयों को छोड़ कुछ नहीं चाहते और झुठाइयों को छोड़ किसी वस्तु का ध्यान नहीं करते। क्योंकि ये वस्तुएं उन के आनन्द हैं इस वास्ते कि ये उन के प्रेम के विषय हैं। इसी हेतु से वे हर एक अच्छी और सच्ची वस्तु को जो कि पहिले उन्हों ने अपने प्रेम के अभिप्रायों के सिद्ध करने के उपाय बनाकर ग्रहण की थी दूर करते हैं। परंतु भले आत्मा दूसरी अवस्था से तीसरी अवस्था में लाए जाते हैं जो कि स्वर्ग के निमित्त शिक्षा के द्वारा प्रस्तुत करने की एक अवस्था है। क्योंकि भलाई और सचाई के जानने को छोड़ अर्थात शिक्षा पाने को छोड़ कोई उपाय नहीं है कि जिस से कोई आत्मा स्वर्ग के निमित्त प्रस्तुत किया जा सकता है इस वास्ते कि यदि कोई आत्मा शिक्षा न पावे तो वह न तो आत्मीय भलाई और सचाई को जान सकेगा न यह इन के विरोधियों को अर्थात बुराई और झुठाई को। जगत में यह जाना जा सकता है कि नीतिसंबन्धी और धर्मसंबन्धी भलाई और सचाई जो कि न्याय और खराई कहलाती है कौन वस्तुएं हैं। क्योंकि नीतिसंबन्धी नियम न्याय की शिक्षा देते हैं और परस्पर संसर्ग धर्मसंबन्धी नियमों के मार्ग पर जो कि हर एक भाग में खराई और सत्यशीलता के साथ संबन्ध रखता है मनुष्य को ले चलता है। परंतु आत्मीय भलाई और सचाई जगत की ओर से नहीं सीखी जाती है पर स्वर्ग की ओर से। सच तो है कि ये गुण धर्मपुस्तक की ओर से और कलीसिया के उस मत की ओर से जो धर्मपुस्तक से निकाला हुआ है जाने जा सकते हैं। परंतु यदि मनुष्य अपने भीतरी भागों के विषय जो कि उस के मन के हैं स्वर्ग में न हो तो वे गुण जीव में नहीं बह सकते। और जब मनुष्य एक ईश्वरीय सत्ता को स्वीकार करता है और उसी समय न्याय और खराई के साथ आचरण करता है इस प्रत्यय पर कि उस को उस रीति का आचरण करना चाहिये इस हेतु से कि धर्मपुस्तक में उस प्रकार के आचरण करने की आज्ञा है तब वह स्वर्ग में है। क्योंकि उस समय उस का न्याय और खराई ईश्वरत्व की भक्ति करने से

निकलती है न कि अपने आप और जगत के संमान करने से। यदि कोई मनुष्य पहिले पहिल परमेश्वर के होने की तथा स्वर्ग और नरक की तथा मृत्यु के पीछे के जीवन की तथा मनुष्य को चाहिये कि वह अन्य सब वस्तुओं की अपेक्षा परमेश्वर से प्रेम रखे और अपने पड़ोसी से उस प्रकार का प्रेम रखे जिस प्रकार का प्रेम वह अपने आप से रखता है इस की तथा जो कुछ धर्मपुस्तक में प्रकाशित हुआ है तिस पर इस वास्ते कि धर्मपुस्तक परमेश्वर की है विश्वास करना चाहिये इस की शिक्षा न पावे तो वह न्याय और खराई के साथ आचरण नहीं कर सकता। इन सत्यों के जानने और स्वीकार करने के विना मनुष्य आत्मीय रीति से ध्यान नहीं कर सकता। और यदि वह उन पर नहीं ध्यान करे तो वह उन की इच्छा नहीं कर सके। क्योंकि मनुष्य उस पर ध्यान नहीं कर सकता जिस को वह नहीं जानता और जिस पर वह ध्यान नहीं कर सकता उस की इच्छा भी वह नहीं कर सकता। इस कारण जब मनुष्य इन सत्यों की इच्छा करता है तब स्वर्ग अर्थात प्रभु स्वर्ग में से पार होकर उस के जीव में बहकर जाता है। क्योंकि प्रभु संकल्पशक्ति में बहता है और संकल्पशक्ति में से होकर ध्यान में और इन दोनों में से होकर जीव में। और मनुष्य का सारा जीव ध्यान और इच्छा से होता है। इस से स्पष्ट है कि आत्मीय भलाई और सचाई जगत की ओर से नहीं सीखी जाती पर स्वर्ग की ओर से और केवल शिक्षा पाने के द्वारा कोई मनुष्य स्वर्ग के लिये प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। जहां तक प्रभु किसी मनुष्य के जीव में बहता है वहां तक वह उस को शिक्षा देता है क्योंकि इस परिमाण तक वह उस मनुष्य की इच्छा में सत्यों के जानने का प्रेम जलाता है और उस की ज्ञानशक्ति को उन सत्यों के मालूम करने में उजला करता है। जब ये कार्य सिद्ध किये हुए हैं तब इन के परिमाण तक मनुष्य के भीतरी भाग खुले हुए हैं। स्वर्ग उन में गाड़ा हुआ है। और ईश्वरीय और स्वर्गीय तत्त्व धर्मसंबन्धी जीव की खराई में और नीतिसंबन्धी जीव के न्याय में बहकर जाता है। और इस के द्वारा वे आत्मिक हो जाते हैं। क्योंकि उस समय मनुष्य ईश्वरत्व की ओर से खराई और न्याय के साथ आचरण करता है इस वास्ते कि वह ईश्वरत्व के निमित्त आचरण करता है। धर्मसंबन्धी और नीतिसंबन्धी जीव की खराई और न्याय जो इस सोत से निकलकर बहते हैं आत्मीय जीव के कार्य हैं। और कार्य अपने कारणों से अपने सारे गुण को निकालते हैं। क्योंकि जैसा कारण हो वैसा कार्य होगा।

५१३। बहुत सी सभाओं के दूतगण से विशेष करके उन से जो उत्तर और दक्षिण दिशाओं में होते हैं शिक्षा दी जाती हैं क्योंकि ये दूत उस बुद्धिशक्ति और ज्ञानशक्ति से विशेषित हैं जो भलाई और सचाई के ज्ञान से निकलती है। शिक्षा करने के स्थान उत्तर की ओर हैं और वे नाना प्रकार के हैं जो कि स्वर्गीय भलाइयों की जातियों और परजातियों के अनुसार शिक्षा किया जावे। और ये शिक्षा करने के स्थान वहां पर बहुत ही दूरी तक चारों ओर बढ़ जाते हैं। भले आत्मा,

गण जो शिक्षापानेवाले हैं जब वे आत्माओं के जगत में अपनी दूसरी अवस्था में से होकर पार उतरे हैं तब वे उधर को प्रभु से पहुंचाए जाते हैं। परंतु सब भले आत्मागण उधर को नहीं पहुंचाए जाते क्योंकि वे भले आत्मा जो जगत में शिक्षा पाते हैं वहीं प्रभु से स्वर्ग के लिये भी प्रस्तुत किये जाते हैं और दूसरे मार्ग पर स्वर्ग को पहुंचाए जाते हैं। इन में से कोई कोई मृत्यु के पीछे साथ ही उधर जाते हैं और कोई भले आत्माओं के साथ (जिन के साथ ध्यान और अनुराग की वह स्थूलता जो संमान और धन के द्वारा उन पर लगाई हुई थी दूर की जाती है) थोड़े दिनों तक रहकर शुद्ध हो जाते हैं। और कोई पहिले पहिल पांओं के तले के नीचे कोई स्थानों तक जो नीची पृथिवी कहलाते हैं पहुंचाए जाते हैं और वहीं वे बिगाड़े जाते हैं। वहां पर वे आत्मा जिन्हें ने अपने को झुठाइयों में दृढ़ रूप से स्थापित किया था बड़ी शोकजनक यातना भुगतते हैं यद्यपि वे भली चाल पर चलते थे। क्योंकि जब झुठाइयें दृढ़ रूप से स्थापित हुई हैं तब वे हठ से चिमटती हैं। और सचाइयें जब तक वे छितराए न जावें तब तक वे न तो देखी जा सकती हैं न ग्रहण की जा सकती हैं। परंतु बिगाड़ों के बारे में और उन नाना रीतियों के बारे में जिन से वे बिगाड़ किये जाते हैं पाठकगण आर्कोना सीलेस्टिया नामी पोथी के बहुत से प्रसङ्गों को पढ़ेंगे। निम्न लिखित विवरणों में उस पोथी में से कई एक वचन छापे जाते हैं[८१]।

---

८१ परलोक में बिगाड़ किये जाते हैं अर्थात वे लोग जो जगत से उधर को जाते हैं बिगड़ जाते हैं। न० ६९८ • ७१२२ • ७४७४ • ९७६६। सुशील लोग झुठाइयों के विषय बिगड़ जाते हैं और कुशील लोग सचाइयों के विषय। न० ७४७४ • ७५४१ • ७५४२। सुशील लोगों के विषय में बिगाड़ इस लिये भी किये जाते हैं कि ऐसी पार्थिव और सांसारिक वस्तुएं दूर की जावें जो उन लोगों ने जगत में रहते हुए ग्रहण की थीं। न० ७१८६ • ९७६३। बुराइयें और झुठाइयें दूर की जा सकती है और इस लिये प्रभु की ओर से स्वर्ग में की भलाइयों और सचाइयों के अन्तःप्रवाह के लिये और उसी समय उन गुणों के ग्रहण करने की योग्यता के लिये एक स्थान प्रस्तुत किया जा सकता है। न० ७१२२ • ९३३१। क्योंकि जब तक ऐसी वस्तुएं दूर न की जावें तब तक वे स्वर्ग को नहीं उठाए जा सकते हैं क्योंकि वे स्वर्गीय वस्तुओं के विरुद्ध हैं और उन से संमत नहीं होते हैं। न० ६९२८ • ७१२२ • ७१८६ • ७५४१ • ७५४२ • ९७६३। और इस कारण वे लोग जो स्वर्ग को उठनेवाले हैं इसी रीति से प्रस्तुत किये जाते हैं। न० ४७२८ • ७०९०। प्रस्तुत होने के विना स्वर्ग में आना भय का स्थान है। न० ५३७ • ५३८। प्रकाश और आनन्द की उस अवस्था के बारे में जिस को वे भुगतते हैं जो बिगड़ने की अवस्था में से आकर स्वर्ग को उठाए जाते हैं। और वहां पर उन के अङ्गीकार करने के बारे में। न० २६९९ • २७०१ • २७०४। जहां बिगाड़ किये जाते हैं उस स्थान का नाम निचली पृथिवी रखा। न० ४७२८ • ७०९०। और वह पांओं के तले के नीचे नरकों से घेरा हुआ है। उस के गुण के बयान के बारे में। न० ४९४० से ४९५१ तक • ७०९०। उस का बयान परीक्षा करने से। न० ६९९। वे कौन नरक हैं जो अन्य नरकों की अपेक्षा बहुत सताते हैं और बिगाड़ते हैं। न० ७३१७ • ७५०२ • ७५४५। वे जिन्हें ने सुशीलों को सताया और बिगाड़ा है पीछे सुशीलों से भय खाते हैं उन से अलग रहते हैं और उन की घृणा करते हैं। न० ७७६८। यह सताना और बिगाड़ना भिन्न प्रकारों से बुराइयों और झुठाइयों के चिमटने के अनुसार किया जाता है और अपने गुण और परिमाण के अनुसार वह बना रहता है। न० ११०६ से १११३ तक। कोई कोई बिगाड़ने की इच्छा करते हैं। न० ११०७। कोई भयों से बिगाड़े जाते हैं। न० ४९४२। कोई अपनी उन बुराइयों के सताने से जिन को उन्हें ने जगत में किया था और

५१४। सब आत्मा जो शिक्षा के स्थानों में हैं भिन्न भिन्न जातियों में रहते हैं। क्योंकि उन में से हर एक आत्मा भीतर से स्वर्ग की उस सभा के साथ संबन्ध रखता है जिस में वह थोड़े दिनों के पीछे प्रवेश करेगा। और जब कि स्वर्ग की सभाएं स्वर्ग के रूप के अनुसार प्रस्तुत हुई हैं (न० २०० से २१२ तक देखो) तो वे स्थान जहां शिक्षा दी जाती है उसी रूप के अनुसार प्रस्तुत हुए हैं। जब वे स्वर्ग की ओर से देखी जाती हैं तब वे स्वर्ग के समान एक छोटे से रूप पर दिखाई देती हैं। लम्बाई में वे पूर्व से पच्छिम तक पसरती हैं और चौड़ाई में दक्षिण से उत्तर तक। परंतु देखने में उन की लम्बाई की अपेक्षा उन की चौड़ाई कम है। उन का साधारण रूप इस रीति पर है। आगे को वे रहते हैं जो बच्च-पन में मर गये और जो यौवनकाल तक स्वर्ग में सिखलाए गये हैं। जब यौव-नावस्था का काल उन की उपदेशिकाओं के साथ गुज़र गया तब वे प्रभु से इधर को ले जाकर सिखलाए जाते हैं। इन के पीछे वे स्थान हैं जहां वे शिक्षा पाते हैं जो वयस्थ होकर मर गये और जो जब कि वे जगत में थे तब जीव की भलाई की ओर की सचाई के अनुराग में थे। इन के पीछे मुसलमानों के आत्मा हैं जो जगत में धार्मिक चाल चलते थे और एक ही ईश्वरीय सत्ता को स्वीकार करते थे और प्रभु को बड़ा रसूल मानते थे। जब वे मुहम्मद से इस वास्ते अलग होते हैं कि वह उन की सहायता नहीं कर सकता है तब वे प्रभु के पास जाकर उस की पूजा करके इस के ईश्वरत्व को स्वीकार करके उस समय ख़िष्टीय धर्म के विषय शिक्षा पाते हैं। इन्हीं के पीछे उत्तर की ओर आगे बढ़के उन जेण्टाइल लोगों के शिक्षा करने के स्थान हैं जो जगत में अपने धर्म के अनुसार अच्छी चाल पर चलते थे और इस से उन्हों ने एक प्रकार का अन्तःकरण पाया था कि जो उन को न्याय और खराई के साथ आचरण करने में उकसाता है। न कि वे केवल अपने देश के नियमों के अधीन हैं परंतु वे अधिक दृढ़ता से अपने धर्म के नियमों के अधीन हैं। और वे इस बात पर विश्वास करते हैं कि हम को इन नियमों का पवित्र और अभ्रष्ट रखना चाहिये। ये सब आत्मा जब वे सिखलाए हुए हैं तब प्रभु के स्वीकार करने को अनायास से लाए जाते हैं क्योंकि उन के हृदयों पर यह बात छापी हुई है कि परमेश्वर अदृश्य नहीं है परंतु वह एक मानुषक रूप पर दृश्य है। ये आत्मा अन्य सब आत्माओं की अपेक्षा बहुसंख्यक हैं और उन में से सब से श्रेष्ठ आत्मा आफ्रिका देश से आते हैं।

अपनी उन झुठाइयों के सताने से जिन का उन्हों ने जगत में ध्यान किया था (जिस से अन्तः-करण की चिन्ताएं और पीड़ें निकलती हैं) बिगाड़े जाते हैं। न० ११०६। कोई आत्मीय बन्धु-आई से जो कि सचाई की अज्ञानता और अटकाव सत्यों के जानने की इच्छा के साथ है बिगाड़े जाते हैं। न० ११०६ • २४६४। कोई नींद से कोई एक मध्यस्थ अवस्था से जो जागर्ति और नींद के बीच है बिगाड़े जाते हैं। न० ११०८। वे जिन्हों ने क्रियाओं को गुणवान माना है अपनी समझ में लकड़ी काटने में लगे हुए दिखाई देते हैं। न० ११९०। अन्य लोग अन्य रीति से भिन्न भिन्न प्रकार से बिगाड़े जाते हैं। न० ६९६।

५१५। सब आत्मा एक ही तौर पर नहीं सिखाए जाते और वे स्वर्ग के समसभाओं के दूतों से शिक्षा नहीं पाते हैं। वे आत्मा जो बच्चपन से लेकर स्वर्ग में शिक्षा पाते हैं भीतरी स्वर्ग के दूतों से सिखलाए जाते हैं क्योंकि उन्हों ने धर्म के झूठे तत्त्वों से झुठाइयों को नहीं पी लिया है और अपने आत्मीय जीव को उन स्थूल तत्त्वों के द्वारा जो जगत में संमान और धन से निकलते हैं नहीं दूषित किया है। वे जो वयस्थ होकर मर जाते हैं प्रायः अन्तिम स्वर्ग के दूतों से सिखलाए जाते हैं क्योंकि ये दूत उन के लिये भीतरी स्वर्ग के दूतों की अपेक्षा अधिक योग्यता रखते हैं इस वास्ते कि भीतरी स्वर्ग के दूत भीतरी ज्ञान में हैं और वे आत्मा भीतरी ज्ञान को अब तक नहीं ग्रहण कर सकते। परंतु मुसलमानों के आत्मा उन दूतों से सिखाए जाते हैं जो पहिले पहिल उस धर्म के मुरीद थे परंतु पीछे ख्रिष्टीय आत्मा हो गये। जेण्टाइल आत्मा भी उन दूतों से सिखाए जाते हैं जो किसी समय जेण्टाइल थे।

५१६। यह सब शिक्षा धर्मपुस्तक की ओर के सिद्धान्तों के द्वारा दी जाती है और धर्मपुस्तक के द्वारा सिद्धान्तों के विना नहीं दी जाती। ख्रिष्टीय आत्मा उन सिद्धान्तों के द्वारा सिखाए जाते हैं जो स्वर्ग में ग्रहण किये जाते हैं और ये सिद्धान्त धर्मपुस्तक के भीतरी अर्थ से संपूर्ण रूप से मिल जाते हैं। मुसलमान और जेण्टाइल लोग ऐसे सिद्धान्तों के द्वारा सिखलाए जाते हैं जो उन की ज्ञानशक्ति के योग्य हैं। और ये सिद्धान्त स्वर्ग के सिद्धान्तों से केवल इस प्रसङ्ग के विषय भिन्न हैं कि वे धर्मसंबन्धी जीवन के द्वारा आत्मासंबन्धी जीवन सिखलाते हैं उस धर्म के अच्छे तत्त्वों के अनुसार जिस से उन्हों ने जगत में अपने जीव को अनुरूप किया था।

५१७। स्वर्ग में की शिक्षा पृथिवी पर की शिक्षा से इस बात के विषय भिन्न है कि वहां ज्ञान स्मरण में नहीं रख छोड़ा जाता है पर जीवन में। क्योंकि आत्माओं का स्मरण अपने जीवन में है इस वास्ते कि वे सब कुछ ग्रहण करते हैं और पी लेते हैं जो उन के जीवन के अनुकूल है और जो कुछ उन के जीवन के अनुकूल नहीं है सो वे ग्रहण ही नहीं करते इस के पी लेने की तो क्या सूचना है। क्योंकि आत्मागण अनुराग हैं और ऐसे मानुषक रूप पर हैं जो इन अनुरागों से प्रतिरूपता रखता है। इस कारण वे सचाई के अनुराग के साथ जीवन के प्रयोजनों के निमित्त नित्य सजीव होते हैं। क्योंकि प्रभु ने यह नियम ठहराया है कि हर कोई उन प्रयोजनों को जो उस के निज शील के योग्य हैं प्यार करे और वही प्यार दूत के पद तक पहुंचने की आशा के द्वारा उन्नत होता है। परंतु जब कि स्वर्ग के सब प्रयोजन साधारण प्रयोजन से अर्थात प्रभु के राज की भलाई से (क्योंकि वह राज उन का स्वदेश है) संबन्ध रखते हैं और जब कि जहां तक सब विशेष और विविक्त प्रयोजन उस साधारण प्रयोजन के साथ बहु रूप से और संपूर्णरूप से संबन्ध रखते हैं वहां तक वे श्रेष्ठ हैं तो सब प्रकार के विशेष और

विविक्त प्रयोजन कि जो असंख्य हैं भले और स्वर्गीय हैं। इस कारण प्रत्येक मनुष्य में सचाई का अनुराग प्रयोजन के अनुराग के साथ ऐसे गाढ़ेपन से संयुक्त होता है कि वे एक के सदृश काम करते हैं। और इस लिये सचाई प्रयोजन में गाड़ी जाती है और वे सत्य जो सिखाए जाते हैं प्रयोजन के सत्य हैं। इस रीति से दूतविषयक आत्मा सिखाए जाते हैं और स्वर्ग के लिये प्रस्तुत किये जाते हैं। सचाई का अनुराग जो प्रयोजन से संबन्ध रखता है नाना उपायों के द्वारा धीरे धीरे पैठाला जाता है जो प्रायः जगत में अज्ञात हैं और जिन के प्रधान उपाय प्रयोजनों के प्रतिनिधि हैं। आत्मीय जगत में ये प्रतिनिधि सहस्र रीतियों से संपन्न होते हैं और ऐसे आनन्दों और सुखों को उकसाते हैं जो भीतरी भागों की ओर से (जो मनुष्य के मन के हैं) बाहरी भागों तक (जो उस के शरीर के हैं) आत्मा में घुस जाते हैं और इस लिये वे सारे मनुष्य पर प्रभाव करते हैं। इस कारण वह ऐसी रीति से बदल जाता है कि मानों वह अपने निज प्रयोजन हो जाता है। और इस लिये जब वह अपनी सभा में कि जिस में वह शिक्षा पाने के द्वारा प्रवेश कराया जाता है पैठ जाता है तब वह अपने निज जीव में होता है जब कि वह अपने प्रयोजन को सिद्ध करता है[८२]। इन बातों से यह स्पष्ट रूप से निकला है कि ज्ञान जो बाहरी सत्य है किसी को स्वर्ग में नहीं प्रवेश करता परंतु जीव अर्थात प्रयोजन का जीव जो ज्ञान के द्वारा गाड़ा जाता है आप किसी को स्वर्ग में प्रवेश करता है।

५१८। कोई आत्माओं ने अपने पहिले बोधों के द्वारा जगत में इस बात पर प्रतीति की थी कि "हम स्वर्ग को जावेंगे और अन्य लोगों से पहिले ग्रहण किये जावेंगे क्योंकि हम ज्ञानी लोग हैं और ज्ञान की बहुत ही पूंजी रखते हैं जो धर्मपुस्तक से और कलीसिया के सिद्धान्तों से निकली है"। इस कारण वे अपने को ज्ञानी जानते थे और इस बात पर भी वे विश्वास करते थे कि वे ये ई लोग थे जिन के बारे में डानियेल की पोथी में के १२वें पर्व के ३ वचन में यह बात लिखी है कि "वे आकाश की चमक के समान और तारों के सदृश चमकेंगे"। क्या उन का ज्ञान स्मरण में है या जीव में। इस बात के निर्णय करने के लिये उन की परीक्षा की गई और वे जो सचाई के यथार्थ अनुराग में थे कि जो सचाई का प्रेम प्रयोजनों के निमित्त है और जो शारीरिक और जगतसंबन्धी प्रयोजनों से

---

८२ हर एक भलाई प्रयोजनों की ओर से और प्रयोजनों के अनुसार अपने आनन्द को और अपने गुण को भी निकालती है और इस लिये जैसा प्रयोजन है वैसा ही भलाई है। न० ३०४६ · ४९८४ · ७०३८। दूतविषयक जीव प्रेम और अनुग्रह की भलाइयों का बना हुआ है और इस लिये प्रयोग करने का। न० ४५४। अभिप्रायों को छोड़ जो प्रयोजन भी हैं मनुष्य का कुछ प्रभु से और इस लिये दूतगण से नहीं माना जाता। न० १३१७ · १६४५ · ५९४९। प्रभु का राज प्रयोजनों का एक राज है। न० ४५४ · ६९६ · ११०३ · ३६४५ · ४०५४ · ७०३८। और प्रभु की सेवा करना प्रयोजनों का करना है। न० ७०३८। मनुष्य का गुण उन प्रयोजनों के गुण के अनुसार है जिन को वह पूरा करता है। न० १५७० · ४०५४ · ६५७१ · ६९३५ · ६९३८ · १०२८४।

अलग और इस लिये आत्मिक हे स्वर्ग में शिक्षा पाने के पीछे ग्रहण किये गये। और इस समय वे इस बात को जानने पावें कि ईश्वरीय सचाई वही वस्तु है जो स्वर्ग में चमकती है। क्योंकि ईश्वरीय सचाई स्वर्ग की ज्योति है और वह प्रयोजन के रूप पर है। और यह एक ऐसा समतल है कि जिस से उस ज्योति की किरणें अतिशोभा की विचित्रता के साथ ग्रहण की जाती हैं और फेर दी जाती हैं। परंतु वे आत्मा जिन का ज्ञान केवल स्मरण ही में था और जिन्हों ने सचाइयों के बारे में केवल तर्कवितर्क करने की योग्यता और उन बोधों की (जिन को वे प्रधान तत्त्व जानकर मानते थे) प्रतीति करने की योग्यता पाई थी यद्यपि वे उस व्यर्थ अभिमान के द्वारा जो प्रायः इस प्रकार की बुद्धि के साथ हो लेता है इस बात पर विश्वास करते थे कि "हम औरों से ज्ञानी हैं और इस लिये स्वर्ग को जाकर दूतगण से हमारी सेवा की जावेगी" तो भी वे स्वर्ग की कुछ ज्योति में न थे। इस लिये कि वे अपनी बुद्धिविहीन श्रद्धा से बचाए जावें वे पहिले या अन्तिम स्वर्ग तक उठाए गये ता कि वे किसी दूतविषयक सभा में प्रवेश करें। परंतु द्वार ही पर उन की आंखें स्वर्ग की ज्योति के अन्तःप्रवाह के द्वारा धुन्धली होने लगीं उन की ज्ञानशक्ति घबराहट में पड़ती और अन्त में वे प्राण की न्यूनता के कारण ऐसे हफहफाते थे कि मानों वे मरने ही को थे। स्वर्ग की गरमी ने भी जो स्वर्गीय प्रेम है उन को भीतरी यातना मारी और इस लिये वे फिर उतारे गये और उन को यह शिक्षा दी गई कि दूतगण ज्ञान से नहीं होते परंतु उस जीव से जो ज्ञान के द्वारा पाया जाता है दूत होते हैं। क्योंकि ज्ञान अपने आप के विषय स्वर्ग से बाहर है परंतु वह जीव जो ज्ञान के द्वारा पाया जाता है स्वर्ग में है।

५१९। जब आत्मा उन स्थानों में जिन का बयान हो चुका है शिक्षा पाने के द्वारा स्वर्ग के निमित्त प्रस्तुत किये हुए हैं (जो कि थोड़े दिनों में सिद्ध किया जाता है क्योंकि वे आत्मीय बोधों में हैं जिन में एक ही समय को बहुत ही बातें समाती हैं) तब वे दूतविषयक पोशाक पहिनते हैं जो प्रायः कतान सी सफेद है और वे उस मार्ग को पहुंचाए जाते हैं जो स्वर्ग की ओर ऊपर को पसरता है और उस समय वे उन दूतों को सौंप दिये जाते हैं जो उस मार्ग की रक्षा करते हैं। पीछे वे अन्य दूतों से ग्रहण किये जाते हैं और नाना सभाओं में पहुंचाए जाते हैं जहां उन को बहुत से सुख मिल जाते हैं। और अन्त में हर कोई अपनी सभा तक प्रभु से पहुंचाया जाता है। यह पथदर्शन उन को नाना मार्गों पर ले चलने से सिद्ध होता है और कभी कभी ये मार्ग उलझेड़े से इस ओर उस ओर फिरकर जाते हैं तथा किसी दूत को ज्ञात नहीं हैं केवल प्रभु को ज्ञात हैं। जब वे अपनी सभा में प्रवेश करते हैं तब उन के भीतरी भाग खुले हुए हैं और जब कि वे उन दूतों के भीतरी भागों के समान हैं जो उस सभा में हैं तो इस कारण वे एक साथ आनन्द से स्वीकार किये जाते हैं।

५२०। एक अचरज की बात की सूचना की जा सकती है उन मार्गों के बारे में जिन पर नवशिष्ट दूतगण शिक्षा करने के स्थानों से उठकर स्वर्ग में प्रवेश

करते हैं। आठ स्थान हैं शिक्षा करने के प्रत्येक स्थान से दो मार्ग चलते हैं उन में से एक मार्ग पूर्व की ओर चढ़कर जाता है और दूसरा मार्ग पश्चिम की ओर। वे आत्मा जो प्रभु के स्वर्गीय राज को जाते हैं पूर्व के मार्ग पर चलते हैं और वे जो आत्मीय राज को जाते हैं पश्चिम के मार्ग पर। चारों मार्ग जो प्रभु के स्वर्गीय राज को चलते हैं जलपाई के वृक्षों और नाना प्रकार के फलन्ते वृक्षों से संवारे हुए दिखाई देते हैं परंतु वे जो उस के आत्मीय राज को चलते हैं अंगूर और लारेल के पेड़ों से। यह हाल प्रतिरूपता होने से उत्पन्न होता है। क्योंकि अंगूर और लारेल के पेड़ सचाई के अनुराग से और उस के प्रयोजनों से प्रतिरूपता रखते हैं परंतु जलपाई के वृक्ष और फलन्ते वृक्ष भलाई के अनुराग से और उस के प्रयोजनों से प्रतिरूपता रखते हैं।

कोई मनुष्य बिना होड़ किये दया ही के द्वारा स्वर्ग को नहीं जाता।

५२१। वे लोग जिन्हों ने स्वर्ग के विषय और स्वर्ग के मार्ग के बारे में और मनुष्य में के स्वर्गीय जीव के विषय कुछ शिक्षा नहीं पाई यह जानते हैं कि स्वर्ग में प्रवेश करना उन के लिये जो प्रभु पर श्रद्धा लाते हैं और जिन के लिये प्रभु आप प्रार्थना करता है संत मंत दी हुई दया का दान है। इस कारण वे इस बात पर विश्वास करते हैं कि प्रवेश दया ही से दिया जाता है और यदि प्रभु चाहें तो सारे मनुष्य सब के सब बचाए जा सकें। कोई लोग इस से भी बढ़कर यह गुमान करते हैं कि सब लोग जो नरक में भी हैं बचाए जा सकें। परंतु यह गुमान केवल इस बात का प्रमाण है कि मनुष्य के यथार्थ स्वभाव के बारे में उन की संपूर्ण अज्ञानता है। अर्थात कि जैसा मनुष्य का जीव है वैसा ही वह भी है और जैसा उस का प्रेम है वैसा उस का जीव भी है न केवल भीतरी भागों के विषय जो संकल्पशक्ति और ज्ञानशक्ति के हैं परंतु बाहरी भागों के विषय भी जो शरीर के हैं। और शारीरिक मूर्त्ति केवल एक बाहरी रूप है जिस में भीतरी भाग प्रकाशित होते हैं जैसा कोई कारण अपने कार्य में देख पड़ता है। और इस लिये सारा मनुष्य अपने आप का प्रेम है। (न० ३६३ को देखो)। और इस प्रकार के मनुष्य यह भी नहीं जानते कि शरीर आप से आप नहीं जीता पर अपने आत्मा से। और आत्मीय शरीर उस के मनुष्यरूपी अनुराग के सिवाए और कुछ नहीं है जो कि मृत्यु के पीछे प्रत्यक्ष देख पड़ता है। (न० ४५३ से ४६० तक देखो)। जब तक कि ये सिद्धान्त नहीं जाने जाते तब तक एक मनुष्य इस मत पर विश्वास करने की ओर प्रवर्त्तित किया जा सकता है कि मुक्ति प्रभु की इच्छा की एक बिना होड़ की क्रिया है जो दया और कृपा कहलाती है।

५२२। इस कारण उचित है कि ईश्वरीय दया का बयान किया जावे। ईश्वरीय दया प्रभु की वह निराली दया ही है जो सारी मनुष्यजाति की मुक्ति

चाहती है। वह हर एक मनुष्य के साथ इसी हेतु से नित्य विद्यमान है और उस से कभी नहीं हट जाती है इस लिये प्रत्येक मनुष्य जिस की मुक्ति हो सकती है मुक्त होता है। परंतु कोई केवल उन ईश्वरीय उपायों से जो प्रभु से धर्मपुस्तक में प्रकाशित किये हुए हैं मुक्त नहीं हो सकता। ईश्वरीय उपाय वे उपाय हैं जो ईश्वरीय सचाइयें कहलाते हैं और ईश्वरीय सचाइयें मनुष्य को वह शिक्षा देती हैं कि जिस के द्वारा मनुष्य मुक्ति के मार्ग पर चल सके। उन के द्वारा प्रभु मनुष्य को स्वर्ग तक ले चलता है और उस में स्वर्ग का जीव गाड़ देता है। और प्रभु सभों में वह जीव गाड़ देता है। परंतु यदि कोई बुराई को न छोड़े तो उस में स्वर्ग का जीव नहीं गाड़ा जा सकेगा क्योंकि बुराई इस गाड़ने के विरुद्ध है। इस कारण जहां तक कि मनुष्य बुराई को छोड़ देता है वहां तक प्रभु ईश्वरीय उपायों के द्वारा निराली दया के कारण उस को बच्चपन से जगत में के जीव के अन्त तक और पीछे अनन्तकाल तक भी ले चलता है। यह तो ईश्वरीय दया है और इस से यह स्पष्ट है कि प्रभु की दया निराली दया ही है और वह न तो बिचवाईरहित है न बिना होड़ की ऐसी दया है जो निरी इच्छा ही से सभों की मुक्ति कर सके उन का कैसा भी जीवन क्यों न हो।

५२३। प्रभु परिपाटी के विरुद्ध किसी क्रिया को कभी नहीं करता क्योंकि वह परिपाटी आप है। ईश्वरीय सचाई जो प्रभु से निकलती है परिपाटी को बनाती है और ईश्वरीय सचाइयें परिपाटी के नियम हैं जिन के अनुसार प्रभु मनुष्य को ले चलता है। इस लिये बिचवाईरहित दया से मनुष्य की मुक्ति ईश्वरीय परिपाटी के विरुद्ध है और जो कुछ ईश्वरीय परिपाटी के विरुद्ध है सो ईश्वरीय सत्ता के विरुद्ध भी है। मनुष्य के विषय ईश्वरीय परिपाटी स्वर्ग है परंतु मनुष्य ने परिपाटी के नियमों के विरुद्ध कि जो ईश्वरीय सचाइयें हैं जीने के द्वारा उस परिपाटी को अपने में विपरीत किया है। तो भी प्रभु निराली दया के कारण परिपाटी के नियमों के द्वारा उस को फिराकर ले चलता है। और जितना वह फिर लाया जाता है उतना ही वह अपने में स्वर्ग को ग्रहण करता है और वह जो अपने में स्वर्ग रखता है मृत्यु के पीछे स्वर्ग को जाता है। इस लिये फिर यह स्पष्ट है कि प्रभु की ईश्वरीय दया निराली दया ही है परंतु वह बिचवाईरहित दया नहीं है[८३]।

---

८३ ईश्वरीय सचाई जो प्रभु से निकलती है परिपाटी का सोता है और ईश्वरीय भलाई परिपाटी की आवश्यकता है। न० १७२८ • २२५८ • ८७०० • ८९८८। और इस लिये प्रभु परिपाटी आप है। न० १९१९ • २०११ • ५११० • ५७०३ • १०३३६ • १०६१९। ईश्वरीय सचाइयें परिपाटी के नियम हैं। न० २४४७ • ७९९५। सर्वव्यापी स्वर्ग प्रभु से अपने ईश्वरीय परिपाटी के अनुसार प्रस्तुत किया हुआ है। न० ३०३८ • ७२११ • ९१२८ • ९३३८ • १०१२५ • १०१५१ • १०१५७। और इस लिये स्वर्ग का रूप एक ऐसा रूप है जो ईश्वरीय परिपाटी के अनुसार है। न० ४०४० से ४०४३ तक • ६६०७ • ९८७७। जितना मनुष्य परिपाटी के अनुकूल जीता है और इस लिये भलाई की चाल पर ईश्वरीय सचाइयों के अनुसार चलता है उतना ही वह अपने में स्वर्ग को ग्रहण करता है। न० ४८३९। क्योंकि मनुष्य वही सत्ता है जिस में ईश्वरीय परिपाटी की सब वस्तुएं एकट्ठा हुई हैं और

५२४। यदि मनुष्य बिचवाईरहित दया के द्वारा मुक्ति पावे तो सब लोग और नरक निवासी भी मुक्ति पावेंगे और नरक आप न होगा। क्योंकि प्रभु दया और प्रेम और भलाई आप है। यदि कोई कहे कि प्रभु सभों को बिचवाई के बिना मुक्ति दे सकता है परंतु वह उन को मुक्त नहीं करता तो वह प्रभु के ईश्वरीय स्वभाव के विरुद्ध बोलता है। क्योंकि धर्मपुस्तक की ओर से यह ज्ञात है कि प्रभु सभों की मुक्ति की इच्छा करता है और किसी के नरकगमन की इच्छा नहीं करता।

५२५। उन में से जो ख्रिष्टीय मण्डल से परलोक में जाते हैं बहुत से आत्मा अपने साथ यह विश्वास ले जाते हैं कि वे बिचवाईरहित दया से मुक्ति पावेंगे। क्योंकि वे उस प्रकार की दया की प्रार्थना करते हैं। और परीक्षा करने के द्वारा उन में यह समझ पाई जावेगी कि केवल स्वर्ग में पैठने से उन को वहां रहने की योग्यता और स्वर्गीय आनन्दों के भोगने का सामर्थ्य होगा। ये गुमान स्वर्ग के स्वभाव की और स्वर्गीय आनन्द की उन की अज्ञानता से उत्पन्न होते हैं। और इस लिये उन को यह कहा जाता है कि स्वर्ग में जाने से किसी को प्रभु से निषेध नहीं किया जाता और अगर सब लोग चाहें तो वे वहां जा सकते हैं और जितनी बेर वे पसन्द करते हों उतनी बेर वे वहां रह सकते हैं। वे जो पैठने की इच्छा करते हैं उस समय स्वर्ग में आने पाते हैं। परंतु ज्यों ही वे डेवढ़ी ही पर खड़े हों त्यों ही स्वर्गीय गरमी को सांस लेने से जो कि वह प्रेम है जिस में दूतगण रहते हैं और स्वर्गीय ज्योति के अन्तःप्रवाह से कि जो ईश्वरीय सचाई है उन के हृदय में इतनी पीड़ लगती है कि उन को स्वर्गीय आनन्द के बदले नरकीय यातना आन पड़ती है। और वे अपने को माथे के बल गिरा देते हैं। और इस रीति से वे यथार्थ परीक्षा करने के द्वारा यह शिक्षा पाते हैं कि कोई आत्मा बिचवाईरहित दया के द्वारा स्वर्ग के आनन्द में पैठने नहीं पा सकता।

५२६। कभी कभी मैं ने इस प्रसङ्ग के बारे में दूतों के साथ बात चीत की और उन से यह कहा कि "जो जगतनिवासी लोग बुराइयों में रहते हैं उन में से

वह सृष्टि से लें ईश्वरीय परिपाटी के एक रूप पर है इस वास्ते कि वह उस का ग्राहक है। न० ४२१९ • ४२२० • ४२२३ • ४५२३ • ४५२४ • ५११४ • ५३६८ • ६०१३ • ६०५७ • ६६०५ • ६६२६ • ९७०६ • १०१५६ • १०४७२। मनुष्य भलाई और सचाई में जन्म नहीं लेता परंतु बुराई और झुठाई में। अर्थात वह ईश्वरीय परिपाटी में जन्म नहीं लेता परंतु उस के विरोधी में और इस हेतु से वह निराली अज्ञानता में जन्म लेता है और पीछे उस को प्रभु की ओर से ईश्वरीय सचाइयों के द्वारा फिर जन्म लेना या पुनर्जात होना पड़ता है ता कि वह परिपाटी के अन्दर फिर लाया जावे। न० १०४७ • २३०७ • २३०८ • ३५१८ • ३८१२ • ८४८० • ८५५० • १०२८३ • १०२८४ • १०२८६ • १०७३१। जब प्रभु मनुष्य को फिर बनाता है अर्थात पुनर्जात करता है तब वह उस की सब वस्तुओं को परिपाटी के अनुसार जो कि स्वर्ग का एक रूप है प्रस्तुत करता है। न० ५७०० • ६६९० • ९९३१ • १०३०३। बुराइयें और झुठाइयें परिपाटी के विरुद्ध हैं तौ भी वे जो उन में हैं प्रभु से न तो परिपाटी के अनुसार अनुशासन किये जाते हैं पर परिपाटी की ओर से। न० ४८३९ • ७८७७ • १०७७८। यदि कोई मनुष्य बुराइयों में जीता है तो असम्भव है कि वह केवल दया मात्र से मुक्त होवे क्योंकि यह ईश्वरीय परिपाटी के विरुद्ध है। न० ८७००।

अद्धुतरपच्च जब चोरों के साथ स्वर्ग और अनन्तकालिक जीवन के विषय बोल रहे हैं तब वे स्वर्ग में पैठने के विषय इस बोध को छोड़ और कोई बोध नहीं प्रगट करते पर यह कहते हैं कि वह प्रवेश करना निराली दया से होता है। और यह विश्वास विशेष करके उन में प्रबल है जो श्रद्धा लाने को मुक्ति का अकेला उपाय मानते हैं। क्योंकि वे न तो उस जीवन पर जो धर्म के मुख्य तत्त्वों के अनुकूल है न प्रेम की उन क्रियाओं पर जिन का वह जीवन बना है न इस लिये अन्य कोई उपायों पर जिन के द्वारा प्रभु स्वर्ग को मनुष्य में गाड़ता है और उस को स्वर्गीय आनन्दों का ग्राहक कर डालता है इन सब बातों पर कुछ भी ध्यान नहीं धरते। और जब कि वे इस रीति से स्वर्ग के वास्ते प्रस्तुत करने के सब यथार्थ उपायों को कुड़ा देते हैं तो वे यह बात एक सर्वसाधारणसिद्धान्त कर जो उन के तत्त्वों से अवश्य बहकर निकलता है प्रगट करते हैं कि मनुष्य स्वर्ग को केवल दया ही के द्वारा जाता है और पितारूपी परमेश्वर बेटे की प्रार्थना करने से दया की ओर झुकाया जाता है"। दूतों ने जवाब दिया कि "हम जानते हैं कि वैसा सिद्धान्त अवश्य इस गुमान से निकलना पड़ता है कि मनुष्य केवल श्रद्धा लाने से मुक्ति पाता है। और जब कि यह सिद्धान्त जो अन्य सिद्धान्तों में से मुख्य सिद्धान्त है सच्चा सिद्धान्त नहीं है तो वह स्वर्ग की ज्योति को निसार देता है। और वह उस अज्ञानता का मूल है जो आज कल प्रभु के और स्वर्ग के और मृत्यु के पीछे के जीवन के और स्वर्गीय आनन्द के और प्रेम और अनुग्रह के सारांश के बारे में और साधारण रूप से भलाई के और उस के सचाई से संयुक्त होने के बारे में और इस लिये मनुष्य के जीव के और उस के उत्पन्न होने के और उस के गुण के बारे में कलीसिया में प्रबल है। इस लिये इस कारण से यह नहीं ज्ञात है कि मनुष्य के जीव का गुण ध्यान से नहीं होता है पर संकल्प से और उस की प्रयुक्त गति से। और यह भी नहीं ज्ञात है कि ध्यान केवल यहां तक सहायता देता है जहां तक वह संकल्प से संबन्ध रखता है और इस लिये श्रद्धा भी केवल जहां तक कि वह प्रेम में स्थापित हो जीव को कुछ भी गुण नहा देती"। दूतगण इस ध्यान का खेद करते हैं कि वे जो केवल श्रद्धा ही से मुक्ति पाने पर विश्वास करते हैं यह नहीं जानते कि श्रद्धा अकेली नहीं हो सकती क्योंकि श्रद्धा विना अपने मूल के कि जो प्रेम है केवल विद्या ही है। सच तो है कि कोई लोग इस विश्वास से एक प्रकार की प्रतीति जोड़ते हैं जिस का श्रद्धा का भेष है (न० ४८२ को देखो)। परंतु वह प्रतीति मनुष्य के जीव के भीतर नहीं है पर उस से बाहर है। क्योंकि अगर वह उस के प्रेम से संयुक्त न हो तो वह मनुष्य से अलग रहती है। वे यह भी कहते हैं कि "वे जो इस विश्वास पर प्रत्यय रखते हैं कि मनुष्य में श्रद्धा ही मुक्ति का आवश्यक उपाय है अनिवारणीय रूप से बिचवाईरहित दया पर विश्वास करते हैं। क्योंकि वे प्राकृतिक ज्योति के साथ और यथार्थ परीक्षा करने से यह मालूम करते हैं कि मनुष्य का जीव श्रद्धा ही का नहीं बना है जब कि वे जो बुरी चाल पर चलते हैं भले लोगों की रीति पर ध्यान कर सकते हैं

श्रौर अपने आप में वही प्रतीति उकसा सकते हैं"। यही बात तो यह विश्वास उत्पन्न करता है कि बुरे लोग श्रौर भले लोग दोनों मुक्ति पा सकते हैं इस होड़ पर कि वे प्रभु के बीचबिचाव को श्रौर उस दया को जो उस बीचबिचाव से पैदा होती है मृत्यु के समय प्रत्यय के साथ अङ्गीकार करते हैं। दूतों ने यह कह दिया कि "हम ने कभी किसी मनुष्य को जो बुरी चाल पर चला था बिचवाई-रहित दया के द्वारा स्वर्ग में आता हुआ नहीं देखा चाहे जितना वह जगत में उस विश्वास या प्रत्यय की श्रोर से जो उत्तम अर्थ के अनुकूल श्रद्धा माना जाता है कैसी कैसी बातें क्यों न कहे"। जब किसी ने उन से यह कहा कि "क्या इब्राहीम इसहाक याकूब दाऊद श्रौर रसूल लोग सब के सब स्वर्ग में बिचवाई-रहित दया के द्वारा ग्रहण किये गये थे कि नहीं" तब उन्हों ने जवाब दिया कि "उन में से एक भी उस रीति से नहीं ग्रहण किया गया"। श्रौर उन्हों ने यह भी कहा कि "उन में से हर एक अपने चाल चलन के अनुसार जगत में ग्रहण किया गया। श्रौर वे अपने रहने का स्थान जानते हैं श्रौर श्रौरों की अपेक्षा उन का अधिक संमान नहीं किया जाता है श्रौर उन की धर्मपुस्तक में बड़ी कीर्त्तिकर सूचना है क्योंकि भीतरी अर्थ के अनुसार वे प्रभु को प्रकाश करते हैं श्रौर इब्राहीम इसहाक श्रौर याकूब से तात्पर्य प्रभु है उस के ईश्वरत्व श्रौर उस के ईश्वरीय मनुष्यत्व के विषय। श्रौर दाऊद से तात्पर्य प्रभु है उस के ईश्वरीय राजत्व के विषय। श्रौर रसूल लोगों से तात्पर्य प्रभु है ईश्वरीय सचाइयों के विषय। श्रौर जब मनुष्य धर्मपुस्तक को सुनाता हो तब दूतगण को उन सब लोगों का कुछ भी बोध नहीं है क्योंकि उन के नाम स्वर्ग में आकर नहीं पैठते हैं। परंतु उन के स्थान दूतों को प्रभु का कुछ बोध ऊपर लिखे हुए रूपों पर है। श्रौर इस कारण उस धर्मपुस्तक में जो स्वर्ग में है (न० २५९ को देखो) कहीं उन लोगों की कुछ भी सूचना नहीं है। क्योंकि वह धर्मपुस्तक इस जगत में की धर्मपुस्तक का भीतरी अर्थ है[८४]।

---

८४ धर्मपुस्तक के भीतरी अर्थ के अनुसार इब्राहीम इसहाक श्रौर याकूब से तात्पर्य प्रभु है आवश्यक ईश्वरत्व श्रौर ईश्वरीय मनुष्यत्व के विषय। न० १८९३ · ४६१५ · ६०९८ · ६१८५ · ६२७६ · ६८०४ · ६८४७। इब्राहीम स्वर्ग में नहीं जाना जाता। न० १८३४ · १८७६ · ३२२९। दाऊद से तात्पर्य प्रभु है उस के ईश्वरीय राजत्व के विषय। न० १८८८ · ९९५४। बारह रसूल कलीसिया की सब वस्तुश्रों के विषय अर्थात श्रद्धा श्रौर प्रेम की सब वस्तुश्रों के विषय प्रभु के प्रतिनिधि हैं। न० २१२९ · ३३५४ · ३४८८ · ३८५८ · ६३९७। पतरस रसूल श्रद्धा के विषय याकूब रसूल अनुग्रह के विषय श्रौर यूहन्ना रसूल अनुग्रह की क्रियाश्रों के विषय प्रभु के प्रतिनिधि थे। न० ३७५० · १००८७। बारहों रसूल बारह गद्दियों पर बैठे हुए इस्राईल के बारह क़ौम का विचार करते हैं इस वाक्य से यह तात्पर्य है कि प्रभु श्रद्धा श्रौर प्रेम की सचाइयों श्रौर भलाइयों के अनुसार विचार करने को उपस्थित है। न० २१२९ · ६३९७। धर्मपुस्तक में के मनुष्यों के श्रौर स्थानों के नाम स्वर्ग में नहीं जाते परंतु वे बदलकर वस्तुएं श्रौर अवस्थाएं हो जाती हैं श्रौर नाम स्वर्ग में आप नहीं बोले भी जा सकते हैं। न० १८७६ · ५२२५ · ६५१६ · १०२१६ · १०२८२ · १०४३३। क्योंकि दूतगण मनुष्यों को देखकर विषयविविक्त रीति से ध्यान करते हैं। न० ८३४३ · ८९८५ · ९००७।

५२७। विस्तीर्ण परीक्षा मुझ को इस बात का प्रमाण करने का सामर्थ्य देता है कि स्वर्ग के जीव का गाड़ना उन में जो जगत में उस जीव की विरुद्ध चाल पर चलते थे असम्भव है। कोई कोई इस बात पर विश्वास करते थे कि जब मृत्यु के पीछे वे दूतों की ओर से ईश्वरीय सचाइयों को सुनें तब वे उन को अनायास से ग्रहण करेंगे। और उस समय वे उन सचाइयों पर विश्वास करेंगे और अपने चाल चलन को सुधारेंगे और स्वर्ग में प्रवेश करेंगे। और इस कारण उन में से बहुतों की परीक्षा की गई इस वास्ते कि वे इस बात पर प्रतीति करें कि मृत्यु के पीछे पश्चात्ताप असम्भव है। कोई कोई जिन सत्यों को वे सुनते थे उन को समझते थे और ऐसा मालूम पड़ता था कि वे उन को ग्रहण करते थे। परंतु ज्यों ही वे अपने प्रेम के जीव की ओर फिरते थे त्यों ही वे उन सत्यों को निसार देते थे और उन के विरुद्ध तर्कवितर्क भी करते थे। कोई उन सत्यों के सुनने की निराली अनिच्छता से उन को साथ ही निसार देते थे। परंतु कोई यह चाहते थे कि प्रेम का वह जीव जो वे जगत में पाए थे उन से दूर किया जावे और उन के स्थान दूतविषयक जीव या स्वर्ग का जीव उन में बैठाला जावे। हाल के इस बदल के लिये आज्ञा दी गई। परंतु जब उन के प्रेम का जीव हर लिया गया तब वे ऐसे पड़े रहते थे कि मानों वे मर गये और संपूर्ण रूप से बुद्धिहीन थे। इन परीक्षाओं से और अन्य परीक्षाओं से भी निरे भले लोगों ने यह शिक्षा पाई कि असम्भव है कि मृत्यु के पीछे किसी का जीव बदला जावे। और बुरा जीव बदलकर भला जीव कभी न हो जावे न नरकनिवासी का जीव बदलकर दूतविषयक जीव हो जावे। क्योंकि हर एक आत्मा सिर से पांव तक अपने प्रेम के गुण का है और इस लिये अपने जीव के गुण का। और इस कारण उस के जीव का अपने विरुद्ध जीव हो जाना उस का सर्वनाश करना है। दूतगण कहते हैं कि नरकीय आत्मा बदलकर स्वर्गीय दूत हो जाने की अपेक्षा चमगीदड़ का पिंडकी या उल्लू का हुमा हो जाना आसान है। मनुष्य मृत्यु के पीछे उसी गुण का बना रहता है जिस गुण का जगत में उस का शरीर था। यह बात न० ४७० से ४८४ तक के परिच्छेदों में देखी जा सकती है। और इस से स्पष्ट है कि कोई बिचवाईरहित दया के द्वारा स्वर्ग में ग्रहण नहीं किया जा सकता।

उस चाल पर चलना जो स्वर्ग की ओर पहुंचाती है ऐसा दुष्कर नहीं है जैसा बहुत से लोग समझते हैं।

५२८। कोई लोग जानते हैं कि उस चाल पर चलना जो स्वर्ग की ओर पहुंचाती है जो कि स्वर्गसंबन्धी आचरण कहलाता है कठिन बात है क्योंकि उन को यह कहा गया कि जगत को छोड़ना और अपने आप से उन अभिलाषों को जो शरीर की लम्पटताएं कहलाती हैं दूर करना और आत्मीय रीति पर जीना

उन को पड़ेगा। और वे यह भी जानते हैं कि ऐसी चाल पर चलने के कारण सांसारिक वस्तुओं को जो कि प्रायः धन की और संमान की बनी हैं निसार देना और परमेश्वर की और मुक्ति की और अनन्तकालिक जीव की समाधि में मग्न होना और परमेश्वर से प्रार्थना करने में और धर्मपुस्तक आदि पवित्र पोथियों को पढ़ने में समय बितीत कर देना उन को पड़ेगा। ऐसा हाल वे जगत का छोड़ना और आत्मा के वास्ते जीना पुकारते हैं न कि मांस के वास्ते जीना। परंतु यथार्थ में सत्य तो और ही है और यह मुझ को बहुत सी परीक्षा करने के द्वारा और दूतों से बात चीत करने के द्वारा प्रकाशित हुआ। क्योंकि इस से मैं ने यह शिक्षा पाई कि वे जो उस रीति से जगत को छोड़ते हैं और आत्मा के वास्ते जीते हैं जिस रीति का बयान अभी हो चुका है ऐसे शोकजनक आचरण को प्राप्त करते हैं जो स्वर्गीय आनन्द का ग्राहक नहीं है। और हम ने पहिले से यह बतलाया है कि हर किसी का आचरण मृत्यु के पीछे उस के साथ बना रहता है। इस हेतु से कि मनुष्य स्वर्ग का जीवनदान पावे अवश्य है कि वह जगत में रहे और उस के व्यवहारों और कर्मों में लगा रहे। क्योंकि इस रीति से धर्मसंबन्धी और नीतिसंबन्धी आचरण के द्वारा वह आत्मीय जीव पाता है। और इन उपायों के विना न तो आत्मीय जीव मनुष्य में बनाया जा सकता है न मनुष्य का आत्मा स्वर्ग के लिये प्रस्तुत किया जा सकता है। क्योंकि भीतरी आचरण करना और उसी समय बाहरी आचरण भी करना ऐसा है कि जैसा कोई किसी घर में रहे जिस की कुछ नेव नहीं है और जो इस कारण क्रम क्रम से भूमि में डुब जाता है या चीर-कर टूट जाता है या डगमगाके गिर पड़ता है।

५२९। यदि मनुष्य के आचरण की परीक्षा चैतन्य अन्तर्ज्ञान से की जावे तो वह तिगुना प्रत्यक्ष देख पड़ता है और उस में आत्मासंबन्धी और धर्मसंबन्धी और नीतिसंबन्धी आचरण है और तीनों आचरण एक दूसरे से संपूर्ण रूप से विविक्त हैं। क्योंकि कई एक मनुष्य नीतिसंबन्धी आचरण करते हैं परंतु धर्मसंबन्धी और आत्मासंबन्धी आचरण नहीं करते। कई लोग धर्मसंबन्धी आचरण करते हैं परंतु आत्मासंबन्धी आचरण नहीं करते। कोई कोई नीतिसंबन्धी आचरण धर्मसंबन्धी आचरण और आत्मासंबन्धी आचरण संयुक्त करके करते हैं। ये लोग स्वर्गसंबन्धी आचरण करते हैं परंतु वे लोग स्वर्गसंबन्धी आचरण से अलग करके जगतसंबन्धी आचरण ही करते हैं। और इस से यह पहिले पहिल स्पष्ट है कि आत्मासंबन्धी आचरण प्रकृतिसंबन्धी आचरण से जो कि जगतसंबन्धी आचरण है पृथक नहीं है। परंतु आत्मासंबन्धी आचरण प्रकृतिसंबन्धी आचरण से ऐसी रीति से संयुक्त है जिस रीति से जीव शरीर से संयुक्त है। और अगर यह उस से अलग हो तो वह ऐसा है कि जैसा एक घर नेव के विना है। जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं। क्योंकि धर्मसंबन्धी आचरण और नीतिसंबन्धी आचरण आत्मासंबन्धी आचरण की फुर्ती है क्योंकि आत्मासंबन्धी आचरण अच्छी इच्छा करने का बना है और धर्मसंबन्धी आचरण और नीतिसंबन्धी आचरण से दूर की

जावे तो ध्यान और बोली को छोड़ कुछ भी न रहेगा। क्योंकि इच्छा हट जाती है इस वास्ते कि उस का कोई अवलम्बन करने का स्थान नहीं है। तो भी इच्छा मनुष्य का आवश्यक आत्मासंबन्धी तत्त्व है।

५३०। इस प्रकार के विचारों और परीक्षाओं से यह देखा जा सकता है कि उस चाल पर चलना जो स्वर्ग की ओर पहुंचाती है ऐसा कठिन काम नहीं है जैसा कि बहुत से लोग समझते हैं। जब कि हर कोई बच्चपन से लेकर नीतिसंबन्धी और धर्मसंबन्धी आचरण करने की शिक्षा पाता है और जगत में रहने से उस आचरण के साथ सुपरिचित होता है तो कौन मनुष्य उस प्रकार का आचरण नहीं कर सकता। हां हर कोई क्या बुरा क्या भला यथार्थ में उसी प्रकार का आचरण करता है। क्योंकि कौन मनुष्य अपने को खराई और न्याय करने में प्रसिद्ध होना नहीं चाहता। प्रायः सब लोग बाहर से खरा और न्यायशील हैं इस लिये वे हृदय में खरा और न्यायशील मालूम देते हैं और यथार्थ खराई और न्याय के साथ काम करते हुए दिखाई पड़ते हैं। आत्मीय मनुष्य को चाहिये कि वह उस प्रकार का आचरण करे और वह जितने अनायास से प्राकृतिक मनुष्य आचरण करता है उतने ही अनायास से वह भी आचरण कर सकता है। परंतु उन मनुष्यों में यह भिन्नता है कि आत्मीय मनुष्य एक ईश्वरीय सत्ता पर विश्वास करता है। और न केवल इस हेतु से कि नीतिसंबन्धी और धर्मसंबन्धी नियम खरे और न्यायी आचरण करने की आज्ञा देते हैं परंतु इस कारण से भी कि वह आचरण ईश्वरीय नियमों के अनुकूल है। क्योंकि हर एक क्रिया में आत्मीय मनुष्य के ध्यान ईश्वरीय नियमों से संबन्ध रखते हैं और इस लिये वे स्वर्ग के दूतों से संसर्ग करते हैं। और जहां तक वह संसर्ग स्थापित होता है वहां तक वह दूतों से संयुक्त होता है और उस का भीतरी मनुष्य जो कि आत्मीय मनुष्य है खुल जाता है। जब वह इस अवस्था में है तब मनुष्य प्रभु से ग्रहण किया जाता है और पहुंचाया जाता है यद्यपि उस को उस का कुछ बोध नहीं है और उस समय उसके धर्मसंबन्धी और नीतिसंबन्धी आचरण की खराई और न्याय किसी आत्मासंबन्धी मूल से उत्पन्न होते हैं। परंतु आत्मासंबन्धी मूल की ओर से खरा और न्यायी आचरण करना हृदय में की यथार्थ खराई और न्याय की ओर से आचरण करना है। आत्मीय मनुष्य का न्याय और खराई बाहर से प्राकृतिक मनुष्य के न्याय और खराई के समान और नरकीय आत्माओं के न्याय और खराई के समान भी दिखाई देती है। परंतु भीतर से वे इन से संपूर्ण रूप से असदृश हैं। क्योंकि बुरे लोग केवल अपने आप के वास्ते और जगत के वास्ते न्याय और खराई के साथ आचरण करते हैं। और इस लिये अगर नियमों से और उस के दण्डों से या सुकीर्त्ति संमान और लाभ की हानि से और मृत्यु से वे भय नहीं खावें तो वे अत्यन्त छद्म और अन्याय के साथ आचरण करें। क्योंकि वे न तो परमेश्वर से भय खाते हैं न ईश्वरीय नियमों का मान करते हैं और इस लिये किसी भीतरी बन्धन से वे नहीं रोके जाते। अगर बाहरी प्रतिरोध दूर किये जावें तो वे लोग अत्यन्त अत्याकांक्षा

से श्रोर आनन्द के साथ श्रोरों को धोखा देवें श्रोर लूटें श्रोर डाका डालकर लेवें। उन को देखने से जो परलोक में बुरे लोगों के समान हैं जहां बाहरी वस्तुएं दूर की हुई हैं श्रोर भीतरी भाग कि जिन में मनुष्य अनन्तकल तक रहते हैं खुले हुए हैं यह विशेष करके स्पष्ट है कि बुरे लोग भीतर से उस प्रकार के स्वभाव के हैं (न० ४९९ से ५११ तक देखो)। क्योंकि उस समय नियमों से भय के श्रोर सुकीर्त्ति श्रोर संमान श्रोर लोभ की हानि के श्रोर मृत्यु से भय के न होने से (जो कि वे प्रतिरोध हैं जिन का बयान अभी हो चुका है) वे पागलपन के साथ आचरण करते हैं श्रोर खराई श्रोर न्याय पर हंसते हैं। परंतु जब उन से जो ईश्वरीय नियमों के प्रभाव के द्वारा खराई श्रोर न्याय के साथ आचरण करते थे बाहरी वस्तुएं दूर की जाती हैं श्रोर वे अपने भीतरी भागों में रहते हैं तब वे ज्ञान के साथ आचरण करते हैं। क्योंकि वे स्वर्ग के दूतगण के साथ जिन से वे ज्ञान पाते हैं संयुक्त हुए हैं। इस से यह स्पष्ट है कि नीतिसंबन्धी श्रोर धर्मसंबन्धी आचरण के व्यवहारों में कोई आत्मीय मनुष्य ठीक ठीक एक प्राकृतिक मनुष्य के समान काम कर सकता है इस होड़ पर कि वह अपने भीतरी मनुष्य के विषय (जो कि उस की इच्छा श्रोर ध्यान है) ईश्वरत्व के साथ संयुक्त हो। (न० ३५८ · ३५९ · ३६० को देखो)।

५३१। आत्मासंबन्धी श्रोर नीतिसंबन्धी श्रोर धर्मसंबन्धी आचरण के नियम डीकालोग के दस विधानों में प्रकाशित हैं। पहिले चार विधानों में आत्मासंबन्धी आचरण के नियम हैं दूसरे चार विधानों में नीतिसंबन्धी आचरण के नियम हैं श्रोर अन्तिम दो विधानों में धर्मसंबन्धी आचरण के नियम हैं। निराला प्राकृतिक मनुष्य आत्मीय मनुष्य की रीति पर बाहर से इन विधानों के अनुकूल आचरण करता है। क्योंकि वह भी ईश्वरीय सत्ता की पूजा करता है कलीसिया को जाता है पन्दों को सुनता है भक्ति का रूप धारण करता है न तो हत्याई करता है न छिनाला करता है न लूट लेता है। वह न तो झूठ गवाही देता है न अपने पड़ोसी को धोखा देकर उसका धन लूट लेता है। तौ भी वह केवल अपने आप के वास्ते श्रोर जगत के वास्ते इन पापों से अलग रहता है ता कि वह भले मनुष्य के सदृश मालूम देवे। श्रोर इस कारण वह भीतर से उस रूप के संपूर्ण रीति से विरुद्ध है जिस रूप पर वह बाहर से दिखाई देता है। क्योंकि वह अपने हृदय में ईश्वरीय सत्ता को अस्वीकार करता है श्रोर पूजा करने में वह दम्भी है श्रोर जब वह तन्हा होकर अपने ही मन में ध्यान करता है तब वह कलीसिया की पवित्र वस्तुओं पर हंसता है श्रोर उन पर वह यह विश्वास करता है कि वे केवल अचैतन्य सर्वसाधारण लोगों के लिये बन्धनों के काम में उपयोगी हैं। इस प्रकार का मनुष्य स्वर्ग से संपूर्ण रूप से अलग है। श्रोर जब कि वह आत्मासंबन्धी मनुष्य नहीं है तो वह न तो धर्मसंबन्धी मनुष्य है न नीतिसंबन्धी मनुष्य। क्योंकि यद्यपि वह हत्याई नहीं करता तो भी वह हर किसी को जो उस का विरोधी है घृणा करता है श्रोर उस वैरप्रतिकार से जलता है जो वह द्वेष मचाता है। इस लिये यदि नीतिसंबन्धी नियम श्रोर बाहरी बन्धन जो कि भय हैं उस को

न रोकें तो वह हत्याई करेगा। और जब कि वह नित्य पलटा लेने की लालसा करता है तो वह नित्य हत्याई करता है। फिर यद्यपि वह छिनाला नहीं करता तो भी इस हेतु से कि वह इस बात पर विश्वास करता है कि छिनाला करना स्वीकरणीय है और यदि वह भयातीत समय पावे तो वह छिनाला भी करे इस लिये वह नित्य छिनाल है। कदाचित वह न लूटे तो भी जब कि वह औरों के धन का लोभ करता है और छल और कपट को यथार्थ में विधिविरुद्ध नहीं समझता तो वह अपने मन में नित्य चोरी का काम करता है। और धर्मसंबन्धी आचरण के तत्त्वों के विषय वही हाल है जो यह शिक्षा देते हैं कि हम को झूठ गवाही देना न चाहिये न औरों के धन का लोभ करें। हर एक मनुष्य का जो ईश्वरीय सत्ता का होना नटता है और जो धर्म से निकले हुए कुछ भी अन्तःकरण को नहीं रखता वही स्वभाव है। जैसा कि जब परलोक में उस प्रकार के मनुष्यों से बाहरी वस्तुएं अलग की हुई हैं और वे अपने भीतरी भागों में प्रवेश करने पाते हैं तब वह स्वभाव प्रत्यक्ष मालूम पड़ता है। क्योंकि उस समय वे नरक के साथ मिलकर काम करते हैं इस वास्ते कि वे स्वर्ग से अलग हैं और इस लिये वे नरकनिवासियों से संसर्ग करते हैं। परंतु उन का जो अपने हृदय में ईश्वरीय सत्ता को स्वीकार करते थे और चाल चलन में ईश्वरीय नियमों को मानते थे और डीकालोग के दस विधानों के और शेष विधानों के आज्ञाकारी होते थे और ही हाल है। जब ये लोग अपने बाहरी भाग अलग होके अपने भीतरी भागों में प्रवेश करने पाते हैं तब वे उस समय की अपेक्षा कि जिस में वे जगत में थे अधिक ज्ञानी हो जाते हैं। क्योंकि उन के लिये यह बदल ऐसा है कि जैसा कोई छाया से ज्योति में जावे या अज्ञानता से ज्ञानता में या दुख से सुख में इस वास्ते कि वे ईश्वरत्व में हैं और इस लिये स्वर्ग में। ये बातें इस वास्ते लिखी जाती हैं कि जो आवश्यक भिन्नता इन दो प्रकार के मनुष्यों में है सो समझाई जा सके। परंतु वे मनुष्य बाहर से एक दूसरे के सदृश है।

५३२। हर कोई यह जान सके कि ध्यान बहकर अपने विषयों पर इच्छा के अनुसार जा लगते हैं। क्योंकि ध्यान मनुष्य की भीतरी दृष्टि है जो बाहरी दृष्टि के सदृश इच्छा के द्वारा फिराई जाती है और लगाई जाती है। इस कारण यदि ध्यान अर्थात भीतरी दृष्टि जगत की ओर फिरी हुई हो और जगत में लगी हुई हो तो वह सांसारिक हो जावेगी। यदि वह आत्म की ओर और आत्मसंमान की ओर फिरी हुई हो तो वह शारीरिक हो जावेगी। और यदि वह स्वर्ग की ओर फिरी हुई हो तो वह स्वर्ग सी हो जावेगी। इस से यह भी निकलता है कि यदि ध्यान स्वर्ग की ओर फिरा हुआ हो तो वह उठाया जावेगा। यदि वह आत्म की ओर फिरा हुआ हो तो वह स्वर्ग की ओर से नीचे खींचा जावेगा। और शारीरिक वस्तुओं में मग्न होगा। और यदि वह जगत की ओर फिरा हुआ हो तो वह स्वर्ग की ओर से झुका हुआ भी होगा और उन वस्तुओं में जो आंखों के आगे दृष्टि आती हैं व्यापा जावेगा। अभिप्राय प्रेम से उत्पन्न होता है और

इस लिये मनुष्य का प्रेम मनुष्य की भीतरी दृष्टि या ध्यान को उस के विषयों पर लगाता है। आत्मप्रेम उस को आत्म की ओर और स्वार्थी विषयों की ओर फिराता है। जगतप्रेम उस को सांसारिक विषयों की ओर फिराता है और स्वर्गप्रेम उस को स्वर्गीय विषयों की ओर फिराता है। इस लिये अगर मनुष्य का प्रेम जाना जावे तो उस के भीतरी भागों की अवस्था भी जानी जा सकेगी। क्योंकि स्वर्गप्रेम उन भीतरी भागों को जो मन के हैं उठाता है और उन को स्वर्ग की ओर ऊपर को खोलता है। परंतु जगतप्रेम और आत्मप्रेम अपने भीतरी भागों को ऊपर की ओर बन्द कर देते हैं और नीचे की ओर खोल देते हैं। इस से यह अनुमान निकाला जा सकता है कि अगर मन के उत्तम तत्त्व ऊपर को बन्द किये हुए हों तो मनुष्य उस समय से लेकर स्वर्ग की और कलीसिया की वस्तुओं को नहीं देख सकता और वे घन अन्धेरे के समान दिखाई देती हैं। परंतु जो कुछ घन अन्धेरे में है सो या तो अस्वीकार किया जाता है या समझा नहीं जाता और इस लिये वे लोग जो सब वस्तुओं की अपेक्षा अपने को और जगत को प्यार करते हैं अपने हृदय में ईश्वरीय सत्यों को नटते हैं इस वास्ते कि उन के मन के उत्तम तत्त्व बन्द हुए हैं और यद्यपि वे उस प्रकार की वस्तुओं के बारे में स्मरण के द्वारा बात चीत करते हैं तो भी वे उन को नहीं समझते इस लिये कि जिस रीति से वे सांसारिक और शारीरिक वस्तुओं को मानते हैं उस रीति से वे उन वस्तुओं को भी मानते हैं। सच तो है कि वे जिस वस्तु को छोड़ कि जो शारीरिक इन्द्रियों में होकर प्रवेश करता है किसी वस्तु पर ध्यान नहीं धर सकते और किसी और वस्तु पर प्रसन्न नहीं करते। परंतु इन वस्तुओं में से बहुत सी वस्तुएं मलीन निर्लज्ज धर्मद्वेषी और पापी हैं। और वे दूर नहीं की जा सकतीं क्योंकि उन लोगों के विषय स्वर्ग की ओर से मन में कुछ भी अन्तःप्रवाह नहीं बहता परंतु वह ऊपर को बन्द हुआ है जैसा कि हम अभी कह चुके हैं। मनुष्य का अभिप्राय जो उस की भीतरी दृष्टि या ध्यान ठहराता है उस की इच्छा है। क्योंकि जिस किसी की इच्छा कोई मनुष्य करता है उस का अभिप्राय भी वह करता है और जिस का अभिप्राय वह करता है उस का ध्यान भी वह करता है। इस लिये अगर उस का अभिप्राय स्वर्ग की ओर फिरा हुआ है उस का ध्यान भी वहां पर ठहरता है और उस के ध्यान के साथ उस का सारा मन भी जो इस रीति से स्वर्ग में है वहां पर ठहरता है। इस कारण वह जगत की वस्तुओं पर जो उस के नीचे हैं उस रीति से दृष्टि कर सकता है जिस रीति से कोई मनुष्य घर की छत पर खड़ा होकर नीचे दृष्टि करता है। और यह वही कारण है कि जब मन के भीतरी भाग खुले हुए हैं तब वह अपनी बुराइयें और झुठाइयें देख सकता है क्योंकि ये आत्मासंबन्धी मन के नीचे हैं। परंतु जब मन के भीतरी भाग खुले हुए नहीं हैं तब वह अपनी निज बुराइयें और झुठाइयें नहीं देख सकता है क्योंकि उस समय वह उन के मध्य में है न कि उन के ऊपर है। इस लिये ज्ञान का आदिकारण और पागलपन का आदिकारण प्रत्यक्ष मालूम है और मृत्यु के पीछे जो गुण

मनुष्य का होगा उस के समझने में कुछ कठिनता नहीं पड़ती जब कि वह अपने भीतरी भागों के अनुसार इच्छा करने ध्यान करने काम करने और बोलने पाता है। ये बातें यह अनुमान भी जताती हैं कि मनुष्य जो देखने में एकसां हैं भीतर से बहुत ही भिन्न हो सकें।

५३३। यह भी स्पष्ट है कि इस चाल पर चलना जो स्वर्ग की ओर पहुंचाती है ऐसा कठिन काम नहीं है जैसा कि बहुत से लोग समझते हैं। क्योंकि जब कोई बात जिस की असरलता और अन्याय मनुष्य जानता है और जिस की ओर उस की इच्छा माइल है उस के आगे आ जाती है तब इस से अधिक कोई आवश्यकता की बात नहीं है कि वह मनुष्य यह ध्यान करे कि यह बुरा काम करने के योग्य नहीं है क्योंकि वह ईश्वरीय नियमों के विरुद्ध है। अगर वह मनुष्य इस रीति से ध्यान किया करे और उस का इस व्यवहार का बान पड़ जावे तो वह क्रम करके स्वर्ग से संयुक्त होगा। परंतु जितना वह स्वर्ग से संयुक्त होता जाता है उतना ही उस के मन के उत्तमतर तत्त्व खुलते जाते हैं और जितना वे तत्त्व खुलते जाते हैं उतना ही वह मनुष्य असरलता और अन्याय देख सकता है और जितना वह इन को देखता है उतना ही वे दूर करने के योग्य हैं। क्योंकि जब तक कि कोई बुराई देखी न जावे तब तक उस का अलग करना असम्भव है। यह एक ऐसी अवस्था है कि जिस में मनुष्य किसी स्वतन्त्र तत्त्व से प्रवेश कर सके। (क्योंकि उस रीति से कि जिस का बयान हम अभी कर चुके हैं कौन मनुष्य स्वतन्त्रता के एक तत्त्व से ध्यान करने के अयोग्य है)। परंतु जब वह इस का आरम्भ करता है तब प्रभु हर प्रकार की भलाई के उत्पन्न करने के वास्ते उस के अन्दर प्रभाव करता है और वह उस मनुष्य को न केवल बुराइयों के देखने का सामर्थ्य देता है पर उन बुराइयों को उस मनुष्य की इच्छा से निकाल देने का सामर्थ्य भी देता है और अन्त में वह मनुष्य उन बुराइयों की घृणा करता है। यह प्रभु की इन बातों का अर्थ है कि "मेरा जूआ अनुकूल और मेरा बोझ हलका है"। (मत्ती की इञ्जील पर्व ११ वचन ३०)। परंतु यह बात कहनी चाहिये कि जितना मनुष्य मनभावन से बुरा करता है उतना ही उस प्रकार का ध्यान करना और बुराइयों का विरोध करना कठिन होता जाता है क्योंकि उतना ही वह अपने को बुराइयों से तब तक संयोग करता है जब तक कि वह उन को नहीं देख सकता और उन को प्यार भी करने लगता है और प्यार के आनन्द से उन की क्षमा करता है और सब प्रकार के मिथ्याहेतुओं से उन की न्यायता और भलाई का प्रमाण करता है। यह उन की अवस्था है जो वयस्थ होकर बिना रुकाव बुरा करते हैं और उसी समय हृदय से ईश्वरीय वस्तुओं को निकाल देते हैं।

५३४। एक बेर मैं ने उन दो मार्गों का जो स्वर्ग और नरक तक चलते हैं एक प्रतिरूप देखा। पहिले पहिल एक चौड़ा मार्ग जो बाईं ओर या उत्तर की ओर चलता था दिखाई दिया और उस पर बहुत से आत्मा चलते थे। परंतु

कुछ दूरी पर एक बहुत बड़ा पत्थर था और वहां पर उस चौड़े मार्ग का अन्त था। और उस पत्थर से दो मार्ग एक बाईं ओर दूसरा उस के विपरीत दहिनी ओर पसर जाते थे। बाईं ओर का मार्ग सकड़ा और सकेत था जो पच्छिम में होकर दक्खिन तक चलकर अन्त में स्वर्ग की ज्योति तक पहुंचता था। परंतु दहिनी ओर का मार्ग चौड़ा और विस्तीर्ण था और तिर्छा करके नीचे को नरक की ओर जाता था। पहिले पहिल सब आत्मा एक ही मार्ग पर तब तक चलते थे जब तक कि वे उस बड़े पत्थर तक न पहुंचें जो उन दो मार्गों के सिरे पर थे परंतु वहां पर वे विलगाए जाते थे। भले आत्मा बाईं हाथ को फिरकर उस सीधे मार्ग पर चलते थे जो स्वर्ग को जाता था परंतु बुरे आत्मा पत्थर को नहीं देखते थे इस लिये उस में लग गिरके घाव खाते थे और जब वे उठके खड़े थे तब वे दहिनी ओर के चौड़े मार्ग पर जो नरक की ओर झुका हुआ था दौड़के चले जाते थे। इन सब वस्तुओं के अर्थ का बयान पीछे मेरे लिये इस रीति पर किया गया कि चौड़ा मार्ग जिस पर भले आत्मा और बुरे आत्मा दोनों साथ होकर चलते थे और मित्र बनके आपस में एक दूसरे के साथ बात चीत करते थे उन की अवस्था का प्रकाशन था जो बाहर से खराई और न्याय के साथ एक ही तौर पर आचरण करते हैं और जो आंख से विशेषित नहीं किये जा कसते। जो पत्थर दो मार्गों के सिरे पर या कोने पर था और जिस पर बुरे आत्मा ठोकर खाके पीछे उस मार्ग पर जो नरक को जाता है दौड़के चले जाते थे वह ईश्वरीय सचाई का प्रकाशन था (जो कि वे जो नरक की ओर देखते हैं अस्वीकार करते हैं) और परमार्थ के अनुसार प्रभु का ईश्वरीय मनुष्यत्व का प्रकाशन था। वे आत्मा जो उस मार्ग पर पहुंचाए जाते थे जो स्वर्ग को जाता था ईश्वरीय सचाई और प्रभु का ईश्वरत्व भी स्वीकार करते थे। इन प्रकाशनों से अधिक भी स्पष्ट हुआ कि बुरे लोग और भले लोग दोनों बाहर से एक ही तौर पर काल बिताते हैं अर्थात एकही चाल पर चलते हैं और जैसे अनायास से एक तो चलता है वैसे ही अनायास से दूसरा भी चलता है। परंतु वे जो हृदय से ईश्वरीय सत्ता को स्वीकार करते हैं और विशेष करके वे कलीसिया के मण्डल में जो प्रभु के ईश्वरत्व को अङ्गीकार करते हैं स्वर्ग को लाए जाते हैं तौ भी वे जो इन सत्यों को नहीं स्वीकार करते हैं नरक को पहुंचाए जाते हैं। मनुष्य के ध्यान जो उस के अभिप्राय और इच्छा से निकलते हैं परलोक में ऐसे मार्गों के प्रतिरूपों के द्वारा (जो अभिप्राय से ध्यान के विकारों के अनुसार विचित्रता के साथ दिखाई देते हैं) प्रकाशित हैं और इसी रीति पर हर कोई चलता है। इस लिये आत्माओं के शील और उन के ध्यानों के गुण उन मार्गों के द्वारा कि जिन में वे चलते हैं जाने जाते हैं और इस से प्रभु के इन वचनों का अर्थ स्पष्ट है अर्थात "सकड़े द्वार में होके पैठो क्योंकि चौड़ा है वह द्वार और खुला है वह मार्ग जो सर्वनाश को पहुंचाता है। और उसी में होके बहुत पैठनेवाले होते हैं। क्योंकि वह द्वार सकेत और वह मार्ग सकड़ा जो जीवन को पहुंचाता है और थोड़े हैं जो उसे पाते हैं"। (मत्ती

पर्व ७ वचन १३ · १४)। जो मार्ग जीवन को पहुंचाता है वह सकड़ा है न कि इस वास्ते कि वह दुर्गम है पर इस लिये कि वे थोड़े हैं जो उस को पाते हैं जैसा कि अभी कहा गया है। पत्थर के द्वारा जो मैं ने उस कोने पर जहां चौड़ा और साधारण मार्ग का अन्त था पड़ा हुआ देखा था और जिस से दो मार्ग विपरीत दिशाओं की ओर जाते थे प्रभु के इन वचनों के अर्थ का अनुमान स्पष्ट रूप से किया जा सकता है अर्थात "यह क्या है जो लिखा है कि वह पत्थर जिस को राजों ने तुच्छ किया वही कोने का सिरा हुआ। हर एक जो उस पत्थर पर गिरे चूर होगा"। (लूका पर्व २० वचन १७ · १८)। पत्थर से तात्पर्य ईश्वरीय सचाई है और इस्राईल का पत्थर या चट्टान इस वाक्य से तात्पर्य प्रभु है उस के ईश्वरीय मनुष्यत्व के विषय। राजलोग कलीसिया के मेम्बर हैं। कोने का सिरा वहां है जहां दो मार्ग अलग हो जाते हैं। और गिरने और चूर होने से तात्पर्य नटना और नष्ट होना है[८५]।

५३५। मैं परलोक में कई एक आत्माओं से बात चीत करने पाया जिन्हों ने जगत के व्यवहार को छोड़ा था ता कि वे अपने आप को धर्म और पवित्रता पर लगावें। और मैं ने औरों से बात चीत की जिन्हों ने अपने को नाना प्रकार की पीड़ा दी थी क्योंकि वे यह गुमान करते थे कि वह जगत को छोड़ने की और मांस की लालसा को स्ववश करने की रीति है। परंतु उन में से अधिकांश दूतों से संसर्ग नहीं कर सकते क्योंकि उन्हों ने अपनी तपस्या करने के द्वारा दुखी जीव को पाया और अपने को अनुग्रह के जीव से जो केवल जगत में रहने से पाया जा सकता है दूर किया। परंतु दूतगण का जीवन आनन्द का जीवन है जो परमसुख से उत्पन्न होता है और भलाई के काम (जो अनुग्रह के काम हैं) करने का है। तिस पर भी वे जो जगत संबन्धी व्यवहारों से अलग रहकर अपना काल काटते थे अपने सुगुणों पर आसक्त होते हैं और इस लिये स्वर्ग में प्रवेश होने की चेष्टा नित्य करते हैं और स्वर्गीय आनन्द पर प्रतिफल जानकर ध्यान करते हैं और उस के स्वभाव के बारे में संपूर्ण रूप से अज्ञान हैं। जब अन्त में वे दूतों के मध्य में पहुंचकर उन के आनन्द को देखते हैं जो गुणहीन है और कर्तव के प्रत्यक्ष करने का बना है और उस परमसुख का बना है जो भला करने से उत्पन्न होता है तब वे ऐसे चकित होते हैं कि मानों वे अविश्वास्य वस्तुओं को देखते थे। और जब कि वे उस भांति का आनन्द ग्रहण नहीं कर सकते तो वे चले जाकर अपने सरीखे आत्माओं के साथ जो जगत में उन की सी चाल पर चलते थे संसर्ग करते हैं। जो लोग जगत में बाहर से पवित्र होकर पूजा के मन्दिरों में बार बार उद्योग से जाकर प्रत्यक्ष परमेश्वरप्रार्थना और तपस्या किया करते हैं और जो उसी समय नित्य इस

---

८५ पत्थर का अर्थ सचाई है। न० ११४ · ६४३ · १२९८ · ३७२० · ६४२६ · ८६०९ · १०३७६। इस हेतु से नियम पत्थर की पटियाओं पर लिखे हुए थे। न० १०३७६। इस्राईल के पत्थर या चट्टान का अर्थ प्रभु है उस की ईश्वरीय सचाई और ईश्वरीय मनुष्यत्व के विषय। न० ६४२६।

बोध को आश्रय देते हैं कि वे इस रीति से औरों की अपेक्षा श्रेष्ठ समझाए और संमान किये जावेंगे और मृत्यु के पीछे साधु लोग बनकर माने जावेंगे वे लोग स्वर्ग को नहीं जाते इस हेतु से कि वे अपने वास्ते इन सब कामों को करते थे। क्योंकि वे ईश्वरीय सचाइयों को उस आत्मप्रेम से कि जिस में वे उन सचाइयों को डुबाते हैं अपवित्र करते हैं। और उन में से कई एक लोग ऐसे पागल हैं कि वे अपने को देवता समझते हैं। ये लोग अपना भाग नरक में पाते हैं उन आत्माओं के मध्य जो उन के सदृश हैं। अन्य लोग छली और कपटी हैं और कपटियों के नरकों में गिरा दिये जाते हैं। ये वे हैं जो छली चतुराई और धूर्त्तता के साथ पुण्यशीलत्व से और पवित्रता से अपना काल बिताते थे ता कि सर्वसाधारण लोग इस बात पर विश्वास करें कि उन में ईश्वरीय पवित्रता थी। रोमन केथोलिक साधु लोगों में से बहुतों का यही शील था। मैं उन में से कई एक से बात चीत करने पाया और उस समय उन के जीवन का गुण जगत में और मरने के पीछे दोनों का बयान प्रत्यक्ष किया गया। ये बातें इस लिये लिखी हुई हैं कि यह मालूम होवे कि जो जीवन स्वर्ग को पहुंचाता है जगत से अलग रहने का जीवन नहीं है परंतु जगत में काम करने का जीवन है। और पुण्यशील जीवन विना अनुग्रह के जो केवल जगत में पाया जाता है स्वर्ग को नहीं पहुंचाता। परंतु अनुग्रह का जीवन स्वर्ग को पहुंचाता है और यह जीवन एक भीतरी तत्त्व से अर्थात एक ईश्वरीय मूल से प्रत्येक स्थान और व्यवहार और काम में खराई और न्याय के साथ काम करने का बना है। और ऐसा मूल तब उस जीवन में है जब मनुष्य खराई और न्याय के साथ इस लिये काम करता है कि इस प्रकार का काम करना ईश्वरीय नियम के अनुकूल है। इस प्रकार का जीवन दुष्कर नहीं है परंतु पुण्यता ही का जीवन विना अनुग्रह के दुष्कर है यद्यपि वह वहां तक स्वर्ग से पहुंचाता है जहां तक लोग बहुत करके स्वर्ग की ओर उस के पहुंचाने पर विश्वास करते हैं[८९]।

---

८९ पुण्यता का जीवन अनुग्रह के जीवन के विना कुछ काम का नहीं है परंतु जब दोनों एकट्ठे हुए हैं तब वे हर प्रकार के काम के हैं। न० ८२५२ · ८२५३। हमारे पड़ोसी पर अनुग्रह करना प्रत्येक काम में और प्रत्येक व्यवहार में भलाई और न्याय और धर्म करने का बना है। न० ८१२० · ८१२१ · ८१२२। और वह अपने आप को सब से सूक्ष्म वस्तुओं तक जो मनुष्य ध्यान करता है या इच्छा करता है या काम में लाता है फैलाता है। न० ८१२४। अनुग्रह का जीवन ऐसा जीवन है जो प्रभु के नियमों के अनुकूल है। न० ३१४९। प्रभु के नियमों के अनुकूल जीना प्रभु से प्रेम रखना है। न० १०१४३ · १०१५३ · १०३१० · १०५७८ · १०६४८। यथार्थ अनुग्रह प्रतिफल योग्य नहीं है क्योंकि वह भीतरी अनुराग से और उस आनन्द से जो अनुराग से उत्पन्न होता है निकलता है। न० (२३४०) · २३७१ · (२४००) · ३८८७ · ६३८८ से ६३९३ तक। मनुष्य मृत्यु के पीछे उस गुण का बना रहता है जो गुण जगत में उस के अनुग्रह का था। न० ८२५६। और प्रभु की ओर से स्वर्गीय परमसुख अनुग्रह के जीवन में बहकर आता है। न० २३६३। कोई मनुष्य केवल ध्यान धरने से स्वर्ग में पैठने नहीं पाता परंतु ध्यान और इच्छा के संयोग से भला करने के द्वारा वह पैठने पाता है। न० २४०१ · ३४५९। इस कारण अगर भला करना भली इच्छा करने और भले ध्यान करने से संयुक्त न हो तो न तो मुक्ति होगी न भीतरी मनुष्य का बाहरी मनुष्य से कुछ संयोग होगा। न० ३९८७।

नरक के बारे में।

नरकों में प्रभु के राज करने के बारे में।

५३६। इस पोथी के पहिले भाग में और विशेष करके न० २ से ६ तक के परिच्छेदों में यह बतलाया गया कि प्रभु स्वर्ग का परमेश्वर है और इस लिये स्वर्ग में सब राज्य प्रभु का है। परंतु जब कि स्वर्ग का संबन्ध नरक से और नरक का संबन्ध स्वर्ग से दो विरोधियों के संबन्ध के समान है जो परस्पर एक दूसरे के विरुद्ध काम करते हैं और जिन का प्रभाव और प्रतिप्रभाव सब प्रकार की वस्तुओं में समतोलत्व उत्पन्न करते हैं तो इस लिये कि सब वस्तुओं में समतोलत्व रहे अवश्य है कि वह जो स्वर्गों का राज करता है नरकों का राज भी करे। क्योंकि अगर एक ही राजा नरक के चढ़ाव को न रोके और वहां के उच्चण्ड पागलपन न थाम्भे तो समतोलत्व नष्ट होगा और उस के साथ सर्वजगत जाता रहेगा।

५३७। यहां समतोलत्व के बारे में कुछ कुछ बयान करना उपयोगी हो सके। यह भी भली भांति जाना जाता है कि जब दो वस्तुएं आपस में परस्पर एक दूसरे पर प्रभाव करती हैं और एक का प्रतिप्रभाव और प्रतिरोध दूसरे के प्रभाव और प्रवृत्ति के तुल्य है तब उन में से न तो एक की कुछ शक्ति है न दूसरे की। क्योंकि एक गति दूसरी गति को थाम्भती है। और इस वास्ते कोई तीसरा बल उन पर स्वतन्त्रता के साथ ऐसे अनायास से प्रभाव कर सकता है जैसा कि उस पर कुछ भी विरोध नहीं लगता। स्वर्ग और नरक के बीच इसी प्रकार का समतोलत्व है। यह दो शारीरिक योद्धाओं का समतोलत्व नहीं है जिन का तुल्य बल है परंतु यह आत्मासंबन्धी समतोलत्व है जिस में झुठाई सचाई के विरुद्ध और बुराई भलाई के विरुद्ध है। नरक से बुराई की निकली हुई झुठाई का एक नित्य भाफ उत्पन्न होता है और स्वर्ग से भलाई की निकली हुई सचाई का एक नित्य भाफ उत्पन्न होता है और इस से आत्मासंबन्धी समतोलत्व होता है जिस में मनुष्य ध्यान और इच्छा के स्वतन्त्रता को भोगता है। क्योंकि जिस किसी का ध्यान और इच्छा कोई मनुष्य करता है सो या तो बुराई से और उस की निकली हुई झुठाई से या भलाई से और उस की निकली हुई सचाई से संबन्ध रखता है। और इस हेतु से जब वह मनुष्य समतोलत्व की अवस्था में है तब वह या तो नरक की ओर से बुराई को और उस झुठाई को जो बुराई से निकलती है या स्वर्ग की ओर से भलाई को और उस सचाई को जो भलाई से निकलती है स्वतन्त्रता के साथ ग्रहण कर सकता है। हर एक मनुष्य समतोलत्व की इस अवस्था में प्रभु से रक्खा जाता है क्योंकि प्रभु स्वर्ग और नरक दोनों का राज करता है। परंतु कुछ

आगे बढ़के एक बाब में इस का बयान किया जावेगा कि किस कारण मनुष्य समतोलत्व की इस अवस्था में स्वतन्त्रता के साथ रखा जाता है और क्यों बुराई और झुठाई मनुष्य से दूर नहीं की जाती और क्यों प्रभु से मनुष्य में भलाई और सचाई नहीं गाड़ी जाती है ।

५३८ । मैं बार बार बुराई की ओर की झुठाई के उस मण्डल को जो भाफ के आकार में नरक से उड़ निकलता है देखने पाया। वह एक ऐसे नित्य प्रयत्न के समान है जो सब प्रकार की भलाई और सचाई के विनाश करने की चेष्टा करता है और जिस के साथ क्रोध और एक प्रकार का उग्र पागलपन इस वास्ते मिला हुआ है कि वह भलाई और सचाई का विनाश नहीं कर सकता। यह प्रयत्न प्रभु के ईश्वरत्व के विरुद्ध मुख्य करके उद्योग करता है और वह इस ईश्वरत्व का विनाश और सत्यानाश इस हेतु से करना चाहता है कि सब प्रकार की भलाई और सचाई उस से निकलती है। परंतु भलाई की ओर से सचाई का एक मण्डल स्वर्ग से धारा बांधके निकलता है और नरकों की उग्रता को रोकता है। और इस से समतोलत्व उत्पन्न होता है। यद्यपि यह दिखाई दिया कि स्वर्ग का यह मण्डल स्वर्ग के दूतगण से निकलता था तो भी यह मालूम किया गया कि वह प्रभु ही से उत्पन्न होता था। वह प्रभु ही से होता है न दूतगण से इस वास्ते कि हर एक दूत स्वर्ग में इस बात को स्वीकार करता है कि मुझ से भलाई और सचाई का कुछ भी नहीं होता परंतु सब का सब प्रभु ही से होता है ।

५३९ । आत्मीय जगत में सारी प्रबलता उस सचाई की है जो भलाई से निकलती है क्योंकि स्वर्ग में आवश्यक ईश्वरत्व ईश्वरीय भलाई और ईश्वरीय सचाई को होता है और सारी प्रबलता ईश्वरत्व की है। परंतु उस झुठाई की जो बुराई से निकलती है कुछ भी प्रबलता नहीं है। क्योंकि सारी प्रबलता उस सचाई की है जो भलाई से निकलती है और उस झुठाई में जो बुराई से होती है सचाई का कुछ भी नहीं है जो भलाई से होता है। इस कारण सारी प्रबलता स्वर्ग में है और नरक में कुछ भी प्रबलता नहीं है। क्योंकि स्वर्ग में सब कोई उस सचाई में है जो भलाई से होती है और नरक में सब कोई उस झुठाई में है जो बुराई से होती है। इस हेतु से कि कोई तब तक स्वर्ग में पैठने नहीं पाता जब तक कि वह उस सचाई में है जो भलाई से निकलती है और कोई तब तक नरक में नहीं गिरा दिया जाता जब तक वह उस झुठाई में है जो बुराई से निकलती है। उन परिच्छेदों में जो मनुष्य की मृत्यु के पीछे की पहिली दूसरी और तीसरी अवस्थाओं के बारे में हैं (न० ४९१ से ५२० तक) यह देखा जा सकता है कि वही बात सच है। और उस बाब में जो स्वर्ग में के दूतगण की शक्ति के बारे में है (न० २२८ से २३३ तक) यह भी देखा जा सकता है कि सारी प्रबलता उस सचाई की है जो भलाई से निकलती है ।

५४० । स्वर्ग और नरक का समतोलत्व तो ऐसा ही है। आत्माओं के जगत के सब निवासी उस समतोलत्व में रहते हैं क्योंकि आत्माओं का जगत

स्वर्ग और नरक के बीचोंबीच है। और प्राकृतिक जगत में सब मनुष्य वैसे समतोलत्व में उसी हेतु से रखे जाते हैं क्योंकि प्रभु उन पर आत्माओं के जगत में के आत्माओं के द्वारा राज करता है। परंतु इस विचबाईसहित राज्य का कुछ अधिक बयान आगे बढ़के होगा। यदि प्रभु स्वर्ग और नरक दोनों पर राज न करता और उन की विरुद्धता परिमित न करता तो वह समतोलत्व जिस का बयान अभी हो चुका है कभी न होता। नहीं तो बुराइयों से निकलनेवाली झुठाइयें अधिक हो जावें और भोले भले आत्माओं पर जो स्वर्ग की सीमाओं पर रहते हैं प्रभाव करें और ये आत्मा दूतगण की अपेक्षा अनायास से बहकाए जाते और इस से समतोलत्व और इस के साथ मनुष्य की स्वतन्त्रता भी नष्ट होती।

५४१। नरक स्वर्ग की रीति पर सभा सभा का होता है और उन सभाओं की संख्याएं ठीक ठीक एकसां हैं क्योंकि स्वर्ग में की हर एक सभा की नरक में एक विपरीत सभा है। यह परिपाटी समतोलत्व के निमित्त होती है। और नरक में सभा सभा बुराइयों के अनुकूल और उन झुठाइयों के अनुकूल जिन से बुराइयें निकलती हैं पृथक पृथक होती है। इस वास्ते कि स्वर्ग में सभा सभा भलाइयों के अनुकूल और उन सचाइयों के अनुकूल जिन से भलाइयें निकलती हैं पृथक पृथक होती है। यह स्पष्ट है कि हर एक भलाई की एक विपरीत बुराई है और हर एक सचाई की एक विपरीत झुठाई है। क्योंकि इन में से एक भी अपने विरोधी से संबन्ध रखने के विना कुछ भी वस्तु नहीं है इस वास्ते कि प्रत्येक विरोधी अपने अपने विरोधी के गुण को और उस विरोधी की प्रचण्डता के अंश को भी प्रकाश करता है। और यह सब प्रकार के बोध और इन्द्रियज्ञान का मूल है। इस कारण प्रभु ने यह बन्दोबस्त किया कि स्वर्ग की प्रत्येक सभा अपना विरोधी नरक में की किसी सभा में पावेगा और दोनों के बीच समतोलत्व होगा।

५४२। जब कि नरक में इतनी सभाएं हैं जितनी स्वर्ग में हैं तो इतने नरक होते हैं जितनी सभाएं स्वर्ग में हैं। क्योंकि जब कि स्वर्ग की हर एक सभा एक स्वर्ग किसी छोटे से रूप पर है (न० ५१ से ५८ तक देखो) तो नरक की हर एक सभा एक नरक किसी छोटे से रूप पर है। और जब कि सर्वसाधारण रूप से तीन स्वर्ग होते हैं तो तीन नरक भी होते हैं। सब से नीचे नरक सब से भीतरी या तीसरे स्वर्ग के विरुद्ध है मझला नरक मझले या दूसरे स्वर्ग के विरुद्ध है और सब से ऊंचा नरक सब से नीचे या पहिले स्वर्ग के विरुद्ध है।

५४३। उस रीति का बयान कि जिस करके प्रभु नरकों पर राज करता है अब संक्षेप में कर सकता है। नरकों का राज्य साधारण रूप से स्वर्ग की ओर की ईश्वरीय भलाई और ईश्वरीय सचाई के सामान्य प्रवाह के द्वारा किया जाता है इस करके वह सामान्य प्रयत्न कि जो नरकों से निकलता है हटाया और रोका जाता है। परंतु उन का राज्य प्रत्येक स्वर्ग के और स्वर्ग के प्रत्येक सभा के एक विशेष प्रवाह से भी किया जाता है। और किसी विशेष रीति से उन का राज्य दूतगण से किया जाता

है जो उन की परीक्षा करने के लिये और उन पागलपनों और हुल्लड़ों के दबाने के लिये जो कि नरक में बाहुल्य रूप से पाए जाते हैं नियुक्त किये जाते हैं। कभी कभी दूतगण अपनी विद्यमानता ही से उन पागलपनों और हुल्लड़ों के दबाने के लिये उधर को भेजे भी जाते हैं परंतु बहुत करके नरक के सब निवासियों का राज्य भयों से किया जाता है। किसी किसी का राज्य ऐसे भयों से किया जाता है जो जब वे आत्मा जगत में थे तब उन में गाड़े गये और जो अभी तक उन पर प्रभाव करते हैं। परंतु जब कि उन भयों का पूरा बल नहीं है और इस हेतु से भी कि उन का बल क्रम क्रम से घटता जाता है उन भयों से ताड़न का भय भी जोड़ा जाता है। और यह भय उन को बुरा करने से निवारने के लिये मुख्य उपाय है। नरक के ताड़न नाना प्रकार के हैं और बुराइयों के स्वभाव के अनुकूल जिन का निवारना पड़ता है वे या तो करुणामय हैं या उग्रतामय। बहुत करके अत्यन्त हिंसाशील आत्मा जो औरों की अपेक्षा अति कपटी और छली हैं और जो ताड़न करने के द्वारा और यातना के भय से औरों को दास करके अपने बस कर ले सकते हैं अपने साथियों के दमन करने में नियुक्त किये जाते हैं। परंतु ये अधिकारी कोई परिमित अवधियों के पार जाने का साहस नहीं कर सकते। यह बात फिर कहने के योग्य है कि ताड़न का भय नरकनिवासियों की उग्रता और प्रचण्डता के निवारने का अकेला उपाय है। और कोई उपाय नहीं है।

५४४। इस समय तक जगत में यह मत प्रचलित हो रहा है कि कोई डेविल या राक्षस है जो नरकों पर राज करता है और वह ज्योति के एक दूत के रूप पर उत्पन्न होकर अपने साथियों के संग इस वास्ते नरक में गिरा दिया गया कि उस ने परमेश्वर के विरुद्ध राजद्रोह किया था। और यह मत इस कारण प्रचलित हुआ कि धर्मपुस्तक के कई वचनों में डेविल की और शैतान की और लूसिफ़र की भी सूचना है और इन वचनों का तात्पर्य शब्द ही के अनुकूल समझा जाता है। परंतु डेविल और शैतान का तात्पर्य नरक है नाना प्रकार के रूपों पर। डेविल से तात्पर्य वह नरक है जो पीछे की ओर पर है और जिस के निवासी सब से बुरे आत्मा हैं जो बुरे जिन्न कहाते हैं और शैतान से तात्पर्य वह नरक है जो आगे की ओर पर है और जिस के निवासी बहुत बुरे नहीं हैं और उन का नाम बुरे आत्मा रखा। और लूसिफ़र से तात्पर्य वे आत्मा हैं जो बेबिल या बेबिलन नगर के हैं और जो यह अभिमान करते हैं कि हम स्वर्ग में भी राज करते हैं। कोई अकेला डेविल नहीं है जिस के अधीन नरक होते हैं। यह बात इस हेतु से भी स्पष्ट है कि सब आत्मा जो नरक में हैं और सब आत्मा जो स्वर्ग में भी हैं मनुष्यजाति के हैं। (न० ३११ से ३१७ तक देखो)। और यह बात इस कारण से भी स्पष्ट है कि सृष्टि के आरम्भ से लेकर इन दिनों तक उन आत्माओं की संख्या कोटि कोटि है और इन में से हर एक आत्मा एक डेविल है जिस का ऐसा गुण है जैसा कि उस ने जगत में ईश्वरत्व के विरुद्ध रहने से पाया। परंतु इस प्रसङ्ग के बारे में न० ३११ · ३१२ को देखो।

प्रभु किसी आत्मा को नरक में नहीं गिरा देता परंतु बुरे आत्मा अपने को गिरा देते हैं।

५४५। कोई लोगों ने इस बात पर हठ करके प्रतीति की है कि परमेश्वर अपने चिहरे को मनुष्य से फिराता है और मनुष्य को दूर करके नरक में गिरा देता है। और वह मनुष्य पर उस की बुराइयों के कारण कोप करता है। अन्य लोग का मत इस से भी आगे बढ़ता है और वे कहते हैं कि परमेश्वर मनुष्य को ताड़न करता है और उस को दुख देता है। वे इस मत का दृढ़ प्रमाण धर्मपुस्तक के शब्दों के अर्थ से निकालते हैं जिन में कई एक बातें हैं जो इस मत का सहारा करती हुई मालूम देती हैं। क्योंकि उन लोगों को विदित नहीं है कि धर्मपुस्तक का आत्मीय अर्थ जो शब्दों के अर्थ का विवरण करता है और ही है। और इस लिये कलीसिया का यथार्थ तत्त्व जो धर्मपुस्तक के आत्मीय अर्थ से होता है और ही मत सिखाता है। यथार्थ तत्त्व यह प्रचार करता है कि प्रभु मनुष्य से अपना चिहरा कभी नहीं फिराता उस को कभी नहीं दूर करता किसी को कभी नहीं गिरा देता और किसी पर कभी नहीं कोप करता[८७]। और जिस किसी का मन प्रकाशमान अवस्था में है जब वह धर्मपुस्तक को पढ़ता है तब वह वही बात मालूम करता है। क्योंकि परमेश्वर भलाई ही है प्रेम ही है और कृपा ही है। परंतु भलाई किसी को आप बुरा नहीं कर सकता और प्रेम और कृपा मनुष्य को नहीं निकाल दे सकता। क्योंकि ऐसी गति इन गुणों के सारांश ही के विरुद्ध है और इस लिये वह ईश्वरीय स्वभाव के विरुद्ध भी है। इस कारण जब ऐसे मनुष्य धर्मपुस्तक को पढ़ते हैं तब वे स्पष्ट रूप से मालूम करते हैं कि परमेश्वर अपने को कभी मनुष्य से नहीं फिराता। और जब कि वह अपने को कभी मनुष्य से नहीं फिराता तो वह उस के साथ भलाई से और कृपा से और प्रेम से आचरण करता है। अर्थात वह मनुष्य की भलाई की इच्छा करता है वह उस से प्रेम रखता है और वह उस पर कृपा करता है। ये सिद्धान्त उन पढ़नेवालों को यह प्रत्यय देते हैं कि धर्मपुस्तक के शब्दों में ऐसा आत्मीय अर्थ होगा जिस के अनुकूल ऊपर लिखित बातों का विवरण करना सम्भव है। और उन का तात्पर्य शब्दों के अर्थ के अनुसार मनुष्य के पहिले प्रबोध को और उस के सामान्यतम ध्यानों को उचित है।

---

८७ धर्मपुस्तक में कोप और क्रोध प्रभु से संबन्ध रखते हैं परंतु वे मनुष्य के हैं और केवल नम्रता के कारण जब मनुष्य अपराधी ठहराया जाता है और दण्ड खाता है तब दिखाऊ रीति से कोप और क्रोध प्रभु से संबन्ध रखते हैं। नं० ५७९८ · ६९९७ · ८२८४ · ८४८३ · ८८७५ · ९३०६ · १०४३१। बुराई भी प्रभु से संबन्ध रखती है तो भी भलाई को छोड़ कुछ भी प्रभु से नहीं निकलता। नं० २४४७ · ६०७१ · ६९९२ · ६९९७ · ७५३३ · ७६३२ · ७८७७ · ७९२६ · ८२२७ · ८२२८ · ८६३२ · ९३०६। यह बात धर्मपुस्तक में किस कारण इस रीति पर है। नं० ६०७१ · ६९९२ · ६९९७ · ७६४३ · ७६३२ · ७६७९ · ७७१० ७९२६ · ८२८२ · ९००६ · ९१२८। प्रभु निराली कृपा और दयालुता है। नं० ६९९७ · ८८७५।

५४६। वे लोग जो प्रकाश की अवस्था में हैं इस से अतिरिक्त ये बातें भी देखते हैं कि भलाई और बुराई आपस में एक दूसरी के विरुद्ध है और वे यहां तक विरुद्ध हैं जहां तक स्वर्ग नरक से दूर है और सब भलाई स्वर्ग से होती है और सब बुराई नरक से। और जब कि प्रभु के ऐश्वरत्व से स्वर्ग बना है (न० ७ से १२ तक) तो मनुष्य में प्रभु से भलाई को छोड़ और नरक से बुराई को छोड़ कुछ भी नहीं बहता। और इस कारण प्रभु मनुष्य को बुराई से नित्य खींच लेता है और उस को भलाई की ओर ले चलता है परंतु नरक उस को बुराई में नित्य पहुंचाता है। यदि मनुष्य उन दोनों के बीच न होवे तो उस को न तो ध्यान करने की शक्ति हो न इच्छा करने की शक्ति। स्वतन्त्रता और वरण की तो क्या सूचना है। क्योंकि ये भलाई और बुराई की समतोलता से सब के सब बहते हैं। इस कारण यदि प्रभु अपने को मनुष्य से फिरावे और उस को बुराई ही के साथ में छोड़ दे तो मनुष्य उस समय से लेकर मनुष्य न रहे। और इस से यह स्पष्ट है कि प्रभु भलाई के साथ हर एक मनुष्य में (चाहे वह मनुष्य भला हो चाहे बुरा) बहकर जाता है। परंतु तो भी बुराई और भलाई के बीच कुछ भिन्नता है। क्योंकि बुरे मनुष्य में प्रभु का अन्तःप्रवाह उस मनुष्य को बुराई से ले चलने की और भले मनुष्य में भलाई की ओर ले चलने की चेष्टा नित्य करता रहता है। परंतु इस भिन्नता का कारण मनुष्य आप है क्योंकि वह ग्राहक है।

५४७। इस कारण यह स्पष्ट है कि मनुष्य नरक की ओर से बुरा करता है और प्रभु की ओर से भला करता है। परंतु जब कि वह इस बात पर विश्वास करता है कि जो काम मैं करता हूं सो मैं आप से करता हूं तो जो बुराई वह करता है सो उस पर ऐसा लगती है जैसा कि वह उस की अपनी बुराई है और इस लिये मनुष्य अपनी बुराई का कारण है न कि प्रभु। मनुष्य में बुराई उस में का नरक है। क्योंकि चाहे हम बुराई की बात कहें या नरक की बात दोनों एक ही बात हैं। अब जब कि मनुष्य अपनी निज बुराई का कारण है तो यह निकला कि वह अपने को नरक में गिरा देता है न कि प्रभु। क्योंकि प्रभु मनुष्य को नरक में गिरा देने से ऐसा विमुख है कि वह जहां तक मनुष्य अपनी निज बुराई होने की इच्छा नहीं करता और उस को प्रेम नहीं करता वहां तक प्रभु मनुष्य को नरक से बचाता है। परंतु न० ४७०वें से ४८४वें तक के परिच्छेदों में यह बात बतलाई गई कि मनुष्य की इच्छा और प्रेम मृत्यु के पीछे उस के साथ रहता है और इस लिये वह जो जगत में बुराई की इच्छा और प्रेम करता है परलोक में भी इसी बुराई की इच्छा और प्रेम करता रहता है और उस समय से लेकर वह उस से अलग होना नहीं चाहता। यह वही कारण है कि जिस से जो मनुष्य बुराई में है वह नरक से जकड़के बांधा हुआ है और यथार्थ में वह अपने आत्मा के विषय वहीं है। और मृत्यु के पीछे वह इस से अधिक और कुछ बात नहीं चाहता कि वह वहां रहने पावे जहां उस की अपनी बुराई है। इस कारण यह

स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि प्रभु मनुष्य को मृत्यु के पीछे दण्ड नहीं देता पर मनुष्य अपने आप को नरक में गिरा देता है।

५४८। अब हम उस चलने का बयान कि जिस से मनुष्य अपने को नरक में गिरा देता है करते हैं। जब मनुष्य पहिले पहिल परलोक को जाता है तब वह दूतगण से ग्रहण किया जाता है और ये दूत उस का सब प्रकार का शिष्टाचार करके प्रभु और स्वर्ग और दूतविषयक जीवन के बारे में उस से बात चीत करते हैं और सचाइयों और भलाइयों के विषय उस को शिक्षा देते हैं। परंतु यदि वह मनुष्य उन मनुष्यों में से एक हो जो सच मुच जगत में इन बातों को जानता भी था और जो अपने हृदय में इन को अस्वीकार और अवज्ञा करता था तो वह शीघ्र ही उन दूतों को छोड़ने की चेष्टा करता है और छोड़ जाने के अवसर को ढूंढ़ रहा है। जब दूतगण उस का अभिप्राय मालूम करते हैं तब वे उस को छोड़ते हैं और वह औरों से संसर्ग करता है जो उसी कारण से उस को तब तक छोड़ते भी हैं जब तक कि वह ऐसे आत्माओं से संयुक्त न हो जो उस के साथ एक ही बुराई में हैं। (न० ४४५ से ४५२ तक देखो)। ज्यों ही वह अपने निज साथियों से संसर्ग करता है त्यों ही वह अपने को प्रभु से फिराता है और उस नरक की ओर कि जिस से वह जगत में संयुक्त था और जिस में वे आत्मा बसते हैं जो उस के संग बुराई के एक ही प्रेम में होते हैं। ये बातें इस का प्रमाण देता है कि प्रभु दूतगण की सेवा के द्वारा और स्वर्ग के अन्तःप्रवाह के द्वारा अपनी ओर हर एक आत्मा खींचता है। परंतु जो आत्मा बुराई में हैं वे अपने बल पर्यन्त उस खिंचाव का विरोध करते हैं और यों कहो वे अपने को प्रभु से चीरकर अलग कर देते हैं। क्योंकि वे अपनी बुराई से और इस लिये नरक से घसीटे जाते हैं कि मानों वे रस्से से खींचे जाते हैं। और जब कि बुराई से उन का प्रेम उन को खींचे जाने का चाव देता है तो प्रत्यक्ष है कि वे अपने को स्वेच्छा पूर्वक नरक में गिरा देते हैं। परंतु नरक के स्वभाव के विषय उस बोध के कारण जो जगत में प्रचलित है इस बात पर विश्वास नहीं किया जा सकता। परलोक में केवल उन आत्माओं को जो यथार्थ में नरक को जाते हैं उस बोध के विपरीत कुछ भी देखने में आता। क्योंकि और आत्मा उन को गिरते हुए देखते हैं कि मानों वे गिरा दिये जाते हैं। और सच मुच उन में से कोई कोई जो उत्ताप से बुराई के प्रेम में हैं ऐसे दिखाई देते हैं कि मानों वे सिर के बल गिरा दिये जाते हैं। और यह दिखाव इस सिद्धान्त की सूचना करता है कि वे ईश्वरीय शक्ति से नरक में गिरा दिये जाते हैं। परंतु इस प्रसङ्ग के बारे में आगे बढ़के (न० ५७४) अधिक बयान होगा। परंतु तो भी जो बातें हम अभी लिख चुके हैं इस का प्रमाण देने के लिये बहुत हैं कि प्रभु किसी को नरक में नहीं गिरा देता। परंतु जो कोई वहां जाता है जब वह जगत में जीता भी है और जब मृत्यु के पीछे वह आत्मा होकर और आत्माओं के साथ रहता भी है तब वह अपने को नरक में गिराता है।

५४६। प्रभु अपने ईश्वरीय सारांश के कारण (जो कि भलाई और प्रेम और कृपा है) हर एक मनुष्य के साथ एक ही तौर पर आचरण नहीं कर सकता। क्योंकि बुराइयें और वे झुठाइयें जो उन बुराइयों से निकलती हैं न केवल उस के ईश्वरीय अन्तःप्रवाह को रोकती हैं और थोथला करती हैं पर उस को संपूर्ण रूप से अस्वीकार करती हैं। क्योंकि बुराइयें और वे झुठाइयें जो उन से निकलती हैं ऐसे काले बादलों के समान हैं जो सूर्य और मानुषक आंख के बीच पड़ते हैं। यद्यपि सूर्य नित्य प्रयत्न करके उन को उड़ाने की चेष्टा करता है और नाना टेढ़े छिद्रों में से कुछ कुछ धुन्धली ज्योति को चलाता है तो भी वे बादल दिन की चमक और स्वेच्छता को नष्ट करते हैं। आत्मीय जगत में वैसा ही हाल होता है क्योंकि वहां सूर्य प्रभु और ईश्वरीय प्रेम भी है (न० ११६ से १४० तक)। ज्योति ईश्वरीय सचाई है (न० १२६ से १४० तक)। काले बादल वे झुठाइयें हैं जो बुराई से पैदा होती हैं और आंख ज्ञानशक्ति है। इस कारण आत्मीय जगत में जितना कोई आत्मा उन झुठाइयों में है जो बुराइयों से निकलती हैं उतना ही वह किसी ऐसे बादल से घेरा हुआ है जो बुराई के परिमाण के अनुसार काला और घना है। और इस उपमा से यह देखा जा सकता है कि प्रभु हर किसी के साथ नित्य विद्यमान है परंतु वह नाना रीति से ग्रहण किया जाता है।

५५०। आत्माओं के जगत में बुरे आत्मा कठोरता से ताड़न किये जाते हैं इस हेतु से कि वे बुराई करने से बचाए जावें और मालूम होता है कि यह गति प्रभु की आज्ञा से है यद्यपि प्रभु से कुछ ताड़न नहीं होता। क्योंकि बुराई ताड़न का मूल आप है इस वास्ते कि बुराई और बुराई का ताड़न इतनी दृढ़ता से संयुक्त हैं कि वे अलग नहीं हो सकते। और नरकीय समाज इस काम से किसी काम की अधिक इच्छा और प्रेम नहीं करते कि वे बुराई करें और विशेष करके कि वे औरों को ताड़न और यातना दें। इस कारण वे यथार्थ में हर किसी को जो प्रभु से नहीं बचाया जाता हिंसा और ताड़न करते हैं। और जब कि सब आत्मा जो बुरे हृदय से बुराई करते हैं प्रभु की रक्षा को अस्वीकार करते हैं तो नरकीय आत्मागण उन पर दौड़कर ताड़न करते हैं। यह बात जगत में के अपराधों और ताड़नों के द्वारा (जहां कि वे संयुक्त भी हैं) कुछ कुछ प्रकाशित हो सकती है। क्योंकि नियम हर एक अपराध के लिये कोई निश्चित ताड़न निर्देश करते हैं और इस कारण जो कोई अपराध में दौड़कर जाता है ताड़न में भी दौड़कर जाता है। केवल यह भिन्नता है कि जगत में अपराध छिपाया जा सकता है परंतु परलोक में छिपाना असम्भव है। इन सब बातों से यह निकलता है कि प्रभु किसी की बुराई नहीं करता और बुरा करनेवाले से प्रभु का संबन्ध राजा के या न्यायाधीश के या नियम के संबन्ध के समान है उन में से कोई ताड़न का कारण नहीं है क्योंकि उन में से किसी ने अपराधी को बल से नहीं अपराध कराया।

नरक के सब निवासी बुराइयों में हैं और उन झुठाइयों में जो बुराइयों से निकलती हैं और जो आत्मप्रेम और जगतप्रेम से पैदा होती हैं।

५५१। सब आत्मा जो नरक में हैं बुराइयों में और उन झुठाइयों में हैं जो उन बुराइयों से निकलती हैं परंतु कोई आत्मा बुराइयों में और उसी समय सचाइयों में नहीं है। जगत में प्रायः सब बुरे मनुष्य आत्मीय सचाइयों से जो कि कलीसिया की सचाइयें हैं परिचित हैं। क्योंकि वे उन को बच्चपन में सीखते हैं और पीछे वे सचाइयें उन पर धर्मोपदेश से धर्मपुस्तक के पढ़ने से और उन सचाइयों के बारे में उन लोगों की बात चीत करने से लगाई जाती हैं। कोई कोई औरों के मन में यह विश्वास लाते हैं कि वे अपने हृदय में ख्रीष्टियन हैं क्योंकि वे दूतवाक्य से सचाइयों से और कृत्रिम अनुराग से बोल सकते हैं और इस हेतु से भी कि उस का आचरण आत्मीय श्रद्धा की खराई से निकलता हुआ दिखाई देता है। परंतु उन में से ऐसे मनुष्य जो भीतर से उन सचाइयों के विरुद्ध ध्यान करते हैं और केवल नियमों के डर से या सुकीर्त्ति और संमान और लाभ के निमित्त बुरे आचरण से उन के यथार्थ ध्यानों के अनुकूल निवृत्त होते हैं सब के सब हृदय में बुरे हैं और वे सचाइयों और भलाइयों में आत्मा के विषय नहीं हैं पर केवल शरीर के विषय। इस कारण जब परलोक में उन से बाहरी वस्तुएं दूर की गई हैं और उन की निज भीतरी वस्तुएं प्रकाशित हुईं तब वे संपूर्ण रूप से बुराइयों और झुठाइयों में हैं। और स्पष्ट होता है कि भलाइयें और सचाइयें उन के स्मरणों में केवल विद्या के रूप पर हुई थीं। और वे जब भलाई का भेष धारण करते थे कि मानों वे उस को आत्मीय प्रेम और श्रद्धा के निमित्त धारण करते थे तब वे कपट के निमित्त अपनी बात चीत करने में उन गुणों को प्रकाशित करते थे। जब ऐसे आत्मा अपने भीतरी भागों में और इस लिये अपनी बुराइयों में पैठने पाते तब वे उस समय से लेकर सच्च बातें नहीं कह सकते पर केवल झूठी बातें। क्योंकि उस समय वे अपनी बुराइयों से बोलते हैं और बुराइयों से सच्च बातों का कहना असम्भव है। परंतु ऐसा आत्मा अपनी निज बुराई को छोड़कर और कोई वस्तु नहीं है। और जो बुराई से निकलता है सो झुठाई है। हर एक आत्मा नरक में गिर जाने के पहिले इस अवस्था तक उतरता है। (न० ४९९ से ५१२ तक देखो)। और यह हाल सचाइयों और भलाइयों के विषय बिगड़ा हुआ कहलाता है[८८]। परंतु बिगाड़ना

८८ बुरे लोग नरक में गिरा देने के पहिले सचाइयों और भलाइयों के विषय बिगड़े हुए हैं और जब सचाइयें और भलाइयें उन से अलग हुईं तब वे लोग आप से नरक को जाते हैं। न० ४९७७ · ७०३९ · ७७९५ · ८२१० · ८२३२ · ९३३०। प्रभु उन को नहीं बिगाड़ता परंतु वे अपने को बिगाड़ते हैं। न० ७६४३ · ७९२६। हर एक बुराई अपने भीतर कोई झूठा तत्त्व रखता है और इस कारण वे जो बुराई में हैं झुठाई में भी हैं यद्यपि उन में से कोई इस को

भीतरी भागों में या आत्मा के आत्मत्व में (जो कि आत्मा आप है) पैठने को छोड़ और कुछ नहीं है। इस प्रसङ्ग के बारे में अधिक बयान न० ४९५ वें परिच्छेद में है।

५५२। जब मनुष्य मृत्यु के पीछे इस अवस्था में लाया जाता है तब वह उस समय से लेकर मनुष्यात्मा नहीं है जैसा कि वह अपनी पहिले अवस्था में था। (न० ४९१ से ४९८ तक देखो)। परंतु वह सच मुच आत्मा है। क्योंकि जो सच मुच आत्मा है तिस का भीतरी भागों के अनुकूल (कि जो मन के हैं) चिहरा और शरीर है और इस कारण उस का बाहरी रूप उस के भीतरी भागों की उपमा है। पहिली और दूसरी अवस्था के पीछे जिन का बयान अभी किया गया यह अवस्था पाई जाती है। और उस समय किसी आत्मा का स्वभाव देखते ही न केवल उस के चिहरे से परंतु उस के शरीर से और उस की बोली और गति से भी जाना जाता है। और जब कि वह इस समय अपने में है अर्थात अपनी निज यथार्थ पहचान में है तो वह ऐसी जगह को छोड़ जहां वे रहते हैं जो उस के समान हैं और किसी जगह में नहीं रह सकता। क्योंकि आत्मीय जगत में अनुरागों और ध्यानों का सर्वव्यापी सम्प्रदान है और इस लिये एक आत्मा अपनी समता को पहुंचाया जाता है कि मानों वह आप से आप लाया जाता है क्योंकि वह अपने निज अनुराग से और उस अनुराग के आनन्द से उन को ढूंढ़ता है। वह अपने को उन की ओर फिराता है क्योंकि वह उस समय अपने निज जीव को सांस ले रहा है या अनायास से श्वास ले रहा है और जब वह और किसी दिशा की ओर फिरता है तब वह अनायास से सांस नहीं ले सकता। यह बात स्मरण में रखना चाहिये कि आत्मीय जगत में औरों से संसर्ग रखना चिहरे के रूप पर अवलम्बित है। और हर किसी के संमुख वे नित्य खड़े रहते हैं जो उस के साथ एक ही प्रेम में हैं। यह भी न० १५१ वें परिच्छेद में बतलाया गया कि शरीर चाहे जितनी दिशा की ओर फिरे क्यों न हो तो यह विद्यमानता बनी रहती है। और यह वही कारण है कि जिस से नरकीय आत्मा अपने को घने अन्धेरे की ओर और उस अन्धेरे की ओर जो आत्मीय जगत में प्राकृतिक जगत के सूर्य और चांद की जगह में है प्रभु से पीछे फिराते हैं। और स्वर्ग के सब दूतगण प्रभु की ओर जैसा कि स्वर्ग के सूर्य और चांद की ओर अपने को फिराते हैं। (न० १२३ · १४३ · १४४ · १५१)। इन बातों से यह स्पष्ट है कि सर्व आत्मा जो नरकों में हैं बुराइयों में और उन झुठाइयों में जो बुराइयों से निकलती हैं रहते हैं और यह भी स्पष्ट है कि वे अपने निज प्रेमों की ओर फिरे हुए हैं।

५५३। नरक में सब आत्मा जब स्वर्गीय ज्योति के किसी अंश पर देखे जाते हैं तब वे अपने निज बुराई के रूप पर दिखाई देते हैं। क्योंकि वहां हर

नहीं जानते। न० ७५७७, ८०१४। जो बुराई में हैं जब वे अपनी ओर से ध्यान करते हैं तब वे बिना उपाय झूठी बातें ध्यान करते हैं। न० ७४३७। सब आत्मा जो नरकों में हैं बुराइयों से झुठाइयें बोलते हैं। न० १६९४ · ७३५१ · ७३५२ · ७३५७ · ७३९२ · ७६९९।

कोई अपनी निज बुराई की प्रतिमा है। इस वास्ते कि भीतरी और बाहरी भाग एक दूसरे के साथ हेल मेल काम करते हैं और भीतरी भाग बाहरी भागों में जो कि चिहरा बोली और इङ्गित हैं प्रत्यक्ष प्रकाशित हैं। इस लिये उन का गुण देखते ही पहचाना जाता है। प्रायः वे औरों की निन्दा करने के रूप हैं और उन की हिंसा करना जो उन का संमान नहीं करते और नाना प्रकार के द्वेष के और नाना प्रकार के बदले के रूप हैं। और इन रूपों में उपद्रव और क्रूरता भीतरी ओर से पारदर्शक है। परंतु जब अन्य आत्मा उन की प्रशंसा उन का संमान और उन की पूजा करते हैं तब उन के चिहरे ऊपर को खींचे जाते हैं और आनन्द से निकलनेवाला हर्ष उन पर फैला हुआ है। उन रूपों का (जैसा कि वे सच मुच देख पड़ते हैं) संक्षेप बयान करना असम्भव है क्योंकि उन में से कोई दो आपस में एक दूसरे के समान नहीं है। तो भी उन में जो सम बुराई में और इस लिये एक ही नरकीय सभा में हैं सामान्य समता पाई जाती है। और वह सामान्य समता सामान्य मूल के एक समतल की भांति हर एक चिहरे का मूल है और एक प्रकार की सदृशता कर डालती है। प्रायः उन के चिहरे भयानक और जीवहीन और लाश के समान हैं। परंतु उन में से कोई काले हैं और कोई छोटे डामर के समान आग से हैं कोई फंसियों मस्सों फोड़ों से विरूपित होते हैं। बहुधा कोई चिहरा नहीं दिखाई देता परंतु चिहरे के बदले कुछ बालों सी या हड्डी सी वस्तु देख पड़ती हैं और कभी कभी दान्तों को छोड़ और कुछ दृष्टि नहीं आता। उन के शरीर भी घोररूपी हैं और उन की बोली क्रोध और द्वेष और बैर लेने की वाणी है। क्योंकि हर कोई अपनी निज झुठाई से बोलता है और उस की वाणी का शब्द उस की निज बुराई से पैदा होती है। संक्षेप में वे सब के सब अपने अपने नरक की प्रतिमा हैं। मैं सर्वव्यापी नरक के रूप को देखने नहीं पाया परंतु मुझ को यह बतलाया गया कि जैसा कि सर्वव्यापी स्वर्ग की समष्टि एक मनुष्य के सदृश है (न० ५९ से ७६ तक) वैसा ही सर्वव्यापी नरक की समष्टि एक दैत्य के सदृश है और इसी रूप पर भी प्रगट की जा सकती है (न० ५४४ को देखो)। परंतु नरकों और नरकीय सभाओं के विशेष रूप बार बार मेरे लिये प्रकाशित हुए हैं। परंतु उन के छिद्रों पर जो नरक के फाटक कहलाते हैं बहुधा एक दैत्य देख पड़ता है जो उन का सामान्य रूप प्रगट करता है जो उस नरक के अन्दर हैं। वहां के रहनेवालों के उच्चण्ड मनोराग भयङ्कर और उपद्रवी वस्तुओं के द्वारा भी जिन के विशेष रूपों के वर्णन करने से मैं बाज़ रहता हूं प्रकाशित होते हैं। परंतु नरकीय आत्माओं का जब कि वे स्वर्ग की ज्योति में दीखते हैं कैसा ही रूप क्यों न हो तो भी आपस में वे मनुष्यों के समान दिखाई देते हैं। और यह हाल प्रभु की दया से होता है ता कि वे आपस में एक दूसरे को ऐसे घृणाजनक रूप मालूम न दें जैसा कि वे दूतगण को देख पड़ते हैं। परंतु यह दयालु दिखाव माया है क्योंकि ज्यों ही स्वर्ग से ज्योति की एक किरण भीतर जाने पाती है त्यों ही वे बदलकर मानुषक रूपों के अत्यन्त घोर रूप हो जाते हैं जो उन के यथार्थ स्वभाव के प्रतिनिधि हैं। क्योंकि

सब कुछ स्वर्ग की ज्योति में अपने यथार्थ रूप पर दिखाई देता है। इस कारण वे स्वर्ग की ज्योति से अलग रहते हैं और अपनी निज स्थूल ज्योति में जो जलते हुए कोएले की ज्योति के समान है और कभी कभी जलते हुए गन्धक के सदृश है अपने को गिरा देते हैं। यदि स्वर्ग से ज्योति की एक भी किरण उस ज्योति पर पड़े तो वह बदलकर घोर अन्धेरा हो जावेगा। और इस लिये कहते हैं कि नरक घने अन्धेरे में और अन्धेरे में हैं। और घने अन्धेरे से और अन्धेरे से तात्पर्य वे झुठाइयें हैं जो ऐसी बुराई से निकलती हैं जैसा कि नरक में प्रबल है।

५५४। जब कि नरक में आत्माओं के घोर रूप औरों की निन्दा करने के रूप और उन के विरुद्ध जो उन आत्माओं का संमान और आदर नहीं करते धम-काहट के रूप और उन के विरुद्ध जो उन आत्माओं का उपकार नहीं करते द्वेष और बदले के रूप होते हैं तो यह स्पष्ट है कि वे आत्मप्रेम और जगतप्रेम के सामान्य प्रतिरूप हैं और वे बुराइयें जिन के विशेष रूप वे हैं अपना मूल उन दो प्रेमों से लेते हैं। स्वर्ग की ओर से मुझ से यह बात कही कि वे दो प्रेम अर्थात आत्मप्रेम और जगतप्रेम नरकों पर राज करते हैं और नरकों का निर्माण भी करते हैं। और प्रभु की ओर का प्रेम और पड़ोसी की ओर का प्रेम स्वर्गों पर राज करते हैं और स्वर्गों का निर्माण भी करते हैं। और नरक के दो प्रेम स्वर्ग के दो प्रेम आपस में एक दूसरे के व्यास क्रम से विरुद्ध है।

५५५। पहिले पहिल मैं ने अचम्भा किया कि आत्मप्रेम और जगतप्रेम क्योंकर ऐसे पैशाचिक हों और वे आत्मा जो इन प्रेमों में हैं क्योंकर देखने में इस प्रकार के दैत्य हों। क्योंकि जगत में लोग आत्मप्रेम पर थोड़ा ही ध्यान धरते हैं और अभिमान ही जो फूले हुए मन का बाहरी दिखाव है आत्मप्रेम कहलाता है क्योंकि वह प्रत्यक्ष में अप्रीतिकर है। आत्मप्रेम जब वह इस रीति से नहीं फूला हुआ है तब लोग इस बात पर विश्वास करते हैं कि वह जीव की आग है जिस करके मनुष्य अधिकारपद तक पहुंचने को और अभिप्रायों के सिद्ध करने को उक-साया जाता है। और लोग कहते हैं कि यदि मनुष्य सुकीर्त्ति और यश की चेष्टा से उकसाया न जावे तो उस का मन ठिठरा सा हो जावे। जगत के लोग यह पूछते हैं कि "जिस व्यक्ति ने कोई मान्य उपकारक प्रसिद्ध क्रिया इस आशा के विना कभी की है कि मैं औरों करके या औरों के मन में विख्यात और यशस्वी होऊं। और यश और संमान के प्रचण्ड प्रेम को छोड़ (जो आत्मप्रेम है) यह क्या वस्तु है"। इस लिये जगत में विदित नहीं हैं कि आत्मप्रेम वह प्रेम है जो नरक पर राज करता है और इस कारण मनुष्य के लिये नरक का निर्माण करता है। इस लिये उस का बयान करना अवश्य है और यह भी दिखलाना चाहिये कि सब बुरा-इयें और वे झुठाइयें जो उन बुराइयों से निकलती हैं उस प्रेम में जड़ पकड़ती हैं।

५५६। आत्मप्रेम यह है कि कोई मनुष्य अपनी ही भलाई की इच्छा करता है और वह अपनी भलाई के निमित्त को छोड़ औरों की भलाई की इच्छा नहीं

करता यद्यपि वे कलीसिया के या उस के देश के या सारी मनुष्यजाति के भी हों। केवल हमारी निज सुख्याति संमान और यश ही के निमित्त परोपकार करना भी एक प्रकार का आत्मप्रेम है। क्योंकि यदि ये फल औरों की भलाई करने से पाए न जा सकें तो स्वार्थी मनुष्य अपने मन में कहता है कि "मेरा यह क्या काम है। मुझ को यह काम किस वास्ते करना चाहिये। मेरा इस से क्या फल होगा"। और इस लिये वह कुछ भी नहीं करता। इस कारण यह स्पष्ट है कि कोई मनुष्य जो आत्मप्रेम पर स्थापित हो न तो कलीसिया को न अपने देश को न सर्वसाधारण लोगों को न किसी प्रयोजन को प्यार करता है। वह केवल अपने आप को प्यार करता है। उस का आनन्द केवल आत्मप्रेम ही का आनन्द है और जब कि वह आनन्द जो प्रेम से होता है मनुष्य का जीव है तो इस लिये उस का जीव स्वार्थ का जीव है। और स्वार्थ का जीव वह जीव है जो मनुष्य के आत्मत्व से पैदा होता है। और मनुष्य का आत्मत्व सारांश से ले बुराई ही है। वह जो अपने को प्यार करता है उन को भी प्यार करता है जिन से वह संबन्ध रखता है जैसा कि अपने बालबच्चे अपने पोते पोती और प्रायः वे सब जो उस से मिले झुले रहते हैं और जिन को वह अपने मित्र पुकारता है। उन को प्यार करना अपने आप को भी प्यार करना है। क्योंकि वह उन का ऐसा संमान करता है कि मानों वे उस में थे और वह उन में था और वह उन सभों को जो उस की प्रशंसा और संमान और उस की सेवा भी करते हैं अपने मित्रों में गिनता है।

५५७। आत्मप्रेम का स्वभाव स्वर्गीय प्रेम से उपमा देने के द्वारा भली भांति विज्ञात होता है। स्वर्गीय प्रेम प्रयोजनों को उन के अपने निमित्त ही से प्यार करने का बना है। अर्थात वह प्रेम उन्हीं कामों को जो मनुष्य कलीसिया की या अपने देश की या सर्वसाधारण लोगों की या स्वनगरनिवासियों की भलाई के लिये करता है प्यार करने का बना है। क्योंकि इस प्रकार का प्यार करना परमेश्वर को और पड़ोसी को प्यार करना है इस वास्ते कि सब प्रयोजन और सब अच्छे काम परमेश्वर की ओर से हैं और वे [विषयविविक्त रीति से] वह पड़ोसी है जिस का प्रेम किया जाता है। परंतु जो कोई अपने निमित्त उन को प्यार करता है केवल उन को ऐसा प्यार करता है कि मानों वे सेवक हैं जो उस के लाभ उठाने और सुख भोगने के बारे में उपकारक हैं। और इस लिये वह जो आत्मप्रेम पर स्थापित है यह चाहता है कि कलीसिया और उस का देश और उस के नगरनिवासी और सारी मनुष्यजाति भी उस की सेवा करें न कि वह उन की सेवा करे। क्योंकि वह अपनी उन्नति करता है और अपने नीचे उन को रख देता है। इस कारण जहां तक कोई मनुष्य आत्मप्रेम में है वहां तक वह अपने को स्वर्ग से दूर करता है। क्योंकि वह अपने को स्वर्गीय प्रेम से दूर करता है।

५५८। फिर जहां तक कोई मनुष्य स्वर्गीय प्रेम में है वहां तक वह प्रभु से पहुंचाया जाता है। क्योंकि वह प्रेम प्रयोजनों और अच्छे कामों को प्यार करने

का बना है और वह उन कामों को कलीसिया के या देश के या स्वनगरनिवासियों के या मनुष्यजाति के निमित्त हृदय के आनन्द से करने का भी बना है। इस हेतु से कि प्रभु इस प्रेम में आप है और वह प्रेम उस की ओर से उतरता है। जहां तक कोई मनुष्य आत्मप्रेम में है वहां तक वह अपने आप को भी ले चलता है। क्योंकि वह प्रेम प्रयोजनों और अच्छे कामों को स्वार्थ के निमित्त करने का बना है। परंतु जहां तक कोई मनुष्य अपने को ले चलता है वहां तक वह प्रभु से नहीं पहुंचाया जाता है। और इस से यह निकलता है कि जितना कोई अपने आप को प्यार करता है उतना ही वह अपने को ईश्वरत्व से दूर करता है और इस लिये स्वर्ग से। मनुष्य अपने को तब ले चलता है जब वह अपने आत्मत्व से पहुंचाया जाता है। परंतु मनुष्य का आत्मत्व निराली बुराई है। क्योंकि परमेश्वर की अपेक्षा स्वार्थ को और स्वर्ग की अपेक्षा जगत को अधिक प्यार करना उस के बपौती का बुरा स्वभाव है [८९]। जितनी बेर मनुष्य अच्छे कामों को अपने निमित्त करता है उतनी ही बेर वह अपने आत्मत्व में और इस लिये बपौती की बुराइयों में पैठने पाता है। क्योंकि उस समय वह अच्छे कामों की ओर से अपनपा देखता है न कि अपनी ओर से अच्छे कामों को। और इस लिये उस के प्रयोजन भी उस की एक प्रतिमा हैं और न ईश्वरत्व की। इस का प्रमाण परीक्षा से मुझ को दिया गया। स्वर्ग के नीचे उत्तर और पश्चिम के बीच मध्यस्थित दिशा में बुरे आत्मा रहते हैं जो सुशील आत्माओं को उन के आत्मत्व में और इस लिये नाना प्रकार की बुराइयों में प्रवेश करने की विद्या से सुपरिचित हैं। और वे बुरे आत्मा सुशील आत्माओं के ध्यानों में अपने विषय अन्य ध्यानों को ला मिलाने से या तो प्रगट रूप से प्रशंसा और संमान करने के द्वारा या गुप्त रूप से उन आत्माओं के अनुरागों को उन की ओर झुकाने के द्वारा बुरा काम करते हैं। और जहां तक वे इस काम को सिद्ध करते हैं वहां तक वे उन सुशील आत्माओं के चिहरों को स्वर्ग से फिराते हैं और उन की ज्ञानशक्ति को धुन्धला करते हैं और उन के आत्मत्व से बुराइयें पैदा करते हैं।

५५८। आत्मप्रेम पड़ोसी से प्रेम रखने के विरुद्ध है यह बात उन दो प्रेमों के मूल और सारांश से प्रत्यक्ष है। उन लोगों के विषय जो आत्मप्रेम में हैं पड़ोसी

---

८९ वह आत्मत्व जो मनुष्य अपने मा बाप से ग्रहण करता है निरी घनी बुराई है। न० २१० · २१५ · ७३१ · ८७६ · ९८७ · १०४७ · २३०७ · २३०८ · ३५१८ · ३७०१ · ३८१२ · ८४८० · ८५५० · १०२८३ · १०२८४ · १०२८६ · १०७३२। और वह परमेश्वर की अपेक्षा स्वार्थ को और स्वर्ग की अपेक्षा जगत को प्यार करने का बना है। और स्वार्थ की अपेक्षा पड़ोसी को तुच्छ मानने का बना है इस को छोड़ कि जब कोई मनुष्य अपने स्वार्थ के निमित्त पड़ोसी की प्रशंसा करे। और इस लिये आत्मत्व स्वार्थ को प्यार करने का बना है। इस कारण आत्मत्व स्वार्थ को और जगत को प्यार करना है। न० ६९४ · ७३१ - ४३१७ · ५६६०। और इस से सब बुराइयें तब बहकर निकलती हैं जब वे प्रबल हैं। न० १३०७ · १३०८ · १३२१ · १५९४ · १६९१ · ३४१३ · ७२५५ · ७३७६ · (७४८०) · ७४८८ · ८३१८ · ९३३५ · ९३४८ · १००३८ · १०७४२। वे बुराइयें ये ई हैं अर्थात औरों की निन्दा वैर द्वेष बदला क्रूरता और कपट। न० ६६६७ · ७३७२ · ७३७४ · ९३४८ · १००३८ · १०७४२। और उन में हर एक झूठे तत्त्व का मूल है। न० १०४७ · १०२८३ · १०२८४ · १०२८६।

का प्रेम आत्म से ले चलता है। क्योंकि वे लोग हठ करके कहते हैं कि कोई मनुष्य आप अपना सब से निकटस्थ पड़ोसी है। और इस लिये आत्म से जैसा कि एक केन्द्र से उन मनुष्यों का अनुग्रह उन लोगों की ओर जो उन से मिले झुले रहते हैं बाहर चला जाता है और चलते चलते उन लोगों के प्रेमयुक्त संयोग के घट जाने के अनुकूल क्रम क्रम से घटता जाता है और उन लोगों पर जो उस संयोग से बाहर हैं संपूर्ण रूप से विनाश को प्राप्त होता है। और वे लोग जो उन के और उन के तत्त्वों के विरुद्ध हैं शत्रु गिने जाते हैं यद्यपि वे विद्वान या धर्मशील या खरा या न्यायी हों। परंतु पड़ोसी की ओर का आत्मीय प्रेम प्रभु की ओर से ले चलता है और उस से जैसा कि एक केन्द्र से उन सभों को जो उस से प्रेम और श्रद्धा के द्वारा संयुक्त हैं चला जाता है और उन सभों को उन के प्रेम और श्रद्धा के गुण के अनुकूल पसरता है[६०]। इस से स्पष्ट है कि वह पड़ोसीविषयक प्रेम जो मनुष्य की ओर से लेकर चलता है उस प्रेम के विरुद्ध है जो प्रभु की ओर से ले चलता है। और पहिला प्रेम बुराई से चलता है क्योंकि वह मनुष्य के आत्मत्व से निकलता है परंतु दूसरा प्रेम भलाई से चलता है क्योंकि वह प्रभु से जो भलाई आप है निकलता है। यह भी स्पष्ट है कि वह पड़ोसीविषयक प्रेम जो मनुष्य से और उस के आत्मत्व से निकलता है शारीरिक है परंतु वह प्रेम जो प्रभु से निकलता है स्वर्गीय है। संक्षेप में जहां आत्मप्रेम प्रबल है वहां मनुष्य का सिर उस प्रेम का बना है और स्वर्गीय प्रेम केवल पांव ही हैं जिन पर (यदि स्वर्गीय प्रेम उस मनुष्य का सेवा करे) आत्मप्रेम खड़ा रहता है परंतु यदि वह प्रेम उस की सेवा न करे

---

६० वे लोग जो यह नहीं जानते कि उन के पड़ोसी को प्यार करना क्या वस्तु है यह समझते हैं कि हर एक मनुष्य उन का पड़ोसी है और उन का कर्तव्य यह है कि वे हर किसी की भलाई करें जिस को उपकार लेने की आवश्यकता है। न० ६७०४। वे इस बात पर भी विश्वास करते हैं कि हर एक मनुष्य अपना सब से निकटस्थ पड़ोसी है और इस से जानते हैं कि पड़ोसीविषयक प्रेम आत्म से लेकर चलता है। न० ६९३३। वे लोग जो अपने को सब वस्तुओं की अपेक्षा प्यार करते हैं और जिन में इस कारण से आत्मप्रेम प्रबल है इस बात पर विश्वास करते हैं कि पड़ोसीविषयक प्रेम आत्म से लेकर चलता है। न० ६७१०। क्योंकर हर कोई अपना सब से निकटस्थ पड़ोसी है। न० ६९३३ से ६९३८ तक। वे लोग जो खिष्टीय हैं और सब वस्तुओं की अपेक्षा परमेश्वर को प्यार करते हैं इस बात पर विश्वास करते हैं कि पड़ोसीविषयक प्रेम प्रभु से ले चलता है क्योंकि सब वस्तुओं की अपेक्षा उस का प्यार करना चाहिये। न० ६७०६ · ६७११ · ६८१९ · से ६८२४ तक। वे अंश जिन के अनुसार मनुष्य हमारे पड़ोसी होते हैं इतने हैं जितनी भलाई की भिन्नतायें हैं जो प्रभु से निकलती हैं। और चाहिये कि हर किसी की भलाई उस की अवस्था के गुण के अनुसार विवेकता के साथ की जावे। क्योंकि यह एक प्रकार की खिष्टीय सावधानता है। न० ६७०७ · ६७०९ · ६७१० · ६८१८। ये भिन्नतायें असंख्य हैं। और इस हेतु से प्राचीन लोगों ने जो पड़ोसी की बात के यथार्थ तात्पर्य को समझते थे अनुग्रह के कामों के वर्ग वर्ग करके यथाक्रम रखा और उन वर्गों को पृथक पृथक नाम से विशेषित किया। और इस कारण वे जानते थे कि काहे के विषय हर कोई उन का पड़ोसी था और क्योंकर किसी की भलाई सावधान के साथ की जावे। न० २४१७ · ६६२८ · ६७०५ · ७२५९ से ७२६२ तक। प्राचीन कलीसियाओं में तत्त्व पड़ोसी की ओर के अनुग्रह का तत्त्व था और इस लिये उन लोगों को ज्ञान था। न० २४१७ · २३८५ · ३४१९ · ३४२० · ४८४४ · ६६२९।

तो वह उनको उस को धूर में मिला दे। यह बात अकस्मात इस का विवरण करती है कि वे आत्मा जो नरक में गिर जाते हैं क्योंकि सिर के बल गिरते हुए पांव ऊपर को स्वर्ग की ओर दिखाई देते हैं। (न० ५४८ को देखो)।

५५९। आत्मप्रेम भी ऐसे गुण का है कि जहां तक उस को स्वतन्त्रता मिलती है अर्थात जहां तक बाहरी रुकाव दूर किये गये वहां तक वह प्रचण्ड लालच के साथ न केवल पार्थिव गोल पर राज करने के लिये परंतु सर्वव्यापी स्वर्ग पर और ईश्वरीय सत्ता पर भी राज करने के लिये दौड़कर चला जाता है। क्योंकि वह न तो सीमा को जानता है न अन्त को। यद्यपि यह प्रवृत्ति जगत के साम्हने (जहां कि वह नियम के भय से और नियम के ताड़नों से या सुख्याति या संमान या लाभ या नौकरी या जीव की हानि के भय से जो कि ऊपर लिखित बाहरी रुकाव हैं रोका जाता है) दिखाई नहीं देती तो भी वह हर एक में जो आत्मप्रेम पर स्थापित हैं छिपी रहती है। महाराजाओं और राजाओं के आचरण से जो कि ऊपर लिखित रुकावों और बन्धनों के अधीन नहीं हैं प्रत्यक्ष है कि यह बात ठीक है क्योंकि वे अत्यन्त वेग से देश प्रदेशों के जीतने के लिये दौड़कर चले जाते हैं और असीमिक प्रभुता और यश की चेष्टा करते हैं और उन की अभिलाषा सफलता के द्वारा बढ़ती जाती है। और आधुनिक बेबिलन के आचरण से यही बात अधिक भी स्पष्टता के साथ मालूम देती। क्योंकि वह बेबिलन अपना बस स्वर्ग पर चलाता और प्रभु की सारी शक्ति अपने हाथ में ले लेता है और अधिक भी प्रभुता की लालच बराबर करता रहता है। जब इस प्रकार के लोग मृत्यु के पीछे परलोक में प्रवेश करते हैं तब वे ईश्वरीय सत्ता के और स्वर्ग के संपूर्ण रूप से विरुद्ध हैं और नरक के अनुकूल होते हैं। जैसा कि उस छोटी सी पोथी में देखा जा सकता है जो अन्तिम विचार के और बेबिलन के सत्यानाश करने के बारे में है।

५६०। यह बात समझो कि एक सभा स्थापित हो जिस के सारे मनुष्य केवल अपने आप को प्यार करें और जो केवल वहां तक औरों को प्यार करें जहां तक ये लोग उन से मिले झुले मिलावें। स्पष्ट है कि उन का प्रेम चोर लोगों के प्रेम के सदृश है। क्योंकि जब वे किसी परस्पर लाभ के द्वारा मिलाए जाते हैं तब वे एक दूसरे को छाती से लगाते हैं और एक दूसरे को मित्र कर पुकारते हैं। परंतु जब वे अलग होते हैं तब सारी अधीनता तुच्छ मानकर एक दूसरे को मारा डालता है। यदि ऐसे मनुष्यों के भीतरी भागों या मनों की परीक्षा की जावे तो वे एक दूसरे के विरुद्ध प्राणघातक द्वेष से भरे हुए दिखाई देते हैं और वे अपने मन में सारे न्याय और सचाई और ईश्वरीय सत्ता पर भी हंसते हैं क्योंकि वे उस को असत्य-कार्य मानते हैं। जब हम नरक में की सभाओं का जो ऐसे आत्माओं की बनी हैं जिन का प्रधान प्रेम आत्मप्रेम है बयान करूंगा तब यह अधिक स्पष्टता के साथ मालूम होगा।

५६१। जो लोग सब वस्तुओं की अपेक्षा अपने को प्यार करते हैं उन के भीतरी भाग जो ध्यानों के और अनुरागों के हैं अपनी ओर और जगत की ओर फिरे हुए हैं और इस लिये वे प्रभु और स्वर्ग की ओर से फिरे हुए हैं। इस कारण उन में सब प्रकार की बुराइयें भरी हैं और इस से ईश्वरत्व का कुछ भी उन में नहीं बह सकता है। क्योंकि ईश्वरीय अन्तःप्रवाह अपनी पहिली पैठ के समय उन के स्वार्थी ध्यानों के द्वारा मलीन हो जाता है और उन बुराइयों से भी जिन का मूल आत्मत्व में है मिलाया जाता है। इस हेतु से परलोक में स्वार्थी आत्मा प्रभु की ओर से पीछे को उस घने अन्धेरे की ओर जो वहां प्राकृतिक जगत के सूर्य के स्थान पर है और जो स्वर्ग के सूर्य के कि जो प्रभु है व्यास क्रम से विरुद्ध है देखते भालते हैं। (न० १२३ को देखो)। जब धर्मपुस्तक में घने अन्धेरे की सूचना है तब उस से तात्पर्य बुराइयें हैं और प्राकृतिक जगत के सूर्य से तात्पर्य आत्मप्रेम है[९१]।

५६२। वे बुराइयें जो आत्मप्रेमी लोगों के विशेष लक्षण हैं प्रायः ये हैं अर्थात औरों की निन्दा डाह शत्रुता और इस से द्वेष उन के विरुद्ध जो उन के अनुकूल नहीं है नाना प्रकार का द्रोह बदला लेना कपट छल निर्दयता और क्रूरता। धर्म के विषय वे न केवल ईश्वरीय सत्ता और ईश्वरीय वस्तुओं की जो कलीसिया की सचाइयें और भलाइयें हैं निन्दा को प्रतिपालन करते हैं परंतु वे उन पर कोप भी करते हैं। और जब वे आत्मा हो जाते हैं तब वह कोप बदलकर द्रोह हो जाता है। क्योंकि उस समय वे न केवल कलीसिया की सचाइयों और भलाइयों का सुनना नहीं सह सकते पर वे उन के विरुद्ध जो ईश्वरीय सत्ता को स्वीकार और पूजा करते हैं अति द्वेष से जलते हैं। एक बेर मैं ने एक आत्मा से बात चीत की जो जगत में उच्चपदधारी था और अपने आप को अतिशय करके प्यार करता था। और उस का द्रोह जो कोप से पैदा हुआ ईश्वरीय सत्ता की निराली सूचना ही से और विशेष करके प्रभु के नाम से इस रीति से जलता था कि वह प्रभु की हत्या की लालसा से जलता था। जब उस का प्रेम विना रुकाव के था तब वह यह चाहता था कि हां मैं नरक का राजा होंता कि मैं आत्मप्रेम से स्वर्ग को नित्य सताऊं। और जब परलोक में रोमन कैथोलिक धर्म के लोग देखते हैं कि प्रभु को सारी शक्ति है और उन का कुछ भी बस नहीं चलता तब उन का भी वही चाव है।

५६३। एक बेर कई एक आत्मा पश्चिम दिशा में दक्षिण की ओर दिखाई दिये जिन्हों ने यह कहा कि हम जगत में उच्चपदधारी थे और हम और लोगों की अपेक्षा अधिकानुरक्त होने के योग्य और उन पर राज करने के उचित हैं। परंतु

---

९१ जगत के सूर्य से तात्पर्य आत्मप्रेम है। न० २४४१। और इस अर्थ के अनुकूल सूर्य की पूजा करना उन सब वस्तुओं की पूजा करना है जो स्वर्गीय प्रेम के और प्रभु के विरुद्ध है। न० २४४१ • १०५८४। सूर्य के गरम हो जाने से तात्पर्य बुराई की बढ़ती हुई कामाग्नि है। न० ८४८७।

जब दूतों ने उन की परीक्षा की थी और उन का भीतरी गुण प्रकाशित किया था तब यह देख पड़ा कि जब वे जगत में अपने अधिकारपद के काम करते थे तब उन्हों ने प्रयोजनों पर ध्यान नहीं धरा केवल वे अपने को मानते थे और इस से वे प्रयोजनों की अपेक्षा अपने को अधिकानुरक्त करते थे। तो भी जब कि वे औरों पर राज करने की अत्यन्त अभिलाषा करते थे तब आज्ञा हुई कि वे उन के साथ रहें जिन पर भारी बातों का प्रस्तुत करना अवलम्बित था। और उस समय यह मालूम हुआ कि वे न तो वर्तमान व्यवहार पर ध्यान धर सकते थे न अपने आप में अन्य वस्तुओं को भीतर से देख सकते थे। और वे उस प्रसङ्ग के प्रयोजन के विषय जिस का वादानुवाद किया जाता था नहीं बोलते थे परंतु केवल किसी स्वार्थी अभिप्राय के विषय। और वे विशेषव्यक्तिसंबन्धी अनुराग के कारण स्वच्छन्द आनन्द के अनुसार काम करते थे। इस कारण वे अपने अधिकारपद से छुड़ा दिये गये और वे बिदा होकर और कहीं जाकर नौकरी के खोज में ढूंढ़ने लगे। इस समय वे पश्चिम की ओर आगे बढ़के जाते थे और पहिले एक स्थान पर स्वीकार किये गये तो दूसरे स्थान पर। परंतु हर कहीं उन को यह बात कही गई कि वे केवल अपने आप पर ध्यान करते थे या स्वकीय प्रभाव के अधीन होकर अन्य वस्तुओं पर ध्यान धरते थे और इस लिये वे मूर्ख थे जैसा कि विषयी शारीरिक आत्मा हैं। इस हेतु से वे सब दिशाओं से निकाल दिये गये और अन्त में अतिक्लेशी कङ्गालता को धीरे धीरे गिरके उन को भीख मांगना पड़ा। इस परीक्षा ने अत्यन्त स्पष्ट रूप से यह बात प्रकाशित की कि यद्यपि वे जो आत्मप्रेम में हैं जगत में उस प्रेम की आग से ज्ञानी मनुष्यों के समान बोलते हुए मालूम होवें तो भी उन की बोली केवल स्मरण ही से है न कि चैतन्य ज्योति से। परंतु परलोक में जाने से लेकर प्राकृतिक स्मरण की वस्तुएं फिर उत्पन्न होने नहीं पातीं और इस लिये वे आत्मा अन्य आत्माओं की अपेक्षा मूर्ख हैं क्योंकि वे ईश्वरत्व से अलग हैं।

५६४। राज्य दो प्रकार का है। एक तो पड़ोसी की ओर के प्रेम से उत्पन्न होता है दूसरा आत्मप्रेम से। और इस लिये वे अपने सारांश में विरोध हैं। वह मनुष्य जो पड़ोसीविषयक प्रेम के तत्त्व से अधिकाई करता है सभों की भलाई की उन्नति करना चाहता है और वह अन्य किसी वस्तु को इतना प्यार नहीं करता जितना प्यार वह प्रयोजन करने से रखता है। परंतु औरों की सेवा करना उन की भलाई की इच्छा करना है और वह कलीसिया के और देश के और सर्वसाधारण लोगों के और समनगरनिवासियों के प्रयोजनों का करना भी है। इस कारण यह प्रेम उसी का प्रेम है जो अपने पड़ोसी को प्यार करता है और वह प्रेम उस के हृदय का परमानन्द है। इस लिये जब वह औरों के ऊपर उच्चपद तक उठाया जाता है तब उस को न निरे उच्चपदों ही के निमित्त हर्ष है पर वह उन प्रयोजनों के निमित्त आनन्दित है जिन के सिद्ध करने का सामर्थ्य वह उत्कृष्टता उस मनुष्य को प्रचुरतायुक्त से और उत्तम रीति से देती है। और यह वही अधिकार है जो स्वर्ग में राज करता है। परंतु वह जो आत्मप्रेम की ओर से राज करता है अपनी भलाई को

छोड़ और किसी की भलाई करना नहीं चाहता और इस लिये वे सब प्रयोजन जो वह सिद्ध करता है उस के अपने संमान और यश के निमित्त हैं क्योंकि उस की समझ में केवल वे ई प्रयोजन हैं। जब वह औरों की सेवा भी करता है तब उस का गुप्त अभिप्राय यह है कि उस की अपनी सेवा और संमान और बड़ाई की जावे। और इस लिये वह न अपने देश और कलीसिया की भलाई करने के निमित्त उत्कृष्टता की चेष्टा करता है पर इस लिये कि वह प्रधानता और यश पावे और इस से अपने हृदय के आनन्द का भोग करे। प्रभुता का प्रेम हर किसी के साथ जगत में जीने के पीछे रहता है। परंतु केवल उन को जो पड़ोसी की ओर के प्रेम से अधिकाई करते हैं स्वर्ग में प्रभुता दी जाती है। क्योंकि उन की अधिकाई न केवल उन की अपनी अधिकाई है पर वे प्रयोजन जिन को वे प्यार करते हैं उन में राज करते हैं। और जब प्रयोजन राज करते हैं तब प्रभु राज करता है। इस के विपरीत वे लोग जो जगत में आत्मप्रेम के अधीन होकर अधिकाई करते हैं नरक में नीच दास हो जाते हैं। मैं ने पृथिवी के प्रतापी लोगों को जो स्वार्थी अधिकार के साथ राज करते थे सब से नीच आत्माओं में गिरा दिये हुए और उन में से कई एक रोगकारी और गूह भरे गड़हों में डूबे हुए देखा है।

५६५। जगतप्रेम ऐसी सीधी रीति से स्वर्गीय प्रेम के विरुद्ध नहीं है जिस रीति से आत्मप्रेम स्वर्गीय प्रेम के विपरीत है। क्योंकि उस में बहुत भयानक बुराइयें नहीं छिपी रहतीं। जगतप्रेम औरों के धन को हर प्रकार के छल से ले लेने की इच्छा करने का और धन पर हृदय लगाने का और जगत को हमें आत्मीय प्रेम की ओर से जो कि पड़ोसी की ओर का प्रेम है खींचने देने का और इस लिये हमें स्वर्ग से और ईश्वरीय सत्ता से अलग करने देने का बना हुआ है। परंतु यह प्रेम नाना प्रकार के रूप धारण करता है। एक तो वह धन का प्रेम है जो उच्चपद तक बढ़ जाने के निमित्त है और इस में केवल उच्चपद ही का प्रेम है। दूसरा वह उच्चपद और प्रधानता का प्रेम है जो धन के बढ़ाने के निमित्त है। एक प्रेम धन का है जो उन प्रयोजनों के निमित्त है जिस से जगतसंबधी आनन्द पैदा होता है। धन का एक प्रेम है जो धन ही के निमित्त है और यह प्रेम लोभ है इत्यादि इत्यादि। वह अभिप्राय कि जिस के लिये धन का खोज है धन का प्रयोजन कहलाता है और प्रत्येक प्रेम अपने गुण को अपने अभिप्राय से निकालता है क्योंकि सब वस्तुएं उस अभिप्राय के बस में रहती हैं।

नरक की आग का और दान्तपीसने का क्या तात्पर्य है।

५६६। इस समय तक बहुत ही थोड़े लोगों ने अनन्त आग और दान्तपीसने की बातों का तात्पर्य समझा जिन बातों की सूचना धर्मपुस्तक में नरकनिवासियों के विभाग के नाम से पाई जाती है। क्योंकि मनुष्य धर्मपुस्तक के बारे

में आत्मिक अर्थ के न जानने के कारण भौतिक भाव से ध्यान करते हैं। और इस लिये कोई लोग यह जानते हैं कि आग से तात्पर्य भौतिक आग है कोई जानते हैं कि उस से तात्पर्य साधारण रूप से यातना है कोई लोगों को यह बोध है कि उस का तात्पर्य अन्तःकरण का दुख है और कोई यह समझते हैं कि वह बात केवल भय को उकसाने के लिये और दुष्ट लोगों को अपराध करने में रोकने के लिये काम में आती है। इसी रीति से कोई लोग जानते हैं कि दान्तपीसने से तात्पर्य केवल दान्त का पीसना है कोई लोगों को यह बोध है कि वह केवल घृणायुक्त भय है जैसा कि वह है जो दान्तपीसने के ध्वनि से उत्पन्न होता है। परंतु धर्मपुस्तक के आत्मीय अर्थ के जानने से अनन्त आग की और दान्तपीसने की बातों का यथार्थ तात्पर्य प्रकाशित होता है। क्योंकि धर्मपुस्तक में के प्रत्येक वचन में और वचनों के अर्थों की प्रत्येक श्रेणी में कोई आत्मीय अर्थ हैं। क्योंकि धर्मपुस्तक अपनी छाती में आत्मिक है और जो आत्मिक है सो किसी प्राकृतिक रीति को छोड़ अन्य किसी रीति से मनुष्य को प्रकाशित न हो सकता है। इस वास्ते कि मनुष्य प्राकृतिक जगत में है और जगत की वस्तुओं की ओर से ध्यान करता है। इस कारण अब हम अनन्त आग की और दान्तपीसने की बातों का विवरण करते हैं जब कि ये वाक्य मृत्यु के पीछे आत्माओं की अवस्था के विषय काम में आते हैं।

५६७। गरमी दो मूलों से उत्पन्न होती है एक तो स्वर्ग का सूर्य है जो कि प्रभु है दूसरा जगत का सूर्य है। वह गरमी जो स्वर्ग के सूर्य से निकलती है आत्मीय गरमी है जो कि सारांश से ले प्रेम है। (न० १२६ से १४० तक देखो)। परंतु वह गरमी जो जगत के सूर्य से निकलती है प्राकृतिक गरमी है जो कि अपने सारांश में प्रेम नहीं है परंतु वह आत्मीय गरमी या प्रेम के लिये एक उचित पात्र होने के योग्य है। कई एक सुविज्ञात बातें भली भांति प्रत्यक्ष दिखाती हैं कि प्रेम अपने सारांश में गरमी है। क्योंकि मन और इस से शरीर भी प्रेम के द्वारा गरम हो जाता है। और वह गरमी प्रेम की तीक्ष्णता और गुण के अनुरूप है। मनुष्य जाड़े और गरमी के मौसिमों में वह हाल भुगतता है। लहू का गरम होना उसी बात का अधिक प्रमाण है। प्राकृतिक गरमी जो जगत के सूर्य से निकलती है आत्मीय गरमी का एक पात्र होकर काम में आती है यह बात शरीर के गरम होने से प्रत्यक्ष है। क्योंकि शरीर की गरमी आत्मा की गरमी से उत्पन्न होती है और शरीर में वह इस का प्रतिनिधि है। परंतु वसन्त और ग्रीष्म की गरमी का जो प्रभाव हर प्रकार के पशुओं पर है उस से वह बात अधिक स्पष्टता के साथ प्रत्यक्ष होती है क्योंकि उस समय वे पशु बरस बरस अपना अपना प्रेम नया किया करते हैं। न कि उन ऋतुओं की गरमी पशुओं के चित्त में प्रेम डालती है पर वह उस गरमी को जो उन के अन्दर आत्मीय जगत से बहती है ग्रहण करने पर उन के शरीर लगाती है। क्योंकि आत्मीय जगत प्राकृतिक जगत में बहता है जैसा कि कोई कारण अपने कार्य में बहता है। यदि कोई मनुष्य यह समझे कि प्राकृतिक गरमी पशुओं का प्रेम उत्पन्न करती है वह बड़ा मिथ्याबोध करता है।

क्योंकि आत्मीय जगत प्राकृतिक जगत में बहता है न कि प्राकृतिक जगत आत्मिक जगत में। और सारा प्रेम आत्मिक है इस वास्ते कि वह जीव ही का है। यदि कोई मनुष्य इस बात पर विश्वास करे कि प्राकृतिक जगत में कोई वस्तु आत्मीय जगत से अन्तःप्रवाह के बिना स्वतन्त्रवत होती है वह भी मिथ्याबोध करता है। क्योंकि प्राकृतिक वस्तुएं संपूर्ण रूप से आत्मीय वस्तुओं के द्वारा होती हैं और बनी रहती हैं। शाकसंबन्धी राज की वस्तुएं भी आत्मीय जगत में से एक अन्तः-प्रवाह के द्वारा उगती हैं। क्योंकि वसन्त और ग्रीष्म ऋतु की प्राकृतिक गरमी केवल बीजों के चौड़ाने और खोलने के द्वारा (ता कि वे अपने भीतरी भाग पर उस अन्तःप्रवाह का प्रभाव अंखुआने का कारण होकर करने दें) बीजों को प्राकृतिक रूपों पर प्रस्तुत करती है। ये बातें यह दिखलाने के लिये लिखी जाती हैं कि गरमी दो प्रकार की हैं। एक तो आत्मिक है और दूसरी प्राकृतिक। और आत्मिक गरमी स्वर्ग के सूर्य से होती है और प्राकृतिक गरमी जगत के सूर्य से। और आत्मिक अन्तःप्रवाह का प्राकृतिक वस्तुओं में बहकर जाना और पीछे आ-त्मिक और प्राकृतिक वस्तुएं दोनों का सहोद्योग भी जगत के दृग्विषय उत्पन्न करता है [६२]।

५९८। वह आत्मीय गरमी जो मनुष्य में है उस के जीव की गरमी है। क्योंकि (जैसा कि हम अभी कह चुके हैं) वह गरमी अपने सारांश में प्रेम है। और यह वही तात्पर्य है जो धर्मपुस्तक में आग की बात का है। स्वर्गीय आग से तात्पर्य प्रभु का और पड़ोसी का प्यार रखना है और नरकीय आग से तात्पर्य आत्मप्रेम और जगतप्रेम है।

५९९। नरक की या नरकीय आग उसी मूल से उत्पन्न होती है जिस से स्वर्ग की या स्वर्गीय आग होती है। दोनों आग स्वर्ग के सूर्य से जो प्रभु है होती है परंतु ईश्वरीय प्रस्ताव अपने ग्रहण करनेवालों के द्वारा नरकीय प्रस्ताव हो जाता है। क्योंकि आत्मीय जगत से सारा अन्तःप्रवाह ग्रहण करने के अनुकूल या उन रूपों के अनुकूल कि जिन में वह बहकर जाता है विशेष गुण धारण करता है ठीक जैसा कि जगत के सूर्य की गरमी और ज्योति अपने ग्रहण करनेवालों के द्वारा रूपान्तर भुगतती है। जब प्राकृतिक गरमी झाड़वारियों और फूलवाड़ियों में बहकर जाती है तब वह उद्भिज्ज उत्पन्न करती है और रमनीय और मनोहर सुगन्धों को निकालती है। परंतु यदि वही गरमी गूहभरी और मृतशरीरवत वस्तुओं में बहकर आवे तो वह सड़ावट पैदा करेगी और रोगकारी और घृणोत्पादक कुग-न्धों को निकालती है। इसी रीति से जब प्राकृतिक ज्योति एक वस्तु पर पड़ती

---

६२ आत्मीय जगत का एक अन्तःप्रवाह प्राकृतिक जगत में बहता है। न० ६०५३ से ६०५८ तक • ६१८९ से ६२१५ तक • ६३०७ से ६३२७ तक • ६४६६ से ६४९५ तक • ६५९८ से ६६२६ तक। और वह पशुओं के जीवों में भी बहता है। न० ५८५०। और वह शाकसंबन्धी राज की वस्तुओं में भी बहता है। न० ३६४८। और वह अन्तःप्रवाह ईश्वरीय परिपाटी के अनुकूल काम करने की एक नित्य चेष्टा है। न० ६२११ वें परिच्छेद के अन्त पर।

है तब वह सुन्दर और मनोरञ्जक रंगों को पैदा करती है परंतु यदि वह दूसरी वस्तु पर पड़े तो वह असुन्दर और असुष्टिकर रंगों को पैदा करेगी। और स्वर्ग के सूर्य की गरमी और ज्योति का वही हाल भी है। क्योंकि जब गरमी या प्रेम किसी भले कर्म्मपद में बहकर जाता है जैसा कि भले मनुष्यों में या भले आत्माओं में या भले दूतों में तब वह उन की भलाई को सफल कर देता है। परंतु जब वह बुरे लोगों में बहकर जाता है तब विपरीत फल उत्पन्न होता है। क्योंकि उन लोगों की बुराइयें उस प्रेम को या तो बुझाती है या बिगाड़ती है। इस रीति से भी जब स्वर्ग की ज्योति भलाई की सचाइयों में बहकर जाती है तब वह बुद्धि और ज्ञान उत्पन्न करती है। परंतु जब वह बुराई की झुठाइयों में बहकर जाती है तब वह बदलकर नाना प्रकार के पागलपने और लहरें हो जाती हैं। इस लिये हर एक अवस्था में किसी वस्तु का फल ग्रहण करने पर अवलम्बित है।

५७०। जब कि नरक की आग आत्मप्रेम और जगतप्रेम है तो उस में हर एक लालसा जो उन प्रेमों से पैदा होती है समाती है। क्योंकि लालसा प्रेम है प्रेम के नैरन्तर्य में। क्योंकि मनुष्य उस को नित्य चाहता है जिस का प्रेम वह करता है। लालसा आनन्द भी है क्योंकि जब कोई मनुष्य किसी वस्तु को पाता है जिस का प्रेम या जिस की इच्छा वह करता है तब वह मनुष्य आनन्द भुगतता है। और हृदयजात आनन्द का अन्य कोई मूल नहीं है। इस कारण नरक की आग वह लालसा और आनन्द है जो आत्मप्रेम से और जगतप्रेम से उत्पन्न होता है। और जो बुराइयें इन प्रेम से उत्पन्न होती हैं ये ई हैं अर्थात औरों की निन्दा और द्वेष और शत्रुता उन के विरुद्ध जो हमारा साम्हना करता है और डाह और द्रोह और इस लिये निर्दयता और क्रूरता। और ईश्वरीय सत्ता के विषय वे बुराइयें ये ई हैं अर्थात उन के होने का नटना और इस से उस की निन्दा और अवज्ञा और कलीसिया की पवित्र वस्तुओं की निन्दा करनी। जब मनुष्य मृत्यु के पीछे बदलकर आत्मा हो जाता है तब इन बुराइयों का क्रोध और द्वेष सब पवित्र वस्तुओं के विरुद्ध हो जाता है। (न० ५६२ को देखो)। और जब कि बुरे लोगों में की बुराइयें उन के विरुद्ध जो वे शत्रु कहलाती हैं और जिन के विरुद्ध वे द्वेष और बदला लेने से जलती हैं सत्यानाश और हत्या की धमकी सदा देती हैं इस लिये उन के हृदय का आनन्द उन शत्रुओं के नष्ट करने की और उन की हत्या करने की इच्छा है। और जब वे उन का सत्यानाश भी नहीं कर सकते तब वे उन की हिंसा करने और सताने की इच्छा करने में भी आनन्द भोगती हैं। ये वे ई वस्तुएं हैं जो आग की बात से प्रकाशित हैं जब कि धर्मपुस्तक में बुरे लोगों का और नरक का बयान होता है। प्रमाण देने के वास्ते कई एक वचन यहां दिये जाते हैं अर्थात "उन में हर एक दम्भी और कुकर्मी है और हर एक मुंह मूर्खता की बात बोलता है। क्योंकि दुष्टता आग की भांति जलाती है। वह कंटेले झाड़ और खार-इस्तान को खा जावेगी और जंगल की झाड़ी में आग फूंक देगा कि वे धूंवें के सदृश उड़ते फिरेंगे। और लोग आग के इन्धन के समान होवेंगे। कोई मनुष्य अपने भाई को

क्षमा नहीं करेगा"। (ईसाइयाह पर्व ९ वचन १७ • १८ • १९)। "मैं आस्मानों में और पृथिवी पर अनूठी शक्ति प्रकाश करूंगा अर्थात लहू और आग और धूवें के खंभ। सूर्य अन्धेरा हो जावेगा"। (योएल पर्व २ वचन ३० • ३१)। "उस की पृथिवी जलता हुआ राल होगी। यह रात दिन कभी न बुझेगी। उस से धूंआं अनन्तकाल तक उठता रहेगा"। (ईसाइयाह पर्व ३४ वचन ९ • १०)। "देखो वह दिन आता है जो चूल्हे के समान तापक होगा। तब सारे अभिमानी लोग और हर एक जो बुराई करता है खोंटी के सदृश होंगे। और वह दिन जो आता है उस को जलावेगा"। (मलाकी पर्व ४ वचन १)। "बेबिलन देवों का घर हो गया। और उस के जलने का धूंआं देखकर यों पुकार उठे। और उस का धूंआं अनन्तकाल तक उठता रहता है"। (एपोकलिप्स पर्व १८ वचन २ • १८। पर्व १९ वचन ३)। "उस ने उस गड़हे को जिस की थाह नहीं खोला तो उस गड़हे से बड़े चूल्हे का सा धूंआं उठा और उस गड़हे के धूंवें से सूर्य और वायु अन्धेरा हो गया"। (एपोकलिप्स पर्व ९ वचन २)। "घोड़ों के मुखों से आग और धूंआं और गन्धक निकलती थी। इन तीनों से अर्थात आग से और धूंवें से और गन्धक से तिहाई मनुष्य मारे गये"। (एपोकलिप्स पर्व ९ वचन १७ • १८)। "यदि कोई मनुष्य उस पशु की पूजा करे तो वह परमेश्वर के क्रोध की मदिरा को जो उस के क्रोध के पियाले में बिना मिलाए ढाली गई पीवेगा। और वह आग और गन्धक में यातना उठावेगा"। (एपोकलिप्स पर्व १४ वचन ९ • १०)। "चौथे दूत ने अपना पियाला सूर्य पर उंडेला और उसे सामर्थ्य दिया गया कि मनुष्यों को आग से झुलसाए। और मनुष्य उस गरमी से झुलस गये"। (एपोकलिप्स पर्व १६ वचन ८ • ९)। "वे आग की एक झील में जो गन्धक से जल रही है डाले गये"। (एपोकलिप्स पर्व १९ वचन २०। पर्व २० वचन १४ • १५। पर्व २१ वचन ८)। "हर एक वृक्ष जो अच्छा फल नहीं लाता काटा और आग में डाला जाता है"। (मत्ती पर्व ३ वचन १०। लूका पर्व ३ वचन ९)। "मनुष्य का पुत्र अपने दूतों को भेजेगा और वे सब ठोकर खिलाने वाली वस्तुओं और बदकारों को उस के राज में से चुनकर उन्हें जलते चूल्हे में डाल देंगे"। (मत्ती पर्व १३ वचन ४१• ४२• ५०)। "तब वह उस से जो बाएं हाथ पर खड़े हैं कहेगा कि हे शापाहो मेरे साम्हने से उस अनन्तकालिक आग में जाओ जो शैतान और उस के दैत्यों के लिये प्रस्तुत की गई है"। (मत्ती पर्व २५ वचन ४१)। "वे अनन्तकालिक आग में अर्थात नरक की आग में डाले जावेंगे जहां कि कीड़ा नहीं मर जाता है और आग नहीं बुझाई जाती"। (मत्ती पर्व १८ वचन ८ • ९। मार्कस पर्व ९ वचन ४३ से ४८ तक)। धनी ने नरक में से इब्रहीम से यह कहा कि "मैं इस ठेम में यातना उठाता हूं"। (लूका पर्व १६ वचन २४)। इन वचनों में और कई एक अन्य वचनों में आग से तात्पर्य वह लालसा है जो आत्म-प्रेम से और जगतप्रेम से पैदा होती है और उस के निकलनेवाले धूंवें से तात्पर्य वह झुठाई है जो बुराई से निकलती है।

५७१। जब कि नरकीय आग का तात्पर्य उन बुराइयों के करने की लालसा

है जो आत्मप्रेम और जगतप्रेम से उत्पन्न होती है और जब कि वह लालसा नरक के सारे निवासियों पर प्रबल है (जैसा कि हम अगले बाब में लिख चुके हैं) जो जब नरक खोले जाते हैं तब उन में से बहुत सी आग और धूंआं देख पड़ता है उस आग और धूंएं के समान जो जलते हुए घरों से उठ आता है। उन नरकों में से जिन में आत्मप्रेम प्रबल है घनी आग सी वस्तु आन निकलती है और उन नरकों में से कि जिन में जगतप्रेम प्रबल है टेम सी वस्तु निकलती है। परंतु जब नरक बन्द हुए हैं तब कोई आग सी वस्तु नहीं देख पड़ती। इस के स्थान इकट्ठे हुए अविरल धूंएं का एक काला राशि दिखाई देता है। तौ भी नरकों के अन्दर आग अभी उग्र तेज से झुंझलाती है और उस गरमी के द्वारा जो उन में से निकलती है मालूम देती है। वह गरमी किसी घर के जलाने के पीछे जले हुए खण्डहर की गरमी के समान है। और कोई स्थानों में वह जलती हुई भट्टी के सदृश है। और अन्य स्थानों में वह गरम नहानघर की गीली गरमी के समान है। और जब वह मनुष्य में बहती है तब वह उस में लालसा उत्पन्न करती है। बुरे मनुष्यों में वह गरमी द्वेष और बदला लेना पैदा करती है और रोगग्रस्तों में पागलपनों को उत्पन्न करती है। ऐसी आग या ऐसी गरमी सभों में विद्यमान है जो आत्मप्रेम और जगतप्रेम पर स्थापित हैं। क्योंकि इन के आत्मा उन नरकों के बस में हैं जहां कि वे प्रेम प्रबल हैं और इस लिये वे शरीर में जीते हुए भी उन नरकों से संसर्ग रखते हैं। तौ भी यह कहना चाहिये कि नरक के निवासी यथार्थ में आग में नहा जीते। वह आग केवल मौया है। क्योंकि उन पर कुछ दाहन नहीं लगता परंतु केवल गरमी लगती है उस गरमी के समान जो वे पहिले जगत में भुगतते थे। आग की यह माया प्रतिरूपता होने से पैदा होती है। क्योंकि प्रेम आग से प्रतिरूपता रखता है। और सब वस्तुएं जो आत्मीय जगत में दिखाई देती है प्रतिरूप हैं।

५७२। जब जब स्वर्ग की गरमी नरक की गरमी में या नरकीय गरमी में बहकर जाती है तब तब नरकीय गरमी बदलकर अत्यन्त ठंडाई हो जाती है। और उस समय नरकीय आत्मा शीतज्वरग्रस्त मनुष्य के समान कांपते हैं और भीतर से यातना उठाते हैं। यह हाल उन के ईश्वरत्व से संपूर्ण विरोध करने से उत्पन्न होता है। क्योंकि स्वर्ग की गरमी जो ईश्वरीय प्रेम है नरक की गरमी को जो आत्मप्रेम है बुझाती है और इस लिये उन के जीव की आग को बुझाती है। और इस से अत्यन्त ठंडाई और कांपना और यातना निकलती है। इस के पीछे घना अन्धेरा चलता है और इस से मोह और अन्धता होती है। परंतु ये अवस्थाएं कभी नहीं पैदा होतीं केवल उस समय को कि जब नरकीय व्यतिक्रम के अत्यन्त उपद्रवों का दमन करने की आवश्यकता हो।

५७३। जब कि नरकीय आग बुराई करने की हर एक लालसा को जो आत्मप्रेम से बहती है प्रकाशित करती है तो वह नरक की यातना भी प्रकाशित करती है। क्योंकि वह लालसा जो उस प्रेम से निकलती है स्वार्थी लोगों को

उन सभों की हिंसा करने की इच्छा से जो उन का संमान और सत्कार और पूजा नहीं करते उकसाती है। और जितना क्रोध उन का है और जितना द्वेष और बदला उन का है जो उस क्रोध से निकलता है उतनी ही लालसा उन लोगों पर निर्दयता करने की उन की भी है। जब वह लालसा किसी सभा के प्रत्येक मेम्बर में प्रबल है जो सभा कोई बाहरी बन्धनों से (जैसा कि नियम के भय से या सुख्याति या संमान या लाभ या जीव के विनाश से) नहीं रोकी जाती है तब हर कोई अपनी निज बुराई के प्रभाव से अपने साथियों पर चढ़ बैठता है और जितना बन पड़े उतना ही वह उन को अपने बस कर लेता है और उन पर जो उस के बस नहीं आते निर्दयता करने में आनन्दित होता है। निर्दयता करने का आनन्द प्रधानता के प्रेम से इतने गाढ़ेपन से संयुक्त है कि जहां कहीं वे विद्यमान हैं वहां वे समान तीक्ष्णता के होते हैं। क्योंकि हिंसा करने का आनन्द द्वेष डाह द्रोह और बदला लेने में जो कि उस प्रेम की बुराइयें हैं गड़ जाता है। सब नरक इस प्रकार की सभाओं के हैं और इस लिये हर एक नरकीय आत्मा और किसी आत्मा के विरुद्ध अपने हृदय में द्रोह का पालन करता है। और जहां तक उस को सामर्थ्य पड़ता है वहां तक वह उस द्रोह की ओर से उन की यातना उग्र निर्दयता के साथ करता है। ये निर्दयताएं और वह यातना भी जो उन निर्दयताओं से उत्पन्न होती है नरक की आग से प्रकाशित हैं क्योंकि वे नरकीय लालसाओं का फल हैं।

५७४। न० ५४८ वें परिच्छेद में यह देखा गया कि बुरे आत्मा आप से आप अपने को नरक में गिरा देते हैं यद्यपि वहां अत्यन्त यातना मिलती है। और अब यह उचित हो सके कि हम संक्षेप में इस का बयान करें कि यह हाल क्योंकर होता है। हर एक नरक में से उन विशेष लालसाओं का जिन के द्वारा उस नरक के निवासी विशेषित हैं एक मण्डल भाफ के आकार में उड़ता जाता है। और जब वह मण्डल किसी से जो उसी लालसा में है मालूम किया जाता है तब उस के हृदय पर असर लगता है और वह आनन्द से भरपूर हो जाता है। क्योंकि लालसा का आनन्द एक ही वस्तु है। इस वास्ते कि जिस किसी की लालसा कोई मनुष्य करता है सो उस मनुष्य को आनन्दकारी है। इस कारण आत्मा अपने को उस नरक की ओर फिराता है जिस से वह मण्डल निकलता है और उधर को उस हृदयजात आनन्द के कारण जो वह मण्डल उस के चित्त में डालता है जाया चाहता है। इस लिये कि वह उस जगह की यातना को अभी नहीं जानता। परंतु वे भी जो उन के होने से सुपरिचित हैं उसी चाव से भी उकसते हैं इस हेतु से कि आत्मीय जगत में कोई अपनी निज लालसा का विरोध नहीं कर सकता। क्योंकि लालसा प्रेम की है और प्रेम मनभावन का है और मनभावन मनुष्य के स्वभाव ही का है और वहां पर हर कोई अपने स्वभाव से काम करता है। इस कारण जब कोई आत्मा आप से आप या अपनी निज स्वतन्त्रता से अपने निज नरक की ओर चला जाता है और उस में प्रवेश करता है तब वह पहिले पहिल मित्रतापूर्वक रीति से बैठने आता है और इस विश्वास पर वह यह गुमान करता है कि मैं मित्रों की संगत

में हूं। परंतु यह हाल केवल थोड़े घण्टों तक बना रहता है और उस समय में उस की परीक्षा उस के कपट के गुण के विषय और इस लिये उस के सामर्थ्य के गुण के विषय की जाती है। जब यह परीक्षा सिद्ध हुई तब उस के नये मित्र उस को नाना रीतियों से और बढ़ती हुई उग्रता और प्रचण्डता के साथ सताने लगते हैं। यह सन्ताप उस आत्मा को नरक में अधिक भीतरी स्थानों में और अधिक गहरे ठौरों में पहुंचाने से किया जाता है। क्योंकि आत्मा वहां तक हिंसाशील हैं जहां तक वह नरक जिस में वे रहते हैं भीतरी और गहरा है। पहिले सन्ताप के पीछे जब तक कि वह दास की अवस्था में न हो तब तक वे बुरे आत्मा उस आत्मा को उग्र ताड़नों के साथ सताते हैं। परंतु वहां उपद्रवी हलचल नित्य हुआ करते हैं क्योंकि हर कोई औरों की अपेक्षा सब से उत्तम हुआ चाहता है और औरों के विरुद्ध द्वेष से जलता है और इस से नया उपद्रव पैदा होते हैं जो सारी गति को बदलाते हैं। क्योंकि वे जो दास हो गये दासता से निकाले जाते हैं ता कि वे औरों के पराजय करने में किसी नये शैतान की सहायता करें। उस समय वे आत्मा जो नये उपद्रवी स्वामी के बस में होकर विना आगा पीछा किये उस के आज्ञाकारी नहीं होते फिर नाना रीतियों से सताए जाते हैं। और ये अदल बदल नित्य हुआ करते हैं। ये वे ई नरक की यातनाएं हैं जो नरक की आग कहलाती हैं।

५७५। दान्तपीसना झुठाइयों का और जो आत्मा झुठाइयों पर स्थापित हैं उन का नित्य झगड़ा और संग्राम औरों की निन्दा द्रोह हंसी उपहास और देवनिन्दा से संयुक्त है। ये बुराइयें नाना प्रकार की हत्याओं के रूप पर फूट निकलती हैं। क्योंकि हर एक आत्मा अपने निज मिथ्यातत्त्व के उपकार करने में लड़ाई करता है। और वह उस मिथ्यातत्त्व को सचाई पुकारता है। और जब वे झगड़े और संग्राम नरकों में से सुनाई देते हैं तब उन का तुमुल दान्तपीसने के समान है। और जब स्वर्ग से सचाइयें उधर को बहकर अन्दर जाती हैं तब उन का सच मुच दान्तपीसना हो जाता है। सब आत्मा जो प्रकृति को स्वीकार करके ईश्वरीय सत्ता को अनङ्गीकार करते हैं उन नरकों में हैं। और वे जिन्हों ने उस स्वीकार और अनङ्गीकार करने में अपने को दृढ़ किया सब से गहरे नरकों में हैं। प्रायः वे विषयी शारीरिक आत्मा हैं अर्थात उस प्रकार के आत्मा जो किसी वस्तु को अपनी आंखों से देखते हैं और अपने हाथों से छूते हैं इस को छोड़ और किसी वस्तु पर विश्वास नहीं करते। क्योंकि वे स्वर्ग से ज्योति को ग्रहण करने के योग्य नहीं हैं और इस से वे अपनों में किसी वस्तु को भीतर से नहीं देख सकते। इस लिये इन्द्रियों की सारी मिथ्यामतियें उन की समझ में सचाइयें हैं और उन के प्रभाव के बल वादानुवाद करते हैं। और यह वही कारण है कि जिस से उन का वादानुवाद दान्तपीसने के समान सुनाई देता है। क्योंकि आत्मीय जगत में सब झुठाइयें किरकिराती हैं और दान्त प्रकृति की अन्तिम वस्तुओं से और मनुष्य की उन

अन्तिम वस्तुओं से भी जो कि शारीरिक विषयी हैं प्रतिरूपता रखते हैं [६३]। नरक में दान्तों का पीसना है। इस बात का बयान इन वचनों में है अर्थात मत्ती पर्व ८ वचन १२। पर्व १३ वचन ४२ · ५०। पर्व २२ वचन १३। पर्व २४ वचन ५१। पर्व २५ वचन ३०। लूका पर्व १३ वचन १८।

नरकीय आत्माओं की अगाध दुष्टता और भयङ्कर चतुराई के बारे में।

५७६। हर कोई मनुष्य जो भीतर से ध्यान करता है और अपने निज मन की प्रवृत्ति का कुछ जानता है आत्माओं की उत्तम श्रेष्ठता को मनुष्यों की अपेक्षा देख सकता है और समझता है। क्योंकि मनुष्य पल भर में तर्कवितर्क करके उतने सिद्धान्तों का निर्णय कर सकता है जितना वह अधघण्टे भर में न तो बोल सकता है न लिख सकता है। और इस उदाहरण से यह बात स्पष्ट होती है कि जब मनुष्य अपने आत्मा में है और इस लिये जब वह आत्मा हो जाता है तब वह अपने आप से कैसा श्रेष्ठ होता है। क्योंकि आत्मा वह है जो ध्यान करता है और शरीर वह यन्त्र है कि जिस से आत्मा अपने ध्यानों को बोली से और लेखन से प्रगट करता है। यह वही कारण है कि जिस से जब मनुष्य मृत्यु के पीछे दूत हो जाता है तब उस की ऐसी बुद्धि और ज्ञान है जो उस बुद्धि और ज्ञान की अपेक्षा कि जो वह जगत में रखता था अकथनीय है। क्योंकि जब वह जगत में रखता था तब वह शरीर से संयुक्त था और शरीर के द्वारा प्राकृतिक जगत में था। इस कारण उस आत्मीय ध्यान प्राकृतिक बोधों में बहकर जाते थे। और वे बोध एक एक करके साधारण और स्थूल और अस्पष्ट बोध हैं और इस लिये वे आत्मीय ध्यान के असंख्य वस्तुओं को ग्रहण करने के योग्य नहीं हैं। प्राकृतिक ध्यान आत्मीय ध्यानों को घनी छायाओं से जो कि जगत की चिन्ताओं से उत्पन्न होती हैं घेरते हैं। परंतु ये प्राकृतिक ध्यान तब थम्भ जाते हैं जब आत्मा शरीर से छुट जाता है और प्राकृतिक जगत से अपने जीव के यथार्थ मण्डल में अर्थात आत्मीय जगत में जाकर अपनी आत्मीय अवस्था में प्रवेश करता है। क्योंकि उस समय उस के ध्यान और अनुराग की अवस्था उन की पहिली अवस्था से बहुत ही उत्तम है और जो बयान अभी हो चुका है उस से वह बात स्पष्ट रूप से मालूम हुआ। और यह वही हेतु है कि जिस से दूतविषयक ध्यान अकथनीय और अनिर्वचनीय बातों तक पसरता है। और ये बातें मनुष्य के प्राकृतिक ध्यानों में कभी नहीं प्रवेश कर सकतीं यद्यपि हर एक दूत मनुष्य भी बनकर जन्म लेता हो और मनुष्य के तौर पर आचरण

---

६३ दान्त के प्रतिरूपता रखने के बारे में। न० ५५६५ से ५५६८ तक। निराले विषयी मनुष्य जो प्रायः कुछ भी आत्मीय ज्योति नहीं रखते दान्त से प्रतिरूपता रखते हैं। न० ५५६५। धर्मपुस्तक में दान्त से तात्पर्य विषयी तत्त्व है जो मनुष्य के जीव का अन्तिम है। न० ६०५२ · ६०६२। परलोक में दान्तपीसना उन से होता है जो इस बात पर विश्वास करते हैं कि प्रकृति सब कुछ है और ईश्वरत्व न कुछ बात है। न० ५५६८।

करता हो और उस की अपनी समझ में वह और मनुष्यों की अपेक्षा कुछ अधिक ज्ञान रखता हुआ न मालूम भी होता हो।

५७७। जितना उत्तम और अकथनीय दूतों का ज्ञान और बुद्धि हो उतना ही अपरिमित और तीक्ष्ण नरकीय आत्माओं की दुष्टता और कपट होगा। क्योंकि जब मनुष्य का आत्मा शरीर से छुट जाता है तब वह अपनी निज भलाई में या अपनी निज बुराई में है। दूतविषयक आत्मा अपनी निज भलाई में है और नरकीय आत्मा अपनी निज बुराई में है। क्योंकि हर एक आत्मा अपनी निज भलाई या अपनी निज बुराई में है इस वास्ते कि वह अपना निज प्रेम में है जैसा कि हम बार बार कह चुके हैं। और इस कारण जब कि दूतविषयक आत्मा अपनी निज भलाई से ध्यान और संकल्प करते हैं और बोलते हैं और आचरण करते हैं वैसा ही नरकीय आत्मा अपनी निज बुराई से ध्यान और संकल्प करते हैं और बोलते हैं और आचरण करते हैं। परंतु निज बुराई से ध्यान और संकल्प करना और बोलना और आचरण करना उस बुराई में की प्रत्येक वस्तु से वही आचरण करना है। जब वे आत्मा शरीर में थे तो उन का और ही हाल था क्योंकि उस समय आत्मा की बुराई नियम के भय से और लाभ संमान और सुख्याति का मान रखने से रोकी जाती थी। ये बन्धन हर एक मनुष्य को बन्द करते हैं और उस के आत्मा की बुराई उस के यथार्थ रूप पर फूट निकलने से बचाते हैं। इस से अतिरिक्त उस समय मनुष्य के आत्मा की बुराई बाहरी सत्यशीलता खराई और न्याय से और सचाई और भलाई के अनुराग से जिस का वह जगत के निमित्त कपटरूपी भेषधारण करता है लपेटी हुई और ओटी हुई है। इन बाहरी सदृशताओं के नीचे बुराई ऐसी रीति से छिपी हुई और अस्पष्ट रूप से पड़ी रहती है कि मनुष्य अपने आत्मा की दुष्टता और कपट को आप कष्टता से जानता है। न कि वह आप से आप ऐसा दैत्य है जैसा कि वह मृत्यु के पीछे हो जाता है जब कि उस का आत्मा अपने आप में और अपने स्वभाव में आता है। उस समय ऐसी अति दुष्टता प्रकाशित होती है कि वह विश्वास करने से बाहर है। क्योंकि सहस्रों बुराइयें प्रधान बुराई से फूट निकलती हैं और उन में से कई एक बुराइयें हैं जिन का बयान किसी भाषा के शब्दों से किया नहीं जा सकता। बहुत परीक्षा करने से मुझे यह सामर्थ्य आया कि मैं उन बुराइयों का गुण जानूं और उस को मालूम करूं। क्योंकि प्रभु ने मुझे यह सामर्थ्य दिया कि मैं एक ही समय आत्मा के विषय आत्मीय जगत में हों और शरीर के विषय प्राकृतिक जगत में। और इस कारण मैं इस का प्रमाण दे सकता हूं कि उन की इतनी बड़ी बुराई है कि उस के सहस्रवें भाग का बयान किसी न किसी रीति से किया नहीं जा सकता। और यदि प्रभु मनुष्य की रक्षा न करता तो असम्भव है कि मनुष्य नरक से बचता। क्योंकि दूत स्वर्ग से और आत्मा नरक से मनुष्य के पास उपस्थित खड़े रहते हैं (जैसा कि हम न० २९२ वें और २९३ वें परिच्छेदों में बयान कर चुके हैं)। और यदि मनुष्य ईश्वरीय सत्ता को स्वीकार न करे और श्रद्धा और अनुग्रह के अनुकूल आचरण न करे तो प्रभु

उस की रक्षा न कर सके। क्योंकि यदि वह ऐसा आचरण न करे जो उस स्वीकार पर स्थापित हो तो वह अपने आप को फिरावे और इस लिये उस के आत्मा में इन आत्माओं की बुराई भर जावेगी। तो भी प्रभु मनुष्य को उन बुराइयों से जिन को मनुष्य उन आत्माओं से संयोग करने के कारण अपने पर लगाता है और यों कहो अपनी ओर खींचता है नित्य अलग कर देता है। क्योंकि यदि वह भीतरी बन्धनों से (जो कि अन्तःकरण के बन्धन हैं और जिन को मनुष्य यदि वह ईश्वरीय सत्ता को अस्वीकार करे ग्रहण न कर सकता है) अलग न हो तो वह बाहरी बन्धनों से रोका जावे जो कि (जैसा कि हम अभी कह चुके हैं) नियम और उस के ताड़नों का भय है और लाभ संमान और सुख्याति के नष्ट होने का भय है। ऐसा मनुष्य तो अपने प्रेम के आनन्दों के द्वारा और उन के नष्ट होने के भय के द्वारा बुराइयों से खींचा तो जा सकता है परंतु वह इसी रीति से आत्मीय भलाइयों में नहीं लाया जा सकता। क्योंकि जब वह उन की ओर खींचा जाता है तब वह चतुराई और कपट पर ध्यान धरता है और भलाई खराई और न्याय का भेष धारण करता है इस अभिप्राय पर कि और लोग उस का संमान करें और इस से वह उन को धोखा खिलावे। यह चतुराई उस के आत्मा की बुराई से अपने को जोड़ती और उस में अपना सा गुण भर देता है।

५७८। सब आत्माओं में से वे सब से बुरे हैं जो आत्मप्रेम के कारण बुराइयों में थे और जिन की गति भीतरी छल से उत्पन्न हुई थी। क्योंकि छल ध्यानों और अभिप्रायों में और किसी बुराई की अपेक्षा अधिक संपूर्ण रूप से प्रवेश करता है और उन में विष भर देता है और इस से मनुष्य का सारा आत्मीय जीव को नष्ट करता है। प्रायः वे सब नरकों के पीछे की ओर बसते हैं और वे जिन कहलाते हैं। उन का यह विशेष आनन्द है अर्थात वे अपने को अदृश्य कर डालते हैं और औरों के आस पास प्रेत के रूप पर इधर उधर उड़े फिरते हैं और छिपके से बुराइयों को जो कि वे इधर उधर बिथराते हैं जैसा कि सांप विष को छिटकाते हैं चित्तों में डालते हैं। वे आत्मा औरों की अपेक्षा अधिक भयङ्कर रूप से यातना भुगतते हैं। और वे आत्मा जो छली नहीं और द्रोही चतुराई से भरपूर न थे परंतु तो भी उन बुराइयों में थे जो आत्मप्रेम से निकलते हैं पीछे की ओर के नरकों में भी हैं पर उन के नरक कम गहरे हैं। इस के विपरीत वे आत्मा जो उन बुराइयों में हैं जो जगतप्रेम से निकलती हैं आगे की ओर के नरकों में हैं और वे आत्मा कहाते हैं। ये ऐसी बुराइयें अर्थात वे ऐसी दुष्टताएं और पलटे नहीं हैं जैसा कि वे आत्मा हैं जो आत्मप्रेम की बुराइयों में हैं और इस लिये वे कम छली और कम द्रोही हैं और कम तीक्ष्ण नरकों में बसते हैं।

५७९। जो जिन कहलाते हैं उन की बुराई का विशेष गुण मुझ को परीक्षा करने से प्रकाशित हुआ। जिन ध्यानों में बहकर उन पर असर नहीं करते पर अनुरागों में जो कि वे देखते हैं और सूंघते हैं। जैसा कि कुत्ते बन में अपने

आखेट को सूंघकर अहेर करते हैं। जब वे किसी में अच्छे अनुरागों को मालूम करते हैं तब वे झट पट उन अनुरागों का बुरा करते हैं और उन को उस मनुष्य के आनन्दों के द्वारा अद्भुत रीति से खींचते हैं और झुकाते हैं। और यह ऐसे छिपके से और ऐसी द्रोही चतुराई से किया जाता है कि यह उस का कुछ भी नहीं जानता। क्योंकि वे अत्यन्त निपुण सावधान काम में लाते हैं कि कहीं कुछ न कुछ ध्यान में पैठने न पावे क्योंकि यह उन को प्रकाश करेगा। वे मनुष्य के विषय सिर के पिछले भाग के नीचे बैठे हुए हैं। ये जिन मनुष्य थे जिन्हों ने मनुष्यों के अनुरागों और लालसाओं के द्वारा खींचने और समझाने से औरों के मनों को कपट से मोहित किया। परंतु हर एक मनुष्य से जिस के सुधारने की कुछ भी आशा रहती है ऐसे आत्माओं को प्रभु दूर करता है। क्योंकि उन का ऐसा बल है कि वे न केवल मनुष्य के अन्तःकरण को नष्ट कर सकते हैं परंतु वे उस की बपौती बुराइयें भी प्रकाश कर सकते हैं जो कि अन्यथा छिपी रहती हैं। इस कारण प्रभु ने यह बन्दोबस्त किया है कि जिनों के नरक संपूर्ण रूप से बन्द रहें ता कि मनुष्य उन बुराइयों में खींचा न जावे। और जब कोई मनुष्य जो समस्वभाव का है परलोक में आ जावे वह झट पट जिनों के नरक में गिरा दिया जाता है। जब वे जिन अपने कपट और चतुराई के विषय परखे जाते हैं तब वे सांप के समान दिखाई देते हैं।

५८०। नरकीय आत्माओं की अत्यन्त दुष्टता अपनी भयङ्कर कपटों से प्रकाशित हुई है। वे कपटें ऐसी बहुसंख्यक हैं कि केवल उन की गणना करना सारी पोथी को भर देगा और उन का बयान बहुत ही पोथियों को भर देगा। परंतु प्रायः ये सारी कपटें जगत में विज्ञात नहीं हैं। एक भांति की कपट प्रतिरूपों के बिगाड़ने से संबन्ध रखती है। दूसरी कपट ईश्वरीय परिपाटी के अन्तिमों के बिगाड़ने से संबन्ध रखती है। एक कपट परिवर्त्त से अर्थात जो वस्तु सताई जाती है उस की ओर फिरने से और उस पर दृष्टि लगाने से और अन्य आत्माओं के द्वारा जो उन आत्माओं से कुछ दूरी पर हैं और औरों के सहाय जो उन आत्माओं की ओर से भेजे हुए हैं आचरण करने से और ध्यानों और अनुरागों के सम्प्रदान और अन्तःप्रवाह के बिगाड़ने से संबन्ध रखती है। एक कपट लहरों के द्वारा आचरण करने से संबन्ध रखती है। एक कपट ध्यान और अनुराग उन आत्माओं की ओर से निकासने से संबन्ध रखती है कि जिस से वे किसी अन्य स्थान में विद्यमान हैं उस स्थान से कि जिस में वे सच मुच रहते हैं। एक कपट छलों और समझानों और झूठों से संबन्ध रखती है। जब किसी बुरे मनुष्य का आत्मा शरीर से छुटा हुआ है तब वह आप से आप उन कपटों को काम में लाता है। क्योंकि वे बुराई के स्वभाव ही में गड़ जाती हैं और इस लिये नरकीय दैत्य नरकों में आपस में एक दूसरे को सताते हैं। परंतु जब कि ये सब कपटें छलों और समझानों और झूठों की कपटों को छोड़ जगत में विज्ञात नहीं हैं तो उन का विशेष बयान न करूंगा इस वास्ते कि वे समझी नहीं जावेंगी क्योंकि वे बहुत ही भयङ्कर हैं।

५८१। प्रभु नरक में यातना करने देता है क्योंकि वहां बुराइयें और किसी रीति से रोकी और दबाई नहीं जा सकती। क्योंकि उन के रोकने और दमन करने के लिये और इस से नरकीय समूह को बन्धनों में रखने के लिये ताड़न का भय एक ही उपाय है। और कोई उपाय नहीं है। क्योंकि ताड़न और यातना के भय के बिना बुराई पागलपने के साथ फूट निकलेगी और सब सर्वव्यापी जगत तित्तर बित्तर होगा जैसा कि पृथिवी पर का कोई राज जिस में नियम और ताड़न न हो तित्तर बित्तर होगा।

नरकों के दिखाव और स्थान और बहुसंख्या के बारे में।

५८२। वे वस्तुएं जो आत्मीय जगत में (जहां आत्मागण और दूतगण रहते हैं) दृष्टिगोचर हैं उन वस्तुओं के जो प्राकृतिक जगत में (जहां मनुष्य रहते हैं) विद्यमान हैं ऐसी रीति से समान हैं कि उन दो प्रकार की वस्तुओं में कुछ भी भिन्नता नहीं देख पड़ती। वहां पटपड़ पहाड़ पर्वत चट्टान खड़ नदी और अन्य अन्य वस्तुएं हैं जो पृथिवी पर दिखाई देती हैं। तो भी सब की सब आत्मीय मूल की हैं और इस लिये वे केवल आत्माओं और दूतों को दृश्य हैं न कि मनुष्यों को इस वास्ते कि मनुष्य प्राकृतिक जगत में हैं। क्योंकि आत्मीय लोग उन वस्तुओं को देखते हैं जो आत्मीय मूल के हैं और प्राकृतिक लोग उन को देखते हैं जो प्राकृतिक मूल के हैं। इस हेतु से यदि मनुष्य आत्मा की अवस्था में होने न पावे तो जब तक वह मृत्यु के पीछे आत्मा न हो तब तक वह उन वस्तुओं को जो आत्मीय जगत में हैं किसी न किसी रीति से नहीं देख सकता। न कोई दूत न आत्मा यदि वह एक ऐसे मनुष्य के पास विद्यमान न हो जो आत्माओं और दूतों से बात चीत करने पाया प्राकृतिक जगत की किसी वस्तु को देख सकता है। क्योंकि मनुष्य की आंखें प्राकृतिक जगत की ज्योति को ग्रहण करने के योग्य हैं और दूतों और आत्माओं की आंखें आत्मीय जगत की ज्योति को ग्रहण करने के योग्य हैं। तो भी दोनों की आखें देखने में एकसां हैं। प्राकृतिक मनुष्य और बहुत ही थोड़े विषयी मनुष्य (जो उस वस्तु को छोड़ कि जिस को वे अपनी शारीरिक आंखों से देखते हैं और अपने शारीरिक हाथों से छूते हैं किसी अन्य वस्तु पर विश्वास नहीं करते) यह बात नहीं समझते कि आत्मीय जगत का वैसा स्वभाव है। क्योंकि दृष्टि और स्पर्श के इन्द्रियविषयक प्रभाव उस मनुष्य के विश्वास की अकेली नेव होकर वह इन प्रभावों की ओर से ध्यान करता है और इस कारण उस का ध्यान भौतिक है और न आत्मिक। आत्मिक जगत की वस्तुओं में प्राकृतिक जगत की वस्तुओं के साथ जो सदृशता पाई जाती है वह उन लोगों के मन में जो नूतन काल में मरे हुए यह संदेह उपजाती है कि क्या हम अब भी उस जगत में हैं कि जिस में हम ने जन्म लिया था और जिस को हम ने छोड़ा

है। और इस कारण वे मृत्यु को एक जगह से दूसरी जगह में जो पहिली जगह के सदृश है स्थानान्तरकरण ही पुकारते हैं। उस बाब में जो प्रतिमाओं और रूपों के बारे में है (न० १७० से १७६ तक) यह देखा जा सकता है कि दोनों जगतों में इस प्रकार की सदृशता तो है।

५८३। स्वर्ग आत्मीय जगत के बहुत ऊंचे स्थानों में हैं। नीचे स्थानों में आत्माओं का जगत है। और इन दोनों के नीचे नरक पाए जाते हैं। यदि आत्माओं के जगत में के आत्माओं के भीतरी भाग खुले हुए न होवें तो उन को स्वर्ग दृष्टिगोचर नहीं है यद्यपि वे स्वर्ग कभी कभी कुहासे या सफेद बादल के रूप पर दिखाई देते हैं। क्योंकि स्वर्ग के दूत बुद्धि और ज्ञान की एक भीतरी अवस्था में हैं और इस लिये वे उन के दृष्टिगोचर के ऊपर हैं जो आत्माओं के जगत में रहते हैं। परंतु वे आत्मा जो मैदानों और दरियों में रहते हैं एक दूसरे को तब लों देखता है जब लों वे अपने भीतरी भागों में पैठने पाने के द्वारा एक दूसरे से अलग होते हैं। क्योंकि उस समय यद्यपि भलाई बुराई को देख सकती है तो भी उस समय से लेकर बुराई भलाई को नहीं देख सकती। परंतु भले आत्मा अपने को बुरे आत्माओं से फिराते हैं और इस कारण वे अदृश्य हो जाते हैं। (आत्मा के जगत की ओर से) नरक दृष्टिगोचर नहीं हैं इस वास्ते कि वे बन्द हुए हैं। परंतु उन के मुहाने जो नरक के फाटक कहलाते हैं तब दृश्य हो जाते हैं जब वे बुरे आत्माओं के प्रवेश करने के लिये खोले जाते हैं। नरक के सब फाटक आत्माओं के जगत की ओर से खुलते हैं न कि स्वर्ग की ओर से।

५८४। हर कहीं नरक आत्माओं के जगत के पहाड़ टीलों चट्टान मैदान और दरियों के नीचे हैं। नरकों के मुहाने या फाटक कि जो पहाड़ टीलों और चट्टानों के नीचे हैं चट्टानों के गड़हों और छिद्रों के सदृश दिखाई देते हैं। कोई कोई चौड़े और बड़े हैं कोई तंग और सकरे हैं और बहुतेरे अड़बड़ और बेहड़ हैं। जब कोई व्यक्ति उन में देखती है तब वे अन्धेरे और धुन्धले देख पड़ते हैं। परंतु वे नरकीय आत्मा जो उन में रहते हैं ऐसे प्रकार की जलते हुए कोएले सरीखी ज्योति में है जिस को उन की आंखें ले लेने के योग्य हैं। क्योंकि जब वे जगत में जीते थे तब वे ईश्वरीय सचाई के विषय घन अन्धेरे में थे इस कारण कि वे उन सचाइयों को अस्वीकार करते थे। और वे झुठाइयों के विषय दिखाऊ रीति से ज्योति में थे इस वास्ते कि वे उन झुठाइयों को अङ्गीकार करते थे। इस लिये उन के आत्माओं की आंखों की दृष्टि ने ऐसा रूप पाया कि जो उस ज्योति के अनुकूल है। और इस कारण उन के लिये स्वर्ग की ज्योति घन अन्धेरा है। इस वास्ते जब वे अपने गड़हों में से निकलते हैं तब वे कुछ भी नहीं देख सकते। ये बातें स्पष्ट रूप से इस का प्रमाण देती हैं कि जितना मनुष्य एक ईश्वरीय सत्ता को स्वीकार करता है और स्वर्ग और कलीसिया की सचाइयों और भलाइयों को अपने आप में दृढ़ करता है उतना ही वह स्वर्ग की ज्योति में प्रवेश करता है। और जितना

मनुष्य एक ईश्वरीय सत्ता को अस्वीकार करता है और स्वर्ग और कलीसिया की उन वस्तुओं को जो भलाई और सचाई के विरुद्ध हैं अपने आप में दृढ़ करता है उतना ही वह नरक के घन अन्धेरे में प्रवेश करता है।

५८५। नरकों के मुहाने या फाटक जो मैदान और दरियों के नीचे हैं नाना प्रकार के रूपों के हैं। उन में से कोई कोई उन के सदृश हैं जो पहाड़ टीलों और चट्टानों के नीचे हैं। कोई कोई गुफों और गड़हों के सदृश हैं। कोई बड़े दरारों और भंवरों के समान हैं। कोई दलदलों के समान हैं और कोई पानी के अचल तड़ागों के सदृश। परंतु मुहाने सब के सब ढके हुए हैं और उस समय को छोड़ कि जिस को बुरे आत्मा आत्माओं के जगत से उन नरकों में फेंक डाले जाते हैं अन्य किसी समय को वे मुहाने खुले नहीं रहते। और उस काल को उन में से ऐसे प्रकार का भाफ निकलता है जो या तो अग्निमिश्रित धूंएं के समान है कि जो उस दिखावट के सदृश है जो जलते हुए घरों से आकर वायुमण्डल में दिखाई देता है या वह धूमरहित टेम के समान है या उस काजल के सदृश है जो किसी अन्तर्ज्वाली धुंआरे से निकलता है या कुहासे और घन बादल के समान है। मैं ने यह सुना है कि नरकीय आत्मा आप उन वस्तुओं को न तो देखते हैं न छूते हैं। क्योंकि जब वे उन के मध्य में हैं तब वे अपने निज वायुमण्डल में हैं और इस लिये अपने जीव के आनन्द में। परंतु वैसे दिखाव उन बुराइयों और झुठाइयों से जिन पर वे स्थापित हैं प्रतिरूपता रखते हैं अर्थात आग द्वेष और पलटा लेने से प्रतिरूपता रखती है धूंआं और काजर उन झुठाइयों के साथ जो द्वेष और पलटा लेने से निकलती हैं। टेम आत्मप्रेम की बुराइयों से और कुहासा और घन बादल उन झुठाइयों से प्रतिरूपता रखते हैं जो उन बुराइयों से निकलती हैं।

५८६। मैं नरकों के अन्दर देखने पाया और मैं ने देखा कि उन के भीतरी भाग किस प्रकार के हैं। क्योंकि जब प्रभु पसन्द करे तो कोई आत्मा या दूत की दृष्टि जो नरकों के ऊपर है उन के फन्दों तक पहुंचती है और साथ होने इस बात के कि नरकों के ढकने हैं उन की सब वस्तुओं को देख सकती है। और इसी रीति से मैं उन के अन्दर देखने पाया। कोई कोई नरक भीतर की ओर के झुके हुए चट्टानों में के गड़हे और गुफे के समान दिखाई देते हैं और पीछे ये चट्टान तिरछा या लम्बरूप से नीचे की ओर झुककर जाते हैं। कोई नरक ऐसे गड़हों और गुफों के समान हैं जिन में जंगली पशु वन में रहते हैं। तो फिर कोई कोई नरक ऐसे गुम्बज़ी गुफों और गुप्त कोठरियों के समान हैं जैसे कि उन खानों में देख पड़ते हैं जिन के गुफे भीतर की ओर झुके हुए हैं। प्रायः सब नरक तिगुने हैं ऊपरी भाग अत्यन्त अन्धेरा देख पड़ते हैं क्योंकि उन में आत्मागण बसते हैं जो बुराई की झुठाइयों में रहते हैं। परंतु निचले भाग आग के सरीखे देख पड़ते हैं क्योंकि उन में आत्मागण बसते हैं जो झुठाइयों ही में रहते हैं। क्योंकि घन अन्धेरा बुराई की

कुठाइयों से प्रतिरूपता रखता है और भाग बुराइयों ही से। वे लोग जो बुराई के द्वारा भीतर से आचरण करते थे बहुत गहिरे नरकों में हैं और कम गहिरे नरकों में वे लोग रहते हैं जो बुराई के द्वारा अर्थात बुराई की भुठाइयों के द्वारा बाहर से आचरण करते थे। कोई नरकों में ऐसे खंड़हर देख पड़ते हैं कि मानों घर और नगर जल गये थे। और नरकीय आत्मा इन खंड़हरों में रहकर वहां अपने को छिपाते हैं। अतीहण नरकों में अनगढ़ झोंपड़े दिखाई देते हैं जो कहीं लगातार होते हैं और एक नगर के गलीकुचों के सरीखे मालूम देते हैं। घरों के अन्दर नरकीय आत्मा नित्य झगड़ा द्वेष मार पीट और हत्याओं में प्रवृत्त होते हैं और गलीकुचों में बहुतेरी लूटपाट और डकैतियां हुआ करती हैं। कोई नरकों में वेश्यालय ही वेश्यालय हैं जिन की घृणोत्पादक आकृतियें और प्रकार के मल और गूह से भरी हुई हैं। वहां पर घन वन भी हैं जिन में नरकीय आत्मा जंगली पशुओं की भांति घूमते फिरते हैं और जब अन्य आत्मा उन के पीछे दौड़के चले आते हैं तब वे भूमि के नीचे के गुफे में जाकर अपने को छिपाते हैं। कहीं उजाड़ स्थल हैं जहां सारी भूमि ऊसड़ और रेतीली है और कहीं खरखरे चट्टान हैं जिन में गुफे हैं और और कहीं झोंपड़ियां हैं। आत्मागण जिन्हों ने अत्यन्त ताड़न भुगता है नरकों से इन उजाड़ों में फेंक डाले जाते हैं विशेष करके वे आत्मा जो जगत में रहते हुए कपट और छल की बनावटों के बांधने में औरों की अपेक्षा अधिक धूर्त थे। उस प्रकार का जीवन उन की अन्तिम अवस्था है।

५८७। नरकों की विशेषक स्थिति किसी से नहीं जानी जाती न स्वर्ग के दूतगण से भी जानी जाती है। क्योंकि यह ज्ञान प्रभु ही का है। परंतु नरकों की साधारण स्थिति इन दिशाओं के द्वारा कि जिन में वे स्थापित हैं जानी जाती है। क्योंकि नरक स्वर्गों की रीति पर दिशाओं के अनुसार खुले खुले प्रस्तुत हैं और आत्मीय जगत में दिशाएं प्रेमों के अनुसार ठहराई हुई हैं। स्वर्ग में सब दिशाएं प्रभु से कि मानों एक सूर्य से और पूर्व से लेकर प्रस्तुत हुई हैं। और जब कि नरक स्वर्गों के विरुद्ध हैं तो उन की दिशाएं पश्चिम से लेकर कि जो पूर्व के विरुद्ध है प्रस्तुत हुए हैं। (उस बाब को देखो जो स्वर्ग की चारों दिशाओं के बारे में है। न० १११ से १५३ तक)। और इस लिये जो नरक पच्छिम की दिशा में हैं वे सब से बुरे और सब से भयानक हैं। जितना वे पूर्व से दूर होते जाते हैं उतना ही उन की बुराई और यातना बढ़ती जाती है। इन नरकों में ऐसे आत्मा बसते हैं जो जगत में रहते हुए आत्मप्रेम पर और इस लिये औरों की निन्दा पर और द्वेष पर उन के विरुद्ध जो उन का उपकार नहीं करते और इस लिये द्रोह और पलटा लेने पर उन लोगों के विरुद्ध जो उन का संमान और पूजा नहीं करते स्थापित थे। इस दिशा के सब से दूरस्थ नरकों में वे आत्मा बसते हैं जो रोमन केथोलिक नामी धर्म के मेम्बर थे और जो यह चाहते थे कि और लोग उन को देवता कर उन की पूजा करें और इस कारण वे उन के विरुद्ध जो उन के प्रभाव को मनुष्यों के आत्माओं पर और स्वर्ग पर प्रस्थी-

कार करते थे द्रोह और पलटा लेने से जलते थे। नरक में भी वे अभी उस शील का प्रतिपालन करते हैं जिस करके वे पृथिवी पर रहते हुए विशेषित थे और उन के विरुद्ध जो उन की विरुद्धता करते हैं द्रोह और पलटा लेने से भरे हुए हैं। उन का सब से बड़ा आनन्द क्रूरता की क्रियाओं में है। परंतु यह आनन्द परलोक में उन के विरुद्ध फिरता है। क्योंकि उन के नरकों में जिन से पच्छिम की दिशा भरपूर है हर कोई हर किसी के विरुद्ध अति क्रोध से झुंझलाता है जो उस के ईश्वरीय प्रभाव को नहीं स्वीकार करता है। परंतु इस प्रसङ्ग का पूरा बयान एक छोटी पोथी में किया जावेगा जो अन्तिम विचार और बेबिलन के विनाश के बारे में होगा। वह रीति कि जिस के अनुकूल उस दिशा के नरक प्रस्तुत हुए हैं किसी से जानी नहीं जाती इस बात को छोड़ कि सब से भयङ्कर नरक उन अलंगों पर हैं जो उत्तर की दिशा की सीमा पर हैं और घट भयङ्कर नरक दक्षिण की ओर हैं। इस लिये नरकों की घोरता उत्तर से दक्षिण तक क्रम करके घटती जाती है और वह पूर्व की ओर भी घटती जाती है वहां पर ऐसे अहङ्कारी आत्मागण बसते हैं जो ईश्वरीय सत्ता का होना नटते हैं परंतु उन में इतना द्रोह पलटा लेना और कपट नहीं हैं जितना उन में भरा है जो पच्छिम की दिशा के बहुत गहिरे स्थानों में रहते हैं। इन दिनों में पूर्व की दिशा में कोई नरक नहीं है। वे नरक जो पूर्व की दिशा में थे पच्छिम की दिशा के अग्रभाग को हटाए गये हैं। उत्तर की और दक्षिण की दिशा में बहुत से नरक हैं और उन में ऐसे आत्मा बसते हैं जो पृथिवी पर रहते हुए जगतप्रेम में और इस लिये नाना प्रकार की बुराइयों में स्थापित थे जैसा कि द्वेष विरोधी चोरी डकैती कपट लोभ और क्रूरता। सब से बुरे आत्मा उत्तर की दिशा में हैं और घट बुरे आत्मा दक्षिण की दिशा में। जहां तक वे पच्छिम की ओर जाते हैं और दक्षिण से दूर होते हैं वहां तक वे अधिक भयङ्कर होते जाते हैं और जहां तक वे पूर्व और दक्षिण की ओर जाते हैं वहां तक वे घट भयङ्कर होते जाते हैं। पच्छिम की दिशा में पहाड़ों के पीछे अन्धेरे बन हैं जिन में द्रोही आत्मा जंगली पशुओं के समान इधर उधर घूमते फिरते हैं और इसी प्रकार के बन उत्तर की दिशा में के नरकों के पीछे भी हैं। परंतु उन नरकों के पीछे जो दक्षिण की दिशा में हैं वे उजाड़ स्थल हैं जिस की सूचना पहिले हो चुकी थी। नरकों की स्थिति के बारे में हम ने यहां तक बयान किया है।

५८८। अब हम नरकों की बहुतायत का बयान करते हैं। उन की संख्या स्वर्ग में की दूतविषयक सभाओं की संख्या के तुल्य है। क्योंकि किसी नरकीय सभा में हर एक स्वर्गीय सभा की एक विरोधी है जिस से वह प्रतिरूपता रखती है। उस बाब में जो स्वर्ग की सभाओं के बारे में है (न० ४१ से ५० तक) और उस बाब में जो स्वर्ग के अपरिमाणत्व के बारे में है (न० ४१५ से ४२० तक) इन बातों का यह बयान था कि स्वर्गीय सभाएं असंख्य हैं और सब की सब प्रेम अनुग्रह और श्रद्धा की भलाइयों के अनुसार विशेषित हैं। इस कारण नरकीय

सभाएं स्वर्गीय सभाओं के तौर पर प्रस्तुत हैं परंतु वे उन बुराइयों के अनुसार विशेषित हैं जो प्रेम अनुग्रह और श्रद्धा की भलाइयों के विरुद्ध हैं। हर एक बुराई में हर एक भलाई के सदृश असंख्य भिन्नताएं हैं। परंतु यह बात उन से जिन को हर एक बुराई के विषय (जैसा कि निन्दा द्वेष द्रोह पलटा लेना कपट आदि ऐसी ऐसी बुराइयों के विषय) केवल एक असामासिक बोध है अनायास से नहीं समझी जा सकती। तो भी यह बात जानना चाहिये कि उन बुराइयों में से हर एक बुराई में इतनी पृथक पृथक भिन्नताएं हैं और इन भिन्नताओं में से हर एक भिन्नता में इतनी पृथक या विशेष भिन्नताएं हैं कि उन सभों के बयान करने के लिये सारी पोथी बहुत न होगी। नरक हर एक बुराई की भिन्नताओं के अनुसार ऐसे पृथक रूप से प्रस्तुत हुए हैं कि इस परिपाटी की अपेक्षा कोई अधिक यथानुक्रम और पृथक परिपाटी समझी नहीं जा सकती। इस से भी यह स्पष्ट है कि वे असंख्यक हैं और वे अपनी बुराइयों की साधारण विशेष और पृथक भिन्नताओं के अनुसार एक दूसरे के पास हैं या कुछ दूरी पर। नरक नरकों के नीचे भी होते हैं। कोई कोई मार्गों के द्वारा संसर्ग रखते हैं और बहुतेरे नरक भाफों के द्वारा। परंतु सब संसर्ग बुराई की एक जाति के अन्य जातियों से संबन्ध रखने के अनुसार परिमित होते हैं। इस बात से मुझे प्रतीति हुई कि नरकों की संख्या बहुत बड़ी है अर्थात आत्माओं के जगत में हर एक पर्वत टीले और चट्टान के नीचे नरक हैं और हर एक मैदान और दरी के नीचे भी नरक हैं। संक्षेप में सारा स्वर्ग और आत्माओं का सारा जगत ऐसा है कि मानों वे खुदे हुए हैं और उन के नीचे एक ही लगातार नरक पड़ा रहता है। यहां तक नरकों की बहुतायत का बयान है।

स्वर्ग और नरक के समतोलत्व के बारे में।

५८९। सब वस्तुओं के समतोलत्व के विना कुछ भी नहीं हो सकता। क्योंकि समतोलत्व के विना न तो क्रिया होती है न विरुद्धक्रिया। क्योंकि समतोलत्व दो शक्तियों से पैदा होता है एक तो क्रिया को पैदा करती है दूसरी विरुद्धक्रिया को। प्राकृतिक जगत में सब वस्तुओं का समतोलत्व है और हर एक पृथक पृथक वस्तु का भी। साधारण रूप से वायुमण्डल समतोलत्व की अवस्था में हैं और उन में जितना ऊपरी वस्तुएं निचली वस्तुओं पर दबाकर प्रभाव करती है उतना ही निचली वस्तुएं विरुद्धक्रिया और प्रतिरोध पैदा करती हैं प्राकृतिक जगत में भी गरमी और ठंढाई के बीच ज्योति और छाया के बीच और सुखावट और गिलाई के बीच समतोलत्व है। प्रकृति के तीनों राजों में अर्थात धातुविषयक शाकविषयक और जीवजन्तुविषयक राजो में सब पदार्थों का समतोलत्व है। क्योंकि इन राजों में समतोलत्व के विना कोई वस्तु नहीं हो सकती न बना रह सकता है। क्योंकि एक प्रकार का सर्वव्यापी प्रयत्न विद्यमान होता है जो एक ओर क्रिया पैदा करता है और दूसरी ओर विरुद्धक्रिया। सारी

सत्ता अर्थात हर एक कार्य समतोलत्व में पैदा होता है और वह समतोलत्व एक शक्ति के प्रभाव करने से और दूसरी शक्ति के प्रभाव पाने से या एक शक्ति क्रिया के द्वारा भीतर बहने से और दूसरी शक्ति उस अन्तःप्रवाह पाने से और उस के अनुकूल हट जाने से पैदा होता है। प्राकृतिक जगत में वह प्रभाव जो काम करता है और वह जो विरुद्धक्रिया पैदा करता है दोनों शक्ति कहलाते हैं और वे प्रयत्न या प्रयोग भी कहाते हैं। परंतु आत्मीय जगत में वह प्रभाव जो काम करता है और वह जो विरुद्धक्रिया पैदा करता है दोनों जीव और संकल्प कहलाते हैं। उस जगत में जीव एक जीती हुई शक्ति है और संकल्प एक जीता हुआ प्रयत्न है और उनका समतोलत्व स्वतन्त्रता कहलाता है। इस कारण आत्मीय समतोलत्व अर्थात स्वतन्त्रता एक ओर से भला करने के द्वारा और दूसरी ओर से विरोधी बुरा करने के द्वारा या एक भाग पर बुराई प्रभाव करने से और दूसरे भाग पर भलाई विरोधी प्रभाव करने से होती है और बनी रहती है। भले आत्माओं में भलाई कारक होकर और बुराई प्रतिकारक होकर समतोलत्व होता है परंतु बुरे आत्माओं में बुराई कारक है और भलाई प्रतिकारक। आत्मीय समतोलत्व भलाई और बुराई की तुलासमता है क्योंकि मनुष्य का सारा जीव भलाई और बुराई से संबन्ध रखता है इस लिये कि मनुष्य की संकल्पशक्ति दोनों का एक पात्र है। सचाई और झुठाई का भी समतोलत्व है जो भलाई और बुराई की तुलासमता पर अवलम्बित है और यह ज्योति और छाया की तुलासमता के सदृश है जो जितनी गरमी या ठंडाई ज्योति और छाया में है उतना ही वह शाकविषयक राज की वस्तुओं पर प्रभाव करती है। क्योंकि ज्योति और छाया आप से आप कुछ भी प्रभाव नहीं करतीं परंतु उन के द्वारा गरमी उत्पादक हो जाती है और यह हिम और वसन्त की ज्योति और छाया की समता से प्रमेय है। ज्योति और छाया से सचाई और झुठाई की उपमा देना प्रतिरूपता में स्थापित है। क्योंकि सचाई ज्योति से प्रतिरूपता रखती है और झुठाई छाया से और गरमी प्रेम की भलाई से। आत्मीय ज्योति तो सचाई है आत्मीय छाया झुठाई है और आत्मीय भलाई प्रेम की भलाई है। परंतु उस बाब में जो स्वर्ग की ज्योति और गरमी के बारे में हैं (न० १२६ से १४०) इस प्रसङ्ग का वादानुवाद विस्तीर्ण रूप से किया गया।

५९०। स्वर्ग और नरक के बीच नित्य समतोलत्व है क्योंकि नरक से बुरा करने की एक नित्य चेष्टा भाफ के आकार में उड़कर उठ जाती है और स्वर्ग से भला करने की एक नित्य चेष्टा भाफ बनकर उतरती है। और उन चेष्टाओं के बीच आत्माओं का जगत तुल्यभार रहता है। ऊपर लिखित परिच्छेदों में (न० ४२१ से ४३१ तक) यह देखा जा सकता है कि आत्माओं का जगत स्वर्ग और नरक के बीचों बीच है। आत्माओं का जगत समतोलत्व की अवस्था में है क्योंकि हर एक मनुष्य मरते ही उस जगत में प्रवेश करता है और वहां उसी अवस्था में रखा छोड़ता है जिस अवस्था में वह प्राकृतिक जगत में था। परंतु यदि वहां

ठीक ठीक समतोलत्व न हो तो वह हाल सम्भाव्य न होगा। क्योंकि आत्माओं को स्वतन्त्रता की एक अवस्था में रखने से जो उस अवस्था के सदृश है कि जिस में वे जगत में रहते हुए होते थे उन सभों के गुण का निर्णय किया जाता है। और मनुष्य और आत्मा दोनों में आत्मीय समतोलत्व स्वतन्त्रता है जैसा कि हम कह चुके हैं (न० ५८९)। हर किसी मनुष्य की स्वतन्त्रता का गुण उस मनुष्य के अनुरागों के और उस के उन ध्यानों के जो उन अनुरागों से निकलते हैं सम्प्रदान करने के द्वारा स्वर्ग में के दूतों को विज्ञात है। और वह गुण आत्मिक आत्माओं को उन मार्गों के द्वारा कि जिन में वह चलता है विज्ञात है। क्योंकि भले आत्मा ऐसे मार्गों में जाते हैं जो स्वर्ग की ओर चलते हैं परंतु बुरे आत्मा उन मार्गों में जाते हैं जो नरक की ओर झुकते हैं। आत्मीय जगत इस प्रकार के मार्ग यथार्थ में दीखते हैं और इस कारण धर्मपुस्तक में मार्ग से तात्पर्य वे सचाइयें हैं जो भलाई की ओर ले चलती हैं और विपरीत रीति पर वे झुठाइयें भी जो बुराई की ओर चलती हैं। इस लिये जाना पैरों चलना और यात्रा करना जब उन बातों की सूचना धर्मपुस्तक में है तब उन का तात्पर्य जीव का प्रगमन है[६४] बार बार मैं इन मार्गों को और इन में आत्माओं को भी जाते और पैरों चलते हुए उन के अनुरागों के अनुसार और उन ध्यानों के अनुसार जो उन अनुरागों से निकलते हैं देखने पाया।

५९१। बुराई नरक से भाफ के आकार में नित्य उड़कर उठती है और भलाई स्वर्ग से भाफ बनकर नित्य उतरती है। क्योंकि हर किसी मनुष्य के आस पास एक आत्मीय मण्डल घेरता है और वह मण्डल उस मनुष्य के अनुरागों और ध्यानों के जीव से बहकर जाता है[६५]। और जब कि हर किसी से जीव का ऐसा मण्डल बहकर जाता है तो वह हर एक स्वर्गीय सभा से भी बहता है और हर एक नरकीय सभा से और इस लिये इन सब सभाओं से मिलकर अर्थात सर्वव्यापी स्वर्ग और सर्वव्यापी नरक से बहता है। स्वर्ग से भलाई बहकर जाती है क्योंकि स्वर्ग के सब निवासी भलाई में हैं और बुराई नरक से बहकर जाती है क्योंकि नरक के सब निवासी बुराई में हैं। वह भलाई जो स्वर्ग से बहती है सब की सब प्रभु से

---

६४ धर्मपुस्तक में यात्रा करने की बात से और जाने की बात से भी तात्पर्य जीव का प्रगमन है। न० ३३३५ · ४३७५ · ४५५४ · ४५८५ · ४८८२ · ५४९३ · ५६०५ · ५९९६ · ८३४५ · ८३९७ · ८४१७ · ८४२० · ८५५७। प्रभु के साथ जाने से या हो लेने से तात्पर्य आत्मीय जीव का पाना और प्रभु के साथ रहना है। न० १०५६७। पैरों चलने से तात्पर्य जीना है। न० ५१९ · १७९४ · ८४१७ · ८४२०।

६५ एक आत्मीय मण्डल जो जीव का एक मण्डल है हर एक मनुष्य आत्मा और दूत से बहता है और उस को घेरता है। न० ४४६४ · ५१७९ · ७४५४ · ८६३०। यह मण्डल अनुरागों और ध्यानों के जीव से बहता है। न० २४८९ · ४४६४ · ६२०६। और इस के द्वारा आत्माओं का गुण कुछ दूरी पर जाना जाता है। न० १०४८ · १०५३ · १३१६ · १५०४। बुरे मनुष्यों के मण्डल भले मनुष्यों के मण्डलों के विरुद्ध हैं। न० १६९५ · १०१८७ · १०३१२। ये मण्डल भलाई के गुण और परिमाण के अनुसार अपने को दूतविषयक सभाओं में दूर तक पसारते हैं। न० ६५९८ से ६६१३ तक · ८०६३ · ८७९४ · ८७९७। और वे बुराई के गुण और परिमाण के अनुसार अपने को नरकीय सभाओं में पसारते हैं। न० ८७९४ · ८७९७।

होती है। क्योंकि स्वर्ग में दूतगण अपने आत्मत्व से अलग होकर फेर रखे जाते हैं और प्रभु के आत्मत्व में कि जो भलाई आप है रखे छूटते हैं परंतु वे आत्मा जो नरकों में हैं सब के सब अपने निज आत्मत्व में हैं। परंतु हर किसी का आत्मत्व बुराई को छोड़ और कुछ नहीं है और जब कि वह बुराई को छोड़ और कोई वस्तु नहीं है तो वह नरक है[६६]। इस से यह स्पष्ट है कि वह समतोलत्व कि जिस में दूतगण स्वर्ग में और आत्मा नरक में रखे जाते हैं उस समतोलत्व के समान नहीं है जो आत्माओं के जगत में है। क्योंकि स्वर्ग में दूतगण का समतोलत्व वह परिमाण है कि जिस में वे दूत जब कि वे जगत में थे भलाई में रहना चाहते थे। या वह भलाई का वह परिमाण है कि जिस में वे यथार्थ में जीते थे और इस लिये वह वही परिमाण भी है कि जिस में वे बुराई की घृणा करते थे। परंतु नरक में आत्माओं का समतोलत्व वह परिमाण है कि जिस में वे आत्मा बुराई में हुआ चाहते थे या वह बुराई का वही परिमाण है कि जिस में वे जगत में यथार्थ जीते थे और इस लिये वह वही परिमाण भी है कि जिस में उन के हृदय और मन भलाई के विरुद्ध थे।

५९२। यदि प्रभु स्वर्ग और नरक दोनों का राज न करे तो कुछ भी समतोलत्व न हो सके और यदि कुछ समतोलत्व न हो तो न तो स्वर्ग हो सके न नरक। क्योंकि सर्वजगत में क्या प्राकृतिक क्या आत्मिक जगत में सब कुछ समतोलत्व के द्वारा बना रहता है। हर एक चैतन्य मनुष्य इस बात पर प्रतीति कर सकता है क्योंकि यदि किसी ओर पर अधिकभार लगे और विरुद्ध ओर पर कुछ भी प्रतिरोध न लगे तो दोनों जगतों का विनाश होगा। इस कारण यदि भलाई बुराई के विरुद्ध प्रतिरोधन न करे और उस के आक्रमणों को न रोके तो अवश्य करके आत्मीय जगत का विनाश करना पड़ेगा। और यदि ईश्वरत्व ही इस रुकावट को न करे तो स्वर्ग और नरक दोनों नष्ट हो जावें और उन के साथ सारी मनुष्यजाति भी नष्ट होवे। मैं यह कहता हूं कि "यदि ईश्वरत्व ही इस रुकावट को न करे" क्योंकि हर किसी का विशेषभाव (क्या दूत क्या आत्मा क्या मनुष्य) बुराई को छोड़ और कोई वस्तु नहीं है। (न० ५९१ को देखो)। और इस कारण कोई दूत या आत्मा उन बुराइयों को जो नरकों से भाफ के आकार में नित्य उड़ती हैं किसी रीति से नहीं रोक सकता है। क्योंकि वे अपने आत्मत्व से नरक की ओर नित्य झुकते हैं। और इस कारण यह स्पष्ट है कि यदि प्रभु ही स्वर्ग और नरक दोनों का राज न करे तो कोई मनुष्य मुक्ति न पावे। इस पर भी सब नरक एक ही शक्ति बनकर काम करते हैं क्योंकि नरकों में बुराइयें (और स्वर्ग में भलाइयें) आपस में एक दूसरी से संयुक्त हैं। और वह ईश्वरत्व ही

---

६६ मनुष्य का आत्मत्व बुराई को छोड़ और कोई वस्तु नहीं है। न० २१० • २१५ • ७३१ • ८७४ • ८७५ • ८७६ • ६८७ • १०४७ • २३०७ • २३०८ • ३५१८ • ३७०१ • ३८१२ • ८४८० • ८५५० • १०२८३ • १०२८४ • १०२८६ • १०७३२। और वह उस में नरक है। न० ६६४ • ८४८० ।

जो प्रभु से निकलता है सब नरकों के संयुक्त हुए आक्रमणों को स्वर्ग के विरुद्ध और सभों के विरुद्ध जो स्वर्ग में हैं रोक सकता है। क्योंकि नरक असंख्य हैं।

५९३। स्वर्गों और नरकों का समतोलत्व उन आत्माओं की संख्या के अनुकूल जो उन में प्रवेश करते हैं (कि जो प्रत्येक दिन हज़ारों तक पहुंचती है) घटता या बढ़ता जाता है। परंतु किस ओर तुलासमता झुकती है इस बात का जानना और मालूम करना और तुलासमता का ठीक ठीक व्यवस्थापन और समान करना भी किसी दूत के बस नहीं आता परंतु केवल प्रभु ही के बस में है। क्योंकि वह ईश्वरत्व जो प्रभु से निकलता है सर्वत्र विद्यमान है और चारों ओर देखकर इस की निरीक्षा करता है कि कहीं कुछ भी असमता है कि नहीं। इस के विपरीत कोई दूत आसपासवाली वस्तु को छोड़ और कोई वस्तु नहीं देखता और जो वृत्तान्त उस की अपनी सभा में भी गुज़रता है तिस का उस के मन में कुछ भी बोध नहीं है।

५९४। वह रीति जिस के अनुकूल स्वर्गों और नरकों की सारी वस्तुएं इस तौर पर प्रस्तुत हुई हैं कि सब निवासी समुदाय में और एक एक करके समतोलत्व की अवस्था में रखे जावें उस का प्रमाण स्वर्गों और नरकों के बारे में उन बातों को देखने से जिस का बयान हम ने पहिले किया है कुछ कुछ मालूम होगा। अर्थात स्वर्ग की सब सभाएं भलाइयों के वर्ग और जाति के अनुसार और नरक की सब सभाएं बुराइयों के वर्ग और जाति के अनुकूल प्रत्यक्ष ही प्रत्यक्ष प्रस्तुत हुई हैं। और स्वर्ग की प्रत्येक सभा के नीचे नरक की एक प्रतिरूपक सभा है जो स्वर्ग की सभा का विरोधी है और उन की विरोधी प्रतिरूपता से समतोलत्व पैदा होता है। और प्रभु ने यह नित्य नियम किया है कि कोई नरकीय सभा किसी सामनी सामनी स्वर्गीय सभा पर प्रबल न होवे और यदि वह प्रबल होने लगे तो नाना प्रकार के रुकाव उस को समतोलत्व के यथायोग्य परिमाण तक घटाकर न्यून करेंगे। ये रुकाव बहुसंख्यक हैं परंतु हम केवल थोड़े से रुकावों को निर्दिष्ट करेंगे। कोई कोई प्रभु की तेजस्वी विद्यमानता से संबन्ध रखते हैं। कोई कोई एक सभा के या कई एक सभाओं के अन्य सभाओं के साथ गाढ़े संसर्ग और संयोग करने से संबन्ध रखते हैं। कोई कोई प्रयोजनातिरिक्त नरकीय आत्मा उजाड़ स्थलों में फेंक डालने से संबन्ध रखते हैं। कोई उस प्रकार के आत्माओं के एक नरक से दूसरे नरक में ले जाने से संबन्ध रखते हैं। कोई नरकों के निवासियों के यथाक्रम रखने से (कि जो नाना प्रकार के उपायों से किया जाता है) संबन्ध रखते हैं। कोई कोई नियत नरकों के अधिक घन और अधिक स्थूल ढकनों के साथ ढांपने से और उन नरकों के अधिक गहिरे गढ़हों में उतार देने से संबन्ध रखते हैं। अन्य उपायों की (जिन में वे उपाय हैं जो नरकों के ऊपर रखे हुए स्वर्गों में प्रस्तुत हुए हैं समाते हैं) सूचना करने की कुछ आवश्यकता नहीं है। हम इन बातों को बतलाते हैं इस लिये कि यह कुछ कुछ मालूम हो कि प्रभु ही सर्वत्र भलाई और

बुराई के बीच और इस लिये स्वर्ग और नरक के बीच समतोलत्व बना रखता है। क्योंकि स्वर्ग और पृथिवी के सब निवासियों का सुरक्षितत्व उस समतोलत्व पर स्थापित है।

५९५। नरक स्वर्ग पर नित्य आक्रमण करके उस का विनाश करने की चेष्टा करते हैं। परंतु प्रभु दूतों को उन बुराइयों से फेर रखने के द्वारा जो उन के आत्मत्व से निकलती हैं और उन को उस भलाई में लगा रखने के द्वारा जो प्रभु आप से निकलती है नित्य स्वर्ग की रक्षा करता है। बार बार मैं उस मण्डल को जो नरकों से बहता है कि जो प्रभु के ईश्वरत्व के और इस से स्वर्ग के विनाश करने के लिये प्रयत्नों के एक मण्डल को छोड़ और कोई वस्तु नहीं है मालूम करने पाया। और मैं ने कभी कभी कोई नरकों के उबाल मालूम किये और ये निकल आने और विनाश करने के प्रयत्न हैं। इस के विपरीत स्वर्ग नरकों पर आक्रमण कभी नहीं करता क्योंकि वह ईश्वरीय मण्डल जो प्रभु से निकलता है सभों की रक्षा करने का एक नित्य प्रयत्न है। और जब कि वे आत्मा जो नरक में हैं मुक्ति नहीं पा सकते क्योंकि वे सब के सब बुराई में और प्रभु के ईश्वरत्व के विरुद्ध हैं तो उन के उपद्रव अधीन किये जाते हैं और उन की क्रूरता जितना बन पड़े उतना ही रोकी जाती है। ता कि वे एक दूसरे के विरुद्ध अत्यन्त प्रचण्डता से दौड़कर न धावा करें। यह रुकाव ईश्वरीय शक्ति के असंख्य बिचवाइयों के द्वारा भी किया जाता है।

५९६। स्वर्ग दो राज बनकर विशेषित होते हैं एक तो स्वर्गीय राज है और दूसरा आत्मीय राज। (इन के बारे में न० २० से २८ तक देखो)। और नरकों में भी दो राज हैं एक तो स्वर्गीय राज के विरुद्ध है और दूसरा आत्मीय राज के विरुद्ध। वह नरकीय राज जो स्वर्गीय राज के आमने सामने है पच्छिम में है और उस के निवासी जिन्न कहलाते हैं। परंतु वह राज जो आत्मीय राज के सामने है उत्तर और दक्षिण में है और उस के निवासी आत्मा कहाते हैं। सब के सब जो स्वर्गीय राज में हैं प्रभु की ओर के प्रेम में हैं। परंतु सब के सब जो उस राज के आमने सामने नरकों में हैं आत्मप्रेम में हैं। और सब के सब जो आत्मीय राज में हैं पड़ोसी की ओर के प्रेम में हैं और सब के सब जो उस राज के आमने सामने नरकों में हैं जगत प्रेम में हैं। इस से स्पष्ट है कि प्रभु की ओर का प्रेम और आत्मप्रेम विरोधी हैं और पड़ोसी की ओर का प्रेम और जगत प्रेम विरोधी भी हैं। प्रभु यह सदा प्रस्तुत करता है कि उन नरकों से जो उस के स्वर्गीय राज के सामने हैं कोई प्रवाह आत्मीय राज के दूतगण की ओर नहीं चलेगा। क्योंकि यदि यह अनुमति दी जावे तो आत्मीय राज उस हेतु से नष्ट होगा जिस का बयान ऊपर लिखित ५७८ वें और ५७९ वें परिच्छेदों में हुआ। ये वे ही दो साधारण समतोलत्व हैं जिन की रक्षा प्रभु सदा करता रहता है।

स्वर्ग और नरक के समतोलत्व के कारण मनुष्य स्वतन्त्रता की अवस्था में है।

५९७। पिछले बाब में स्वर्ग और नरक के समतोलत्व का बयान था और वहां यह बतलाया गया कि वह उस भलाई का जो स्वर्ग से होती है और उस बुराई का जो नरक से होती है समतोलत्व है और इस कारण वह आत्मीय समतोलत्व है जो अपने सारांश से लेकर स्वतन्त्रता है। आत्मीय समतोलत्व सारांश से ले स्वतन्त्रता है क्योंकि वह भलाई और बुराई का और सचाई और झुठाई का भी समतोलत्व है और ये आत्मीय वस्तुएं हैं। और इस कारण भलाई या बुराई की इच्छा करने की शक्ति और सचाई या झुठाई के ध्यान करने की शक्ति और एक की अपेक्षा दूसरे को अधिकानुराग से बाछ लेने की शक्ति ये सब शक्तियें वह स्वतन्त्रता है जिस की सूचना हम अब करते हैं। और यह स्वतन्त्रता हर एक मनुष्य को प्रभु से दी जाती है और मनुष्य से कभी नहीं हर ली जाती है। यह स्वतन्त्रता अपने मूल के कारण मनुष्य की नहीं है पर प्रभु की क्योंकि वह प्रभु की ओर से है। परंतु तो भी वह मनुष्य को उस के जीव के साथ उस की निज स्वतन्त्रता बनकर दी जाती है ता कि मनुष्य सुधकर मुक्ति पावे। क्योंकि स्वतन्त्रता के विना न तो सुधारना हो सकता है न मुक्ति। हर कोई चेतन्य अन्तर्ज्ञान से देख सकता है कि मनुष्य स्वतन्त्रता के साथ बुराई या भलाई से खराई या कपट से न्याय या अन्याय से ध्यान कर सकता है और वह स्वतन्त्रता के साथ भलाई खराई और न्याय से बोल सकता और आचरण कर सकता है। परंतु वह बुराई कपट और अन्याय के साथ बोलने और आचरण करने से आत्माविषयक धर्मविषयक और नीतिविषयक नियमों के द्वारा (कि जो उस के भीतरी भागों को बन्धनों में रख छोड़ते हैं) फेर रखा जाता है। इस से स्पष्ट है कि मनुष्य का आत्मा जो वह वस्तु है कि जो ध्यान और संकल्प करती है स्वतन्त्रता की अवस्था में है। परंतु बाहरी मनुष्य जो वस्तु है कि जो बोलती है और आचरण करती है यदि वह उन नियमों से सम्मत न हो तो वह स्वतन्त्रता की अवस्था में नहीं है।

५९८। यदि मनुष्य स्वतन्त्र न हो तो वह नहीं सुधर सकता है। क्योंकि वह सब प्रकार की बुराइयों में जन्म लेता है और उस समय के पहिले कि जिस में वह मुक्ति पा सके अवश्य है कि वे बुराइयें उस से दूर की जावें। परंतु यदि वह उन बुराइयों को अपने आप में न देख ले और उन को अङ्गीकार न कर दे पीछे उन की इच्छा करने को न छोड़ दे और अन्त में उन की घृणा करे तो उन का दूर करना असम्भव है। उस समय तो वे पहिले पहिल दूर की जाती हैं। परंतु यदि मनुष्य भलाई और बुराई दोनों में न हो तो यह दूर करना नहीं हो सकता। क्योंकि वह भलाई की ओर से बुराई देखने के योग्य है परंतु वह बुराई की ओर से भलाई को नहीं देख सकता। वे आत्मीय भलाइयें जो मनुष्य ध्यान करने के

योग्य है वह बचपन से ले धर्मपुस्तक के पढ़ने से और मन्त्र सुनने से सीखता है और जगत में जीने से वह धर्मसंबन्धी और नीतिसंबन्धी भलाइयें सीखता है। यह वह मुख्य कारण है कि जिस से चाहिये कि मनुष्य स्वतन्त्रता की अवस्था में जीवे। दूसरा कारण यह है कि उस को छोड़ कि जिस को मनुष्य प्रेम के अनुराग से करता है अन्य कोई वस्तु मनुष्य को उपयुक्त नहीं है। अन्य वस्तुएं तो प्रवेश कर सकती हैं परंतु वे ध्यान से आगे बढ़ नहीं सकतीं और संकल्पशक्ति तक नहीं पहुंचतीं। परंतु कोई वस्तु मनुष्य की निज वस्तु नहीं होती जो अपनी संकल्पशक्ति में नहीं प्रवेश करती। क्योंकि ध्यान अपने सामान को स्मरण से ले लेता है परंतु सब कुछ जो संकल्पशक्ति में है जीव से उपज आता है। कोई वस्तु स्वतन्त्र नहीं है जो संकल्पशक्ति से पैदा नहीं होती या (और यह उस से एक ही वस्तु है) उस अनुराग से पैदा होती है जो प्रेम से निकलता है। क्योंकि जो कुछ कोई मनुष्य संकल्प या प्रेम करता है सो वह स्वतन्त्रता के साथ करता है। और इस कारण मनुष्य की स्वतन्त्रता और वह अनुराग जो उस के प्रेम या संकल्प का है एक ही है। और मनुष्य स्वतन्त्रता का दान पाता है ता कि वह भलाई और सचाई के प्रभाव पाने के या उन के प्यार करने के योग्य हो और उस से वे उस की निज वस्तुएं हो जावें। संक्षेप में जो कुछ मनुष्य में स्वतन्त्रता के साथ नहीं प्रवेश करता सो नहीं बना रहता क्योंकि वह उस के प्रेम या संकल्प का नहीं है। और इस वास्ते कि जो कुछ मनुष्य के प्रेम या संकल्प का नहीं है सो उस के आत्मा का भी नहीं है। क्योंकि मनुष्य के आत्मा की सत्ता प्रेम या संकल्प है। हम ये दोनों बातें काम में लाते हैं क्योंकि जब कोई मनुष्य प्यार करता है तब वह संकल्प भी करता है। ये वे ई कारण है कि जिस से यदि एक मनुष्य स्वतन्त्रता की अवस्था में न हो तो वह नहीं सुधर सकता। परंतु मनुष्य की स्वतन्त्रता के बारे में बहुत से वचनों को आर्काना सीलेस्टिया पोथी से निकालकर हम कुछ आगे बढ़कर लिखेंगे।

५९९। इस वास्ते कि मनुष्य अपने सुधारने के लिये स्वतन्त्रता की अवस्था में हो वह अपने आत्मा के विषय स्वर्ग और नरक दोनों के साथ संयुक्त होता है। क्योंकि आत्मा नरक से और दूत स्वर्ग से हर एक मनुष्य के पास उपस्थित खड़े रहते हैं। नरक में से आत्माओं के द्वारा वह अपनी निज बुराई में है और स्वर्ग में से दूतों के द्वारा वह प्रभु की ओर की भलाई में है और इस लिये वह आत्मीय समतोलत्व की अवस्था में है जो स्वतन्त्रता है। उस बात में जो स्वर्ग के मनुष्यजाति से संयुक्त होने के बारे में है (न० २९१ से ३०२ तक) यह बतलाया गया कि दूत स्वर्ग से और आत्मा नरक से हर एक मनुष्य के साथ संयुक्त होते हैं।

६००। मनुष्य का संयोग स्वर्ग और नरक से बिचवाईरहित नहीं है परंतु उन आत्माओं के द्वारा जो आत्माओं के जगत में हैं वह बिचवाईसहित है। क्योंकि वे आत्मा मनुष्य से संयुक्त हैं और किसी से नरक में या किसी से स्वर्ग में

संयुक्त नहीं हैं। परंतु मनुष्य आत्माओं के जगत में के बुरे आत्माओं के द्वारा नरक से संयुक्त है और वहां में के भले आत्माओं के द्वारा स्वर्ग से। इस कारण आत्माओं का जगत स्वर्ग और नरक के बीचों बीच है और उन के समतोलत्व का विशेष स्थल है। उस बाब में जो जगत के बारे में है (न० ४२१ से ४३१ तक) यह बतलाया गया कि आत्माओं का जगत स्वर्ग और नरक के बीचों बीच है। और पिछले बाब में हम ने अभी यह कहा (न० ५८९ से ५९६ तक) कि वह जगत स्वर्ग और नरक के समतोलत्व का विशेष स्थल है। इस कारण मनुष्य की स्वतन्त्रता का मूल अब स्पष्ट रूप से प्रत्यक्ष है।

६०१। कदाचित थोड़ी सी और बातें उन आत्माओं के बारे में जो मनुष्य से संयुक्त हैं उपकारक हों। कोई संपूर्ण सभा दूसरी सभा से या किसी व्यक्ति से जहां कहीं वह व्यक्ति हो रहती हो किसी आत्मा के द्वारा (जो उस सभा में से भेजा जावे) संसर्ग रख सकती है। और उस प्रकार का आत्मा "बहुतेरों की प्रजा" कहलाता है। मनुष्य के (उन आत्माओं के द्वारा जो आत्माओं के जगत में उस के साथ संयुक्त हैं) स्वर्ग में की और नरक में की सभाओं से संयोग होने के बारे में भी वही बात ठीक है। परंतु इस प्रसङ्ग के विषय आर्कोना सीलेस्टिया पोथी में से उन बचनों को जो इस पोथी के अन्त पर है देखिये।

६०२। अन्त में उस अन्तर्ज्ञात बोध के बारे में जो हर एक मनुष्य अपने भीतर स्वर्ग के अन्तःप्रवाह के कारण पाता है (अर्थात कि वह मृत्यु के पीछे फिर जीवेगा) कुछ कुछ बयान होगा। कोई कोई नीच जाति के भोले आत्मा जो जगत में श्रद्धा की भलाई में जीते थे ऐसी अवस्था में उतार दिये गये कि जिस में वे थे जब कि वे जगत में रहते थे (और यह उतार देना प्रभु की आज्ञा से किसी को पड़ सकता है) और उस समय यह प्रगट हुआ कि उन का मनुष्य की मरने के पीछे की अवस्था के बारे में कौन सा बोध होता था। उन्हों ने कहा कि "कोई बुद्धिमान मनुष्यों ने जगत में उन से यह सवाल पूछा कि क्या तुम्हारी समझ में इस आधुनिक जीव के पीछे आत्माओं की कैसी अवस्था होगी। और हम ने यह उत्तर दिया कि हम नहीं जानते कि जीव तो आप क्या वस्तु है। तब किसी ने हम से पूछा कि क्या मृत्यु के पीछे तुम्हारी अवस्था के बारे में तुम किस मत पर विश्वास करते हो। और हम ने जवाब दिया कि हम इस मत पर विश्वास करते हैं कि हम आत्मा बनकर जीवेंगे। इस के पीछे किसी ने पूछा कि तुम्हारी समझ में आत्मा क्या वस्तु है। और हम ने जवाब दिया कि आत्मा तो मनुष्य है। और जब किसी ने हम से पूछा कि क्या तुम उस बात को क्योंकर जानते हो तब हम ने कहा कि हम जानते हैं कि वह वही है। और उन बुद्धिमान मनुष्यों ने अचम्भा किया कि भोले लोगों का इस प्रकार का विश्वास हो जब कि उन्हीं का ऐसा विश्वास नहीं है"। इस से स्पष्ट है कि हर एक मनुष्य जो स्वर्ग से संयुक्त है एक अन्तर्ज्ञात प्रतीति रखता है कि वह मृत्यु के पीछे फिर जीवेगा। और वह अन-

जोत प्रतीति स्वर्ग से अन्तःप्रवाह के द्वारा अर्थात स्वर्ग में होकर प्रभु से उन आ-त्माओं के द्वारा जो आत्माओं के जगत में मनुष्य से संयुक्त हैं निकलती है। और वह उन में रहती है जिन्हों ने अविचारमति के द्वारा मनुष्य के जीव के बारे में ध्यान की स्वतन्त्रता को नहीं बुझाया। क्योंकि उस प्रकार के मनुष्य कहते हैं कि जीव या तो निराला ध्यान है या कोई सजीव तत्त्व जिस के स्थल का पता वे शरीर के किसी भाग में लगाने की चेष्टा करते हैं। तो भी जीव मनुष्य के जी को छोड़ अन्य कोई वस्तु नहीं है परंतु आत्मा मनुष्य आप है। और वह पार्थिव शरीर जो वह जगत में अपने साथ इधर उधर ले जाता है निराला साधन है जिस करके आत्मा अर्थात मनुष्य आप ऐसे तौर पर आचरण कर सकता है जो प्राकृतिक जगत की अवस्था के योग्य है।

६०३। इस पोथी में स्वर्ग आत्माओं का जगत और नरक तीनों के बारे में जो बातें हैं वे उन लोगों को जो आत्मीय सचाइयों के ज्ञान में कुछ आनन्द नहीं पाते अस्पष्ट मालूम होंगी। परंतु उन को जो उन आनन्द में हैं और विशेष करके उन को जो सचाई ही के निमित्त सचाई के अनुराग में हैं वे बातें स्पष्ट होंगी। क्योंकि जो कुछ प्यारा है सो मन के बोधों में ज्योति के साथ प्रवेश करता है। और जब जो वस्तु प्यारी है सो सचाई है तब यह बात अतिशय रूप से ठीक है क्योंकि सारी सचाई ज्योति में है[९७]।

---

९७ कुछ संग्रहीत वचन आर्काना सीलेस्टिया नामक पोथी से प्रभु के और उस के ईश्वरीय मनुष्यत्व के बारे में।

स्वतन्त्रता के बारे में। सारी स्वतन्त्रता प्रेम या अनुराग की है क्योंकि जो कुछ कोई मनुष्य प्यार करता है सो वह स्वतन्त्रता के साथ करता है। न० २८७० · ३१५८ · ८९८७ · ८९९० · ६५८५ से ६५९१ तक। और जब कि स्वतन्त्रता प्रेम की है तो वह हर किसी का जीव है। न० २८७३। जो स्वतन्त्रता से पैदा होता है उस को छोड़ अन्य कोई वस्तु मनुष्य की निज वस्तु मालूम नहीं देती। न० २८८०। परंतु स्वर्गीय स्वतन्त्रता और नरकीय स्वतन्त्रता दोनों होती हैं। न० २८७० · २८७३ · २८७४ · ६५८८ · ६५९० ।

स्वर्गीय स्वतन्त्रता स्वर्गीय प्रेम की है जो भलाई और सचाई का प्रेम है। न० १९४७ · २८७० · २८७२। और जब कि भलाई और सचाई का प्रेम प्रभु से होता है तो यथार्थ प्रेम प्रभु से ले चलने का है। न० ८९२ · ९०५ · २८७२ · २८८६ · २८९० · २८९१ · २८९२ · ९०९६ · ६५८६ · ६५८७ · ६५८९ · ६५९० · ६५९१। मनुष्य पुनर्जन्म के द्वारा प्रभु से स्वर्गीय स्वतन्त्रता में पहुंचाया जाता है। न० २८७४ · २८७५ · २८९२। परंतु तो कि मनुष्य सुधरने के योग्य हो चाहिये कि वह स्वतन्त्रता में हो। न० १९३७ · १९४७ · २८७६ · २८८१ · ३१४५ · ३१४६ · ३१५८ · ४०३१ · ८७००। नहीं तो भलाई और सचाई का प्रेम मनुष्य में गाड़ा नहीं जा सकता और उस से देखने में उस का अपना प्रेम बनकर अपनाया नहीं जा सकता। न० २८७७ · २८७९ · २८८० · २८८८। क्योंकि कोई वस्तु बला-त्कार की अवस्था में मनुष्य से संयुक्त नहीं होती। न० २८७५ · ८७००। यदि मनुष्य बलात्कार के द्वारा मुक्ति पा सके तो सब के सब मुक्ति पावें। न० २८८१। परंतु सुधारने में बलात्कार विघ्नक है। न० ४०३१। सारी पूजा स्वतन्त्रता से यथार्थ पूजा है न कि वह जो बलात्कार से होती है। न० १९४७ · २८८० · ७३४९ · १००९७। पश्चात्ताप की उत्पत्ति स्वतन्त्रता में होना चाहिये क्योंकि बलात्कारी पश्चात्ताप कुछ भी काम का नहीं है। न० ८३९२। बलात्कार की अवस्थाओं का बयान। न० ८३९२।

मनुष्य चैतन्यशक्ति से स्वतन्त्रता के साथ आचरण करने पाता है ता कि उस के लिये भलाई प्रस्तुत हो और इस कारण जहां तक कि नियम उस का निवारण नहीं करते वहां तक मनुष्य बुराई के ध्यान करने और संकल्प करने और बुरा करने की भी स्वतन्त्रता रखता है। न० १०७७७। मनुष्य प्रभु से स्वर्ग और नरक के बीच और इस लिये समतोलत्व की अवस्था में रखा जाता है ता कि उस को स्वतन्त्रता सुधारने का उपाय हो। न० ५९८२ · ६४७७ · ८२०९ · ८९०७। क्योंकि जो स्वतन्त्रता में बोया हुआ है सो बना रहता परंतु जो बलात्कार से बोया हुआ है सो बना नहीं रहता। न० ९५८८। इस कारण स्वतन्त्रता किसी के पास से कभी नहीं हर ली जाती। न० २८७६ · २८८१। कोई मनुष्य प्रभु के द्वारा बलात्कार से आचरण नहीं करता। न० १९३७ · १९४७।

मनुष्य अपने आप को स्वतन्त्रता के एक तत्त्व से बलद्वारा काम करा सकता है परंतु वह स्वतन्त्रता के साथ बलद्वारा काम कराया नहीं जा सकता। न० १९३७ · १९४७। चाहिये कि मनुष्य अपने आप को बलात्कार से बुराई का निवारण करावे। न० १९३७ · १९४७ · ७९१४। चाहिये कि वह ऐसे तौर पर भला करे कि मानों वह भला करना उस की अपनी ओर से निकला था तौं भी चाहिये कि वह इस बात को भी स्वीकार करे कि उस का बल प्रभु से है। न० २८८३ · २८९१ · २८९२ · ७९१४। उन विमोहसंग्रामों में कि जिन में मनुष्य जीतता है उस की बड़ी बलवान स्वतंन्त्रता है क्योंकि उस समय वह अपने आप को अधिक भीतरी रीति से बलद्वारा सामहना करता है। यद्यपि यह हाल और ही रीति पर दिखाई देता है। न० १९३७ · १९४७ · २८८१।

नरकीय स्वतन्त्रता आत्मप्रेम से जगतप्रेम से और उन के रतार्थित्व से पहुंचाए जाने की बनी हुई है। न० २८७० · २८७३। और नरक के निवासी और किसी स्वतन्त्रता को नहीं जानते। न० २८७१। जितनी दूरी पर स्वर्ग नरक से है उतनी ही दूरी पर स्वर्गीय स्वतन्त्रता नरकीय स्वतन्त्रता से है। न० २८७३ · २८७४। नरकीय स्वतन्त्रता जो आत्मप्रेम से और जगतप्रेम से पहुंचाए जाने की बनी हुई है स्वतन्त्रता नहीं है। वह दासत्व है। न० २८८४ · २८९०। क्योंकि दासत्व नरक से पहुंचाए जाने का बना है। न० ९५८६ · ९५८९ · ९५९० · ९५९१।

<u>अन्तःप्रवाह के बारे में</u>। सब बातें जिन का ध्यान और संकल्प मनुष्य करता है उसी मनुष्य में बहती हैं। यहां कई एक उदाहरण परीक्षा करने से संग्रहीत हैं। न० ९०४ · २८८६ · २८८७ · २८८८ · ४१५१ · ४ १९ · ४३२० · ५८४६ · ५८४८ · ६१८९ · ६१९१ · ६१९४ · ६१९७ · ६१९८ · ६१९९ · ६२१३ · ७१४७ · १०२१९। वस्तुओं पर देखना और ध्यान करना और परिच्छेदक सिद्धान्तों का निकालना तीनों के विषय मनुष्य की योग्यता अन्तःप्रवाह से होती है। न० १२८५ · ४३१९ · ४३२०। और यदि मनुष्य के पास से आत्मीय जगत का अन्तःप्रवाह दूर किया जावे तो वह एक पल भर नहीं जी सकता। इस के बारे में कई एक उदाहरण परीक्षा करने से संग्रहीत। न० २८८८ · ५८४९ · ५८५४ · ६३२१। वह जीव जो प्रभु की ओर से अन्दर बहता है मनुष्य की अवस्था के अनुसार और मनुष्य से उस जीव के ग्रहण करने के अनुसार बदलता है। न० २०६९ · ५९८६ · ६४७२ · ७३४३। बुरे लोगों में वह भलाई जो प्रभु की ओर से अन्दर बहती है बदलकर बुराई हो जाती है और सचाई बदलकर झुठाई हो जाती है। परीक्षा करने से। न० ३६४२ · ४६३२। वह भलाई और सचाई जो प्रभु की ओर से नित्य बहकर अन्दर आती है उस परिमाण तक ग्रहण की जाती है जिस परिमाण तक भलाई और सचाई का विरोध बुराई और झुठाई से नहीं किया जाता। न० २४११ · ३१४२ · ३१४७ · ५८२८।

सारी भलाई प्रभु की ओर से अन्दर बहती है और सारी बुराई नरक की ओर से। न० ९०४ · ४१५१। परंतु इन दिनों में मनुष्य इस बात पर विश्वास करता है कि सब वस्तुएं मनुष्य में और मनुष्य की ओर से हैं परंतु तो भी सब वस्तुएं उस के अन्दर बहती हैं। और मनुष्य यही सत्य कलीसिया के उस धार्मिक तत्त्व से जान सकता है जो यह शिक्षा देता है अर्थात सारी भलाई परमेश्वर से होती है और सारी बुराई शैतान से। न० ४२४९ · ६१९३ · ६२०६। परंतु यदि मनुष्य इस धार्मिक तत्त्व के अनुकूल विश्वास करे तो वह न तो सारी बुराई अपनावे न सारी भलाई। न० ६२०६ · ६३२४ · ६३२५। यदि मनुष्य इस बात पर विश्वास करे कि सारी भलाई प्रभु की ओर से अन्दर बहती है और सारी बुराई नरक की ओर से उस की कैसी सुखमय अवस्था

है। न० ६३२५। वे लोग जो स्वर्ग का होना अस्वीकार करते हैं या वे लोग जो स्वर्ग के विषय कुछ भी नहीं जानते यह भी नहीं जानते कि वहां से अन्तःप्रवाह होता है। न० ६४६७• ६४८० • ६४०७।

जीव की समष्टि जीव के प्रथम सोत से अन्दर बहती है क्योंकि वह इस सोत से जो प्रभु से निकलती है। और वह अन्तःप्रवाह सदैव बहता है। न० ३००१ • ३३१८ • ३३३७ • ३३३८ • ३३४४ • ३४८४ • ३६१९ • ३७४१ • ३७४२ • ३७४३ • ४३१८ • ४३१९ • ४३२० • ४४१७ • ४५२४ • ४८८२ • ५८४७ • ५९८६ • ६३२५ • ६४६८ • ६४६९ • ६४७० • ६४७९ • ९२७६ • १०१९६। अन्तःप्रवाह आत्मिक है नहीं पंचभूतात्मिक इस लिये वह आत्मीय जगत से प्राकृतिक जगत में आता है न कि प्राकृतिक जगत से आत्मीय जगत में। न० ३२१९ • ५११९ • ५२५९ • ५४२७ • ५४२८ • ५४७७ • ६३२२ • ९११० • ९१११। अन्तःप्रवाह भीतरी मनुष्य में से होकर बाहरी मनुष्य में या आत्मा में से होकर शरीर में चलता है। इस से विपरीत नहीं चलता। क्योंकि मनुष्य का आत्मा आत्मीय जगत में है और शरीर प्राकृतिक जगत में। न० १७०२ • १७०७ • १९४० • १९५४ • ५११९ • ५२५९ • ५७७९ • ६३२२ • ९११०। भीतरी मनुष्य आत्मीय जगत में है और बाहरी मनुष्य प्राकृतिक जगत में। न० ९७८ • १०१५ • ३६७९ • (४४५९) • (४५२३) • (४५२४) • ६०५७ • ६३०९ • ९७०१ से ९७०९ तक • १०१५६ • १०४७२। ऐसा मालूम होता है कि मानों अन्तःप्रवाह मनुष्य के बाहरी भागों से भीतरी भागों में चलता है परंतु यह हेत्वाभास है। न० ३७२१। मनुष्य में अन्तःप्रवाह उस की चैतन्यशक्ति की वस्तुओं में बहता है और वह इन वस्तुओं में बहता है और वह इन वस्तुओं में से होकर विद्याओं में चलता है। इस से विपरीत वह नहीं चलता। न० १४९५ • १७०७ • १९४०। अन्तःप्रवाह की परिपाटी के स्वभाव का बयान। न० ७७५ • ८८० • १०९६ • १४९५ • ७२७०। प्रभु की ओर से बिचवाईरहित अन्तःप्रवाह होता है और आत्मीय जगत या स्वर्ग में होकर बिचवाईसहित अन्तः-प्रवाह भी होता है। न० ६०६३ • ६३०७ • ६४७२ • ९६८२ • ९६८३। प्रभु का अन्तःप्रवाह उस भलाई में है जो मनुष्य की है और भलाई में होकर सचाई में चलता है। इस से विपरीत वह नहीं चलता। न० ५४८२ • (५६४९) • ६०२७ • ८६८५ • ८७०१ • १०१५३। भलाई प्रभु की ओर के अन्तः-प्रवाह के ग्रहण करने की शक्ति देती है परंतु सचाई भलाई के विना वह शक्ति नहीं देती। न० ८३२१। कोई वस्तु जो केवल ध्यान ही में बहती है हिंसक नहीं है परंतु जो वस्तु संकल्पशक्ति में बहती है वह हिंसक है। क्योंकि जो कुछ संकल्पशक्ति में बहता है सो मनुष्य अपनाता है। न० ६३०८।

साधारण या सामान्य अन्तःप्रवाह होता है। न० ५८५०। जो कि परिपाटी के अनुसार आचरण करने का एक नित्य प्रयत्न है। न० ६२११। और अन्तःप्रवाह पशुओं के जीवों में बहता है। न० ५८५०। और शाकविषयक राज के विषयों में भी बहता है। न० ३६४८। इस साधारण या सामान्य अन्तःप्रवाह के कारण ध्यान बोली में पड़ता है और संकल्प मनुष्य की क्रियाओं और इङ्गितों में पड़ता है। न० ५८६२ • ५९९० • ६१९२ • ६२११।

प्रजाओं के बारे में। आत्मा जो आत्माओं की सभाओं में से अन्य सभाओं को और अन्य आत्माओं को भी भेजे हुए हैं प्रजा कहलाते हैं। न० ४४०३ • ५८५६। और परलोक में ऐसे ऐसे भेजे हुए आत्माओं के द्वारा संसर्ग किये जाते हैं। न० ४४०३ • ५८५६ • ५९८३। कोई आत्मा जो प्रजा बनकर भेज दिया जाता है अपनी ओर से ध्यान नहीं करता परंतु उन की ओर से जिन्हों ने उस को भेज दिया था। न० ५९८५ • ५९८६ • ५९८७। कई एक बातों का बयान ऐसे आत्माओं के बारे में। न० ५९८८ • ५९८९।

स्वर्ग और नरक नामक पोथी की

अनुक्रमणिका।

इस अनुक्रमणिका की संख्याएं परिच्छेदों के अंकों से संबन्ध रखती हैं।

लिये वह एक नंगा नंगा स्वर्ग है। ३०·५७·२०२·४५४। उस का भीतरी मनुष्य स्वर्ग की प्रतिमा के अनुकूल बन गया और उस का बाहरी मनुष्य जगत की प्रतिमा के अनुकूल। ३० नोट·५७·३१३। मनुष्य में आत्मीय जगत और प्राकृतिक जगत दोनों संयुक्त हैं। ३१३। मनुष्य बुराई और झुठाई में जन्म लेता है और इस लिये वह उस में जन्म लेता है जो ईश्वरीय परिपाटी के विरुद्ध है। इस कारण वह अन्धेरी अज्ञानता में जन्म लेता है और इस लिये अवश्य है कि वह फिर जन्म लेवे या द्विज हो जावे। २०२ नोट·५२३। हर एक मनुष्य अपने भीतरी भागों के विषय आत्मा है। ४३२ से ४४४ तक। मनुष्य अपने आप के विषय आत्मा है और वह शारीरिक रूप जो इस लिये उस से जोड़ा हुआ है कि वह प्राकृतिक और भौतिक जगत में अपना निज कर्म करे मनुष्य नहीं है परंतु वह केवल एक प्रकार का साधन उस मनुष्य के आत्मा के प्रयोजनों के लिये है। ४३५। दूतगण और आत्मागण हर एक मनुष्य के पास उपस्थित खड़े रहते हैं और वह उन के द्वारा आत्मीय जगत से संसर्ग रखता है। २९२ नोट। मनुष्य निकटवर्त्ती आत्माओं के बिना नहीं जी सकता। २९२। न तो वह उन को देख सकता है न वे उस को। २९२। आत्मागण उस मनुष्य की वस्तुओं को छोड़ कि जिस से वे बोलते हैं हमारे सूर्यसंबन्धी जगत में का कुछ नहीं देख सकते। २९२ नोट। आत्मागण जो मनुष्य से संयुक्त हैं उसी गुण के हैं जिस गुण का वह मनुष्य अनुराग या प्रेम के विषय आप होता है। २९५। मनुष्य के प्रयोजनों का गुण उसी मनुष्य का गुण भी है। ११२ नोट। मनुष्य की और मनुष्य के आत्मा की सब वस्तुएं उसी मनुष्य की क्रियाओं या कार्यों में होती हैं। ४७५। मनुष्य मृत्यु के पीछे संपन्न मानुषक रूप पर है। ४५३ से ४६० तक। मरने के समय वह अपने पार्थिव शरीर को छोड़ और कुछ नहीं छोड़ देता है। ४६१ से ४६९ तक। जब मनुष्य एक जीव से दूसरे जीव में चलता है या एक जगत से दूसरे जगत को जाता है तब वह प्रगमन ऐसा है कि मानों मनुष्य एक जगह से दूसरी जगह को जावे। ४६१। मनुष्य मृत्यु के पीछे वही मनुष्य बना रहता है जैसे का तैसा कि वह पहिले मनुष्य था। ४५६। वह ऐसा है कि जैसा उस का जगत में का जीवन था। ४७० से ४८४ तक। वह अपना निज प्रेम और अपनी निज इच्छा है। ४७९। मृत्यु के पीछे वह अनन्तकाल तक उसी गुण का रहता है जिस गुण की उस की संकल्पशक्ति या प्रधान प्रेम था। ४८०। मनुष्य मरने के समय से लेकर किस हेतु से शिक्षा के द्वारा उस रीति से नहीं सुधारा जा सकता है जिस रीति से वह जगत में सुधारता है। ४८०। वह मनुष्य जो स्वर्गीय और आत्मीय प्रेम में है स्वर्ग को जाता है और वह मनुष्य जो स्वर्गीय और आत्मीय प्रेम के बिना शारीरिक और जगतसंबन्धी प्रेम में है नरक को जाता है। ४८१। यदि श्रद्धा स्वर्गीय प्रेम से उत्पन्न न हो तो वह मनुष्य के साथ नहीं रहती है। ४८२। क्रियाओं में का प्रेम कि जो मनुष्य के जीव का जीव है मनुष्य के साथ मृत्यु के पीछे रहता है। ४८३। हर एक मनुष्य अपने आत्मा के विषय आत्माओं के साथ संसर्ग किया करता है। तो भी जब वह जगत में जीता है तब वह उन आत्माओं के साथ आत्मा के रूप पर दिखाई नहीं देता परंतु वे जो शरीर से अलग होकर विषय-विविक्त रीति से ध्यान करते हैं कभी कभी अपनी निज सभा में दिखाई देते हैं। ४३८। मनुष्य उस समतोलत्व के द्वारा जो स्वर्ग और नरक के बीच बना रहता है स्वतन्त्रता में रहता है। ५९७ से ६०० तक। यदि मनुष्य यथार्थ में इस सत्य पर विश्वास करे कि सारी भलाई प्रभु की ओर से होती है और सारी बुराई नरक की ओर से तो वह न तो अपनी भलाई के विषय में अपना निज गुण माने और न उस पर बुराई का दोष लगा जावे। ३०२। धर्मपुस्तक में मनुष्य से तात्पर्य सचाई का समझना है अर्थात वे लोग जो बुद्धिमान हैं। ३६८ नोट।

मनुष्यजाति। स्वर्ग और नरक मनुष्यजाति से होते हैं। ३११ से ३१७ तक। मनुष्यजाति स्वर्ग का बीजारोपस्थल है। ४१७।

ईमेन्यूएल स्वीडन्बोर्ग की परमार्थविद्याविषयक पुस्तकें ।

यह पुस्तकावलि उस अनुक्रम के अनुसार प्रस्तुत है जिस के अनुसार ग्रन्थकर्ता ने पुस्तकों को लिखकर प्रकाशित किया ।

आर्काना सीलेस्टिया अर्थात स्वर्ग के रहस्य जो पवित्र धर्मपुस्तक में अर्थात प्रभु की वाणी में सृष्टि और यात्रा नामे पुस्तकों के विवरण करने के द्वारा प्रकाशित है। उन अद्भुत वस्तुओं के बयान के साथ जो आत्माओं के जगत में और दूतों के स्वर्ग में देखी थीं। १२ जिल्दें ।

आर्काना सीलेस्टिया पोथी की अनुक्रमणिका ।

स्वर्ग और नरक तथा मध्यस्थ अवस्था अथवा आत्माओं का जगत। सुनी और देखी हुई बातों का बयान ।

प्रलयकाल के विचार और बाबिलोन के विनाश के बारे में। इस पुस्तक के द्वारा यह मालूम हुआ कि एपोकलिप्स पोथी के भाविकथन इन दिनों में पूरा हुए थे। यह बयान सुनी और देखी बातों के अनुकूल प्रस्तुत हुआ है। तथा इस बयान का शेषभाग जो प्रलयकाल के विचार और आत्मिक जगत के बारे में है ।

उस सफेद घोड़े के बारे में जिस की सूचना एपोकलिप्स पोथी के उन्नीस पर्व में है साथ संक्षेप बयान के जो धर्मपुस्तक के प्रसङ्ग के और धर्मपुस्तक के आत्मिक या भीतरी अर्थ के बारे में आर्काना सीलेस्टिया पोथी से निकाला गया है।

सर्वजगत की पृथिवियों के और उन के निवासियों के तथा उन के आत्माओं और दूतों के बारे में। यह बयान सुनी और देखी हुई बातों के अनुकूल प्रस्तुत हुआ है।

नए यिरूसलिम और उस के स्वर्गीय तत्त्वों के बारे में। यह बयान स्वर्ग की वाणी के अनुकूल है। इस पुस्तक की एक प्रस्तावना नए स्वर्ग और नई पृथिवी के बारे में है ।

दूतविषयक ज्ञान ईश्वरीय प्रेम और ईश्वरीय ज्ञान के विषय ।

नई कलीसिया के चार प्रधान तत्त्वों के बारे में जो एपोकलिप्स पोथी में नए यिरूसलिम की बात का तात्पर्य है। इस पुस्तक में एक प्रस्तावना और ग्रन्थकर्त्ता का जीवनचरित्र है ।

ईश्वरीय विधान के विषय दूतविषयक ज्ञान के बारे में ।

एपोकलिप्स प्रकाशित हुआ। जिस में भाविकथन के रहस्यों का प्रकटीकरण है ।

विवाहविषयक प्रेम के विषय ज्ञान के आनन्दों के बारे में। इस के पीछे पागलपने के आनन्दों का बयान लम्पटताविषयक प्रेम के विषय है ।

नई कलीसिया के (जो एपोकलिप्स पोथी में नए यिरूसलिम की बात का तात्पर्य है) तत्त्वों का एक संक्षेप बयान ।

जीव और शरीर के परस्पर संसर्ग करने के बारे में ।

यथार्थ ख्रिष्टीय धर्म या नई कलीसिया की सर्वव्यापी परमार्थविद्या। विपुल अनुक्रमणिका के साथ ।

कर्त्तृमृत्युत्तरक परमार्थविद्याविषयक पुस्तकें इत्यादि ।

नई कलीसिया के सिद्धान्त अर्थात नई कलीसिया की संपूर्ण परमार्थविद्या ।

कोरोनिस अर्थात यथार्थ ख्रिष्टीय धर्म का शेषसंग्रह। उन चार कलीसियाओं के बारे में जो जगत की सृष्टि से लेकर पृथिवी पर हुई थीं और उन के नियतकाल और समाप्ति के बारे में। उस नई कलीसिया के बारे में जो उन चार कलीसियाओं के पीछे होनेवाली है और जो यथार्थ में ख्रिष्टीय होगी और गतकालीन कलीसियाओं का शिरोमणि होगी। इस कलीसिया को प्रभु के आगमन के और उस में अनन्तकाल तक प्रभु के आश्रय होने के बारे में। तथा मुक्ति के रहस्य के बारे में ।

आत्मासंबन्धी अर्थ के अनुसार एपोकलिप्स पोथी का विवरण करना। अनुक्रमणिका के साथ । ६ जिल्दें ।

तौरेत की भाविकथनसंबन्धी पोथियों का और दाऊद के ज़बूर का संक्षेप विवरण ।

कल्पान्त और प्रभु का दूसरा आगमन और नई कलीसिया। जो नई कलीसिया के न्योते के नाम से भी प्रसिद्ध है ।

ईश्वरीय प्रेम और ईश्वरीय ज्ञान के बारे में। (यह बयान एपोकलिप्स व्याख्यात हुआ नामे पोथी से निकाला हुआ है।)

एथेनेसियन क्रीड अर्थात धर्मविषयक मत और वे प्रसङ्ग जो उस क्रीड से संबन्ध रखते हैं। (यह बयान एपोकलिप्स व्याख्यात हुआ नामे पोथी से निकाला हुआ है ।)

स्वीडन्बोर्ग की परमार्थविद्याविषयक पुस्तकों का एक संक्षेप बयान। रेवेरेण्ड सेम्यू-एल. .एम्. उवारिन ने रचा ।

लेख्यप्रमाण ईमेन्यूएल स्वीडन्बोर्ग के जीवनचरित्र और स्वभाव के बारे में। रेवेरेण्ड आर्. एल्. टाफिल. ए. एम्. फ़ी. डी. ने संग्रय और उल्था और विवरण किया ।

तत्त्वज्ञानविषयक और विद्याविषयक पुस्तकें ।

प्रिन्सीपिया अर्थात प्राकृतिक वस्तुओं के प्रधान तत्त्व। मूलवस्तुसंबन्धी जगत के तत्त्वज्ञानविषयक विवरण करने में नए यत्नों के बारे में। लाटिन भाषा से अंग्रेज़ी में प्रस्तावना के साथ रेवेरेण्ड औगस्टस् क्लिस्सोल्ड. एम्. ए. ने उल्था किया। २ जिल्दें ।

शरीर की चीरफाड़ से प्रकृति से और तत्त्वज्ञान से जन्तुविषयक राज के विन्यास का बयान। रेवेरेण्ड औगस्टस् क्लिस्सोल्ड. एम्. ए. ने उल्था किया और जे. जे. गार्थ उविल्किन्सन. एम्. डी. ने प्रस्तावना के साथ प्रकट किया। २ जिल्दें।

शरीर की चीरफाड़ से प्रकृति से और तत्त्वज्ञान से जन्तुविषयक राज का बयान। जे. जे. गार्द उविल्किन्सन. एम्. डी. ने प्रस्तावना के साथ अंग्रेज़ी में उल्था किया। २ जिल्दें।

असीमत्व के और सृष्टि के अन्तिम कारण के विषय एक तत्त्वज्ञानविषयक वादानुवाद का संक्षेप बखान। तथा जीव और शरीर के परस्पर संसर्ग के बारे में। जे. जे. गार्द उविल्किन्सन. एम्. डी. ने प्रस्तावना के साथ अंग्रेज़ी में उल्था किया।

कीमिया के तत्त्वों की एक पुस्तक से संग्रहीत कई एक बातें अन्य अन्य छोटी पुस्तकों के साथ। लाटिन भाषा से अंग्रेज़ी भाषा में प्रस्तावना के साथ चारल्स एड्वार्ड स्ट्रट. एम्. आर्. सी. एस. ने उल्था किया।

स्थूलपदार्थसंबन्धी विद्याओं के विषय नानाप्रकार की बातें। इस पोथी के अन्तभाग में आक्ता लितेरारिया स्वेसियी नामक पुस्तक से स्वीडन्बोर्ग के लेख्यप्रसङ्ग इकट्ठे हैं। चारल्स. ई. स्ट्रट ने प्रस्तावना के साथ अंग्रेज़ी में उल्था किया।

कर्त्तृमृत्युत्तरक अल्पप्रबन्ध। जे. जे. जी. उविल्किन्सन. एम्. डी. ने अंग्रेज़ी में उल्था किया।

प्रतिनिधियों और प्रतिरूपों के द्वारा प्राकृतिक और आत्मासंबन्धी रहस्यों की एक गूढ़ार्थविच्छेदक टीका। जे. जे. गार्द उविल्किन्सन एम्. डी. ने अंग्रेज़ी में उल्था किया।

चीरफाड़ और प्रकृति और तत्त्वज्ञान के विषय लघु का बयान। जे. जे. गार्द उविल्किन्सन ने अंग्रेज़ी में उल्था किया।

इन सब पुस्तकें प्रकाश की गई हैं और उन के अंग्रेज़ी अनुवाद मोल लिये जा सकते हैं। परमार्थविद्या की सब पुस्तकें लाटिन भाषा में पाई जा सकती हैं और उन के फ्रांसीसी और जर्मन भाषा के अनुवाद भी मोल लिये जा सकते हैं। परमार्थविद्या की कई एक पुस्तकें अन्य अन्य भाषाओं में अर्थात अरबी. डेनिश. डच. हिन्दी. आइस्लेण्डिक. इटालियेन. पोलिश. रूसी. स्पेनिश. स्वीडिश और उवेल्श. पाई जा सकती हैं।

स्वीडन्बोर्ग सोसाइटी। ३६ ब्लूम्जबेरी स्ट्रीट। लण्डन।

बनारस, मेडिकल हाल के छापेखाने में छापा गया।